GURUKUL PATRIKA NOV-JAN 1957-58 G.K.U.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

1957 Dec
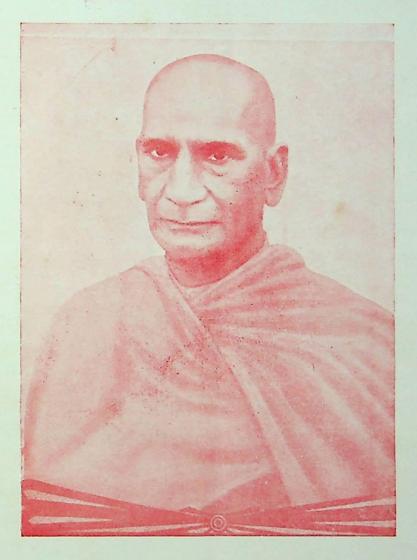
अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

सम्पादक– श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १०   मार्गशीर्ष २०१४   अङ्क ४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पूर्णाङ्क ११२ ★
~~दिसम्बर~~ १९५७
नवम्बर

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

भगवान् के अनन्त दान

ओं यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
ऋग्वेद १० । १२१ । ४ ।

शब्दार्थः—

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः आहुः) जिसकी महिमा को ये हिम से ढके हुए पहाड़ कह रहे हैं (यस्य रसया सह समुद्रम्) जिसकी महिमा नदियों सहित समुद्र कह रहा है (इमाः प्रदिशः) ये दिशाएं, उपदिशाएं (यस्य बाहू) जिसकी बाहुओं के समान हैं (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुख स्वरूप देव का हम श्रद्धा भक्ति पूर्वक पूजन करें।

देव आराधन

हिम से आवृत उन्नत पर्वत
जिसकी महिमा गाते हैं ।

ये समुद्र भी उछल-उछल कर,
गुण जिस के बतलाते हैं ।

चित्र विचित्र दिशाएं जिस की,
महिमा का करती हैं गान ।

दसों दिशाएं जिस विराट् के,
हैं बलशाली भुजा समान ।

भक्ति भेंट ले कर उस प्रभु के
हम चरणों में आते हैं ।

श्रद्धापूर्वक सुख सागर के,
सन्मुख सीस झुकाते हैं ।

"ध्रुव"

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षाओं की ओजस्विता

वेदमूर्ति श्री पं० सातवलेकर जी, स्वाध्याय मण्डल, पारडी

गताङ्क से आगे—

२

राष्ट्रीय एकता

चारों वर्ण परमेश्वर के शरीर के चार अवयव हैं। यह राष्ट्रीय ऐक्य की उच्च कल्पना वेद ने प्रकट की है:—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत॥
ऋ. १०।६

ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय इसके बाहु, वैश्य इसकी जंघायें और शूद्र इसके पांव हैं। विराट् पुरुष के ये चार वर्ण चार अवयव हैं। ये चारों एक ही शरीर के चार अवयव हैं, इतनी एकता की कल्पना वर्णित हुई है। वास्तव में मानव जाति की एकता की कल्पना इसमें निहित है किन्तु हम व्यवहार में राष्ट्रपुरुष पर लगाकर इसे देखते हैं। मानव जाति की उन्नति के लिये ऋषियों ने सदा जो प्रयत्न किये,उनका वर्णन अथर्ववेद के एक मंत्र में इस प्रकार किया गया है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः
तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ अथर्व० १६।४१

"सब मानवों का कल्याण करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियों ने प्रारम्भ में तप किया और दक्षता से आचरण भी किया। उससे राष्ट्र-बल एवम् ओज का निर्माण हुआ, इसलिए सब विबुध इस राष्ट्र के सामने विनम्र भाव से सेवा के लिये उपस्थित रहें।"

स्पष्ट है कि ऋषियों के प्राथमिक प्रयत्न से राष्ट्र का निर्माण हुआ और इस राष्ट्र का हित करने के लिये सब मनुष्य तत्पर रहें। ऋषियों के प्रयत्न से राष्ट्र की उत्पत्ति हुई है, अतएव इस ऋषि-ऋण से मुक्त होने के लिये राष्ट्र-सेवा करनी चाहिए। इसी विषय में और भी उल्लेख है—

आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥
ऋ० ५।६६

'हे व्यापक दृष्टिवालो, हे मित्रो! हम सब विद्वान् मिलकर ऐसे विस्तृत स्वराज्य के लिये प्रयत्न करें, जिससे 'सबका कल्याण हो और जिसका पालन बहुसंख्यकों द्वारा किया जाय।'

इस मंत्र में 'बहुपाय्य स्वराज्य' की उच्च कल्पना उत्तम रीति से वर्णित हुई है, जिसमें बहुतों की सम्मति से प्रजापालन होता है। ऐसे विस्तृत स्वराज्य में जनता के कल्याण-हित हम सब ज्ञानी सन्नद्ध हों-यही इस मंत्र में दर्शाया गया है। यहां'स्वराज्य' के विशेषण'व्यचिष्टे'और 'बहुपाय्ये' ये दोनों हैं। चारों वेदों में राज्य, राष्ट्र आदि शब्द अनेक बार व्यवहृत हुए हैं पर स्वराज्य के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए इन विशेषणों का उपयोग नहीं हुआ है जिससे 'स्वराज्य' की महत्ता स्पष्ट है। 'राज्य' और 'स्वराज्य' में भेद है और 'बहुपाय्य स्वराज्य' उनसे भी श्रेष्ठ है; यह 'जन–राज्य' है। वेद में वर्णित १०—१२ प्रकार के राज्य—शासनों में स्वराज्य को ही ये संज्ञायें दी गई हैं। वेद ने स्पष्टतः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वराज्य की विशेषता पर प्रकाश डाला है, यह विचारणीय एवम् मननीय है।

विधान सभा के सदस्य

यहां एक बात विशेष विचार करने योग्य है। उपर्युक्त मंत्र में स्वराज्य की व्याख्या के साथ—साथ ही विधान सभा के सदस्यों की योग्यता का भी उल्लेख हुआ है:—

ईयचक्षसः

१ सदस्य संकुचित दृष्टिवाले न हों। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिए।

मित्र

२ वे आपस में झगड़ने वाले न हों और मित्र-वत् व्यवहार करने वाले होने चाहिएं।

सूरि

३ सदस्यगणों का विद्वान् होना आवश्यक बतलाया गया है अर्थात् उनमें किसी ग्रंथ की टीका या भाष्य करने की क्षमता भी होनी चाहिए।

ये तीन कसौटियां 'बहुपाय्य स्वराज्य की विधान-सभा' के सदस्यों की हैं। वर्तमान विधान सभा के सदस्यों की कसौटी २१ वर्ष की आयु मात्र है। इसलिए हस्ताक्षर न कर सकनेवाले भी सदस्य बने हुए हैं। वैदिक स्वराज्य और उस काल की विधान सभा के सदस्यों की योग्यता की तुलना आज से कीजिए। फिर आप स्वयं ही निर्णय करें कि कौन सी पद्धति श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है।

'प्रजा ही राजा' का सिद्धान्त

वेदों में प्रजा को ही शासक (राजा) के अंग और अवयव कहा गया है—

विशो मे अंगानि सर्वतः ॥८॥

विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥९॥ वा. यजु. २०

'प्रजाजनों के आधार पर राजा रहता है और प्रजाजन ही राजारूपी शरीर के अंगादि व अवयव हैं।'

यह कितनी उत्तम कल्पना है कि प्रजाजन और राजा से मिलकर राज्य-शासन का एक शरीर निर्मित हुआ। प्रजा के चुने हुए व्यक्तियों द्वारा राज्य-कार्य का संचालन-शासन, और ऐसे राजा व प्रजा की जिस राज्य-शासन में एकता स्थापित हुई हो, उसमें अन्याय क्या कभी संभव है?

ग्राम-सभा और राष्ट्र—समिति

ऋषियों के तप के प्रताप से 'प्रजा ही राजा' के सिद्धान्त को लेकर सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रभावशाली शासन की परम्परा प्रतिष्ठित हुई। इस राज्यशासन की आधारभित्ति प्रत्येक ग्राम में स्थापित ग्राम-सभाएं थी, उनसे राष्ट्र-समिति का निर्माण हुआ तथा शासन-तंत्र शुरू हुआ। वेद में ग्राम-सभा का उल्लेख भी है:

सा उदक्रामत् सा सभायांन्यक्रामत्।

सा उदक्रामत् सा समितौन्यक्रामत्।

सा उदक्रामत् सा आमंत्रणे न्यक्रामत्।

अथर्व० ८।१०।८-१२

"जनशक्ति की उत्क्रान्ति सभा, समिति और आमंत्रण (मंत्रिमण्डल) में परिणत हुई।' ग्राम में ग्राम-सभा का निर्माण हुआ, राष्ट्र में राष्ट्रसमिति बनी और उसके बाद मंत्रि-मण्डल का गठन हुआ तथा शासन का कार्य संचलित हुआ। ऋषियों के तप से ग्रामों में ग्राम-सभाएं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थापित हुई और ग्रामों का कार्य विधिवत् चलाया जाने लगा। इसी प्रकार राष्ट्रसमिति व मंत्रिमण्डल बने और इसके द्वारा राष्ट्र का शासन होने लगा। ऋषियों के तप का यही अर्थ है। आज तो तप करने का अर्थ कुछ और ही लगाया जाता है। राज्य-शासन शुरू हो जाने पर ऋषियों की कामना क्या थी, उसका आभास इससे मिलता है—

"समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्" ऐतरेय

अखण्ड पृथ्वी पर एक विधान से राज्य का संचालन हो, यह ऋषियों की आकाँक्षा थी। आज के 'यूनो' या संयुक्त राष्ट्र संघ और प्राचीन ऋषि-काल की "पृथिव्याः एकराट्" कल्पना समान उद्देश्य की सी प्रतीत होती है। हमारे ऋषियों की यह महत्वाकांक्षा सबके लिए आनन्द का विषय है। ये ऋषि उस प्राचीन समय में भी समस्त पृथ्वी पर एक राज्य तथा सर्वजनसुखाय की भावना से परिपूरित एक ही विधान हो, ऐसी अपेक्षा करते थे, जो हम आज चाहते हैं, विश्व के समस्त राष्ट्र जिसे चाहते हैं। विश्व में स्थायी शान्ति, सुख और कल्याण की यह मनोमुग्धकारी कल्पना भारतीय संस्कृति की देन है, ऋषियों के पवित्र तप से उद्भूत निधि है, वेदादि शास्त्र जिसके प्रमाण हैं।

सेना विभाग

वैदिक काल में राज्य का सेनाविभाग भी नियम और अनुशासनबद्ध था। वे सात-सात की पंक्ति में चलते थे, एक स्थान पर रहते थे तथा उन सबका वेश और शास्त्रस्त्र समान होते थे। आज पश्चिम के देशों में जैसी सेना होती है, उसी प्रकार की वैदिक काल में होती थी। आश्चर्य की बात है कि यहां वेद का पठन-पाठन तो होता था, वैदिकों को दक्षिणा भी मिलती थी परन्तु हमारी सेना अनुशासनबद्ध नहीं थी, जिसके कारण हम वर्षों पराधीन रहे। वेदों पर श्रद्धा थी परन्तु उनके उपदेशों पर आचरण करने की प्रवृत्ति नहीं थी। वेद-ज्ञान का उपयोग भी हो सकता है, यही पता नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि सच्चे वेद-ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता है।

पुरोहित ही सेनापति

वेद में हम देखते हैं कि पुरोहित ही सैन्य की व्यवस्था करता है, सैनिकों को शिक्षित करता है, तथा किलों की रक्षा करता है।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु
येषामस्मि पुरोहितः ॥१॥
नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये
नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥३॥
तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो
येषामस्मि पुरोहितः ॥४॥
एषामहमायुधा संस्यामि एषां
राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एषांक्षत्रमजरमस्तु जिष्णु एषाँ
चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥५॥ अथर्व० ३।१९

"मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हो, मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी हो, क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी हो। जिनका मैं पुरोहित हूं, उनका तेज बढ़े।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारे ज्ञानी और धनी मित्रों पर जो सेना ले कर हमला करते हैं, वे नीचे गिरें, अवनत हों। ज्ञान से मैं शत्रुओं को क्षीण करता हूं। जिन का मैं पुरोहित हूं, उनके शस्त्र अग्नि तथा इन्द्र के वज्र से भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं। उनके राष्ट्र को वीर्यवान् करके शक्ति-शाली बनाता हूं। उनका क्षात्र-तेज अविनाशी है। सब देव उनके चित्त का संरक्षण करें!"

यह पुरोहित का वक्तव्य है। उस समय का पुरोहित यह सब करता था। सेना की शिक्षा, शस्त्रास्त्रों की व्यवस्था, किले तथा नगरी की रक्षा, शत्रु पर हमला तथा आक्रमण से अपने राष्ट्र की रक्षा आदि उसी के काम थे। क्षत्रिय लड़ते अवश्य थे परन्तु योजना करने वाला पुरोहित ही होता था।

मनु करता है—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

मनु. १२ । १००

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥

मनु. १२ । ९७ ।

"चार वर्ण, तीन लोक तथा चार आश्रम और तीन कालों में होने वाले सब कर्तव्य वेद से सिद्ध होते हैं। सेनापति का कार्य, राज्य-शासन, दण्डनीति का व्यवहार तथा सब लोकों पर अधिकार के सभी कार्य वेद जानने वाला सुगमता से कर सकता है।"

मनुस्मृति की यह साक्षी देख कर प्रतीत होता है कि वेद में व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सभी कर्तव्यों का निर्देश है। इस लिए आज के दिन वेद का अध्ययन तथा संशोधन करने की विशेष रूप से आवश्यकता है। हम अपनी क्षमता के अनुसार कई भाषाओं में प्रका-शन का यह कार्य कर रहे हैं और भी बहुत सा कार्य करना शेष है। हमारी इच्छा है कि पाठ्य-पुस्तकों के रूप में वेद-ज्ञान को प्रकाशित करें, जिससे उसे सभी बालक अपने स्कूल की शिक्षा के साथ ही पढ़ सकें। साथ ही वैदिक सूक्तियों के संकलन, जो बहुत बोधक तथा उत्साहवर्धक हैं, प्रकाशित किये जायें। वेद संब-न्धी विभिन्न विषयों पर जनता की दृष्टि से छोट-छोटे व्याख्यान भी प्रकाशित कर रहे हैं, जिनका मूल्य भी बहुत अल्प है।

यह समस्त कार्य बहुत बड़ा है। किसी भी व्यक्ति के लिये संभव नहीं। इसके लिए बहुत से विद्वान् एक साथ लगने चाहिएं तथा बहुत सा धन भी अपेक्षित है। इस उत्सव से यह सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म के प्रति जनता में प्रेम बढ़ रहा है। अखिल भारत के श्रेष्ठ पुरुषों में इसका महत्त्व स्वीकृत हुआ है। यह प्रेम प्रका-शन के ठोस कार्य में परिणत हो, यही परमेश्वर के निकट मेरी प्रार्थना है।

अन्त में फिर एक वार, अपने इस अभिनंदन के लिए मैं आप को हार्दिक धन्यवाद देता हूं। मैं आशा करता हूं कि आप सब वैदिक धर्म की उन्नति के लिए, जो भारतीय संस्कृति का मूल है परन्तु जिसे हम आज विस्मृत कर चुके हैं, यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय संस्कृति का विक्रम काल

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

हम इस लेखमाला में भारतीय संस्कृति की सम्राट् अशोक तक की प्रगति का दिग्दर्शन कर चुके हैं। अशोक के पश्चात् मौर्य वंश के चार उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठे, परन्तु उन सब का सम्मिलित राज्यकाल कुछ वर्षों से अधिक नहीं था। वे अत्यन्त निर्बल और कम आयु वाले शासक थे। मौर्य वंश का अन्त ईसा से लगभग १८५ वर्ष पूर्व हो गया।

मौर्य वंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। बृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने अपने स्वामी को मार कर राज्य पर स्वयं अधिकार कर लिया।

पुष्यमित्र के सिंहासनारूढ़ होने से केवल पाटलीपुत्र का राजवंश ही नहीं बदला, भारतीय संस्कृति के प्रवाह में भी परिवर्तन हो गया। सम्राट् अशोक ने भारतीय सभ्यता पर बौद्ध धर्म की छाप लगा कर उसे एक नया रूप देने की चेष्टा की थी। पुष्यमित्र ने दिशा को बदल कर फिर उसे उस पुराने प्रवाह में डाल दिया, जिससे उसका सम्बन्ध कौटिल्य काल से जा जुड़ा। पुष्यमित्र पुराने स्मार्त्त धर्म में विश्वास रखता था। वह पराक्रमी राजा था,उस. ने मीनान्दर के भारतीय आक्रमण को रोक कर यश प्राप्त किया जिसके उपलक्ष में उसने अश्व-मेध यज्ञ का समारोह सम्पन्न किया। अश्वमेध यज्ञ से पुष्यमित्र की प्राचीन स्मार्त्त धर्म में आस्था प्रकट होती है। स्मार्त्त धर्म के पुनर्जीवन के साथ भारत भूमि पर बौद्ध धर्म का प्रभाव कम होने लगा। महात्मा बुद्ध को भारतीय धर्म का अङ्ग बना लिया गया। उनकी गणना भगवान् के अवतारों में कर ली गई,और उनके तत्वज्ञान को विशाल भारतीय तत्त्वज्ञान की एक शाखा मान लिया गया, इस प्रकार जिस बौद्ध धर्म को सम्राट् अशोक विश्व व्यापी बनाना चाहता था उसे एक शाखा की हैसियत में रखकर भारतीय सभ्यता का प्रवाह बड़े वेग से आगे बढ़ा!

२

पुष्यमित्र ईसा से लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर बैठा। उस समय से प्रारम्भ करके गुप्तकाल के अन्त "६ठी शताब्दी की समाप्ति" तक का समय भारत के इतिहास का सुनहरा समय कहलाता है। कुछ इतिहास लेखकों ने केवल गुप्तकाल को ही वह ऊंचा पद प्रदान किया है,परन्तु यदि विवेचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृति के पुनरुत्थान का क्रम पुष्यमित्र के राज्यारोहण के समय से ही आरम्भ हो गया था। इस लिये मैं भारतीय सस्कृति के नये युग का प्रारम्भ उसी समय से करता हूं।

इस नये युग की दो विशेषताएं हैं। एक विशेषता तो यह है कि इस युग में भारत पर विदेशों से अनेक आक्रमण हुए, थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् भिन्न २ रास्तों से शत्रुओं का प्रवेश होता रहा, और भारतीय वीर उन्हें परास्त करते रहे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यवन, यूची, शक और हूण जाति के आक्रमणकारी भारत की उत्तरीय सीमाओं को पार कर के देश में प्रवेश करते और कुछ हिस्सों पर अधिकार भी जमाते रहे, परन्तु भारत में कोई न कोई शूर ऐसा उठता रहा, जो उन्हें धकेल कर अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता और संस्कृति की रक्षा करता रहा। विदेशियों के आक्रमणों का यह दौर ईसा की छठी शताब्दी के अन्त तक जारी रहा। भारतीय क्षत्रिय भी तब तक विदेशी शत्रुओं को परास्त करके यशस्वी होते रहे। भारत की तलवार विदेशी शत्रुओं की शान से संघर्ष पा कर अधिकाधिक उज्ज्वल होती रही।

इस युग की दूसरी विशेषता यह थी कि इसमें साहित्य, कला, शिल्प और वैभव की अपूर्व वृद्धि हुई। बौद्ध काल में भारतीय संस्कृति को जो नया उपहार मिला था उसे नष्ट नहीं किया गया। महात्मा बुद्ध को अवतार मान लिया गया, बौद्ध दर्शन को भारतीय दर्शन की एक शाखा के रूप में ले लिया गया और प्राकृत भाषा को लोक भाषा का पद प्रदान करके ऊंचे साहित्य का अंश बना लिया गया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति अधिक समृद्ध बन कर तीव्र गति से आगे बढ़ने के योग्य बन गई।

इन कारणों से मैं भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग का प्रारम्भ ईसा से ३०० वर्ष पीछे न करके लगभग २०० वर्ष पहले करता हूं, और उस का नाम विक्रम काल रखता हूं। गुप्तकाल भी विक्रम काल का एक भाग था।

३

उस काल को विक्रम काल के नाम से विशेषित करने का कारण निम्नलिखित है—

उस काल में कितने विक्रमादित्य हुए यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि १२ विक्रमादित्य हुए। पांच विक्रमादित्यों के तो ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं। सब से प्रथम विक्रमादित्य ईसा से ५७ वर्ष पूर्व हुआ। वह मूल विक्रमादित्य था, जिसने शक आक्रमणकारियों को परास्त करके विक्रमादित्य पद को सार्थक किया। दूसरा विजेता, जो विक्रमादित्य नाम से विशेषित किया गया, दक्षिण का राजा प्रथम सातकर्णी था, जिसने शक यवन और पल्लवों का संहार कर के इस यशस्वी उपाधि को प्राप्त किया। यह राजा ईसा से लगभग १०० वर्ष पश्चात् हुआ।

गुप्त वंश के राजा समुद्रगुप्त ने न केवल विदेशियों को परास्त किया, साथ ही दिग्विजय करके चक्रवर्ती पद को भी प्राप्त किया। समुद्र गुप्त का पुत्र पिता की तरह ही प्रतापी राजा था। वह साहित्य और कला का बहुत बड़ा रक्षक और संवर्धक था। वह भी विक्रमादित्य पद से विभूषित किया गया। वह ईसा की चौथी शताब्दी के अन्त में हुआ।

कुछ काल पीछे हूण लोग भारत पर आक्रमण करने लगे। मालवा के वीर राजा यशोधर्मन् ने हूणों को परास्त कर विक्रमादित्य की उपाधि को उपलब्ध किया, यह ईसा की छठी शताब्दी के मध्य की बात है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

छठी शताब्दी के अन्त और ७ वीं शताब्दी के आरम्भ में राजा हर्ष ने अपनी वीरता और संस्कृति प्रियता के कारण वही यश प्राप्त किया जो विक्रमादित्य उपाधि धारियों को प्राप्त होता रहा है। यद्यपि साहित्य में अथवा शिला लेखों में उसके साथ विक्रमादित्य पद उपलब्ध नहीं होता तो भी मैं समझता हूं कि वह अपने ग्रंथों के कारण विक्रमादित्य पद के योग्य राजा था। उसके साथ भारतीय इतिहास का विक्रम काल समाप्त होता है।

४

यह एक मनोरंजक और आवश्यक प्रश्न है कि बौद्ध धर्म का ह्रास अपने जन्म स्थान भारतवर्ष में इतना शीघ्र क्यों आरम्भ हो गया? इस प्रश्न का भारतीय संस्कृति के विकास से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि भारत में बौद्ध धम का ह्रास और पुराने स्मार्त्त धर्म का पुनरुत्थान इतना शीघ्र आरम्भ न होता, तो यहां की सांस्कृतिक प्रगति की दिशा दूसरी ही होती। बौद्ध धर्म से देश को जो प्रेरणा मिली थी, वह उसकी विचार धारा और साहित्य के रुख को बदल देती। संस्कृति का साहित्य भूतकाल की वस्तु हो जाता, मैदान प्राकृत के हाथ में रहता, साहित्य और कला की सर्वाङ्गीण उन्नति जिसके कारण हमारे देश का तत्कालीन इतिहास प्रकाशित है, न जाने किस रूप में प्रकट होती। आश्चर्य की बात है कि जो बौद्ध धर्म भारत से अन्य देशों में पहुंच कर इतना विस्तीर्ण हुआ, और बद्ध मूल हो गया, वह अपने जन्म स्थान में बहुत कम समय अच्छी दशा में रहा, रहा तो निरन्तर, परन्तु बहुत ही अनिश्चित और बिखरी हुई दशा में।

मैं इस घटना का मुख्य कारण यह समझता हूं कि महाराजा अशोक ने अपने राज्यकाल में देश की सम्पूर्ण धनशक्ति और राजशक्ति को धर्म प्रचार के अर्पण करके देश देशान्तर में बौद्ध धर्म को तो फैला दिया, परन्तु राज्य की शासन तथा आत्म रक्षा की शक्ति को अत्यन्त निर्बल कर दिया, उसी का यह फल हुआ कि सम्राट् अशोक की मृत्यु के पश्चात् बहुत शीघ्र मौर्य साम्राज्य का बल क्षीण हो गया। उस क्षीणता से लाभ उठा कर सेनापति पुष्यमित्र ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया, इस प्रकार शीघ्र ही बौद्ध धर्म की प्रधानता के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई।

उसी समय विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये, मीनान्दर का आक्रमण पुष्यमित्र के समय में हुआ। भारतवासी उस समय यह अनुभव कर चुके थे कि बौद्ध धर्म के सक्रिय प्रयोग में विरोधी आक्रमणों से देश की रक्षा करने की शक्ति नहीं है। अशोक भिक्षु सा बन गया, उस की सन्तान या तो भिक्षु हो गई, अन्यथा निर्बलता को प्राप्त हो गई। आक्रान्ताओं का मुकाबला करने के लिये जो बल और उग्रभाव चाहिये, प्रारम्भिक बौद्ध धर्म उसका विरोधी था। इस कारण भारतवर्ष को बौद्ध धर्म का सहारा छोड़ देना पड़ा। आगामी ८०० वर्षों तक समय-समय पर विदेशी भारत पर आक्रमण करने का यत्न करते रहे, देश को युद्ध के लिये निरंतर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तैयार रहना पड़ता था। इस कारण स्वभावतः देश में निर्वाण धर्म की क्षीणता और शक्ति धर्म की उन्नति होती गई। भारत के इतिहास का विक्रम काल देश पर विदेशी जातियों के आक्रमणों और उन की प्रतिक्रियाओं का काल है।

प्रकाश की प्रतीक्षा

कविवर श्री पं० वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड, हैदराबाद

(१)

खड़ा हुआ हूं पूर्व दिशा में, व्याकुल दृष्टि उठाये।
कब प्रकाश की किरणों से, जग जगमग हो जाये॥

(२)

दूर दिगन्त भरे लाली से नव सुषमा विकसाये।
नदी तटों की चमकी रेखा, लहर लहर मचलाये॥

(३)

पत्ता पत्ता हिल हिल नाचे, पक्षी पक्षी गाये।
एक अपूर्व हर्ष से सारा, भूमण्डल भर जाये॥

(४)

अन्धकारमय काला पर्दा, फटे दूर हो जाये।
नये रूप मे नये रंग में, दिशा दिशा मुसकाये॥

(५)

विस्तृत नील गगन, धरती मिल, अपना रूप दिखाये।
देख देख कर जिस को सीमित, मन असीम हो जाये॥

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सदाचार

आचार्य भद्रसेन जी, अजमेर

अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाने का सदाचार एक सर्वोत्तम साधन है। बिना सदाचार के जीवन का आदर्शमय तथा सुखी बनना अति दुस्तर ही नहीं, प्रत्युत नितान्त असम्भव है। इसी लिए संसार में जितने भी धर्म प्रवर्तक या धर्माचार्य हुए हैं, उन्होंने सदाचार पर सब से अधिक बल दिया है। महाराज मनु ने तो सदाचार को ही परम धर्म कहकर पुकारा है। वास्तव में यदि देखा जाए तो धर्म ही सदाचार और सदाचार ही धर्म है। जो लोग आचार से भिन्न केवल चंद रुढियों, रस्मों तथा रिवाजों को ही धर्म का रूप देते हैं, वे भूल करते हैं। अतः वास्तव में वही सच्चा धर्मात्मा है, जो आचारवान् है।

सदा सत्य का व्यवहार करना, अपनी इन्द्रियों तथा मन को कुमार्ग गामी न बनाना, उन पर विजय प्राप्त करना, जुआ' मद्यपान आदि व्यसनों से दूर रहना, किसी से ईर्ष्या, द्वेष न करना, अपने अन्दर नम्रता, सुशीलता, दयालुता, उदारता आदि गुणों को धारण करना सत्पुरुषों के जीवन-पथ पर चल कर अपने को भी उनके अनुरूप आदर्शवान् तथा पूर्ण पुरुष बनना आदि ही सदाचार कहलाता है। अतः जीवन की सदाचारमय बनाने के अभिलाषी को उपर्युक्त गुणों का अपने जीवन में अवश्यमेव समावेश करना चाहिए।

सत्य का व्यवहार ही सदाचार का मुख्य अंश है, सदाचार का अर्थ भी सत्य का आचार है। वास्तव में सत्य का आचार करने वाला मनुष्य संसार में कभी उन्मार्ग-गामी नहीं बनता सत्यवादी तथा सत्याचारी के ऊपर सदा परमात्मा का वरद हाथ बना रहता है। प्रभु स्वयं सत्यस्वरूप है। पूज्य बापू जी कहा करते थे।— सत्य ही परमात्मा और परमात्मा ही सत्य है। अतः सदा सत्य का व्यवहार करना, मानो प्रभु की आज्ञा का पालन करना है।

वास्तव में जहाँ सत्य है वहां न भय, न शङ्का: न फिक्र, न चिंता है। सत्य का जीवन निर्भयता का जीवन है इसके विपरीत जहां असत्य है, छल और कपट है, वहां भय, शंका लज्जा सभी पीछे लगे रहते हैं। हमें एक दुकानदार से कोई वस्तु खरीदते समय हमेशा यही शंका लगी रहती है कि कहीं इस दुकानदार ने ठग तो नहीं लिया, अधिक दाम तो नहीं ले लिए ऐसा क्यों इसलिए कि हम जानते हैं कि दुकानदार अक्सर झूठ बोलते हैं। इसी प्रकार रिश्वत ले कर न्याय और सत्य का गला घोटने वाले जज से हमें यह भय रहता है कि कहीं यह प्रति-पक्षी से रिश्वत ले कर और मेरे सच्चे मुकदमे को भी खारिज न कर दे, ऐसे असत्याचरण परायण पुरुषों से न केवल दूसरों को भय तथा शङ्का बनी रहती है, प्रत्युत वे स्वयं भी अपने व्यवहार से हमेशा डरते और शङ्कित रहते हैं। इसी प्रकार जब कभी भी हम अपने जीवन में असत्य का व्यवहार करलें और उसका किसी को पता लग जाता है तो हमारा सिर उसके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सामने भय और लज्जा से झुक जाता है। इस के विपरीत अपने सामान का पारसल कराते समय, रेल का टिकट लेते समय, पोस्ट आफिस से कार्ड और लिफाफे लेते समय हमें मालूम है कि यहां ज्यादा दाम लेकर ग्राहकों को ठगा नहीं जाता। एक धर्मात्मा, सत्यवादी, न्यायप्रिय जज से हमें तनिक भी भय नहीं होता कि वह रिश्वत लेकर हमारे मुकदमे को खारिज कर देगा। इसी प्रकार सदा सत्य का व्यवहार करने पर हमें किसी के सम्मुख भी लज्जित नहीं होना पड़ा। अतः सत्य ही सदाचार का पहला और मुख्य अङ्ग है।

सदाचार का जीवन एक सच्ची मानवता तथा नागरिकता का जीवन है। सदाचारी का हृदय उदार होता है, उसके सत्यपरायण हृदय में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति निवास करती है। वह "वसुधैव कुटुम्बकम्" का जीता जागता आदर्श होता है। संसार में जितने भी राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानन्द, गान्धी महापुरुष हुए हैं वे अपने चारित्र्य बल से ही ऊंचे और महान् बने हैं।

—

कर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी

स्वामी श्रद्धानन्द जी एक सुधारक थे। वे कर्मवीर थे वाक्शूर नहीं। उन का जीवित जागृत विश्वास था। इसके लिए उन्होंने अनेक कष्ट उठाये थे। वे संकट आने पर कभी घबराते न थे। वे एक वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शय्या पर नहीं किन्तु रणाङ्गण में मरना पसन्द करता है।

ईश्वर उनके लिये धर्मवीर हुतात्मा वा शहीद की मृत्यु ही चाहते थे और इस लिए यद्यपि वे उस समय पर भी रोग शय्या पर थे, एक घातक के हाथों उनके देह का अन्त हुआ। गीता के शब्दों में—

'सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्धमी दृशम्'।

धन्य और सौभाग्यशाली हैं वे वीर जिन को ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है। . . .

यद्यपि श्रद्धानन्द जी मर गये हैं तथापि वे जीवित हैं। वे उस से भी अधिक सच्चे अर्थ में अब जीवित हैं जब कि वे अपने विशाल देह के साथ हमारे मध्य में विचरण करते थे। वे वीर के समान जिये और वीर के समान ही मरे। —महात्मा गान्धी

यंग इण्डिया ३० दिसम्बर १९२६।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
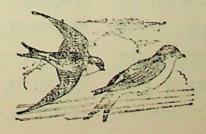
जाति-भेद का अभिशाप

श्री पं० क्षितीश जी वेदालंकार, देहली

कुछ सच्ची कथाएं

(१) सातवीं शताब्दी की बात है। सिंध नरेश दाहर के पिता चच ने पण्डे और पुरोहितों के कहने से सिन्ध के जाटों, मेडों, लुहाणों और भीलों सब को शूद्र करार दे दिया। उन के लिये घोड़े की सवारी, शस्त्र धारण करना, सुन्दर वस्त्राभूषण पहनना तथा सेवा में भरती होना तक निषिद्ध कर दिया गया। इस भेद भाव के कारण उन में राजा के प्रति द्वेषाग्नि भड़क उठी। जब अनुकूल अवसर पाकर मुहम्मद बिन कासिम ने आक्रमण किया और केवल ७०० सैनिकों के साथ हिन्दुस्तान का द्वार खटखटाया तो इस आकस्मिक आक्रमण से दाहर के हाथ पांव फूल गए। उसने देश की रक्षा के लिए प्रजा को ललकारा। उस समय ब्राह्मणों ने कहा कि हम तो आपकी विजय के लिए मन्दिर में जा कर देवता से प्रार्थना करते हैं, युद्ध करना हमारा काम नहीं। वैश्यों ने कहा कि हम से पैसा ले लो परन्तु युद्ध करना हम नहीं जानते। शूद्रों ने कहा हमें क्या, चाहे किसी का राज्य हो हम तो दास के दास रहेंगे। "कोउ नृप होय हमहि का हानी" "चेरि छांडी होउ न रानी" बस लड़ने के लिये थोड़े से क्षत्रिय निकले। उनमें से भी आधी स्त्रियां थीं, कुछ बच्चे थे, कुछ बूढ़े थे और कुछ रोगी थे जो लड़ाई के सर्वथा अयोग्य थे। परिणाम क्या हुआ ? दाहर की हार हुई। वह युद्ध में मारा गया और उसकी दोनों लड़कियाँ पकड़ कर अरब के अन्तःपुर में पहुंचाई गई।

(२) शेरशाह सूरी के समय रिवाड़ी के एक साहसी व्यक्ति जिस का नाम था हेमचन्द चौधरी, पर जो इतिहास लेखक की कृपा से हेमू बक्काल के नाम से विख्यात है अवसर पा कर दिल्ली की मुगल सेनाओं पर आक्रमण कर दिया और उन्हें हरा कर स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। उस समय अकबर छोटा सा बालक था। बैरमखां उसका संरक्षक भी था और सेनापति भी। दिल्ली से सैंकड़ों मील दूर जब बैरमखां ने दिल्ली के सिंहासन के छिन जाने का समाचार सुना तो उसके तन मन में आग लग गई। वह गुस्से में भर कर और अपनी विशाल चतुरंगिणी सेना सजा कर दिल्ली पर पूर्ण अधिकार करने के लिये चला। इधर हेमचन्द चौधरी ने देखा कि उसकी अपनी सेना बहुत थोड़ी सी है और दिल्ली की सेना में मुगल सैनिकों का ही बाहुल्य है। युद्ध में मुगल सेनाओं की राजभक्ति पर विश्वास खतरे से खाली नहीं है। यही सोचकर उसने राजपूताने के राजाओं को एक एक करके चिट्ठीं लिखी। परमात्मा की अनुकम्पा से कई सदियों के बाद दिल्ली पर हिन्दुओं को राज्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब हम सब का कर्तव्य है कि सब मिलकर इस हिन्दु राज्य की रक्षा करें। मुझे राज्य करने का प्रलोभन नहीं है। इस सिंहासन पर तो मर्यादा पुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र के वंशज आप जैसे सूर्यवंशी राजा ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शोभित होंगे। मैंने तो केवल उचित अवसर का लाभ उठा कर हिन्दुत्व का प्रतिनिधि बन कर यह हिन्दुत्व की पताका यहां दिल्ली में लहरा दी है। आप अपनी सेना ले कर यहां आएं और हम सब मिल कर बैरमखां को हरा कर इस हिन्दुत्व की पताका की रक्षा करें।

उस का उत्तर क्या दिया गया। उन राजपूत राजाओं ने क्रोधविष्ट हो कर उस हेमचन्द चौधरी को लिखा अबे बनिये बक्काल! नीचवर्ण होकर अपने से उच्चवर्ण के हम राजपूतों को अपनी सेना के साथ मिल कर लड़ने का निमन्त्रण देते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? तू क्या जाने लड़ाई किस तरह लड़ी जाती है—वणिक् पुत्र जाने कहां गढ़ लवै की घात। पहले यह बता कि बनिये को राज्य करना कौन से शास्त्र में लिखा है? तूने बनिया हो कर जो राजगद्दी पर पांव रखा है और इस तरह हम उच्चवर्ण के क्षत्रियों का अपमान किया है पहले इस पाप का प्रायश्चित कर।

यदि बैरमखां की विशाल सेना के सामने हेमचन्द चौधरी हार गया और आया हिन्दु राज्य फिर वापिस चला गया तो दोष किसका है। और फिर जो राजपूत क्षत्रिय अपने से नीचवर्ण वैश्य के साथ मिल कर शत्रु से लड़ने में अपना अपमान समझते रहे उन्हीं राजपूत राजाओं को पीछे मुगल बादशाहों का दास बनने और उन्हें अपनी कन्याएं देने में न तो अत्यन्त अपमान प्रतीत हुआ और न ही लज्जा आई।

—:—

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी

श्री सुधीरकुमार जी एम. ए. शास्त्री, अध्यक्ष संस्कृत विभाग एन्, आर्. सी. कालेज, खुरजा

"स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती के लिए मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा है। देश के उत्थान में श्री स्वामी जी की देन महान् है। आप ने इस युग में शिक्षा के क्षेत्र में सर्व प्रथम गुरुकुल प्रणाली का क्रियात्मक रूप प्रस्तुत किया। ऋषि दयानन्द जिस कार्य को अपने जीवन में सम्पन्न न देख सके उसे आप ने पूरा किया। नवभारत की भावी शिक्षा योजनाओं में गुरुकुल प्रणाली का प्रत्यक्ष वा अप्रत्य रूप से महत्त्वपूर्ण योग अवश्यम्भावी है।

श्री स्वामी जी ने शुद्धि और दलितोद्धार के आन्दोलनों के द्वारा भी देश की महती सेवा की। ये दोनों आन्दोलन आर्य समाज में प्रगति लाने वाले सिद्ध हुए। इन में शिथिलता आर्य समाज के लिए मंहगी ही रही मानी जाएगी। मुझे विश्वास है कि देश के नवयुवक स्वामी जी के जीवन आदि से शिक्षा और अनुभूति लेकर देश के कल्याण में समर्थ बनेंगे।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

युवकों में उदारता और चरित्र निर्माण की आवश्यकता

(देशरत्न—डा० राजेन्द्रप्रसाद जी,)

[अन्तर-विश्वविद्यालय युवक समारोह के अवसर पर मान्यवर राष्ट्रपति जी का उद्घाटन भाषण]

नई दिल्ली, १ नवम्बर, १९५७

इस अन्तर-विश्वविद्यालय युवक समारोह का उद्घाटन करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। पिछले चार वर्षों से जब से हमारे शिक्षा मन्त्रालय ने इस समारोह का आयोजन किया, मैं किसी न किसी रूप में इस से थोड़ा बहुत सम्बन्धित रहा हूं, किन्तु आप लोगों से कुछ शब्द कह सकने का भी आज सौभाग्य से मुझे अवसर मिला है। युवक आन्दोलन के महत्त्व को आप लोग अच्छी तरह समझते हैं। यह सभी जानते हैं कि नौजवान राष्ट्र की रीढ़ के समान होते हैं। उनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा राष्ट्र का पहला कर्तव्य है। इसलिए शिक्षा को उन्नत करने और स्वाधीन भारत की आवश्यकताओं के अनुसार उसकी व्यवस्था करने के लिये जब नए कार्यक्रम बनाने का समय आया, स्वाभाविक रूप से इस प्रकार के समारोह की भी व्यवस्था की गई, जिस में देश के विभिन्न भागों में स्थित विश्वविद्यालयों से युवक और युवतियां भाग ले सकें और कुछ दिन मिलजुल कर एक ही जगह रह सकें। इस प्रकार एक दूसरे को जानना, एक दूसरे को विचारधारा और रहन-सहन को समझना और अनेक प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना एक बहुत बड़ी बात है। इसलिये शिक्षा ही नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस समारोह का मूल्य बहुत अधिक है।

हमारे विद्यार्थी समाज में यह युवक समारोह लोकप्रिय हो रहा है और इसमें हिस्सा लेने वालों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। युवक स्वभावतः नई प्रवृत्तियों से प्रेरित होते हैं और नई स्थितियों तथा इस तरह के अवसरों का स्वागत करते हैं। इस प्रकार उनका मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि उनकी जानकारी में वृद्धि भी होती है और वे बहुत सी नई बातें सीखते हैं। आप लोगों का ध्यान उन नाटकों, लोक-गीतों और सामूहिक आयोजनों की तरफ़ होगा जिनमें आपको आगामी दिनों में भाग लेना है। ऐसे अवसर पर आप से एक गम्भीर विषय पर बात करनी कहां तक उचित होगी, मैं इस दुविधा में पड़ा हूं। फिर सोचता हूं कि आपने जिस स्नेह और आदर की भावना से मेरा स्वागत किया है, हो सकता है आप मुझ से कुछ सुनने की भी आशा रखते हों। ऐसा अवसर मेरे लिये भी शायद बार बार न आए। इसलिये इस समय आप से दो शब्द कहने के लोभ का मैं संवरण नहीं कर सकता।

मैं आपको यह परामर्श देना चाहता हूं कि अपने जीवन में आप उदात्त दृष्टिकोण को अपनायें' अर्थात् मन से और विचार से उदार होने की चेष्टा करें। ऐसा करना हमारे देश की परम्परागत विचारधारा के अनुकूल तो है ही, आज की परिस्थितियों और इस राष्ट्र की भावी उन्नति का भी यही तकाजा है। आप सब जानते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं कि भारत एक प्राचीन देश है। अपने हजारों साल के इतिहास में उसने अनेकों उतार चढ़ाव देखे हैं, संस्कृतियों के उत्थान पतन देखे हैं, छोटी बड़ी सल्तनतों को बनते बिगड़ते देखा है और स्वयं देश की भौगोलिक सीमाओं को फैलते और सिकुड़ते हुए भी देखा है। फिर भी ईश्वर की कृपा से भारत राष्ट्र आज भी जीवित है, जबकि बहुत से प्राचीन देशों का अस्तित्व केवल इतिहास की पुस्तकों में ही रह गया है। इसका प्रमुख कारण यही जान पड़ता है कि हमारी विचारधारा में एक विशेष बल था और जितने भी परिवर्तन यहां घटे हैं उनमें एक सामान्य सूत्र था। वह सूत्र उदारता और सहिष्णुता की भावना थी। इस भावना के बल पर ही हम अपनी विचारधारा में नए विचार खपा पाए हैं और नवीन तत्वों को अपनाने में समर्थ हो सके हैं। उसी ने हमें जीवित रखा और उसी के कारण इस राष्ट्र को एकता का आधार मिल सका है।

कुछ भी हो, बहुत सी मंजिलें तय करके भारत अब एक स्वतन्त्र गणराज्य बन चुका है। अपने हजारों साल के इतिहास में शायद पहली बार यह देश एक शासन, एक विधान और एक झण्डे तले आया है। हम लोगों ने, जो देश के बड़े-बूढ़े अथवा नेता कहे जा सकते हैं, भारतीय एकता को संविधान और विधि के सांचे में ढाल दिया है। अब इस एकता को व्यवहार की कुठाली में ढालना बहुत हद तक आप नौजवानों का काम है। इस कार्य को आप कैसे सम्पन्न करें, इसकी ओर मैंने पहले ही संकेत कर दिया है। हमारे परम्परागत उदात्त दृष्टिकोण को अपना कर ही आप ऐसा कर सकते हैं। संकीर्ण विचारों को छोड़, समता के सिद्धान्त को जीवन में उतार, जाति-पाति के भेदभाव से ऊपर उठ और प्रान्तीयता की दूषित भावना का परित्याग कर आप इस दृष्टिकोण को अपना सकते हैं। आपका यह सौभाग्य है कि आप स्वाधीन भारत में शिक्षण पा रहे हैं। हम लोग जिन्होंने विदेशियों द्वारा संचालित संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की थी, आप से ईर्ष्या कर सकते हैं।

आप देख रहे हैं कि देश में चारों तरफ निर्माण सम्बन्धी काम हो रहे हैं। बांध बन रहे हैं, बड़े बड़े उद्योग स्थापित हो रहे हैं, छोटे उद्योगों को फिर से जीवित किया जा रहा है, देहात में रहने वाले लोगों को नई सुविधायें दी जा रही हैं और आर्थिक दृष्टि से देश को उन्नत करने का हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है। इस महान् प्रयास में निश्चय ही आप हाथ बटा सकते हैं। यदि प्रत्यक्ष रूप से शहरों या देहातों में कुछ काम करके आप ऐसा कर सकें तो बहुत अच्छा है। नहीं तो कम से कम स्वयं उदार बन कर और उदारता के वातावरण को प्रोत्साहन देकर भी आप अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। आप इस बात को न भूलें कि देर सवेर सभी ज़िम्मेदारियां आपको संभालनी हैं। आप ही भावी राष्ट्र हैं और देश के निर्माण का भार आप ही को वहन करना है। जो अवसर हम लोगों को मिला उसमें हम ने भारत को समृद्धिशाली बनाने का यत्न किया है, किन्तु निःसन्देह हमारी दृष्टि में राष्ट्र की सब से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मूल्यवान् सम्पत्ति आप हैं। इस लिये मैं आप से अनुरोध करूंगा कि आप इस प्राचीन राष्ट्र की चिरसंचित आस्थाओं पर दृढ़ रहते हुए आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल आचरण करें। आपके सामने सद्भावना, समानता, सहिष्णुता, देशभक्ति के आदर्श हैं। इन आदर्शों को चरितार्थ करना और इन्हें अपने जीवन में उतारना आप लोगों का काम है।

जो कुछ आप से मैंने कहा, व्यापक अर्थों में उसका अभिप्राय चरित्र-निर्माण से है। कोई भी काम मनुष्य चरित्र के बिना सम्पन्न नहीं कर सकता, चाहे वह निजी हो अथवा राष्ट्र का हो। इस चरित्र का निर्माण केवल पुस्तकों के पढ़ने से या अच्छे शब्दों को सुनने से नहीं होता। उसके लिए एक ही उपाय है और वह है त्याग और निष्ठा के साथ छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम को अंजाम देना और सचाई के साथ उसे पूरा करना। जहां कहीं भी आवश्यक हो निजी स्वार्थ को दबाकर सेवा भावना से तत्पर होकर समाज कल्याण के काम में लग जाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब आपके जीवन में मनसा, वचसा और कर्मणा सचाई हो, अर्थात् आपके विचार, व्यवहार और आचार भीतर से और बाहर से समान हों। कठिनाइयों के रहते हुए भी हमारा देश शिक्षा पर जो धन खर्च कर रहा है और विद्यार्थियों को नई सुविधायें देने की बात जो सरकार सोच रही है, यदि उन से पूरा लाभ उठाकर आप चरित्रवान् बनें और जीवन में उदार तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनायें. तो मैं समझूँगा कि हमारा युवक समाज उन सब सुविधाओं का अधिकारी है। इस महान् कार्य में आपको ऐसे समारोह से बहुत सहायता मिलेगी जिसका आज उद्घाटन किया जा रहा है। ऐसे अवसरों पर आपको दूसरे प्रदेशों के विद्यार्थियों को जानने और समझने का यत्न करना चाहिए और पारस्परिक सद्भावना और मैत्री को दृढ़ बनाना चाहिए। ऐसे ही समारोहों में आप वे संस्कार ग्रहण कर सकते हैं जिन पर भावी राष्ट्र की महत्ता की नीव रखी जाने वाली है।

मैं इस समारोह की सफलता चाहता हूं और मेरी यह कामना है कि आप इससे पूर्ण लाभ उठाएं और भावी जीवन में सुख-समृद्धि के भागी बनें।

अब मैं सहर्ष इस समारोह का उद्घाटन करता हूं।

परमेश्वर के दर्शनों के लिये उत्कण्ठा—

हे बन्धुगण ! पवित्र स्वरूप परमात्मा के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित हो जाओ और भक्ति में मग्न हो कर उसके दिव्य स्वरूप के दर्शन करते हुए संसार के सब विकारों को दूर कर दो। उन पवित्र दर्शनों से सब विघ्नों का नाश हो कर तुम्हारा आत्मा पवित्र हो सकता है।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश, भाग ३ पृ० ४५।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मार्ग प्रदर्शक ऋषि दयानन्द

श्री माननीय सरदार वल्लभभाई जी पटेल

आर्य सज्जनों के समान ही मैं भी स्वामी दयानन्द का भक्त हूं। हिन्दूसमाज की जो त्रुटियां कुरीतियां अज्ञान और भ्रम थे उन सब के विरुद्ध स्वामी जी ने धर्म युद्ध शुरू किया था। अगर स्वामी जी न होते तो आज हिन्दू समाज की क्या हालत हुई होती, इसकी कल्पना कीजिए। स्वामी जी के आने के बाद तो आर्य समाज और दूसरी संसार—सुधारक संस्थाएं स्थापित हो गई हैं। परन्तु जब स्वामी जी ने अपना झंडा उठाया था उस वक्त तो सब ओर कूड़ा-कर्कट ही था। भारत अज्ञान की नींद में सोया पड़ा था।

उस समय सर्वथा अन्धकार फैला हुआ था। उस में स्वामी जी ने अपना जीवन प्रकाश फेंकना शुरू किया। आरम्भ में हिन्दू समाज इस को सहन न कर सका। कई वार स्वामी जी की जान लेने का प्रयत्न किया गया। इन सब मुसीबतों का मुकाबिला स्वामी जी ने हिम्मत से किया था। स्वामी जी का जीवन आदर्श ब्रह्मचर्य का प्रतीक था। स्वामी जी में ब्रह्मचर्य का तेज पूर्णता को प्राप्त था। हिन्दू समाज को जाग्रत करने के लिए उन्होंने अपने घर-बार कुटुम्ब-कबीले सब को त्याग दिया। रीछ चीतों युक्त भयंकर बनों में अंधेरी रातों में, बर्फीले पर्वतों और नदियों में भटकते हुए अन्त में उन्होंने एक गुरु को पा लिया और बड़ी लगन के साथ गुरु की सेवा करते हुए परिश्रम से विद्या प्राप्त की। इस अवसर पर उन्होंने जिस महान् तप और त्याग का परिचय दिया वह उन जैसे आदर्श व्यक्ति का ही काम था।

विद्या समाप्ति के बाद गुरु-दक्षिणा में उन्होंने अपनी भेंट देश के उद्धार के लिए अर्पण कर दी, चारों ओर उनके प्रचार की धूम मच गई। राज दरबारों में उस समय बहुत बुराइयां थीं,स्वामी जी ने उनमें से बहुतों को दूर किया। आज देश जिस राष्ट्रोन्नति के मार्ग पर जा रहा है, वह स्वामी जी का ही बताया हुआ है। वे स्वदेशी के महान् प्रचारक थे, उन का सारा जीवन स्वदेश प्रेम से भरा हुआ था। अस्पृश्यता निवारण के लिए सनातनी लोग स्वामी जी से बहुत बिगड़ गये थे। अगर उस वक्त इस महान् कार्य को स्वामी जी ने शुरू न किया होता तो कौन कह सकता है कि आज हिन्दू समाज की संख्या कितनी कम हो गई होती। आज राष्ट्रीय शिक्षा के लिये बहुत अनुकूल परिस्थिति है, परन्तु स्वामी जी ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का आंदोलन बड़ी विकट परिस्थिति में किया था। स्वामी जी के सिवाय ऐसा कौन कर सकता था?

आज आर्यसमाज का एक विस्तृत समाज है, और राष्ट्र में कुछ परिवर्तन भी हुआ है। राष्ट्र निर्माण की ऐसी एक भी प्रवृत्ति नहीं है; जिस में स्वामी जी के विचारों ने मार्ग-प्रदर्शन न किया हो। स्वामी जी को अनेक शास्त्रार्थ और वाद-विवाद करने पड़े। विरोधी लोग जब स्वामी जी को हरा नहीं सकते थे, तब वे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लोग हुल्लड़ मचाते थे। विद्वत्ता में स्वामी जी का मुकाबिला कोई नहीं कर सकता था।

संसारोत्पत्ति के समय से यह नियम हो चुका है कि समाज पर जब-जब अतिशय, अत्याचार और जुल्म होते हैं, तब-तब दयानन्द जैसी महान् विभूतियां उत्पन्न होती हैं। स्वामी जी गुजरात काठियावाड़ में पैदा हुए थे, लेकिन महापुरुषों की प्रथम कद्र दूर देशों में हुआ करती है। विधर्मी लोग भी स्वामी जी की तारीफ करते थे, और उनकी विद्वत्ता और महत्ता को मानने लगे हैं। सिर्फ हिन्दू धर्म ही की नहीं वरन् सब धर्मों की बुराइयों का विरोध करने की शक्ति स्वामी जी रखते थे।

स्वामी जी के पुनीत स्मरण से हम अपने को धन्य समझते हैं। कांग्रेस महासभा में हजारों की संख्या में आर्य समाजी भाई काम कर रहे हैं, वे लोग स्वामी जी के "भारतोद्धार" का अधूरा काम पूरा कर रहे हैं। लेकिन सिर्फ बातों से कुछ नहीं होगा। हमें स्वामी जी के उपदेशों और आदर्शों के अनुसार कार्य करना होगा। हमें आपस में झगड़ा नहीं करना है। जिस सच्चाई को जायदाद के रूप में स्वामी जी हमें दे गए हैं,उस पर हमें अमल करना होगा।

(मान्य सरदार पटेल की १६ दिसम्बर की निधन तिथि के उपलक्ष्य में संकलित)

—

स्वामी श्रद्धानन्द जी का पुण्यस्मरण स्फूर्तिदायक

यह पुरानी रीति है कि अपने महात्माओं की स्मृति से लाभ उठाएं। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जिस निष्ठा, प्रेम और दृढ़तापूर्वक अपने धर्म को सारी ज़िन्दगी भर निभाया वह हम सब के लिये एक अत्यन्त शुभ और उत्साहोत्पादक सन्देश है। मैं आशा करता हूं कि हम उन के पद चिन्हों पर चल कर उन की स्मृति को कायम रक्खेंगे और देश सेवा में प्रवृत्त हो कर उस काम को पूरा करेंगे जिसको वे पूरा न कर सके। —राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी

स्वामी श्रद्धानन्द जी की अगाध श्रद्धा—

श्रद्धानन्द जी की भारत को देन उनकी सत्य में अगाध श्रद्धा है। श्रद्धानन्द यह नाम ही उनकी उस भावना का परिचायक है। वे नित्य प्रति श्रद्धावान् थे और उसी में आनन्द मनाते थे। उन के लिये सत्य और जीवन एक हो गये थे। सत्य ही जीवन था और जीवन ही सत्य था। उन की मृत्यु उन के निर्भीक, अनथक प्रयत्नों के अमर चित्रों को आलोकित करती हुई एक प्रकाश किरण की तरह हमारे सामने आती है। —कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्यरामदेवस्मरणम्

(१)

धर्मप्रचारे सततं प्रसक्तं
देवेशभक्तं विषयेष्वसक्तम् ।
विद्याप्रसारेऽतिशयानुरक्तं
श्रीरामदेवं विनयेन नौमि ।।

(२)

यज्जीवितं वै सरलं नितान्तं
किन्तूच्चभावैर्नितरां सुपूर्णम् ।
कुलोन्नतावर्पितचित्तवित्तं
श्री रामदेवं विनयेन नौमि ।।

(३)

यस्य स्मृतिःसाधु चमत्कृतासीद
धर्मे च निष्ठा सततं विकम्पा ।
यद्योग्यता विज्ञजनप्रशस्ता
श्रीरामदेवं तमहं नमामि ।।

(४)

सम्पाद्य यो वैदिकमेगज़ीन-
संज्ञं सुपत्रं प्रथितोऽत्रलोके ।
भक्तोऽतुलो वैदिकसंस्कृतेर्यः,
श्रीरामदेवं तमहं नौमि ।।

(५)

वक्तृत्वशक्तिः किलयस्य भव्या
धाराप्रवाहेण विमोहयन्ती ।
तर्कस्य तर्कैर्निशितोऽति दिव्यः,
श्रीरामदेवं तमहं नमामि ।।

(६)

वीरोऽमोघप्रभावः, परहितनिरतस्त्यागमूर्तिस्तपस्वी
कन्यानामप्यभीक्ष्णं सततहितकरे, शिक्षणे दत्त चित्तः ।
लोकेह्यादर्शभूतं गुरुकुलविटपं स्वीयरक्तेन सिञ्चन्
आचार्यो रामदेवो गुणगणजलधिः कस्य नाभ्यर्चनीयः?।।

—**धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महात्मा जी के कुछ पत्र

श्री पं० इन्द्र जी, विद्यावाचस्पति

मेरे नाम महात्मा गांधी के तीन पत्र गुरुकुल पत्रिका के गत अंक में प्रकाशित हुए थे। आज कुछ और पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। ये सभी अपने-अपने समय की परिस्थिति और मनोवृत्ति के सूचक हैं।

भोपाल रियासत में हिन्दुओं पर अत्याचार होने के कुछ समाचार आये थे। मैंने उनके निवारण के उपाय के संबध में परामर्श लेने के लिये महात्मा जी को एक पत्र लिखा, उसका महात्मा जी ने यह उत्तर दिया।

चि० इन्द्र,

तुमारा खत मुझे मिला है। भोपाल के बारे में मैं सविस्तर हकीकत चाहता हूं। अत्याचारों की फेरिस्त अगर मिल सके तो मैं इस बारे में जो कुछ हो सकता है, तुरन्त करूंगा।

मोहनदास के आशीर्वाद।

आ० शु० १३।

रायसाहब का पत्र आ गया है। मौलाना साहब के खत या तार की राह देखता हूं (रायसाहब से यहां अभिप्राय राय केदारनाथ जी से है)

(५)

महात्मा गान्धी की ओर से उनके मन्त्री श्री महादेव देसाई ने १९२८ में मुझे निम्नलिखित पत्र लिखा।

The Ashram
Sabarmati.
March 28,

My Dear Indra ji,

I am sending herewith some things received from a correspondent. What have you to say regarding the statements made therein? Are there really any editions of the Satyarth prakash which do not contain chapter about Islam? Was the chapter written or inserted after the death of the maharshi; and if so by whom?

Gandhi ji wants your detailed reply, and thinks only you can enlighten him in this matter. What is this rioting in Delhi. Newspapers accounts are meagre. We read something (in ....). and have since heard nothing more.

S. P. Please return enclosure with your reply.

Yours sincerely
Mahadev Desai.

उस पत्र का मैंने निम्नलिखित उत्तर दिया।

प्रियवर महादेव जी,

आपका पत्र मिला। उसके सम्बन्ध में विस्तृत उत्तर लिखता हूं। श्री स्वामी दयानन्द जी ने अपने हाथ से अपना कोई भी ग्रन्थ नहीं लिखा। स्वामी जी लिखाया करते थे, जिसे पण्डित लोग लिखते रहते थे। अन्त में स्वामी जी हस्ताक्षर कर देते थे। कई वार ऐसा भी हुआ कि पण्डितों ने स्वामी जी के आशय के विरुद्ध लिख दिया। स्वामी जी ने उसी समय यदि नहीं देखा, और पीछे से उनका ध्यान उधर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खेंचा गया तो वह प्रतिवाद कर देते थे। सत्यार्थ-प्रकाश के बारे में ऐसा ही हुआ। सत्यार्थ-प्रकाश का पहला संस्करण १८७५ में निकला। उसमें दस समुल्लास थे। उसमें कोई भी खंडनात्मक भाग नहीं था केवल अपने मत का प्रतिपादन था। उसके छप जाने पर स्वामी जी ने आश्चर्य से देखा कि उसमें मांसभक्षण और मृतक श्राद्ध का मण्डन भी किया गया था। तब स्वामी जी ने एक विज्ञापन निकाला,जिसमें सर्वसाधारण को सूचना दी कि सत्यार्थप्रकाश का पहला संस्करण ठीक नहीं है। उसे प्रामाणिक न समझा जावे।

तब दूसरे संस्करण की तैयारी शुरू हुई। १८८२ में दूसरा संस्करण लिखा जा चुका था। श्री स्वामी जी ने जो भूमिका और अनुभूमिका लिखी है, उनके नीचे १८८२ ई० दिया गया है। उनमें १४ के १४ समुल्लासों की ओर निर्देश है। उन से पता चलता है कि वर्तमान सत्यार्थप्रकाश के १४ समुल्लास स्वामी जी के सामने लिखे जा चुके थे।

१८८३ ई० के अक्तूबर मास में स्वामी जी का देहांत हुआ। उस समय सत्यार्थप्रकाश का दूसरा संस्करण छप रहा था। ११ समुल्लास छप चुके थे, तीन शेष थे। वह तीन पीछे से छपे। इस प्रकार जहां यह सत्य है कि १४ वां समुल्लास स्वामी जी के पीछे मुद्रित हुआ, वहां यह भी ठीक प्रतीत होता है कि वह समुल्लास स्वामी जी के सामने लिखा जा चुका था।

सत्यार्थप्रकाश के १३ वें समुल्लास में ईसाइयों और १४ वें में मुसलमानों का खण्डन है। दोनों समुल्लासों की भूमिकाओं में स्वामी जी ने लिख दिया था कि इन मतों के विरुद्ध जो कुछ लिखा गया है, बाइबिल और कुरान के उन अनुवादों के आधार पर लिखा गया है, जो उस समय मिल सके। साथ ही स्वामी जी ने यह भी लिखा है कि यदि कोई आलोचक अनुवाद की भूल दरशा देगा तो स्वीकार कर ली जाएगी। अब भी यदि यह सिद्ध हो जाय कि सत्यार्थप्रकाश में कुरान की आयतों का जो अनुवाद दिया गया है, वह अशुद्ध है तो आर्य समाज को उसके बदलने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। परन्तु जहां तक मुझे मालूम है, आज तक भी उस अनुवाद की शुद्धता पर आक्षेप नहीं किया गया, उसकी आलोचना पर

कया गया है। वह आलोचना स्वामी जी की लिखाई हुई है, इस कारण आर्यसमाज को सत्यार्थप्रकाश में से उसके निकालने का कोई अधिकार नहीं है। उस आलोचना से नितान्त असंतुष्ट समालोचक भी यदि न्याय की दृष्टि से देखेगा तो उसे मानना पड़ेगा कि वह समालोचना की सीमा से बढ़ी हुई नहीं है। टामसपेन या Rationalism के लेखकों ने ईसाइयत की जो आलोचना की है, सत्यार्थप्रकाश की आलोचना उससे कहीं नर्म है। सरकार का या कांग्रेस का सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में दखल लाभदायक न होगा। मेरी तुच्छ सम्मति में महात्मा जी आर्यसमाज के विषय में कोई दखल न देंगे तो उत्तम होगा। आर्यसमाज के अन्दर ऐसी Movement हो रही है,जो स्वयं उसकी तीव्रताको कम कर रही है,महात्मा जी के लेख ने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गत वर्ष उसे दबा दिया था, अब भी ऐसा ही होने का खतरा है। महात्मा जी अपने निजू असर से व्यक्तियों द्वारा आर्यसमाज में जितना परिवर्तन पैदा कर सकते हैं, उतना लिख कर नहीं कर सकेंगे। मेरी ओर से महात्मा जी के चरणों में सादर नमस्कार दीजिये।

दिल्ली का नया झगड़ा कुछ पुरुषों का आपस का झगड़ा था, प्रसन्नता की बात है कि कि इसे हिन्दू मुसलमानों ने अपना झगड़ा नहीं बनाया।

आपका
इन्द्र

(६)

मैंने अर्जुन के शिवा जी अङ्क के लिये महात्मा जी से लेख मांगा, तो महात्मा जी ने जो उत्तर दिया वह अपने ही ढंग का है।

चि० इन्द्र,

तुम्हारा खत मिला है। मेरे क्षेत्र से बाहर मुझ को ले जाना चाहते हो? शिवा जी महाराज के बारे में मैं क्या लिख सकता हूं। मुझे कहते हुए शर्म आता है कि जो कुछ मैंने विद्यार्थी समय में पढ़ा है उससे ज्यादा कुछ भी उनके लिये मैं नहीं जानता।

आ० शु० ६। मोहनदास गांधी के आशीर्वाद

(७)

जहां तक मुझे स्मरण है, दिल्ली के आर्य महासम्मेलन के अवसर पर सन्देश मांगने पर महात्मा जी ने लिखा था,

चि० इन्द्र,

इस समय प्रत्येक उत्सव पर मैं तो एक ही प्रार्थना करता हूं, कि हे ईश्वर हिन्दू और मसलमान दोनों के हृदयों को पलटा दे। उसमें से जहर निकाल दे। प्रेम भर दे। सब को समझा दे, देश के गरीबों के लिये वे सूत कातें, हिन्दुओं के दिलों को साफ कर दे और अस्पृश्यता का नाश कर।

और क्या भेजूँ? मेरी उम्मेद है, तुम्हारा प्रयत्न सफल होगा।

आ० शु० १३. मोहनदास के आशीर्वाद

(८)

जब महात्मा जी यरवदा जेल से अन्तिम वार छूट कर जुहू में आराम कर रहे थे, तब मैंने उन्हें लिखा कि मैं परिवार सहित आप के दर्शनों को जुहू आना चाहता हूं। कब आऊं?

महात्मा जी का संक्षिप्त उत्तर नीचे दिया जाता है।

चि० इन्द्र,

दिल चाहे जब आओ, लेकिन आजकल की मुसाफिरी की कठिनाई में सिर्फ देखने के लिये तकलीफ क्यों उठाना? मेरा मौन चलता है, २६ तारीख को खुलेगा।

जुहू बापू के आशीर्वाद।
२३. ५. ४४।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परम श्रद्धेय स्वामिश्रद्धानन्दानां पुण्यस्मरणम्

विद्याभास्करः पं० देवदत्त शर्मोपाध्यायः, काशी

(१)

यतिः श्रद्धानन्दो जगति जनवन्द्यो मुनिवरः
व्यधात् सोऽयं श्रीमान्, गुरुकुलमदः संस्कृतिपदम् ।
तदीयश्लाघायां, विलसतु मदीयोऽञ्जलिरयं,
गुणैः पुष्पैः पूर्णः बुधवर ! तदीयैर्ननु महान् ॥

(२)

न भीतिस्तस्यासीत् कठिनतमकृत्येऽपि च कदा
कृतेः पूर्ति कृत्वा, ह्यलभतसुशान्ति यतिवरः ।
अतः शुभ्रा कीर्तिः, क्षितितलमतिक्रम्य च दिवं
गता नूनं सद्यः, ननु भवति चित्रं मतिमताम् ॥

(३)

प्रचारे वेदानां, त्वभवदतिसक्तोभुवि मुदा
ऋषीणां शिक्षा याः, गुणिगणगुणानांसुमहताम् ।
मुनीनां शास्त्राणां, श्रुतिसदुपदेशामृतजुषां
यतिः श्रद्धानन्दो जगति जनवन्द्यो मुनिवरः ॥

(४)

स्वराज्यसंग्रामविधौ समेषाम्
आसीत् पुरस्ताद् विबुधाग्रगण्यः ।
ऋषिप्रसूनां च गुरोः कुलानाम्
आसीत् प्रणेता प्रथमो जनानाम् ॥

(५)

गुणी यमी धैर्ययुतो वदान्यः
भक्तो दयानन्दगुरोर्महर्षेः ।
नीतौ पटीयान् सुमतौ महीयान्
श्रद्धावतारो जगतीतलेऽभूत् ॥

(६)

आर्यस्य तस्यैव महात्मनश्च
श्रद्धागुणानां परिकीर्तनेन ।
श्रद्धांजलीनां च समर्पणेन
कुर्मः पवित्रां मनसः प्रवृत्तिम् ॥

(७)

वेदानां विलयं विलोक्य विपुलं, हित्वा स्वसौख्यं मुदा
प्रख्यातं भुवि कांगड़ीगुरुकुल, संस्थापितं यस्य च ।
श्रद्धानन्दयतेः सुकीर्तिकथनैः, श्रद्धाप्रसूनाञ्जलिः
प्राज्ञानां मनसो मुदं वितनुयात् प्रद्योतयेद् भारतम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी के कुछ स्मरणीय वचन

धर्मोपदेशादि से संकलित

(१)

परमात्मा के दर्शन के लिये आत्मा की स्वच्छता और अत्यन्त पवित्रता और उच्चता आवश्यक है।

(२)

चित्त की वृत्तियों को दुष्ट भाव से रोका जाए, पाप का मैल मन को किसी प्रकार मैला न करे। अशुभ कामनाएं और खोटे विकल्प मन में कदापि पैदा न हों। तन मन से ईश्वर परायण हों तब यह गति हो सकती है कि संसार के सारे पदार्थ हमें भय के देने वाले न हों।

(३)

प्यारे भ्रातृगण ! आओ दोनों समय नित्य-प्रति सन्ध्या करते हुए ईश्वर से याचना करें और उस की सत्ता और दया से योग्य बनने का यत्न करें कि हमारे मन वाणी और कर्म सब सत्य ही हों। हमारे इस प्रकार के कर्म सत्य ही हों। सर्वदा सत्य का चिन्तन करें। वाणी द्वारा सत्य ही प्रकाशित करें और कर्मों में भी सत्य का ही पालन करें।

(४)

आओ सुख की अभिलाषा करने वालो ! परमात्मा की आज्ञा मानते हुए शुभ कर्म में प्रवृत्त होओ। सदा भले पुरुषों की संगति करते हुए ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित हो कर अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करो ताकि परमानन्द की प्राप्ति हो।

(५)

अन्तर की दृढ़ता, हिम्मत व पुरुषार्थ, नेकनियती व सदाचार ही समस्त सम्पत्तियों और ऐश्वर्य का कारण है। मनुष्य की शानशौकत, मानप्रतिष्ठा, केवल पुरुषार्थ, तप और ज्ञान प्राप्ति पर निर्भर है।

(६)

जो मनुष्य सत्यवादी व सदाचारी है और तन मन से काम में लगा रहे दुनिया की सम्पत्ति और मान उसी का है।

(७)

यह शरीर व आत्मा निकम्मा न रहना चाहिए। गन्दा व अपवित्र न रहना चाहिये। सत्य और सदाचार को कभी हाथ से न जाने देना चाहिये क्यों कि आनन्द इसी में है। उस परमात्मा की इच्छा इसी में है! यही सत्य मार्ग का उपदेश है। यही स्वर्गधाम है।

(८)

बालक हो वा युवा अथवा वृद्ध प्रत्येक को समय है कि हर समय अपने जीवन को पलटा दे कर प्रभु की शरण में आन पड़े क्यों कि वहां से किसी विश्वासी पुरुष को कभी निराश लौटे हुए किसी ने नहीं देखा।

(९)

जब तक अपवित्रता पृथक् नहीं होती और पवित्रता का राज्य अन्तः करण के अन्दर नहीं आता तब तक दुःख दूर नहीं हो सकते।

(१०)

परमात्मा के पवित्र दर्शनों से सब विघ्नों का नाश हो कर तुम्हारी आत्मा पवित्र हो सकती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(११)

उस परम ब्रह्म परमात्मा को ढूंढना और जो सब का स्वामी है उसी को अपना स्वामी समझ कर उस की शरण में आना यही मनुष्य का धर्म है।

(१२)

हम हैं न अन्नमय कोष, न मनोमय कोष और न ज्ञानेन्द्रियां, प्रत्युत हैं हम एक सूक्ष्म चेतन सत्ता। हमें अपने में ही अपने प्रभु को खोजना है अतएव हम अपने प्रभु के ध्यान में कैसे निमग्न हों जब तक कि हम प्रकृति का ध्यान न छोड़ देवें। क्या हम अपने मनुष्य जीवन को यों ही बीतने दें और अपने प्रभु को हृदयङ्गम न करें? धर्मोपदेश भाग १ पृ० ३।

(१३)

विद्या विना आचरण के बजाय सुख के दुःख का साधन बन जाती है। इसलिये अगर शक्तिमान् प्रकाश स्वरूप, परम रक्षक परमात्मा तक पहुंचना है तो शक्ति, प्रकाश और रक्षा धर्म को अपने अन्दर धारण करो।

धर्मोपदेश भाग १ पृ० ६।

(१४)

स्वार्थ सिद्धि के लिये कही हुई प्रियवाणी संसार में हलचल मचा देती है। परन्तु वही प्रियवाणी जब संसार के उपकार के लिये बोली जाती है तो अनगिनत मनुष्यों के लिये शान्ति का कारण होती है। धर्मोपदेश भाग १ पृ. १३।

(१५)

वाणी के तप के विना शारीरिक तप की सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिये वाणी को पवित्र करो। उसे सत्य से माँज कर प्रिय और हित-कारी बनाओ जिससे संसार के अन्दर सुख और शान्ति का राज्य आए और हम सब प्रेम पूर्वक एक दूसरे के आत्मिक बल को बढ़ाते हुए मुक्ति धाम में परमानन्द लाभ करने के अधिकारी बन सकें। धर्मोपदेश भाग १ पृ० १५।

मेरे पिता

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की नवीन कृति

इस ग्रन्थ में आधुनिक भारत के यशस्वी निर्माता महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) के रेखा-चित्र संस्मरणों के आधार पर अङ्कित किये गये हैं। इन स्मृतिचित्रों में स्वामी जी के चरित्र की विशेषताएं बड़े प्रभावोत्पादक रूप में प्रकाशित हो उठी हैं। इन चित्रों में गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भिक विकास की मनोहर कहानी चल-चित्रों की भान्ति आखों के आगे उतरने लगती है। लोकवन्द्य स्वामी जी के प्रभावशाली जीवन के उतराव-चढ़ाव की यह मनोरम कथा पढ़ते ही बनती है। पुस्तक में स्वामी जी के युग के भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की प्रवृत्तियों आन्दोलनों और गतिविधियों का सन्तुलित विवेचन बड़ी मनोरम शैली में अंकित हुआ है। पुस्तक के सभी प्रकरण उपन्यास से भी अधिक रोचक, आकर्षक और शिक्षाप्रद है।

संस्मरणों के प्रकाश और छाया में अंकित किये गये पुण्यश्लोक स्वामी जी के ये रेखाचित्र हिन्दी भाषा के संस्मरण साहित्य में निश्चित ही गौरवपूर्ण स्थान पायेंगे। लब्धप्रतिष्ठ चरित्रकार की कुशल लेखनी से प्रसूत इस पावन प्रसाद का आस्वादन कीजिये और अन्यों को कराइये। इस में विलम्ब न कीजिए।

मूल्य १ प्रति ४)। मिलने का पता--वाचस्पति पुस्तक भंडार, २६ जवाहरनगर देहली ६।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक की २ प्रतियां आनी चाहिएं)

गणतन्त्र राज्य स्थिर कैसे रह सकता है?

लेखक : आचार्य पं० चूड़ामणि जी शास्त्री शाण्डिल्य, प्रकाशक—पं० चन्द्रकान्त जी शास्त्री बाली ५५१ गली बैल साहेब कश्मीरी गेट, देहली मूल्य १) ।

आचार्य चूड़ामणि जी शास्त्री से गुरुकुल पत्रिका के ग्राहक उन के विचारोत्तेजक लेखों द्वारा परिचित हो चुके हैं। वे भारत के उन सुयोग्य संस्कृत विद्वानों में से हैं जिन्होंने अपने जीवन को जनता की सेवार्थ समर्पित कर दिया है। वे मुलतान सनातन धर्म संस्कृत कालेज के आचार्य थे किन्तु उन के विचार अत्यधिक उदार और राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं। उन्होंने 'भारतीय धर्मशास्त्र' की सन् १९४७ में राष्ट्र को उन्नत बनाने के उद्देश्य से रचना प्रारम्भ की जो सन् १९४९ में १८ प्रकरणों में श्लोकबद्ध रूप में तैयार हो गया। उस के प्रथम ९ प्रकरण भाषानुवाद सहित भारतीय संस्कृति सम्मेलन की ओर से प्रकाशित हो चुके हैं शेष जो प्रकरण अर्थाभाव से अब तक नहीं छप सके थे प्रस्तुत गणतन्त्र राज्य' कैसे स्थिर रह सकता है ? उन में से है। इस में राज्य असाम्प्रदायिक हो, राष्ट्रपति आदि शासक कैसे हों ? शासकों को कौन-कौन दोष छोड़ने आवश्यक हैं? शासकों में किन गुणों का होना आवश्यक है? कर का ग्रहण कैसे करना चाहिये ? हमारे राजदूत कैसे हों ? राज्य में गुप्तचर कैसे हों ? विश्वास कहां और कितना हो ? हमारी नीति कैसे हो ? छः गुणों में कब, किस का प्रयोग हो ? सम्पादकों का सन्मान हो, स्वामी को सेवक का पूरा ध्यान हो। भारतीय संस्कृति की रक्षा आवश्यक इत्यादि गणराज्य की स्थिरता सम्पादक तीस तत्त्वों का अत्युत्तम निरूपण किया गया है। इससे मान्य शास्त्री जी की नीतिशास्त्र विषयक अगाध विद्वत्ता, उज्ज्वल राष्ट्र भक्ति और विवेचना शक्ति का परिचय मिलता है। यह पुस्तक इस योग्य है कि समस्त राज्याधिकारियों के हाथों में निःसंकोच दी जा सके। हम इस पुस्तक का विशेष प्रचार चाहते हैं।

साप्ताहिक वेंकटेश्वर समाचार का मानव धर्म विशेषाङ्क—

संपादक—पं० देवेन्द्र जी शर्मा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ४, पृष्ठ संख्या १६२ मूल्य १) ।

साप्ताहिक वेंक्टेश्वर समाचार एक बहुत पुराना प्रसिद्ध पत्र है जिसका दीपावली के अवसर पर प्रकाशित यह मानवधर्म विशेषांक हमारे सन्मुख है। इस विशेषांक में हमारे अपने विश्वमानवधर्म विषयक लेख के अतिरिक्त पं. विश्वबन्धु जी शास्त्री एम.ए., डा.वासुदेवशरण जी अग्रवाल, आचार्य नरदेव जी वेदतीर्थ आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री इत्यादि आर्य विद्वानों के भी विश्वमानव धर्म, विश्वशान्ति इत्यादि विषयक विद्वत्तापूर्ण लेख हैं तथा पं. हरिशङ्कर जी शर्मा आदि की उत्तम कविताएं हैं। हम इस अत्यन्त उपयोगी विशेषांक के लिए योग्य सम्पादक जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

अमर धर्मवीर का नित्य नवीन दिव्य संदेश—

२३ दिसम्बर को समस्त आर्य जगत् में अमर धर्मवीर आदर्श सुधारक और आचार्य, त्याग और तपस्या की मूर्ति कर्मयोगी निर्भय नेता श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की बलिदान जयन्ती बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाई जाएगी। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के मेरे द्वारा ११-५-१९२५ को देहली से प्रेषित निम्नलिखित दिव्य सन्देश को सर्वत्र सुनाया जाए यह मेरा अनुरोध है क्योंकि यह वस्तुत: आर्यसमाज की वास्तविक उन्नति का मूल मन्त्र है। इस नित्य नवीन दिव्य स्फूर्ति-दायक सन्देश को क्रियात्मक रूप दिये बिना आर्यसमाज की यथार्थ उन्नति सर्वथा सम्भव है।

वह सन्देश यह है—

'तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। यह वह सत्य सनातन धर्म है जिसके बिना संसार की सामाजिक व्यवस्था एक पल के लिये भी नहीं रह सकती। प्राचीनकाल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों को खोलने वाली चाबी तुम्हारे ही हाथों में दी गई थी और अब भी अशान्त संसार को शान्ति देना तुम्हारा ही काम है, किन्तु पहले तुम्हें अपनी सब अपवित्रताओं को दूर करना होगा। आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि—(१) तुम दैनिक पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान में कभी प्रमाद न करोगे (२) तुम अस्वाभाविक जाति-भेद के बन्धन को तोड़ कर वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन में परिणत करोगे (३) तुम अपनी मातृभूमि में से अस्पृश्यता के कलङ्क का समूल नाश कर दोगे और (४) तुम आर्यसमाज के सार्वभौम मन्दिर के द्वारा मत सम्प्रदाय, जाति रंग आदि के भेदभाव का कुछ भी विचार न कर के मनुष्य मात्र के लिये खोल दोगे। परम पुरुष परमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा के पालन में तुम्हारे सहायक हों।"

हम श्रद्धेय स्वामी जी के इस सन्देश को आर्यसमाज की वास्तविक उन्नति का मूल मन्त्र समझते हैं। हमें यह देख कर अत्यन्त दु:ख होता है कि आर्यसमाजों के अधिकारियों में भी (साधारण सदस्यों की तो बात ही और है) अभी तक ऐसे सज्जन अधिक नहीं जो पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान श्रद्धापूर्वक करते हैं और जिन्होंने जाति बन्धन तोड़ कर अपने जीवनों में वर्णाश्रम व्यवस्था को परिणत किया हुआ है। जहां कांग्रेस के महामन्त्री श्रीमन्नारायण ने अपने जाति सूचक नाम 'अग्रवाल' का परित्याग करके एक उत्तम उदाहरण समाज-सुधारकों के सन्मुख प्रस्तुत किया है वहां आर्यसमाज के अनेक नेता और प्रमुख कार्यकर्ता अपने नामों के पीछे भल्ला, नारंग, गाजरा, सक्सेना, चड्डा आदि निरर्थक जाति-सूचक शब्दों को लगाते हुए संकोच नहीं करते और जातिभेद की दल-दल में अभी तक फंसे हुए हैं। वैदिक आदर्शानुसार पारिवारिक जीवन के निर्माण की ओर ध्यान तो और भी कम है। हम चाहते हैं कि निर्भयता और श्रद्धामूर्ति श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी की बलिदान जयन्ती मनाते और उन का पुण्यस्मरण करते हुए जो सचमुच स्फूर्तिदायक है समस्त आर्य नरनारी उनके उपर्युक्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिव्य सन्देश को क्रियात्मक रूप दे कर स्वयं लाभान्वित हों और आर्यसमाज को अधिक उन्नत करें।

आचार्य रामदेव जी और टालस्टाय:—

इस बात को सब जानते हैं कि आचार्य रामदेव जी ने (जिनका देहावसान ९ दिसंबर १९३९ को देहरादून कन्या गुरुकुल में हुआ।) किस प्रकार अपना तन, मन, धन सब गुरुकुल को प्रत्येक दृष्टि से उन्नत करने और उसे आदर्श विश्वविद्यालय बनाने में लगा दिया था। 'वैदिक मेगज़ीन' मासिक पत्र के सुयोग्य सम्पादक के रूप में वे वैदिक धर्म का सन्देश देश देशान्तरों के सुशिक्षित महानुभावों तक पहुंचाते रहते थे जिन में रूस के जगद्विख्यात विचारक टालस्टाय भी थे। पंजाब प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित आचार्य रामदेव जी के जीवन-चरित्र की भूमिका में स्वर्गीय आचार्य जी के आर्य महासम्मेलन अजमेर के अध्यक्ष भाषण से एक वाक्य उद्धृत किया गया है जिस में उन्होंने कहा कि 'टालस्टाय को सत्यार्थप्रकाश की दीक्षा मैंने दी।' (भूमिका पृष्ठ १९) बहुत से महानुभाव इसे अत्युक्ति पूर्ण समझते हैं किन्तु इस टिप्पणी को लिखते हुए News and Views From the Soviet Union नई देहली का कला तथा साहित्य विषयक २६ जुलाई १९५७ का एक विशेषांक हमारे सामने है जिसमें कौन्ट टालस्टाय के भारतीय मित्रों से पत्र-व्यवहार की चर्चा करते हुए लिखा है 'Leo Tolstoy was also corresponding with Prof. Rama Deva the editor of the Religious and Philosophic Publication 'The Vedic Magazine' and many other persons Prominent in the Cultural Sphere" अर्थात् टालस्टाय का धार्मिक और दार्शनिक प्रकाशन—वैदिकमेगज़ीन के सम्पादक प्रो० रामदेव जी और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रमुख कई अन्य भारतीयों से भी पत्र-व्यवहार रहता था। इसी लेख में यह भी बताया गया है कि टालस्टाय ने उन दिनों भारतीय दार्शनिकों और कवियों के ग्रन्थों का अनुशीलन किया तथा उन के लेख में वेदों और उपनिषदों से भी उद्धरण दिये गये हैं। टालस्टाय के पुस्तकालय में वैदिक मेगजीन की पुरानी फाइलें भी हैं इस बात का कुछ वर्ष पूर्व किसी विद्वान् यात्री ने समाचार-पत्रों में उल्लेख किया था, इस प्रकार आचार्य रामदेव जी की सच्ची प्रचारक भावना और धर्मनिष्ठा तथा उसके टालस्टाय जैसे जगत्प्रसिद्ध विचारकों पर प्रभाव का परिचय मिलता है जो सब आर्यों के लिए प्रसन्नता की बात है। आचार्य जी 'सादगी और उच्च विचार' के मूर्तरूप थे। आर्यसमाज में ऐसे सुयोग्य, धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठावान् त्यागी तपस्वी विद्वान् बहुत कम हैं। हम स्वर्गीय आचार्य जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए चाहते हैं कि अन्य विद्वान् भी उनके उपर्युक्त उत्तम गुणों को अपने अन्दर लाने का प्रयत्न करें तथा वैदिक मेगजीन जैसी उच्चकोटि की पत्रिका के पुनरुद्धार जिस का लोक मान्य तिलक ने भी 'गीता रहस्य' में बड़े आदर पूर्वक उल्लेख किया है और अन्य उत्तम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य निर्माण द्वारा देश विदेशों की सुशिक्षित जनता को वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट किया जाए ।

अहिंसा प्रचारक देश में पशुहिंसा और मांस भक्षण की निन्दनीय वृद्धि—

भारत में वेदों की 'मित्रास्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' (यजु३६।१८)'द्विपादव चतुष्पात्पाहि,' 'कृत्यामपसुव इत्यादि शिक्षाओं के अनुसार जिन में सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखने ; दोपाये चौपाये सब प्राणियों की रक्षा करने और हिंसा का परित्याग करने का उपदेश दिया गया है अहिंसा प्रधान धर्म का सदा प्रचार किया जाता रहा है ! अहिंसा परमोधर्मः, तथाऽहिंसा परं तपः । अहिंसा परमं सत्यं, यती धर्मः प्रवर्तते ।।' (म. भा. अनुशासन पर्व अ. ११३) इत्यादि श्लोक महाभारत तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में सैकड़ों की संख्या में पाये जाते हैं जिन में अहिंसा को परम धर्म, परम तप और परम सत्य बताते हुए उससे ही धर्म की प्रवृत्ति कही गई है । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी का सबसे अधिक बल अहिंसा और सत्य पर ही था । हमें यह देखकर अत्यन्त दुःख होता है कि उस देश में जिस के मान्य कर्णधार अहिंसा के प्रचारक महात्मा गान्धी जी के नाम की दुहाई देते हुए कभी नहीं थकते पशुहिंसा और मांसभक्षण की निन्दनीय वृद्धि दिन प्रति दिन हो रही है । इस सम्पादकीय टिप्पणी को लिखते हुए देहली के टाइम्स ऑफ़ इण्डिया का १८ नवम्बर १६५७ का अङ्क हमारे सन्मुख है जिसमें बताया गया है कि देहली में इस वर्ष के प्रथम नौ मासों में सन् १६५४ के इन्हीं मासों की अपेक्षा ७८०४६ भेड़ों और बकरियों की अधिक हत्या की गई। १६५४ में मारे गये पशुओं की संख्या ३६५४२२ थी जब कि १६५५ में वह ४३५१६४ और १६५६में ५०८०१२हो गई । मांस का उपभोग ८००० सेर प्रति मास बढ़ गया है । ऐसी ही अवस्था भारत के अन्य प्रमुख नगरों को भी प्रतीत होती है । हम महामान्य राष्ट्रपति जी के बम्बई में ६ नवम्बर को विश्वशाकाहारी सम्मेलन के उद्घाटनावसर पर कहे गये इस विचार से सर्वथा सहमत हैं कि 'शाकाहार विश्व को विनाश से बचाने में सहायक है तथा अणु और उद्जन बमों से संसार को बचाने के लिए शाकाहारी बनना सर्वोपयुक्त है' किन्तु यह कितनी लज्जा की बात है कि इङ्गलैंड, फ्रांस, अमेरिका तथा डेन्मार्क आदि देशों से आए निरामिषभोजी प्रतिनिधियों को अहिंसा और पञ्चशील की दुहाई देने वाले भारतीयों को विश्वशाकाहारिसम्मेलन के अवसर पर (जिस के देहली अधिवेशन में सम्मिलित होने का हमें भी सौभाग्य प्राप्त हुआ) दुःख के साथ यह कहना पड़ा कि निरामिषभोजी परिवारों के युवक भी विदेश जा कर मांस का सेवन करने लग जाते हैं क्यों कि वे इसे 'फैशनेबल' वा सभ्योचित समझते हैं । उनमें से बहुतों ने अपने अनुभव के आधार पर भारतीयों से शाकाहारी बनने का प्रबल अनुरोध किया । लन्दन के डा. एलिन्सन ने बताया कि जब सन् १८४७ में इङ्गलैंड में निरामिष भोजन आन्दोलन प्रारम्भ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किया गया तो केवल १२ सदस्य थे। अब ब्रिटेन में ८०००० शाकाहारी हैं जिन्होंने बूचड़ खानों की क्रूरता के विरुद्ध विद्रोह किया है। लगभग ८० वर्ष के डा. मैक् ग्रेगर् ने बताया कि यह कहना सर्वथा असत्य है कि मनुष्य मांस के बिना स्वस्थ नहीं रह सकता। अपने विषय में उन्होंने कहा कि गत ५२ वर्षों से उन्होंने कभी मांस का स्पर्श भी नहीं किया किन्तु उन का स्वास्थ्य बड़ा उत्तम रहा है। १६ नवम्बर के विश्वशाकाहारी सम्मेलन में हमारी शिष्या मंगलौर वासिनी डा० राधाबाई कर्नाड का भाषण निरामिष भोजन के पक्ष में वैज्ञानिक आधारपर सर्वोत्तम था यह देख कर हमें अत्यन्त हर्ष हुआ यद्यपि यह दुःख की बात थी कि कर्नल अमीरचन्द्र आदि के मांस समर्थक भाषणों का उत्तर देने के लिये अलवर के प्रो० शर्मा को बहुत कम समय दिया गया और हमें भी समया-भाव का कारण बता कर अवसर न दिया गया। तथापि हमारे मांसाहार निषेधक अंग्रेजी निबन्ध को छपवाने का सम्मेलन के प्रधान संयोजक श्री जयन्तीलाल जी ने आश्वासन दिया है। भारत में भी इस निरामिष भोजन के प्रचार विषयक आन्दोलन का अत्यन्त प्रबल बनाने की आवश्य-कता है। यह अत्यन्त निन्दनोय बात है कि भारत सरकार के स्वास्थ्य तथा भोजन मन्त्रालय के अनेक प्रकाशनों में मांस, मछली तथा अण्डों के सेवन का प्रचार किया जाता है जैसे कि हालमें 'बच्चों का भोजन कैसे हो ? इस शीर्षक के लेख में कोनूर की न्यूट्रीशन रिसर्च लैबोरेट-रीज के उपनिर्देशक श्री गोपालन् ने लिखा है कि हरी-भरी तरकारियां, गाजर, माखन, मछली आदि चीजें अनिवार्य रूप से बच्चों की खुराक में होनी चाहियें। शाक, भाजी, माखन आदि से जब प्रयोजन सिद्ध हो सकता है तो मांस, मछली, अण्डे के प्रयोग की सलाह देना कितना अनुचित है? विदुषी डा० राधाबाई जी ने जिन का सौभाग्यवश स्वास्थ्य मन्त्रालय से सम्बन्ध है निरामिष भोजन को ही पोषक तत्व की दृष्टि से सर्वोत्तम बताया था। हम यथावसर उनके लेख को पत्रिका में प्रकाशित करने का यत्न करेंगे।

विश्वधर्म सम्मेलन—एक विशाल आकर्षक प्रदर्शन—

गत १७-१८ नवम्बर को देहली में विश्व धर्मसम्मेलन समारोह से सम्पन्न हुआ जिस में वैदिक धर्म के प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हो कर वैदिक धर्म और विश्वशान्ति पर १८ नव० को भाषण देने और उस दिन प्रातः विश्व धर्म परिषत् आयोजना समिति में श्री काका काले-लकर जी, सम्मेलन के मूलप्रेरक जैन मुनि सुशील कुमार जी, पाकिस्तान के मौलाना का-बिल, लोकसभा के सदस्य मौ० हफीजुलरहमान, वृन्दावन वैष्णव विश्वविद्यालय के संस्थापक वन महाराज जी. भारत सेवक समाज के प्रधान सन्ततुकड़ो जी, आदि विचारशील महा-नुभावों के सन्मुख अपने विचारों को रखने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं ने यह विचार प्रस्तुत किया कि सब धर्म एक ही हैं उन में कोई अन्तर नहीं इस प्रकार की लीपा-पोती से काम नहीं चल सकता। अनेक मौलिक बातों में भी मत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मतान्तरों और सम्प्रदायों के अन्तर स्पष्ट हैं अतः हमें गम्भीरता से यह विचार करना चाहिये कि हम सब किन बातों में मिल कर परस्पर सहयोग से काम कर सकते हैं। विचार विनिमय के पश्चात् जिस में इस्लाम, जैन, सिख तथा वैष्णव मतों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया यह निश्चय किया गया कि प्रकृति वाद और नास्तिक वाद के विरुद्ध हम सब मिल कर कार्य कर सकते हैं। एक सज्जन ने इस प्रसङ्ग में कहा कि यह नियम बन जाना चाहिये कि कोई किसी मत की आलोचना न करे किन्तु मैं ने इस से असहमति प्रकट करते हुए कहा कि किसी का दिल दुखाने के उद्देश्य से तथा गाली गलौच वा चिढ़ाने वाले शब्दों का प्रयोग करते हुए किसी मत की आलोचना न हो यह तो ठीक है किन्तु सत्य जिज्ञासा के भाव से विचार विनिमयादि में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। इस प्रकार यह चर्चा बड़ी उत्तमता से चल रही थी कि सम्मेलन के आयोजकों ने सब को वहां चलने के लिये कहा और यह महत्त्वपूर्ण गोष्ठी जिस पर हमारे विचार में सम्मेलन की वास्तविक सफलता निर्भर थी बीच में ही रह गई। सम्मेलन में जो उस दिन लाल किले के दीवाने आम में हुआ वैदिक धर्म के प्रतिनिधि के रूप में मेरे अतिरिक्त जैन, बौद्ध, इस्लाम, ईसाईमत, सिक्ख, पौराणिकमत आदि के प्रतिनिधि रूप से भारत और पाकिस्तान, जापान, थाइलैण्ड, इङ्गलैण्ड, अमरीका, रूस आदि १४ देशों से आये अनेक प्रसिद्ध विद्वानों के भाषण हुए। सेठ गोविन्द दास जी, द्वारा प्रस्तुत विश्वबन्धुत्व समर्थक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। मध्याह्न के अधिवेशन में विश्व धर्म परिषत् की स्थापना का निश्चय किया गया। प्रथम दिन (१७ नव०) मान्य राष्ट्रपति जी, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन जी, और पं० जवाहर लाल जी नेहरू आदि के भाषण महत्त्वपूर्ण थे। इस प्रकार कई प्रभाव शाली भाषणों और २३५ के लगभग प्रतिनिधियों की उपस्थिति की दृष्टि से जिन में ८० के लगभग विदेशों से थे इस सम्मेलन को पर्याप्त सफल कहा जा सकता है किन्तु हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल विशाल प्रदर्शन मात्र रह जाएगा यदि मतमतान्तरों के प्रतिनिधि सत्य के सच्चे उपासक बन कर परस्पर प्रेम से विचार विनिमय करने और असत्य तया अन्ध विश्वास का परित्याग करने को उद्यत न हों। इस १७-१८ नवम्बर के सम्मेलन में इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया इस का हमें खेद है। हम ने जैसे अपने सम्मेलन में दिये भाषण में भी 'समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वोमनो यथा वः सुसहासति ॥ सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या। इत्यादि मन्त्रों का विदेशी प्रतिनिधियों के हितार्थ अंग्रेजी अनुवाद सहित उल्लेख करते हुए कहा था सत्य, ईश्वर प्रेम और विश्वबन्धुत्व पर आश्रित सच्चे प्रेम और सहयोग की आवश्यकता है। इस सम्मेलन में तो विशाल आकर्षक प्रदर्शन और लीपा पोती का ही ज़ोर रहा जिस से विशेष लाभ नहीं हो सकता। आशा है सम्मेलन के आयोजक इस ओर ध्यान देंगे।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी श्रद्धानन्द जी

श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा साहित्यालंकार एम, ए. एल. टी. डी. लिट्, अजमेर

स्वामी श्रद्धानन्द हमारे आर्य जगत् के सेनानी ।
जीवनरण मे लड़े विकट संकट में हार नही मानी ।।
होनहार विरबान पात सम जो किशोर वय से चमके ।
न्यायालय में नित्य सत्य के प्राड्विवाक बन के दमके ।।
दुष्ट दमन हित,दुरित दलन हित, सदा सहोदर थे यमके ।
साक्षात् अवतार रहे जो जीवन भर शम के दम के ।।
धुनि के धनी, परम प्रण पालक, थे लाखों में लासानी ।
स्वामी श्रद्धानन्द हमारे आर्य जगत् के सेनानी ।। १ ।।

दयानन्द ऋषि के अनुगामी एक वार यदि बने, बनें ।
पाप और दुश्चरित स्वयं के, वा मित्रों के हने, हनें ।।
जिस पथ पर चल पड़े, चले बरु संकट कंटक मिले घने ।
सीना खोल खड़े सम्मुख रिपु की मशीनगन तने, तने ।।
रही गरजतीं सदा सिंह-सम जिनकी अभय वीर वानी ।
स्वामी श्रद्धानन्द हमारे आर्य जगत् के सेनानी ।। २ ।।

ऋषि की गुरुकुल पुण्य प्रणाली के वे प्रथम प्रणेता थे ।
पाश्चात्य शिक्षा प्रवाह में बहे न, रहे विजेता थे ।।
आर्य जगत् की नौका के दृढ़ नाविक थे, अरु नेता थे ।
हिन्दु-जाति के हित अनहित के एकमात्र निर्णेता थे ।।
शुद्धि-संगठन प्राण फूंक कर जिसे उठाने की ठानी ।
स्वामी श्रद्धानन्द हमारे आर्य जगत् के सेनानी ।। ३ ।।

राष्ट्रीय शिक्षा संचालक हिन्दी हित के हामी थे ।
ऋषि के सच्चे शिष्य वेद पथ के अनन्य अनुगामी थे ।।
भारतीय स्वातंत्र्य समर में अग्रगण्य वे स्वामी थे ।
दिया वीर बलिदान अन्त में सच्चे "शहीद" नामी थे ।।
अमर कीर्ति है जब तक नभ में "सूर्य", व सागर में पानी ।
स्वामी श्रद्धानन्द हमारे आर्य जगत् के सेनानी ।। ४ ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ तत्सत्

छप गई ! छप गई !! छप गई !!!

प्रसिद्ध लेखक

श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की

आत्म-कथा

अर्थात्

आप-बीती जग-बीती

$\frac{२० \times ३०}{८}$ आकार की लगभग ६५० पृष्ठ की छप गई ।

इसमें पिछले वर्ष ७० वर्ष के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक आन्दोलनों का इतिहास आ गया है, जिन जिन आन्दोलनों और संस्थाओं के साथ शास्त्री जी का सम्पर्क हुआ है । गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, आर्यजगत्, हिन्दीजगत्, पत्रकारजगत्, राजनैतिक जगत् आदि आदि का मनोरंजक वर्णन है । इसमें लङ्का, काश्मीर, गढ़वाल तथा भारत के अन्य प्रदेशों की यात्राओं के भी बोधप्रद वर्णन हैं । भारतीय नेताओं का भी परिचय दिया गया है । जेल यात्राएं भी रोचक ढंग से लिखी गई हैं । सारांश, शास्त्री जी ने इसमें अपने जीवन के अनुभव रोचक, उद्‌बोधक ढंग से लिखे हैं और पाश्चात्य और पौरस्त्य के समन्वय का सोपपत्तिक ऊहापोह किया है । इस ढंग की पुस्तकें कम देखने को मिलती हैं । पुस्तक सब प्रकार के विचार रखने वालों के काम की है । इसमें शास्त्री जी के संकट और संघर्षमय जीवन के कण कण सजीव होकर बोल रहे हैं ।

मिलने का पता—(लेखक)
नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ)
महाविद्यालय, पो० ज्वालापुर
(हरिद्वार) ।

ध्यान रहे—

मूल्य डाक व्यय सहित लागत मात्र छह ६) रुपये । { छह रुपये मनीऑर्डर से भेजिए वी० पी० नहीं जाएगी । }

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् के प्रति सम्यक्-वृत्ति

[लेखक—सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी]

[५ दिसम्बर की उनकी निधन तिथि के उपलक्ष्य में संकलित]

आन्तर समर्पण का सार है भगवान् पर विश्वास तथा भरोसा । व्यक्ति यह वृत्ति धारण करता है कि **"मैं भगवान् को चाहता हूं और इसके सिवाय कुछ भी नहीं । मैं अपने आपको पूरी तरह से उन्हें ही सौंप देना चाहता हूं और क्योंकि मेरी आत्मा ऐसा चाहती है, अतः इसके सिवाय और कुछ हो ही नहीं सकता कि मैं उनका मिलन तथा साक्षात्कार प्राप्त करूंगा । उनसे मेरा वह मिलन हो और मुझे उन तक पहुंचने के लिए मेरे अन्दर उनकी क्रिया हो,—गुप्त या स्पष्ट, प्रच्छन्न वा प्रकट क्रिया हो इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं मांगता । मैं अपने समय और तरीके का आग्रह नहीं करता, वे अपने ही समय और तरीके के अनुसार सब कुछ करें; मैं उनमें विश्वास करूंगा, उनकी इच्छा को माथे चढ़ाऊंगा, उनके प्रकाश एवं उपस्थिति तथा प्रसन्नता के लिये दृढ़तया अभीप्सा करूंगा, उन पर निर्भर रहते हुए तथा उन्हें कभी न छोड़ते हुए मैं समस्त कठिनाइयों और विलम्बों को पार करूंगा। मेरा मन अचञ्चल हो तथा उन पर विश्वास करे और वे इसे अपने प्रकाश की ओर खोल दें; मेरा प्राण अचञ्चल बने तथा केवल उनकी ओर मुड़े वे इसे अपनी शांति तथा आनन्द के प्रति उद्घाटित करें । सभी कुछ उनके लिये और स्वयं मैं भी उनके लिये । चाहे जो हो मैं इस अभीप्सा तथा आत्म-निवेदन की भावना में अविचल रहूंगा और इस पूर्ण विश्वास में चलता चलूंगा कि यह सिद्ध होगी ही ।"**

यही है वह वृत्ति जिसमें कि व्यक्ति को क्रमशः विकसित होना चाहिये ।

श्री अरविंद के पत्र (अंग्रेजी)
प्रथम भाग से अनुदित, पृष्ट, ७७–७९

श्री अरविन्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

मास के प्रारम्भ से ही शीतकाल का प्रकोप प्रारम्भ हो चुका है। गरम वस्त्र पहने बिना प्रातः और सायं कमरे से बाहर निकलना दूभर है। कास के फूल प्रकृति की घटा को द्विगुणित कर रहे हैं। मूली, गाजर, शलजम, गोभी, पालक आदि शरत्कालीन तरकारियाँ यहां होनी प्रारम्भ हो चुकी हैं। मास के अन्तिम दिनों में वर्षा तथा ओले भी यहां पर पड़े हैं। साधारणतया कुलवासियों का स्वास्थ्य उत्तम है पर कास और कफ के रोग प्रारम्भ हो चुके हैं।

दीवाली तथा ऋषि निर्वाण दिवस

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के अयोध्या आगमन, प्राचीन सच्चे वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के निर्वाण दिवस को अत्यन्त प्रसन्नता उत्साह एवं लगन के साथ २२ अक्टूबर १९५७ को मनाया गया। इस पर्व से कई दिन पूर्व ही यहां ब्रह्मचारियों ने कण्डील तथा गुब्बारे बनाने प्रारम्भ कर दिये। सम्पूर्ण गुरुकुल पुरी में सफाई प्रारम्भ होगई। सर्वत्र उत्साह और उमंग थी।

२२ अक्टूबर को सायं साढ़े चार बजे विद्यालय प्रार्थना भवन में पर्व को मनाने के लिए सम्पूर्ण छात्र और गुरुजन अपने २ नियत वेश में उपस्थित हुए। प्रारम्भ में वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ सकल विश्व के कल्याणार्थ अग्निहोत्र किया गया। पुनः पूज्य आचार्य जी की अध्यक्षता में सभा प्रारम्भ हुई। विद्यालय तथा महाविद्यालय के छात्रों ने अपने गीतों तथा भाषणों द्वारा उक्त नायकों के गुणों तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार, सहायक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी, ने अपने भाषण में बताया कि हमारे देश में नानक कबीर तुलसीदास तथा गांधी जैसे महात्मा जो कि लोगों को धार्मिक जीवन की ओर ही प्रवृत्त करते रहे, उत्पन्न अवश्य हुए लेकिन सदियों से कोई स्वामी दयानन्द जैसा ऋषि जो कि संसार को सत्यासत्य का निर्णय करने की दर्शन शक्ति प्रदान कर सके उत्पन्न नहीं हुआ और आज हमारे देश को ऐसे ऋषियों की ही आवश्यकता है। हमारे देश की वास्तविक उन्नति, संस्कृति और सभ्यता उन्हीं पर निर्भर है। अन्त में पूज्य आचार्य जी ने महर्षि दयानन्द जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए छात्रों को प्रेरणा दी। रात्रि को छात्रों ने प्रीतिभोज का आयोजन किया।

अगले दिन रात्रि ८ बजे आतिशबाजी तथा गुब्बारों का कार्यक्रम विद्यालय के सामने सम्पन्न हुआ। पं० पुरुषोत्तमदेव जी आयुर्वेदालंङ्कार, आश्रमाध्यक्ष विद्यालयविभाग के प्रयत्नों से बने गुब्बारों से कुलवासियों ने अपना बहुत मनोरञ्जन किया।

नई नियुक्ति

१७ नवम्बर १९५७ को श्री दयालु मिश्र जी एम. ए. यहां विद्यालय विभाग में मुख्याध्यापक नियुक्त हुए हैं। आप अनेक विद्यालयों में मुख्याध्यापक रह चुके हैं तथा साथ ही आश्रम प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों के अनुभवी हैं। श्री पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति शिक्षाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी ने आपका सभी अध्यापकों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथा छात्रों से परिचय करवाया। सबने उनका स्वागत किया।

गोपाष्टमो

गोपाष्टमी का त्योहार यहां अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस दिन डा. के. डी. सिंह उपाध्याय कृषि विद्यालय के प्रबन्ध में गुरुकुल पण्डाल के सन्मुख एक गौ प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। समस्त रुड़की तहसील के लगभग २०० पशु इस प्रदर्शनी में उपस्थित हुए। ग्राम सभा के प्रधानों गुरुकुल कृषि विद्यालय के उपाध्यायों तथा सुयोग्य छात्रों ने अच्छे पारितोषक प्राप्त करने योग्य पशुओं का चुनाव किया। प्रदर्शनी में लगभग दो हजार दर्शक उपस्थित थे।

सायं काल तीन बजे गुरुकुल पण्डाल में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। सभा श्री हीरावल्लभ जी त्रिपाठी एम. पी. की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। जिला पशु धन अधिकारी पशु चिकित्सक रुड़की तथा हरिद्वार आदि अन्य अनेक महानुभाव भी यहां उपस्थित थे। गुरुकुल विश्व विद्यालय के आचार्य पं० प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति ने विद्वत्ता पूर्ण भाषण दिया। उन्होंने बताया कि हमारा सारा भारतीय साहित्य हमारी सम्पूर्ण संस्कृति, सभ्यता धर्म और महापुरुष गौ के महत्त्व को दर्शाते हैं। गौ हमारी माता है और उस की सेवा हमारा कर्तव्य है। अन्त में श्री अध्यक्ष महोदय ने गौ प्रदर्शनी के उत्तम पशुओं को पारितोषिक प्रदान किए। एक सौ पच्चीस रुपयों के नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स तथा इतने रुपयों के ७४ बर्तन उन गोपालों को प्रदान किए। सर्वोत्कृष्ट पशु भाबड़ कम्पनी तथा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के सिद्ध हुए। इन्हें रजत पदक दिए गए।

अन्तर्राष्ट्रीय बाल दिवस समारोह

भारत के माननीय प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी का जन्म दिवस गुरुकुल भूमि में बाल दिवस के रूप में बड़े समारोह के साथ १४ नवम्बर को मनाया गया। अनेक प्रकार की मनोरंजक क्रीड़ादि का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और विजेताओं को पारितोषक वितीर्ण किये गये।

२४—११—५७ —प्रशान्त कुमार।

★

उठो ! चेतो !

जगत् पिता तुम्हारे अन्दर विराजमान हैं। उन की अनन्त शक्ति अपने अनन्त बल से तुम्हारी आत्मा को प्रकाश देने के लिये तैयार है। उसकी प्राप्ति के साधन भी तुम्हारे अन्दर ही उपस्थित हैं फिर क्यों अज्ञान सागर में डूबे हुए हम सब इधर हाथ पैर मार रहे हैं ? उठो ! चेतो ! अमूल्य समय व्यर्थ जा रहा है। —स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश भाग ३ पृष्ठ ५६।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका. १, २ भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०. १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश. तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरक्ष ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुनःप्याज़ श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीमःबकायन (अनेक रोगों में उपयोग)., १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,.)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी. के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी. १. २ भाग ,. २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य ओषधि शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, पुराना बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पाव २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

Dec
द्वितीय प्रेस

गुरुकुल पत्रिका

पूजनीय महात्मा गांधी जी

सम्पादक— श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १० पौष २०१४ अङ्क ५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ११३ ★
दिसम्बर १९५७

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओं न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्नु इन्द्रं वृषणं सचासुते सखायं कृणवामहै ॥

ऋग्० ८. ६१. ११ ।

शब्दार्थ—हम (न पापासः, न अरायासः, न जल्हवः मनामहे) न तो पापी हो कर, न कृपण होकर और न ही अप्रज्वलित हो कर परमेश्वर को मनाते हैं । (यत् इत् नु वृषणम् इन्द्रम्) इसी कारण हम बलवान् सुखवर्षक परमेश्वर को (सुते) अपने यज्ञ कर्मों में (सचा) सम्मिलित हो कर (सखायं कृणवामहै) मित्र बना लेते हैं ।

प्रभु प्रेम का रहस्य

१ विमल चित्त है धुल गये पाप सारे
न कलुषित रही भावना अब हमारी ।
तुम्हें स्नेह से जब हृदय में बिठाया
मधुरमूर्ति जब से बसाई तुम्हारी ॥

२ जली है शिखा प्रेम की स्निग्ध उज्ज्वल
सभी कुछ तुम्हें कर रहा हूं समर्पित ।
तुम्हें प्राप्त हैं पूर्ण वैभव जगत् के
उसी से हुआ आज मैं प्रेम गर्वित ॥

३ सभी शक्तियां विश्व में हैं तुम्हारी
तुम्हीं कर रहे पूर्ण सब कामनाएं ।
इसी से प्रभो ! तोड़कर विश्वबन्धन
तुम्हीं से सभी भक्त-जन लौ लगाएं ॥

५ कहीं सन्त जन हों बहे प्रेमधारा
कहीं यज्ञ या हरिकथा हो रही हो ।
तुम्हारी मधुरमूर्ति रहती हृदय में
यही ज्ञात होता तुम्हीं हो तुम्हीं हो ॥

५ मिला सख्य कैसे ! विमल हो प्रभु से
किया स्नेह जिसने वही जानता है ।
मिटाया है जिसने खुदी को हृदय से
वही प्रेम का भेद पहिचानता है ॥

—निरञ्जनदेव आयुर्वेदालङ्कार 'प्रियहंस' ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विक्रमकालीन संस्कृति का चढ़ाव और उतार

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

(१)

विक्रम कालीन भारतीय संस्कृति को हम तीन भागों में बांट सकते हैं। प्रथम सम्राट् विक्रमादित्य से लेकर गुप्त साम्राज्य तक उसकी निरन्तर बृद्धि और पूर्णता होती रहो। उसके पश्चात् डेढ़ दो शताब्दी तक उसकी स्थिरता रही और अन्त में लगभग दो सदी तक उसकी शिथिलता जारी रही। संस्कृति का अभ्युदय काल विक्रमादित्य से आरम्भ होता है, जैसे मैंने पहले लेख में लिखा था, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में इस नई हलचल का मुख्य कारण यह हुआ कि विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिये जाति को शक्ति सम्पन्न, संघर्षात्मक नीति का आश्रय लेना पड़ा। सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म को राज्य सत्ता का अन्तरंग हिस्सा बना कर राज्य की युद्धशक्ति को बहुत निर्बल बना दिया था। अशोक की मृत्यु से पूर्व ही साम्राज्य का खज़ाना खाली हो चुका था जिससे शासन का संगठन बहुत निर्बल हो गया जब राष्ट्र पर संकट आया तब आवश्यकता हुई कि बौद्ध धर्म के अहिंसा सिद्धान्त को छोड़ कर उन सिद्धान्तों का आश्रय लिया जाय, जिनकी परम्परा ऋग्वेद से आरम्भ होकर रामायण और महाभारत में से होती हुई कौटिल्य पर समाप्त होती है। राजनैतिक परिस्थितियों ने जो प्रतिक्रिया उत्पन्न की उसका प्रभाव धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र पर भी पड़ा। उससे भारतीय संस्कृति का जो नया कायाकल्प आरम्भ हुआ उसने उस विक्रमकालीन भारतीय संस्कृति को जन्म दिया, जिसे इतिहास लेखक हिन्दु संस्कृति का स्वर्णकाल कहते हैं।

यह जागृति राजनैतिक थी। इसका सब से स्पष्ट प्रमाण यह है कि उसका श्री गणेश पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ से हुआ। पुष्यमित्र मौर्य राजा बृहद्रथ का सेनापति था। उसने निर्बल बृहद्रथ को मार कर उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया और शुंग वंश की स्थापना की। उन्हीं दिनों बैक्ट्रिया के मीनान्दर ने काबुल और पंजाब को जीत कर भारत के मध्य भाग पर आक्रमण करने का संकल्प किया और सौराष्ट्र तथा मथुरा को जीत कर पाटलिपुत्र की ओर प्रयाण किया। पुष्यमित्र ने युद्ध कर के उसे परास्त कर दिया और वह अपने देश को वापिस जाने के लिए बाधित हुआ। इस विजय के उपलक्ष्य में पुष्यमित्र ने प्राचीन अश्वमेध यज्ञ की योजना की। पुष्यमित्र के राज्यारोहण और अश्वमेध यज्ञ ने भारत के राजनैतिक रूप में ही परिवर्तन नहीं किया, बौद्ध धर्म को पदच्युत कर के एक नई सांस्कृतिक लहर भी उत्पन्न कर दी। यह नई लहर सभी दिशाओं में चल निकली। राजनैतिक क्षेत्र में इसने विजय की मनोवृत्ति को उत्पन्न किया। विदेशी आक्रमणों के कारण इस मनोवृत्ति की आवश्यकता भी थी। हम इसके पश्चात् कई शताब्दियों तक तेजस्वी राजाओं को दिग्विजय द्वारा देश भर में चक्रवर्ती राज्य की स्थापना का यह प्रयत्न करते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पाते हैं। बाहर से आने वाले शत्रुओं का सफल प्रतिरोध तो बारबार जारी ही रहा।

धार्मिक क्षेत्र में इस लहर ने यह प्रभाव उत्पन्न किया कि बौद्ध धर्म क्षीण होता गया और प्राचीन भारतीय धर्म अपने नये रूप में प्रकट हुआ जिसे हम पौराणिक धर्म के नाम से पुकार सकते हैं। रामायण और महाभारत के नये संस्करण इसी काल में हुए। २४ हज़ार श्लोकों का महाभारत विक्रम काल में एक लाख श्लोकों से भी आगे चला गया।

मुख्य पुराणों की रचना इसी काल में हुई। मेरा विचार है कि विक्रम काल के २०० वर्षों में पुराणों के भी कई संस्करण हो गये। निर्माता लोग रामायण महाभारत और पुराणों को अपनी रचनाओं से निरन्तर बढ़ाते रहे। जिन्हें हम आज प्रक्षेपक कहते हैं वे उस समय सर्वथा न्यायोचित परिशिष्ट माने जाते थे।

(२)

इस काल में वह संस्कृत साहित्य उत्पन्न हुआ आज तक भी जिसकी बराबरी संसार का कोई साहित्य नहीं कर सकता। यह ठीक है कि उसका मूलाधार तो प्राचीन देववाणी साहित्य ही था, उसे हम आर्य साहित्य के नाम से पुकार सकते हैं। उसे सरस्वती, भारती वाणी इत्यादि नामों से विशिष्ट किया जाता है। उसका 'संस्कृत' नाम तब पड़ा जब शिक्षा, व्याकरण आदि द्वारा परिष्कृत करके भाषा को उसका नया रूप दिया गया। पाणिनि मुनि ने अष्टाध्यायी की अद्भुत रचना करके भाषा का जो संस्कार और नियन्त्रण आरम्भ किया था, उसे पतंजलि मुनि ने महाभाष्य द्वारा पूर्णता तक पहुंचाया। उस संस्कार के कारण आर्षवाणी का नाम संस्कृत पड़ा। उस संस्कृत भाषा का अभ्युदय, संवर्धन और परिपोषण मुख्य रूप से विक्रम काल में हुआ।

बौद्ध काल में प्राकृत अर्थात् बोलचाल की भाषा को मुख्यता मिल गई थी। उसका कारण यह था कि महात्मा बुद्ध और उनके अनुयायियों का मुख्य कार्य सर्वसाधारण जनता में धर्म का प्रचार करना था। उसके लिए लोक भाषा का प्रयोग स्वाभाविक ही था। बौद्ध काल में प्राकृत भाषा मुख्य हो गई थी और संस्कृत भाषा गौण। प्रतिक्रिया आरम्भ होते ही प्राकृत भाषा गौण हो गई। विक्रम कालीन संस्कृत साहित्य में प्राकृत को गौण स्थान मिल गया। वह अशिक्षिता स्त्रियों, नौकरों और साधारण प्रजाजनों की बातचीत की भाषा मानी जाने लगी।

वाङमय की जितनी शाखायें हैं, विक्रम काल में उन सभी की असाधारण उन्नति हुई। आकर ग्रन्थ, रामायण, महाभारत और पुराण इस काल की उपज हैं। कालिदास, भारवि, भवभूति आदि महाकवि उसी काल में हुये। शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि का निर्माण और भाषा का विकास भी उस काल में हुआ। ज्योतिष आयुर्वेद तथा अन्य शिल्प और कला के ग्रन्थ जिनके कारण भारतीय साहित्य का सिर ऊंचा है, विक्रम काल की ही देन हैं।

इस प्रसंग में यह एक मनोरंजक प्रश्न उठता है कि विक्रमादित्यों की तरह कालिदास एक ही हुआ अथवा अनेक हुये। प्राचीन साहित्य पर-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

म्परा को मानें तो हमें कहना पड़ेगा कि कम से कम तीन कालिदास हुये हैं। यह श्लोक प्रसिद्ध है।

एकोपि जीयते हन्त, कालिदासो न केनचित्,
श्रृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु।

शृङ्गार और मधुर उक्तियों में एक कालिदास को ही कोई नहीं जीत सकता,तीन कालिदासों को तो परास्त करने की बात ही क्या है। प्रतीत होता है कि जब किसी राजा ने विदेशियों पर विजय प्राप्त कर के विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की तभी उसके दरबार के मुख्य कवि का नाम कालिदास रख लिया गया। यों कालिदास के नाम से प्रसिद्ध रघुवंश मेघदूत, कुमारसंभव, अभिज्ञान शाकुन्तल, आदि काव्य प्रथम विक्रमादित्य के राजकवि कालिदास के ही प्रतीत होते हैं।

(३)

विक्रम काल के तीन भाग चार महापुरुषों के नामों के साथ निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। अभ्युदय काल में प्रथम विक्रमादित्य, मध्य काल में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और समुद्र गुप्त और तृतीय भाग में राजा हर्षवर्धन के नाम विशेष विशेष रूप से निर्देश के योग्य हैं। विक्रमादित्य ने अपनी विजय यात्रा और साहित्य प्रेम के प्रभाव से जिस संस्कृति को जागृत किया, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त ने उसे पुष्ट किया और राजा हर्षवर्धन ने उसमें फिर बौद्ध धर्म का मिश्रण करके उसकी प्रगति को शिथिल कर दिया।

भारतीय इतिहास के उस स्वर्गीय युग की प्रशंसा में इतना कुछ लिखा जा चुका है कि मैं इस लेख में उसे दुहराना आवश्यक नहीं समझता। विक्रमादित्य, कालिदास, चन्द्रगुप्त और हर्षवर्धन के चरित्र और कार्य इतने विशाल और महत्त्वपूर्ण हैं कि एक-एक के सम्बन्ध में पुस्तकालय तैयार किये जा सकते हैं। देश और विदेश के विद्वानों ने अब तक भी जो कुछ लिखा है वह पुस्तकालय से कम नहीं। उस कार्य को अन्य समय के लिए छोड़ कर यहां मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि भारतीय इतिहास की वे आठ शताब्दियां राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। उस समय का शिल्प गुप्तकालीन शिल्प के नाम से प्रसिद्ध है। शिल्प के इतिहास में उसका अपना प्रमुख स्थान है। उस समय की आर्थिक विभूति का अनुमान लगाना हो तो महाकवि कालिदास के ग्रन्थों को पढ़िये। आप उस काल की सुख समृद्धि और विभूति से चमत्कृत हो जाएंगे। आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टिकोण से तो वह समय आर्ष समय से हीन था परन्तु अन्य दृष्टियों से वह समृद्ध और परिपूर्ण था।

अन्त में उस काल की एक विशेष प्रवृत्ति की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर के इस लेख को समाप्त करता हूं। वह विशेषता यह थी कि उस समय के विचारकों ने प्रायः सब विषयों में अनेक दिशाओं में अपनी विचारधारा को फैला कर अन्त में एक केन्द्र पर लाने का अद्भुत प्रयत्न किया। एक ओर धर्म अनेक धाराओं में विभक्त हो गया तो दूसरी ओर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसे एक सूत्र में पिरोने का प्रयत्न किया गया। देवमालाओं का खूब विस्तार हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, दुर्गा आदि देवी देवताओं और अवतारों की सुविस्तृत कल्पनाओं और पुराणों के निर्माण के साथ-साथ हम उस समय के लेखकों को निरन्तर यह यत्न करते पाते हैं कि वे सब देवी देवताओं को एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप प्रदर्शित करें। त्रिमूर्ति, निर्गुण आदि विशेषणों का उद्गम ऐसी भावना से हुआ।

★

निष्काम कर्म

कर्म बराबर करो क्योंकि इन्द्रियां बिना कर्मों के रह नहीं सकती किन्तु उन कर्मों के फल भोग की इच्छा को छोड़ दो। बस यही निष्काम कर्म कहलाते हैं। कर्म करते हुए ही पूरी आयु भोगने की इच्छा करो परन्तु उन कर्मों के फल से कुछ भी सम्बन्ध न रखो। इस तरह उन कर्मों के बन्धन से तुम छूट सकते हो। कर्म अपने आप में कुछ भी नहीं कर सकते, उन में फँसावट ही सब कुछ करती है। मनुष्यों को यदि पाप रूपी नरक में गिराती है तो कर्मों की फँसावट। इस लिये ऐ मेरे प्यारे भाइयो! संसार के गृहस्थरूप युद्ध से मत भागो। जिस ने इन्द्रियों को वश में किया है उस का घर भी तपोबन है किन्तु जो बन में जा करभी इन्द्रियों का दास ही रहा, वह घोर संग्राम में फंसा हुआ है। ब्राह्मण निष्काम कर्म करने से ही जगद्गुरु कहलाते थे अन्यथा उनके शरीर भी दूसरे मनुष्यों की तरह के थे। हर समय ही निष्काम भाव से कर्म करने की आवश्यकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज
धर्मोपदेश भाग १ पृ० ३५।

सत्यासत्य का निर्णय—

यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध जाल में फंसा रखा है यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंस कर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो सभी का ऐकमत्य हो जाये।—महर्षि दयानन्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गांधी जी के कुछ संस्मरण

श्री प्यारे लाल जी,

मैंने गांधी जी के प्रथम दर्शन, १९१८ के बड़े दिनों में करीब कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में किये। उस समय मैं लाहौर में एम० ए० में पढ़ता था और कांग्रेस का अधिवेशन देखने अमृतसर गया था। वहां मैंने उनके दर्शन ही नहीं किये, उनकी ओजस्वी वाणी सुनी और तत्काल उनका प्रभाव देखा।

अमृतसर के जलियां वाले बाग को लेकर उसे एक राष्ट्रीय स्मारक का रूप देना था और इसके लिए पैसे की जरूरत थी। अमृतसर के व्यापारियों की सभा में चोटी के प्रायः सभी नेताओं ने धन की अपील की पर ये लोग भला अपनी थैली का मुंह आसानी से कहाँ खोलने वाले थे? आखिर गांधी जी की बारी आई। उन्होंने न देश-भक्ति की दुहाई दी और न उनकी खुशामद की। उन्होंने बड़ी दृढ़ता से बस इतना ही कहा कि हमारा राष्ट्र यह स्मारक बनाने का संकल्प कर चुका हे और अब इसे छोड़ा नहीं जा सकता। यदि धन की कमी पड़े तो मैं अपना आश्रम बेच कर भी इसको पूरा करूंगा। इस दृढ़ निश्चय के आगे व्यापारी वर्ग को झुकना पड़ा और आवश्यक धनराशि के वहीं वायदे हो गये।

कुछ दिनों के बाद मैं फिर लाहौर में उनके निवास-स्थान पर उनसे मिलने गया। उन दिनों फौजी कानून (मार्शलला)के मुकदमों की धूम थी। मुकदमों के अभियुक्तों के मित्रों सम्बन्धियों आदि की भीड़ उन्हें घेरे रहती थी। जब मैं गांधी जी के पास पहुंचा तो उस समय भी एक ऐसा ही शिष्ट मंडल उनसे मिलने आया था। ये लोग एक ऐसे व्यक्ति को छुड़वाने के लिए गांधी जी के पास आये थे, जिस पर राजनीतिक हत्या का अभियोग था। भला उस जमाने में ऐसे अपराधी की तरफदारी करने का कौन साहस कर सकता था।

फिर भी गांधी जी को मैंने कहते सुना— 'मुझे सब बातें पूरी तौर से बताइये और यदि आपके आदमी ने कोई अपराध किया है तो उसे भी वह स्वीकार करे। मैं तो बड़े से बड़े हत्यारे को भी फांसी से बचाने की कोशिश करूंगा। मेरे आश्रम में तो ऐसे कई लोग हैं, पर अब वे पूर्णतः अहिंसावादी हैं।'

राजनीति के क्षेत्र में यह सर्वथा नया विचार था। उनकी वाणी में विश्वास का कितना बल था। कितनी अदम्य शक्ति थी उनमें। ऐसा लगता था कि मानो वह किसी अदृश्य शक्ति के द्वार खोल रहे हैं, जिससे एकात्म हो कर पतित से पतित व्यक्ति भी ऊंचा उठ सकता है। बस मुझे अपना गुरु मिल गया और उस दिन से मैंने अपने को उन्हीं के अर्पण कर दिया।

साबरमती आश्रम

साबरमती आश्रम में जाकर बहुत से बुद्धिवादियों को बड़ी निराशा होती थी। यहां उनको चमत्कृत करने वाली कोई वस्तु नहीं थी। फिर भी गांधी जी से सारे राजनीतिक जीवन का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह प्राण था।

आश्रम में पहुंचने के कुछ दिन बाद ही एक शाम को उनके साथ टहलते हुए हम लोग साबरमती जेल तक पहुंच गये। गांधी जी ने जेल की ओर उंगली उठाकर कहा "यह हमारा दूसरा आश्रम है।" उन्होंने हमें समझाया "हमारे आश्रम में दीवारें नहीं हैं और हमने स्वेच्छा से अपने को जिस अनुशासन में बांधा है उसके आगे दीवारों की जरूरत ही क्या। न हमें लुटने का डर है। हमने अपनी इच्छा से ही सब कुछ त्याग दिया है। इसलिए जेल में भी हमें कुछ डर नहीं। सत्याग्रही स्वेच्छा से वहां के अनुशासन का पालन करता है, इसलिए वह जेल में भी आकाश में उड़ते पक्षी की भांति स्वतन्त्र है। जिस समय सारा भारत जेल में रहकर अपने को परतंत्र नहीं समझेगा, उसी समय देश स्वतंत्र हो जाएगा। यदि विदेशी शासक सारे देश को भी जेल में डाल दें तो भी वे भारत की आत्मा को बन्दी नहीं कर सकते।

ये शब्द उन्होंने १९२० में कहे पर आश्रम वासियों ने देश की स्वतन्त्रता की अहिंसक लड़ाई में इनकी सचाई का अनेकों बार परिचय दिया।

आश्रम में पहुंचने के करीब एक महीने के बाद मुझे एक दिन गांधी जी का तार मिला जिसमें मुझे अपने साथ यात्रा में चलने के लिए दिल्ली बुलाया गया था। इस के बाद के दिनों में मैंने उनमें असाधारण बातें देखीं।

एक थी उन की काम करने की अपार शक्ति। वे रात को केवल ३–४ घंटे सो कर भी लगातार रात-दिन काम करते रहते थे। दूसरी थी, छोटी से छोटी बात में भी उन की सूक्ष्म दृष्टि। तीसरी उनकी सफाई और लिखने पढ़ने, सोचने और जीवन के हर काम में गंदगी या लापरवाही से उनकी चिढ़; चौथी, समय की कठोर पाबन्दी। वह स्वयं भी समय के कड़े पाबंद थे और अपने साथियों से भी यही अपेक्षा करते थे। पांचवीं बात थी, जहां तक सम्भव हो, उनका अपने ही हाथों अपना काम करना। वह बोलने की अपेक्षा खुद लिखना पसन्द करते थे। एक दिन मैंने गिन कर देखा, उन्होंने ५६ पत्र अपने हाथों लिखे थे। तारीख से ले कर अन्त में पते तक सब कुछ उन्होंने अपने हाथ से ही लिखा था।

साथियों पर विश्वास

एक घटना को तो मैं आजन्म ही नहीं भूल सकता। गांधी जी लाहौर में ला० लाजपतराय के घर पर ठहरे हुए थे। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय असहयोग आंदोलन के विचार से सहमत नहीं थे। पंजाब के कुछ नेताओं ने गांधी जी से अकेले में जा कर कहा कि हम आप के आदेश पर आंदोलन में भाग लेने को तैयार हैं। पर इसकी इजाजत देना लाला जी को धोखा देना था। उन्होंने फौरन कहा कि पंजाब लाला जी का है। मैं उनकी राजी के बिना आप को कुछ भी करने को नहीं कह सकता। यदि मुझ में और लाला जी में कोई मतभेद हो तो आप उन्हीं की बात मानें। यद्यपि लाला जी कमरे में नहीं थे, फिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी उन्होंने यह वार्तालाप सुना और इतने द्रवित हुए कि आजन्म गांधी जी के परम विश्वस्त मित्र बने रहे। गाँधी जी ने हमेशा अपने साथियों से ऐसा ही बर्ताव किया।

मैंने तो उनके पास रह कर उनके विराट् रूप का दर्शन किया और उनमें असंख्य गुण पाए। फिर भी मैं उनकी सब से अधिक कद्र, उनके दयालु स्वंभाव से करता हूं। इस डर से कि कहीं उनकी खड़ाऊंओं की खट-खट से पास सोने वाले जग न जायें, रात को वह लघुशंका आदि के लिए नंगे पैर ही चले जाते थे। एक दरिद्र कोढ़ी की शुश्रूषा करने के लिए वह वायसराय की मुलाकात को भी काट देते थे।

वह गीता को अपने हर कर्म की प्रेरक शक्ति मानते थे और स्वयं भी सच्चे स्थितप्रज्ञ थे। (आकाशवाणी की ओर से प्रेषित)

—

वीर संन्यासी

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही १९१९ का दृश्य मेरी आंखों के सामने आ खड़ा होता है। सरकारी सिपाही फ़ायर करने की तय्यारी में हैं। स्वामी जी छाती खोल कर सामने आ जाते हैं और कहते हैं लो, चलाओ गोलियां। उन की उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता। मैं चाहता हूं कि उस वीर संन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे।

—सरदार वल्लभ भाई पटेल।

बहादुर श्रद्धानन्द जी

श्रद्धानन्द जी का नाम याद कर के बहादुरी हिम्मत और त्याग की तस्वीर सामने आ जाती है और इस तस्वीर को देख कर कुछ अपनी भी हिम्मत बढ़ जाती है।

—श्री जवाहर लाल नेहरू।

सत्यग्रहण असत्य त्याग——

विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग कर के वे परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् हो कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त हो कर प्रसन्न होते हैं।

उत्तम आचार——

सज्जन लोगों को राग-द्वेष, अन्याय मिथ्या-भाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति, परोपकार सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है।

—महर्षि दयानन्द।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धेय श्रद्धानन्द सप्तकम्

पं० जनमेजयो विद्यालंकारः कानपुर

(१)

अनाधृष्यो वीरः प्रखरतरपुण्यो बहुमतः,
महाप्राणो वाग्मी निखिलतपसां यो निधिरभूत् ।
दयालुर्दीनानामभिमतवरो यश्च सुहृदाम्,
यतिः श्रद्धानन्दो विपुलगुणवृन्दो विजयते ॥

(२)

प्रशस्तं प्रांशुत्वं स च बहुमतो देहविभव,
सुदीर्घौ तौ बाहू गतिरपि च सा केसरिसमा ।
उरो व्यूढं पूज्यौ परमरमणीयौ च चरणौ,
ऋते श्रद्धानन्दात् क्वचिदपि न दृष्टं तदखिलम् ॥

(३)

प्रणेता देशस्य प्रथमगणनीयो मतिमताम्,
धुरीणो वीराणां भयजनयिता भारतरिपोः ।
महामान्यो नेता प्रतिदिनमभूदार्यसमितेः
नुमः श्रद्धानन्दं तममरयशस्कं यतिवरम् ॥

(४)

यदीयाः सङ्कल्पाः सततमभवन् पूर्णसफलाः,
प्रसादाः कोपा वा कथमपि न मोघाः समभवन् ।
दृढामिच्छाशक्ति कथयति जनो यस्य महतीम्,
कृती श्रद्धानन्दो न खलु न नमस्यस्त्रिजगताम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(५

गिरिर्वा सिन्धुर्वा प्रियसुहृदमित्रं च बलवत्,
स्तुतिर्वा निन्दा वा धनमधनता वातिगहना ।
विधातुं सन्मार्गात् प्रविचलितमेकं पदमपि,
यतिं श्रद्धानन्दं क्षणमपि न शेकुः क्वचिदपि ॥

(६)

वनं घोरं, राजा परमविमुखः, क्वापि न धनम्,
सहायो नैवासोत्, परिहसितवन्तो नयविदः ।
तथाप्येकः श्रीमान् प्रबलतरसत्त्वः स्थिरमतिः,
अहो मुन्शीरामो गुरुकुलमपूर्वं व्यरचयत् ॥

(७)

वसन् पारेगङ्गं कनकगिरिमूले गुरुकुले,×
दधानः प्रेमाणं तनयसमशिष्येषु विपुलम् ।
तपस्वो तेजस्वी निरवधियशस्वी विगतभीः,
गुरुर्मुन्शीरामो विगलितविरामो विजयते ॥

×कनकगिरिः=काँगड़ी ।

—

अस्पृश्यता एक पाखण्ड

'छुओ मत' (अस्पृश्यता) का मत एक अजीब सा पाखण्ड मत है । जब तक यह पाखण्ड बाकी है तब तक हमारे राष्ट्र की उन्नति कैसे हो सकती है ? 'छुओमत' एक तरह का दल-दल है जिस में फंस कर न जाने कितने गुण गंवा चुके हैं। अतः इस 'छुओ मत' से सावधान।

यह 'छुओ मत' का धर्म न वेदों में है न पुराणों में। न यह भक्ति में है, न मुक्ति में। 'हमें छुओ मत' 'हमें छुओ मत' बस यहीं तक हमारा धर्म आज रह गया है। कैसी भयङ्कर अधार्मिकता है यह! इसे अपना कर तुम क्यों अपने जीवन का सर्वनाश कर रहे हो ?

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सिद्धान्त क्या अब सिर्फ पोथियो में ही लिखा रह जाएगा ? क्या वे लोग दूसरों को शुद्ध कर सकेंगे जो अछूतों की हवा लग जाने से अशुद्ध हो जाते हैं' अरे ! यह तो एक भयङ्कर मानसिक रोग है।

सावधान ! सावधान !

समता ही जीवन है और विषमता है मृत्यु।

——स्वामी विवेकानन्द।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कैसे बोलना चाहिए ?

प्रिंसिपल डा० अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए. पी. एच, डी.

महर्षि वाल्मीकि के निर्देश

सभ्य मानवों में वार्तालाप के लिये कुछ विशेष नियमों का पालन किया जाता है। इन नियमों से वक्ता और श्रोता में हार्दिक सम्बन्ध स्थापित होता है तथा वार्तालाप का उद्देश्य सहज ही सफल हो जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने अपनी रामायण के किष्किन्धा-काण्ड सर्ग तीन में उत्तम वार्तालाप का एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है। सुग्रीव का सचिव हनुमान् उस के आदेशानुसार भिक्षु रूप धारण कर राम लक्ष्मण से मिलने जाता है। वह विनयपूर्वक उनके पास आ कर उनको प्रणाम कर उन से बोलने लगता है। वाल्मीकि ने अठारह श्लोकों में इसका भाषण दिया है। भाषण के पश्चात् हनुमान् और कुछ न बोलकर चुप हो जाता है। इस भाषण के लिए वाल्मीकि उस की वाक्कुशल और वाक्यज्ञ आदि शब्दों से प्रशंसा करते हैं।

हनुमान् का भाषण सुनकर राम अत्यन्त आनन्दित होते हैं और अपने भाई लक्ष्मण से भाषण की समीक्षा करते हुये उस की प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं कि जिस का ऐसा दूत है वह व्यक्ति अवश्य ही श्रेष्ठ होना चाहिये तथा उससे मिलना उचित है। राम लक्ष्मण सुग्रीव से मिलने जाते हैं।

वाल्मीकि ने दस श्लोकों में हनुमान् के भाषण पर राम का विचार प्रकट किया है। हम नीचे उन्हें उद्धृत करते हैं।

सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव कांक्षमाणस्य ममान्तिकमुपागतः ॥२६॥
अभिभाषस्व सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदम ॥२७॥
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोर्वापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च गात्रेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥
अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमद्रुतम्।
उरःस्थं कण्ठगम् वाक्यं वर्तते मध्यमे स्वरे ॥३१॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयदारिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥३३॥

इनका भावार्थ यह है—

२६. महात्मा सुग्रीव का यह मन्त्री जो सदा अपने स्वामी के हित की कामना करता है मेरे पास आया है।

२७. हे लक्ष्मण! तुम वाक्यों के वास्तविक प्रयोग के ज्ञाता, मधुर वाक्यों से स्नेह युक्त सुग्रीव के मन्त्री हनुमान् से बातचीत करो।

२८. जिसने ऋग्वेद का अध्ययन नहीं किया, जो यजुर्वेद को धारण करने वाला नहीं, जो सामवेद का विद्वान् नहीं वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता (जैसा इसने किया है)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२९. यह निश्चय है कि इसने व्याकरण शास्त्र का अनेक वार भली भांति श्रवण किया है क्योंकि बहुत सा भाषण करने पर भी इसने एक भी अशुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं किया ।

३०. भाषण करते हुए उसके मुख में, नेत्रों में, मस्तक में, भौओं में अथवा अन्य अङ्गों में कोई विकार नहीं प्रतीत हुआ ।

३१. इसका भाषण व्यर्थ विस्तार रहित, और सन्देह रहित है, वह न बहुत धीरे किया गया है और न बहुत जल्दी । इसका छाती में स्थित और कण्ठ से निकला हुआ शब्द मध्यमस्वर में है ।

३२. यह शुद्धक्रमबद्ध, न अतिशीघ्रता और न विलम्ब व मन्दता से युक्त हृदय का स्पर्श करने वाली कल्याणी वाणी का उच्चारण करता है ।

३३. इस शुद्ध रूप में उच्चारित अद्भुत वाणी से तलवार हाथ में लिये हुए किस शत्रु का भी चित्त मोहित नहीं हो जाता ?

रामचन्द्र का कहना है कि उन्होंने हनुमान् की जिस वाक्कुशलता और आत्म संयम को देखा वह उसे वेदाभ्यास द्वारा ही प्राप्त हुआ है। हनुमान् द्वारा इन्द्र और उसके वज्र का उल्लेख वेद से संबन्धित है । परन्तु केवल शब्द ज्ञान ही वेदाभ्यास को सूचित नहीं करता है। रामचन्द्र के कथन का विशेष अर्थ यह है कि वेदाभ्यास और उसके साथ ब्रह्मचर्य पालन से श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण होता है । श्रेष्ठ चरित्र का एक लक्षण सत्यवादिता है । हनुमान् ने भिक्षु के छद्मवेश में आते हुये भी राम लक्ष्मण को बता दिया कि वह हनुमान् नामक है और उसने अपने प्रभु के प्रीत्यर्थ भिक्षु का छद्मवेश धारण किया है।

रामचन्द्र के भाषण में मुख, ललाट, भौंहों तथा शरीर के अन्य भागों के दोष के विषय में जो कहा गया है वह वर्तमान मनोविज्ञान के अनुसार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । आजकल I. A. S. आदि पदों के लिये जो प्रार्थी होते हैं उनकी मौखिक परीक्षा में व्यक्तित्व परीक्षा वा Personality test लेते समय परीक्षार्थी के चेहरे व अंगभंगी पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

जो वक्ता अपने सत्य ज्ञान से बोलता है वह सदा "असन्दिग्ध" होता है ।

वाल्मीकि स्वयं 'वेदविनीत' थे इसका एक प्रमाण यह है कि वे हनुमान् के कथन को "कल्याणीं वाचम्" इन शब्दों से वर्णन करते हैं। ये दो शब्द यजुर्वेद अध्याय २६ में पाये जाते हैं । यथा यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पंजाब में हिन्दी प्रचार में आर्य समाज का योग

श्री विश्वम्भर सहाय जी प्रेमी मेरठ

संस्कृत और हिन्दी भाषा के प्रचार में आर्य समाज ने जो सक्रिय भाग लिया है, वह किसी से छिपा नहीं है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा को अपना कर उसकी उन्नति का जो मार्ग प्रशस्त किया, वह इतिहास के पन्नों में सदैव अङ्कित रहेगा। जिस समय स्वामी दयानन्द ने अपना प्रचार कार्य प्रारम्भ किया, उस समय देश-भर में संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं का प्रचार बहुत कम हो चुका था। संस्कृत को तो इने-गिने पंडित ही पढ़ते थे। हिन्दी भी सरकारी दफ़्तरों और अदालतों से हटाई जा चुकी थी। उसके स्थान में मुस्लिम शासकों ने उर्दू को प्रोत्साहन देकर काफ़ी आगे बढ़ा दिया था।

स्वामी दयानन्द के समकालीन मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद खां ने तो उस समय हिन्दी भाषा को "गंवारी बोली" कह दिया था और अंग्रेजों से यह मांग की थी कि वे हिन्दी को दफ़्तरों और अदालतों में कोई स्थान न दें। उन दिनों भारत सरकार ने हिन्दी के विषय में एक विज्ञप्ति निकाल कर यह मत प्रकट किया था, "ऐसी भाषा का जानना सब विद्यार्थियों के लिए आवश्यक ठहराना जो मुल्क की सरकारी और दफ़्तरी ज़ुबान नहीं, हमारी राय में ठीक नहीं है।"

उन दिनों हिन्दी भाषा को हिन्दू धर्म का चिन्ह माना जाता था। ईसाई और मुसलमान दोनों ही उर्दू को प्रोत्साहन देते थे। इस विकट स्थिति में स्वामी दयानन्द ने हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं को जन साधारण में लाने का उद्योग किया। यहां हम स्वामी दयानन्द के उस महान् कार्य पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं जो उन्होंने अब से अस्सी वर्ष पूर्व पंजाब में हिन्दी प्रचारार्थ किया।

ठेठ पंजाबी भाषा भाषी प्रान्त में स्वामी दयानन्द अनेक बार आर्य समाज का प्रचार करने के लिए गए। जेहलम और लाहौर में वे अनेक बार गए। इन दोनों स्थानों के अतिरिक्त जालंधर तथा अन्य नगरों में भी स्वामी दयानन्द के अनेक भाषण हुए। इनमें स्वामी जी ने शुद्ध हिन्दी का ही प्रयोग किया। स्वामी दयानन्द महाराज के जीवन चरित्र तथा पत्रों से यह बात विदित होती है कि उन्होंने अपने वेदभाष्य के प्रचार के सम्बन्ध में सबसे अधिक आशा लाहौर के आर्य समाजियों पर लगाई थी। उन्होंने पंजाब के कई आर्य भाइयों को यह प्रेरणा दी थी कि वे वेद भाष्य की कम-से-कम ५०० प्रतियां आर्य भाइयों में पहुंचाने का यत्न करें। वेदों का भाष्य करते समय स्वामी जी ने यह बात प्रकट कर दी थी "यह भाष्य संस्कृत और आर्य भाषा जो कि काशी,प्रयाग आदि मध्य देश की है, इन दोनों भाषाओं में बनाया जाता है। इसमें संस्कृत भी सुगम रीति की लिखी जाती है और वैसी आर्य भाषा भी सुगम लिखी जाती है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी दयानन्द ने पंजाब सरकार को उस समय यह लिखा था कि वह अपने विद्यालयों के लिए वेद भाष्य की प्रतियां लेना स्वीकार करे। परन्तु पंजाब सरकार ने स्वामी जी के निवेदन पत्र को स्वीकार नहीं किया। उस समय पंजाब सरकार ने स्वीकार न करने में यह दलील दी थी कि बंगाल, काशी, मद्रास से उनके वेदभाष्य के विरुद्ध सम्मतियां प्राप्त हुई हैं।

इसके पश्चात् २५ अगस्त सन् १८७७ को आर्य समाज लाहौर के कुछ सभासदों ने पंजाब सरकार को एक आवेदन पत्र और दिया जिसमें यह प्रकट किया गया था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेद भाष्य विद्यालयों के लिए कितना उपयोगी सिद्ध होगा। परन्तु सरकार ने इस आवेदन पत्र पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। ये सब बातें होते हुए भी आर्य समाज ने जिस समय लाहौर तथा पंजाब के अन्य बड़े-बड़े नगरों में स्कूल और कालिज स्थापित किए तो उनमें आर्य साहित्य को समुचित स्थान दिया गया। धर्म-शिक्षा को उस समय अनिवार्य विषय बनाया गया और वैदिक मन्त्रों का सरल अनुवाद करके बहुत-सी पुस्तकें विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई। इन सब का परिणाम यह हुआ कि उस प्रान्त में जहां पंजाबी भाई अधिक संख्या में रहते थे, हिन्दी भाषा और संस्कृत को प्रगति करने का अच्छा अवसर मिला। यहां इस बात का उल्लेख कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस समय स्वामी दयानन्द लाहौर पहुंचते थे तो अनेक विद्यार्थी उन से संस्कृत भाषा का अध्ययन करते थे।

लाहौर के विवरण के साथ-साथ यह प्रकट करना भी आवश्यक है कि २४ जून सन् १८७७ को जिस समय रहीम खां की कोठी पर आर्य समाज लाहौर की स्थापना स्वामी दयानन्द ने की तो उन्होंने सारा कार्यक्रम संस्कृत और हिन्दी भाषा में ही सम्पन्न किया। स्वामी जी ने जो नियम बम्बई में आर्य समाज के लिए बनाए थे उनका यहां संशोधन किया गया और हिन्दी भाषा में दस नियम बना दिए गए। स्वामी दयानन्द के ग्रंथों का सारे पंजाब में प्रचार होने लगा। आर्य समाज के कार्यकर्ताओं ने भक्ति-भरे अनेक भजन भी हिन्दी भाषा में तैयार किए।

पंजाब में जब आर्य समाज का ज़ोर बढ़ा तो लाहौर के एक आर्य भाई ने स्वामी जी से उनके समस्त ग्रन्थों का उर्दू अनुवाद करने की अनुमति मांगी। स्वामी जी ने अपने उस आर्य भाई को उत्तर दिया था—

"भाई मेरी आंख तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब काश्मीर से कन्या-कुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लग जाएंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्य भाषा का सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।"

स्वामी जी के इस कथन से अनेक बातों पर प्रकाश पड़ता है। स्वामी जी अपने देश की एक भाषा बनाने के प्रबल पोषक थे। उनकी आंखें आर्य भाषा हिन्दी को राष्ट्र की भाषा बनवाने के लिए तरस रही थीं। वे इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बात में विश्वास रखते थे कि भारतवासी हिन्दी भाषा का प्रयोग करें। उन्होंने कितने सुन्दर शब्दों में इस बात को प्रकट किया है कि अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं, अपने देशवासियों के लिए तो हिन्दी भाषा ही एक ऐसी भाषा है जिसमें सभी को अपनी भावनाएं प्रकट करनी चाहिएं। देखा जाए तो अब से अस्सी वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द ने एक व्यापक दृष्टि कोण को सन्मुख रखकर हिन्दी के विस्तार का यत्न किया।

लाहौर के डी० ए० वी० कालिज के विद्वानों तथा विद्यार्थियों ने सारे पंजाब में संस्कृत और हिन्दी भाषा का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। आर्य समाज के नेताओं ने विशुद्ध हिन्दी भाषा में अपने व्याख्यानों द्वारा वेद के सन्देश को सहस्रों नर-नारियों तक पहुंचाया। आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों पर एक नहीं अनेक आर्य विद्वान् भाषण देते थे। वे भाषण शुद्ध हिन्दी भाषा में होते थे। उनमें संस्कृत के श्लोक तथा वैदिक मंत्र भी सम्मिलित रहते थे। इस पर भी पंजाब की अहिन्दी भाषा भाषी जनता बड़ी श्रद्धा और प्रेम से उनको सुनकर लाभ उठाती थी। हमारे विचार में तो वह युग हिन्दी की किरणों के फैलने का युग था, जिसका करोड़ों नर-नारियों ने स्वागत किया।

आर्य समाज की अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। उन सब संस्थाओं का विवरण हिन्दी भाषा में रखा जाने लगा। आर्य समाज ने सारे देश में व्यापक रूप से हिन्दी भाषा को गति देने का जो महान् कार्य किया है, वह हिन्दी के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। पंजाब के अनेक आर्य विद्वानों ने सैकड़ों पुस्तकों की हिन्दी भाषा में रचना की। अनेक पत्र भी निकाले। पंजाब की महिला संस्थाओं ने भी हिन्दी के प्रचार में बड़ा योग दिया। इस दिशा में कन्या महाविद्यालय जालंधर का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक तथा उस के द्वारा हिन्दी साहित्य निर्माण आदि विषयक अद्भुत कार्य करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, लाला देवराज, लाला लाजपतराय आदि विद्वानों तथा महापुरुषों ने पंजाब में हिन्दी भाषा को जो शक्ति प्रदान की, वह सदा स्मरणीय रहेगी। इन सभी ने वाणी और लेखनी दोनो का प्रयोग हिन्दी को गति देने में किया। इनकी वाणी का जनता ने समुचित आदर कर के हिन्दी भाषा को हृदय से अपनाया।

विस्तार भय से हम यहां पंजाब के उस कार्य का पूरा विवरण उपस्थित नहीं कर रहे हैं जो सन् १८७७ से १९१२ तक हुआ। इसके पश्चात् हिन्दी के विकास में पंजाब विश्व विद्यालय ने भी एक नवीन जीवन प्रदान किया। रत्न, भूषण, प्रभाकर परीक्षाओं को चालू करके विश्व विद्यालय ने हजारों युवक तथा युवतियों में हिन्दी भाषा के अध्ययन की रुचि उत्पन्न की। १९१२ से १९४७ के पैंतीस वर्ष में पंजाब में हज़ारों हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, लाखों विद्यार्थियों ने हिन्दी की परीक्षाओं से लाभ उठाया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पंजाब

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी भाषा का एक सबल क्षेत्र बन गया।

अब लीजिए बंटवारे के पश्चात् उत्पन्न होने वाली स्थिति को। पंजाब का आधा भाग पश्चिमी पाकिस्तान में जा मिला। आधा भारत का अंग बना। इस आधे भाग में हिन्दी को पूरा समर्थन मिलता रहा। १९४७ में किसी को यह आशा न होती थी कि इस राज्य में कभी हिन्दी के विरोध का प्रश्न उठेगा। हिन्दी के राष्ट्र भाषा घोषित हो जाने पर यही समझा जाता था कि पंजाब हिन्दी की दिशा में भारी उन्नति करेगा। हम अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकते हैं कि उत्तर प्रदेश में आए विस्थापित भाइयों के बच्चों ने हिन्दी भाषा सीखने में इतनी रुचि ली कि वे इस प्रान्त के रहने वालों के बच्चों की अपेक्षा हिन्दी में अधिक अंक प्राप्त करने में सफल हुए। पंजाब से आई सैकड़ों लड़कियों ने विश्व विद्यालयों से हिन्दी में अनेक उच्च उपाधियां भी प्राप्त कीं।

इस सिंहावलोकन के साथ हम पूछना चाहते हैं कि आज हिन्दी आन्दोलन का जो गम्भीर प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसमें सरकार कहां तक न्याय, निष्पक्ष नीति और उदारता का परिचय दे रही है। पंजाबी और गुरुमुखी सीखने को अनिवार्य ठहराना कहां तक उचित है। आज तक हिन्दी के किसी भी समर्थक ने यह नहीं कहा है कि पंजाबी या गुरुमुखी न सीखी जाए। सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि क्षेत्रिय भाषा के रूप में पंजाबी भाषा सीखी जाए। परन्तु हिंदी को उन बच्चों को पढ़ने दिया जाए जिन की मातृ-भाषा हिन्दी है। जब हिन्दी राष्ट्र भाषा घोषित हो चुकी है तो उस की आधार भित्ति तो प्रारम्भ में ही सुदृढ़ होनी चाहिए।

★

अस्पृश्यता-राक्षसी का नाश करो

आज हमारे धर्म प्रधान भारत में कहां है ज्ञान, कहां है भक्ति और कहां है योग ? सभी के रास्ते आज बन्द हो गये हैं। बस 'छुओ मत' का यह धर्म ही बच रहा है। कहते हैं 'मुझे छुओ मत' या सारी दुनियां अपवित्र है—पवित्र हूं तो एक मैं ही। वाह, क्या यह ही ब्रह्म-ज्ञान है !

इस छुआ-छूत ने ही हमें इतना नीचे गिराया है। इस 'छुओ मत' ने हमारे सारे देश को कायर बना डाला है। देश इसी की बदौलत आज अविद्या के अन्ध-कूप में पड़ सड़ रहा है।

हम सदा अपने भाइयों से यही कहते रहते हैं। 'हमें छुओ मत' 'हमें छुओ मत'। देश का हृदय क्या एक-दम पत्थर ही हो गया है ? नाश हो तुम्हारे इस 'छुओ मत' के धर्म का। मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देख रहा हूं कि घर-घर में एक ही परमेश्वर रम रहा है। तो फिर क्यों नहीं इस अस्पृश्यता राक्षसी को नष्ट कर देते हो ?

—स्वामी विवेकानन्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाति भेद का अभिशाप

एक सच्ची कथा—

(२)

(श्री पं० क्षितीश जी वेदालंङ्कार दिल्ली)

अहमदशाह अब्दाली ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया उस समय दक्षिण से लेकर उत्तर तक मराठों का भगवा ध्वज लहराता था। सदा शिवराव भाऊ ने अपनी विशाल चतुरंगिणी सेना के साथ पानीपत में अब्दाली का मुकाबला किया।। इतिहास में वह पानीपत के तीसरे युद्ध के नाम से विख्यात है।

पानीपत के मैदान में सदाशिव भाऊ और अब्दाली की सेना में पहले दिन ही मराठों ने पठानों को ऐसे लोहे के चने चवाए कि उन्हें नानी याद आ गई। मराठों की वीरता को देख कर अब्दालो दंग रह गया, उसके छक्के छूट गये। आया था हिन्दुस्तान को विजय करने का स्वप्न ले कर, यहां पहले ही मोर्चे पर लेने के देने पड़ गये। उसे सही सलामत पहुंचने की भी आशा नहीं रही। उसने युद्ध क्षेत्र में ही अपने घोड़े से उतर कर ईश्वर से प्रार्थना की "या परवर दिगार, अगर इस वार किसी तरह खैरियत से अपने वतन पहुंच जाऊं तो फिर भूल कर भी कभी इस काफिरों के मुल्क की ओर नज़र न करूं। ये तो बड़े ज़ालिम हैं।"

वह लौटने की तय्यारी कर ही रहा था कि अचानक उसी रात उसने मराठों की छावनी में सैकड़ों_सहस्त्रों स्थानों पर आग जलती हुई देखी। वह समझ न सका कि यह माजरा क्या है। क्या मराठे भयभीत हो गए हैं और अपने तंबुओं को आग लगाकर यहां से भाग रहे हैं। पर वे क्यों भागने लगे, मैदान तो आज उनके हाथ आ रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमें धोखे में डालने के लिए यहां अपने कैम्पों में आग लगाकर अन्धेरे में किसी और स्थान पर मोर्चा बना रहे हैं। अपने सन्देह की निवृत्ति के लिए उसने अपना गुप्तचर भेजा। गुप्तचर ने वापस आकर समाचार दिया जहाँपनाह इन मराठों में छुआछूत बहुत ही है, ये एक दूसरे के हाथ का भोजन नहीं खाते हैं। अब युद्ध से निवृत्त होकर अपने-अपने चूल्हों में ये अलग २ रोटी पका रहे हैं। स्थान-स्थान पर उन्हीं हजारों चूल्हों की यह आग दीख रही है, और कोई वात नहीं है।

अच्छा यह बात है—अब्दाली को ढाढ़स बंध गया। गई हुई हिम्मत फिर वापिस आ गई। उसने अपने सिपहसालार (सेना पति) को उसी समय बुलाया और अपनी सेना को आक्रमण करने के लिए तैयार करने का आदेश दिया। सिपहसालार अब्दाली के मुंह की ओर देखता रहा—इसे हो क्या गया है। रात का समय है, सारे सैनिक थके पड़े हैं। दिन-भर मराठों की मार खाते-खाते अब कहीं सुस्ताने का समय मिला है, और यह कहता है कि सेना को हमले के लिये तय्यार करो। बात क्या है, कहीं निराशा के कारण बादशाह को मतिविभ्रम तो नहीं हो गया है।

अब्दाली ने सिपहसालार के चेहरे पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंकित भाव को पढ़ लिया और उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहने लगा—सामने देखो वह क्या है ? जगह-जगह आग चमक रही है न ! मैंने अभी गुप्तचर को भेजा था। उसने मुझे आकर बताया है कि मराठे अलग-अलग चूल्हों में अपनी अलग रोटी पका रहे हैं और सिपहसालार क्या तुम नहीं जानते कि जो लोग आपस में इकट्ठे बैठकर रोटी भी नहीं खा सकते, उनको हराना कोई बड़ी बात नहीं है।

हुआ क्या? अब्दाली की सेना ने उसी समय मराठों पर धावा बोल दिया। कोई मराठा आग जला रहा था, कोई आटा गूंद रहा था। कोई दाल छोंक रहा था। कोई रोटी सेक रहा था और कोई खा रहा था। लाखों सेनिकों में से दो सहस्र भी अब्दाली का मुकाबला करने को तय्यार न हो सके। मराठा सेना में भगदड़ पड़ गई। भाऊ मारा गया और मराठों का शक्ति-सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया।

★

वीरों का गुण-गान

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर

(१)

वीरों के गुण-गान किया कर।
उनके चरण चिह्न पर चल कर॥
तू आत्मिक उत्थान किया कर।
वीरों के गुण-गान किया कर॥

(२)

हीरे को मत कांच समझ तू।
मिथ्या को मत सांच समझ तू॥
खोटे और खरे की कुछ तो,
इस जग में पहचान किया कर॥

वीरों के गुण-गान किया कर॥

(३)

प्रभु का उर विश्वास अटल ले।
धर्मात्मा का पक्ष प्रबल ले॥
अत्याचारी का विरोध तू,
निर्भय सीना तान किया कर॥

(४)

आये काम न तेरी पूंजी।
बन "प्रकाश" ऐसा मत मूंजी॥
सौ हाथों से कमा सहस्रों,
हाथों से फिर दान दिया कर॥

वीरों के गुण-गान किया कर॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वेदों की कुछ पहेलियां—२

श्री पं० रामनाथ जी वेदालङ्कार (वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी)

गुरुकुल पत्रिका के भाद्रपद अङ्क में वेदों की कुछ पहेलियों का दिग्दर्शन कराया गया था। आइये, आज कुछ अन्य वैदिक पहेलियों का रसास्वादन करें। सबसे पूर्व तीन केशधारी साधुओं का दर्शन करते हैं।

तीन केशधारी साधु

त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते
संवत्सरे बपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिः
ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥
ऋग्० १. १४६. ४४।

(त्रयः केशिनः) तीन केशधारी साधु हैं, (ऋतुथा विचक्षते) वे हर ऋतु में प्राणियों पर कृपादृष्टि रखते हैं। (एक एषाम्) इन में से एक ऐसा है जो (संवत्सरे वपते) वर्ष-भर बीज बोता और फसल काटता रहता है। (एकः) दूसरा ऐसा है जो (शचीभिः विश्वम् अभिचष्टे) अपनी क्रियाओं से विश्व को चमकाता रहता है। (एकस्य ध्राजिः ददृशे न रूपम्) तीसरा ऐसा है जो सदा दौड़ता ही रहता है, पर आश्चर्य यह कि उसकी गति तो मालूम होती है, किन्तु रूप दिखाई नहीं देता। पहचानिए, यह तीन साधु कौन-से हैं।

निरुक्तकार हमें बताते हैं कि ये तीन केशधारी साधु क्रमशः अग्नि, सूर्य और वायु हैं। अग्नि के धूम रूपी केश होते हैं। वह वर्ष-भर जलाने का कार्य करता रहता है। (वपते) यहां 'वप्' धातु में श्लेष है। 'वप्' का अर्थ बीज बोना और काटना भी होता है तथा वेद में जलाना अर्थ भी होता है। दूसरा साधु सूर्य है, उसके किरण रूपी केश हैं। वह अपनी प्रकाश प्रदानादि क्रियाओं से निरन्तर सारे जगत् को प्रकाशित करता रहता है। तीसरा साधु वायु है, जिसके रजःकण या जलकण रूपी केश हैं। जो सदा दौड़ता रहता है, और जिसकी गति को तो हम अनुभव करते हैं, पर रूप नहीं देख पाते।

अथवा ये तीन साधु जीव, प्रकृति-तत्त्व और ब्रह्म हैं। इनकी अपनी-अपनी शक्तियाँ हो इनके केश हैं। बीज बोने और फसल काटने वाला साधु जीव है, क्योंकि वह निरन्तर कर्म करता हुआ अच्छे या बुरे संस्कारों का बीज बोता रहता है और वैसी ही अच्छी या बुरी फसल काटता अर्थात् अच्छे-बुरे फल भोगता रहता है। दूसरा साधु प्रकृति-तत्त्व है, जो अपने गुण कर्मों से (शचीभिः) विश्व को रूपयुक्त करता है (अभिचष्टे) तीसरा साधु ब्रह्म है जिसकी संसार में क्रिया (ध्राजिः) तो दृष्टि-गोचर होती है, परन्तु रूप दिखाई नहीं देता।

अब एक अद्भुत बैल का वर्णन सुनिए।

चार सींग और तीन पैरों का बैल

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥
ऋग्० ४। ५८। ३, यजु० १७। ९१

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(वृषभः) एक बैल है जिसके (चत्वारि शृङ्गा) चार सींग हैं, (त्रयो अस्य पादा) तीन पैर हैं, (द्वे शीर्षे) दो सिर हैं, (सप्त हस्तासो अस्य) सात हाथ हैं, (त्रिधा बद्धः) तीन स्थानों से बंधा हुआ वह (रोरवीति) जोर से डकरा रहा है । वह साधारण बैल नहीं किन्तु (महो देवः) एक महान् देव है, (मर्त्यान् आ विवेश) जो सब मनुष्यों को प्राप्त हुआ है ।

देखिये, वेद ने पहेली भी कह दी और उसका अता-पता भी दे दिया कि वह बैल सब मनुष्यों के पास है ।

महाभाष्यकार पतंजलि ने इस पहेली को यों बूझा है—यह बैल शब्द है । शब्द के चार भेद नाम,आख्यात,उपसर्ग,निपात ही इस बैल के चार सींग हैं । भूत, भविष्य, वर्तमान ये तीन काल इसके तीन पैर हैं । सुप् और तिङ् दो सिर हैं । सात विभक्तियां सात हाथ हैं । यह शब्द रूपी बैल उरस्,कण्ठ और सिर इन तीन स्थानों में बंधा हुआ बोल रहा है, क्योंकि तीनों स्थानों की सहायता से उच्चरित होता है ।

निरुक्त की व्याख्यानुसार यह बैल यज्ञ है। चार वेद ही उसके चार सींग हैं । प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन, सायं सवन ये तीन सवन तीन पैर हैं । प्रायणीय तथा उदयनीय उसके दो सिर हैं। गायत्र्यादि सात छन्द सात हाथ हैं। वह यज्ञ रूपी बैल मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प इन तीनों से बंधा हुआ है । यज्ञ में होने वाला मन्त्र पाठ ही उस बैल का बोलना है ।

सायण, महीधर प्रभृति भाष्यकारों ने इस पहेली की कुछ अन्य व्याख्याएं भी प्रस्तुत की हैं जो बहुत-कुछ उक्त व्याख्याओं से मिलती-जुलती ही हैं । सायण का कथन है कि इस मन्त्र के अग्नि, सूर्य, अप्, गौ और घृत ये पाँच देवता हैं, अतः यह पहेली पांच प्रकार से व्याख्यात हो सकती है ।

अस्तु, इस पहेली की अन्य व्याख्याएं हम पाठकों की कल्पना के लिए छोड़ कर आगे बढ़ते हैं । अब चार चोटियों वाली एक युवति का शृंगार देखिए ।

चार चोटियों वाली युवति

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा,
घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुः,
यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥
—ऋग्० १०।११४।३

(युवतिः) एक युवति है, (चतुष्कपर्दा) उसकी चार चोटियां हैं, (सुपेशाः) वह बहुत सुन्दर है, (घृतप्रतीका) उसने मुख पर घृत लगाया हुआ है, (वयुनानि वस्ते) 'वयुन' की साड़ी पहने है, (तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुः) उस युवति के सिर पर वर्षा करने वाले दो पक्षी बैठे हैं (यत्र देवा दधिरे भागधेयम्) उसी युवति के द्वारा देव अपना-अपना भाग प्राप्त करते हैं ।

भाष्यकार सायण के अनुसार यह युवति यज्ञवेदि है। चतुष्कोण होने से वह चार चोटियों वाली है, अलंकृत होने से सुन्दर है, घृतहवि से युक्त होने के कारण घृतप्रतीका है । वयुन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थात् वेदमन्त्र या यज्ञविधियां ही उसकी साड़ी है। उस वेदि पर बैठे दो पक्षी हैं याज्ञिक पति-पत्नी या 'यजमान और ब्रह्मा,' जो दोनों ही हवि की वर्षा करते रहते हैं। उस वेदि द्वारा ही अग्न्यादि देव अपने-अपने हविर्भाग को पाते हैं।

अथवा इसी भाष्यकार की दूसरी व्याख्या को लें तो यह युवति औपनिषदी वाक् है। नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात ही उसकी चार चोटियां हैं। देदीप्यमान वर्णावयवों वाली होने से वह घृतप्रतीका है (घृत=दीप्त, घृ क्षरणदी-प्त्योः) वयुन अर्थात् ब्रह्मज्ञान उसकी साड़ी है। उस पर स्थित दो पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं जिनका वह वर्णन करती है।

अब एक चक्र की चर्चा सुनिए।

एक विलक्षण चक्र

द्वादशारं नहि तज्जराय,
वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र,
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥

—ऋग्० १।१६४।११

(चक्रम्) एक चक्र है, (द्वादशारम्) जिसमें बारह अरे लगे हैं, (नहि तत् जराय) वह टूटता नहीं है, (द्यां परि वर्वर्ति) आकाश में चक्कर काट रहा है, (अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च मिथुनासः पुत्राः आतस्थुः) इसके ऊपर इसके सात सौ बीस पुत्र-पुत्रियां बैठे हुए हैं।

बताइये, सात सौ बीस पुत्र-पुत्रियों का पिता बन उन्हें अपने कन्धे पर बैठा कर आकाश की सैर कराने वाला यह चक्र कौनसा है? यह चक्र है आदित्य या संवत्सर। बारह महीने ही उसके बारह अरे हैं। वर्ष के तीन सौ साठ दिन और तीन सौ साठ रात्रियां उसके सात सौ बीस पुत्र-पुत्रियां हैं। यह चक्र ऋत का चक्र है (ऋतस्य चक्रम्), रूसी उपग्रह के समान कृत्रिम चक्र नहीं।

—

आत्मिक और प्राकृतिक उन्नति

आर्य सन्तान! हा! संशयों ने तुम्हें रसातल को पहुंचा दिया। तुम विदेशियों की प्राकृतिक उन्नति को देखकर उसी को सच्ची उन्नति का साधन समझ बैठे।

प्राकृतिक उन्नति भी एक गौण साधन मनुष्य के परम उद्देश्य का है। जिसने आत्मिक उन्नति की; प्रकृति उस के सन्मुख हाथ बांधे स्वयं खड़ी रहती है। आत्मिक उन्नति में शारीरिक और प्राकृतिक उन्नति दोनो सम्मिलित हैं परन्तु प्राकृतिक उन्नति में आत्मिक उन्नति सम्मिलित नहीं।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

महात्मा गांधी जी के कुछ स्मरणीय वचन

ईश्वरीय सहायता—

जब मैं सब आशाएं छोड़ चुका हूं, दोनों हाथ समेट कर मैं बैठ गया हूं, तब कहीं न कहीं से मुझे सहायता मिल ही गई है । यही मेरी जानकारी है । स्तुति करना, उपासना करना या प्रार्थना करना, कुसंस्कार नहीं है । हमारा खाना, पीना, चलना-फिरना और उठना बैठना जितना सत्य जान पड़ता है यह उससे भी अधिक सत्य है ।

(आत्मकथा पृ० ११७)

प्रार्थना उपासना का फल—

यह उपासना या प्रार्थना कुछ शब्दों का आडम्बर नहीं है । प्रार्थना के उच्चारण का स्थान कण्ठ नहीं बल्कि हृदय होना चाहिए । इसीलिये यदि हम अपने हृदय को निर्मल बना दें, हृदय के तारों को ठीक लय में साध लें, तो उससे जो स्वर निकलेगा वह अपने आप ऊपर की ओर जाएगा। वह स्वाभाविक एक अद्भुत वस्तु है। विकार रूपी मलिनता को दूर करने के लिये उपासना एक महौषधि है, इस विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है । पर उस कृपा को प्राप्त करने के लिये अपने अन्दर पूर्ण मात्रा में सच्ची नम्रता को लाने की आवश्यकता है ।

(आत्मककथा पृ० ११७)

जीवन का ध्येय ईश्वर साक्षात्कार—

मेरा जीवन क्या है—यह तो सत्य की एक प्रयोग-शाला है । मेरे सारे जीवन में केवल एक ही प्रयत्न रहा है—वह है मोक्ष की प्राप्ति-ईश्वर का साक्षात् दर्शन । मैं चाहे सोता हूं या जागता हूं, उठता हूं या बैठता हूं, खाता हूं या पीता हूं, मेरे सामने एक ही ध्येय है । उसी को लेकर मैं जिन्दा हूं । मेरे व्याख्यान या लेख और मेरी सारी राजनैतिक हलचल सभी उसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर गतिविधि पाते हैं । मेरा यह दावा नहीं है कि मैं भूल नहीं करता । मैं यह नहीं कहता कि मैंने जो किया वही निर्दोष है । पर मैं एक दावा अवश्य करता हूं कि मैंने जिस समय जो ठीक माना उस समय वही किया । जिस समय जो धर्म लगा उससे मैं कभी विचलित नहीं हुआ । मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेवा ही धर्म है और सेवा में ही ईश्वर साक्षात्कार है ।

(घनश्यामदास बिरला कृत 'बापू' पृ० १० से उद्धृत)

ब्रह्मचर्य का फल—

पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का अर्थ है—ब्रह्म-दर्शन । ब्रह्मचर्य में ही शरीररक्षा, बुद्धिरक्षा और आत्मा की रक्षा निहित है । अब ब्रह्मचर्य मेरे लिये कठोर साधन की वस्तु के रूप में नहीं रहा, बल्कि वह एक अपूर्व रसास्वादन का विषय बन गया और उसी के आश्रय से मेरा जीवन परिचालित होने लगा । जब से मुझे उसके सौंदर्य में नित्य नवीनता दिखाई देने लगी । इस व्रत का ग्रहण करना, तलवार की धार पर चलने के बराबर है, इस बात को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनुभव भी मैं नित्यप्रति करता हूं । इसके लिये आज भी सदा सजग रहने की आवश्यकता है ।

(आत्मकथा पृष्ठ ३१३)

ब्रह्मचर्यहीन जीवन पशुवत् है--

मुझे तो ब्रह्मचर्य हीन जीवन शुष्क और पशुवत् मालूम होता है । पशु सम्भवतः ही असंयमी होते हैं लेकिन मनुष्य का मनुष्यत्व ही यह है कि वह स्वेच्छा से संयम के अधीन होकर रहे । जिस ब्रह्मचर्य में इतनी अद्भुत शक्ति है वह कोई हंसी खेल का विषय नहीं, वह केवल शारीरिक वस्तु नहीं । शारीरिक संयम के द्वारा तो केवल ब्रह्मचर्य का श्री गणेश होता है । परन्तु शुद्ध ब्रह्मचर्य में विचार तक में मलिनता न होनी चाहिए । पूर्ण ब्रह्मचारी के विचार स्वप्नों में भी विकार युक्त नहीं होते । जब तक विकार युक्त स्वप्न आते रहें तब तक यह समझना चाहिये कि ब्रह्मचर्य अभी दूर है ।

(आत्मकथा भाग २ पृष्ठ ६४)

न्याययुक्त व्यवहार--

मेरे अनुभव मुझे बताते हैं कि यदि विपक्षी के साथ न्याय का बर्ताव किया जाता है तो अपने पक्ष के लिये न्याय का पाना सहज हो जाता है ।

(आत्मकथा पृ० २७३)

ईश्वरार्पित जीवन--

ईश्वर जो हुक्म करता है, मैं वही करता हूं । मैं किसी के कहने से कैसे भाग सकता हूं । किसी के कहने से मैं खिदमतगार (सेवक) नहीं बना । किसी के कहने से मिट नहीं सकता । ईश्वर की इच्छा से मैं जो हूं, बना हूं । ईश्वर को जो करना है करेगा । ईश्वर चाहे तो मुझे मार सकता है । मैं समझता हूं मैं ईश्वर की बात मानता हूं । मैं हिमालय क्यों नहीं चला जाता ? वहाँ रहना तो मुझे पसंद आयेगा । ऐसा नहीं कि मुझे वहां खाना, पीना, ओढ़ना नहीं मिलेगा । मगर मैं अशांति में से शांति चाहता हूं नहीं तो अशांति में मर जाना चाहता हूं । मेरा हिमालय यहां है । आप सब हिमालय चलें तो मुझको भी अपने साथ ले चलें ।

(२९. १. ४८ को अर्थात् हत्या से १ दिन पूर्व महात्मा गांधी जी के प्रार्थना सभा में दिये महत्वपूर्ण भाषण से उद्धरण ।

हरिजन सेवक ८. २. ४८) ।

पक्षपाती सत्यवादी नहीं

जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता । —ऋषि दयानन्द ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी चाहियें)

आत्म कथा अर्थात् आपबीती जगबीती

लेखक—आचार्य नर देव शास्त्री जी वेद तीर्थ कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर प्राप्ति स्थान—महाविद्यालय ज्वालापुर उ० प्र०, पृष्ठ संख्या ६१० मूल्य ५) ।

आचार्य नर देव जी शास्त्री आर्य जगत् के एक प्रसिद्ध विद्वान् लेखक हैं जो अपनी राजनैतिक सेवाओं के कारण भी अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं । लगभग ७९ वर्ष की आयु में अपनी इस आत्मकथा को जनता के हितार्थ प्रकाशित करना उन्होंने उचित समझा है और वस्तुत: उन्होंने इसे न केवल रोचक अपितु शिक्षाप्रद बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है । जहां अपनी त्रुटियों का भी उन्होंने स्पष्ट उल्लेख स्थान २ पर किया और उस से अन्यों को शिक्षा देने का यत्न किया है वहां शिक्षा, राजनीति तथा सामाजिक क्षेत्र में सम्पर्क में आने वाले प्राय: सब व्यक्तियों और संस्थाओं का भी उन्होंने न केवल परिचय दिया है प्रत्युत उन के गुण-दोषों का विवेचन भी किया है । अपने विषय में उन्होंने भूमिका में बड़ी स्पष्टवादिता के साथ लिखा है कि हम क्या हैं ?

"जब छोटे थे समझ नहीं थी, जब बड़े हो गये कुछ अक्षर सीख गये तो हमारे अभिमान का पारा कहीं का कहीं चढ़ गया था किन्तु अब जब कि विवेकिनी बुद्धि परिपक्व दशा में पहुंच गई है तो समझ में आ रहा है कि हम वह नहीं हैं जैसा कि अपने आप को समझते रहे हैं । हम उतने भी नहीं हैं जितना कि अपने आपको समझते रहे हैं ।

फिर हैं क्या ?

जिसका मस्तिष्क का अंधकार दूर हो गया है और जिस के आंखों की धुन्ध उतर गई है, जो संसार को किसी नवीन ही दृष्टि से, नवीन ही रूप में देख रहा है ऐसे प्राणी बन गये हैं हम। अपनी त्रुटियों और दोषों के लिये दूसरों को दोष देते देते मर गये किन्तु कभी अपने दोषों पर दृष्टि पात करने की हिम्मत ही नहीं हुई । ऐसे प्राणियों की आंखों की धुन्ध जब दूर हो जाती है तब उन की जो दशा हो जाती है

वही हमारी है ।

अपने जीवन के अनुभवों का विद्वान् लेखक महोदय ने स्थान-स्थान पर अच्छा उल्लेख किया है । पृष्ठ ६१ पर लिखा है—

"यह भी अनुभव हुआ कि अच्छे से अच्छा और बड़े से बड़ा कार्य करके भी मनुष्य अभिमान को पास फटकने न देवे । ऋजुता विनम्रता आदि भाव सदैव साथ रहें । प्रत्येक कार्य में भाव शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है । जितनी भावशुद्धि होगी सफलता भी उसी रूप में, उसी अंश में मिलेगी ।"

पृ० ६३ पर अपने अनुभव के आधार पर आपने लिखा है कि "सार्वजनिक कार्य करने वालों को सब परिस्थितियों में मधुर स्वभाव रखना आवश्यक है ।"

पृ० ६५ पर मान्य शास्त्री जी ने लिखा है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"यह भी अनुभव हुआ कि सार्वजनिक जीवन में कभी-कभी स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक अपमान व निरादर का घूंट पी लेने से भविष्य में बड़ा लाभ होता है। ब्राह्मण को तो अपमान का सदा स्वागत करना चाहिए, इससे उसका तेज बुझने नहीं पाता। स्वागत और सन्मान से ब्राह्मण मर जाता है।" इत्यादि। पृ० ६६ पर अपने जीवन के अनुभवों और प्राप्त शिक्षाओं को संक्षेप से आपने निम्न रूप में अंकित किया है—

सब से लाभदायक यह अनुभव मिला कि सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण लेने से वह अवश्य ही प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है। कठिन प्रसङ्गों पर आन्तरिक शब्दों द्वारा सावधान कर देता है। मेरे अनुभव का सारांश यह है
(१) सच्चे हृदय से ईश्वर प्रार्थना, उपासना।
(२) क्षमा अर्थात् सहनशीलता।
(३) अपकार के बदले उपकार।
(४) कर्म-अकर्म-विकर्म मीमांसा पर गहन दृष्टि।
(५) समबुद्धि का आंशिक प्रयोग व उस में आशातीत सफलता।
(६) प्रत्येक घटना का वेदान्त की व्यापक दृष्टि से विचार—आत्म परीक्षण का अभ्यास।
(७) प्रायश्चित्त, ब्रह्म-जप, गायत्री-जप इत्यादि।
पृष्ठ २२० से २४२ तक 'कृष्ण मन्दिर के पुष्प-गुच्छ' इस शीर्षक से जेल में पढ़ी पुस्तकों में से बड़े उत्तम वाक्यों का संग्रह है। ऐसे ही पुस्तक के अन्य प्रायः सभी भाग शिक्षा प्रद हैं। अपने माता पिता, गुरुजनों तथा मित्रों के प्रति कृतज्ञता का भाव सर्वत्र टपकता है। इस प्रकार यह आत्मकथा अत्यधिक विस्तृत होने पर भी रोचक होने के अतिरिक्त अच्छी शिक्षा प्रद बन गई है। इस कारण हम इस का अभिनन्दन करते हैं। क़ाग़ज छपाई आदि उत्तम, इस पर भी मूल्य लागत मात्र ५) रखा गया है।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

Mahatma Buddha—an Arya Reformer

लेखक और प्रकाशक श्री पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, गुरुकुल कांगड़ी पृष्ठ १६० मूल्य १)५०।

मैंने पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड कृत महात्मा बुद्ध—एक आर्य सुधारक विषयक अंग्रेजी पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा जिस में महात्मा बुद्ध के ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, वेदादि विषयक विचारों को दरशाते हुए सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि वे नास्तिक न थे किन्तु एक आर्य सुधारक थे जिन्होंने उस समय समाज में प्रचलित जातिभेद, यज्ञों में पशुहिंसादि अवैदिक हानि कारक प्रथाओं का प्रबल खण्डन किया। पुस्तक का विषय तो उत्तम था ही, क़ाग़ज भी अच्छा लगाया गया है और छपाई भी अच्छी है। उत्तम पुस्तक हो गई। आर्य भाषा में पं० धर्म देव जी की कई उत्तम पुस्तकें थीं ही। अंग्रेज़ी में भी यह एक बहुत अच्छी पुस्तक बन गई। योग्य लेखक को बधाई।

गङ्गाप्रसाद एम. ए.
(रिटायर्ड चीफ़ जस्टिस टिहरी गढ़वाल), जयपुर

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

श्री राजा जी आदि का राष्ट्रहित विरोधी आन्दोलन—

हमें यह देखकर अत्यन्त दुःख और आश्चर्य होता है कि भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य जैसे बुद्धिमान् महानुभावों ने जिनमें डा. सी-पी. राम स्वामी ऐय्यर 'हिन्दू' अंग्रेज़ी पत्र के सम्पादक के. श्री निबास'स्वराज्य' के सम्पादक श्री खासा सुब्बाराव आदि भी सम्मिलित हैं भारत के प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरु के नाम एक पत्र लिख कर हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का विरोध किया है और अंग्रेजी को ही वह स्थान देने का अनुरोध किया है। इतना ही नहीं दक्षिण भारत के इन सुप्रसिद्ध सुशिक्षित महानुभावों ने एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता से भी इन्कार करते हुए राष्ट्रिय एकता की दृष्टि से अंग्रेज़ी को राजभाषा बनाए रखने पर बल दिया है। हम इसे नितान्त राष्ट्रहितविरोधी आन्दोलन समझते हैं जिसका नेतृत्व दुर्भाग्यवश श्री राजगोपालाचार्य कर रहे हैं। पिछले दिनों श्री राजा जी ने मद्रास में एक भाषण देते हुए कहा—

'क्या कारण है कि मैं हिन्दी के सम्बन्ध में इतनी अधिक सभाओं में भाषण दे रहा हूं? बात यह है कि यदि हिन्दी को भारतीय प्रशासन की भाषा बनाया गया तो हमें इसका विरोध करना पड़ेगा। यह **प्रश्न ऐसा है कि जिस का हम लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ेगा।** इस लिये मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि आपको इस प्रश्न को न केवल समझा दूं अपितु इसके विरोध के लिये खड़ा कर दूं। हम को राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री ने इस प्रकार का आश्वासन दिया है कि वे एक भी व्यक्ति पर हिन्दी को नहीं लादेंगे। परन्तु देखिये तो सही कि वास्तव में क्रियात्मक रूप से वे क्या कर रहे हैं? पोस्टकार्ड और मनी आर्डर तक हिन्दी में छापे जा रहे हैं और उस में सब सूचनाएं हिन्दी में छापी जा रही हैं। इस प्रकार चुपचाप हिन्दी को प्रचलित किया जा रहा है और हमें हिन्दी की प्रशिक्षा दी जा रही है। हमें भय है कि अभी बहुत सी इस प्रकार की बातें की जाएंगी जिन से कि हिन्दी हम पर लादी जाएगी। स्पष्ट है कि इस आश्वासन का कि 'हिन्दी हम पर लादी नहीं जाएगी। कुछ विशेष मूल्य नहीं है। हमें इस सम्बन्ध में सतर्क, क्रिया शील और अपनी रक्षा के लिये तय्यार रहना चाहिये।'

इस प्रकार के भाषण कितने राष्ट्रहित विरोधी और संकुचित दृष्टि पूर्ण हैं यह लिखने की आवश्यकता नहीं। रेखाङ्कित शब्दों से स्पष्ट है कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठापित होने से जो मद्रासी अब तक भारतीय सरकार के प्रायः सभी कार्यालयों में अंग्रेजी की प्रवीणता के कारण आधिपत्य जमाये बैठे थे उस में अन्तर पड़ जाएगा वस्तुतः इसी कारण उसका विरोध हो रहा है अन्य कोई युक्ति नहीं जिस के आधार पर अंग्रेजी जैसी एक विदेशीय भाषा को स्वतन्त्र भारत में सदा के लिये राजभाषा बनाये रखने पर बल दिया जा रहा है। २८ अक्टूबर को प्रधान मन्त्री जी के नाम इन मद्रासी ३४ नेताओं के द्वारा लिखे जिस पत्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का हम ने ऊपर निर्देश किया है उस के अन्तिम भाग में भी स्पष्टतया यह बात कही गई है कि जिनकी मातृभाषा हिन्दी है वे इस में शीघ्र निपुणता प्राप्त कर लेंगे और सरकारी सब क्षेत्रों में अन्यों के ऊपर अन्यायपूर्ण लाभ उठालेंगे। उस में उन्होंने यह विचित्र और असंगत बात भी लिखने का साहस किया है कि Natinal unity by no means depends on the existence of one language.' अर्थात् राष्ट्रिय एकता के लिए एक भाषा का होना कोई आवश्यक नहीं। इस सम्बन्ध में परममान्य राष्ट्रपति जी ने एक भाषण में बहुत ही अच्छी बात कही थी कि "देश की स्वतन्त्रता के लिए एक देशी भाषा का राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है। कोई विदेशी भाषा हमारी संस्कृति तथा हमारे स्वरूप और प्राण को व्यक्त करने की शक्ति नहीं रखती। यद्यपि भारतवर्ष में अनेक भाषाएं हैं किन्तु सब की तह में संस्कृति का एक ही स्रोत बहता है। उस स्रोत तक कोई विदेशी भाषा हमको नहीं पहुंचा सकती। इसलिये हमारे लिये राष्ट्रभाषा कोई भारतीय भाषा ही हो सकती है। अपने प्रचार और प्रयास के कारण वह भाषा हिन्दी ही है। राष्ट्र भाषा से यदि अभिप्राय है कि यह अन्तर प्रान्तीय व्यापार और सार्वजनिक व्यवहार में सभी प्रान्तों के रहने वालों द्वारा बरती जाए और कन्याकुमारा से बदरिकाश्रम तक और अटक से कटक तक सभी जगहों में एक दूसरे के साथ बातें करने और विनिमय के काम में आएं। अनेकानेक भेद-प्रभेद होते हुए भी हिन्दी इन शर्तों को पूरा करती है।" (राष्ट्र भाषा दिसम्बर १९५७)

हमें लगभग २० वर्ष दक्षिण भारत में रहने का अवसर प्राप्त हो चुका है और हम मद्रासी भाइयों की तीव्र बुद्धि से सुपरिचित हैं। हमें ज्ञात है कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास (जिस के उपप्रधान स्वयं श्री राजगोपालाचार्य जी बहुत वर्षों तक रहे हैं) और आर्य समाज जैसी संस्थाओं के परिणाम स्वरूप दक्षिण भारत के नर-नारियों ने बहुत बड़ी संख्या में प्रेम के साथ हिन्दी को सीखा था। अब भी वह कार्य चल रहा है और दक्षिणभारत के नर नारी सुगमता से कुछ ही समय में हिन्दी को सीख सकते हैं अतः हम श्री राजा जी तथा अन्य दक्षिणभारतीय नेताओं से अनुरोध करते हैं कि वे इस राष्ट्हितविरोधी और दासमनोवृत्ति सूचक आन्दोलन को बन्द करके भारतीय संविधान सभा द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास और प्रचार में सहायक हों। इसमें हिन्दी के लादने का कोई प्रश्न नहीं। राष्ट्रभाषा को प्रेम-पूर्वक सीखना और उस का प्रचार करना प्रत्येक सच्चे देश भक्त नर-नारी का कर्तव्य है।

इस विषय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सुयोग्य अध्यक्ष श्री डा० चिन्तामणि देशमुख जी ने गत २९ अक्टूबर को नागपुर में भाषण देते हुये ठीक ही कहा था कि 'यदि भारत अपनी राष्ट्रभाषा का विकास नहीं कर सकता तो वह अपनी आज़ादी को कैसे कायम रख सकता है? हिन्दी ही राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है और उसे अविलम्ब राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेना चाहिये।'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न्यायाधीश श्री कपूर जी का फ़ीरोजपुर काण्ड विषयक प्रतिवेदन—

हम ने 'गुरुकुल पत्रिका' के कार्तिक अङ्क में इस बात पर खेद प्रकट किया था कि न्यायाधीश कपूर जी के फ़ीरोजपुर काण्ड विषयक प्रतिवेदन को प्रकाशित करने में पंजाब सरकार अनावश्यक विलम्ब कर रही है। उस के कई दिन पश्चात् पंजाब सरकार ने उस प्रतिवेदन के कुछ अंशों को (३० पृष्ठों में से केवल साढे चार पृष्ठों के लगभग) प्रकाशित किया है किन्तु जनता और ट्रिब्यून, स्टेट्समैन तथा अन्य सुप्रसिद्ध पत्रों के अनुरोध करने पर भी पूरे प्रतिवेदन को अब तक (१६ दिसम्बर तक) प्रकाशित नहीं किया यह अत्यन्त दुःख और आश्चर्य की बात है। जो अंश प्रकाशित हुआ है उस से श्री पं० अलगूराय जी शास्त्री के प्रतिवेदन में अङ्कित तथ्यों का पूर्णतया समर्थन होता है। उदाहरणार्थ उस में कहा गया है कि इस बात का स्पष्ट प्रमाण विद्यमान है कि विचाराधीन कैदियों को बैरकों में पीटा गया जहां वे विश्राम कर रहे थे या पढ़ रहे थे या अन्य किसी शान्ति पूर्ण कार्य में व्यस्त थे या शौचालय अथवा स्नानागार में थे। श्री कपूर ने लिखा है कि संभवतः चातुरी से और विना दण्ड प्रहार किये स्थिति का सामना किया जा सकता था। वास्तव म जो शक्ति-प्रयोग किया गया वह सब सीमाओं से अधिक था। दण्ड प्रहार अपराधी कैदियों से भी करवाया गया। जिस से घायल होने पर श्री सुमेरसिंह का देहान्त हो गया और ३०९ विचाराधीन बन्दी घायल हुए। २९ को गम्भीर चोटें आई।'

पंजाब सरकार को चाहिये कि न्यायाधीश कपूर जी के प्रतिवेदन को अविकलरूप से अविलम्ब प्रकाशित कर दे और इस बर्बरतापूर्ण अत्याचार के लिये उत्तरदायी समस्त अधिकारियों को कठोर दण्ड दे। यह दुःख की बात है कि अभी तक सम्बद्ध अनेक अधिकारियों को कोई कठोर दण्ड नहीं दिया गया और पंजाब सरकार हिन्दी सत्याग्रहियों के प्रति दमननीति का प्रयोग कर रही है जिसकी तीव्र आलोचना गत १० दिसम्बर को लोकसभा में करते हुए श्री ठाकुरदास भार्गव ने (हिन्दी रक्षान्दोलन से सर्वथा असम्बद्ध होते हुए भी) बताया कि पंजाब सरकार ने केवल रोहतक ज़िले से १९०००० रुपये जुर्माने के रूप में प्राप्त किये हैं। राजनैतिक विरोधियों पर झूठे अभियोग चलाये गये हैं और बहू अकबरपुर और फ़िरोजपुर में जलिया वाला बाग़ की स्मृति को ताज़ा करने वाली घटनाएं हुई हैं इत्यादि। सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्यसमिति के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त ने १४ दिसम्बर को नागपुर में भाषण देते हुए घोषणा की कि यदि पंजाब सरकार प्रधान मन्त्री नेहरू जी द्वारा गान्धी ग्राम में की गई घोषणा से सहमत हो कि किसी पर किसी भाषा को लादने का सवाल नहीं उठता तो भाषा समस्या का सारा झगड़ा समाप्त हो जाएगा। उन्होंने कहा कि मेरी लड़ाई खतम हो जाएगी यदि पंजाब सरकार श्री नेहरू जी का सुझाव स्वीकार कर ले और घोषणा कर दे कि हिन्दी या पंजाबी कोई भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भाषा लादी नहीं जाएगी तथा छात्रों को अपनी शिक्षा के माध्यम के रूप में किसी भी भाषा के चुनाव करने का अधिकार होगा। हम पंजाब सरकार से अनुरोध करते हैं कि श्री नेहरू जी के उपर्युक्त निर्देशानुसार घोषणा कर के जनता के घोर असन्तोष को दूर कर दे।

काठमांडू (नैपाल) में १० हज़ार पशुओं की बलि

समाचार पत्रों से यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गत विजयदशमी के दिन २ अक्टूबर को नैपाल की राजधानी काठमांडू के विभिन्न मन्दिरों में देवी पूजार्थ लगभग १० हजार पशुओं की बलि दी गई। परम्परानुसार हरेक घर इस दिन एक दो बकरों की बलि देता है।"

इस प्रकाश के युग में भी अभी तक लोग ऐसे अन्धविश्वास में फंसे हुये हैं कि धर्म के नाम पर ऐसा अधर्म करते हुए नहीं संकोच करते यह कितने आश्चर्य की बात है ? केवल नैपाल में ही नहीं अन्य भी देश के अनेक भागों और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में भी इस प्रकार पशुओं की बलि, पूजा के नाम पर चढ़ाई जाती है। ऐसी कुप्रथाओं के विरुद्ध प्रबल आंदोलन करना चाहिए और शासन द्वारा भी उन्हें बन्द कराने का यत्न करना चाहिये जैसा कि त्रावन्कोर आदि कई उन्नत राज्यों में हो चुका है।

आचार्य विनोबा भावे द्वारा एक लिपि आन्दोलन का प्रबल समर्थन—

आचार्य विनोबा १४ भाषाओं के ज्ञाता विद्वान् महानुभाव हैं। पिछले दिनों 'मातृ-भाषा राष्ट्र-भाषा और एक लिपि' इस विषय पर उन्होंने केरल प्रान्त की यात्रा में बड़ा उत्तम भाषण दिया जिस में उन्होंने कहा कि हरेक भाषा के लिये अलग-अलग लिपि सीखनी पड़ती है। अगर एक ही लिपि सारे भारत में होती तो बहुत ही अच्छा होता। योरप में अनेक भाषाएं हैं परन्तु लिपि एक ही है। आज हिन्दी मराठी, नैपाली ये भाषाएं नागरी में में ही लिखी जाती हैं। अगर आपकी भाषा मलयालम भी नागरी लिपि में लिखी जाए तो आप १५ दिन में हिन्दी सीख सकते हैं। राष्ट्र-भाषा हिन्दी सीखने की जितनी ज़रूरत है उतना ही ज़रूरी यह है कि अनेक भाषाओं की लिपि एक बने।"

हम आचार्य बिनोवा जी के इस भारतीय भाषाओं की एक लिपि विषयक विचार से सर्वथा सहमत हैं। हमें भी एकाध को छोड़ भारत की प्रायः सभी भाषाओं को सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हमारा अनुभव यह है कि किसी भी अच्छे संस्कृतज्ञ के लिये इन सब प्रादेशिक भाषाओं को सीखना अत्यन्त सुगम है। किन्तु लिपि की कठिनाई भयङ्कर है जो विशेषतः दक्षिण की भाषाओं को सीखने के समय अनुभव में आती है। इन भाषाओं में बहुत अधिक संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं अतः यदि देवनागरी लिपि में इन भाषाओं के ग्रंथों का प्रकाशन होने लगे तो बहुत ही कम समय में संस्कृतज्ञ उन्हें सुगमता से सीख कर इनके उत्तम साहित्य से लाभ उठा सकते हैं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

१९—१२—१९५७

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ तत्सत्

छप गई !　　छप गई !!　　छप गई !!!

प्रसिद्ध लेखक

श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की

आत्म-कथा

अर्थात्

आप-बीती जग-बीती

$\frac{२० \times ३०}{८}$ आकार की लगभग ६५०पृष्ठ की छप गई ।

इसमें पिछले ७० वर्ष के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक आन्दोलनों का इतिहास आ गया है, जिन जिन आन्दोलनों और संस्थाओं के साथ शास्त्री जी का सम्पर्क हुआ है। गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, आर्यजगत्, हिन्दीजगत्, पत्रकारजगत्, राजनैतिक जगत् आदि आदि का मनोरंजक वर्णन है। इसमें लङ्का, कश्मीर, गढ़वाल तथा भारत के अन्य प्रदेशों की यात्राओं के भी बोधप्रद वर्णन हैं। भारतीय नेताओं का भी परिचय दिया गया है। जेल यात्राएं भी रोचक ढंग से लिखी गई हैं। सारांश, शास्त्री जी ने इसमें अपने जीवन के अनुभव रोचक, उद्बोधक ढंग से लिखे हैं और पाश्चात्य और पौरस्त्य के समन्वय का सोपपत्तिक ऊहापोह किया है। इस ढंग की पुस्तकें कम देखने को मिलती हैं। पुस्तक सब प्रकार के विचार रखने वालों के काम की है। इसमें शास्त्री जी के संकट और संघर्षमय जीवन के कण कण सजीव होकर बोल रहे हैं।

मिलने का पता— (लेखक)
नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ)
महाविद्यालय, पो० ज्वालापुर
(हरिद्वार)।

ध्यान रहे—

मूल्य डाक व्यय सहित लागत मात्र छह ६) रुपये। { छह रुपये मनीआर्डर से भेजिए, वी० पी० नहीं जाएगी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

इस मास शीत का प्रकोप रहा। मास के मध्य में एक दो दिन लगातार वर्षा के कारण शीत में सहसा अत्यन्त वृद्धि हुई। ऋतु का मधुर स्वाद प्रत्येक ले चुकाहै । ईख के रस से खीर,नया गुड़ादि बनाना भी प्रारम्भ कर दिया गया है। साधारणतया कुलवासियों का स्वास्थ्य उत्तम है।

श्रद्धानन्द बलिदान पर्व की तैयारी

२३ दिसम्बर को पूज्य स्वामी जी के बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में समस्त गुरुकुल नगरी नानाविध आयोजनों की तैयारी में संलग्न है। "अखिल भारतीय राजहंस चल विजयोपहार वादविवाद प्रतियोगिता" की घोषणा अनेक समाचार पत्रों में की जा चुकी है। यह प्रतियोगिता यहां २७ दिसम्बर को सायं साढ़े सात बजे सम्पन्न होगी। विवाद का विषय है "कांग्रेस सरकार अपने उन उच्च आदर्शों की पूर्ति में सफल रही है, जिनकी कि घोषणा वह स्वाधीनता से पूर्व किया करती थी।" अनेक महाविद्यालयों की इसमें उपस्थित होकर भाग लेने को सूचना हमें प्राप्त हो चुकी है। इसके अतिरिक्त अनेक एकांकी तथा पूरे नाटक, कविदरबार छाया चित्र एवं अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा के अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम किये जा रहे हैं।

इस सप्ताह का एक मुख्य कार्यक्रम"अखिल भारतीय श्रद्धानन्द हाकी टूर्नामैण्ट है। इसकी तैयारी में लगभग सम्पूर्ण मास ही प्रत्येक छात्र ने उमंग और उत्साह सहित अपना योगदान प्रदान किया। इस टूर्नामैण्ट का २१ दिसम्बर शनिवार मध्याह्न ढाई बजे श्री पन्नालाल जी भल्ला के करकमलों सेउद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ।

मान्य श्री पं० हरिदत्त जी को १०००) का पुरस्कार

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मान्य इतिहासोपाध्याय श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार एम. ए. की कृति "हिन्दू परिवार मीमांसा"को गत १९४५ से १९५६ तक के वर्षों में हिन्दी में प्रकाशित इतिहास विषयक पुस्तकों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है और गत ८ दिसम्बर १९५७ को मान्य प्रो० जी को इस कृति के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के विजयानगरम् भवन में हुए हिन्दुस्तानी एकेडेमी के वार्षिक सम्मेलन में डा० ताराचन्द जी के हाथों इस ग्रंथ के लिए १०००) का पुरस्कार दिया गया है। इस पुस्तक को निर्णायकों ने हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य में एक नवीन प्रकार का अध्ययन बताया है और कहा है कि सामाजिक संस्थाओं का इस प्रकार का कोई ऐतिहासिक अध्ययन इससे पूर्व हिन्दी में नहीं हो सका है।

यह ग्रंथ पहले भी पाण्डुलिपि रूप में १९४६ में बंगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता द्वारा १२००) रुपयों के पुरस्कार से सम्मानित हो चुका है। मान्य प्रो० जी की इस शानदार कृति पर पुरस्कार से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के गौरव में अत्यन्त वृद्धि हुई है और कुलवासियों को इस से बड़ी प्रसन्नता हुई है। हम संपूर्ण श्रद्धानन्द नगरी की ओर से मान्य प्रो० जी को वधाई देते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संग्रहालय की गतिविधि

गुरुकुलीय संग्रहालय निरन्तर कुछेक वर्षों से उन्नति करता चला जा रहा है । अनेक दुर्लभ पुस्तकों, मूर्तियों, चित्रों आदि के संग्रह में मान्य प्रो० हरिदत्त जी वेदालंकार सप्रयास संलग्न हैं । श्री कैलाशचन्द्र चतुर्दश श्रेणी के बनाए अनेकों चित्रों से संग्रहालय की शोभा द्विगुणित होरही है।

शोक वार्ता

१३ दिसम्बर १९५७ प्रातः लगभग ८ बजे पं० अर्जुनदेव जी, जो कि गत कई मास से रुग्णावस्था में शय्या पर पड़े थे इस भौतिक शरीर को त्याग कर चले गए हैं । पं० जी गत ४० वर्षों से छोटे बच्चों पर आदर्श अनुशासन रख कर अधिष्ठातृत्व कार्य करके गुरुकुल की सेवा में संलग्न थे । हम उन की आत्मा की सद्गति के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं ।

दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्यान

दिसम्बर मास में ब्रह्मचारियों की ज्ञानवृद्धि के लिये दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुए । इन में से एक गुरुकुल के साधारण महाविद्यालय में भौतिकी के उपाध्याय श्री प्रो० सुदर्शनलाल जी M. Sc. का अणुशक्ति पर विज्ञान भवन में चार दिसम्बर को मध्याह्न साधारण महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री पं वागीश्वर जी विद्यालङ्कार एम. ए. की अध्यक्षता में हुआ और दूसरा वेद मन्दिर में १४ दिसम्बर को प्रातः श्री अरविन्दविश्वविद्यालयपाण्डीचेरी में मनोविज्ञान के उपाध्याय श्री डा० इन्द्रसेन जी एम. ए० पी० एच० डी० का 'युवक और हम' इस विषय पर वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री पं० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति की अध्यक्षता में हुआ । इस व्याख्यान से ब्रह्मचारियों और उपाध्याय वर्ग को विशेष लाभ पहुंचा । इसे विशेष उपयोगी होने के कारण गुरुकुल पत्रिका के आगामी किसीअंक में प्रकाशित कर दिया जाएगा जिससे पत्रिका के ग्राहक भी उससे लाभ उठा सकें । दोनों महानुभावों का गुरुकुल की ओर हार्दिक धन्यवाद ।

आचार्य रामदेव दिवस

९ दिसम्बर को वेद मन्दिर में आचार्य प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति की अध्यक्षता में आचार्य रामदेव दिवस मनाया गया जिस में श्री पं. धर्मदेव जी वेद वाचस्पति,श्री पं. भगीरथ जी शास्त्री, पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, पं० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार तथा सभाध्यक्ष जी ने स्व. आचार्य जी के शिष्यप्रेम, विशाल अध्ययन, सादगी और उच्च विचार, प्रचार की लगन, कर्तव्यपरायणादि विषयक अपने संस्मरण सुनाते हुए श्रद्धाञ्जलि समर्पित की ।

गुरुकुल का वेद विषयक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नवीन प्रकाशन—

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस दिसम्बर मास में पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की वैदिक एज् आदि के उत्तर में लिखित 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' इस नाम की ५३० पृष्ठों की पुस्तक गुरुकुल मुद्रणालय से छप कर तय्यार हो गई है । इस की आर्य जगत् में उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी ।

—प्रशान्तकुमार
२२—१२—१९५७

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत	५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	५)००
वरुण की नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	)८७
वैदिक-सूक्तियां	,,	१)७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)००
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)००
सोम-सरोवर,सजिल्द,	श्री चमूपति	२)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१)२
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२)२५

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक		मूल्य
संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग		)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		२)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली		)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द		७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		)७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		)५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४)००
सम्राट् रघु	,,	१)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू	,,	१)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	२)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	,,	)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग		३)५०
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१)२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	५)००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२)५०
लहसुन:प्याज़	श्री रामेश बेदी	२)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२)००
सोंठ, तीसरा ,,	,,	१)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	,,	१)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	,,	५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)	,,	१)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	,,	)५०
देहात की दवाएं, सचित्र		)७५
बरगद		)७५
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१)२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१)७५

विविध पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस.सी.के लिए)		१)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		)७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१)५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१)५०
जमींदार	,,	२)००
सरला की भाभी, १, २ भाग	,,	२)००

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य औषधि शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, पुराना बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पाव २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, सं० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

डॉक्टर महाजनी गुरुकुल में विज्ञान भवन का शिलान्यास कर रहे हैं
(विवरण पृष्ठ १०७ पर देखिए) ।

सम्पादक– श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १० कार्तिक २०१४ अङ्क ३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १११ ★
अक्टूबर १९५७

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

भगवान् के अनन्त दान

ओं यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः ॥

यजु० ३६. २२ ।

शब्दार्थ—

हे परमेश्वर ! (यतः यतः) जहां जहां से तुम (सम् ईहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) वहां से (नः) हमें (अभयं) निर्भय (कुरु) कर दो । (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शम्) कल्याण (कुरु) कर दो और (नः) हमारे (पशुभ्यः अभयम्) पशुओं के लिये भी निर्भयता कर दो ।

निर्भयता—

क्या विस्तृत वसुधा तल में
या अतल जलधि के जल में
क्या नील अनन्त गगन में
या हृदयों में त्रिभुवन में,
तुम जहां जहां से भगवन्
कर रहे सूत्र संचालन;

भय रहित हमें प्रभु ! कर दो
मङ्गल हो सब का वर दो ।
हों सुखी समस्त प्रजाएं
पशु भी निर्भय हो जाएं ।
उमड़ें बस अन्तस्तल में
विश्वास प्रेम पल पल में ।

—वागीश्वर विद्यालङ्कार एम. ए.

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक शिक्षाओं की ओजस्विता

वेदमूर्ति पं सातवलेकर जी का भाषण

(१५ सितम्बर के नवति वर्ष पूर्ति समारोह बम्बई में प्रदत्त ।)

माननीय अध्यक्ष महोदय तथा
उपस्थित बंधु भगिनियो !

आपने यह जो मेरा सत्कार-समारंभ किया है, उसके लिए मैं सबका हृदय से आभार मानता हूं। मुझे विश्वास है कि यह सत्कार सातवलेकर नामक व्यक्ति का नहीं है, अपितु वेद के प्रभावी मानव-धर्म का है। यदि मैं अपने को वेद-धर्म की जागृति के लिए सर्मपित न करता और अपने चित्रकला के धंधे से ही धनोपार्जन करता रहता, तो ९० क्या, १०० वर्ष का होने पर भी मेरा ऐसा अभिनंदन होने की संभावना नहीं थी। यह विशाल समारंभ वास्तव में आपके हृदय की विशालता ही प्रकट करता है तथा उसमें वैदिक धर्म और उसके आदर्शों के प्रति जो विशाल प्रेम है, उसे प्रकट करता है। मैं तो उन ऋषियों का एक छोटा सा संदेशवाहक ही हूं, जिन्होंने प्राचीन काल में अभूतपूर्व तप से इस श्रेष्ठ ज्ञान को उदित किया था। इस ज्ञान के प्रचार में मैंने जिस प्रकार अपने अब तक के ४० वर्ष अर्पित किये हैं, उसी प्रकार मेरा शेष जीवन भी उस महत्कार्य में अर्पित हो जाय, यही प्रार्थना आज फिर, आप सबकी साक्षी में, मैं प्रभु से करता हूं।

वैदिक धर्म का प्रभाव

मैं वैदिक धर्म की ओर आकर्षित क्यों हुआ ? अपना चित्रकला का धंधा ही नहीं, राजनीतिक जीवन भी छोडकर मैं क्यों एकांत निष्ठा से इस कार्य में लग गया ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मैं आप लोगों को देना चाहता हूं। कुछ उदाहरण दे कर मैं अपनी बात को समझाने का प्रयत्न करूंगा।

अपने जीवन में वैदिक धर्म के प्रभाव की कई प्रत्यक्ष घटनाएं मैंने देखीं। सन् १९०६ में मैंने "वैदिक राष्ट्रगीत" नामक पुस्तक अथर्ववेद के बाहरवें काण्ड के प्रथम सूक्त पर, लिखी। उनमें इन मत्रों का अर्थ और स्पष्टीकरण ही था। इसकी २००० प्रतियां बंबई में छापी गयीं और उनमें से दो-ढाई सौ का पहला बंडल ही मेरे पास पहुंचा था कि ब्रिटिश सरकार ने उसको जब्त कर लिया। इसका हिंदी अनुवाद भी इलाहाबाद से छपा था। उसकी भी ३००० प्रतियां जब्त कर ली गयीं। तीन-चार महीने में ही यह सब चमत्कार हुआ। मेरी समझ में नहीं आया कि वेद की एक छोटी सी पुस्तक से सरकार को इतना भय क्यों हुआ। परन्तु इस घटना से इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि वैदिक धर्म यदि जनता में जागृत हो तो ब्रिटिश सरकार के लिए भारत में रहना असंभव हो जायगा।

सन् १९०१ में मैं चित्रकला के धंधे से धन कमाने के उद्देश्य से हैदराबाद गया। उस समय मैं लोकमान्य तिलक का अनुयायी था, इस कारण स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वराज्य आदि विषयों पर व्याख्यान देता था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसी समय आर्यसमाज से मेरा संबंध हुआ और ऋषि दयानन्द के ग्रंथ मुझे पढ़ने को मिले। मुझे भाष्य करने की उनकी प्रणाली पसंद आयी क्योंकि उन्होंने वेदमन्त्रों को मानवी व्यवहार की दृष्टि से अनूदित किया था। मेरे व्याख्यान भी वेदमन्त्रों के आधार पर होते थे। उस समय जो सभाएं होती थीं उन में स्वर्गीया श्रीमती सरोजनी नायडू के पिता, श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करते थे तथा मेरा काम वक्तृता देना होता था। स्वर्गीय केशवराव वकील व्याख्यानों की व्यवस्था करते थे। जनता को मेरे व्याख्यान पसन्द आते थे और शीघ्र ही पता चला कि राज्य के अंग्रेज़ रेजिडेंट का ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित हुआ उसने निजाम सरकार पर दबाव डाल कर हम लोगों के राज्य छोड़ने की आज्ञा निकलवाई। इस तरह वेद-ज्ञान का प्रचार करने के कारण ही मुझे हैदराबाद छोड़ना पड़ा। इस घटना का भी मुझ पर वही प्रभाव हुआ कि मैं वेदिक-ज्ञान तथा धर्म की तेजस्विता पर विश्वास करने लगा।

वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता

हैदराबाद छोड़ने के पश्चात् मैं स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के पास गुरुकुल कांगड़ी चला गया। वहां के विद्यार्थियों को मैं वेद तथा चित्रकला का शिक्षण देने लगा। इसी समय महायोगी श्री अरविन्द के वेद तथा योग आदि विषयक गंभीर लेखों से मेरा परिचय हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैंने वेद की गहराइयों में उतरने का निश्चय किया। मुझे लगा कि गहरे उतरे बिना उस के रहस्यों से परिचित होना सम्भव नहीं है। ऋषि दयानन्द और श्रीअरविंद परस्पर पोषक थे। हैदराबाद में मैं थियासोफी से भी परिचित हुआ था। उसके अध्ययन से भी इस समय भारतीय ज्ञान-भंडार के प्रति मेरी रुचि बढ़ी।

गुरुकुल आने पर मैंने मराठी में "वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता" नाम से एक लेख लिखा, जो कोल्हापुर के "विश्ववृत्त" मासिक में छपा। इस लेख के कारण ब्रिटिश सरकार बहुत रुष्ट हुई। उसने राजा पर दबाव डाल कर हम सब यानी पत्रिका के सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक पर राजद्रोह का मुकदमा चलवाया। जरा विचार कीजिए कि वेदविषयक लेख के कारण राजद्रोह का अभियोग। संपादक श्री विजापुरकर, प्रकाशक श्री जोशीराव तथा मुद्रक श्री जोशी तीनों ही ३॥ वर्ष तक कैद में रक्खे गये। मैं कोल्हापुर से दूर था, इस लिए बहुत दिनों तक पकड़ा नहीं जा सका, यद्यपि मुख्य अभियुक्त मैं ही था। लेकिन एक दिन मैं भी बंदी बना लिया गया और हथकड़ी में कोल्हापुर ले जाया गया। मार्ग में जगह-जगह जनता वेद के लेखक का स्वागत करने स्टेशनों पर आती थी। डेढ़ वर्ष तक मैं भी जेल में रहा और मुकदमा चलता रहा। अन्त में हम सब निर्दोष सिद्ध हुए और मुक्त किये गये। इस समय श्रीमती एनी बीसेंट और गायकवाड़ जैसों ने हमारा समर्थन किया परन्तु वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता ने जैसे सचमुच प्रकट हो कर ब्रिटिश सरकार को प्रभावित किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लाहौर--गमन

इसके पश्चात् मैं लाहौर आया और अपना स्टूडियो खोल कर चित्रकला आदि का काम करने लगा। वहाँ के आर्य समाजों में मेरे व्याख्यान होने लगे और शीघ्र ही मैं पंजाब के सभी नगरों में व्याख्यान देने के लिये जाने लगा। मैं अधिकतर वेद विषय पर ही बोलता था। पंजाबियों के साथ मेरा मन मिलने लगा और मैं वहाँ स्थायी रूप से रहने का विचार करने लगा।

उस समय पंजाब में कुख्यात ओड्वायर गवर्नर था। उसकी सरकार को मेरे व्याख्यान पसंद नहीं आये। मेरी दुकान तथा घर पर पहरा बिठा दिया गया और आने जाने वालों की निगरानी होने लगी। कई कार्यकर्ता गिरफ़्तार भी हुए। मैं वेद पर बोलने के अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं करता था परन्तु उस पर भी रोक टोक होने लगी। अंत में मुझे लाहौर छोड़ना ही पड़ा।

इन सब धटनाओं के कारण मेरे मन पर यह विश्वास जमता ही गया कि वेद में कोई अन्त रहित सामर्थ्य है जो प्रकट होकर यह सब करवाता है। मेरे मन ने वेद तथा अन्य धार्मिक साहित्य के ही प्रकाशन तथा प्रसार में अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देने का निश्चय कर लिया। लाहौर छोड़ते समय यही कल्पना मेरे भीतर जड़ पकड़ रही थी।

वेद प्रचार के लिए जीवन अर्पण

अब मैं दक्षिण महाराष्ट्र के सतारा जिला में स्थित औंध नामक राज्य में आ गया, जहां महाराज मेरे परिचित थे। वे बम्बई के आर्ट स्कूल में मेरे साथी रहे थे। उनकी सहायता से सन् १९१८ में मैंने "स्वाध्याय मंडल" की स्थापना की और वेदानुसंधान का कार्य आरंभ किया। वेद-प्रचार के लिये हिन्दी तथा मराठी में दो मासिक निकाले, जिनका नाम "वैदिक धर्म" तथा "पुरुषार्थ" है। ये अब भी निकल रहे हैं तथा इन में एक गुजराती का मासिक और जुड़ गया है, जिसका नाम "वेद संदेश" है।

इसके अतिरिक्त मैंने हिन्दी और मराठी में "भगवद्गीता" मासिक शुरू करके गीता की "पुरुषार्थ-बोधिनी" टीका लिखी। इसमें गीता के श्लोकों के साथ वेद-मंत्रों की तुलना की गई है। इस टीका का अनुवाद हिंदी, मराठी, गुजराती, कन्नड़ और अंग्रेजी में हुआ है।

वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारत के अनुवाद हिंदी और मराठी में किये। इस तरह वेदानुसंधान का कार्य चलने लगा। पाठकों ने आर्थिक सहायता दी। "स्वाध्याय मंडल" के भी छः-सात सौ सदस्य बने। आर्थिक कठिनाई रहती थी क्योंकि जितना धन होता था, उससे ज्यादा प्रकाशन का कार्य रहता था। आज तक यही स्थिति है। लेकिन कार्य चलता रहा। सन् १९२२ में तो आर्थिक तंगियों के कारण सब प्रकाशन बंद ही कर देने का निश्चय करना पड़ा। लेकिन ईश्वर की कृपा से ज्वालापुर के किन्हीं श्री लालचन्द जी वानप्रस्थी ने २०००) का चेक विना मांगे ही भेज दिया। इसके साथ ही स्वामी विश्वेश्वरानंद जी का भी एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धन वेद के शुद्ध मुद्रण के लिए है। अपरिचित धनो को इस सहायता को मैंने ईश्वर की आज्ञा ही समझा और वेद के पंडितों को बुलाकर वेदों का मुद्रण कराया। इस समय हमने चारों वेद, डाकव्ययसहित, ५) में दिये थे। आज महंगाई इतनी बढ़ गयी है कि वही चीज हम १५) में भी नहीं दे सकते। तो भी हमने तीन वार चारों वेद छापे और प्रचार किया।

मनुष्य-शरीर ऋषियों का आश्रम है

वेदों का अध्ययन जारी रहा। मंत्रों से नये नये बोध प्राप्त होते रहे। यहां उनका थोड़ा सा स्वरूप बताता हूं।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
वा. यजु. ४।५५

" प्रत्येक शरीर में सात ऋषि हैं। ये सातों ऋषि प्रमाद न करते हुए उसका रक्षण करते हैं। ये सात जलप्रवाह जब सोनेवाले के स्थान को जाते हैं, अर्थात् जब मनुष्य को निद्रा लगती है' तब भी दो देव जागते रहते हैं और इस यज्ञ-शाला का रक्षण करते हैं।"

दो आंख, दो कान दो नाक, और एक मुख ये सात ऋषि हैं। ये ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा उससे इस शरीररूपी यज्ञसत्र का संरक्षण करते हैं। इसी प्रकार शरीर के भीतर चलने वाले विभिन्न रक्त-प्रवाहों को सात नदियों का पवित्र स्थान माना है। सोने के समय भी श्वास और उच्छ्वास नामक दो देव अपना कार्य करते रहते हैं और उनके कारण जीवन की गति अप्रतिहत चलती रहती है। मानव-शरीर का यह वर्णन कितना उत्तम है, यह सभी देख सकते हैं।

देवों की नगरी

शरीर का वर्णन करनेवाले और भी उत्तम मंत्र देखिये :

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥३१॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।
अथर्व. १०. २।

" आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली यह देव-नगरी अयोध्या है। इस नगरी में सुवर्णमय कोश है, जो तेज से व्याप्त स्वर्ग ही है। तीन अरों तथा तीन आधारों वाले इस सुवर्णमय कोश में आत्मारूपी यक्ष रहता है, यह बात सभी आत्मज्ञानी जानते हैं।"

पृष्ठवंश के मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि आठ चक्र और इंद्रियों के नौ छिद्र मिलाकर अयोध्या नामक यह देवनगरी बनायी है, जिसमें ३३ देव रहते हैं। इसी के भीतर आत्मारूपी यक्षदेव का निवास है। वह सुवर्णमय कोश से ढका है। आप देखें कि शरीर का यह वर्णन कितना सुंदर तथा सत्य है।

पुरुष कौन है ?

अब इस ज्ञान से पूर्ण पुरुष को परिभाषा देखिये :

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥२८॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरम्।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥२९॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥
अथर्व १० २

" जो ब्रह्म की इस पुरी को जानता है, उसे पुरुष कहते हैं । जो अमृत से आवृत इस ब्रह्म की नगरी को जानता है, उसे ब्रह्म और ब्राह्म अर्थात् सब देव—आंख, कान, नेत्र आदि दीर्घ आयु और सुप्रजा देते हैं । जरा से पूर्व उसे ये इंद्रियरूपी देव नहीं छोडते अर्थात् वह दीर्घजीवी होता है । जो ब्रह्म की इस पुरी को जानता है, उसे पुरुष कहते हैं । "

यह शरीर देवों की नगरी है, सात ऋषियों का पवित्र आश्रम है, अमृत से युक्त स्वर्गधाम है तथा इन सबकी स्थिति को जानकर दीर्घ-जीवन प्राप्त करनेवाले को पुरुष कहते हैं आदि बातें वैदिक दर्शन की देन हैं । इनकी महिमा तथा गौरव दर्शनीय है ।

हमारा नवीन जीवन–दर्शन

लेकिन आज हम शरीर को मल-मूत्र का पिंड मानने लगे हैं । अपने ही विषय में घृणा उत्पन्न करनेवाला इससे निंदनीय वर्णन दूसरा नहीं हो सकता । वेद के अध्ययन से पूर्व मैं भी शरीर को मल-मूत्र का गोला मानकर उसे तिरस्करणीय मानता था परन्तु बाद में मेरा दृष्टिकोण बदल गया । अधिक दिन मेरे जीवित रहने का कारण शायद यह भी हो सकता है कि मैं उसे निंदनीय नही मानता, ऋषि तथा देवों का मंदिर समझकर उसकी पूजा करता हूं । " देव " का दूसरा नाम " निर्जर " है । जहाँ वे रहते हैं, जरा पास नहीं आती । देवों का गुण अमृत देना है । शरीर में स्थित देवों से हम अमृत प्राप्त करते हैं और दीर्घजीवी होते हैं । प्राचीन ऋषि ये अनुष्ठान करते थे । इसी-लिए वे अधिक दिन जीवित रहते थे । आज हम जल्दी मर जाने की बात सोचते हैं । जीवन दर्शन में कितना परिवर्तन हो गया है ।

मैं इन्द्र हूं

शरीर के छिद्रों को इंद्रिय नाम दिया गया है । तात्पर्य यह कि जिनसे इन्द्र की शक्ति प्रकट हो । जगत् में इन्द्र है साक्षात् परमेश्वर । उसकीअग्निरूपी शक्ति से वाक्, सूर्य रूपी शक्ति से आंख' वायुरूपी शक्ति से नेत्र, दिशाओं से कान आदि बने हैं । हृदय में इन्द्र स्वयं हैं और वहां से अपनी शक्ति वितरित करते हैं । इस-लिए इन्द्र को "इदंद्र" कहते हैं । वे अपनी अभि-व्यक्ति के लिए शरीर में विविध सूराख करते हैं तथा उन सब में एक-एक देव को बैठाते हैं । स्वयं बीच में रहकर उनका नियंत्रण करते हैं ।

मैं वही इन्द्र हूं । वेद कहता है :

अहम् इन्द्रो न पराजिग्ये । ऋग्वेद १०.४८.५।

" मैं इन्द्र हूं, मेरी पराजय नहीं हो सकती " (वस्तुतः यहां इन्द्र शब्द जीवात्मा का वाचक है जैसे कि मान्य पं० सातवलेकर जी ने इन्द्र देवता का परिचय के पृ० ३ में स्वयं सिद्ध किया है—सम्पादक) इस आत्मविश्वास का अनुष्ठान, देव ताओं की अपने शरीर में बननेवाली शक्तियों का अनुभव करने वाले को हो सकता है । 'मैं इन्द्र हूं और मेरे अधीन ये देव हैं; मैं इनका संचालक हूँ, इस लिये मेरी उन्नति निश्चित है'—यह वेद के मंत्रों में वर्णित ज्ञान है । इस प्रकार अपने मन की एकाग्रता जिस देवता पर की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जायगी, उसकी शक्ति अपने अधीन हो कर अपनी सहायिका बन सकेगी।

हमारे पृष्ठवंश में आठ चक्र हैं, यथा—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रधार। इन पर मन के संयम से अनेक शक्तियों की प्राप्ति होती है।

मनुष्य शरीर में ब्रह्म

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम्।
अथर्व. १०. ७. १७।

अर्थात् जो पुरुष शरीर में ब्रह्म देखते हैं, वे परमेष्ठी प्रजापति को जानते हैं। देव निर्जर हैं, उन देवों को (संमनसः देवाः) अपने मन के अनुकूल कर लेने से मनुष्य वृद्ध होने पर भी जरा-रहित रह सकता है; अधिक आयु होने पर भी तरुणवत् रह सकता है। वेदमंत्रों द्वारा प्रतिपादित यह अनुष्ठान मननीय है।

अन्तरेण तालुके य एष स्तन इव अवलंबते।
सा इन्द्रयोनिः॥

स्पष्ट कहा गया है कि 'तालु के ऊपर मस्तक में एक स्तन जैसा लटकता है वही इन्द्र योनि है।' इन्द्र-रस उसी ग्रंथि से निकलता है। यही रस शरीर को तरुण रखता है। ऐसी ग्रंथियां शरीर में अनेक हैं। आजकल इन ग्रंथियों के रस इंजेक्शनों के लिये बाजारों में भी मिलते हैं। विचारणीय यह है कि अपने मन को इन ग्रंथियों पर एकाग्र करके जीवन रस प्राप्त करना उत्तम है अथवा इंजेक्शन के द्वारा इस रस का शरीर में भरा जाना अच्छा है। वैदिक धर्म यह बतलाता है कि इन दैवी ग्रंथियों पर मन के संयमन द्वारा नियंत्रण किया जाना चाहिये।

सज्जन लोग विचार करें कि हमें अपने शरीर को 'पीप-मल-मूत्र का गोला' मानकर उसका अपमान करना उचित है अथवा इसी शरीर को देवताओं का मंदिर मानकर उसके अन्दर बसने वाली अनेक दैवी-शक्तियों को अपनी मानसिक शक्ति से अनुकूल बना कर अपना लाभ सिद्ध कराना। वेद का कथन है कि अपने शरीर को देवताओं का अधिष्ठान मानो और अपने अन्दर निहित दैवी शक्तियों को अधीन करके अपना लाभ सिद्ध करो।

(शेष अगले अङ्क में)

—

भक्त के सम्पूर्ण कार्य पूर्ण होजाते हैं—

जैसे प्रकाशमान सूर्य के विद्यमान होने से सब साँसारिक कार्य पूर्ण होते रहते हैं, उसी प्रकार जगदीश्वर की उपासना करने पर सब कार्य स्वतः ही पूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार प्रभु की उपासना करने पर कभी भी सुख और धन का नाश नहीं होता और न ही भक्त को दुःख और दारिद्रय प्राप्त होते हैं।

—महर्षि दयानन्द, ऋग्वेद १. ५९. ३ भाष्य में।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय सभ्यता का अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

तीन धाराएं

एक समय था, जब भारतीय इतिहास के अंग्रेज़ लेखक यह लिखने में कोई दोष नहीं समझते थे कि भारत का वास्तविक इतिहास सेकन्दर के आक्रमण से प्रारम्भ होता है। उस भी पूर्व इङ्गलैंड के प्रसिद्ध लेखक लार्ड मैकाले ने लिखा था कि यूरोप के किसी पुस्तकालय की अलमारी के एक खाने में जितना ज्ञान है, उतना भारत के समूचे प्राचीन साहित्य में नहीं है। भारत में अंग्रेज़ी प्रभुत्व के प्रारम्भिक दिन थे, तब अंग्रेज़ लेखकों के मस्तिष्क में विजय की हवा भरी हुई थी, इस कारण उन्हें अपना सब कुछ बड़ा और भारतवासियों का सब कुछ क्षुद्र मालूम पड़ता था। इधर भारतवासियों के मन पराजय के अभिशाप से मुरझाये हुए थे, इस कारण वे अपने विजेताओं द्वारा कही हुई हीन से हीन बात को मानने के लिये तैयार हो गये थे। धीरे-धीरे भारतवासी विद्वानों ने स्वयं अपने इतिहास का गहरा अनुशीलन प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक धक्के के प्रभाव से मुक्त हो कर हम लोग स्वतन्त्रता से विचार करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोपियन विद्वानों को भी अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का नव-निर्माण प्रारम्भ हो गया था। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में प्राचीन भारत के प्रति इतिहास लेखकों का रुख सर्वथा बदल चुका था। अब वे लोग प्राचीन भारतीय साहित्य को बंजर भूमि न मान कर हरा-भरा उद्यान मानने लगे थे और भारतीय सभ्यता की महत्ता और व्यापकता को स्वीकार करने लगे थे।

गत शताब्दी की ऐतिहासिक छानबीन ने भारतीय सभ्यता के केवल राष्ट्रीय रूप को ही प्रकट नहीं किया, उसके अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार के भी अनेक प्रमाण उपस्थित किये हैं। भारत की संस्कृति और सभ्यता पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में कब और किस तरह फैली, इस प्रश्न का विस्तृत उत्तर देना इस लेखमाला में संभव नहीं है और न मेरा ऐसा अभिप्राय ही है। इस लेखमाला से मेरा अभिप्राय यह प्रदर्शित करना है कि अनेक परिवर्तनों तथा भौतिक या राजनैतिक खण्ड प्रलयों के होते रहने पर भी भारतीय संस्कृति की परम्परा अविच्छिन्न रूप से न केवल इस देश में चलती रही प्रत्युत पृथ्वी के अन्य भागों में भी फैलती रही।

अन्य देशों में भारतीय सभ्यता भिन्न-भिन्न समयों में तीन धाराओं में फैली।

१. प्रारम्भिक काल की भारतीय आर्य संस्कृति उस युग में देश देशान्तर में विस्तीर्ण हुई जिसे यूरोप के इतिहास लेखक Pre historic प्रागैतिहासिक या इतिहास से पहले का युग कहते हैं। उस युग में आर्य जाति हिमालय की चोटियों और ऊंची तलहटियों से उतर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर जहां एक ओर सप्तसिंधु के धनधान्य पूर्ण मैदानों में फैली वहां साथ ही वह मध्य एशिया के मार्ग से होती हुई और रास्ते में बस्तियां बसाती हुई यूरोप के पश्चिमी भागों तक जा पहुँची। वह भारतीय आर्य सभ्यता की पहली लहर थी, जिसने भूमण्डल को दूर-दूर तक सींच दिया। हम उस समय से बहुत दूर हटे हुए हैं। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि आर्य लोगों का हिमालय से पृथ्वी तल पर अवतरण आज से ५० हजार वर्ष पूर्व हुआ था एक लाख वर्ष अथवा कितना पूर्व हुआ। बहुत से अनुमान लगाए गए है, जिनमें एक दूसरे से हजारों वर्ष का अन्तर है, परन्तु अब यह असन्दिग्ध माना जाता है कि एक समय ऐसा था जब ये सब आर्य जाति के पुरखा एक स्थान पर रहते थे। वहां से वह उतरी और भूमि के बहुत बड़े भाग में फैल गई। वे लोग अपने साथ आर्यों की भाषा, आर्यों के धार्मिक विचार अर्थात् आर्य संस्कृति को लेकर गये। वह पृथ्वी पर व्याप्त होने वाली आर्य संस्कृति की पहली धारा थी।

दूसरी धारा

भारतीय संस्कृति की दूसरी धारा उस समय प्रवाहित हुई, जिस समय आर्य लोग सारी भारत भूमि पर अपना अधिकार करके व्यापार और विद्या प्रचार के निमित्त से देश देशान्तरों में जाने लगे। यह बात रामायण काल के पीछे की है। अमरीका और चीन विभिन्न दिशाओं में वसे हुए देशों में उस समय के भारतीय विचारों और पद्धतियों के जो निशान मिलते हैं, उन से स्पष्ट हो गया है कि पश्चिमोत्तर काल में भारतीय संस्कृति की दूसरी धारा देश देशान्तरों में पहुँची, और दूर-दूर तक फैल गई।

बाली द्वीप, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, चम्पा, मलाया, स्याम, आदि देशों के धर्मों और रीति रिवाज़ों और पुराने धर्म स्थानों के अध्ययन से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो चुकी है कि वहां प्राचीन समय में पूर्वकालीन भारतीय संस्कृति और धर्म का पूरा प्रभाव रह चुका है। इन में से किसी देश में प्रभाव कुछ हलका भी हो गया है तो भी उसके अवशेष बहुत स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं। अमरीका में प्राचीन खुदी हुई इमारतों और मुद्राओं आदि का जो अन्वेषण पूर्वक अध्ययन किया गया है, उससे यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि वहां किसी बहुत पूर्व काल में भारतीय संस्कृति का पूर्ण अधिकार रहा होगा।

तीसरी धारा

भारतीय संस्कृति की तीसरी धारा जो भारत से चल कर पृथ्वी के पूर्वी अर्ध भाग में गङ्गा जल की तरह फैल गई वह बौद्ध धर्म की थी और उस भागीरथी का भगीरथ महाराज अशोक था। बौद्ध धर्म का सूत्रपात तो बुद्ध भगवान् के सदुपदेशों से हुआ परन्तु उसका व्यापी रूप सम्राट् अशोक के प्रयत्न से हुआ। सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म को कुछ भिक्षुओं और भक्तों के धर्मासन से उठा कर भूमण्डल व्यापी धर्म के रूप में परिणत कर दिया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अशोक से पहले बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति की विशाल पुस्तक का एक पन्ना था तो अशोक के प्रचार से वह उस पुस्तक का एक महान् और चमकीला अध्याय बन गया। अनेक शताब्दी पूर्व भारतीय संस्कृति की जो धारा महाराज राम के चरित्र बल से अनुप्राणित होकर दिग् दिगन्तों में फैली थी, वह ईसा से दो शताब्दी पूर्व बुद्ध भगवान् के तपोबल से अनुप्राणित होकर फिर एक बार भारत से बाहर बाढ़ की तरह विस्तीर्ण हो गई।

बौद्ध धर्म आरम्भ से ही प्रचारकों का धर्म रहा है। महात्मा स्वयं बहुत बड़े प्रचारक थे। उनके शिष्य भिक्षुओं के रूप में विचरण करते और प्रचार करते थे। सम्राट् अशोक ने अशोक ने जब बौद्ध धर्म का ग्रहण किया, तब उसके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि सारी पृथ्वी पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया जाय। उसने पहले भारत की सीमाओं से लगते हुए सीलोन 'सिंहल' द्वीप आदि स्वतन्त्र देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे और फिर सीरिया अबीसीनिया, मैसिडोनिया, एपरस आदि यूनानियों द्वारा शासित देशों में प्रचार कार्य विस्तारित किया। भारत के सभी प्रदेशों में भिक्षु प्रचारक भेजे गये जिन्होंने अनेक स्थानों पर विहार चैत्य स्थापित किये। जो प्रचारक अन्य देशों को भेजे उनमें राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी संघमित्रा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राजकुमार महेन्द्र ने भिक्षु का बाना पहन कर सिंहल प्रदीप में प्रचार किया और वहीं उसका देहान्त हुआ। वहां उसकी अस्थियों पर जो स्तूप बना हुआ है वह बौद्धों का पूजनीय तीर्थ समझा जाता है। अशोक के इस अद्भुत धर्म प्रेम और प्रचार कार्य का यह परिणाम हुआ कि जो बौद्ध धर्म उससे पूर्व भारत के केवल कुछ प्रदेश तक परिमित था वह अशोक की मृत्यु के समय एक विश्वव्यापी धर्म का रूप धारण कर चुका था।

बौद्ध धर्म क्या था ? वह भारतीय संस्कृति का एक अंग था। यदि भारतीय संस्कृति को एक अनादि श्रृङ्खला कहें तो बौद्ध धर्म को उस की एक कड़ी कह सकते हैं। अशोक के समय में भारतीय संस्कृति की जो तीसरी धारा बौद्ध धर्म के रूप में पृथ्वी पर फैलनी आरम्भ हुई, वह चिरकाल तक आगे ही आगे बढ़ती चली गई। इस समय पृथ्वी पर अन्य सब धर्मों की अपेक्षा संख्या में अधिक लोग बौद्ध धर्म के मानने वाले हैं। हम कह सकते है कि बौद्ध धर्म मनुष्य जाति को भारतवर्ष की सब से विशाल देन है।

बौद्ध धर्म भारतीय धर्म है और उसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि बुद्ध भगवान् की भी १० अवतारों में गिनती कर ली गई थी और बौद्ध व जैन सिद्धान्तों को भारतीय दर्शन समुच्चय में स्थान मिल गया था।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा में स्वाध्याय का स्थान

आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, साहित्याचार्य, एम. ए. पोरबन्दर (सौराष्ट्र)

स्वाध्याय और प्रवचन को जीवन का एक उपयोगी अङ्ग बनाने की प्रेरणा हमें वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलती है।

शिक्षा के प्रारम्भ में, मध्य में और स्नातक हो जाने के बाद भी इन के पालन का आदेश आचार्य से मिलता था। स्वाध्याय और प्रवचन से जीवन के ऊंचे-नीचे अंचलों में मानव को पर्याप्त सहायता मिलती है अतः इन के पवित्र सत्र को जीवन भर निभाना मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है और इसी दृष्टि से सर्वथा वांछनीय भी। स्वाध्याय तो स्वयं ही पर्याप्त है परन्तु उस के साथ प्रवचन को भी जोड़ना किसी विशेष बात की तरफ संकेत है। स्वाध्याय वैसे तो 'स्व' का अध्ययन अथवा स्वयं अध्ययन है परन्तु पर का अध्ययन और पर के द्वारा मिले का अध्ययन उससे स्वयं सिद्ध हो जाता है। मनुष्य के अपने 'स्व' में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पर स्वयं छिपा हुआ है। हम जिसे अपना "स्व" एवं "मैं" कहते हैं वह तात्विक दृष्टि से केवल 'स्व' होते हुए भी भौतिक तथा सामाजिक स्व को लिए हुए है। हमारा स्व आध्यात्मिक दृष्टि से तो विशुद्ध 'स्व' है परन्तु भौतिक और सामाजिक दृष्टियों से वह शरीर और समाज से सम्बद्ध है। इसी लिए शरीर धन-धान्य पशुवस्त्र, परिवार समाज और राष्ट्र सभी इस 'स्व' की परिधि में आ जाते हैं। प्रत्येक को अपनी निकटतम और ज्ञाततम वस्तु 'स्व' है अतः समस्त अध्ययन अपने "स्व" के बिन्दु से ही प्रारम्भ होते हैं। वेद के वाक्य में इस "स्व" को समस्त वस्तुओं की माप कहा गया है। अन्य वस्तुओं की सिद्धि में प्रमाण की जरूरत है परन्तु इस "स्व" का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। वैदिक दर्शन की दृष्टि में यह "स्व" प्रमाता है। समस्त वस्तुओं की माप है और साथ ही साथ समस्त प्रमाणों का व्यवहर्ता और निराकर्ता है। अतः दार्शनिक दृष्टि से कोई भी खोज हो "स्व" से चलेगी और व्यावहारिक दृष्टि से भी किसी भी शिक्षा का आत्मसात्करण स्वयं के अध्ययन से होगा। जहां आत्मा दार्शनिक विचारों के विकास का प्रथम बिन्दु है वहां यह शिक्षा के दर्शन का भी उद्गम बिन्दु है।

इस महान् तथ्य के ज्ञाता वैदिक ऋषियों ने स्वाध्याय को आवश्यक वस्तु बतलाया और इसी से इस का अर्थ "स्व" का अध्ययन भी है और स्वयं अध्ययन भी है परन्तु प्रवचन के बिना स्वाध्याय पूरा नहीं होता। स्वाध्याय में जो मिले उसका प्रवचन होना चाहिए। स्वाध्याय से लब्ध ज्ञान प्रवचन के द्वारा जहाँ अन्यों पर प्रकट होता है वहां वह स्वयं टिकाऊ भी इसी से बनता है। इस दृष्टि से स्वाध्याय और प्रवचन का साथ साथ प्रयोग है।

शिक्षण में स्वाध्याय एक परमोपयोगी तरीका है। इसे ही हम स्वयम् अध्ययन (Self Study) कहते हैं। अध्यापक के द्वारा पढ़ाया हुआ ज्ञान जबतक आत्मा से अपने में पचा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं लिया जाता है तब तक वह अपना नहीं हो पाता है। अतः प्रत्येक पढ़ाई हुई वस्तु को आत्मसात् करने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है। विद्यार्थी के लिए तीन क्रियाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ये हैं=श्रवण, मनन और निदिध्यासन। अध्यापक से किसी बात को श्रवण कर पुनः उसका मनन करना चाहिए। मनन करने के उपरान्त उसका निदिध्यासन करना आवश्यक है। इस से पढ़ाई गयी या सुनी हुई वस्तु अपने अन्तः करण के पटल पर प्रतिबिम्बित हो जाती है। श्रवण करने का कार्य श्रेणियों में वह लगातार करता है। परन्तु उतना ही ज्ञानार्जन के लिए पर्याप्त नहीं। उसके लिए मनन और निदिध्यासन होने चाहिए। ये ही स्वाध्याय से सिद्ध होते हैं। अतः शिक्षण में जहां पढ़ाने का कार्य आवश्यक है वहां उससे भी अधिक स्वाध्याय (Self Study) है। यदि विद्यार्थी इस क्रिया का अभ्यासी नहीं है अथवा इसके लिए उसे समय नहीं मिलता है तो उसके ज्ञानार्जन में अधूरापन रहेगा ही। यह प्रक्रिया केवल अध्यात्म का ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिये नहीं अपितु सभी प्रकार के ज्ञानार्थी के लिए है। इस का निर्धारण पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। मन को गम्य होने वाले सूक्ष्म विषयों के ज्ञान के विषय में उसकी ही बुद्धि चल सकती है जिसको इन तीन क्रियाओं का अभ्यास हो। महर्षि यास्क ने इन्हें ही श्रुति, मति और बुद्धि नाम दिया है। इसको उन्होंने स्वयं एक विद्या माना है। इसी विद्या पर 'ऊह' अर्थात् तर्क की स्थिति है। प्रत्येक वस्तु के समझने और निश्चित रूप में समझने में ,'ऊह' अत्यन्त उपकारक है। यह ऊह शक्ति प्रत्येक विद्यार्थी में होती है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन से यह प्रबुद्ध होती है। यास्क ने मन्त्रार्थ समझने या कहना चाहिए वस्तु के आन्तरिक रहस्य पर पहुंचने में इस ऊह का अत्यन्त महत्त्व माना है।

स्वाध्याय को ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत माना जाता है। बात भी नितराम् ठीक ही है। क्यों कि स्तुति प्रार्थना, उपासना जहां ब्रह्म परमेश्वर से सम्बन्ध रखने के कारण ब्रह्मयज्ञ हैं वहां "ब्रह्म" अर्थात् ज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण यह स्वाध्याय भी ब्रह्मयज्ञ ही है। इसी दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।२ में कहा गया है कि स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः अर्थात् स्वाध्याय भी ब्रह्मयज्ञ है। वस्तुतः यह ज्ञान यज्ञ है। इस ज्ञानयज्ञ के लिए शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।३ में यज्ञ के साधनों के रूपक के रूप में कुछ बहुत ही उपयोगी वस्तुओं का वर्णन मिलता है। स्वकीय अध्ययन में विद्यार्थी को इन वस्तुओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए। ब्राह्मणकार ऋषि ने लिखा है कि इस ब्रह्मयज्ञ की वाणी जुहूः है; मन उपभृत् है ; चक्षु ध्रुवा है; मेधा स्रुवा और सत्य अवभृथ है। स्वाध्याय में वाणी, मन, चक्षु, मेधा और सत्य उपयोगी अङ्ग हैं। पढ़ाई का समस्त व्यापार भाषा एवं वाणी पर है। मन के विना कोई भी इच्छा पूर्विका क्रिया सफल नहीं हो सकती। नेत्र इसमें परमोपयोगी हैं। मेधा और सत्य फल और उद्देश्य के रूप मे हैं। पुनः शतपथ ११।५।७।१ में स्वाध्याय के कुछ और आवश्यक फलों का वर्णन दिया है। बताया गया है कि स्वाध्याय से व्यक्ति, युक्तमन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होकर अपराधीन हो प्रयोजनों को सिद्ध करता है। सुख से शयन करता है।

आत्मा का परम चिकित्सक होता है। उसमें एकारामता आती है, प्रजावृद्धि होती है। और यश तथा लोक व्यवहार की परिपक्वता आती है। यहां जो वस्तुएं फल के रूप में वर्णित हैं वही उपकरण भी बनती हैं। इन फलों की प्राप्ति के लिए ये वस्तुएं पहले से होनी चाहिएं। वस्तुतः मन का एक वस्तु पर लगना स्वाध्याय के लिए अत्यन्त उपादेय है। संशय भ्रम और सन्देह के चक्र पर चढ़ा हुआ मन कभी भी अध्ययन का अधिकारी नहीं बन सकता। मन की स्थिरता में ये तीनों महान् शत्रु हैं। यदि ये मन पर अपना प्रभाव डाल लें तो फिर मन में किसी भी शिक्षा का बीज नहीं जम सकता अतः युक्त मनस्कता स्वाध्याय में होनी चाहिए। स्वाध्याय के चलाने में बाह्यचापों का अभाव होना चाहिए। अनुशासन हीनता और अनियमता का नाम स्वतंत्रता नहीं है। इन पर डण्डे के बल से चलाया जाना परतंत्रता है। और जब ये अपने जीवन के उपयोगी अङ्ग बन कर स्वेच्छा से पालन किये जाते हैं तब ये ही स्वतन्त्रता बन जाते हैं। स्वतन्त्रता में नियम और अनुशासन का अभाव नहीं। उसमें नियम और अनुशासन अपने तन्त्र बने रहते हैं। यदि इन के अभाव का नाम स्वतन्त्रता होता तो फिर स्वतन्त्रता में तन्त्रशब्द की कोई उपयोगिता ही नहीं होती। यहां पर पराधीनता का तात्पर्य केवल वे बाह्य-विघ्न हैं जो विद्याध्ययन में बाहरी चाप के रूप में कार्य कर रहे हैं।

इन्द्रिय संयम भी इस स्वाध्याय यज्ञ में महती उपयोगिता रखता है--इसको सभी जानते हैं। विद्या पढ़ने में ही विशेषता नहीं है बल्कि विद्या के वीर्यवती होने में विशेषता है। विद्या को वीर्यवती बनाने में स्वाध्याय का महान् उपयोग है।

मेरे पिता

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की नवीन कृति

इस ग्रन्थ में आधुनिक भारत के यशस्वी निर्माता महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) के रेखाचित्र संस्मरणों के आधार पर अङ्कित किये गये हैं। इन स्मृतिचित्रों में स्वामी जी के चरित्र की विशेषताएं बड़े प्रभावोत्पादक रूप में प्रकाशित हो उठी हैं। इन चित्रों में गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भिक विकास की मनोहर कहानी चल-चित्रों की भाँति आंखों के आगे उतरने लगती है। लोकबन्द्य स्वामी जी के प्रभावशाली जीवन के उतराव-चढ़ाव की यह मनोरम कथा पढ़ते ही बनती है। पुस्तक में स्वामी जी के युग के भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की प्रवृत्तियों आन्दोलनों और गतिविधियों का सन्तुलित विवेचन बड़ी मनोरम शैली में अंकित हुआ है। पुस्तक के सभी प्रकरण उपन्यास से भी अधिक रोचक, आकर्षक और शिक्षाप्रद हैं।

संस्मरणों के प्रकाश और छाया में अंकित किये गये पुण्यश्लोक स्वामी जी के ये रेखाचित्र हिन्दी भाषा के संस्मरण साहित्य में निश्चय ही गौरवपूर्ण स्थान पायेंगे। लब्धप्रतिष्ठ चरित्रकार की कुशल लेखनी से प्रसूत इस पावन प्रसाद का आस्वादन कीजिये और अन्यों को कराइये। इस में विलम्ब न कीजिए।

मूल्य १ प्रति ४)। मिलने का पता—वाचस्पति पुस्तक भंडार, २६ जवाहरनगर देहली ६।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारी राष्ट्रभाषा

डा० सूर्यदेव जी साहित्यालंकार, एम. ए. एल. टो; डो. लिट् अजमेर

१

राष्ट्र-भाषा राष्ट्र का जाज्वल्य–जीवन–प्राण है।
राष्ट्र-भाषा राष्ट्र के संकल्प का संत्राण है॥
राष्ट्र-भाषा से सदा ही राष्ट्र का कल्याण है।
राष्ट्र-भाषा–रहित सारा राष्ट्र ही म्रियमाण है॥

२

राष्ट्र-भाषा ही बने नित राष्ट्र हित संजीवनी।
संगठन के सूत्र में बांधे जनों को जीवनी॥
मृतक तन में प्राण फूंके शक्ति की स्रोतस्विनी।
राष्ट्र–गौरव को प्रगति दे तीव्रवर तेजस्विनो॥

३

शब्द–सरिता बह रही जिस में शतद्रू–सागरी।
सर्व-स्वर व्यंजन विभूषित अमित अभिनव आगरी॥
ज्ञान–गुण–गर्भित, सुगौरव–वारि–गरिमा–गागरी।
शक्ति किस की है कि जो हम से छुड़ाये नागरी?॥

४

राष्ट्र-भाषा की विजय हो, राष्ट्र-ध्वज का मान हो।
विश्व में गूंजे हमारा राष्ट्र, "जन-मन" गान हो॥
आर्य संस्कृति का सदा संसार में सम्मान हो।
कीर्तिमय बन कर चमकता राष्ट्र "सूर्य" समान हो॥

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल कांगड़ी में हिन्दी भाषा द्वारा शिक्षा देने का सफल परीक्षण

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

स्वाधीनता प्राप्त होने से पूर्व देश के शिक्षित लोगों में यह विचार परम्परा प्रचलित थी कि अंग्रेज़ी के अतिरिक्त भारतवासियों के लिए उच्च शिक्षा का साधन अन्य कोई भाषा नहीं बन सकती। जब कभी हिन्दी की चर्चा उठती थी तब यह कहा जाता था कि विज्ञान, तत्त्वज्ञान, कला कौशल आदि के लिए हिन्दी भाषा में पारिभाषिक शब्दों का सर्वथा अभाव है इस कारण उसे मध्यम अथवा उच्च-शिक्षा का माध्यम बनाना लगभग असम्भव है।

स्वराज्य मिलने पर इसी समस्या का दूसरा रूप बन गया। संविधान में यह स्वीकार कर लिया गया है कि १५ वर्षों के अन्दर-अन्दर (सन् १९६५ तक) हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले लेगी। स्थान लेने का अभिप्राय बहुत व्यापक है। जिन-जिन कार्यों में अंग्रेज़ी का प्रयोग होता था उन सब में हिन्दी का प्रयोग होने लगे, संविधान का अभिप्राय यह था। सामान्य रूप से विचार करें तो यह कुछ भी असम्भव प्रतीत नहीं होता था। पन्द्रह वर्षों में वस्तुतः किसी भी जाति का पूरा-पूरा मानसिक परिवर्तन हो सकता है परन्तु दो सौ वर्षों के अंग्रेज़ी राज्य ने शिक्षित भारतवासियों पर ऐसी जबर्दस्त मोहर लगा दी है कि वह आसानी से टूटने में नहीं आती। अब प्रश्न इस रूप में किया जाने लगा है कि क्या १५ वर्षों में हिन्दी इस योग्य हो जाएगी कि उस द्वारा देश के सब कार्य चल सकें। मुख्य बाधा यह बतलाई जाती है कि हिन्दी में शिक्षा और शासन सम्बन्धी परिभाषाओं का अभाव है। यह निश्चय तो हो चुका था कि भारत की राज्य सम्मत भाषा तो हिन्दी ही होगी। इस कारण राज्य का यह कर्तव्य हो गया कि वह उन न्यूनताओं को पूर्ण करे जिनके कारण हिन्दी को तत्काल राज्यसम्मत राष्ट्रीय भाषा नहीं बनाया जा सकता। अंग्रेजी शिक्षा से ओतप्रोत हमारे देश के नेताओं के सामने जब हिन्दी की कल्पित न्यूनताओं को पूरा करने का विचार उपस्थित हुआ तब उन्होंने वह काम अपने शिक्षा-मंत्रालय के सुपुर्द किया। शिक्षा मन्त्रालय के महानुभाव भी प्रस्तुत विषय से उतने ही परिचित थे जितने नेता लोग। उन्हें हिन्दी के विशाल साहित्य का पूरा परिचय नहीं था और न यही विदित था कि गत सौ वर्षों में हिन्दी के शब्द कोष में कितनी वृद्धि हुई है। अनेक व्यक्ति और संस्थाएं हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के अभाव की पूर्ति के लिए जो प्रयत्न करते रहे थे, शिक्षा मंत्रालय के कर्णधार उन से लगभग अपरिचित थे। फलतः उन्होंने नए कारखाने बना कर उन में पारिभाषिक शब्द घड़ने शुरू किए। शब्द लोहे या लकड़ी के बने हुए पदार्थ नहीं हैं कि नए साँचे बना कर जैसा चाहा घड़ दिया। बेतुके प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि इन हिन्दी के पारिभाषिक शब्द बनाने में 'नरं कुर्वाणो वानरं चकार की कहावत चरितार्थ हो गई, जो शब्दावली

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

घड़ी गई उस पर स्वयं घड़ने वाले ही हंसने और नाक भौं चढ़ाने लगे।

यह आश्चर्य की बात थी कि हिन्दी द्वारा उच्चतम शिक्षा देने और हिन्दी में विविध विषयों के पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करने के समय सरकार के शिक्षा-विभाग में अन्य अनेक संस्थाओं और महानुभावों को तो याद किया गया परन्तु जिस संस्था में लगभग पैंतालीस वर्षों से राष्ट्रभाषा द्वारा विज्ञान, साहित्य, कृषि, चिकित्सा आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी उसका ध्यान भी नहीं किया गया। स्थापना दिवस से ही गुरुकुल के संचालकों का यह संकल्प था कि सम्पूर्ण शिक्षा राष्ट्रभाषा द्वारा दी जाएगी। व्यवहार सम्बन्धी समस्त कार्यों में भी हिन्दी का ही प्रयोग किया जाता था। विद्यालय, महाविद्यालय, आश्रम, क्रीड़ा आदि से सम्बन्ध रखने वाली सब परिभाषाएं हिन्दी में बना ली गई और ज्यों-ज्यों शिक्षा का विकास होता गया त्यों-त्यों वैज्ञानिक तथा शिल्प सम्बन्धी परिभाषाएं भी उत्पन्न हो गईं। गुरुकुल के अध्यापकों तथा उपाध्यायों ने विविध विषयों पर जो ग्रंथ १९४७ से पूर्व लिखे मैं उनकी सूची नीचे दे देता हूं। इन सभी ग्रन्थों में अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के पारिभाषिक शब्द भी दिए गए।

लेखक	ग्रन्थ
१. श्री विनायक गणेश साठे	विकासवाद
२. श्री महेश चरणसिंह	कैमिस्ट्री
,,	वनस्पति शास्त्र
,,	विद्युत् शास्त्र
३. श्री मा० गोवर्धन जी	रसायन, भौतिकी
४. श्री डा० बालकृष्ण एम. ए.	स्वराज्य
५. श्री प्रो० रामशरणदास सक्सेना	गुणात्मक विश्लेषण
६. श्री डा० प्राणनाथ विद्यालंकार	अर्थशास्त्र
७. श्री पं० यज्ञदत्तजी ,,	विज्ञान प्रवेशिका
८. श्री प्रो० सुधाकर जी एम. ए.	मनोविज्ञान
९. श्री प्रो० चम्पतस्वरूप जी एम. एस, सी.	जन्तु विज्ञान
१०. श्री पं. अत्रिदेव आयुर्वेदालंकार	क्लिनिकल मैडिसन
११. श्री पं. महामुनि विद्यालंकार	रसायन शास्त्र

सन् १९५३ में गुरुकुल विश्वविद्यालय के जीव-विज्ञान के उपाध्याय श्री प्रो० चम्पतस्वरूप जी ने जीव जन्तु शास्त्र के सम्बन्ध में अपना ग्रंथ स्थापित किया। यह ग्रंथ लगभग १००० पृष्ठ का है और इण्टर परीक्षा के पाठ्यक्रम में रखा गया है।

हिन्दी द्वारा शिक्षा देने का यह परीक्षण सफल हुआ वा नहीं इसका उत्तर पूर्ण रूप से तब मिला जब गुरुकुल के स्नातक बाहर शिक्षणालयों के सम्पर्क में आए। कुछ स्नातकों ने विद्यालंकार बनने के पश्चात् दिल्ली, आगरा आदि की सरकारी यूनिवर्सिटियों से भिन्न-भिन्न विषयों में एम० ए० परीक्षा पास की। उन में उन्हें असाधारण सफलता मिली। वे प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। विदेश की यूनिवर्सिटियों में डाक्टरेट प्राप्त करने वाले स्नातकों के कुछ नाम निम्नलिखित हैं—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१. डा० बलराम एम. डी. (म्यूनिच) ।
२. डा० प्राणनाथ विद्यालंकार पी. एच. डी. डी. एस. सी. (लन्दन) प्रोफेसर, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
३. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार डी. लिट्. (पेरिस) ।
४. डा० धीरेन्द्र मेहता विद्यालंकार पी. एच. डी. प्रिन्सिपल, हंसराज पब्लिक स्कूल, अन्धेरी, बम्बई ।
५. पं० विनायकराव विद्यालङ्कार एल.एल.बी. बार-एट-ला, हैदराबाद दक्षिण ।
६. डा० राजेश्वर नाथ आयुर्वेदालंकार एम. डी. (म्यूनिच) ।
७. श्री अमीचन्द्र विद्यालंकार एम.ए. न्यूज़ीलैंड टी. डी. एम. एल. (फ़िज़ी) ।
८. डा० ईश्वरदत्त विद्यालंकार पी. एच. डी. (जर्मनी) ।
९. डा० धर्मानन्द केसरवानी पी. एच. डी., एम. डी. (जर्मनी) ।
१०. डा० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार डी. लिट्., (पेरिस) ।
११. डा० जयदेव विद्यालंकार पी. एच. डी., (लन्दन) ।

हिन्दी प्रकाशन, पत्रकारिता और ग्रन्थकारिता के क्षेत्र में स्नातकों को जो असाधारण सफलता मिली है इसका मुख्य कारण भी यही है कि उनकी शिक्षा अपनी मातृभाषा में होने के कारण उन का सार्वजनिक विषयों का बोध बहुत उत्तम है । अनेक स्नातकों को उनके इतिहास, दर्शन तथा अन्य सामाजिक विषयों पर श्रेष्ठ ग्रंथ लिखने के उपलक्ष में पुरस्कार और सम्मान भी प्राप्त हुए । इन सब प्रमाणों से यह निस्सन्देह सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी द्वारा उच्चतम शिक्षा दी जा सकती है । विज्ञान हो अथवा कृषि या शिल्प हो उनके लिए पारिभाषिक शब्दों की प्राप्ति बहुत कठिन नहीं है । बहुत से शब्द तो लोक भाषा से ही मिल जाते हैं, जो न मिलें उन्हें संस्कृत से लिया जा सकता है । यदि तैयार शब्द न हों तो संस्कृत की सहायता से निर्माण किया जा सकता है । गत ५५ वर्षों से गुरुकुल कांगड़ी में यही क्रम चल रहा है। निश्शङ्कभाव से कहा जा सकता है कि वह क्रम पूर्ण रूप से सफल हुआ है । वह अब परीक्षण की श्रेणी से निकल कर ठोस सचाई के रूप में आ चुका है । जिन सन्देहशील व्यक्तियों को अब भी यह विश्वास न हो कि हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा दी जा सकती है या नहीं, वे गुरुकुल में आ कर अपनी आखों से उस ठोस सचाई को देख सकते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
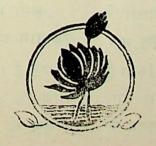
संस्कृत एवं रूसी भाषा का साम्य

श्री बालमुकुन्द मिश्र साहित्यालङ्कार देहली

आधुनिक भाषाशास्त्रियों के विचारानुसार संस्कृत भाषा से रूस की स्लावोनिक भाषा का सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है, स्लावोनिक भाषा का संस्कृत से आर्य परिवार की भाषाओं, अर्थात् इंडो-यूरोपीय भाषा-लैटिन, जर्मन, ग्रीक फ्रेंच अथवा ऐंग्लो-सेक्सन की भाषाओं जैसा कोई मूल मैत्री सम्बन्ध नहीं है। स्लावोनिक भाषा की अपनी सत्ता है, और उसकी अपनी मौलिक विशेषताएं हैं। संस्कृत वाङ्मय की तरह ही स्लावोनिक भाषा का अपना समृद्ध साहित्य है, उसकी अपनी परम्पराएं हैं और वह अपने महत्वपूर्ण गुणों के कारण विश्व के साहित्याकाश में समादृत है, प्रतिष्ठित है–और अपने अस्तित्व को वर्तमान युग तक सुरक्षित रख सका है।

आर्य भाषा संस्कृत और सोवियत प्रदेश की भाषा स्लावोनिक का चाहे सीधा गहरा सम्पर्क न हो, पर एक बात निश्चित है कि व्याकरण और अन्य अनेक कारणों से हर अनुसंधान कर्ता सरलता से इस बात को खोज निकालता है, कि संस्कृत और हिन्दी की रचना प्रणाली में इतना मतैक्य नहीं है, जितना कि संस्कृत और स्लावोनिक भाषाओं का है।

संस्कृत एवं स्लावोनिक दोनों भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में, सोवियत भारतीय विद्याविदों ने तो प्रशंसनीय कार्य किया है, पर भारतीय सोवियत विद्याविदों ने इस दृष्टि को अभी स्पर्श नहीं किया है। इस विषय पर भारतीय सोवियत विद्याविद् महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन और [इंडिया इन्टर नेशनल क्लब, कलकत्ता के] मन्त्री श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री 'अनिरुद्ध' का कार्य सराहनीय है। भारतवर्ष में सब से पहिले उन्होंने ही इस रहस्य को खोजा कि रूसी तथा संस्कृत भाषाओं में शब्द साम्य व वाक्य को देखते हुए हर्ष मिश्रित आश्चर्य होता है; और इस विषय पर तत्परता के साथ अनुसंधान का कार्य अविलम्ब होना चाहिये।

संस्कृत में ३५ के लगभग सर्वनाम हैं, जिनमें से रूसी भाषा में आज भी १० के आस पास सर्वनाम ज्यों-के-त्यों व्यवहृत हो रहे हैं।

व्याकरण साम्य

विश्व की महात्तम विभूति और संस्कृत व्याकरण के आद्याचार्यों में से महात्तम वैयाकरण [जिनका समय प्रायः तीन हजार साल पहले माना जा रहा है] महर्षि पाणिनि ने निम्न सूत्र में एक नियम बताया है :

सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा।

(उपर्युक्त सर्व, एक, अन्य, किम्, यत्, तत् इन छः सर्वनामों के आगे 'दा' लिख देने से कालवाचक क्रिया विशेषण बन जाता है।)

रूसी भाषा में संस्कृत के छः में से चार सर्व नाम आज भी सोवियत संघ में प्रयुक्त किये जा रहे हैं। कालवाचक क्रिया विशेषण भी पाणिनीय व्याकरण के अनुसार ही रूसी भाषा में चल रहे हैं। यथा:

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वनाम	संस्कृत	रूसी
किम्	कदा	कग्दा
तन्	तदा	तग्दा
अन्य	अन्यदा	इनग्दा
सर्व	सर्वदा	व्सेग्दा

अक्षर साम्य

संस्कृत के दो विश्व में अलभ्य 'ऋ' तथा 'लृ' वर्णों का अस्तित्व रूसी भाषा में भी प्राप्य है। 'लृ' वर्ण तो रूस में विगत अक्टूबर-समाजवादी क्रान्ति [१९१७] के समय से अप्रचलित सा हो गया है, किन्तु 'ऋ' वर्ण अब भी संस्कृत परम्परा की भान्ति सारे सोवियत प्रदेश में शुद्ध स्वर में उच्चरित और व्यवहृत हो रहा है।

संस्कृत की ही भान्ति रूसी में भी क, च, त, प वर्णों का अघोष और ग, द, ब, न, म वर्णों का घोष प्रयत्न से उच्चारण किया जाता है।

शब्द साम्य

संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाएं 'अ' परक हैं और रूसी भाषा 'ए' परक है, कुछ शब्द प्रस्तुत हैं : यह बात स्मरण रहे कि रूसी में 'र' के स्थान पर 'ल' भी कहीं-कहीं देखा जाता है :

संस्कृत	रूसी	हिन्दी
विना	व्ने	बिना
बहिः	न्वे	बाहर
स्वसृ	स्येस्त्रा	बहन
द्वार	द्वेर्	द्वार
षट्	पेस्त	छः
अभ्रक	ओब्लक	बादल
दरी	दलीना	गुफा,खोह
श्रु	स्लुशत	सुनना
श्रिञ्	स्लुज्हित	सेवाकरना

शब्द साम्य के कुछ अन्य उदाहरण हैं :

१. सब के लिए संस्कृत का 'विश्व' सर्वनाम रूसी में 'व्येस' है।
२. 'कतर' अर्थात् 'कौन सा' के लिये रूसी में 'कतोरिय्' है।
३. 'पूर्व्व' के लिये रूसी में 'प्येर्विय्' शब्द है।
४. 'अन्य' के लिए रूसी शब्द है 'इनोय्'।
५ युष्मद् 'या' 'त्वत्' शब्द के लिए रूसी शब्द है 'त्वोय्'।
६. 'तत्' के लिए 'तत्' और 'एतत्' के लिए रूसी शब्द है 'एतत्।

वाक्य साम्य

न्याय दर्शन का एक सिद्धान्त है:—

यत्र-यत्र धूमस्तत्र तत्र वन्हिः

इसी भाव का एक रूप संस्कृत में हेर-फ़ेर के साथ इस प्रकार मिलता है:

यत्र धूमः तत्र अग्निः

रूस में तो यह बहु-प्रचलित सर्वसाधारण की कहावत है:

ग्दे दीम तम अगोन ।

एक और वाक्य है इस प्रकार:

संस्कृत

पूर्वम् अग्निः पश्चात् धूमः

रूसी

स्पेर्वा अगोन, पतोम दीम

रूसी वाक्य के अन्त में 'धूम' की जगह जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'दीम' रूप मिलता है, उस विषय में द्रष्टव्य है कि रूसी में 'ह' तथा 'घ', 'ख', फ', इत्यादि अक्षर नहीं हैं। वे, 'हालैंड' हिन्दी 'और' हिमालय को 'गालैंड, "खिन्दी' और जिमालय' लिखते-पढ़ते हैं। अतः जहां ग, ज, ख इत्यादि अक्षर हों वहां कभी-कभी बड़े काम के शब्द हस्तगत हुए हैं। जैसे 'सगद्यँ' इसे वे 'सवद्यं' पढ़ते हैं, जो सद्यं अर्थात् [वही दिन] का रूप है। संस्कृत के 'अद्य' को रूसी शब्द 'सवद्यं' से मिलाइये दोनों का अर्थ 'आज' है।

एक और वाक्य हैः

रूसी:—एति द्वे मयी स्यस्त्रे।

संस्कृतः—एते द्वे मदीये स्वसारौ।

हिन्दीः—(ये दो मेरी बहिनें हैं)

रूसी भाषा में से आजकल द्विवचन निकल गया है, किन्तु स्त्रीलिंग द्विवचन में 'द्व' या 'उब' जब भी प्रयुक्त होगा, तो उसे 'द्वे' और 'उबे' बनाना ही पड़ेगा।

संस्कृत और रूसी—भाषाओं के स्वर रूप साम्य का यह उदाहरण कितना उत्कृष्ट हैः

संस्कृतः

एते दवे मे स्वसारौ, ते उभे ते स्वसारौ।

(ये दोनों मेरी और ये दोनों तेरी बहनें हैं।)

रूसी:

एति द्वै मये स्येसे, ते उबेत्वये स्येसे।

इस अवतरण में रूसी का'एति'शब्द संस्कृत में 'एते' है 'द्वे' द्वै' है, 'मये' 'मै' है तथा'स्येसे' 'स्वसारौ' है; इसी प्रकार से रूसी का 'उबे' संस्कृत के 'उभे' शब्द का ही स्पष्ट रूपान्तर है।

सोवियत-भारत विद्याविदों की भांति आज भारतवर्ष में भी कई प्रतिभाएं रूसी भाषा में दक्षता प्राप्त कर रूसी-महान्-साहित्य पर रचनात्मक कार्य सम्पन्न करने की ओर कदम बढ़ा रही हैं।

सोवियत (रूसी) भाषा और संस्कृत

लेखक—श्री बालमुकुन्द जी साहित्यालङ्कार देहली [सोवियत भूमि में, विश्व की महातम भाषा संस्कृत और हिन्दी साहित्य संबंधी सोवियत, भारतीय विद्याविदों द्वारा किये जा रहे गौरवपूर्ण कार्यों से पूरित—लेखक द्वारा लिखे जा रहे ग्रन्थ का एक अंश इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। श्री बालमुकुन्द जी मिश्र हमारे चिरपरिचित, उत्कृष्ट कोटि के कवि और साहित्यकार हैं।

—संपादक गुरुकुल पत्रिका।

ईश्वर की भक्ति न करना कृतघ्नता है—

जो जन ईश्वर की स्तुति,प्रार्थना और उपासना नहीं करते वे कृतघ्न और महामूर्ख हैं क्योंकि जिस परमेश्वर ने इस जगत् के सब पदार्थ हम जीवों के सुख के लिए दे रक्खे हैं उसका गुण भूल जाना और ईश्वर को ही न मानना अत्यन्त कृतघ्नता और मूर्खता है। —महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश ७म समुल्लास।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे नाम महात्मा जी के पत्र

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

कुछ दिन हुए पुराने कागज़ों को उलट पुलट कर देखने के समय मेरी दृष्टि एक पत्र पुंज पर पड़ी, जिसमें मेरे नाम आए हुए महात्मा जी के कुछ पत्र नत्थी किये हुए थे। पत्र छोटे-छोटे थे, परन्तु उनके साथ लगा हुआ इतिहास बहुत लम्बा था, फिर वे सभी महात्मा जी के हाथ के लिखे हुए थे, और सबका प्रारंभ "चि० इन्द्र" इस सम्बोधन से हुआ था। उनके सामने आने पर मैं वहीं गड़ सा गया, और एक-एक पत्र को पढ़ कर उसके साथ लगे हुए इतिहास को याद करने लगा। महात्मा जी ने छोटे-छोटे पत्र सहस्रों लोगों को लिखे होंगे, और उनके अन्त में आशीर्वाद भी दिया होगा। वे सब अपने-अपने मन की बात जानें, परन्तु मेरे तो ये पत्र अमूल्य निधियों के समान हैं।

कई पाठकों के लिये शायद उनमें कुछ भी विशेषता न हो, परन्तु मेरे लिये वे कई घटना पूर्ण वर्षों के इतिहास के शीर्षक हैं। इतना ही नहीं, ये पत्र इसके नमूने हैं कि थोड़े-थोड़े शब्दों में विशाल से विशाल अभिप्राय को कैसे प्रकट किया जा सकता है?। कूजे में दरिया बन्द करने का इन से अच्छा दृष्टान्त मिलना कठिन है।

इस लेख में मैं उनमें से तीन पत्र दे रहा हूँ। अन्य पत्र अगले लेख में दूंगा।

बम्बई से महात्मा जी से मुझे आर्यसमाज के सम्बन्ध में १९२४ के अगस्त मास में निम्न-लिखित कार्ड मिला।

भाई इन्द्र !

मेरा दफ्तर साफ कर रहा हूँ। उसमें तुम्हारा पत्र देखता हूं। मेरा ख्याल है कि उस का उत्तर मैंने भेजा है। न मिला हो तो लिखीये मैं उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा।

मोहनदास गान्धी

मुंबई, श्रावण कृष्ण ५।

महात्मा जी के इस पत्र में जिस उत्तर का निर्देश है, वह मुझे पहले मिल चुका था। वह पत्र विशेष महत्त्वपूर्ण है मेरे जिस पत्र के उत्तर सें महात्मा जी ने पत्र लिखा था, उसकी कापी मेरे पास नहीं, परन्तु उत्तर से अनुमान लगाया जा सकता है।

ज्येष्ठ शुदि १०।

चि० इन्द्र !

तुम्हारा पत्र देख कर मैं बहुत खुश हुआ हूं। मेरा खयाल है कि जो कुछ मैं यंग इण्डिया में लिख रहा हूँ, उस पर से तुम्हारा समाधान हो जायगा।

आर्यसमाज के विषय में लिखना उचित और प्रस्तुत इस लिए समझा कि आर्यसमाज की प्रवृत्ति में जितने दोष हैं, वे निकल जायें। मेरा मन्तव्य है कि ऋषि दयानन्द में असहिष्णुता थी। यह बात जब मैं १९१९ साल में लाहौर था, तब भी महा० कृष्ण जी से कही थी। यदि मैं स्वच्छ भाव से इतनी बात न कहूं तो कौन कहेगा ?

अन्य धर्म ग्रन्थों की बात यदि आवश्यक रहती तो मैं हरगिज न छोड़ता। वेद

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के विषय में जो कुछ मैं जानता हूं, इतना मेरा अभिप्राय कायम करने के लिए काफी था। मैंने आर्य धर्म की शिकायत नहीं की है। मुसलमानों ने जो कुछ कहा उसका क्या असर हो सकता है ?। पिता जी ने मेरे विषय में जो कुछ कहा या लिखा मैंने देखा भी नहीं है। क्रानिकल में थोड़ा सा आया है,वह सिर्फ मेरे कार्य की ही टीका है। उसमें ऐसा क्या बुरा था, जिसके वास्ते मैं बैर करूं ?। भला कोई कैसा ही कहे, इतना समझ लो कि मैं पिता जी के बारे में वैरभाव से कुछ लिख ही नहीं सकता हूं। आर्यसमाज की सेवा मैं जानता हूं। मैं उस से ज्यादा सेवा चाहता हूं। इसी कारण मेरा लेख समझा जाय। मोहनदास के आशीर्वाद।

इसी प्रकरण में मैंने दूसरा पत्र भी लिखा। उसका महात्मा जी ने यह उत्तर दिया।

चि० इन्द्र !

तुम्हारा दूसरा खत भी मिला। पहला उत्तर मिल गया होगा। फाइल भी मिली है। मैं दिल्ली पहुंचने लिये उत्सुक हूं। डाक्टरों ने डराया है इस लिए ठहर गया हूं। हो सके, इतनी त्वरा से पहोंच जाऊंगा।

आश्विन कृष्ण ६ ! मोहनदास के आशीर्वाद

(असहिष्णुता पर टिप्पणी साहित्य समीक्षा में देखें—सम्पादक गु० प०) ।

अस्पृश्यता महापाप—

चाहे मैं टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाऊं पर दलित जातियों मे मैं अपनी आत्मीयता छोड़ने को तैयार नहीं।

जिस प्रथा की बदौलत हिन्दुओं का एक बड़ा भाग पशु से भी बदतर हालत को जा पहुंचा है उसके लिये मेरे रोम रोम में घृणा भर रही है।

अस्पृश्यता हिन्दुओं का पाप है। इसे धोने के लिए उन्हें तप करना होगा। अपने आप को शुद्ध करना होगा। हरिजन भाई-बहिनों का ऋण जो उन पर चढ़ा हुआ है उसे चुकाना ही होगा।

—महात्मा गान्धी।

पूर्ण श्रद्धा से उद्देश्य प्राप्ति—

जब तक पूर्ण श्रद्धा के साथ परमात्मा की भक्ति में मग्न नहीं हो जाता तब तक उसको जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश, भाग ३ पृ० ११०।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी के स्मरणीय वचन

(१७ नव० की उनकी निधन तिथि के उपलक्ष्य में संकलित)

१

स्वामी दयानन्द मेरे गुरुः—

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल इन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला और अपने हृदय और मस्तिष्क को पाला। मुझे इस बात का अभिमान है कि मेरा गुरु बड़ा स्वतन्त्र मनुष्य था। उसने हमको स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना, बोलना और कर्तव्य पालन करना सिखाया। मुझे इस बात का भी गर्व है कि मेरी माता ने मुझ को एक संस्था में बद्ध हो कर रहना सिखाया था। एक ने स्वतन्त्रता दी दूसरे ने नियमानुवर्तिता का दान दिया। इन के बिना न तो मनुष्य अपना सुधार कर सकता है और न किसी और का। नवयुवक स्वतन्त्रता के ग्राहक हैं किन्तु नियमशीलता के विरुद्ध हैं। जब तक ये दोनों भाव समभाव से उन में उत्पन्न न होंगे तब तक उनका जीवन आनन्दमय और सुखी नहीं हो सकता। स्वामी जी ने हम को देश प्रेम का मीठा फल चखाया, जातिभक्ति और जातिसेवा का बीज हमारे हृदयों में बोया, साथ ही हमको यह भी उपदेश दिया कि हम अपने हृदय को विशाल और उदार रखें जिस से मनुष्य मात्र इस में समा जाए।

२

जाति भेद का अभिशाप

जाति भेद हिन्दू धर्म का सब से बड़ा कलङ्क है। ब्राह्मण और अब्राह्मण, जाट एवं गैरजाट और नाम मात्र ऊंच नीच जातियों के वैमनस्य का यही मूल कारण है और इसी ने अछूतपन को जन्म दिया है। जब तक हिन्दू जातपाँत की बेड़ियों से मुक्त नहीं होते तब तक इन का एक राष्ट्र बनना असंभव है।

३

अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार

यह सर्वदा स्मण रखना चाहिये कि राष्ट्रिय अवनति का मूल दूसरों पर अत्याचार है और यदि हम भारतीय यह चाहते हैं कि राष्ट्रिय आत्मसंमान और प्रतिष्ठा हमें प्राप्त हो तो हमें दलित भाई बहनों के प्रति अपनी बाहें खोल देनी चाहियें और उनमें मानवोचित गौरव की प्राणदायिनी भावना को जागृत करने में सहायता देनी चाहिये। जब तक हमारे देश में इतनी बड़ी संख्या में अस्पृश्य समझे जाने वाले लोग विद्यमान हैं हम राष्ट्रिय दृष्टि से कभी वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते क्यों कि इस के लिये उच्च नैतिक मानदण्ड की आवश्यकता है और यह असम्भव है जहां निर्बल वर्गों के साथ अन्याय पूर्ण व्यवहार किया जाए। अपने भाई की निर्बलता पर कोई मनुष्य अपनी महत्ता का निर्माण नहीं कर सकता। मनुष्य की उन्नति और अवनति उसकी अपनी शक्ति पर निर्भर है।

४

गुरुकुल से प्रेम

"मुझ से लोग पूछते हैं कि तुम किसे ज्यादह प्यार करते हो डी० ए० वी० कालेज

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को या गुरुकुल को ? मेरा जबाब यह है कि डी. ए. वी. कालेज से मुझे वैसा प्यार है जैसा एक पिता को अपने पुत्र से होता है। परन्तु गुरुकुल को मैं उस तरह का प्यार करता हूं जो एक प्रेमी को अपनी प्रेमिका से होता है।"

(गुरुकुल कांगड़ी के सन् १९२१ के–
वार्षिकोत्सव में दिये भाषण से)।

—

विचार तरङ्ग

श्री भारतभूषण देहली

हमारी शक्ति सीमित है, उसकी शक्ति असीमित। यदि हम अपने को उस के साथ मिला दें, तो क्या सीमाओं के बन्धन से विमुक्त नहीं हो सकते ?
जलबिन्दु स्वयं में कितना परिमित है, किन्तु सागर में मिलने पर क्या वह अपरिमित नहीं हो जाता ?

× × ×

जीवन अनिवार्य है, ऐच्छिक नहीं–वांछनीय हो अथवा अवांछनीय। किन्तु यह कौनसा दीर्घ है ? केवल कुछ वर्षों तक ही तो, फिर वह भी अनिश्चित।
उसकी समाप्ति कभी भी हो सकती है––आज · · अभी · · इसी क्षण !

क्या इतने स्वल्प काल में भी मानव संतुष्ट नहीं रह सकता ?

× × ×

तैरना सीखने के लिए पानी में जाना आवश्यक है; संयम सीखने के लिए प्रलोभनों में रहना आवश्यक है।

किन्तु मानिए एक व्यक्ति बहुत अशक्त है; उससे धरती पर पांव तक नहीं रक्खा जाता। यदि वह तैरना सीखने की इच्छा से पानी में छलांग लगादे, तो क्या उसका यह कार्य मूर्खता पूर्ण न होगा ? इसी प्रकार एक व्यक्ति जो मंदिर में भी मानसिक पवित्रता नहीं रख सकता, यदि वह संयम सीखने की इच्छा से अन्तःपुर में जाए, तो क्या उसका यह कार्य हास्यास्पद न होगा ?

जब तक ज्ञान परिपूर्ण न हो जाए, विवेक बुद्धि जागृत न हो जाए, जीवन का ध्येय निश्चित न हो जाए, ईश्वर विश्वास परिपक्व न हो जाए, तब तक क्या प्रलोभनों से दूर रहना ही श्रेयस्कर न होगा ?

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्जाम्बुकेसरी लाजपतरायः

१

वक्तारं प्रतिभान्वितं हि नितराम्, ओजस्विनं स्फूर्तिदं
देशस्योन्नतये सदैव निरतं, कष्टेषु घोरेष्वपि ।
अस्पृश्यत्वनिवारणार्थमनिशं, यत्नं दधानं परं
लालालाजपतं कुशाग्रधिषणं, भक्त्या नुमस्तं वयम् ॥

२

निर्भीकः सततं प्रयतननिरतो योऽत्र स्वराज्याप्तये
कार्यं यः प्रवसंश्चकार परमं, धीमान् विदेशेष्वपि ।
यस्यौजस्विगिराविपक्षिनिवहो नित्यं चकम्पे भृशं
लालालाजपतं कुशाग्रधिषणं भक्त्या नुमस्तं वयम् ॥

३

आसीद् यः प्रथितः समस्तभुवने पञ्चाम्बुसत्केसरी
जज्वालोरसि यस्य पापदहनः स्वातन्त्र्यवह्निः सदा ।
आङ्ग्लानां निशितैरतीव विषमैर्यष्टिप्रहारैः क्षतं
लालालाजपतं कुशाग्रधिषणं, भक्त्या नुमस्तं वयम् ॥

४

एको मेऽत्रगुरुस्तपोनिधिवरो, योगी दयानन्दकः
माताचार्यसमाजनाममहिता, स्वातन्त्र्यसत्स्फूर्तिदा ।
इत्थं यो हि जुघोष भक्तिसहितो निर्भीकनेत्रग्रणीः,
लालालाजपतं कुशाग्रधिषणं, भक्त्या नुमस्तं वयम् ॥

धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां आनी चाहियें)

मेरा धर्म

लेखक—श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर पृष्ठ संख्या ३७० मूल्य सजिल्द ७)। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति वेद विषयक 'वरुण की नौका,' 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' 'वेद का राष्ट्रिय गीत' इत्यादि पुस्तकों के लेखक के रूप में इतनी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं कि उन की विद्वत्ता के विषय में कुछ भी लिखना सर्वथा अनावश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक में वैदिक धर्म में स्त्रियों की स्थिति' वेद और गोपालन, वैदिक समाज व्यवस्था, वैदिक धर्म और राष्ट्रोन्नति, वैदिक धर्म और उपासना, वैदिक धर्म और मांस भक्षण, वैदिक धर्म और ब्रह्मचर्य तथा पश्चिमी डाक्टर, वैदिक धर्म और अन्य धर्मावलम्बी, वेद और इलहाम इन नौ विषयों पर सुयोग्य लेखक महानुभाव के सर्व धर्म सम्मेलनादि में पढ़े विद्वत्तापूर्ण सरल प्रभावोत्पादिनी शैली में लिखे युक्ति युक्त निबन्धों का संग्रह है जिनके द्वारा वैदिक धर्म के जन-कल्याणकारी विभिन्न पहलुओं का मौलिक अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को निस्सन्देह ज्ञात होगा कि मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका समाधान करने की शक्ति वैदिक धर्म न रखता हो। वैदिक धर्म त्रैकालिक और सार्वभौम धर्म है। यह हमारे वैयक्तिक जीवन की कठिनाइयों को भी सुलझा सकता है और सामाजिक तथा राष्ट्रिय जीवन की कठिनाइयों को भी वह हमारी आत्मिक आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकता है और भौतिक आवश्यकताओं को भी क्योंकि वेदों में मानव जीवन के प्रत्येक अङ्ग से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर प्रकाश डाला गया है। सुयोग्य लेखक ने प्रत्येक विषय पर गम्भीर युक्तियुक्त विवेचन किया है। इस के उदाहरण के तौर पर हम 'वैदिकधर्मी और अन्य धर्मावलम्बी, इस शीर्षक के निबन्ध के 'सहिष्णुता और उदार हृदयता किसे कहते हैं ?' इस भाग को उद्धृत करना चाहते हैं क्योंकि इस विषय में आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की स्थिति को समझने में महात्मा गांधी जी जैसे विश्ववन्द्य महानुभाव भी भूल कर गये जैसे कि इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित उनके मान्य श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के नाम लिखे सन् १९२४ के एक पत्र से स्पष्ट है। इस विषय में मान्य आचार्य प्रियव्रत जी ने कितनी अच्छी बात कही है कि—

"सहिष्णुता और उदारहृदयता इसे नहीं कहते कि मेरे चारों ओर चाहे जिस तरह के अनर्थकारी विचार धर्म के नाम पर फैलाये जाते रहें और मैं चुपचाप बैठा रहूं, उनके रोकने का कोई प्रयत्न न करूं। यह सहिष्णुता और उदारता नहीं, यह कायरता और अधर्म की वृद्धि को आश्रय देना है। मेरा कर्तव्य है कि मैं असत्य और अनर्थकारी विचार की चाहे वह धर्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के नाम पर ही क्यों न फैलाया गया हो, असत्यता और अनर्थकारिता पूरे जोर से लोगों पर प्रकट कर दूँ। आगे लोगों की मर्जी है कि वे मेरी शुभभावना से प्रेरित सलाह को मानते हैं या नहीं मानते । मैं अपनी सलाह मनवाने के लिये किसी पर बल प्रयोग नहीं करता–किसी को लट्ठ मारने नहीं जाता। सहिष्णुता और उदारता कहते हैं अपनी तीखी से तीखी समालोचना भी शान्ति से सुन सकने की शक्ति को, अपने विचारों के विरोधी से विरोधी विचार फैलाने वाले लोगों को भी उनके प्रचार कार्य से रोकने के लिये किसी तरह के बल प्रयोग की ओर न झुकने की आदत को । मैं अपने विचारों की तीव्र से तीव्र समालोचना भी धैर्य से सुनूँगा, यदि शक्ति होगी तो उस का युक्ति और तर्क से उत्तर दूंगा, नहीं तो भूल मान लूंगा या चुप होकर बैठा रहूंगा —इसे कहते हैं सहिष्णुता, इस का नाम है उदारता । इस दृष्टि से आर्य समाज पक्का सहिष्णु है, पूरा उदार है। और जब दूसरे धर्मों वाले इसे असहिष्णु और संकुचित कहते हैं तो वे स्वयम् अपने इन अवगुणों का परिचय दे रहे होते हैं ।

(मेरा धर्म पृ० ३०५)

इसी प्रकार मांस भक्षण के प्रकरण में बड़ा उत्तम वैज्ञानिक और युक्ति युक्त विवेचन किया गया है जिस की इस समय जब कि दुर्भाग्यवश मांसभक्षण की प्रवृत्ति अनेक शिक्षित युवकों में बढ़ती प्रतीत होती है अतिविशेष आवश्यकता है ।

हम इस पुस्तक का स्वागत करते और इस विद्वत्तापूर्ण अत्यन्त उपयोगी पुस्तक को लिखने पर आचार्य प्रियव्रत जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। इसे प्रत्येक शिक्षित के हाथ में पहुँचाने का सब वैदिकधर्मप्रेमियों को यत्न करना चाहिये । धनी मनी आर्य इस की अधिक प्रतियां खरीद कर अन्य शिक्षितों तक इसे पहुंचाएं तो बड़ा पुण्य कार्य होगा । निर्देश के रूप में मैं यह अवश्य लिखना चाहता हूं कि 'अन्य धर्मावलम्बी' शब्द का प्रयोग मेरे विचार में सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक नहीं है । धर्म तो एक ही है और वह सार्वभौम सत्यसनातन वैदिक धर्म है । अन्य मत या सम्प्रदाय कहे जा सकते हैं धर्म नहीं यद्यपि उन में भी सच्चे धर्म के कई अंश हैं जो उपादेय हैं । धर्मदेव

दार्शनिक अध्यात्म तत्त्व–लेखक— स्वा० ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर; पुस्तक मिलने का पता—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा बलिदान भवन देहली पृ० १३४ मूल्य १।)

यह प्रिय ग्रन्थमाला का पुष्प ४५ और ब्रह्ममुनि ग्रन्थमाला का पुष्प १३ है जिस में स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने जो आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध वैदिक और दार्शनिक विद्वान हैं और जो गत वर्षों में वेदान्त भाष्य और सांख्यभाष्य पर उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा भी पुरस्कृत हो चुके हैं छहों दर्शनों के अध्यात्म अर्थात् ईश्वर, जीवात्मा, अन्तः करण, प्रकृति, विद्या, मोक्ष, मोक्षोपाय, अभ्यासवैराग्य, योगाभ्यास और उपासना के फल इत्यादि २० विषयों का सूत्र व्याख्यान सहित विशेष विवेचन किया है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन में से प्रत्येक विषय पर वेदमन्त्र भी दिये हैं जिनसे दर्शनों की वेदाधारता स्पष्टतया सिद्ध होती है। ईश्वर, जीव और प्रकृति की अनादिता और इन के परस्पर सम्बन्ध पर विद्वान् स्वामी जी ने वेदों और दर्शनशास्त्रों के आधार पर बहुत ही अच्छा प्रकाश डाला है। वेदान्त दर्शन के विषय में प्रायः समझा जाता है कि उस में अद्वैत वाद का प्रतिपादन है किन्तु 'शारीरश्चोभयेऽपिहि भेदेनैनमधीयते' अनुपपत्तेस्तु न शारीरः इत्यादि सूत्रों के आधार पर सुयोग्य लेखक ने ईश्वर जीव भेद सिद्ध किया है और दर्शनों के ईश्वर, जीव, प्रकृति इत्यादि विषयक सिद्धान्तों के परस्पर विरोध की कल्पना का खण्डन करते हुए उनका समन्वय दिखाया है। सांख्य और मीमांसा को प्रायः अनीश्वरवादी माना जाता है किन्तु विद्वान् स्वामी जी ने प्रबल प्रमाणों से इस भ्रान्तकल्पना का निराकरण किया है। मुक्ति से पुनरावृत्ति का भी वेदों और दर्शनों के आधार पर प्रतिपादन किया है जो विशेष रूप से पठनीय है। सम्पूर्णपुस्तक सुयोग्य लेखके वेद और दर्शनशास्त्र विषयक गम्भीर पाण्डित्य और मनन का परिचायक है जिसके लिये हम उन का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं तथा इस पुस्तक का अध्यात्मजिज्ञासु और पण्डित मण्डली में विशेष प्रचार चाहते हैं। केवल पृ० २४ पर 'यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे' के आदि ऋषि परक उनके अर्थ पर हमें विप्रतिपत्ति है पर वह गौण बात है। सम्पूर्ण तया यह पुस्तक अत्यन्त मननीय और उपयोगी है। धर्मदेव वि० मा०

परमेश्वर के दर्शनों के लिये उत्कण्ठा—

हे बन्धुगण ! पवित्र स्वरूप परमात्मा के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित हो जाओ और उस की भक्ति में मग्न हो कर उस के दिव्य स्वरूप के दर्शन करते हुए संसार के सर्व प्रकार के विकारों को दूर कर दो। उन पवित्र दर्शनों से सब विघ्नों का नाश हो कर तुम्हारा आत्मा पवित्र हो सकता है।

––स्वामी श्रद्धानन्द जी के धर्मोपदेश, भाग ३ पृष्ठ ४५।

वेदों का स्वाध्याय––

आवो हम सब मिल कर वेदों के स्वाध्याय की फिर से नींव डालें और ऐसा यत्न करें कि न केवल भारतवर्ष के अन्दर ही नहीं बल्कि सारी दुनियाँ के अन्दर स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध सब के सब वेद के स्वाध्याय को अपने जीवन का उद्देश्य समझें।

—स्वामी श्रद्धानन्द के धर्मोपदेश भाग ३ पृष्ठ ११५।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

पं० पन्त जी का शिक्षा विषयक विचारोत्तेजक लेख--

भारत के सुयोग्य गृहमन्त्री श्री पं० गोविन्द-वल्लभ जी पन्त का 'विश्वविद्यालयों का महत्त्व' इस शीर्षक का एक लेख-भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। खेद है कि स्थानाभाव से उस विस्तृत सम्पूर्ण लेख को प्रकाशित करना सम्भव नहीं हुआ तथापि उस के निम्न महत्त्वपूर्ण अंशों को उद्धृत करना और उनकी ओर विचारशील लोगों का ध्यान आकृष्ट करना हमें उचित प्रतीत होता है।

शिक्षा के समाज के साथ सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए पं० पन्त जी ने लिखा है कि "समाज और शिक्षा का दोहरा सम्बन्ध है। अगर समाज आदर्शहीन है तो शिक्षा भी आदर्शहीन होगी। दूसरी ओर,समाज के आदर्शों का निर्माण शिक्षा द्वारा होता है। अगर समाज दिग् भ्रान्त है तो शिक्षा भी पथभ्रान्त होगी। यदि समाज का कोई लक्ष्य नहीं तो शिक्षा भी निरुद्देश्य होगी" ब्रिटिश शासन में प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य अधिकतर ऐसे लोगों को तय्यार करना था जो विदेशी शासन यन्त्र के अवयव बनकर उसको चलाने में सहायक हो सकें किन्तु खेद है कि स्वतन्त्र भारत में भी प्रायः वही शिक्षा पद्धति चल रही है जो लक्ष्यहीन प्रतीत होती है। समाज और राष्ट्र के सब शुभचिन्तकों को इस शोचनीय अवस्था को दूर करने और शिक्षा के लक्ष्य को प्राचीन भारतीय संस्कृति के आदर्शानुसार निश्चित करने का यत्न करना चाहिये जिसमें सदाचार निर्माण और समविकास पर विशेष बल हो।

'ज्ञान की खोज' इस शीर्षक के नीचे उन्होंने ठीक ही लिखा है कि 'ज्ञान प्राप्ति के लिये तटस्थ विवेक बुद्धि, सत्य के प्रति प्रगाढ़ आस्था और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अटूटश्रम की जरूरत होती है। विश्वविद्यालयों का काम विद्यार्थियों में इन्हीं गुणों का विकास करना है। राष्ट्र को ऐसे ही लोगों की आवश्यकता है।

छात्रों में अनुशासन हीनता-पं० पन्त जी के लेख का अत्यन्त महत्त्व पूर्ण अंश वह है जिस में यह बताते हुए कि "जीवन में अनुशासन का भी बहुत महत्त्व है, अनुशासन का अर्थ है अपनी भावनाओं को वश में रखना और अपने आदर्शों पर चलना। अनुशासन से शिष्टता आती है और दीन दुःखियों की सहायता करने की भावना जगती है। अनुशासित व्यक्ति दूसरों के अधिकारों का सम्मान करता है" पं० पन्त जी ने लिखा—

'कुछ समय पहले मुझे यह समाचार पढ़ कर बहुत दुःख हुआ कि एक विश्वविद्यालय के ३०० विद्यार्थियों ने एक रेलगाड़ी को डेढ़ घंटे से भी अधिक समय सिर्फ इसलिये रोके रखा कि उसमें उन्हें जगह नहीं मिली। उन्होंने रेल कर्मचारियों को पीटा जिससे बहुत लोग घायल हुए। विद्यार्थियों ने सरकारी सम्पत्ति को भी नुक्सान पहुंचाया। इस प्रकार की घटनाओं की कड़े से कड़े शब्दों में निन्दा करनी चाहिये। इन से यह पता चलता है कि हमारा समाज रोगी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो गया है और इसमें कोई ऐसा कीड़ा लग गया है जिस से नैतिकता का ह्रास हो रहा है। इससे यह भी पता लगता है कि जिन्हें संसार के महान् चिन्तकों के विचारों का अध्ययन कर अपना मानसिक विकास करना चाहिये, उन्होंने अपना व्यक्तित्व खो दिया है और विचार हीन हो गये हैं। अगर इसी तरह की घटनाएं होती रहीं तो मानसिक स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त हो सकेगी और व्यक्ति का महत्त्व कैसे स्थापित हो सकेगा? कल्याणकारी राज्य तो अपने जागरूक नागरिकों के सहयोग की नींव पर ही स्थापित किया जा सकता है। अनुशासन के विना जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं हो सकती स्वतन्त्र समाज में अनुशासनहीन व्यक्ति को कोई स्थान नहीं।

छात्रों की यह अनुशासनहीनता अत्यन्त-भयङ्कर रूप धारण कर के एक विषम समस्या बन गई है जिसका समाधान शिक्षा वैज्ञानिकों और राष्ट्र के कर्णधारों को करना ही होगा। हमारे विचार में तो उच्च आदर्शों का अभाव और नैतिक अथवा वास्तविक धार्मिक शिक्षा की उपेक्षा इस के प्रधान कारणों में से है जिस का कुछ निर्देश पं० पन्त जी ने अपने लेख में इन शब्दों द्वारा किया है—

"नैतिक संकट—आज दुनिया में चारों ओर जो रागद्वेष छाया हुआ है। उसका अन्त नैतिकता से ही किया जा सकता है। हमारे ऋषियों ने नीति या नैतिकता को ही धर्म की संज्ञा दी है। धर्म किसी विशेष सम्प्रदाय, वर्ग या जाति की वस्तु नहीं। यह धर्म मानव धर्म या विश्व धर्म है। वह नीति या आचार है जिस के अनुसार हमारे सारे कार्य और व्यवहार होते हैं। यह नीति या धर्म मनुष्य की शक्तियों का समन्वय करके उसे पूर्ण मानव बनाता है। इन नैतिक सिद्धान्तों की विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठा होनी चाहिये। जब हम इसके अनुसार अध्ययन और आचरण करने लगेंगे तो हमारे विचार उदार होंगे और हम में नम्रता, सहनशीलता और सदभावना आएगी।"

प्रश्न तो यह है कि इस मानव धर्म या विश्वधर्म की शिक्षा का हमारे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में क्यों शीघ्रातिशीघ्र कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता? कबतक ऐसी शोचनीय अवस्था बनी रहेगी?

लेख के अन्त में पं० पन्त जी ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूलभूत तत्त्व का निर्देश इन शब्दों में किया है कि 'हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में अध्यापकों और विद्यार्थियों में इस प्रकार के विचार विनिमयका पर्याप्त अवसर नहीं मिलता। विद्यार्थियों की आन्तरिक शक्ति के विकास के लिये उनका अपने अध्यापकों से अधिक घना सम्बन्ध होना चाहिये।"

गुरु शिष्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध ही गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता है जिसको अधिकाधिक प्रोत्साहित करना और अपनाना जनता और सरकार का कर्तव्य है।

देवनागरी लिपि में सुधार या बिगाड़

गत कुछ वर्षों से देवनागरी लिपि में सुधार के लिये कुछ महानुभाध विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं जिन के नमूने के तौर पर इस टिप्पणी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को लिखते हुए आचार्य काका कालेलकर के पत्र 'मङ्गल प्रभात' और राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की मुखपत्रिका 'राष्ट्रभाषा' के अङ्क तथा उत्तरप्रदेशीय शासन के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक इस समय हमारे सन्मुख हैं। इन में से प्रथम दो में इ, को अि, उ को अु, ए को अे इत्यादि विचित्र रूपों में लिखा जाता है जिसको हम व्याकरण विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध समझते हैं। उत्तरप्रदेश शासन के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में प्र, ध्र, क्र आदि संयुक्षरों को विचित्र रूप में लिखा जाता है ह्रस्व इ और दीर्घ ई का इतना थोड़ा अन्तर रखा गया है कि उनमें भेद करना बड़ा कठिन है। हमें इस प्रकार के परिवर्तन सर्वथा-अनावश्यक और अनुपादेय प्रतीत होते हैं। उन्हें सुधार की अपेक्षा (राष्ट्रभाषादि के अनुसार अपेक्षा) बिगाड़ का ही नाम देना हमें अधिक उचित प्रतीत होता है। अभी कुछ दिन पूर्व हमारे सहाध्यायी तथा हिन्दी के पुरस्कार प्राप्त सुप्रसिद्ध लेखक और कवि पं० विद्यानिधि जी सिद्धान्तालङ्कार हमारे पास 'गुरुकुल पत्रिका' कार्यालय नें बैठे हुए थे। हम ने जब 'मङ्गल-प्रभात' आदि में छपे कुछ शब्द उन्हें पढ़ने को कहा तो वे अत्यन्त विस्मित हुए और कहने लगे कि अब इस ५६-५७ वर्ष की आयु में हमें नये सिरे से इस परिवर्तितलिपि को सीखना पड़ेगा। यदि टाइप् की सुविधा के लिये कुछ सामान्य परिवर्तन आवश्यक प्रतीत होते हों तो उन्हें केवल उतने उपयोगार्थ किया जा सकता है। शेष परिवर्तन अनावश्यक हैं।

फीरोज पुर जेल के बर्बर काण्ड के प्रतिवेदन के प्रकाशन में विलम्ब क्यों ?

गत २४ अगस्त को फीरोज पुर कारागृह में हिन्दी सत्याग्रहियों पर जो भीषण प्रहार भयङ्कर अपराधियों द्वारा कराया गया और जिसके परिणाम स्वरूप एक युवक सत्याग्रही सुमेरसिंह का प्राणान्त हो गया और अनेकों को कष्टजनक आघात पहुंचे उस का जस्टिस कपूर ने प्रतिवेदन पंजाब सरकार को कई दिन पूर्व भेजा हुआ है किन्तु कहा जाता है कि पंजाब सरकार के मुख्यमन्त्री, सत्याग्रह की समाप्ति तक उसे प्रकाशित करना नहीं चाहते। यदि यह समाचार सत्य है तो हम इसे नितान्त अनुचित और जनता के लिये घोर असन्तोषवर्धक समझते हैं। संसदीय कांग्रेस दल के महामन्त्री श्री पं० अलगूराय जी शास्त्री २७ अगस्त को इसकी जांच के लिये फीरोजपुर गये थे। उन्होंने वहां से लौटने पर प्रधानमन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी को जो रोमांचकारी प्रतिवेदन पत्र द्वारा दिया उसमें से निम्न अंशों को उद्धृत करना ही हम पर्याप्त समझते हैं। उन्होंने लिखा "फिरोजपुर में जिस निर्दयता, निष्ठुरता, निर्ममता से हिन्दी सत्याग्रहियों को जेल के कैदियों की लाठियों से पिटवा कर उन की हड्डियां तुड़वाई गई हैं उसे देखकर आप तो अवश्य ही विचलित हो उठेंगे। विश्वास कीजिये, मैं ने कल्पना भी न की थी कि यह दृश्य देखूंगा। बूढ़े संन्यासी, बूढ़े लोग, बच्चे और कुछ हट्टे कट्टे भी जो सब ३२२ हैं इस प्रकार मारे गये हैं कि यदि उस प्रकार भैंसा गाड़ी हांकने वाला, कूड़ा ले जाने वाला भंगी शहर में अपन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भैंसे को पीटता दिखाई पड़े तो उस का चालान पुलिस, क्रुएल्टी टु ऐनीमल ऐक्ट में किये विना नहीं रह सकती। पण्डित जी मेरी आँखों से आँसू ही बहते रहे जब तक मैं उन सत्याग्रही बन्दियों में घूमता रहा। ५७६ सत्याग्रहियों में से ३१२ को इस प्रकार पीट कर उनकी हड्डियों को तोड़ देना १०-१५ मिनट के समय में आश्चर्य ही लगता है। जेल के पुराने अपराधियों की सहायता से यह सब हुआ। जेल में एक अपराध के लिये जो लोग बन्दी हैं उन्हें इस प्रकार पीटा जाए, यह बर्बरता का एक भीषण नंगा नृत्य है।...आपकी सर्वोच्च सत्ता में बन्दी निरीह पिटें, इस से आपका यश और तप क्षीण होता है तब समस्त राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति घटती है। पण्डित जी—जेलदेखिये, अवश्यजाइये, स्वयं-जाइये, कांग्रेस तथा कांग्रेस सरकार की मर्यादा और यश की रक्षा कीजिये, पीटे गये सत्याग्रहियों की क्षतिपूर्ति का आदेश कीजिये। आपका जाना उनके आंसू पोंछ देगा। बड़ा अत्याचार हुआ है, बड़ा अनाचार। आपको स्वयम् इस नृशंसता को देख लेना चाहिये।...आक्रमणकारी एवं आक्रमण कराने वाले लोगों को कठोर दण्ड दिया जाए। इत्यादि

इस पत्र से उस बर्बरता पूर्ण काण्ड की भीषणता और रोमाञ्चकारकता स्पष्ट है। हमें इस बात का आश्चर्य और खद है कि हमारे प्रधान-मन्त्री जी श्री शास्त्री जी के इन मार्मिक शब्दों के लिखने पर भी स्वयं फ़ीरोजपुर जाने का समय नहीं निकाल सके और हिन्दी रक्षान्दोलन की वे अत्यन्त कटु तथा कठोर शब्दों में आलोचना करते रहे। अब जब न्यायाधीशकपूर जी ने उस भीषण काण्ड का प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत कर रखा है उसके प्रकाशन में पंजाब सरकार का विलम्ब करना नितान्त अनुचित है। इससे सन्तप्तजनता के असन्तोष में वृद्धि होना स्वाभाविक है जिसके लिये उत्तरदायिता सरकार की होगी।

मान्य राष्ट्रपति जी का अभिनन्दनीय प्रयत्न—

२४ अक्टूबर को यह सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हुए हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि हमारे मान्यवर राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी जो स्वयं राष्ट्रभाषा हिन्दी के न केवल अत्यन्त प्रेमी किन्तु उत्कृष्ट कोटि के लेखक भी हैं पंजाब की भाषा समस्या को सुलझाने के लिये प्रयत्न शील हैं और उन्होंने २३ अक्टूबर को एक घण्टे तक सार्वदेशिक भाषा स्वातन्त्र्य समिति के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त से बातचीत की। अब उन्होंने श्री डा० गोपीचन्द्र जी भार्गव को बातचीत के लिये बुलाया है। हम मान्य राष्ट्रपति जी के इस प्रयत्न को अभिनन्नीय समझते हुए आशा करते हैं कि वे इस महत्वपूर्ण समस्या को न्यायोचित रीति से सुलझाकर जनता के धन्यवाद के पात्र बनेंगे। भगवान् से उनके प्रशंसनीय प्रयत्न की सफलता के लिये हम हार्दिक प्रार्थना करते हैं।

विश्वशाकाहारिसम्मेलन का अभिनन्दन

यह बड़े हर्ष की बात है कि विश्वशाका-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हारि सम्मेलन का १५ वाँ अधिवेशन इस वर्ष ९ से २९ नम्बर के बीच में बम्बई, देहली, पटना और मद्रास में हो रहा है जिस का उद्देश्य निरामिषभोजियों के समस्त संसार के प्रतिनिधियों को परस्पर विचार विनिमय के लिये एकत्र करना, शाकाहार के सम्बन्ध में स्वास्थ्य, पुष्टि तथा नैतिक दृष्टि से नवीनतम ज्ञान को जगत् के सन्मुख रखना, निरामिषभोजन के पक्ष में जनता और सरकारों की रुचि को अधिकाधिक उत्पन्न करना, शाकाहार के पक्ष में प्रचार को प्रबल करना और अहिंसा तथा विश्व बन्धुत्व पर आश्रितविश्व मानव सभ्यता को प्रोत्साहित करना है। हम इन उद्देश्यों के साथ पूर्ण सहानुभूति रखते हुए इस सम्मेलन का हार्दिक स्वागत और अभिनन्दन करते हैं। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि वेदादिसत्यशास्त्र निरामिषभोजन का ही प्रतिपादन करते और मांसाहार को पाप तथा आत्मिक उन्नति में सर्वथा बाधक बताते हैं जैसे कि वेद उपनिषत् स्मृति महाभारतादि के प्रमाण देकर हम ने इसी सम्मेलन के लिये अंग्रेजी में तय्यार किये अपने निबन्ध में सप्रमाण दिखाया है। देहली में शाकाहारि सम्मेलन की स्वागतसमिति के अध्यक्ष सरदार मोहनसिंह जी ने २० अक्टूबर को ठीक ही कहा कि यह धारणा सर्वथा मिथ्या है कि मांसाहार से शाकाहार की अपेक्षा अधिक जीवनीय व पोषक तत्व मिलते हैं। मांस में प्रोटीन की मात्रा बहुत बताई जाती है किन्तु मांस में जहां यह केवल १६ प्रतिशतक है वहां पनीर में २५ प्रतिशतक और सोयाबीन में ४० प्रतिशतक है। मांस खाने वाले व्यक्ति मांस के साथ विषैले तत्त्वों, यूरिकऐसिड्, मृत कीटाणुओं आदि को भी खाते हैं जिस से बीमारियों के फैलने का डर रहता है। इत्यादि

भारत तो निरामिषभोजिप्रधान देश सदा से रहा है और यहां मनु जी के 'यक्ष रक्षः पिशाचान्न, मद्यं मांसमथासवम्' के अनुसार मांस मद्यादि को पिशाचों और राक्षसों का निकृष्ट भोजन समझा जाता रहा है, यूरोप में भी पाइथोगोरस, प्लैटो, शैली, टॉलस्टॉय, ऐडवर्डकार्पेन्टर, प्रतिभाशाली बर्नर्डशॉ इत्यादि अनेक दार्शनिक कवि तथा विचारक निरामिषभोजी हुए हैं। स्पार्टा के सुप्रसिद्ध पहलवान निरामिषभोजी ही थे। मांस से शक्ति नहीं बढ़ती केवल उत्तेजना पैदा होती है। केन्सर, ऐपेन्डेसिटिस डाइबिटीज आदि अनेक रोग मांसाहारियों को अधिक होते हैं और वह हानि कारक है इस बात को डा० थाम्सन M. D. F. R. C- S. डा०ऐन्ड्रू गोल्ड, ऐलेक्जेण्डर हेग M. D, F. R. C.P. डा० रोस्ट O. B. E· M. R. C. S. I. R. C. P. डा० रिचर्ड सन् M. D. F. R. S. डा० जोशिया ओल्डफ़ील्ड M. A. D. C. . I. M. R. C. S. L. R. C. P. डा० किंग्सफ़ोड M. D. इत्यादि सैकड़ों यूरुप के सुप्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर बताते हैं। अतः धार्मिक, नैतिक शारीरिक और बौद्धिक प्रत्येक दृष्टि से शाकाहार के पक्ष और मांसाहार के विरुद्ध प्रबल प्रचार की आवश्यकता है! अतः हम इस को सफल बनाने के लिये जनता और सरकारों के क्रियात्मक सहयोग की अभ्यर्थना करते हैं धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

शीत काल का प्रारम्भ होने के कारण इस मास न तो वर्षा एवं ग्रीष्म का और न शीत का प्रकोप रहा है। साधारणतया दिन बिना किसी रुकावट एवं बाधा के सानन्द व्यतीत हुए हैं। समशीतोष्ण जलवायु होने से कुलवासियों की दैनिक चर्या व्यवस्थित एवं नियमित रही तथा अध्ययन अध्यापन का कार्य भी अत्यन्त वेग से हुआ। देश के कोने कोने से हरिद्वार में आए सैंकड़ो यात्री गुरुकुल में भी दर्शक रूप में उपस्थित रहे। इस मास दर्शकों का एक तांता सा रहा। सभी कुलवासी स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

गुरुकुल विश्वविद्यालय

सभा के निश्चयानुसार अब इस विश्वविद्यालय निम्न महाविद्यालय स्थापित हो गए हैं।

१. गुरुकुल वेद महाविद्यालय।
२. गुरुकुल महाविद्यालय।
३. गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय।
४. गुरुकुल कृषि महाविद्यालय।
५. कन्या गुरुकुल वेद महाविद्यालय।
६. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय।

यह विभाजन विषयों के अनुसार किया गया है। वैदिक साहित्य संस्कृत वाङ्मय, आंग्लभाषा, आर्यसिद्धान्त, भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन ये छः विषय गुरुकुल महाविद्यालय के अन्तर्गत रखे गये हैं। उसके अध्यक्ष मान्य प्रो० सुखदेव जी दर्शन वाचस्पति नियुक्त हुए हैं। गुरुकुल महाविद्यालय के अन्तर्गत हिन्दी इतिहास अर्थशास्त्र राजनीति तथा विज्ञान के विषय रखे हैं। इसके अध्यक्ष श्री प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार, एम.ए., साहित्याचार्य नियुक्त हुए हैं। अन्य महाविद्यालयों के विषय आदि पूर्ववत् ही हैं।

विजयादशमी पर्व

इस वर्ष यहां विजयादशमी का पुनीत पर्व अत्यन्त उत्साह एवं उमंग के साथ मनाया गया। लगातार चार पांच दिवस पर्यन्त यहां के ब्रह्मचारियों ने नानाविध खेलतमाशों का आयोजन किया। ब्र० जगन्नाथ त्रयोदश के अत्यधिक उत्साह के कारण महाविद्यालय के छात्रों ने हौकी फुटबौल, कबड्डी, वालीबाल एवं गोला फेंक तथा नानाविध दौड़ आदि कार्यक्रमों से अपना खूब मनोरंजन किया। खेल इतने उत्साह एवं मुकाबले से सम्पन्न हुए कि हाकी एवं फुटबाल के साम्मुख्य अनिर्णीत घोषित कर देने पड़े, वालीबाल में ब्र० ललित मोहन चतुर्दश के दल ने विजय श्री को अपने गले लगाया देशी खेलों में उत्तर प्रदेश एवं अन्य प्रान्तीय दलों मे हुआ कबड्डी का सान्मुख्य अत्यन्त मनोरंजक एवं दर्शनीय था।

विद्यालय विभाग के छात्रों ने और भी दुगुने उत्साह से दशहरे की छुट्टियों के क्षणों को सानन्द व्यतीत किया। २९—१०—५७ प्रातः ८ बजे इन छात्रों ने अपनी खेलों का श्री गणेश करने से पूर्व मान्य कुलपति पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति द्वारा ध्वजारोहण करवाया। हाकी, फुटबाल आदि खेलों के अतिरिक्त कुण्डल शिकार कुर्सी दौड़, अन्धायुद्ध आदि अनेक खेल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुए । ३ अक्टूबर १९५७ को रात्रि ८ बजे लंका युद्ध तथा भूमिजीत का अत्यन्त संघर्षमय दर्शनीय खेल हुआ ।

३ अक्टूबर को पूज्य आचार्य जी की अध्यक्षता में विजयादशमी का पुनीत पर्व एक सार्वजनिक सभा के रूप में उत्साहपूर्वक मनाया गया ।

शिलान्यास

३ अक्टूबर १९५७ बृहस्पतिवार प्रातः ८ बजे विजयादशमी के शुभ दिवस विज्ञानभवन की शिलान्यासविधि सम्पन्न हुई । प्रारम्भ में परमपिता परमेश्वर का नाम स्मरण कर वैज्ञानिक आधार पर स्थित सकल मानव समाज की आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति के लिए अग्निहोत्र किया गया । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता श्री प० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने प्रारम्भ में विज्ञान की शिक्षा अपने देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी में देना सर्वथा व्यावहारिक एवम् उपयोगी है—कहते हुए बताया कि यह संस्था विगत ५५ वर्षों से इस सफल परीक्षण को करती आई है । इसके बाद श्री डा० महाजनी जी भूतपूर्व वाइस चान्सलर देहली विश्वविद्यालय व सदस्य पब्लिक सर्विस कमीशन के करकमलों से शिलान्यास किया गया । उन्होंने अपने भाषण में देश के नवयुवकों के सन्मुख वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता, महत्त्व एवम् उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" उन्होंने भारत के छात्रों में वैज्ञानिक शिक्षा में विश्वास एवम् श्रद्धा उत्पन्न करने की अभिलाषा प्रकट की । उन्होंने बताया कि आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रतिदिन व्यवहार में आने वाली नानाविध वस्तुओं को देख कर कौन व्यक्ति वाह-वाह नही कर उठता । अणु शक्ति एवं विद्युत् तथा भाप शक्ति का प्रयोग विनाश की अपेक्षा निर्माण में ही अधिक है । बदनाम अणुशक्ति कृषि तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों में ही अधिक लग रही है । यह विज्ञान मनुष्य समाज को सच्ची शक्ति का मार्ग दिखा रहा है । उन्होंने कहा कि नानाविध कष्टों एवं त्याग और तपस्या पर अपना सकल जीवन न्यौछावर कर देने वाले ये वैज्ञानिक वस्तुतः ऋषि थे जिन्होंने कि हमारे "पश्येम शरदः शतम्" तथा "शृणुयाम शरदः शतम्" का महान् संकल्प पूरा करने में महान् योगदान दिया है । उन्होंने अध्यापकों एवं प्राध्यापकों को निर्देश दिया कि वे अपने छात्रों को सुन्दर वैज्ञानिक पुस्तकें दें । उनको बताएं कि वे भी सत्य के अन्वेषण के लिये श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक अपना जीवन अर्पण करें । और अन्त में उन्होंने कहा कि मेरा यह गुरुकुल आगमन मेरे लिये सदा सम्मान योग्य रहेगा । साथ ही उन्होंने विज्ञान भवन की उन्नति अर्थ सद्भावना प्रकट की ।

साहित्य परिषद् का अधिवेशन

इस परिषद् का तीसरा अधिवेशन इस वार पुनः इतिहास परिषद् के रूप में २८ सितम्बर १९५७ शनिवार प्रातः १० बजे मान्य कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के सभापतित्व में महाविद्यालय प्रार्थना भवन में आयोजित हुआ । महाविद्यालय के इतिहास विभाग के छात्रों ने "सन् १८५७ का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गदर एक सैनिक विद्रोह था या स्वतन्त्रता के लिए जन-क्रान्ति" इस पर एक वादविवाद प्रस्तुत किया। श्री प्रो० हरिदत्त जी वेदालंकार ने अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए इसे जन-क्रान्ति सिद्ध किया। अन्त में सभापति महोदय ने इतिहास परिषद् की उन्नति के लिए सद्भावना प्रकट की तथा इस प्रकार के आयोजनों का विश्वविद्यालय में होना अनिवार्य बताया।

२—७—२०१४

—प्रशान्त कुमार।

—

कृपालु ग्राहकों से निवेदन

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आप महानुभावों के सहयोग से गुरुकुल पत्रिका के परिवार में सन्तोषजनक वृद्धि हो रही है। इस प्रयत्न को निरन्तर जारी रखें और पत्रिकार्थ अच्छे विज्ञापन भिजवाने के लिए भी अपने परिचित मित्रों को प्रेरित करते रहें। पत्रिका के गत निर्वाणाङ्क के विषय में मुसलमान विद्वान् श्री शमसुद्दीन बी. ए. बी. टी. एम्. इ.डी. ने सम्पादक जी को १५—१०—५७ के पत्र में लिखा है "आपका ऋषि निर्वाणांक प्राप्त हुआ। देख कर प्रसन्नता हुई। इसके लिये हार्दिक अभिनन्दन। अङ्क से स्पष्ट है कि यह कोई साधारण प्रयास नहीं है। इसे तो केवल आप जैसे अनुभवी विद्वान् का प्रयत्न कहना चाहिये। ऐसे ही बम्बई के 'धर्मचक्र' मासिक के सम्पादक बौद्ध विद्वान् प्रो. नारायण केशव भागवत् एम.ए. इत्यादि अनेक विद्वानों से प्रशंसात्मक पत्र प्राप्त हुए हैं। सब ग्राहक महानुभावों और विद्वान् लेखकों तथा कवियों का सहयोग सदा अपेक्षित है।

निवेदक—

महेश प्रसाद

प्रबन्धक—'गुरुकुल-पत्रिका'

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, (हरिद्वार)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां " १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान " २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या " १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु " १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०. १)००
जवाहरलाल नेहरू " १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरक्ष ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुन:प्याज़ श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार " २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य ओषधि शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, पुराना बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पाव २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

[ऋषि निर्वाणाङ्क]

सम्पादक—

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १० आश्विन २०१४ अङ्क २

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्प[ति]

पूर्णाङ्क ११०

सितम्बर १९५७

★

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांग[ड़ी]

विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक

विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति

३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओ३म् सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो

वचो विदः । सुमृदीको न आविश ॥

ऋग् १. ९१. ११ ।

शब्दार्थ—(सोम) हे शान्ति के स्रोत परमेश्वर (वयं वचोविदः त्वा गीर्भिः वर्धयामः) हम वाणी के तत्त्व को जानने वाले हो कर वाणियों द्वारा तेरा कीर्तिगान करते हैं । तुम (सुमृडीकः) उत्तम सुखदायक हो कर (नः आविश) हमारे अन्दर प्रविष्ट होवो ।

प्रभु! मेरी वाणी में ऐसा, तू अनुपम बल भर दे ।
मेरा कीर्तन सकल विश्व को, तेरा भक्त प्रवर कर दे ॥

तेरी स्तुतियों से मुखरित कर, दें हम नभ का वक्ष स्थल ।
तेरी महिमा गा गा कर हम, मूक विश्व कर दें चंचल ॥

मेरे गानों में गीतों में, तानों में ध्वनि बन आओ ।
मेरे प्राणों में आतमा में, बन निःश्वास समा जाओ ॥

मेरे रोम-रोम से प्रतिपल, ऐसी मृदु झंकार उठे ।
सारा जग प्रेमाकुल हो कर, तेरा नाम पुकार उठे ॥

—सत्यकाम विद्यालङ्कार

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कौटिल्य काल का सांस्कृतिक महत्त्व

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

सभ्यता और संस्कृति

भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में मेरी लेख-माला को पढ़ कर कई मित्रों ने उसके सम्बन्ध में अपने विचार पत्रों द्वारा भेजे हैं। उनमें से कई पत्रों में यह प्रश्न उठाया गया है कि मैंने अत्यन्त प्रसिद्ध 'सभ्यता' शब्द के स्थान पर 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग करने में क्या लाभ देखा है ? इस प्रश्न के समाधान के लिए यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि मैं "सभ्यता और संस्कृति" इन दोनों शब्दों के अन्तर्गत अभिप्राय में परस्पर जो भिन्नता है उसका थोड़ा सा विवेचन कर दूं। हमारे प्राचीन साहित्य में मनुष्य और समाज के जीवन के सब अङ्गों का अन्तर्भाव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार शब्दों में आ जाता था। इनके सम्बन्ध में श्रुति स्मृति आदि के रूप में जितना साहित्य था, उसे वाङ्मय कहते थे। "सभ्यता और संस्कृति" ये दोनों शब्द संस्कृत भाषा के हैं। परन्तु इसका वर्तमान प्रयोग अंग्रेजो के 'सिविलाइज़ेशन' और 'कल्चर' इन दो शब्दों के अनुवाद के रूप में हो रहा है। इस लेखमाला में "संस्कृति" इस शब्द का प्रयोग 'कल्चर' के अर्थ में ही किया गया है। सभ्यता और संस्कृति में क्या भेद है, इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने पर्याप्त विचार किया है। समाज शास्त्र के विद्वान् टाइजर ने "संस्कृति" या 'कल्चर' की निम्नलिखित व्याख्या की है:—

"संस्कृति वह सम्पूर्ण विविध भावनाओं का समूह है जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, सदाचार और मनुष्य के रिवाज, योग्यतायें तथा स्वभाव जो उसने समाज के सदस्य की हैसियत से प्राप्त किये हैं, आ जाते हैं।"

जर्मन दार्शनिक कान्ट ने संस्कृति और सभ्यता में भेद करते हुए लिखा है, "संस्कृति के साथ मनुष्य के अंतरात्मा में विद्यमान सदाचार की भावना ओतप्रोत है, जब कि सभ्यता का सम्बन्ध केवल बाह्य विभाग से है।"

स्पेंगलर ने सम्मति है दी कि "जब संस्कृति क्षीणता की ओर जाने लगती है, तब सभ्यता बढ़ने लगती है" उस समय सभ्यता की रचनात्मक शक्ति शिथिल हो जाती है और उसका केवल यान्त्रिक और नकली रूप मुख्य बन जाता है।

एक और विद्वान् ने यह सम्मति दी है कि संस्कृति साधन है और सभ्यता साध्य है। हमारी संस्कृति वह है जो कुछ हम हैं और हमारी सभ्यता वह है जिसका हम उपयोग करते हैं।

इन विद्वानों की उपर्युक्त सम्मति का यदि हम निचोड़ निकालें तो यह है कि किसी जाति के आदर्श उसकी कला, उसका साहित्य और उसके रीति रिवाज "संस्कृति" शब्द के अन्तर्गत और उसका धन, उसका कला कौशल और बाहरी वैभव "सभ्यता" शब्द के अन्तर्गत आ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं। मैं संस्कृति के इसी अभिप्राय को लेकर इस लेखमाला में संस्कृति की भारतीय परम्परा का इतिहास लिख रहा हूं। भारत के सुदीर्घ इतिहास में साम्राज्य बने और बिगड़ गये, विदेशी आक्रमणकारी आये और चले गये, इस प्रकार सभ्यता खड़ी होती और गिरती रही। परन्तु मेरी सम्मति है कि भारतीय संस्कृति का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से बहता रहा है। वह प्रवाह बाहर के बलवान् आघात यादबाव से कभी २ लचक खाता रहा, परन्तु टूटा नहीं न उसे विजेताओं की विजय यात्राएं रोक सकीं और न नये नये धर्म प्रचारकों के प्रयत्न ही तोड़ सके। संस्कृति का प्रवाह वैदिक काल से लेकर अब तक अविच्छिन्न रूप से चलता रहा है और आगे भी चलता रहेगा। जब कभी भारत की सभ्यता पर बाहर से कोई बहुत बड़ा आघात आया है तब जिस शक्ति ने उसका फिर से उद्धार किया है, वह संस्कृति की शक्ति ही थी। जैसे प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में सभ्यता का आधार संस्कृति पर रहता है, वैसे ही भारत में भी सभ्यता का आधार संस्कृति ही रही है।

मौर्य काल

जिसे मैंने संस्कृति के इतिहास में कौटिल्य काल कहा है उसे राजनैतिक दृष्टि से मौर्यकाल कहते हैं। उस काल की तीन घटनायें मुख्य हैं। १. भारत पर सिकन्दर का आक्रमण २. चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा साम्राज्य की स्थापना ३. यूनानियों का दूसरे आक्रमण में परास्त होना और मौर्य साम्राज्य का अफ़गानिस्तान तक विस्तार।

ये तीनों राजनैतिक घटनायें हैं। इनके साथ संबंध रखने वाली तीन सांस्कृतिक घटनायें भी हैं वह निम्न लिखित हैं:—

१. यूनान और भारत का सम्पर्क।
२. कौटिल्य का अर्थ शास्त्र।
३. मेगास्थनीज़ का लिखा हुआ भारत वृत्तांत।

यह तो सर्व सम्मत बात है कि सिकन्दर के और उसके पश्चात् सिल्यूकस के आक्रमणों का भारत की राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर कोई गहरा असर नहीं पड़ा। तो भी भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिये यूनानी आक्रमण का महत्त्व कुछ कम नहीं है। सिकन्दर के आक्रमण ने भारत के मुंह पर से मानों परदा उठा दिया जिससे सदियों के पश्चात् हम उसकी धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक अवस्था का चित्र देख सकते हैं। उस आक्रमण ने एक यह काम भी किया कि भारत के सामाजिक शरीर में आत्मरक्षा के लिये ज़बरदस्त प्रतिक्रिया पैदा की। देश सुख की मोहनिद्रा में सोया रहता यदि सिकन्दर के घुड़सवार अपने बर्छों की नोक से उसे जागृत न कर देते। सिकन्दर के आक्रमण ने देश के अगाध जल का जो मथन किया, उसमें से दो अनमोल रत्न निकले। एक चन्द्रगुप्त मौर्य और दूसरा आचार्य चाणक्य कौटिल्य। इन दोनों के सहयोग से देश में जो नई जागृति पैदा हुई, वह दो रूपों में प्रकट हुई एक मौर्य साम्राज्य और दूसरा कौटिल्य का अर्थशास्त्र। जहां राजनैतिक इतिहास के लेखक के लिये मौर्य साम्राज्य का महत्त्व अधिक है वहाँ सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से कौटिल्य का अर्थशास्त्र बहुत अधिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही देश की अनमोल साहित्यिक निधि भी है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के लगभग डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य सम्राट् की पदवी धारण करके पाटलिपुत्र की गद्दी पर बैठा। इतिहास में सम्राट् चन्द्रगुप्त के नाम के साथ उसके महामन्त्री चाणक्य का नाम अटूट संबंध से बंधा हुआ है। साम्राज्य का बनाने वाला दिमाग चाणक्य का था और हाथ चन्द्रगुप्त का। यदि ब्रह्म तेज और क्षत्र तेज परस्पर मिल कर कार्य करें तो जो चमत्कारी परिणाम हो सकता है, उसका एक उज्जवल दृष्टान्त मौर्य साम्राज्य था। चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में कई महत्त्वपूर्ण घटनायें हुईं। सिकन्दर तो उसे पूर्व ही व्यास नदी के तट पर अपनी मानसिक पराजय स्वीकार करके वापिस लौट चुका था। परन्तु उससे भारत और यूनान में जो सम्बन्ध स्थापित हुआ वह सर्वथा नष्ट नहीं हुआ। भारत के उत्तर में यवनों का थोड़ा बहुत प्रभुत्व बना रहा, जिससे चन्द्रगुप्त और उसके महामन्त्री को निरन्तर सावधान रह कर देश का प्रबन्ध सुचारु रूप से करना पड़ता था। चन्द्रगुप्त का शासन प्रबन्ध बहुत जागरूक और उत्तम था यह हम यवनों के विरुद्ध उसकी युद्ध यात्रा से समझ सकते हैं और यूनानी यात्रियों ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे भी अनुमान लगा सकते हैं। मौर्य-काल की शासन व्यवस्था कैसी थी और उसके मौलिक सिद्धान्त क्या थे, यह जानने के लिये उपर्युक्त दोनों प्रमाणों से अधिक प्रबल और प्रत्यक्ष प्रमाण चन्द्रगुप्त के महा मन्त्री चाणक्य का लिखा अर्थशास्त्र है। चाणक्य के कई उपनाम थे। उनमें दो नाम मुख्य थे, एक कौटिल्य और दूसरा विष्णुगुप्त। अर्थशास्त्र नाम का "कौटिल्य अर्थशास्त्र" अर्थात् कौटिल्य का अर्थशास्त्र, यह है। अर्थशास्त्र में इसका निम्नलिखित श्लोक में वर्णन किया है—

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेद्धृणोतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥

जिस व्यक्ति ने रुष्ट होकर शास्त्र, शस्त्र और नन्द के हाथ में गई हुई पृथ्वी का उद्धार किया है, वह इस शास्त्र का कर्त्ता है। चाणक्य शास्त्रों का पारंगत पण्डित था और व्यवहारिक राजनीति में असाधारण रूप से कुशल था। वह ज्ञान और कर्म दोनों के सुन्दर समुच्चय का अद्भुत दृष्टांत था। उसे हम सब देशों और सब समयों के सामने आदर्श मंत्री के रूप में पेश कर सकते हैं। चाणक्य के निवास स्थान का वर्णन महाकवि विशाखदत्त ने निम्नलिखित श्लोक में किया है—

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानाम्,
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि
र्विनमितपटलान्तं, दृश्यते जीर्ण कुड्यम्॥

प्रधान मन्त्री के छप्पर की एक दीवार पुरानी होकर कुछ झुक गई है, छप्पर की छत पर यज्ञ की समिधायें सूख रही हैं। जिससे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

छत भी झुक गई है। छात्रों के लाये हुए दर्भों का ढेर एक ओर पड़ा है। और सूखे हुए उपलों को तोड़ने के लिए पत्थरों का ढेर दूसरी ओर पड़ा है। यह है मौर्य साम्राज्य को बनाने और रक्षा करने वाले चाणक्य की विभूति। जरा आजकल के प्रधान मन्त्री इस विभूति की तुलना अपने गगनचुम्बी प्रासादों से करें और फिर देखें कि भारतीय संस्कृति का असली रूप क्या है? भारतीय संस्कृति का असली रूप आचार्य चाणक्य और उन की कुटिया में अन्तर्निहित है।

अर्थशास्त्र में हम मौर्यकाल की भारतीय संस्कृति का न केवल स्पष्ट चित्र देखते हैं, वह चित्र जिस पृष्ठभूमि पर लिखा गया है उसे भी दृष्टिगोचर करते हैं। अर्थशास्त्र केवल राजनीतिक कला ही नहीं है, तत्त्वाज्ञान भी है।

ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से देखें तो महाभारत और मौर्य साम्राज्य में कम से कम ढाई हज़ार वर्ष का अन्तर है। यदि हम समय के सम्बन्ध में अत्यन्त कंजूस होकर विंसेन्टस्मिथ जैसे ठेठ अंग्रेज़ इतिहास लेखक की बात मान लें, तो भी महाभारत और मौर्य साम्राज्य में पांच सदियों का अन्तर अवश्य है। जब हम महाभारत और अर्थशास्त्र की भाषा लेख शैली और विचार परम्परा की तुलना करते हैं तो हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि दोनों में बहुत ही कम भेद है। जैसे मैं ऊपर लिख आया हूं, यह सम्भव है कि मध्यकाल में महाभारत म मिलावट होती रही, परन्तु असली और मिलावट से मिलकर बना हुआ महाभारत प्रायः सभी दृष्टियों से अर्थशास्त्र के इतना समीप है कि यह मानना कठिन हो जाता है कि व्यास और चाणक्य के मध्य में इतनी सदियां व्यतीत हो गईं। अनेक राजनैतिक तूफ़ान आये और चले गये, साम्राज्य बने और बिगड़ गये, परन्तु भारतीय संस्कृति की शृंखला नहीं टूटी। भारत का हृदय जैसा का तैसा रहा। उस की परम्पराओं में कोई भौतिक परिवर्तन नहीं आया।

मैगास्थनीज़ का भारत वर्णन

ईसा से ३०३ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त से परास्त हो कर यवन सेनापति सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के दरबार में अपना एक प्रतिनिधि भेजा, जिस का नाम मैगास्थनीज़ था। वह पाटलिपुत्र में बहुत वर्षों तक रहा। उसने अपने देश में लौट कर अपनी संस्मरणों की जो पुस्तक लिखी, वह पूरी नहीं मिलती। उस के कुछ भाग उपलब्ध हुए हैं। जो भाग उपलब्ध हुए हैं, उन में भारत के सम्बन्ध में बहुत विस्तृत और यथार्थ जानकारी दी गई है। मैगास्थनीज़ के वर्णन से प्रतीत होता है कि भारत साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र बहुत विस्तृत, धन-धान्य से पूर्ण शानदार और सुरक्षित नगर था। चन्द्रगुप्त के महलों और दरबार की विभूति संसार के अन्य शासकों को मात करने वाली थी। चन्द्रगुप्त की सेना की निश्चित संख्या ६ लाख से ऊपर थी। ३० हज़ार घोड़े और ९ हज़ार हाथी और रथ इसके अतिरिक्त थे। नगरों और राज्य का प्रबन्ध राजनियमों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के अनुसार व्यवस्थापूर्वक होता था। व्यापार की रक्षा और संचालन के विषय नियम थे। देश के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिये प्रतिवेदक लोग नियुक्त थे। कृषि, वाणिज्य आदि के संचालन के लिए अलग विभाग बने हुए थे। चौड़ी और सुरक्षित सड़कों का जाल सारे नगर में फैला हुआ था। यह थी राज्य व्यवस्था। भारत वासियों के व्यक्तिगत चरित्र के संबन्ध में मेगास्थनीज़ ने जो प्रशंसात्मक शब्द लिखे हैं, उन्हें आजकल के लोग समझने में भी असमर्थ हैं। मेगास्थनीज ने लिखा है कि भारतवासी प्रायः सत्य बोलते थे, लेनदेन में उन्हें लिखा-पढ़ी की आवश्यकता नहीं होती थी, शब्द ही काफ़ी समझा जाता था, चोरी की घटनाएं नाम मात्र को ही होती थीं इत्यादि।

जब हम मेगास्थनीज के भारत वर्णन की तुलना कौटिल्य के अर्थशास्त्र से करते हैं तब हम उन दोनों में बहुत समता पाते हैं। यदि हम दोनों को मिलाकर एक चित्र बनायें तो संभवतः भारत की उस समय की संस्कृति का पूर्ण चित्र बनाया जाएगा। मेगास्थनीज़ ने बाल्मीकि से हजारों साल पीछे भारतवासियों की सत्यनिष्ठा के संबन्ध में जो कुछ लिखा है, उससे रामायण का निम्नलिखित राम वाक्य याद आ जाता है।

'अनृतं नोक्तपूर्वं मे, न च वक्ष्ये कदाचन।'

न मैंने आज तक असत्य बोला है और न आगे बोलूंगा।

इतने लेख का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिये कि महाभारत से लेकर मौर्यकाल तक भारत की दशा में कोई परिवर्तन आया ही नहीं। परिवर्तन तो बहुत से आए, परन्तु अनेक प्रकार के मोतियों में पिरोई हुई सोने की शृंखला की तरह सदियों से व्याप्त भारतीय संस्कृति की परम्परा सर्वथा अक्षुण्ण रही, यह सर्वथा स्पष्ट है।

—

मनुष्य जन्म

मनुष्य जन्म का होना सत्य-सत्य का निर्णय करने कराने के लिये है न कि परस्पर वाद विवाद और वैर विरोध फैलाने के लिये।

—महर्षि दयानन्द स० स० अनुभूमिका।

विद्या किसे आती है—

जो जितेन्द्रिय धैर्यवान्, बुद्धिमान्, शीलवान् और विचारवान् पुरुष होता है उसे ही विद्या प्राप्त होती है। —महर्षि दयानन्द स० प्र० समु. ३।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य समाज का भविष्य

श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए. कार्यनिवृत्त मुख्यन्यायाधीश—जयपुर

(१) कुछ दिन पूर्व एक उत्साही आर्य सज्जन ने मुझ से पूछा कि आर्यसमाज का का भविष्य कैसा है। मैंने उत्तर में कहा कि मैं पक्का आशावादी हूं। विश्व के सम्बन्ध में भी मेरा यही मत है कि बहुत उन्नति हो रही है। योरूप वालों का अत्याचार भी कम हो रहा है। एशिया अब जागृत हो चुका। अफ्रीका में भी जागृति के चिन्ह दिखाई देते हैं। योरूपीय जो वहां बस चुके हैं, वे समझने लगे हैं कि अगर उन के सुधार की ओर ध्यान न दिया तो विद्रोह होगा जिस में अफ्रीका वालों की जय होगी। भारत वर्ष के सम्बन्ध में भी मेरा निश्चित मत है कि बहुत उन्नति हुई और होती जा रही है। हिन्दुओं में जन्मगत जातिभेद की बला थी। जो महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज और महात्मा गांधी के उद्योग से बहुत अंश में दूर हो गई। वर्तमान सरकार ने अछूत पन को वर्जित ही कर दिया, तथा शूद्र व निम्न जाति के लोगों की दशा सुधारने का यत्न किया जा रहा है।

(२) आर्य समाज के लिए भी मेरा मत है कि उसने वेदों के उद्धार और देश के सुधार में बहुत काम किया। मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि आर्यसमाज अपना काम कर चुका और अब यह एक बेकार संस्था है। परन्तु कार्य शैली में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है।

(३) आर्यसमाज ने आरम्भ में सामाजिक सुधार व शिक्षा कार्य अपने हाथ में लिया था। उस को अब अधिकांश में हमारे सनातनी भाइयों ने सम्भाल लिया है। उस के बाद सामाजिक सेवा का कार्य था जिस को अब भारतीय सेवक संघ ने ले लिया। यह बड़ा भारी संघ है जिस में लाखों सदस्य हैं। यह कांग्रेस से अलग संस्था है और राजनैतिक संस्था नहीं मानी जाती। पर मान्यवर डा० जवाहरलाल जी इस के प्रधान वा अध्यक्ष हैं और श्री नन्दा महोदय (मिनिस्टर) इस के कार्यकर्ता अध्यक्ष (चेयरमैन) हैं। इस सभा की स्थापना का आर्यसमाज के कार्य क्षेत्र पर बहुत असर पड़ा। आर्यसमाज उस को रोक नहीं सकता था और न रोकना किसी प्रकार उचित होता। परिणाम यह हुआ कि बहुत से आर्यसमाजी या ऐसे लोग जो आर्यसमाज के सहायक थे वे इस सभा में शामिल हो गये। इस से देश को कोई हानि नहीं हुई। पर आर्यसमाज में कुछ दुर्बलता आ गई। आर्यसमाज के हाथ में एक और काम शुद्धि का है। वर्तमान मुसलमानों में १०० पीछे ९० ऐसे हैं जो पहले शूद्र या नीच जाति के हिन्दू थे। उन में से बहुत से अब भी दिल से मुसलमान नहीं हैं और उस मत को छोड़ने को तैयार हैं। यह शुद्धि का भावी और भारी कार्य है। पाकिस्तान इसका घोर विरोधी है और इस कारण हमारी कांग्रेस सरकार भी उस को एक प्रकार से रोकती है। जब तक यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दशा है तब तक आर्यसमाज शुद्धि का कार्य सामूहिक रूप में नहीं कर सकता ।

(४) ऐसी दशा में आर्यसमाज के लिये मुख्यतया एक काम रह जाता है, अर्थात् शुद्ध धार्मिक Pure religious कार्य । यह कोई छोटा काम नहीं, आर्यसमाज के लिये यह सबसे बड़ा व भारी कार्य है । शास्त्र में आर्य का यह लक्षण दिया है—

"कर्तव्यमाचरन् कार्यम्,
अकर्तव्यम् अना चरन् ।
तिष्ठति प्रकृता चारे,
असौ आर्य इति स्मृतः ।।"

(अर्थ) जो कर्तव्य कामों को करे और अकर्तव्य कामों को न करे वह आर्य कहलाता है । अर्थात् सदाचारी मनुष्य आर्य है । ऐसे ही मनुष्यों का समाज आर्यसमाज कहला सकता है । वेद में उपदेश है कि—

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

सारे विश्व को आर्य बनाओ, अर्थात् सब को सदाचारी बनाओ । जो लोग आर्यसमाज को एक बेकार संस्था कहते हैं क्या उन में से कोई यह कहने का साहस करेगा कि लोगों को सदाचारी बनाने की जरूरत नहीं रही ? हम को लज्जा के साथ यह कबूल करना पड़ता है कि स्वतन्त्रता मिलने के बाद देश में भ्रष्टाचार बढ़ गया । अंगरेजी शासन के समय में केवल गिने-चुने, (पुलिस, पब्लिक वर्क्स आदि) विभागों में रिश्वत चलती थी और वह भी विशेषकर नीचे दर्जे के कर्मचारियों में । पर शर्म के साथ कहना पड़ता है कि अब लगभग सब विभागों में रिश्वत चलती है और बड़े कर्मचारी भी उस के लिए हाथ फैलाते हैं । जनता का कहना है कि अब बिना रिश्वत देने के सरकारी दफ्तरों में किसी का काम चलना मुश्किल हो गया है । यह काम है जिस को आर्यसमाज सम्भाले । कुछ वर्ष हुए श्री राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने जब वे कांग्रेस के प्रधान थे इलाहाबाद में आर्यसमाज के किसी बड़े सम्मेलन में कहा था कि—कांग्रेस के लोगों में सुधार की जरूरत है, आर्यसमाज उन का सुधार करे । अब कांग्रेस के नेताओं की तरफ से यह पुकार न हो पर सारी जनता की पुकार है कि देश में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया, वह दूर होना चाहिए । आर्यसमाज इस पुकार को सुने । वह तब ही इस कार्य में सफल हो सकता है जब पहले अपने सब सभासदों को सदाचारी बनाए क्योंकि जो स्वयं सदाचारी नहीं है वे दूसरों को कैसे सदाचारी बना सकते हैं । यह कार्य है जो आर्यसमाज का सच्चा कार्य है । सामाजिक सुधार का काम जब उसके ही हाथ में नहीं रहा वह अब इस धार्मिक पुण्य कार्य को सम्भाले । काम भारी है और कठिन है, पर यदि आर्यसमाज के पास अब कोई दूसरा भारी कार्य नहीं रहा । तो वह जो इसे हाथ में लेवे । ईश्वर उसे ऐसा बल देवे कि वह इस को कर सके ।

गंगाप्रसाद
(पूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा)

[हमारी प्रार्थना पर मान्य श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी एम. ए. ने जिन की आयु इस समय ८५ वर्ष से ऊपर है और जिनका स्वास्थ्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी अच्छा नहीं रहता, यह आर्यसमाज के भविष्य विषयक विचारपूर्ण लेख गुरुकुल पत्रिकार्थ भेजने की कृपा की है। दूसरी संस्थाएं भी शिक्षा-विषयक कार्य कर रही हैं। किन्तु आर्यसमाज गुरुकुलादि संस्थाओं द्वारा ब्रह्मचर्य का उद्धार और सार्वभौम धर्म की शिक्षा का जो कार्य कर रहा है वह अन्य संस्थाओं में नहीं हो रहा। मुसलमानों की शुद्धि के अतिरिक्त ईसाइयों की शुद्धि का कार्य भी बड़ा विशाल है जिसे आर्यसमाज को तत्परता से कर के ईसाई प्रचारकों की भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्र विरोधिनी प्रवृत्तियों का दमन करना चाहिए। वेद प्रचार के अतिरिक्त भ्रष्टाचार निवारण और सदाचार के प्रचार के जिस आवश्यक कार्य की ओर मान्य वयोवृद्ध पण्डित जी ने ध्यान आकर्षित किया है उस की उपयोगिता में तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। —सम्पादक गुरुकुल-पत्रिका।]

—

मनुष्य का धर्म

मनुष्य उसी को कहना जो मनन शील हो कर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी वलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से 'धर्मात्माओं' की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हों तथापि उन का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें। अर्थात् जहां तक हो सके वहाँ तक अन्याय-कारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण-दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जाएं परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से कभी पृथक् न हों।

—महर्षि दयानन्द, स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश।

—

सच्चा राजा—

राजा उसी को कहते हैं कि जो शुभ गुणकर्म से प्रकाशमान, पक्षपात रहित, न्याय धर्म की सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उन को पुत्रवत् माने। उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न करे।

—महर्षि दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत के प्राचीन शस्त्रास्त्र

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

१९५२ में इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ अपने पति ड्यूक ऑफ एडिनबर्ग के साथ आस्ट्रेलिया गई थी, वहां के आदिम निवासियों ने उन्हें एक प्रयोग दिखलाया, जिससे दर्शक लोग चमत्कृत हो गये। दिखाने वाले का नाम जो० टिम्बरी था। उसके हाथ में "बूमेरांग" नामक एक शस्त्र था, जो लगभग अर्ध चन्द्राकार या अर्ध चक्र था, उसकी लम्बाई कोई ढाई फुट की होगी, जो० टिम्बरी ने बूमेरांग को घुमाकर आगे की ओर फेंका, लगभग ४० गज तक तो वह मनुष्य की छाती की ऊंचाई पर भागता गया, उसके पश्चात् १०० फिट ऊंचा उठ गया। और कुछ दूर जाकर लौट पड़ा और अन्त में जहां से चला था, वहीं लौट कर जो० टिम्बरी के पैरों के के पास आ गिरा। देखने वालों ने लिखा है कि यदि बूमेरांग को कुशल व्यक्ति पूरे जोर से फेंके तो वह १५० गज की ऊंचाई तक जा सकता है, और फिर लौट कर फेंकने वाले के कदमों में आ गिरता है, कभी कभी बूमेरांग की गति में उतार चढ़ाव आता है। वापिस आता हुआ कभी कभी वह रास्ते में ही जमीन से लग जाता है, और फिर उछल कर ऊपर चढ़ जाता है, और फेंकने वाले के चरणों में अपनी यात्रा समाप्त करता है।

कभी कभी चतुर खिलाड़ी बूमेरांग को किसी वृक्ष की परिक्रमा करने के लिये फेंकते हैं। बूमेरांग १३०—१४० गज की दूरी पर वृक्ष की परिक्रमा करता है, और फिर लौट कर फेंकने वाले के पास आ जाता है।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी इस शस्त्र को प्रायः शिकार के काम में लाते हैं, और उसका आपसी लड़ाई के समय विरोधियों पर आक्रमण के लिये भी प्रयोग करते हैं। देखा गया है कि कुशल शिकारी द्वारा फेंका हुआ बूमेरांग एक ही उड़ान में दूर-दूर जाते हुए चार-चार पशुओं और उड़ते हुए पक्षियों को आहत कर देता है।

यह है आज कल का बूमेरांग, जो अर्धचंद्र के समान है, और सर्वथा अकृत्रिम साधनों से तैयार किया जाता है। उसकी निम्नलिखित विशेषतायें ध्यान देने योग्य हैं—

१. वह फेंकने वाले की इच्छानुसार चलता और चढ़ता उतरता है।
२. अन्तिम लक्ष्य पर पहुंचकर परिक्रमा कर सकता है।
४. लौटते हुए भी वह फेंकने वाले की इच्छानुसार गति करता है।
५. एक ही उड़ान में कई शिकार कर सकता है।
६. अन्त में फेंकने वाले के पास आ जाता है।

महाभारत में तथा पुराणादि ग्रन्थों में विष्णु के सुदर्शन चक्र का वर्णन आता है। देवासुर संग्राम में नारायण ने सुदर्शन का प्रयोग किया था। उस के वास्तविक रूप और शक्ति का अनुमान महाभारत के आदि पर्व के अमृत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन्थन प्रकरण के उन श्लोकों से लगाया जा सकता है—

ततोम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं
महाप्रभं चक्रममित्रतायनम्,
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं
सुदर्शनं संयति भीमदर्शनम् ।
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं
भयंकरं करिकरबाहुरच्युत:,
मुमोच वै प्रबलवदुग्रवेगवान्
महाप्रभं परनगरावदारणम्,
तदन्तकज्वलनतसमानवर्चसं
पुन: पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा,
विदारयद्दितिदनुजान्सहस्रश: ।
करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ।।

इस वर्णन से सुदर्शन चक्र की निम्नलिखित विशेषताएं प्रतीत होती हैं—

१. वह प्रयोक्ता की इच्छानुसार आकाश में विचरण करता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ता था।
२. वह लक्ष्य को वेध कर या मार कर फिर प्रयोक्ता के हाथ में आ जाता था।
३. वह चक्राकार था।
४. वह किसी अत्यन्त चमकदार और दृढ़ धातु का बना हुआ था।

प्रतीत होता है कि वह चक्र श्री कृष्ण का अपना आविष्कार था, और उसकी गति को रोकने वाला कोई अस्त्र उस समय तक आविष्कृत नहीं हुआ था, भगवान् कृष्ण स्वयं उस के प्रयोक्ता थे।

चक्र का प्रयोग अन्य योद्धा भी करते थे। महाभारत में कई स्थलों पर, अन्य शस्त्रास्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर, योद्धाओं द्वारा रथ चक्र द्वारा युद्ध करने का वर्णन है। चक्र का प्रयोग युद्ध में प्राय: होता था, परन्तु सुदर्शन चक्र शस्त्र विशेष था, जिसके विशेषज्ञ स्वयं कृष्ण थे। यदि अशिक्षित व्यक्ति द्वारा विधि से प्रयोग किया हुआ बूमेरांग निश्चित दिशा में निश्चित ऊंचाई पर जाकर, और अपने लक्ष्य पर प्रहार करके प्रयोग करने के पश्चात् वापिस आ सकता है, तो कृष्ण जैसे अद्‌भुत चमत्कारी द्वारा प्रयुक्त सुदर्शन चक्र शत्रु का गला काट कर प्रयोक्ता के पास लौट आता था तो इस में आश्चर्य क्या है ?

भारत के प्रसिद्ध शस्त्र "शक्ति" को लीजिये। शक्ति की यह विशेषता थी कि वह प्राय: अमोघ समझी जाती थी। जिस पर उस का प्रयोग होता था; उस का बचना कठिन था। प्राय: शब्द का प्रयोग मैंने इस लिये किया है कि केवल अर्जुन जैसा अद्वितीय योद्धा ही शक्ति को शरों से काट सकता था।

वर्तमान शस्त्रास्त्रों में सब से नया आविष्कार Missiles (मिसिल्स) का है। मिसिल को गोले की तरह फेंका जा सकेगा। बड़ी मिसिल हाइड्रोजन बम्ब को अपने अन्दर पाँच हजार मील दूर ले जा कर फेंक सकेगी। छोटी मिसिल थोड़ी दूर और छोटे लक्ष्य पर अपना विनाशकारी प्रभाव उत्पन्न करेगी। उसे अमरीका के लोग "आने वाले कल का शस्त्र" कहते हैं। कहते हैं कुछ वर्षों में तोप बन्दूक आदि शस्त्र व्यर्थ हो जायेंगे और उन का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थान मिसिल् ले लेगी।

मिसिल की अमोघ शक्ति और भयानकता को सभी मानते हैं। समस्या केवल यह है कि उसके सैंकड़ों मील की दूरी पर निश्चित लक्ष्य पर गिरने का क्या उपाय किया जाय। रामायण महाभारत आदि में जिस शक्ति नाम के शस्त्र की चर्चा आती है, मिसिल् उसका रूपान्तर है। भेद इतना ही है कि वे लोग उसका परिमित प्रयोग करना जानते थे, और ये अभी तक यह नहीं समझ सके कि शक्ति अथवा अन्य हत्यारे शस्त्रास्त्रों का केवल निश्चित और अभीष्ट लक्ष्य पर प्रयोग कैसे किया जाय।।

जब हम पश्चिम के लोगों से यह कहते हैं कि जैसे घातक शस्त्रास्त्रों पर तुम अभिमान करते हो, वैसे या उनसे भी अधिक घातक शस्त्रास्त्र हमारे पूर्वजों के पास भी थे। तो यह न समझना चाहिये कि हम उनके अभिमान के उत्तर में अपने अभिमान की ऊंची दीवार खड़ी कर रहे हैं। वस्तुतः यह एक चेतावनी है, हमारे बढ़े हुए शस्त्रास्त्रों का परिणाम हुआ महाभारत का संग्राम और देश की मनुष्यता का नाश, जिस रास्ते से जाकर उन लोगों ने कई सहस्र वर्षों के लिये भारत को धाराशायी कर दिया था, योरुप के लोग उसी रास्ते से जा रहे हैं यह एक चेतावनी है, चुनौती नहीं।

महर्षि वचनामृत

सच्चे तीर्थ——

जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यज्ञादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्या दानादि शुभ कर्म हैं, उन्हीं को तीर्थ समझता हूं, इतर जल स्थलादि को नहीं।

× × ×

मानवोचित व्यवहार——

मनुष्य को सबसे यथा योग्य स्वात्मवत् सुख-दुःख, हानि, लाभ में वर्तना श्रेष्ठ अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूं।

× × ×

परोपकार——

जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूं।

× × ×

शिक्षा——

जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता. जितेन्द्रियतादि की बढ़ती हो और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।

—महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द

(वर्ण व्यवस्था विषयक विचारों का अध्ययन)

श्री भवानीलाल 'भारतीय' एम. ए. सिद्धान्त वाचस्पति—जोधपुर

विगत शताब्दी के प्रसिद्ध सुधारक ऋषि दयानन्द का यह सिद्धांत सचमुच युगान्तरकारी ही समझा जाएगा, जब उन्होंने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया कि आर्यसमाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म नहीं, अपितु गुण, कर्म और स्वभाव है। यद्यपि यह सिद्धांत ऋषि दयानन्द का अपना कोई नूतन आविष्कार नहीं था, वेद, उपनिषद्, स्मृति और इतिहास ने इसका पूर्ण प्रतिपादन और समर्थन किया है, परन्तु पौराणिक पण्डितों और मत-व्यवस्थापकों ने इस युक्ति सिद्ध और शास्त्रानुमोदित व्यवस्था का पर्याप्त विरोध किया। स्वामी दयानन्द और उन के अनुयायियों को समय-समय पर इस विषय पर अपने विरोधियों से शास्त्रार्थ करने पड़े। यह अत्यन्त सन्तोष का विषय है कि आज अपने आपको सनातन धर्मी कहने वाले अनेक पण्डित और विद्वान् वर्ण-व्यवस्था को जन्म परक न मान कर गुण-कर्मानुसार ही मानते हैं।

ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में इस सिद्धान्त पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। दयानन्द के सिद्धान्त प्रतिपादन की जो प्रमुख विशेषता है वह यह है कि वे अपने मन्तव्य का शास्त्र प्रमाण से पूर्णतया सामञ्जस्य बतला देते हैं। उन्हें यह भ्रांति कभी नहीं हुई कि वे जिन मन्तव्यों और विचारों को स्वीकार करते हैं वे उन के कपोल कल्पित हैं अथवा शास्त्रों में उनके लिए कोई आधार नहीं है अस्तु।

दयानन्द के पश्चात् भारत के धार्मिक गगन में जिस संन्यासी की प्रतिभा प्रकाशमान नक्षत्र की तरह उदित हुई वह था श्री रामकृष्ण परमहंस का सर्वाधिक प्रसिद्धिप्राप्त शिष्य विवेकानन्द। प्रस्तुत निबन्ध में स्वामी विवेकानन्द के एतद्विषयक विचारों का अनुशीलन कर लेना अप्रासंगिक न होगा। विवेकानन्द 'सनातन-धर्मी' थे, परन्तु उदार। उनमें पौराणिक कट्टरपन का नितान्त अभाव था। विशेषतः वे जन्मानुसार किसी वर्ण या जाति के प्रभुत्व को स्वीकार करने या किसी अन्य वर्ण या जाति को जन्म के आधार पर हीन मानने के लिये कदापि प्रस्तुत नहीं थे। उन्होंने लिखा है—"जाति का आधार गुण है, इस बात का स्पष्ट प्रमाण महाभारत के भीष्म पर्व में तथा अजगर और उमा महेश्वर के आख्यानों में पाया जाता है।" [जाति, संस्कृति और समाजवाद पृ० १४।]

यह सब कुछ होने पर भी वे अपने इस मत का शास्त्रों से समन्वय नहीं कर सके। वेदान्त दर्शन में अपशूद्राधिकरण है उस के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भाष्य में श्री शंकराचार्य ने जन्मगत जाति मानते हुए शूद्रों के वेद श्रवण, मनन और पठन पर जो भयङ्कर व्यवस्थाएं दी हैं उन्हें पढ़ कर विवेकानन्द भयाक्रांत हो उठे। अपने सम्मान्य अद्वैताचार्य से अपने सिद्धान्तों का समन्वय कैसे हो यह जटिल समस्या उन के समक्ष थी। फलतः काशी निवासी श्री प्रमदादास मित्र से एक पत्र में उन्होंने निम्न प्रश्न पूछे—

१. क्या छान्दोग्य उपनिषद् के अतिरिक्त वेदों में और कहीं सत्यकाम जाबाल और जानश्रुति की कथा आई है? इस प्रश्न से प्रथम तो यह ध्वनित होता है कि स्वामी जी छान्दोग्य उपनिषद् को भी वेद मानते थे, जो कि अशुद्ध है। उपनिषदों में ऋषियों और राजाओं के अनित्य उपाख्यान पाये जाते हैं। वेदों में इतिहास का उल्लेख मात्र भी नहीं है। द्वितीयतः सत्यकाम जाबाल और जानश्रुति की उपनिषद् वर्णित कथाओं से वर्ण-व्यवस्था का जन्म परक होना सिद्ध नहीं होता। स्वामी दयानन्द तथा अन्य अनेक विद्वानों ने इन कथाओं से यही सिद्ध किया है कि अज्ञात कुलोत्पन्न सत्यकाम जाबाल अपनी सत्य-निष्ठा के कारण ब्राह्मण माना गया और जानश्रुति शूद्र होते हुये भी ब्रह्म विद्या प्राप्त कर सका। अतः शास्त्र में वर्णव्यवस्था गुण कर्मानुसार ही मानी गई है, इसमें कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं है।

२. स्वामी विवेकानन्द अपने दूसरे प्रश्न में पूछते हैं कि शंकराचार्य अपने वेदान्त सूत्रों के भाष्य में स्मृति के नाम पर महाभारत का प्रमाण देते हैं। परन्तु महाभारतान्तर्गत बनपर्व के अजगरोपाख्यान, उमा महेश्वर संवाद तथा भीष्म पर्व में जाति का आधार गुण और कर्म है यह बतलाने पर भी शंकर ने कहीं उसे स्वीकार नहीं किया। क्या शंकर के अन्य किसी ग्रन्थ में लिखा है? इस का उत्तर यही हो सकता है कि विवेकानन्द जैसी उदारता शंकर में नहीं थी। यदि होती तो महाभारत के उपर्युक्त प्रमाणों की विद्यमानता में वे वर्ण-व्यवस्था को जन्म परक नहीं मानते। परन्तु विवेकानन्द की कठिनाई यह है कि वे अपने आप को शंकर मत का अनुयायी मानते हुए भी उस के वर्ण-व्यवस्था विषयक अनुदार विचारों स सहमत नहीं हो सकते।

३. तीसरे प्रश्न में विवेकानन्द स्पष्ट रूप से पूछते हैं—"वेदों के पुरुष सूक्त के अनुसार जाति-विभाग वंश परम्परागत नहीं है। फिर वेदों में इस बात का उल्लेख कहां हुआ है कि जाति जन्म से है? इस का उत्तर प्रमदादास मित्र ने क्या दिया, हमें नहीं मालूम, परन्तु विवेकानन्द का यह कथन सत्य ही है कि वेदों में गुण-कर्मानुसार ही वर्ण-व्यवस्था सिद्ध की गई है।

चौथे प्रश्न में तो उन्होंने स्पष्ट ही शंकर की युक्ति से ही शंकर का खण्डन किया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वे लिखते हैं "श्री शंकराचार्य ने वेदों से इस बात का कोई प्रमाण नहीं निकाला कि शूद्र वेदाध्ययन का अधिकारी नहीं। उन्होंने केवल 'यज्ञेऽनववक्लृप्तः' का प्रमाण इसलिए दिया है कि जब वह (शूद्र) यज्ञ करने का अधिकारी नहीं है तो अवश्य ही उपनिषदादि पढ़ने का भी उसे अधिकार नहीं है। परन्तु उन्हीं आचार्य ने 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' की व्याख्या करते हुए 'अथ' के अर्थ के संबन्ध में कहा है कि उस का अभिप्राय 'वेदाध्यन के पश्चात्' नहीं है क्योंकि संहिता और ब्राह्मण भाग का अध्ययन किए बिना उपनिषद् नहीं पढ़े जा सकते, यह विधान अप्रमाण है और साथ ही वैदिक कर्मकाण्ड और वैदिक ज्ञानकांड में कोई पूर्वापर भाव नहीं है। इस से यह स्पष्ट है कि वेदों के कर्मकांडीय ज्ञान के बिना भी किसी को उपनिषद् पढ़ कर ब्रह्म ज्ञान हो सकता है। अतएव यदि कर्मकांड और ज्ञानकांड में कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है तो शूद्रों के विषय में 'उसी तर्क के अनुसार (न्यायपूर्वकम्) इस प्रकार अपने ही कथन के विरुद्ध वाक्यप्रयोग आचार्य ने क्यों किया ? शूद्र को उपनिषदों का अध्ययन क्यों न करना चाहिये ?"

विवेकानन्द की युक्ति पर्याप्त प्रबल है। उनका अभिप्राय यह है कि एक ओर तो शंकर शूद्रों के वेदाध्ययन निषेध के लिये उन के यज्ञों में अनधिकारी होने की युक्ति देते हैं और दूसरी ओर वेद के ज्ञानकांड का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व कर्मकांड (यज्ञ) के आचरण की अनावश्यकता भी सिद्ध करते हैं। ऐसी दशा में शंकर का यह कथन वदतोव्याघात के दोष से दूषित हो जाता है। विवेकानन्द का तर्क सूक्ष्म और सबल है। इससे विवेकानन्द को यह अवश्य पता लग गया होगा कि शंकर के ग्रन्थों में भी परस्पर विरोध है और उन के अनुदार एवं संकुचित विचारों को आधार बना कर वर्णव्यवस्था का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

ऋषि दयानन्द के लिये शंकर जैसे नवीन भाष्यकारों का अधिक महत्त्व नहीं था। वे मूल शास्त्रों में ही सामञ्जस्य और समन्वय पूर्ण सिद्धान्तों को देखने के लिये अधिक उत्सुक रहते थे। उन के अनुसार जब मूल वेदान्त दर्शन ही शूद्रों द्वारा शास्त्रों के अध्ययन पर प्रतिबन्ध नहीं लगाता तो शंकर की व्याख्या का अधिक मूल्य नहीं है। यह दयानन्द की विशेषता है।

एक बात और, दयानन्द जिन सिद्धान्तों को मानते थे उन को प्रचारित करने में उन्हें कभी संकोच नहीं होता था। लोगों ने उन की इस सत्यप्रियता को असहिष्णुता, खण्डनप्रियता आदि कह कर बदनाम किया, परन्तु वे सत्य के मण्डन और असत्य के खण्डन के लिए सदा तत्पर रहते थे। विवेकानन्द, सम्भवतः अपनी सर्वप्रियता के खोने के डर से असत्य बात का विरोध और खण्डन करने से डरते थे। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा, "जाति भेद के पक्ष में या विपक्ष में कुछ मत कहना। और किसी सामाजिक कुरीति के विरुद्ध भी कुछ कहने की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ज़रूरत नहीं।" (विवेकानन्द पत्रावली भाग १ पृष्ठ १०८)।

हम यह समझने में असमर्थ हैं कि विवेकानन्द ने यह आदेश क्यों दिया ? अपनी मान्यताओं को, यदि वे सत्य हैं तो संसार के समक्ष उन्हें प्रस्तुत करने में किसी को क्यों हिचकिचाहट होनी चाहिये ? संसार के सभी सत्याग्रही महापुरुषों ने निर्भीक हो कर अपने सिद्धांतों को विश्व के समक्ष रक्खा है। सुकरात, ईसा, गांधी तथा दयानन्द इसी कोटि के महापुरुष थे। सभी ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध उच्च स्वर से विरोध प्रकाशन किया था, इसी कारण वे आज सब के अभिनन्दनीय हो सके हैं। ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी समाज सुधार के आंदोलन और विवेकानन्द की मूक मान्यताओं में यही अन्तर है।

'गुरुदेव' का गुरुवर महर्षि को प्रणाम

(१) मेरा प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को जिस की दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा। जिस के मन ने भारतीय जीवन के सब अङ्गों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

श्रद्धांजलि

(२) मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदर पूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं कि जिस ने देश की पतितावस्था में भी हिन्दुओं को प्रभु की भक्ति और मानव-समाज की सेवा के सीधे वा सच्चे मार्ग का दर्शन कराया।

—श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर

Dayananda Commemoration Volume

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दो शिक्षाप्रद सच्ची कथाएं

श्री पं० जगत्कुमार जी शास्त्री (देहली)

(१)

मैं किसी को कैद कराने नहीं आया

'महाराज आशा है आप मेरा यह पान स्वीकार करेंगे।'

स्वामी दयानन्द जी को पान खाने की आदत न थी फिर भी कभी-कभी खा लेते थे। 'भक्त' की भेंट उन्होंने स्वीकार कर ली। 'भक्त' थोड़ी देर बैठा और इधर उधर की बातें करके चला गया। पान खाने के थोड़ी ही देर बाद स्वामी जी को ज्ञात हो गया कि उनके साथ धोखा हुआ है। विष दिया गया है। प्राण लेने की चेष्टा की गई है। उन्होंने जल्दी-जल्दी योग की विशेष क्रियाओं का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। वमन, न्यौली क्रिया और धोती आदि का प्रयोग करके विष के प्रभाव को नष्ट कर दिया।

अनूपनगर के सैयद मुहम्मद साहिब तहसीलदार के कानों में भी स्वामी जी को विष देने की घटना के समाचार पहुंच गये। वे स्वामी जी के बहुत भक्त थे। उन के उपदेशों और सत्संगों में प्रायः पधारा करते थे। उन्होंने उस दुष्ट की खोज आरम्भ करवाई। विष दाता पकड़ा गया। तहसीलदार ने समझा कि इस दुष्ट के पकड़े जाने से स्वामी जी को प्रसन्नता होगी। हथकड़ी लगवा कर विशेष अनुसंधान और अभियोग तैयार कराने के लिए वे उसे राजपुरुषों के साथ स्वामी जी की कुटिया पर ले गये। साधारणतया तो जब भी तहसीलदार साहिब आते, स्वामी जी उन के साथ बड़े प्रेम से वार्तालाप किया करते थे, परन्तु आज वे मुंह मोड़ कर और मौन साधन करके बैठ गये। तहसीलदार बड़े विस्मय में पड़े। उस उपेक्षा भाव का कारण बारम्बार पूछने पर स्वामी जी ने कहा—

"मैं किसी को कैद कराने नहीं आया। में तो सब को कैद से मुक्त कराने आया हूं।

(२)

ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो—

उपदेश और शिक्षा देने के लिए नियत समय पर स्वामी दयानन्द जोधपुर महाराज के राजमहल में पधारे। स्वामी जी के आगमन का समाचार पा कर महाराजा जी के हाथ-पांव फूल गए। मुंह पर हवाइयां छूटने लगीं। पालकी में बैठा कर भोगविलास-मय जीवन को पर्दे में छिपा रखने के विचार से नन्हीं जान को विदा कर दिया। शीघ्रता के लिए कहारों के साथ ही अपना कन्धा भी लगा दिया।

फिर भी क्रान्तदर्शी स्वामी की नज़रों से वह भेद छिपा न रहा। गम्भीर शब्दों में स्वामी जी ने पूछा—राजन् सिंह की गोद में इस कुतिया का क्या काम ? महाराजा जी ने क्षमा याचना की। साथ ही विश्वास दिलाया कि भविष्य में तप-त्याग और ब्रह्मचर्य जीवन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यतीत करेंगे। डोली में बैठी जा रही वेश्या ने भी स्वामी जी और महाराज जी की बात-चीत सुनी।

वेश्या ने बड़ा भीषण बदला लिया। स्वामी जी के पाचक को अपने षड्यन्त्र में शामिल कर के स्वामी जी को दूध में मिलाकर कांच पिला दिया। हाय दुष्टे! तूने यह क्या किया। सर्वहितैषी देव दयानन्द के साथ ऐसा छल! यह क्रूर प्रयोग!! ऐसी नीचता!!!

दीपावली की रात है। स्वामी दयानन्द जी अजमेर में मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। पं० गुरुदत्त जी एम. ए. भीमसेन शर्मा प्रभृति-विद्वान् और स्वामी जी के भक्त सज्जन उपस्थित हैं। विष के प्रभाव से सम्पूर्ण शरीर में बहुत भीषण व्यथा हो रही है। समय आ गया है। स्वामी जी के मुखमण्डल पर अपूर्व ज्योतिश्छटा छिटक गई। मुस्कराते हुए बोले–प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो। तूने अच्छी लीला की। प्राण पखेरु काया का पिंजरा तोड़ कर उड़ गए। यह एक महान् आस्तिक की मौत थी। सन्त कबीर ने कहा है—

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही से पाइये, पूर्ण परमानन्द॥

मुनिवर गुरुदत्त जी लिखते हैं—स्वामी जी की युक्तियों ने मेरा मुंह बन्द कर दिया था। परन्तु फिर भी ईश्वर के अस्तित्व को मेरे मस्तिष्क ने स्वीकार नहीं किया था। स्वामी जी की मृत्यु का जो दृश्य मैंने देखा है उससे ईश्वर के अस्तित्व पर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। अब कोई सन्देह शेष नहीं है।

—

सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द द्वारा महर्षि को श्रद्धांजलि

दयानन्द दिव्यज्ञान का सच्चा सैनिक तथा विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा था। वह मनुष्यों और संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का वीर विजेता था। उसके व्यक्तित्व की व्याख्या यों की जा सकती है—

एक मनुष्य जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति घड़ सके तथा कल्पना को क्रिया में परिणत कर सके। वे स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उन में दृढ़ शक्ति थी कि चट्टान पर घन चला कर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सकें।

—श्री अरविन्द

"Dayananda the man and his work"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंग्रेज़ी-संस्कृत-हिन्दी भाषा कोष

English-Sanskrit-Hindi Dictionary

श्री श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा निर्मीयमाण

—गताङ्क से आगे—

English	संस्कृत	हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्द
Account for	सन्तोषजनकरीत्या व्याख्यानम्, विचर् णिच् (विचारयति) कारणं निर्दिश् तु० प० (निर्दिशति)	सन्तोष जनक रीति से व्याख्या करना, विचार करना, कारण बतलाना
On account of of this	अनेन हेतुना, अनेन निमित्तेन, अनेन लाभेन, अस्मात् कारणात् अथवा संज्ञापदस्य पञ्चम्यां निर्देशेनापि सूच्यतेऽभिप्रायो यथा	इस कारण, इस लाभ वा उपयोगिता के कारण
On account of anger	कोपात्, क्रोधात्।	क्रोध के कारण।
Of no account	अनुपयुक्तम्, महत्त्वहीनम्।	अनुपयोगी, तुच्छ।
A man of account	गण्यो मान्यो जनः, प्रतिष्ठितः पुरुषः।	प्रतिष्ठित पुरुष।
A man of no account	नगण्यो जनः, अप्रसिद्धोऽप्रतिष्ठितो वा पुरुषः	तुच्छ, अप्रसिद्ध पुरुष।
Take into account	समीक्ष् भ्वा० आ. (समीक्षते) गण् चुरा. (गणयति) कर्मवाच्ये (समीक्ष्यते) "तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते"	ध्यान में रखना, गिनना तेजस्वियों की आयु को नहीं गिना जाता वा ध्यान में रखा जाता।
On no account	न कथंचन।	किसी अवस्था में भी नहीं।
On all accounts	सर्वथा।	सर्वथा, बिल्कुल
To make little account of	अनवधानम्, गौणभावनम्।	ध्यान न देना, तुच्छ समझना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

English	संस्कृत	हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्द
Accountable (agf)	उत्तरदाता, उत्तरदायी ।	उत्तरदाता, जवाबदार बं०—दायी क०—उत्तार वादी मल०— ,, ,, चिन्त्यहेतुक
Accountant (n)	गणकः, गणनाकृत्, संख्यायकः (कौटिलीयार्थशास्त्रे प्रयुक्तशब्दः) ।	गणक वा हिसाब रखने वाला बं०—गाणनिक मल०—गणकन्, गणनाकृत् क०—करणिक, लेक्क परीक्षक
Accountant General (n)	महासंख्यायकः, अक्षपटलाध्यक्षः (कौ. अ. शा.) ।	महासंख्यायक
Accountancy (n)	गणककार्यम्, गणनाविषयः ।	गणक कार्य, हिसाब रखने का काम
Accoutre (v. t.)	(विशिष्ट वस्त्रादिभिः) सुसज्जी कृ० तना० उ० (करोति-कुरुते) अथवा सन्नह् दिवा०प०(सन्नह्यति) ।	विशेष प्रकार के वस्त्र वा वर्दी से सजाना
Accoutrement (n)	(विशिष्टावसरोचितः) परिच्छदः, सन्नाहः, अलङ्कारः, प्रसाधनम्, सज्जा ।	अवसरोचित विशेष प्रकार की वेष-भूषा ।
Accoutrements (n.P.l)	सैनिकसन्नाहः, योद्धृवेषः	सैनिक साज, सैनिकों का वेष
Accredit (v.t.)	१. (राजदूतदूतावासादिभ्यः) विश्वासपत्रं दा० जुहो० उ० (ददाति–दत्ते) प्रत्ययपत्रं दा० २. विश्वस् अदा० पृ० (विश्वसिति)	(राजदूत, दूतावास के अधिकारी आदि को) विश्वास पत्र देना प्रत्यय पत्र देना विश्वास करना
Accredit	प्रत्यायितं कृ० तना० उ०	प्रत्यायित करना
Accreditation(n)	प्रत्यायनम्	प्रत्यायन

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी दयानन्द की नवीनता

नवयुग निर्माता स्वामी दयानन्द

डा० अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए. पी. एच्. डी (डबलिन)

भारत के परम्परागत विश्वासानुसार स्वामी दयानन्द जी का वर्णन ज्ञानयोगी के रूप में हो सकता है। उन्होंने ज्ञान पर अपना आधार रक्खा और वे यह चाहते थे कि संसार ज्ञान को पूर्णतया अपनाये। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। बिना विद्या शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं।

—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११।

स्वामी दयानन्द ने न केवल बालकों के लिए अपितु कन्याओं के लिए भी इस शिक्षा का विधान किया। यह बात है जिसने प्राचीन वैदिक धर्म के उस अनुयायी को मानव उन्नति के लिए प्रयत्नशील आधुनिक कार्यकर्ताओं की प्रथम पंक्ति में खड़ा कर दिया। स्वामी दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज ने स्त्री शिक्षा के विषय में जो अद्भुत कार्य किया है उस का ब्रिटिश शासन काल के जनगणनाधिकारियों ने भी विशेष उल्लेख किया था। उत्तर भारत विशेषत: उत्तर प्रदेश में सामूहिक रूप में कन्याओं की शिक्षा को उस समय समाज के नेता बड़ी आशंका की दृष्टि से देखते थे। मुझे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक वृद्ध सज्जन मिले जिन्होंने मुझे बताया कि वे आर्यसमाजियों की प्रथम पीढ़ी से सम्बद्ध थे और अपने स्थान की आर्यसमाज के वे प्रधान थे किन्तु जब समाज ने वहां आर्य कन्या पाठशाला की स्थापना की तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। किस प्रकार ऋषियों की प्राचीन परम्परा के अनुयायी एक संन्यासी की ओजस्विनी प्रामाणिक वाणी ने लोगों के दृढ़ पक्षपात को परिवर्तित कर दिया यह प्रबल विरोध के होते हुए भी उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में स्त्रीशिक्षा के प्रसार की प्रगति ने सिद्ध कर दिखाया किन्तु यत: ऐतिहासिक प्राय: राजा महाराजाओं अथवा राजनीतिज्ञों के बनाए विधानों द्वारा ही सामाजिक परिवर्तनों का निर्देश करने में अभ्यस्त होते हैं यह सुगम है कि ऋषियों और साधु सन्तों की आध्यात्मिक शक्ति से प्रवाहित मौन मानसिक क्रान्तियों को विस्मृत कर दिया जाये।

धार्मिक सुधारक के रूप में ज्ञान योगी दयानन्द की एक विशिष्ट देन थी। भारत में कई ऐसे सन्त हुए हैं जिन्होंने सर्वसाधारण के लिए कार्य करते हुए यह देखा कि वे वेदों और उच्च ज्ञान के धर्म का अनुसरण करने में अपनी अज्ञता के कारण सर्वथा असमर्थ हैं। अत: उन्होंने उन के अज्ञ मनों के अनुरूप धर्म के साधारण रूपों को रखते हुए उन की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न किया। किन्तु ऋषि दयानन्द बड़े उच्च आदर्शवादी थे। उन्होंने कहा कि यदि सर्व साधारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अज्ञानी और वेदों की शिक्षा पर चलने में असमर्थ हैं तो उन के अज्ञान को दूर करो और उन्हें वेदों की शिक्षा को समझने के लिये बौद्धिक शक्ति सम्पन्न करो। इसलिये वे चाहते थे कि उन के लिए शिक्षा और प्रचार का सङ्गठित आयोजन किया जाए। उन्होंने लिखा:—विद्यावान् नीरोग और विद्या रहित अविद्यारोग से ग्रस्त रहता है उस रोग के छुड़ाने के सत्यविद्या और सत्योपदेश हैं।

—सत्यार्थ प्रकाश समु० ११।

एक सच्चे ज्ञानयोगी की तरह वे यह नहीं चाहते थे कि ज्ञान का स्थान केवल विश्वास ले ले।

यद्यपि ऋषि दयानन्द संसार त्यागी संन्यासी थे तथापि वे उग्र देशभक्त थे क्योंकि उन्होंने अपने देश को राजनैतिक दृष्टि से निर्बल और पराधीन पाया और यह चाहा कि यह देश स्वतन्त्रता और समृद्धि की ओर ले जाने वाले सन्मार्ग का अनुसरण करे। वे चाहते थे कि समुद्र यात्रा विषयक प्रतिबन्ध को जो हमारे देश के संसार के अन्य भागों से सम्बन्ध को विच्छिन्न कर देता था सर्वथा दूर कर दिया जाए। उन्होंने इस स्थिति के आर्थिक पहलू का इन शब्दों में प्रतिपादन किया—

क्या बिना देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपांतर में राज्य वा व्यापार किए स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ? जब स्वदेश में ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्रय और दु:ख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।

—सत्यार्थ प्रकाश समु० १०।

स्वामी जी को विदेशी राज्य में रहने के दु:ख का भली-भांति ज्ञान था। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति के निम्न श्लोक को उद्धृत किया है—

सर्वं परवशं दु:खं, सर्वमात्मवशं सुखम्॥

अर्थात् पराधीनता दु:ख और स्वतन्त्रता सुख है।

स्वामी जी ने भारत में स्वदेशी राज्य होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए राजनीति के अद्भुत ज्ञान का परिचय दिया है। उन्होंने लिखा—

विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। —सत्यार्थ प्रकाश समु०१०।

क्योंकि हमारे राजनैतिक नेता धार्मिक मत भेद के कारण लोगों में एकता लाने में असमर्थ थे अत: देश का विभाजन हुआ। इस से देश की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी जिसकी राजनीतिज्ञों को कल्पना भी न थी। स्वामी जी ने एक मुख्य कारण पर बल दिया—

'जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आ कर पंच बन बैठता है।'

—सत्यार्थ प्रकाश समु० १०।

अपनी न्याय बुद्धि से स्वामी दयानन्द जी ने अंग्रेज़ों के चरित्र की शक्ति के स्रोत का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ठीक २ निरुपण किया था । उन्होंने इस विषय में अपने महान् 'ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश' के एकादश समुल्लास में लिखा—

'जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान् हो कर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते । जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित कर के करते हैं, अपनी स्व-जाति की उन्नति के लिए तन, मन, धन, व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं । इत्यादि —सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ ।

उन के दोषों में स्वामी जी ने वर्ण विद्वेष और गोरों के विरुद्ध कालों के साथ न्याय करने में अक्षमता आदि का निर्देश किया है । भारतीयों को देश सेवा के लिए प्रेरित करते हुए उन्होंने लिखा—

'हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा उस की उन्नति तन मन धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें ।' —सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ ।

संन्यासियों को भी स्वामी जी ने यही प्रेरणा की कि वे उपेक्षा वृत्ति का परित्याग कर के वैदिक धर्म की शिक्षा देकर दिन-रात जगत् के कल्याण में अपने को तत्पर रक्खें । उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में इस विषय में स्पष्ट लिखा है कि—

"पक्षपात रहित वेदोपदेश मार्ग से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है ।"

वन्दनीयो महर्षिः

१. निखिल निगमवेत्ता, पापतापापनेता
रिपुनिचयविजेता, विश्व पाखण्डछेत्ता ।
अतिमहिततपस्वी, सत्यवादी मनस्वी
जयति स समदर्शी, वन्दनीयो महर्षिः ॥

२. विमलचरितयुक्तः, पापमुक्तः प्रशस्त
सकलसुकृतकर्ता, कर्मराशावसक्तः ।
दलितजनसुधारे, सर्वदा दत्तचित्तः
जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षिः ॥

३. प्रथित धवलकीर्तिः, शुद्धधर्मस्य मूर्तिः
प्रसृतनिगमरीतिः, शत्रुवर्गेऽप्यभीतिः ।
अनुसृतशुभनीतिः, वेदशास्त्रेष्वधीती
विबुधगणवरेण्यो वन्दनीयो महर्षिः ॥

४. अधिकतम उदारो धर्मसम्बोधकेषु
श्रुतिविहित विचारो लोकसंरक्षकेषु ।
विदितनिगमसारो ब्रह्मचार्यग्रगण्यो
जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षिः ॥

★

—ध्रुवः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देव दयानन्द

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी अजमेर

१. दयानन्द देव वेदों का,
उजाला ले के आये थे।
करों में ओ३म् की पावन
पताका ले के आये थे॥

२. न थे धन धाम मठ मन्दिर
न संग चेली न चेला था।
हृदय में वे अटल विश्वास
प्रभु का ले के आये थे॥

३. गऊ विधवा दलित दुखिया
अनाथों दीन जन के हित।
नयन में अश्रुकण मानस में
करुणा ले के आये थे॥

४. अविद्या सिंधु से अगणित
जनों को पार करने को।
परम सुख दायिनी सज्ज्ञान-
नौका ले के आये थे॥

५. कोई माने न माने सच तो
ये ऋषि राज ही पहले।
स्वराज्य स्थापना का मंत्र
सच्चा ले के आये थे॥

६. पिलाया ज़हर का प्याला
उन्हीं नादान लोगों ने।
कि वे जिनके लिये अमृत
का प्याला ले के आये थे॥

७. प्रकाशादर्श शिक्षा का
पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का
संदेशा ले के आये थे॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
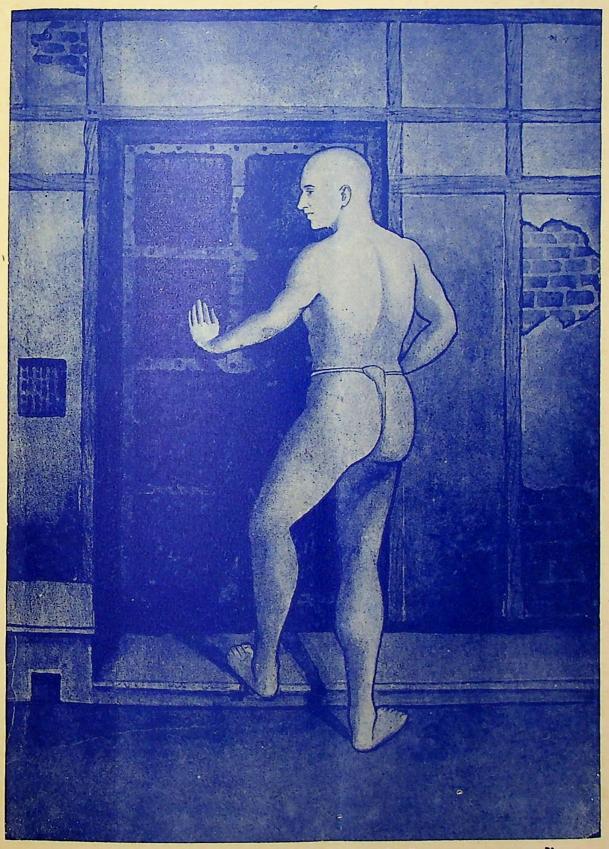
तपस्वी स्वामी दयानन्द जी महर्षि विरजानन्द जी की पाठशाला मथुरा में
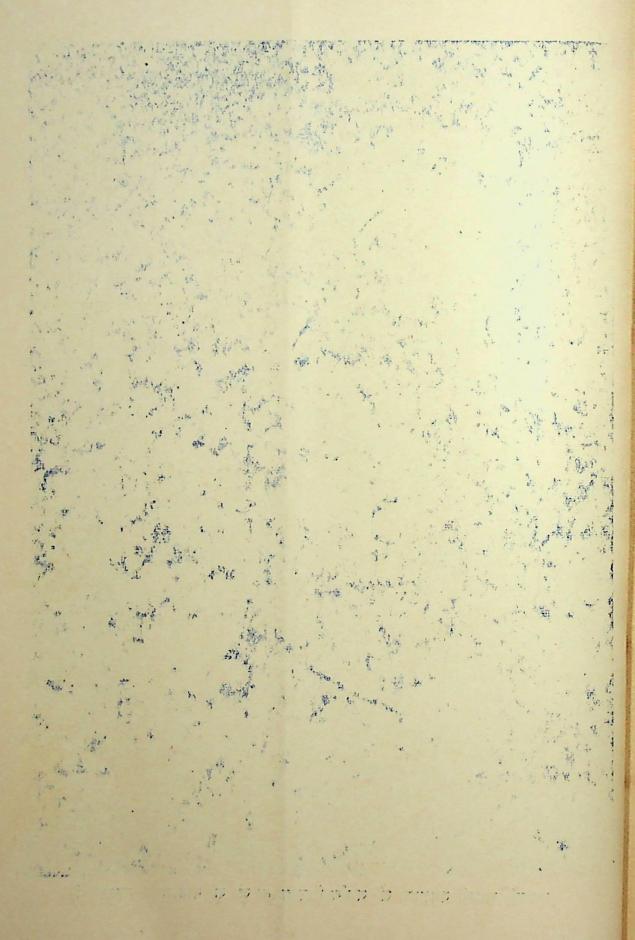
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नींबू द्वारा अनेक रोगों की सफल चिकित्सा

मदनगोपाल, गुरुकुल कांगड़ी

नींबू भारत का प्रसिद्ध फल है। अति प्राचीनकाल से यह हमारे आहार में प्रयुक्त होता आ रहा है। इस के सिवाय ओषधि की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व का फल है और सारे संसार में ही यह ओषधियों में विविध रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

वैसे तो नींबू का सेवन सभी ऋतुओं में लाभकारी है। परन्तु वर्षा ऋतु में इस का उपयोग बहुत लाभकर है क्योंकि इस ऋतु में कीटाणुओं की संख्या वृद्धि से अनेक रोग फैलते हैं। इस काल में असंख्य गुणों से युक्त प्रकृति की अनुपम देन 'नींबू' के प्रतिदिन के उपयोग से हम मलेरिया, विशूचिका जैसी अनेक भयङ्कर बीमारियों के आक्रमण से बचे रहते हैं।

नाम--संस्कृत–निम्बूक, हिन्दी–नींबू, इंगलिश–लैमन (Lemon), लैटिन–लैमोनं ऐसिडं (Lemonum Acidum)

गुण—लघु–तीक्ष्ण, रस–अम्ल, वीर्य–अनुष्णाशीत, पाक–अम्ल, प्रभाव–पित्त, शामक–रक्त की अम्लीयता को कम करने वाला।

कर्म—दीपन, पाचन, कृमिसमहनाशक, आमहारक, शूल में हितकारी, अरुचि निवारक तथा रोचन है। यह त्रिदोष जन्य रोग, तत्काल के ज्वर, मुखादिक से पानी गिरना, मलग्रह, गुदबद्धता और विशूचिका रोग में अत्यन्त हितकारी है।

इस के अतिरिक्त यह वमन, खांसी, कण्ठरोग, क्षय, पित्त, शूल, त्रिदोष, मलस्तम्भ, आमवात, गुल्म और कृमि को दूर करता है।

सेवन विधि

१. सेवन के लिये पका नींबू ही लेना चाहिए। यदि इसे कुछ देर गरम जल में रखें तो गूदा मुलायम हो जाने से रस काफी मात्रा मात्रा में निकल आता है।

२. जहां तक सम्भव हो नींबू का प्रयोग खाली पेट करना चाहिए।

३. ग्रीष्म काल की अपेक्षा सर्दियों में नींबू का रस कम लेना चाहिए।

४. नींबू का रस अन्य फलों के रस के साथ लिया जाय तो अधिक अच्छा है।

५. नींबू का प्रयोग प्रातः सायं करना चाहिए, भोजन के बाद नहीं।

६. यदि मूत्र में निक्षेप आने लगे तो नींबू का प्रयोग कुछ दिन के लिये रोक देना चाहिए।

नींबू के प्रयोग की अनेक विधियाँ हैं। मुख्यतः निम्न हैं —

१. अन्त सेवन

२. ब्राह्य सेवन=खुजली आदि पर लगाना

३. बस्ति द्वारा भी

१. **यकृत् विकार**--यकृत शुद्धि के लिये नींबू के समान उत्तम ओषधि आज तक कोई नहीं है। १ पाव नींबू के रस में ५ तोला अजवायन तथा ५ तोला सैंधा नमक डालें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अजवायन के फूल जाने पर उसे छाया में फैला कर सुखायें। साथ ही खपरिया नौसादर ढाई तोला मिला दें। यकृत् विकारों में ३ माशा की मात्रा शीतल जल से देनी चाहिए।

२. **विशूचिका**—नींबू के २–३ बीजों की गिरि का चूर्ण मधु से दें। एवं तृषाधिक्य दूर करने के लिये २ तोला सैंधा नमक, ४ सेर जल में पकायें। आधा शेष रहने पर ३ माशा कागज़ी नींबू का रस मिला कर मिट्टी के कोरे पात्र में रखें। इस के सेवन से प्यास शीघ्र रुक जाती है।

३. **वमन**—जल में स्वरस और मिश्री मिला कर उपयोग में लाते हैं।

४. **अतिसार**—नींबू काट कर उस पर थोड़ा नमक और त्रिकटु (सौंठ, काली मिरच, पिप्पली) डाल अग्नि पर पका कर रस चूसते हैं। डाक्टर नाड़करनी कहते हैं कि नींबू का रस कफ उत्पन्न करने वाले अवयवों की खराबी से उत्पन्न अतिसार में बहुत उपयोगी है। बिल्कुल आशा छोड़े हुए रोगी को भी दिन भर में ३० तोला की मात्रा में रस देते रहने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

५. **आंव तथा ऐंठन**—आधा नींबू का रस धारोष्ण दूध में निचोड़ कर उपयोग में लावें। इस से आंव बाहर निकलता है तथा पेट की दर्द, जलन, दस्त आना, ऐंठन आदि बन्द होते हैं।

६. **सुजाक**—डेढ़-डेढ़ माशा यवक्षार की दो पुड़िया एवं डेढ़-डेढ़ पाव के दो मटका कच्चे दूध के रख लेवें। पश्चात् यवक्षार की पुड़िया मुख में डाल कर आधा नींबू दूध में निचोड़ कर तत्काल पीयें। ऊपर से फिर दूसरी पुड़िया खा कर फिर नींबू निचोड़ कर फिर दूध पी लेवें। इस प्रकार ३ दिन प्रयोग करने से सुजाक की बाधा शान्त होती है।

७. **अरुचि एवं क्षुधानाश**—नींबू रस, सैंधा नमक, और त्रिकटु जल में मिला कर प्रयोग करते हैं।

८. **अजीर्ण, पेट दर्द एवं वमन**—नींबू रस ३ माशा, नितारा हुआ साफ चूना जल एवं मधु १–१ तोला सब को एक में मिला २०–२० बूदें की मात्रा में दें।

९. **अतिस्थूलता**—२ प्याले नींबू रस एवं २ प्याले गरम जल मिला कर नित्य कुछ दिन पीना चाहिए। साथ में उपवास जारी रखने से मेदवृद्धि के ऊपर अद्भुत असर दृष्टिगोचर होता है। नींबू रस शरीर के अन्दर बढ़े पानी को सुखा कर एकत्रित ज़हरों को नष्ट कर देता है जिस से शरीर का बेडौल मोटापा निकल कर शरीर पतला, सुन्दर और सामर्थ्यवान् हो जाता है।

१०. **दाह**—शरीर में दाह होने पर नींबू की शिकंजी देनी चाहिए।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अगर आज स्वामी दयानन्द होते

रचयिता—डा० सूर्य देव शर्मा एम. ए. डी. लिट् अजमेर

अगर आज स्वामी दयानन्द होते। नये सूत्र में राष्ट्र-माला पिरोते ॥
जगत में सभी वेद का गान करते, सुधी वेद का ही सुधापान करते।
हमारी मही का महा मान करते, हमीं धर्म से विश्व-कल्याण करते ॥
हमीं विश्व में शांति के बीज बोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ १ ॥

वही विश्व में वेद-वीणा बजाते, वही विश्व में शांति-सज्जा सजाते।
वही विश्व में ज्ञान-गंगा बहाते, वही विश्व को प्रेम-जल से नहाते ॥
उसी वारि से विश्व के पाप धोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ २ ॥

न यों हिन्दुओं का भला भाग्य फिरता, कभी क्यों विभाजन-विकट-वज्र-गिरता।
कलेजा न मां का किसी भांति चिरता, विपद्-बादलों से न सुख 'सूर्य' घिरता ॥
लगाते न हम रक्त में हाय ! गोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ३ ॥

कभी मातृ-भू के न टुकड़े कराते, न मुस्लिम पृथक् पाक के गीत गाते।
नहीं धर्म-निरपेक्ष के स्वप्न आते, न हम वैदिकी सभ्यता को भुलाते ॥
सभी भारती-भव्य-माखन बिलोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ४ ॥

वही आज बनते सजग राष्ट्र-नेता, वही देश की नाव के नव्य खेता।
वही स्वत्व स्वाधीनता के विजेता, वही देश के पथ प्रदर्शक सुचेता।
जगाते सभी राष्ट्र के भाव सोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ५ ॥

नहीं साम्यवादी हमें भूत खाता, न साम्राज्यवादी हमें फिर सताता।
हमारा कृषक औ, श्रमिक शांति पाता, सदा प्रेम से राष्ट्र-नौका खिवाता ॥
हमीं 'सूर्य' सम तेज जग में संजोते।
अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ६ ॥

अहो ऋषि दयानन्द ! फिर आप आओ, अभी सो रहे जो उन्हें तो जगाओ।
दुखी मानवों को सुपथ, सुख दिखाओ, पुनः विश्व में वेद वीणा बजाओ ॥
न प्राणी रहें पाप का भार ढोते। अगर आज स्वामी दयानन्द होते ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां आनी चाहियें)

महर्षि दयानन्द और राजा राममोहनराय के तुलनात्मक विचार

लेखक—श्री भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. सिद्धान्तवाचस्पति जोधपुर, प्रकाशिका रूप कान्ता देवी जी दीक्षित आर्य प्रकाश पुस्तकालय आगरा पृष्ठ १४० मूल्य १)

इस पुस्तक के लेखक श्री भवानीलाल जी एम. ए. सिद्धान्तवाचस्पति एक स्वाध्यायशील उत्साही आर्य सज्जन हैं। इस पुस्तक में उन्होंने सुप्रसिद्ध समाजसुधारक ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहनराय और महर्षि दयानन्द के शास्त्र प्रमाण वाद, एकेश्वर वाद, मूर्ति पूजा, दार्शनिक दृष्टिकोण, सर्वधर्म समभाव, समाज में नारी का स्थान, स्वराज्य भावना इत्यादि विषयों पर विचारों का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त उपयोगी और सुधार की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने निष्पक्षपात दृष्टि से विवेचन का पूर्ण प्रयत्न किया है और उस में उन का सफलता प्राप्त हुई है। हम श्री भारतीय जी को इस उत्तम तुलनात्मक अनुशीलन के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं। उन का विचार इसी प्रकार के अन्य भी तुलनात्मक अनुशीलन सम्बन्धी पुस्तकें लिखने का है जिस में हम पूर्ण सफलता की कामना करते हैं। इस पुस्तक से आर्यसमाज के साहित्य में एक अभिनन्दनीय वृद्धि हुई है।

संस्कृतम् (प्रथमतशतकम्)

लेखक—साहित्य शिरोमणि पण्डित कर्णवीर नागेश्वरराव क्षीरपुरी, हिन्दी पण्डित हिन्दू हाई स्कूल वैटापलम् जिला गुन्टूर् आन्ध्रप्रदेश। मूल्य ।)

आन्ध्रप्रदेश के विद्वान् श्री पं० कर्णवीर नागेश्वरराव जो का परिचय हम श्रावण मास की पत्रिका में उन की 'संस्कृतान्ध्र राष्ट्रभाषा बोधिनी' की समालोचना करते हुए दे चुके हैं। उन्हीं की यह सरल और उत्तम रचना है जिस में १०८ श्लोकों में संस्कृत भाषा का महत्त्व बताते हुए उसके प्रमुख उद्धारकों और प्रचारकों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने महर्षि दयानन्द जी और अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का स्मरण निम्न सरल श्लोकों में किया है—

दयानन्दः सदानन्दो महर्षिरुत्तमोत्तमः।
भारतीं सुरवाणीं तां, ज्ञात्वा जातः सरस्वती ।।२८
आत्मयज्ञमहाहोता, श्रद्धानन्दो गुरूत्तमः।
गुरुकुलाश्रमे वाणीम्, अस्थापयत्सुधानिधिः ।। २९

जो संस्कृत को मृत भाषा कहते हैं उन की तीव्र आलोचना करते हुए उन्होंने प्रारंभिक 'विज्ञप्तिः' में लिखा है—

सर्व विज्ञान संस्थानं, सर्वविद्याभिवर्द्धकम्।
तत्संस्कृतं मृतं रे रे! यो वदेत् स हि सम्मृतः ।।

इस पुस्तक की भूमिका काशी पण्डित सभा के प्रधान काशी विद्यापीठ में दर्शनाध्यापक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शन केसरी महामहाध्यापक पं० गोपाल शास्त्री जी ने संस्कृत श्लोकों में लिख कर इस के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। हम पं० कर्णवीर जी के संस्कृत प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन के इस अभिनन्दनीय प्रयत्न में सफलता चाहते हैं। यह लघु पुस्तक सब प्रकार से उपादेय है।

फ़िज़ी प्रवासी पं. अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार एम. ए. की सचित्र जीवनी

लेखक—साहित्यरत्न पं० नीलकण्ठ जी तिवारी एम. ए. प्रकाशक—श्री कृष्णशर्मा आर्य मिशनरी प्रवासी प्रकाशन सावित्रीसदन, मनहर प्लाट, राजकोट (सौराष्ट्र), मूल्य १।।) विदेशों में १० शिलिंग

श्री पं० अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार गुरुकुल काँगड़ी के सुयोग्य स्नातक थे जो सन् १९२२ में स्नातक बनने के पश्चात् गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के मुख्याध्यापक रहे और जिन्हों ने २२ दिसम्बर सन् १९२७को फ़ीजी द्वीप पहुंचकर वहां शिक्षा और समाज सुधार के क्षेत्र में निरन्तर २६ वर्ष सेवा द्वारा अत्यधिक प्रसिद्धि और कीर्ति प्राप्त की।

इस का विस्तृत वर्णन इस २७ चित्रों वाली भक्ति भाव भरित सरल भाषा में लिखी पुस्तक में किया गया है। दुर्भाग्यवश १३ मार्च सन् १९५४ को जब वे हवाई जहाज में भारत के लिये प्रस्थान कर रहे थे सिंगापुर के समीप उन के विमान में आग लग जाने से अन्य सब यात्रियों के साथ उन का भी अत्यन्त शोकप्रद देहावसान हो गया। उन के इस आकस्मिक निधन पर फ़िजी के अंग्रेजी पत्र फ़िजी टाइम्स ने लिखा—

'पं० अमीचन्द्र जी एक अच्छे नागरिक विवेकी मार्ग दर्शक, सब के हमदर्द और उच्च आदर्शवादी थे जिन्होंने मानवता की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। प्रत्येक समुदाय के व्यक्ति उनके निधन से शोकसन्तप्त होंगे।' न्यूजीलैण्ड के रैवरैण्ड मैक्मिलन् ने लिखा—"भारत माता ने अपने जिन पुत्रों को फ़ीजी भेजा उन में से श्री अमीचन्द्र विद्यालङ्कार ने फ़ीजी भारतीयों में शैक्षणिक जागरण के लिये जितना कार्य किया उतना और किसी ने नहीं। उनकी स्मृति आने वाली पीढ़ियों को सदा प्रेरणा देती रहेगी।"

फ़ीजी के पादरी ब्रूक ने लिखा "पण्डित अमीचन्द्र वर्ण, जाति या मत से परे सब के मित्र थे। वे मानवता के कल्याण कार्य में सदैव सहायता करने को तत्पर रहते थे।" मुस्लिम स्कूल वुनीमीनो नसूरी के प्रधान अध्यापक श्री मुहम्मद अब्दुल्ला ने लिखा कि 'पण्डित जी अपनी धुन के पक्के थे। बहुत कम ऐसे आदमी मिलेंगे जो एक ही साथ बहुत सी तहरीकों (आन्दोलनों) से सम्बन्ध रख कर कामयाब होते रहते हैं। फ़ीजी के नवयुवकों को पण्डित जी के जीवन से सबक सीखना चाहिये और ज़िन्दगी को पवित्र बनाना चाहिये। इत्यादि—

ऐसे लोकप्रिय समाज सेवी विद्वान् कर्मयोगी का

(शेष पृष्ठ ९६ पर देखिए)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

नवयुग निर्माता महर्षि का दिव्य संदेश--

'गुरुकुल पत्रिका' का यह अङ्क महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस (दीपमाला) से कुछ दिन पूर्व प्रकाशित होगा अतः इस में अधिकतर लेख और कविताएं उनके सम्बन्ध में प्रकाशित करना उचित समझा गया है। जैसे कि हमारे मान्य मित्र डा० अविनाशचन्द्र जी बोस तथा अन्य सुयोग्य लेखकों ने बताया है महर्षि दयानन्द सचमुच क्रान्तिकारी नवयुग निर्माता थे। धार्मिक सामाजिक, राष्ट्रिय तथा शैक्षणिक प्रत्येक दृष्टि से उन का कार्य अद्भुत था तथा उनका सन्देश दिव्य और स्फूर्तिदायक होने के कारण मृतकों में भी नवजीवन का संचार करने वाला था। उन के इस दिव्यसन्देश को सुनने और उस पर आचरण करने की आज भी देश को (वस्तुतः सारे जगत् को) उतनी ही आवश्यकता है जितनी उनके जीवित काल में थी। इस युग में सब से प्रथम स्वराज्य का महत्त्व उन्होंने ही अपने अमर 'सत्यार्थ प्रकाश' में इन शब्दों में प्रकट किया था कि "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। सौभाग्य से महर्षि दयानन्द, उन के अनुयायियों और देश के मान्य नेताओं के तप, बलिदान और घोर परिश्रम से १५ अगस्त सन् १९४७ को भौगोलिक खण्डित स्वराज्य की प्राप्ति हो गई जिस पर कुछ हर्ष मनाना उचित ही है किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि सुराज्य अब भी कोसों दूर है। महर्षि ने देश-सेवा के लिये प्रत्येक देशवासी को यह सन्देश दिया कि 'हम और आप को उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा। उस की उन्नति तन मन धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें।' (स. प्र. ११ समु.) इस वर्ष हमारे देश के मान्य प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी ने १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के समारोह में इसी आशय की प्रतिज्ञा लोगों से करवाई थी किन्तु महर्षि ने देशोन्नति के जिन साधनों का अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में

(पृष्ठ ६५ का शेष)

यह जीवन-चरित्र अत्यन्त स्फूर्तिदायक है। हम चाहते हैं कि फीजी के ही नहीं, हमारे देश के युवक भी इस जीवन-चरित्र को पढ़ कर इस से स्फूर्ति ग्रहण करें। प्रत्येक गुरुकुल के स्नातक को भी इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये। ऐसे सुयोग्य पुत्रों पर गुरुकुल माता जितना अभिमान करे थोड़ा है। दिवंगत अमीचन्द्र जी के सतीर्थ्य और कक्ष मित्र होने के कारण हम भी उन के पुस्तक में वर्णित गुणों का हार्दिक समर्थन करते हैं। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निर्देश किया था उन की ओर अभी न हमारे देश के प्रायः नेताओं का ध्यान है और न जनता का। इसी लिये सच्चा स्वराज्य और सुराज्य हम से अभी बहुत दूर है और नैतिक दृष्टि से देशवासियों की दशा रसातल की ओर जाती प्रतीत होती है। महर्षि ने लिखा कि 'जब वेदादि सत्यग्रन्थों का पठन-पाठन ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का यथावत् अनुष्ठान और सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है (स. प्र. ११ समु.)

अभी हमारे देश में इन देशोन्नति के महर्षि प्रतिपादित साधनों का अनुष्ठान कितना कम है? गुरुकुल जैसी थोड़ी सी संस्थाओं को छोड़ कर वेदादि सत्यग्रन्थों के पठन-पाठन और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के अनुष्ठान की व्यवस्था कहां पाई जाती है ? हमारे संविधान में भारत को जो 'सैक्युलर् स्टेट्' घोषित किया गया उस का अर्थ यदि असाम्प्रदायिक होता तब तो सर्वथा उचित ही है क्योंकि इन सम्प्रदायों के विषय में महर्षि का कथन सर्वथा यथार्थ था कि जो "मतमतान्तरों के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं पसन्द नहीं करता। क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्यविद्या का प्रचार कर सब को ऐक्य मत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख-लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।' (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश) किन्तु जब सैक्युलर्-स्टेट् का अर्थ धर्म विहीन अथवा अधिक से अधिक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र समझा जाता और उसी के अनुसार धर्मशिक्षा की विद्यालयों में सर्वथा उपेक्षा की जाती है तो आचार्य काका कालेलकर द्वारा सम्पादित 'मङ्गल प्रभात' में कुमारी तैयब जी नामक एक बहिन का यह प्रश्न ठीक ही है कि भला भारत धर्म निरपेक्ष देश है ? क्या भारतीय राज्य निधर्मी बन कर धर्मोन्मत्त भारतीय प्रजा को खरी उन्नति की राह पर ले जा सकता है ? ले जा रहा है ? भारत को धर्मनिरपेक्ष ठहरा कर भारतीय जन की धर्मनिष्ठा का नाश कर के हकूमत हमारी प्रजाओं को कौन सी उन्नति के पथ पर चढ़ा रही है ? हकूमत जनता की सेवक संरक्षक है, व्यवस्थापक और निरीक्षक है। जनता पर ग़लत विचार लादने का उसे कौन अधिकार है ? (मङ्गलप्रभात १३ अगस्त १९५७) इस धर्मशिक्षा की नितान्त उपेक्षा का युवक-युवतियों के चरित्र पर कितना बुरा प्रभाव पड़ रहा है, किस तरह सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है और अनाचार की वृद्धि हो रही है इस बात को कौन नहीं जानता ? इसी लिये देश के वयोवृद्ध मान्य नेता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जी ने आगरा विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में गत वर्ष २२ दिसम्बर को धर्मशिक्षा की समस्त विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में में अनिवार्यता पर इतना बल दिया था। यदि हमारे देश के शिक्षा वैज्ञानिक तथा शिक्षण संस्थाओं के संचालक महर्षि दयानन्द के शिक्षा के इस लक्षण को अपना कर कार्य प्रारम्भ कर दें तब भी कितना परिवर्तन हो सकता है कि 'जिस से विद्या, सभ्यता धर्मात्मता जितेन्द्रियता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आदि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं । (मन्तव्य सं० २२)

शिक्षा की इस कसौटी पर कसने पर १० प्रतिशतक संस्थाएं भी कठिनता से उत्तीर्णाङ्क प्राप्त कर सकेंगी ऐसी हमारी शोचनीय अवस्था है । महर्षि के शिक्षा और देशोन्नति विषयक इस दिव्य-सन्देश को सुन कर उन को क्रियात्मक रूप देने का सब देशहितैषियों को प्रयत्न करना चाहिये ।

आचार्य विनोबाभावे द्वारा वर्तमान शिक्षा-पद्धति की तीव्र आलोचना:—

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में अभी तक प्रायः वही शिक्षापद्धति प्रचलित है जिसे विदेशी शासकों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के साधन के रूप में प्रचलित किया था । उस की तीव्र आलोचना महात्मा गांधी जी के एक सच्चे अनुयायी और अनेक भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् आचार्य विनायक जी ने (हमें विनोबा इस अपभ्रष्ट शब्द की अपेक्षा उन के वास्तविक शुद्ध नाम विनायक का ही प्रयोग करना अच्छा लगता है ।) 'भूदान' के पिछले अङ्क में इस प्रकार के विचारोत्तेजक शब्दों में की है। उन्होंने लिखा है कि—

'मैं वर्तमान शिक्षाप्रणाली से असन्तुष्ट हूँ। कारण यह कि इस शिक्षाप्रणाली से बौद्धिक ईमानदारी और बौद्धिक स्वतन्त्रता का विकास नहीं होता । इस ने आत्म-विश्वास और विनम्रता को एक दम समाप्त कर दियाहै । वर्तमान शिक्षाप्रणाली विचार स्वातन्त्र्य की जननी नहीं। वह तो जी हज़ूरों को पैदा करती है । ... विद्यार्थियों में अनुशासन का अभाव है । इस का कारण यह है कि आज प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा समाप्त हो चुकी है । अध्यापक के प्रति विश्वास व सम्मान की भावना नहीं रही और अध्यापकों की विद्यार्थियों के प्रति दयालुता व प्रेम की भावना नहीं रही । इस भावना के समाप्त होने का कारण यह है कि हमारे देश में वास्तविक अध्यापक नहीं रहे । उन में से अधिकांश कर्मचारी हैं । अध्यापकों में से बहुत कम लोग हैं जो अध्यापन कार्य को एक धन्धे के रूप में स्वीकार करते हैं ।

शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण का विरोध करते हुए आचार्य विनायक जी ने लिखा है कि जब शिक्षा पर इस तरह सरकारका नियन्त्रण हो तो फिर बौद्धिक संकीर्णता का होना अनिवार्य है । बौद्धिक गुलामी सब से बड़ी गुलामी है । स्वतन्त्र वातावरण में ही रचनात्मक व मौलिक बुद्धि का विकास हो सकता है । इत्यादि—

आचार्य विनायक जी का यह लेख बड़ा विचारोत्तेजक है और इस से गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का जो गुरु शिष्यों में पिता पुत्र भाव को स्थापित करने और सदाचार निर्माण पर बल देती है पूर्ण समर्थन होता है ।

हम समस्त शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान आचार्य विनायक जी के इन शब्दों की ओर आकर्षित करते हुए उन से निवेदन करते हैं कि वे वर्तमान शिक्षा पद्धति के इन दोषों को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करें क्यों कि शिक्षा में सुधार के बिना देश की वास्तविक उन्नति सर्वथा असम्भव है ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राष्ट्रभाषा का स्थगित कराने का निन्दनीय यत्न—:

हमें यह जान कर अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ कि गत ३ सितम्बर को आन्ध्र, मैसूर, मद्रास तथा केरल से निर्वाचित लोकसभा के ४० कांग्रेस सदस्यों ने प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल जी नेहरू के नाम एक स्मृति पत्र तय्यार किया है जिस में कहा गया है कि हिन्दी को राजभाषा के पद पर १९९० तक प्रतिष्ठित न किया जाए।

हम राष्ट्रभाषा को इतने चिरकाल तक स्थगित कराने के इस प्रयत्न को नितान्त अनुचित, निन्दनीय और दासमनोवृत्ति का परिचायक समझते हैं। हमारे विचार में तो सन् १९६५ तक का जो समय संविधान सभा में निर्धारित किया गया था वह ही अधिक था इसे अब और स्थगित करना तो राष्ट्रिय एकता के लिये सर्वथा हानिकारक होगा। राजभाषा आयोग के जिस प्रतिवेदन की चर्चा हम ने भाद्रपद मास के सम्पादकीय स्तम्भ में की थी उस ने यद्यपि सन् १९६५ तक राष्ट्रभाषा हिन्दी को सरकारी कार्यों के लिये प्रतिष्ठित करने का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन नहीं किया तथापि अपने प्रतिवेदन के अन्त में यह अवश्य लिखा था कि भारत की राजभाषा को उस का उचित स्थान मिलना चाहिये ताकि वह भारत की एकता में सहायक हो सके। इस में हम जितनी देर करेंगें, उतनी ही हमारी हानि है।

इस प्रकार भारत की एकता को हानि पहुंचाना किसी भी देशभक्त के लिये सर्वथा अनुचित है। अब तो सब देशवासियों का यही कर्तव्य है कि वे राष्ट्रभाषा हिन्दी का अभ्यास करने और इसको सब दृष्टियों से समृद्ध बनाने में तत्पर हो जाएं जिससे अधिक से अधिक सन् १९६५ तक यह पूर्णतया राजभाषा के रूप में अंग्रेजी का स्थान ले सके। दक्षिण की भाषाओं में तो संस्कृत के शब्दों की इतनी प्रचुरता है कि वहां के निवासी बड़ी सरलता से संस्कृत निष्ठ हिन्दी का अभ्यास कर सकते हैं। यदि वहां के विद्वान् नेता देवनागरी लिपि को अपनी प्रादेशिक भाषाओं के लिए अपना लें तब तो हिन्दी को सीखना उन के लिये और भी अधिक सुगम हो जाए क्योंकि तब वे अनुभव करेंगे कि हिन्दी और उन की भाषाओं में लिपि का जितना भेद है उतना शब्दों का नहीं क्योंकि संस्कृत शब्द इन सब में प्रायः समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

विदेशी भाषा अंग्रेज़ी के मोह का तो परित्याग करना ही पड़ेगा जिसकी उपहासजनक वकालत अखिल भारतीय ऐंग्लो इन्डियन संघ के अध्यक्ष श्री फ्रैंकऐन्थनी और भारत के भूतपूर्व प्रधान सेनापति श्री करियप्पा ने पिछले दिनों अपने भाषणो में की। उन की युक्तियां इतनी निस्सार थीं कि उन का उल्लेख करना भी हमें सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है।

पंजाब में तथा अन्यत्र राष्ट्रभाषा के गौरव की सब उचित उपायों से रक्षा करना सरकार और जनता का कर्तव्य है।

वेदमूर्ति पं. सातवलेकर जी का अभिनन्दन:—

कौन वैदिक धर्मी होगा जो वैदिक धर्म के

(शेष पृष्ठ ७० पर देखिये)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग

इस मास गत मास की अपेक्षा वर्षा कुछ अधिक हुई। लगभग पूरे महीने प्रातःकाल आकाश काले काले बादलों से घिरा और हलकी बौछार भी होती रही। किसी किसी दिन तो २४-२४ घण्टों तक सूर्य देवता के दर्शन दुर्लभ हो गए। मास के अन्तिम सप्ताह लगभग हर रोज़ ही आंधी तथा वर्षा की झड़ी रही। सारी कुलभूमि में घुटने तक पानी ही पानी हो गया। यद्यपि दिन में थोड़ी गरमी होती है तोभी रात्रि में चादर का स्थान अब कम्बल ले चुका है। साधारणतया कुलवासियों का स्वास्थ्य उत्तम है।

साहित्य परिषद्

२४ अगस्त शनिवार को प्रातः दस बजे महाविद्यालय प्रार्थना भवन में साहित्य परिषद् का अधिवेशन इतिहास परिषद् के रूप में मान्य प्रो. वागीश्वर जी विद्यालंकार एम.ए. साहित्याचार्य प्रस्तोता गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस परिषद् में ब्रह्मचारी कैलाश चतुर्दश, ब्र० दिलीप द्वादश, ब्र० वेदव्यास, विश्वराजन् सुरेन्द्र, वेदप्रकाश, वीरेन्द्र, धर्मवीर,

---

(पृष्ठ ६६ का शेष)

सम्पादक उग्र देशभक्त श्री पाद दामोदर जी सातवलेकर के नाम और वैदिक साहित्य के शुद्ध मुद्रण और वैदिक विचारों के प्रचार विषयक उन के उत्साहपूर्ण कार्य से परिचित न हो? सन् १९१८ में औंध में स्वाध्याय मंडल की स्थापना कर के उन्होंने वेदों के सम्बन्ध में ६० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कराईं जिनसे सर्व साधारण में वेदज्ञान को प्राप्त करने की बड़ी रुचि उत्पन्न हुई। गत १५ सितम्बर को अपनी आयु के ९० वर्ष समाप्त करके उन्होंने ९१ वें वर्ष में पदार्पण किया। इसके उपलक्ष्य में बम्बई में डा. सी. पी. राम स्वामी अय्यर की अध्यक्षता में उन का सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया गया और २५ हज़ार रुपये की थैली उन्हें वैदिक साहित्य प्रकाशनादि कार्यार्थ भेंट की गई। इस अवसर पर मान्य श्री पं० सातवलेकर जी ने जो महत्त्वपूर्ण भाषण दिया उसे हम 'गुरुकुल पत्रिका' के अगले अङ्क में प्रकाशित करेंगे। हम कुछ विषयों में थोड़ा मतभेद रखते हुए भी वेदों के प्रति सम्पूर्ण निष्ठावान्, ९० वर्ष की वृद्ध आयु में भी वैदिक आर्य धर्म, संस्कृत और भारतीय संस्कृति के प्रचार में दिनरात तत्पर श्री पं० सातवलेकर जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि वे 'भूयश्च शरदः शतात्' के अनुसार कम से कम १२५ वर्ष की आयु प्राप्त कर के वेद प्रचार के कार्य में सर्वदा तत्पर रहेंगे जैसी कि इच्छा उन्होंने प्रकट की है। गुरुकुल कांगड़ी के साथ उन का विशेष सम्बन्ध बहुत वर्ष रहा है और वे कुछ समय तक वेदाध्यापन भी यहां करते रहे हैं अतः सब कुलवासी उन के ९० वर्ष की पूर्ति पर उन का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और उन की दीर्घायु, आरोग्य और कीर्ति के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रामकृष्ण,जितेन्द्र आदि विद्यार्थियों ने और प्रोफ़ेसर रणवीर जी विद्यालंकार तथा मान्य प्रोफेसर हरिदत्त जी वेदालंकार एम.ए. ने सन् १८५७ की क्रांति के कारणों, घटनाओं, परिणामों तथा उस में काम आने वाले वीरों एवं वीरांगनाओं का विस्तृत एवं प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया। इस परिषद् का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य प्रोफेसर हरिदत्त जी एम. ए. को है।

परीक्षा

आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों की इंडियन मैडिसन बोर्ड से चल रहे संघर्ष के कारण इस वर्ष वार्षिक परीक्षा २० सितम्बर १९५७ शुक्रवार से होनी निश्चित हुई। बोर्ड ने उन की लगभग सभी मांगों को न्यायोचित एवं युक्तिसंगत मान कर स्वीकार कर लिया है। अतः इस मास महाविद्यालय के छात्र विशेष अध्ययन में दत्त-चित्त रहे हैं। उन की सफलता के लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते है।

विशेष भाषण

श्री प्रोफेसर ओम्प्रकाश जी वेदालंकार एम. ए., प्रभाकर शास्त्री अध्यक्ष हिन्दी विभाग डी. ए. वी. कालेज अम्बाला का महाविद्यालय आश्रम में पंजाब में चल रहे हिन्दी आन्दोलन के कारणों पर एक भाषण हुआ। तथा श्री डाक्टर हरिप्रकाश जी ने हिन्दी आन्दोलन की घटनाओं तथा उस से पंजाब में हुई अवस्था पर विस्तृत प्रकाश डाला।

कृषि महाविद्यालय के नवीन छात्रावास का उद्घाटन

शनिवार २१ सितम्बर को सायं साढ़े चार बजे गुरुकुलीय कृषि महाविद्यालय के नवीन राजेन्द्रप्रसाद छात्रावास का उद्घाटन बड़े समारोह पूर्वक गुरुकुल के मान्य मुख्याधिष्ठाता और कुलपति श्री पंडित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

प्रारम्भ में श्री पण्डित प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति आचार्य गुरुकुल, वेदोपाध्याय श्री पंडित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड और श्री पंडित धर्मपाल जी विद्यालङ्कार ने यज्ञ कराया जिस के पश्चात् मान्य कुलपति जी ने एक संक्षिप्त किन्तु अत्यन्त मर्मस्पर्शी भाषण देते हुए छात्रों को उपदेश दिया कि प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ और अन्त में परमेश्वर का स्मरण अवश्य करना चाहिये क्योंकि भगवान् की सहायता के बिना कोई कार्य पूर्ण नहीं होता। प्रारम्भ में भगवान् का स्मरण करने से बल मिलता है। अन्त में भी उसका स्मरण करने और उसे धन्यवाद देने से मनुष्य में अहङ्कार उत्पन्न नहीं होता। उस परमेश्वर से सुबुद्धि की भी प्रार्थना करनी चाहिये। उद्घाटन समारोह के प्रारम्भ में जो यज्ञ किया गया था उस का निर्देश करते हुए मान्य कुलपति जी ने कहा कि हवन यज्ञ में स्तुति प्रार्थना उपासना सब सम्मिलित हैं। इस के द्वारा जहां हम जलवायु को शुद्ध करते हैं वहां भगवान् की स्तुति करते हुए उस से सद्बुद्धि आदि के लिये प्रार्थना भी करते हैं। प्रतिदिन सब को श्रद्धापूर्वक सन्ध्या और हवन का अनुष्ठान करना चाहिये। इससे आस्तिकता का विकास होता है। इत्यादि

कृषि महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री देवकी-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नन्द वैष्णव जी ने जल की जो व्यवस्था छात्रावास में की गई है उस का निर्देश करते हुए यह शुभ-कामना प्रकट की कि जल का पान करने वाले सब स्वस्थ हों और उन के द्वारा समाज तथा राष्ट्र का कल्याण हो। शान्ति पाठ और प्रसाद वितरण के पश्चात् उद्घाटनविधि की कार्यवाही समाप्त हुई।

इस यज्ञादि समारोह का आयोजन कृषि महाविद्यालय के उत्साही कार्यकर्ता श्री सत्यपाल जी गुप्त स. वि. अ. ने किया था जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। —प्रशान्तकुमार

८ आश्विन

★

गुरुकुल पत्रिका का अयाचित अभिनन्दन

गुरुकुल पत्रिका के प्रेमी ग्राहक महानुभावों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि पत्रिका के सम्पादक श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (भूतपूर्व सम्पादक 'सार्वदेशिक' देहली) जिस तत्परता, योग्यता और परिश्रम से पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं उसका सुशिक्षित महानुभावों की ओर से बड़ा अभिनन्दन किया जा रहा है। आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध कवि और 'आर्य-मित्र' के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक कविरत्न श्री पं० हरिशङ्कर जी शर्मा ने अपने ता० १२—९—५७ के पत्र में सम्पादक जी को लिखा है 'गुरुकुल-पत्रिका' के अङ्क भी मिल रहे हैं। सम्पादन बड़ी योग्यता से किया जा रहा है। आकार-प्रकार बाह्यदृष्टि से भी बहुत सुन्दर है।"

मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध शिक्षा वैज्ञानिक श्री शम्सुद्दीन बी. ए. बी. टी. एम. ई. डी. ने (जिन का उत्तम लेख पाठकों ने 'भाद्रपद' अङ्क में पढ़ा होगा) डोंगरगांव से ३—९—५७ के पत्र में सम्पादक जी को लिखा है कि 'Really you have edited it excellently' अर्थात् वास्तव में आपने आदर्श रूप में सम्पादन किया है। उन्होंने प्रतिमास शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर पर लेख भेजने की इच्छा भी प्रकट की है तथा दो और उपयोगी लेख प्रकाशनार्थ भेज हैं। अन्य भी सुयोग्य विद्वानों और कवियों द्वारा पत्रिका के अभिनन्दन और सहयोग के पत्र प्राप्त हो रहे हैं। ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि अपने मित्रों को अधिक संख्या में ग्राहक बना कर अपने कर्तव्य का पालन करें तथा पत्रिका को अधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने निर्देश दे कर अनुगृहीत करें जिन का हम स्वागत करेंगे।

निवेदक—

महेश प्रसाद

प्रबन्धक—'गुरुकुल-पत्रिका,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, (हरिद्वार)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर, सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)३२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरक्ष ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुनःप्याज श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीमःबकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर को नीरोग रखिये ।

वर्षा ऋतु में जठराग्नि मन्द पड़ जाती है । शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता । अनेक रोग प्रबल हो उठते हैं । जब आप जरा सा भी मौसमी विकार अपने शरीर में देखें तो हमारी निम्नलिखित फलप्रद औषधियों का प्रयोग कर के नीरोग हो सकते हैं ।

१. लवण भास्कर चूर्ण

जठराग्नि को तीव्र करने के लिए प्रसिद्ध चूर्ण है । यह भूख लगाता है, अरुचि दूर करके पेट साफ रखता है ।

२. गुरुकुल चाय

इन्फ्ल्यूएञ्जा रोग को दूर करती है, खांसी, नज़ला, जुकाम, ज्वर तथा सुस्ती को दूर कर के स्फूर्ति लाती है ।

३. मलेरिया वटी

मलेरिया ज्वर को शीघ्र आराम करने के लिये इस का प्रयोग कीजिये ।

४. रक्त शोधक

रक्त विकार और त्वचा सम्बन्धी रोगों पर अनुभूत है । फोड़े, फुन्सी, खाज, खुजली दूर करता है ।

५. दाद का मरहम

दाद, खाज, खुजली आदि अनेक चर्म रोगों पर इस मरहम से शीघ्र आराम पहुंचता है ।

६. जीवनी

हैजे के लिए अपूर्व गुणकारी है । दस्त तथा उल्टी शुरू होते ही इसे देने से रोग जल्द दूर होता है ।

नोट—विस्तृत जानकारी के लिये बड़ा सूचिपत्र मुफ्त मंगायें ।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार ।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

सम्पादक–
श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १० भाद्रपद २०१४ अङ्क १

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पूर्णाङ्क १०९ ★
अगस्त १९५७

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

भगवान् के अनन्त दान

ओं तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य
वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥

ऋ० १. ७. ७ ।

(तुञ्जे तुञ्जे) एक-एक दान पर मैं (वज्रिणः इन्द्रस्य) पाप वर्जक परमेश्वर की (ये उत्तारे स्तोमाः) जो अधिक-अधिक स्तुति करता जाता हूं—उस सब से भी (अस्य सु स्तुतिम्) उस की स्तुति का पार (न विन्धे) नहीं पाता हूं ।

१. तू दाता देता ही जाता,
मैं भिक्षुक लेता ही जाता ।
देने की सीमा न तेरे,
लेने का कुछ अन्त न मेरे ॥

२. प्रभो उऋण कैसे हो पाऊं,
किन दामों से मूल्य चुकाऊं ।
केवल तेरी महिमा गा गा,
कर लेता हूं जी कुछ हलका ॥

३. कितना कब तक चाहे गाऊं,
कभी नहीं जी भर गा पाऊं ।
आंखों से दरिया बह जाता,
रुंधता कण्ठ मूक रह जाता ॥

४. क्या जानूं? बेबस हूं कितना,
फिर भी इसमें रस है इतना ।
आ जा मेरे दिल के राजा,
आंखों में बन ज्योति समा जा ॥

—सत्यकाम विद्यालङ्कार ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वेदों की कुछ पहेलियां—१

श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार वेदोपाध्याय

किसी भी भाषा के साहित्य में प्रहेलिकात्मक वर्णन या पहेलियाँ चमत्कार को उत्पन्न करने वाली मानी जाती हैं। वेद में भी अनेक प्रसंगों में इस प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं। इस लेख में कुछ वर्णन प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

तीन भाई

ऋग्वेद प्रथम मण्डल का १६४ वां सूक्त प्रायः सारा ही पहेलियों का है, जिस में ५२ मन्त्र हैं। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में तीन भाइयों की चर्चा करते हुए कहा गया है—

+अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्य-
अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥

तीन भाई हैं। उन में से ज्येष्ठ भाई बहुत सुन्दर (वाम), सफेद बालों वाला बूढ़ा (पलित) है, जो कि नित्य हवन करता है (होता)। इस का मंझला भाई 'अश्न' अर्थात् बहुत अधिक खाने वाला है। तीसरा भाई 'घृतपृष्ठ' है अर्थात् उस की पीठ पर घी की मालिश की जाती है। इन तीनों में से एक ऐसा है जिस के सात पुत्र हैं, उसे विश्पति भी कहते हैं।

आइए, इस पहेली को हल करने का यत्न करें। यहां वाम, पलित, होता, अश्न, घृतपृष्ठ इन शब्दों में श्लेष है। सब से बड़ा भाई, जिसे सफ़ेद बालों वाला बूढ़ा कहा गया है, सूर्य है। सूर्य 'वाम', 'पलित' और 'होता' है। वाम के तीन अर्थ हैं प्रशंसनीय, सुन्दर और सेवनीय। सूर्य के अन्दर ये तीनों गुण विद्यमान हैं। वह प्रशंसा योग्य भी है, सुन्दर भी है और स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति के लिए सब प्राणियों से सेवन करने योग्य भी है। फिर सूर्य को 'पलित' इस कारण कहा गया है कि वह अपनी चारों ओर बिखरी हुई शुभ्र रश्मियों से सफ़ेद बालों वाले बूढ़े के तुल्य प्रतीत होता है। पालनकर्ता होने के कारण भी सूर्य को पलित कह सकते हैं (पलितस्य पालयितुः। निरुक्त ४. २६)। फिर सूर्य को 'होता' कहा है। होता शब्द हु धातु से बना है, जिस का अर्थ देना, भक्षण करना और ग्रहण करना है (हु दानादनयोः आदाने चेत्येके) सूर्य प्रकाश, ताप स्वास्थ्य आदि देता है; अन्धकार-रोग आदि का भक्षण करता है तथा बादल बनाने के लिए भूमिष्ठ जलों को ग्रहण करता है।

+ **(तस्य अस्य) प्रसिद्ध इस (वामस्य पलितस्य होतुः) वाम, पलित और होता स्वरूप वाले ज्येष्ठ भाई का (मध्यम भ्राता) मंझला भाई (अश्नः अस्ति) अश्न है। (अस्य तृतीयः भ्राता) इस का तीसरा भाई (घृतपृष्ठः अस्ति) घृतपृष्ठ है। (अत्र) इन तीनों में से एक को (विश्पतिं) विश्पति (सप्तपुत्रम्) और सात पुत्रों वाला (अपश्यम्) मैंने देखा है।**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस सूर्य का मंझला भाई (मध्यम भ्राता) 'अश्न' है। यह अश्न मध्यम स्थानीय अग्नि अर्थात् विद्युत् है। विद्युदग्नि अश्न इस कारण हुआ क्योंकि वह बहुत फैलने वाला या वृक्ष-वनस्पति आदि पर गिर कर उन्हें खा जाने वाला है (अशूङ् व्याप्तौ, अशु भोजने)। अथवा मध्यमस्थानीय वायु अश्न है, क्योंकि वह आकाश में सर्वत्र व्याप्त है।

तीसरा भाई घृतपृष्ठ है, घृतपृष्ठ यज्ञाग्नि को कहा गया है, क्योंकि उसके पृष्ठ पर याज्ञिक लोग घृताहुतियां डाला करते हैं, एवं ये तीनों भाई मिल कर सृष्टि को चला रहे हैं। इनमें से एक जिसे सप्तपुत्र कहा गया है वह सूर्य है, क्योंकि उसके लाल, नारंगी, पीले, हरे, नीले, आसमानी, बैंगनी, किरण रूपी सात पुत्र हैं। उसे विश्पति भी कहते हैं, क्योंकि वही मुख्य रूप से प्रजाओं का पालक है। लीजिए पहेली बुझ गई।

इस पहेली का एक दूसरा हल भी है। परमेश्वर, जीव और जगत् ये तीनों भाई हैं। सबसे बड़ा भाई परमेश्वर है। वह वाम अर्थात् सर्वाधिक प्रशंसनीय, सुन्दरतम और सेवनीयतम है; पलित अर्थात् जगत् का पालक है, और होता अर्थात् सुखादि का दाता, दुःखादि का भक्षक तथा सज्जनों को अपनी शरण में ग्रहण करने वाला है। मंझला भाई जीवात्मा है जो कि अश्न अर्थात् कर्मफलों का भोक्ता है (अश्नः भोक्ता, अशु भोजने)। तीसरा भाई यह जगत् है जो कि घृतपृष्ठ है। वैदिक भाषा में घृत का एक अर्थ जल भी होता है। एवं जगत् को घृतपृष्ठ इस कारण कहा कि जल-धाराएं उसके पृष्ठ पर बह रही हैं। इन तीनों भाइयों में से परमेश्वर सप्तपुत्र है, क्योंकि भूः, भुवः, स्वः, प्रभृति सात लोक उसके सात पुत्र हैं। परमेश्वर ही विश्पति अर्थात् सब प्रजाओं का पालक भी है।

एक विशाल कौआ

आइये, अब एक दूसरी पहेली देखें। एक बहुत बड़े कौए का वर्णन सुनिये। इसी सूक्त का अन्तिम मन्त्र है:—

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम्
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं
सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥

ऋग्० १ । १६४ । ५१

वैदिक स्तोता कहता है कि मैं–(अवसे) अपनी रक्षा के लिए (वायसं जोहवीमि) कौए को पुकारता हूं। वह कौआ (दिव्यम्) द्युलोक में वास करने वाला है, (सुपर्णम्) सुन्दर पंखों वाला है, (बृहन्तम्) बहुत बड़ा है, (अपांगर्भम्) जल को ग्रहण करने वाला अर्थात् खूब पानी पीने वाला है, (दर्शतम् ओषधीनाम्) ओषधियों का दर्शन कराने वाला है, (अभीपतो वृष्टिभिः तर्पयन्तम्) चारों ओर के जगत् को वर्षा से तृप्त करने वाला है, (सरस्वन्तम्) अपार जलों वाला है।

क्या आप समझे यह कौआ कौन सा है ? यह कौआ सूर्य है। उपर्युक्त सब वर्णन सूर्य में घट जाता है। सूर्य द्युलोक में वास करता है, किरण रूपी सुन्दर पंखों वाला है, समुद्रों का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पानी पीने वाला है, जगत् को वर्षा से तृप्त करने वाला और ओषधियों को उगाने वाला है, और बहुत बड़ा है—इतना बड़ा कि वैज्ञानिकों के अनुसार आठ लाख छियासठ हजार मील लम्बा इसका व्यास है। यह कौआ पर्जन्य भी हो सकता है, क्योंकि पर्जन्य भी आकाश में निवास करने वाला (दिव्य) है, वायु रूपी पंखों से उड़ने वाला, भूमि का पानी पीने वाला वर्षा करने वाला और बहुत बड़ा होता है।

औंधा बर्तन

अब अथर्ववेद के एक अद्भुत पात्र (वर्तन) का वर्णन सुनिये—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः
तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥

अथर्व० १० । ८ ९

(चमसः) एक पात्र है, (तिर्यग्बिलः) जिसका छिद्र नीचे की ओर है और (ऊर्ध्वबुध्नः) आधार ऊपर की ओर है, अर्थात् वह औंधा किया हुआ है। ऐसे पात्र में तो कोई भी वस्तु रखी नहीं रह सकती, पर तो भी आश्चर्य है कि (तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्) उसके अन्दर सब प्रकार का यश भरा हुआ है। केवल यश ही नहीं, (तद् आसते ऋषयः सप्त साकम्) उसके अन्दर सात ऋषि इकट्ठे होकर बैठे हैं, (ये अस्य गोपा महतो बभूवुः) और वे इस बड़े पात्र की रक्षा कर रहे हैं।

यह भी अद्भुत पहेली है। पहले तो किसी बर्तन के अन्दर ऋषियों का बैठना ही समझ में नहीं आता, फिर वह बर्तन तो औंधे मुंह वाला है। औंधे मुंह वाले बर्तन में बैठे हुए ऋषियों की तो वही अवस्था हो जानी चाहिए जो तांगे के उलटने पर उसमें बैठी हुई सवारियों की होती है।

इस पहेली का भी हल सुनिये। निरुक्तकार ने इसका हल दो प्रकार से सुझाया है। अधि दैवत दृष्टि से यह औंधे मुंह वाला बर्तन सूर्य है। उस सूर्य के अन्दर अनेक प्रकार का यश निहित है, क्योंकि सूर्य की अनेकविध महिमा है अथवा प्रकाश रूपी यश भरा हुआ है। सूर्य के अन्दर बैठे हुए सात ऋषि हैं सात रंगों वाली किरणें। वे ही इस सूर्य की रक्षा कर रही हैं, क्योंकि यदि किरणें न रहें तो सूर्य का सूर्यत्व ही समाप्त हो जाये। अध्यात्म दृष्टि से यह औंधे मुंह वाला बर्तन सिर है, क्योंकि इसका तला अर्थात् खोपड़ी ऊपर की ओर तथा मुखछिद्र नीचे की ओर है। इसमें बैठे हुए सात ऋषि, सात इंद्रियाँ इस सिर की रक्षा कर रही हैं, क्योंकि यदि ये न हों तो सिर किसी से भी टकरा कर फट जाय।

समुद्रशायी गरुड़

अब एक गरुड़ का वर्णन देखिये—

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे ।
तं पाकेन मनसाऽपश्यमन्तितः
तं माता रेढि स उ रेढि मातरम् ॥

ऋग्० । १० । ११४ । ४

(एकः सुपर्णः) एक गरुड़ है, (स समुद्रम् आविवेश) वह समुद्र के अन्दर प्रविष्ट

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुआ हुआ है, और (स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे) वह इस सारे भुवन को देख रहा है या प्रकाशित कर रहा है। (तं पाकेन मनसा अपश्यम् अन्तितः) उसके विषय में समीप होकर परिपक्व मन से मैंने यह बात देखी है कि (तं माता रेढि) उसे एक माता चाट रही है, (स उ रेढि मातरम्) और वह उस माता को चाट रहा है । बताइये यह कौन है ?

इस पहेली के कई हल हो सकते हैं। प्रथम वह सुपर्ण परमात्मा है। विशाल ब्रह्माण्ड समुद्र है, जिसमें वह बैठा है। उसमें बैठा हुआ वह सब लोकलोकान्तरों को देख रहा है, माता प्रकृति है,+ वह प्रकृति उस परमात्मा को चाट रही है अर्थात् उसी पर निर्भर है, और परमात्मा प्रकृति को चाट रहा है अर्थात् उसे अपनी रक्षा में लिये हुए है।

दूसरे, वह सुपर्ण जीवात्मा है। वह शरीर रूपी समुद्र में बैठा हुआ है। वहाँ बैठा हुआ वह संसार को देखता-भालता है और उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करता है। यहां भी माता प्रकृति है; वह जीव प्रकृति माता को चाट रहा है अर्थात् प्राकृतिक फलों का स्वाद ले रहा है और प्रकृति माता उसे चाट रही है अर्थात् उससे स्नेह कर रही है।

+ **यहां माता से अभिप्राय उस सुपर्ण की माता नहीं, किन्तु सामान्य महिला है; जैसे अपनी बोलचाल की भाषा में हम किसी भी महिला को माता कह देते हैं।**

अथवा शरीरधारी जीव की अपनी माता जिसने उसे पैदा किया है वही यहाँ माता समझी जा सकती है। वह माता और पुत्र दोनों एक-दूसरे को चाटते हैं अर्थात् परस्पर स्नेह करते हैं।

तीसरे, सुपर्ण सूर्य है, क्योंकि उसके किरण रूपी सुन्दर पंख हैं। बह द्युलोक रूपी समुद्र में स्थित है। सब ग्रहोपग्रहों को प्रकाशित कर रहा है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता पृथिवी है, वह सूर्य को चाट रही है अर्थात् उसके समीप होकर उसकी परिक्रमा कर रही है, और सूर्य अपनी किरण रूपी जिह्वाओं से पृथिवी को चाट रहा है।

चौथे, सुपर्ण वायु है—क्योंकि वह पक्षी की तरह उड़ने वाला है। वह वायु आकाश रूपी समुद्र में निवास करता है। सब प्राणियों पर कृपादृष्टि रखता है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता वाणी है। वाणी उसे चाट रही है और वह वाणी को चाट रहा है, क्योंकि वाणी अर्थात् शब्द वायु की सहायता से ही स्थानान्तर पर पहुंचता है।

पांचवें, शरीरस्थ प्राण सुपर्ण है, क्योंकि वह श्वासोच्छ्वास रूपी पंखों से उड़ता रहता है। वह हृदय रूपी समुद्र के अन्दर अवस्थित है। सारे शरीर को देखता–भालता और संचालित करता रहता है (इदं विश्वं भुवनं विचष्टे)। माता वाणी है; वह प्राण को चाट रही है और प्राण उसे चाट रहा है, क्योंकि प्राण की सहायता से ही वाणी उच्चरित होती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक पैर से उड़ने वाला हंस

अच्छा, गरुड़ की झांकी लेने के पश्चात् अब एक हंस की भी चर्चा सुनिए ।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेत् नैवाद्य न श्वः स्यात्,
न रात्रिर्नाहः स्यात्, न व्युच्छेत् कदाचन ।।

अथर्व० ११ । ४ । २१

(हंसः) एक हंस है, जो कि मानसरोवर में बैठा हुआ है, (सलिलात् उच्चरन्) जब वह उस मान सरोवर से उड़ने लगता है तब भी (एकं पादं नोत्खिदति) एक पैर को वहां से नहीं हटाता । (यदङ्ग स तमुत्खिदेत्) और हे भाई, यदि वह उस पैर को भी हटा ले तो क्या हो ? (नैव अद्य न श्वः स्यात्) न आज हो, न कल हो, (न रात्री न अहः स्यात्) न रात्रि हो, न दिन हो, (न व्युच्छेत् कदाचन) नहीं कभी उषा खिले । बताइये वह हंस कौन है ?

यह मन्त्र अथर्ववेद के प्राणसूक्त का है । प्राण ही वह हंस है । प्राण क्योंकि निरन्तर चलता रहता है इस कारण उसे हंस कहते हैं– (हन्ति सततं गच्छति इति हंसः । हन् हिंसा-गत्योः) । सलिल या मान सरोवर है दोनों फुफ्फुस (फेफड़े) । श्वास का बाहर निकलना ही उस प्राण रूपी हंस का उड़ना है । वह प्राण रूपी हंस उड़ते हुए एक पैर से तो उड़ जाता है, किन्तु दूसरा पैर वहीं टिकाये रहता है; क्योंकि श्वास के बाहर निकल जाने पर भी प्राण शरीर के अन्दर स्थित रहता है । यदि वह पूर्ण रूप से ही उड़ जाये तब क्या परिणाम हो ? शरीर मर जाये और तब उस मृत शरीर के लिए आज क्या, कल क्या, रात क्या, उषा क्या ? कुछ भी नहीं ।

अथवा इस पहेली का दूसरा हल सूर्य परक भी हो सकता है । हंस सूर्य है, क्योंकि वह अन्धकार-रोगादि का विनाशक है—(हन्ति तमो रोगादिकं वा इति हंसः) । सलिल या मान सरोवर आकाश है । जब सूर्य रूपी हंस आकाश रूपी मान सरोवर से उड़ने अर्थात् अस्त होने लगता है तब भी वह दोनों पैर नहीं उठाता । क्योंकि दोनों पैर उठा लेने का अभिप्राय है आकाश से बिल्कुल ही उड़ जाना । यदि बिल्कुल ही उड़ जाय तब तो अगले दिन भी उदित न हो ।

अस्तु, दिग्दर्शन के रूप में इस लेख में वेदों की कुछ पहेलियां प्रस्तुत की गई हैं जो पाठकों का मनोरंजन करने के साथ-साथ अनेक शिक्षाओं को भी देने वाली हैं ।

देशोन्नति

हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा उसकी उन्नति तन, मन धन से सब जनें मिल कर प्रीति से करें ।

—महर्षि दयानन्द (सत्यार्थ प्रकाश ११ समु०) ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यास मुनि से कौटिल्य तक

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

हमने गत लेखों में ऋग्वेद से लेकर महाभारत के समय तक की भारतीय संस्कृति की प्रगति का सिंहावलोकन किया है, हमने यह भी देखा है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति और विभूति ऊंचाई की पराकाष्ठा तक पहुंच कर सृष्टि नियम के अनुसार खण्ड प्रलय के चक्कर में आ गई।

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"

महाकवि कालिदास का यह वचन ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा सत्य है। 'सब दिन नाहिं बराबर जात' यह मन को सन्तोष देने का नुस्खा ही नहीं है, सत्य भी है। मनुष्य अथवा राष्ट्र सद्‌गुणों से बलवान् और शक्ति-सम्पन्न होता है, शक्ति-सम्पन्न हो कर वह दूसरों पर हावी हो जाता है। हावी होने से उसके मन में अभिमान और अभिमान से अधःपतन होता है, यही मनुष्यों के उत्थान और पतन का सिद्धान्त है, भारतीय राष्ट्र भी आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व इसी सिद्धान्त के वशीभूत होकर खण्ड प्रलय का शिकार हुआ था।

महाभारत संग्राम ने भारतीय राष्ट्र को वहुत निर्बल कर दिया, परन्तु सौभाग्य से उसकी संस्कृति नष्ट नहीं हुई, यदि संस्कृति नष्ट हो जाती तो राष्ट्र का उत्थान किसी अन्य ही रूप में होता, संस्कृति लगभग अक्षुण्ण रूप में बच जाने का यह परिणाम हुआ कि हमारे इतिहास की परम्परा यथापूर्व चलती रही।

परम्परा तो चलती रही, परन्तु जीवन-शक्ति निर्बल हो गई। फलतः महाभारत के पश्चात् कई सदियों तक हम भारतवर्ष को निद्राग्रस्त सा पाते हैं, वह समय कितना था? इस प्रश्न का उत्तर हम पूरे निश्चय के साथ नहीं दे सकते, राष्ट्र २००० वर्ष तक सोया या इससे कुछ न्यूनाधिक, इसका उत्तर इतिहास अभी तक नहीं दे सका। निद्राग्रस्त होने का यह अभिप्राय नहीं कि बीच की सदियों में भारतीय राष्ट्र सर्वथा निष्क्रिय रहा, मस्तिष्क की गति तो जारी ही रही, हम देखेंगे कि उन लगभग २० सदियों में भारतीय संस्कृति ने पर्याप्त उन्नति की, निद्राग्रस्त होने से मेरा यह अभिप्राय है कि उस समय की कोई विशाल ऐतिहासिक घटना हमारे सामने नहीं आती, विशाल ऐतिहासिक घटनाएं संघर्ष से उत्पन्न होती हैं। फिर वह संघर्ष चाहे बाह्य हो या आन्तरिक, या तो राष्ट्र पर किसी बाह्य देश से आक्रमण हो अथवा राष्ट्र किसी अन्य देश पर आक्रमण करे। विख्यात ऐतिहासिक घटनाओं का यह पहिला कारण होता है, दूसरा कारण आन्तरिक भी हो सकता है, राष्ट्र के अन्दर ही ऐसी बड़ी उथल पुथल हो कि जिससे इतिहास बन जाय, बाह्य आक्रमण का दृष्टान्त रामायण में है और आन्तरिक उथल पुथल का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाभारत में। यदि रावण लङ्का से पंचवटी आकर सीता जी को न हर ले जाता और महाराज रामचन्द्र समुद्र पार करके लङ्का पर विजय प्राप्त न करते तो रामायण का निर्माण न होता और यदि कौरवों और पांडवों का परस्पर तुमुल संघर्ष न होता तो व्यास मुनि महाभारत की रचना न करते। इतिहास की सब ऐसी घटनाएं, जिनका कविगण या इतिहास लेखक गान करते हैं, संघर्ष का परिणाम होती हैं। प्रतीत होता हैं कि महाभारत के पश्चात् लगभग २० सदियों तक भारतवर्ष का न तो बाहर के देशों से कोई संघर्ष हुआ और नहीं देश की सीमाओं के अन्दर ही कोई महान् संघर्ष हुआ। यही कारण है कि उन शताब्दियों के सम्बन्ध में हमें बहुत कम जानकारी है। हमारे सामने से आवरण का पर्दा तब उठता है, जब सिकन्दर विश्वविजय की लालसा से प्रेरित होकर भारतवर्ष पर आक्रमण करता है और भारत के क्षत्रिय तथा नदी नाले उस के सिपाहियों के दांत खट्टे कर देते हैं। उस के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य यवन सेनाओं पर प्रत्याक्रमण करता है। चन्द्रगुप्त विजयी होकर भारत की सीमाओं से आगे तक अपना प्रभाव जमा लेता है। इस संघर्ष ने एक बार फिर भारत के प्रशान्त वातावरण में उथल-पुथल पैदा की, जिससे इतिहास का निर्माण फिर से आरम्भ हुआ।

महाभारत और सिकन्दर के मध्य की सदियों में भारत की जो राजनैतिक प्रगति रही, उस का पूरा-पूरा चित्र हमें नहीं मिलता। पुराणों में उस समय की वंशावलियों का उल्लेख मिलता है। भिन्न-भिन्न पुराणों में नाम और समय के परस्पर विरोध भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त और कई निर्देश अथवा अवशेष नहीं मिलते जिनके आधार पर क्रमबद्ध इतिहास बनाया जाय।

यह तो हुई राजनैतिक और सामाजिक इतिहास की बात। यह विशेष महत्त्वपूर्ण बात है कि उन २० सदियों में भी संस्कृति की परम्परा निरन्तर चलती रही। उस समय की सांस्कृतिक रचनाओं का संक्षिप्त निर्देश हम निम्नलिखित सूची द्वारा कर सकते हैं। उन सदियों में—

१. सूत्र ग्रन्थ, २. दर्शन ग्रन्थ, ३. रामायण और महाभारत के परिवर्द्धित संस्करण, तथा आयुर्वेद, ज्योतिष गन्धर्व विद्या आदि के प्रामाणिक ग्रन्थों का उद्भव और विकास हुआ।

सूत्र ग्रन्थ प्रायः उन्हीं शताब्दियों की उपज हैं। वेदों की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में की गई। यह कार्य महाभारत के बहुत पहले हो चुका था। उन विस्तृत ग्रन्थों को संक्षिप्त करके छात्रों और विद्वानों के लिए सरल बनाने और बीच-बीच के शून्य स्थानों को भरने का कार्य सूत्रकारों ने किया। संस्कृत व्याकरण का उद्भव भी उसी काल में हुआ। प्रातिशाख्य और गृह्य सूत्र अपने अपने विषय के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। वे वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों को स्पष्ट और सरल बनाने के लिए लिखे गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

छः दर्शनों की रचना उन्हीं सदियों में हुई। षड् दर्शन किस क्रम से बने, यह अभी तक निश्चय पूर्वक नहीं जाना जा सका। उनके पौर्वापर्व का निश्चय वस्तुतः बहुत ही मनोरंजक होगा। इसी प्रकार निरुक्त और व्याकरण का क्रम भी जानना अत्यन्त आवश्यक है। पर्याप्त सामग्री न होने से उनके पौर्वापर्य के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती।

यह तो निश्चित ही है कि रामायण और महाभारत के वर्तमान संस्करण मूल संस्करणों से बहुत भिन्न और अत्यन्त परिवर्द्धित हैं। महाभारत में ही लिखा है "चतुर्विंशति साहस्त्रीम् चक्रे भारतसंहिताम्" व्यास मुनि ने भारत संहिता के २४ हज़ार श्लोक बनाये थे। आज महाभारत में उसके चौगुने से भी अधिक श्लोक मिलते हैं। यही दशा रामायण की है। दोनों ही महाकाव्यों को पीछे के कवियों ने अपनी रचनाओं से खूब बढ़ाया है। यहां तक बढ़ाया कि परिशिष्ट में मूलग्रन्थ लुप्त हो गया। रामायण और महाभारत में हजारों उपाख्यान हैं और हज़ारों ही पुनरुक्तियां हैं। जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने वाले दिलचले लोगों ने और प्रतिष्ठा के अभिलाषी कवियों ने बड़ी निर्दयता से दोनों महाकाव्यों पर बल प्रयोग किया, जिससे "नरं कुर्वाणो वानरंचकार" मनुष्य की मूर्ति बनाते २ बन्दर की मूर्ति बना दी। रामायण और महाभारत का असली रूप ही बदल गया। उन्होंने इतिहास का रूप छोड़ कर उपाख्यानों का रूप धारण कर लिया। मेरा विचार है कि इन महाकाव्यों के पहले परिवर्द्धित संस्करण महाभारत के पश्चात् इन बीस सदियों में ही तैयार किये गये।

प्रत्येक चेतन वस्तु का यह नियम है कि वह या तो उन्नति करती है अथवा अवनति की ओर जाने लगती है, बीच में नहीं खड़ी रह सकती, राष्ट्रों के इतिहास पर भी यह नियम लागू होता है, जैसे तालाब में बन्द पड़ा हुआ पानी सड़ जाता है, उसी प्रकार यदि किसी प्रकार की विशेष प्रगति न हो तो राष्ट्र में भी विकार आने लगते हैं, राष्ट्र का धर्म, सामाजिक संगठन और आर्थिक व्यवस्था का यदि समय-समय पर निरीक्षण और प्रक्षालन न होता रहे तो उन पर मैल चढ़ जाता है। बाह्य और आन्तरिक संघर्ष न होने का एक बहुत बड़ा परिणाम यह होता है कि राष्ट्र में बन्द पानी की तरह सड़ांद पैदा हो जाती है, उसकी दशा क्रमशः क्षीण होने लगती है। उन २० शताब्दियों में कोई संघर्ष हुआ ही न होगा यह तो नहीं कह सकते। परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि इतना कोई संघर्ष नहीं हुआ जिसका गान करने के लिए बालमीकि या व्यास जैसे महाकवि जन्म लेते। उन सदियों को यूरोप के इतिहास लेखकों ने ऐतिहासिक काल की गणना में से ही निकाल दिया है। वह तो सर्वथा अज्ञान मूलक है। हां इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि उन सदियों में ऐसी कोई बड़ी राजनैतिक घटना नहीं हुई जिससे उनके मुंह पर से समय का आवरण हट जाता। सांस्कृतिक दृष्टि से उन सदियों का महत्व अन्य किन्हीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सदियों से कम नहीं। भारतीय मस्तिष्क निरंतर चिन्तन और निर्माण का कार्य करता रहा। उन सदियों में तत्त्वज्ञान की जो पद्धतियाँ इस देश के मुनियों ने प्रचलित कीं वह आज तक भी संसार के लिए चमत्कार का कारण बनी हुई हैं। जब यूनान के दार्शनिकों के सामने भारत का तत्त्वज्ञान आविर्भूत हुआ तब उन्हें भारत के फ़िलासफ़रों के सामने सिर झुकाना पड़ा।

सच्ची समानता का स्वप्न

कविवर श्री पं० वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड, हैदराबाद

(१)

हे करुणामय ! मधुर स्वप्न यह क्या न कभी पूरा होगा,
जब अनन्त मानव समाज मिल, आपस में कहता होगा:—।
हैं हम सारे भाई-भाई, एक पिता की हैं सन्तान,
कोई छोटा बड़ा नहीं है, सब के हैं, अधिकार समान ॥

(२)

द्विगुणित होगी शोभा उस दिन, इस सारे भूमण्डल की,
जागेगी मनुष्यता जिस दिन, शक्ति घटेगी पशुबल की।
नाच उठेंगी अखिल दिशाएं, यह विस्तृत नीरव आकाश,
नये रङ्ग में रङ्गित होगा, यह विस्तृत नीरव आकाश ॥

(३)

भेदभाव उत्पन्न न होगा, इन पर्वत सरिताओं से,
हृदय कभी संकीर्ण न होगा, जात पांत के भावों से।
धनी गरीब भूलकर सबका, जब होगा व्यवहार समान,
गूंज उठेगा तब वसुधा पर, पूर्ण अनन्त प्रेम का ज्ञान ॥

(४)

बेहद तारे एक गगन में, जैसे झिलमिल करते हैं,
फूल असंख्य जिस तरह मिलकर, एक भूमि पर खिलते हैं।
इस निस्सीम विश्व में वैसे, ही मनुष्यता फूलेगी,
तरस रही हैं आंखें किस दिन, मधुर दृश्य यह देखेंगी ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन भारत में शिक्षण पद्धति

भगवद्गीता द्वारा उस का निदर्शन

(२)

प्रिंसिपल अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए पी. एच्. डी. देहली

गुरु के रूप में श्री कृष्ण जी ने सम्पूर्ण ज्ञान के एकाधिकार का कोई दावा नहीं किया । उन्होंने चतुर्थ अध्याय (३४-३५ श्लोक) में अर्जुन को यह शिक्षा दी थी कि—

तद् विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

ज्ञानियों से नम्रता, प्रश्न और सेवा द्वारा ज्ञान को प्राप्त कर । तत्त्व ज्ञानी तुझे अवश्य ज्ञान का उपदेश देंगे ।

इस सारी बात की समाप्ति कहां पर होती है अथवा क्या परिणाम निकलता है ? श्री कृष्ण जी (जिन्हें अर्जुन ने अपना आचार्य माना था) से प्राप्त शिक्षा का अर्जुन पर क्या प्रभाव होता है ? हमें इस परिणाम का अनुशीलन करना चाहिए । अर्जुन ने इस सम्वाद का प्रारम्भ करते हुए कहा था कि मैं 'धर्म-सम्मूढ चेताः' अर्थात् धर्म के विषय में मोहयुक्त चित्त वाला अथवा किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया हूं ।

सम्वाद के अन्त में श्री कृष्ण जी अर्जुन से पूछते हैं कि क्या तुम ने मेरे वचनों को एकाग्रचित्त से सुना है ? कच्चिदेच्छ्रुतं पार्थ, त्वयैकाग्रेण चेतसा ?

अनमने भाव से सुनना, जैसे कि आजकल के बहुत से विद्यार्थी अपने उपाध्यायों के व्याख्यानों को सुनते हैं प्राचीन आचार्यों को सन्तुष्ट न करता था ।

श्री कृष्ण जी फिर पूछते हैं—

कच्चिदज्ञान संमोहः, प्रणष्टस्ते धनञ्जय ।।?

क्या तुम्हारा अज्ञान का मोह पूर्णतया नष्ट हो गया है ? अर्जुन का उत्तर विधानात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार का है । वह देखता है कि न केवल उस का अज्ञान नष्ट हो गया है प्रत्युत उस के अन्दर आत्मा के सत्य स्वरूप की स्मृति भी जागृत हो गई है ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा, त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।।

प्रारम्भ में उसने एक प्रश्न किया था और उस के पश्चात् अन्य कई प्रश्न किये थे । उन के विषय में अब क्या हुआ ? अर्जुन कहता है कि 'स्थितोऽस्मि गतसन्देहः । अर्थात् अब मैं सन्देह रहित हो कर यहां उपस्थित हूं ।

यहां तक अर्जुन केवल बौद्धिक सन्तुष्टि की बात कहता है किन्तु यहीं पर समाप्ति नहीं हो जाती । मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से अनेक विषयों में कितने ही सन्तुष्ट हो जाएं तो भी वे प्रायः चुपचाप निष्क्रिय हो कर बैठ जाते हैं । कुछ काम नहीं करते । इस का परिणाम यह होता है कि शिक्षा केवल शास्त्रीय या अव्यावहारिक रह जाती है । वह ऐसी शिक्षा होती है जो पुस्तकों तक ही सीमित हो जाती है । भगवद्गीता में श्री कृष्ण की शिक्षा अर्जुन में केवल बौद्धिक विश्वास ही उत्पन्न नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करती वह उस की इच्छा में भी गति देती है—वह उसे हिला देती है और इस लिये अन्त में वह कहता है 'करिष्ये वचनं तव' मैं आप के आदेशानुसार कार्य करूंगा ।

यह शिक्षा के उस प्रकार का आदर्श है जो प्राचीन भारतीय आचार्य शिष्यों को दिया करते थे । यहां ज्ञान शिष्यों के मन में उत्पन्न जिज्ञासा के उत्तर रूप में प्राप्त होता था । उन प्रश्नों के समाधान द्वारा जो अपनी गम्भीरता और गहनता से गुरु को अपने ज्ञान के सम्पूर्ण कोष को खोल देने को विवश करता था इस में सन्तोष मिलता था । शिष्य गुरु के इस ज्ञान कोष को प्राप्त करता और इसे आत्मसात् कर लेता था । यह उस के अन्दर सम्पूर्णतया समा जाता और उसे बलशाली चरित्र और जीवन प्रभुत्व प्रदान करता था । उस की बुद्धि उस की इच्छा का शासन करती थी और ज्ञानी कर्मयोगी भी बन जाता था । वह उन सूक्ष्म उत्तम गुणों को नहीं खो देता था जो ज्ञानबल से उसे प्राप्त होते थे जिन में जीवन और तत्त्व-ज्ञान की यथार्थ व्यापक दृष्टि का समावेश था ।

बहुत से आधुनिक शिक्षा वैज्ञानिकों ने शिक्षा के विषय में दो बातों पर बल दिया है—(१) शिक्षा केवल वह नहीं जो पाठ पढ़ाया जाता है किन्तु वह जो सीखा जाता है । (२) वास्तविक शिक्षा केवल बौद्धिक स्तर पर ही नहीं रहती किन्तु मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता में समाविष्ट हो जाती है और उस के समस्त जीवन को प्रभावित करती है । प्राचीन भारत में केवल इन दो बातों पर ही बल नहीं दिया जाता था किन्तु इन से भी बड़ी एक बात थी कि शिक्षा केवल बुद्धि को ही प्रभावित नहीं करती । सच्ची शिक्षा मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता को अपने प्रभाव में ले लेती है, ब्रह्मचर्य के द्वारा वह उस की स्वाभाविक जन्म-जात प्रवृत्तियों को उत्कृष्ट और सूक्ष्म बनाती और उस आन्तरिक शक्ति को उत्पन्न करती है जिसे वेदों में मेधा और वर्चस् के नाम से पुकारा गया है । यह शक्ति मन को न केवल भौतिक वा अपरा किन्तु अन्तिम तत्त्व (परा) के ज्ञान के विजय के लिए तय्यार करती है । यह न केवल भौतिक स्तर पर किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर भी श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के लिये मनुष्यों को समर्थ बनाती, उन्हें जीवन की उच्च मान्यताओं से परिचित कराती और न केवल शक्ति और प्रभुत्व किन्तु साथ ही क्षमता तथा शान्ति लाती है । संसार में सच्चे गुरुओं और सच्चे शिष्यों के उच्चतम ज्ञान की प्राह्यर्थ प्रयत्न से अधिक कोई सुख-दायक वस्तु नहीं । जहां श्री कृष्ण जैसा आदर्श गुरु और अर्जुन जैसा आदर्श शिष्य हो वहीं समृद्धि, विजय, आनन्द और भलाई का सदा के लिए निवास होता है ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिः ध्रुवानोतिर्मतिर्मम ॥

ऐसे सुयोग्य गुरु द्वारा ऐसे योग्य शिष्य को प्रदत्तज्ञान मनुष्यों को पवित्र करता और जगत् का उद्धार करता है ।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विद्यार्थी और सदाचार

(२)

श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी शास्त्रार्थ महारथी

मुरादाबाद में मेरे व्याख्यान हो रहे थे। एक व्याख्यान के प्रधान एक सैशन जज बने। उनका एक शिक्षक था। उसके सामने वे व्याख्यान की चर्चा कर रहे थे उन शिक्षक महोदय का एक मित्र भी सुन रहा था। वार्तालाप सुन कर उस मित्र ने कहा कि ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है ? शिक्षक उन्हें मेरे पास ले आया और मुझ से कहा "कि ये हमारे मित्र हैं ये कहते हैं कि ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है ?" मैंने भी उन्हें बढ़ावा दिया और कहा, कि "इस खुदा को पहले दूर कोने में खड़ा कर दो फिर वार्तालाप करेंगे।" इतना बढ़ावा देकर मैंने कहा, "कि आप बाप से उत्पन्न हुए हैं दादा की तो आवश्यकता ही नहीं है।" वह कुछ लज्जित हुआ। मैंने फिर पूछा, "कि आप कुछ मानते भी हैं।" उन्होंने कहा, "हां गान्धी जी को मानता हूं।" मैंने कहा "पूरा मानते हो या अधूरा।" उन्होंने कहा, "पूरा मानता हूं।" मैंने कहा, "गांधी जी तो ईश्वर को मानते थे फिर आप उन्हें पूरा कहां मानते हैं आप उन्हें अधूरा मानते हैं।" मैंने फिर एक और प्रश्न किया कि "आप गांधी जी को क्यों मानते हैं ?" उन्होंने कहा, "वे धर्मात्मा और विद्वान् थे इस लिये।" मैंने कहा, "गांधी जी में यह बातें स्वाभाविक थीं या किसी से सीखीं थीं।" उन्होंने कहा, गुरु से सीखी थीं।" मैंने कहा "उनके गुरु पैदा ही ऐसे हुए थे या उन्होंने भी किसी से सीखी थीं।" उन्होंने कहा, उन्होंने भी सीखी थी।" तो मैंने कहा, सृष्टि के आदि में भी कोई होना चाहिये जिससे उन्होंने सीखीं थीं।" वे कहने लगे हां साहब कोई होना तो चाहिये।" मैंने कहा वही धर्म और विद्या का आदि स्रोत है। उसी का नाम ईश्वर है, यदि आपको ईश्वर अच्छा नहीं लगता तो कोई और नाम रख सकते हैं।" उन्होंने कहा, "जब ईश्वर को स्वीकार ही कर लिया तो नाम बदलने की क्या आवश्यकता है। मैंने कहा, "तो उस कोने में खड़े ईश्वर को अब बुलालूँ ?"

सदाचारी बनने के लिये ईश्वर का मानना आवश्यक है क्यों कि यदि एक व्यक्ति ईश्वर को न माने तो वह विद्वान् हो सकता है परन्तु उसे धर्मात्मा नहीं कह सकते। जो अच्छे मार्ग पर चले और बुरे मार्ग से दूर रहे उसे धर्मात्मा कहते हैं। ईश्वर विश्वासी बालक ही सदाचारी और धर्मात्मा हो सकते हैं। कुत्सित मारयति इति कुमारः अर्थात् जो बुरी बातों का नाश करने वाला हो वह कुमार कहाता है।

अब देखना यह है कि बिगाड कहां से आरम्भ होता है। बिगाड़ घर से आरम्भ होता है। बच्चों में अपने कर्तव्य को भूल जाने का स्वभाव माता-पिता से आता है। बुरा चाल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चलन बाहर की अपेक्षा घर से अधिक आता है। जैसा घर का वातावरण होता है वैसा ही बच्चों का स्वभाव बन जाता है। माता-पिता का यह विचार कि जिस प्रकार वृक्ष और पौदे अपने आप बन जाते हैं इसी प्रकार बच्चे भी अपने आप बनते हैं—बहुत ही भ्रम पूर्ण है। वृक्ष और पौदे ईश्वर के अधीन हैं बच्चे माता-पिता के अधीन होते हैं। उन्हें ठीक प्रकार शिक्षित करने के लिए कभी-कभी ताड़ना भी दी जानी चाहिये। जिस प्रकार कुम्हार थप्पड़ लगा कर मटके को बनाता है इसी प्रकार सुधार की दृष्टि से कुछ ताड़ना की जाये तो बहुत उत्तम है।

बच्चे के निर्माण के लिए ताड़ना आवश्यक है परन्तु आज यदि अध्यापक बच्चे को धमका दे तो विपत्ति आ जाती है। बिना ताड़ना के बच्चे बनते नहीं अतः बच्चे मास्टरों को बनाते हैं। आज अध्यापक घर जाकर यह कहता है कि "प्रभु का धन्यवाद है कि कुशलता पूर्वक घर आ गये।" आज कल बच्चे अध्यापकों के दोष निकालते हैं। परन्तु याद रखो जो गुरुओं का सम्मान नहीं करता उसमें विद्या का अंकुर नहीं उग सकता। अतः सच्चे कुमार बनो।

घर के बातावरण से ही बच्चों में उद्दण्डता आ रही है। जो हर समय यह न करो, यह न करो ही करते रहते हैं वे माता-पिता गलती पर हैं इसी लिए वातावरण बिगड़ता जा रहा है। आज अवस्था क्या है। एक ठाकुर साहिब लड़ने लगे। किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने कहा—"ठाकुर साहिब, किसी बात पर लड़ा करो।" ठाकुर ने कहा, बात पर तो बनिया लड़ते हैं, ठाकुर बिना बात के लड़ते हैं।" आज सब ठाकुर बने हुए हैं।

आर्य कुमारो ! ठाकुरपना छोड़ कर सच्चे कुमार बनो। आज से संकल्प कर लो—

१. गुरुओं का आदर करेंगे। उन का अपमान और निरादर कभी नहीं करेंगे। उन की आज्ञाओं का पालन करेंगे।

२. माता-पिता ने जिस उद्देश्य के लिए स्कूल भेजा है उसे पूरा करेंगे। अपना पाठ प्रतिदिन याद करेंगे। आज उल्टा हो रहा है। आज यदि अध्यापक पाठ पूछता है तो लड़के कहते हैं पहले अध्यापक तो पूछते नहीं थे आप तो पूछते हैं। आप आज यह संकल्प कीजिए कि जो पाठ मिलेगा उसे याद कर के ले जायेंगे।

३. समय पर विद्यालय में जाना और समय पर लौट आना। विद्यालय से अवकाश होते ही सीधे घर आ जाना चाहिए न तो मार्ग में रुको, न व्यर्थ की गप्प बाजी में समय नष्ट करो और न गाली आली आदि दो। क्योंकि यदि पढ़े-लिखे भी गाली देंगे तो बाजार के और पढ़ने वाले लड़कों में क्या अन्तर रहेगा ? कोई असभ्यता सूचक बात और बकवास नहीं करनी चाहिए। नियम पूर्वक चलने वाले बनो।

४. जब अध्यापक पढ़ाने लगे तो अध्यापक की ओर पूरा ध्यान दो। एक-एक बात पर ध्यान दो क्योंकि ध्यान देने से ही ज्ञान उभरेगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञान आप के अन्दर है वेद में कहा है—

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

यजु० ३४. ५ ।

अर्थात् जिस मन में ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेद और उन के अन्तर्गत होने से अथर्व वेद भी ऐसे प्रतिष्ठित हैं जैसे रथ की नाभि में आरे, वह मेरा मन शुभ संकल्प करने वाला हो ।

इस से क्या आया कि ज्ञान मन के अन्दर विद्यमान है । जब अध्यापक मन के ज्ञान को उभार देता है तो मनुष्य ज्ञानवान् बन जाता है परन्तु यह ज्ञान कब उभरता है ? जब ध्यान से सुनें । जब ज्ञान उभर जाता है तो बुद्धि की दासता समाप्त हो जाती है फिर बुरी आदतें छूट जाती हैं । ज्ञान के उभरने पर मनुष्य तुरन्त कह देता है कि अब ऐसा नहीं करूंगा ।

मैं रिक्षा में बैठा हुआ अजमेरी गेट की ओर जा रहा था । रिक्षा वाले ने पूछा, 'एक और बैठा लूं । मैंने कहा 'बैठा लो' बैठने वाला सज्जन सिगरट पी रहा था । मैंने पूछा आपने सिगरट पीना क्यों आरम्भ किया ? उसने कहा 'यूँ हीं' मैंने कहा 'यूं हीं' भी कोई कारण होता है । मैं आप को धक्का दे दूं और कोई पूछे कि आपने धक्का क्यों दिया और मैं कह दूं यूं हीं तो यह कोई बात हुई ? वह सज्जन बिचारे लज्जित हुए और भविष्य के लिए धूम्रपान छोड़ने का वचन दिया । इन सब के कहने का तात्पर्य यह कि आप ध्यानपूर्वक सुनें तो आप के ज्ञान का विकास होगा । बुद्धि तीव्र हो कर बुराइयों की ओर न फंस कर शुभ मार्ग पर चलेगी ।

यह आपके समक्ष कुछ बातें रक्खीं हैं इन के ऊपर आचरण करेंगे तो आप उन्नति के पथ पर आगे बढ़ेंगे । प्रभु आप को शक्ति दे कि आप सच्चे सदाचारी बन सकें ।

।। ओं शम् ।।

—

स्तुति का फल

स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उस के गुणकर्म स्वभाव से अपने गुणकर्म स्वभाव का सुधार होना । इस का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुणकर्म स्वभाव अपने भी करना ।

—महर्षि दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश ७ म समु०) ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षाप्रद कथा

सत्संगति

श्री पं० जगत् कुमार जी शास्त्री देहली

डाकू ने कड़क कर कहा—यदि अपनी जान प्यारी है तो जो कुछ तुम्हारे पास है, यहां रख दो। यात्री ने अपनी गठरी उस के पास रख दी। डाकू उसे उठाने के लिए आगे बढ़ा।

यात्री ने कहा—ज़रा ठहरो। पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो और साथ ही यात्री ने अपना प्रश्न भी कर दिया।

इतना बड़ा साहस तुम किस के लिए करते हो ?

डाकू सोच में पड़ गया।

यात्री फिर बोला—हाँ-हां कहो किस के लिए?

डाकू बोला—अपने परिवार के लिये।

यात्री—क्या तुम्हारा परिवार तुम्हारे संपूर्ण पाप कर्म के लिए भगवान् की न्याय व्यवस्था के अनुसार दण्ड भोगना स्वीकार करता है ? तुमने अपने परिवार से कभी पूछा भी है ?

डाकू—मैं निश्चय से नहीं कह सकता, मैंने कभी पूछा तो नहीं।

यात्री—अच्छा तो आज अभी जाकर पूछ कर आओ। तुम्हारे लौट कर आने तक मैं यहां ही तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। गठरी यहां ही धरी है। चिन्ता किसी बात की न करो। मैं जाऊंगा नहीं। डाकू पुराना डाकू था, बहुत नामी और अपने कार्य में पूर्ण सिद्ध हस्त। परन्तु आज तो इस विचित्र यात्री ने असमंजस में डाल दिया। कठोरता का सहज उपयोग करने में डाकू असमर्थ हो रहा था। यात्री का व्यक्तित्व डाकू पर विशेष प्रभाव डाल रहा था। अपने परिवार वालों से पूछने के लिए उसे जाना ही पड़ा। लौट कर उस ने यात्री को बताया—–मेरे परिवार का तो कोई भी व्यक्ति मेरे दुष्कर्मों का फल भोगने को तैयार नहीं, पत्नी पुत्र कोई भी नहीं।

यात्री—उन्होंने कुछ और भी कहा है ?

डाकू—वे कहते थे तुम स्वयं ही अपने कर्मों के उत्तरदायी हो, हम नहीं।

यात्री ने कहा—ठीक है अब तुम इस गठरी को ले सकते हो। अब मुझे इस गठरी की कोई आवश्यकता नहीं है।

डाकू—आज आपने मेरी आँखें खोल दी हैं और मेरा बहुत उपकार किया है। इस के लिए मैं हृदय से आपका धन्यवाद करता हूं।

डाकू की जीवनधारा पलट गई। जप-तप और ईश्वर-भक्ति में उसका मन लगने लगा। आगे छल कर महर्षि बालमीकि के रूप में संसार ने उस डाकू के दर्शन किये। पाठक समझ ही चुके होंगे कि यात्री के रूप में देवर्षि नारद ने ही डाकू का यह उपकार किया था। —

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत में प्राचीन शिक्षा के केन्द्र

श्री शमशुद्दीन बी० ए० बी० टी० एम० इ०डी० डोंगर गाव मध्यप्रदेश

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन भारत के शिक्षालयों से की जा सकती है। कोई भी विद्यार्थी जो ज्ञानार्जन की तीव्र लालसा प्रकट करता था निराश नहीं होता था। शिक्षक भी जान-बूझ कर किसी भी कला या शास्त्र का ज्ञान अपने विद्यार्थियों से नहीं छिपाते थे। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने अपने सबसे बड़े शत्रु के पुत्र कच को मृतक में जीवन डालने की कला सिखाई। प्रसिद्ध धनुष-विद्या प्रवीण द्रोण ने अपनी कला के सम्बन्ध में जितना भी वे जानते थे, कुछ भी धृष्टद्युम्न से छिपा नहीं रखा यद्यपि वे जानते थे कि उनका यह शिष्य एक दिन उनकी ही इहलीला समाप्त कर देगा। गुरु और शिष्य एक साथ रहते थे। उनमें एक दूसरे के प्रति ममता रहती थी। प्रेम पिता और पुत्र के प्रेम के सदृश ही रहता था। शिक्षार्थी गुरु के ही घर जिसे 'गुरुकुल' कहते थे, रहते थे।

गुरुकुलीय जीवन

गुरुकुल में विद्यार्थियों को सभी आरामों का परित्याग करना पड़ता था। रात्रि को गुरु के सो जाने के पश्चात् वह बिस्तर पर जाता था और प्रातःकाल गुरु के उठने से पूर्व ही उठ जाता था। वह घर के सारे कार्यों में गुरु की मदद करता था। गुरुकुल का जीवन अनुशासन पूर्ण रहता था। तथा कभी भी कड़ा हो जाता था। जहाँ तक सर्व सर्वसाधारण आवश्यकताओं का सम्बन्ध रहता, गुरु और शिष्य दोनों ही ही संतुष्ट रहते थे। गुरु ऐश आराम से नहीं रहते थे, अतः उन्हें कभी अभाव का जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता था। अनुशासन भंग की समस्या कदाचित् ही उठती थी अतः दंड की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गुरुकुल की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली एक स्वयं निर्मित नियमावली पर आधारित रहती थी। शिष्य कभी भी गुरु से ऊंचा आसन ग्रहण नहीं करता था।

शिक्षा की उदारता

तक्षशिला, नालंदा, सांची, विक्रम-शिला और बनारस के विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा बड़ी उदार थी। छात्रों को निःशुल्क निवास, भोजन तथा वस्त्रों की व्यवस्था रहती थी। अपने गांव की शाला को सहायता व प्रोत्साहन देने के लिए ग्रामीणों में प्रतियोगिता होती थी। सिवाय इसके विवाह, उपनयन, सरीखे सामाजिक कार्यों के समय वे निःसंकोच दान देते थे। शिक्षक न केवल विद्यार्थियों को ज्ञान देते थे वरन् उनकी भलाई व आवश्यकता के लिए गांव वालों से चंदा एकत्रित करते थे। कभी बुरा समय आ जाने पर गुरु राजा के पास भी जाते थे और गुरुकुल की सहायता के लिये याचना करते थे। यदि विद्यार्थी योग्य और ज्ञान-शक्ति का अभिलाषी रहता था तो शिक्षक सदा उसे शिक्षा देने को तैयार रहता था।

इनकी अध्यापन-प्रणाली प्रधानतः मौखिक होती थी। यह मौखिक ही नहीं वरन् व्यक्तिगत भी रहती थी। सुनना, विचार करना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथा अभ्यास करना उनकी प्रणाली की विशेषताएं होती थीं । किताबें बहुत कम थीं और बाद में भी जब लिखने की कला आरम्भ हुई वेद नहीं लिखे गये थे । प्रत्येक बात कण्ठाग्र की जाती थी । उनका विश्वास था कि "यदि ज्ञान पुस्तकों में है तो यह उस धन के समान है जो दूसरों को उधार दिया गया हो ।" एक एक वार में गुरु के पास प्राय: १५ से २० तक छात्र रहते थे तथा प्रतिदिन जो कुछ भी पढ़ाया जाता था, बालक उसे उसी दिन पूर्ण रूप से हृदयंगम कर लेता था । जब तक बालक एक पाठ का पूर्व-ज्ञान प्राप्त न करे तो आगे नहीं पढ़ाया जाता था । पुराने छात्र भी नवीन छात्रों को विद्याध्ययन कराते थे । 'वेलनेफ़ेस्टर प्रणाली', 'मावीटोरियल प्रणाली' थवा 'मदरसा प्रणाली' अंग्रेजों ने इसी देश से ाप्त की । शिक्षक दिन के किसी निश्चित समय में पुराने छात्रों को पढ़ाते थे तथा पुराने छात्र किसी अन्य समय में नये छात्रों को पढ़ाते थे ।

यह संभव हो सकता क्योंकि विद्यार्थियों की संख्या कम होती थी और उनके अध्ययन के विषय भी कम रहते थे । इस प्रकार उन दिनों सेवा प्रथा (अप्रेंटिस शिप) थी ।

नालंदा

नालंदा के सम्बन्ध में हमें चीनी यात्री यॉन च्यांग से जिसने ईसा बाद ६७३ से ६७७ के बीच भारत का दौरा किया, पता चलता है । वह नालंदा में १० वर्ष रहा । उसने पवित्र बौद्ध-धर्म ग्रंथों की नकल की । उसके अनुसार वह स्थान धर्मगंज कहलाता था । विश्वविद्यालय की तीन इमारतें थीं जो क्रमशः रत्नसागर', 'रत्नविध', और 'रत्नरंजक' कहलाती थी । इनमें से बीच वाली इमारत नौ मंजिला थी तथा इसमें पुस्तकालय रखा गया था । सब मिलकर ८ बड़े हाल तथा तीन सौ छोटे कमरे थे । भोजन की व्यवस्था सबके लिए एक सी थी । प्रत्येक प्रांगण में एक कुंआ था । हर एक कमरे में एक या दो छात्र रहते थे । प्रत्येक छात्र के पास एक शिला होती थी जिसे चबूतरा कहते थे । इसी पर वे सोते थे । प्रत्येक कमरे में चिराग तथा पुस्तकें रखने की जगह होती थी। प्रवेश के लिये इनमें बड़ी भीड़ होती थी तथा प्रत्येक दल में से मुश्किल से तीन सफल होते थे । इतने पर भी इसमें दस हजार छात्र होते थे । यह संस्था ईसा बाद की दूसरी शताब्दी से ८ या ९ शताब्दी तक बराबर चलती रही ।

अर्थ व्यवस्था

जमीन के रूप में दिये गये दान पर संस्थाओं का खर्च चलता था । गुप्तवंश के राजाओं ने विश्वविद्यालय को चलाने के लिये २०० गांव दान में दिये थे । चूंकि यह भी बौद्ध-संस्था थी, इसका प्रधान 'मुनि' होता था और शिक्षक 'भिक्खु' होते थे । आश्चर्य की बात तो यह भी थी कि संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य था ।

यहां यह गलत नहीं समझ लेना चाहिए कि संस्थाओं का प्रबन्ध अस्तव्यस्त था । दूर-दूर के देशों जैसे चीन, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, कोरिया, ग्रीस, ईरान, अरब के छात्र यहां

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपनी ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए आते थे वे दस-दस वर्ष से अधिक इन भारतीय विश्वविद्यालयों में रहते थे तथा तर्क-शास्त्र वैद्यक-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, इत्यादि में विशेष योग्यता प्राप्त करते थे । यह निर्विवाद है कि इन विश्वविद्यालयों का स्तर ऊंचा था । तभी आवागमन की सुविधा न होते हुए भी विदेशों से छात्र इनकी ओर आकृष्ट होते थे और विद्याध्ययन के लिए आते थे । इन विद्यापीठों के उच्च स्तर का अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि 'जीवक' सरीखा प्रसिद्ध वैद्य जो राजा-महाराजाओं की दवाई करता था तथा जिसकी फीस की रकम आठ अंकों से कम की नहीं होती थी वैद्यक-शास्त्र में निपुणता प्राप्त करने के लिए सात वर्ष तक तक्षशिला में रहा । इतने लम्बे काल तक रहने के बाद भी जब उसने विद्यालय छोड़ा, उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वैद्यक शास्त्र की पूर्ण ज्ञान प्राप्ति में काफी कसर बाकी है । उन दिनों सैद्धान्तिक शिक्षा का कोई महत्व नहीं था । वैद्य का सैद्धान्तिक ज्ञान उस गधे के सदृश समझा जाता था जिसे अपनी पीठ के बोझे का पारिभाषिक ज्ञान ही रहता है किन्तु उसके गुण की महत्ता का अनुभव नहीं हो पाता ।

व्यावहारिक ज्ञान की महत्ता

औषधि तैयार करने की विद्या के व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक गौर दिया जाता था तथा वैद्य को अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व इसका कानूनी रूप से प्रमाण-पत्र प्राप्त करना पड़ता था । ग्रीक इतिहासकार 'स्ट्रेब' ने प्रमाणित किया है कि भारतीय बड़े निपुण चिकित्सक होते थे तथा सर्पदंश की चिकित्सा में विशेष योग्यता रखते थे । अनुभव-शून्य नये वैद्य बहुत योग्यता प्राप्त अनुभवी व्यक्तियों के अधीन रह कर शल्य-विद्या का अभ्यास करते थे । अंतड़ियों के स्थानांतरण, गहरे फोड़े, मोतिया बिंद, अंत्र-वृद्धि की चीर-फाड़ तथा गर्भाशय से मृतक के निकालने आदि की क्रिया केवल निपुण शल्य चिकित्सक ही कर सकते थे ।

न केवल मनुष्यों वरन् पशुओं को भी पूर्ण वैद्यक सहायता दी जाती थी ।

संसार के इतिहास में प्रथम बार महान् राजा अशोक ने पशु-चिकित्सा की सम्पूर्ण सामग्री के साथ पशु-चिकित्सालय का निर्माण किया । नकुल सहदेव सरीखे महान् पशु-चिकित्सकों का नाम आज भी इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाङ्कित है ।

इसी प्रकार रण-क्षेत्र से घायल सैनिकों के उठाने व ले जाने के लिए, बीमारों को लेजाने वाली गाड़ी (एम्बुलैंस) का भी प्रयोग होता था । 'क्रीमियन युद्ध' के पहले हम यूरोप के इतिहास में भी कहीं इस प्रकार की गाड़ी का संकेत नहीं पाते । यही नहीं बगदाद के खलीफा हारून-अल-रशीद के सख्त बीमार होने पर जब कि अरब के चिकित्सकों ने उनके नीरोग होने की सब आशा छोड दी थी भारत के प्रसिद्ध वैद्य मनक्का व अन्य चिकित्सकों की भी मदद ली गई थी । अच्छे हो जाने पर मनक्का से खलीफा ने प्रार्थना की कि वे उनके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पास ही रह कर आयुर्वेद का अरबी ग्रन्थों में अनुवाद करें। उसने भारतीय महिला वैद्यों को तथा प्रसव कराने वाली दाइयों को बुलाकर अपने डाक्टरी विद्यालयों के लिए किताबें लिखवाने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार भारत के वैद्यों का स्थान बड़ा ऊंचा था किन्तु उन्हें अस्वच्छ समझा जाता था परिणाम यह हुआ कि औषधालयों का स्तर दिन पर दिन गिरता गया।

ईसा युग की आरम्भिक शताब्दियों में तक्षशिला विश्वविद्यालय वैद्यक-शास्त्र के अध्ययन में अपनी उन्नति के चरम शिखर पर था। इसी प्रकार उज्जैन के विद्यापीठ में गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के विशेष योग्यता प्राप्त प्राध्यापक थे तथा उन्होंने एक बड़े 'वेध गृह' की भी स्थापना की थी जहाँ ग्रह, नक्षत्र आदि का निरीक्षण किया जाता था। इसी प्रकार दक्षिण भारत में कांची पुरम् में एक बड़ा शैक्षणिक केन्द्र था।

ब्रह्मचर्य

नालंदा में आजन्म ब्रह्मचर्य रखने के कई उदाहरण पाए जाते हैं। मैगस्थनीज़ ने भी ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनमें ब्राह्मण ४८ वर्ष तक विद्याध्ययन करते पाये जाते हैं। वे तर्क-शास्त्र व्याकरण-शास्त्र व अन्य दार्शनिक विषयों का अध्ययन करते थे जिन्हें आज बड़ा महत्त्व दिया जाता है तथा जो मानवीय विज्ञान में शामिल किए गए हैं।

उन दिनों सबको समान सुविधायें दी जाती थीं। धनी और निर्धन में कोई अन्तर नहीं रखा जाता था। एक राजकुमार और एक गरीब किसान एक ही गुरु के पास एक समान शिक्षा प्राप्त करते थे। द्रोण और द्रुपद का छात्रावास इसका उत्तम उदाहरण है।

सारांश में प्राचीनकाल में शिक्षा निःशुल्क, अनिवार्य, व्यापक, वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक होती थी। विश्वविद्यालयों की सहायतार्थ देशी विदेशी राजाओं द्वारा बहुत सा दान दिया जाता था। इस प्रकार शिक्षा का अन्तिम ध्येय आत्मा की मुक्ति रहता था। कार्य की प्रधानता में उन का विश्वास था। 'स्वयं-कार्य तथा स्वयं नियन्त्रण के द्वारा वे जीवन की मुक्ति प्राप्त करते थे। शिक्षा जीवन के सामान्य सिद्धान्तों से प्रभावित रहती थी।

❀

[यद्यपि इस लेख के लेखक श्री शमसुद्दीन से हमारा कोई वैयक्तिक परिचय नहीं तथापि उन की इच्छानुसार उन के इस लेख को कुछ संक्षिप्त करके हम प्रकाशित कर रहे हैं। उन्होंने प्राचीन शिक्षा प्रणाली के विषय में अच्छा अनुशीलन किया है तथा उसके प्रति उन की आस्था है जिस को उन्होंने परिष्कृत भाषा में प्रकट किया है इसे देख कर हमें प्रसन्नता हुई। —सम्पादक, 'गुरुकुल-पत्रिका।']

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१८५७ की शताब्दी के अवसर पर

(१४ अगस्त १९५७)

राष्ट्र को राष्ट्रपति का सन्देश

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद जी

आज गत १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम की शताब्दी के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ने आ० भा० रेडियो से जो संदेश प्रसारित किया वह इस प्रकार है ।

आज पूरे १०० वर्ष हुए जब जनता के असन्तोष के कारण भारत में एक बहुत बड़ा आंदोलन हुआ था, जिसके फलस्वरूप अंग्रेज़ी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के विरुद्ध भारत भर में विप्लव हुआ । चाहे हम १८५७-५९ के उस आंदोलन को किसी नाम से पुकारें वह एक संयोगिक घटना मात्र नहीं था । भारत के लोगों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन को सहज भाव से कभी स्वीकार नहीं किया ।

कम्पनी राज्य की स्थापना आहिस्ता-आहिस्ता एक प्रकार से अदृश्य रूप से अनायास ही भारतीयों के आपस के झगड़ों के कारण हो गई थी । पर शीघ्र हो उस के दुष्परिणाम लोगों के देखने में आने लगे और जहां देश के एक भूभाग में उस का विस्तार फैलता जा रहा था वहां साथ ही साथ किसी दूसरे भूभाग में उस के विरुद्ध विद्रोह भी बराबर होते रहे । यह कहना कठिन है कि १७५७ से लेकर १८५७ के विद्रोह के समय तक कोई भी समय ऐसा रहा हो जब किसी न किसी प्रकार से और कहीं न कहीं भारतीयों ने कम्पनी राज्य के प्रति अपना विरोध क्रियात्मक रूप से प्रदर्शित न किया हो । इस के कारण भी थे । कम्पनी और उस के कर्मचारियों ने व्यापार अपने हाथ में कर लिया था और देश के व्यापारी या तो उससे वंचित हो गए थे अथवा अंग्रेज़ों के दलाल मात्र रह गये थे । कम्पनी ने ज़मीन के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न भागों में नये-नये कारण बनाकर और सख्ती से माल वसूल करने की प्रथा अपना कर, जिस में कर अदा न करने पर सारी ज़मीन नीलाम कर देने की प्रथा भी शरीक थी, अनेकों को अपनी पुश्तैनी ज़मीन (पैतृक भूमि) से वंचित कर दिया था । नये प्रकार की खर्चीली और श्रम, व्यय और समय साध्य कचहरियों ने जिन में इन्साफ़ (न्याय) मुश्किल से मिल सकता था और कानूनों ने बहुतेरों को तबाह कर डाला था । नए प्रकार के कर लगाये गए थे जो कड़ाई से वसूल किए जाते थे । ईसाई पादरियों ने अपने प्रचार से अनेकों को दुःखी और मर्माहत किया था और इन के कारण तथा कुछ कामों व नये कानूनों जैसे सती-प्रथा को रोक देना, धर्म परिवर्तन करने पर भी पैतृक और कौटुम्बिक सम्पत्ति पर स्वत्व कायम रहना, फौज में नए प्रकार के टोटा दाखिल करना जिनको दांतों से काटना पड़ता था और जिनकी चिकनाई समझा जाता था कि गाय और सूअर की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चरबी के कारण है, इत्यादि के कारण लोगों के हृदयों में यह बात बैठ गई थी कि सब को ईसाई बनाने का ही प्रयत्न हो रहा है । कम्पनी राज्य का ऐसा शासन जिस से देशी रियासतें एक-एक कर के समाप्त होती गईं और उन के भूभागों को कम्पनी राज्य में मिला लिया गया और सब से अधिक खुल्लमखुल्ला धन का अप-हरण और घरेलू धन्धों और कुटीर उद्योगों का विनाश जिस से अमीर और ग़रीब कोई भी न बच सका, इन सब से मिल-मिलाकर एक ऐसी स्थिति उपस्थित हो गई कि असन्तुष्ट लोगों की एक बड़ी संख्या सारे देश में खड़ी हो गई और अनेकों के हृदयों में कम्पनी राज्य समाप्त करने की इच्छा हो गई चाहे यह उन में से अनेकों के निजी स्वार्थ पर ठेस लगने के कारण ही क्यों न हुई हो । दूसरी तरफ़ कम्पनी की शक्ति भी काफ़ी बढ़ गई थी और सम्मिलित और आयो-जित विद्रोह भी असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य जान पड़ता था ।

सन् १८५७ के आन्दोलन की विशेषता

इसीलिए १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और १९वीं शताब्दी के आरम्भ में देश के विभिन्न भागों में ऐसे आन्दोलन होते रहे जिन का उद्देश्य इस शासन को समाप्त करना या इस के विस्तार को रोकना था । यह एक ऐति-हासिक तथ्य है कि १८५७ में होने वाला आन्दोलन विदेशी शासन के विरुद्ध उस समय के सभी आन्दोलनों में अधिक महत्त्वपूर्ण और विस्तृत था । इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लेखकों और इतिहासवेत्ताओं ने इस आन्दोलन को हमारे स्वाधीनता का देशव्यापी युद्ध या आन्दोलन माना है ।

जो विप्लव मेरठ से आरम्भ हुआ और जिस की लपेट में सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश तथा बिहार, बङ्गाल और मध्यप्रदेश तथा पंजाब के कुछ भाग आ गए, उस के विस्तृत घटनाक्रम में न जा कर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि इस के मूल में कम्पनी राज्य की धांधली से कोई असन्तोष था और जिन लोगों ने इस विद्रोह में भाग लिया उन में से अनेकों के हृदयों में देश-भक्ति की भावना थी । इस के अतिरिक्त धर्म पर आक्षेप और तज्जन्य आशंका भी लोगों को इस विप्लव में जुटा देने में सहा-यक हुई ।

१९५७-५९ के आन्दोलन से जहां यह बात निर्विवाद रूप से सामने आती है कि लोगों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना थी, वहां हम यह भी देखते हैं कि इस के परिणामस्वरूप कुछ ऐसे जननायक प्रकाश में आए जिन्हें जनता देश-भक्ति और वीरता का प्रतीक मानने लगी है । तांतिया टोपे, अहमदुल्ला, कुंवरसिंह और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की उन्हीं लोगों में गणना है । १८५७-५९ में जो घटनायें घटीं उन की एक बहुत बड़ी विशेषता हिन्दू और मुसलमानों में एकता की भावना थी । आन्दोलन के समय हमें कहीं भी साम्प्रदायिकता की भावना का परिचय नहीं मिलता । विप्लव के आरम्भ हो जाने के बाद विद्रोही एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समान रूप से आगे बढ़े ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनेकों ऐतिहासिक उलझनों और संदिग्ध घटनाओं के बीच हमें यह बात साफ दिखाई देती है कि विद्रोही एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित हुए थे। आन्दोलन के इस महत्त्वपूर्ण पहलू की अवहेलना नहीं की जा सकती।

हो सकता है कि आज निरपेक्ष भाव से विचार करने पर हम उन कतिपय बातों और घटनाओं को जिनके कारण घोर असन्तोष पैदा हुआ था निर्दोष और निर्विकार समझें। पर प्रश्न यह नहीं है कि आज हमारा विचार १०० वर्षों के बाद उनके सम्बन्ध में क्या है, किन्तु विचारणीय बात यह है कि उनका असर उस समय के लोगों के दिलों पर बहुत बुरा पड़ा था और उनसे लोग आशंकित हुए थे कि उनके धन, सम्पत्ति, स्वाधीनता और धर्म पर धक्का ही नहीं लगा था बल्कि उनको निर्मूल करने के प्रयत्न किये जा रहे थे। इस विप्लव से आज भी हम यह सीख ले सकते हैं कि स्वाधीनता की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिये अमित त्याग अपेक्षित है।

आज के दिन जबकि हम १८५७ के आन्दोलन की शताब्दी मना रहे हैं मैं अपने देशवासियों का अभिनन्दन करता हूं और यह प्रार्थना करता हूं कि हमारा देश सदा इस स्वाधीनता को भोगता रहे जिसे प्राप्त करने के लिये आज से १०० वर्ष पहले प्रयास किया गया था।

(आकाश वाणी देहली के सौजन्य से प्राप्त)।

स्वराज्य का महत्त्व

अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किंतु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है।··कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।'

महर्षि दयानन्द—सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास।

सदाचार

सज्जन पुरुषों को राग-द्वेष, अन्याय, मिथ्या भाषणादि दोषों को छोड कर निर्वैर, परस्पर प्रीति, परोपकार और सज्जनता आदि सद्गुणों को धारण करना चाहिये। यही उत्तम आचार है।

महर्षि दयानन्द स० प्र० समु० १०

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्फ़्लूएन्जा से बचाव

वैद्य श्री रामनाथ जी शर्मा
[प्रबन्ध संचालक, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०]

इन्फ्लुएंजा के लक्षण और प्रभाव

हमारी तात्कालिक आवश्यकता इन्फ्लुएंजा की समस्या पर विचार करना है। आयुर्वेद में इस को वातश्लेष्मज्वर कहा गया है। वातावरण के दूषित एवं विषाक्त हो जाने के कारण यह रोग फैलता है। सब से पहले गले में कुछ सुरसरी सी अवगत होती है और स्वर कुछ भारी हो जाता है। फिर नाक पर प्रभाव पड़ता है। जुकाम हो जाता है। मलेरिया की भांति जाड़ा दे कर अथवा साधारणतः ही ज्वर आ जाता है। कुछ समय बाद ज्वर १०४° तक बढ़ जाता है। प्यास और बेचैनी बढ़ती है। ज्वर चला जाता है किन्तु रोगी रोग के प्रभाव से बहुत अशक्त और रक्तहीन हो जाता है और वह कमजोरी कई दिनों तक बनी रहती है।

इन्फ़्लुएंजा का संक्रामक (फैलाव)

संक्रामक होने के कारण यह रोग शीघ्र और तीव्रगति से फैलता है। रोग के सम्पर्क में आने से—रोगी के छींकने खांसने इत्यादि से विस्तृत विषाणु के वायु के मध्यम द्वारा आस-पास के व्यक्तियों के संक्रमित होने से यह रोग बहुत फैलता है।

बचने के उपाय

रोग होने के पूर्व ही यदि इससे बचने के उपायों की तरफ ध्यान रक्खा जाय तो यह रोग प्रभाव नहीं कर सकता। पूर्व बचाव के कुछ मुख्य उपाय निम्न प्रकार हैं—

१. यह निश्चित है कि किसी रोग का प्रभाव कमजोर मन वाले पर तुरन्त होता है। इसलिए जीवन-मरण को सृष्टि का क्रम समझ कर और ईश्वर की कल्याणकारी शक्ति पर विश्वास रख कर मन को सदैव निडर और साहसी रखिये। विश्वास रखिए कि यह बीमारी बहुत भयङ्कर नहीं है और सावधानी बरतने पर कभी हानिकारक प्रभाव नहीं कर सकती।

२. शरीर को स्वस्थ रखने और रोग प्रतिरोधक शक्ति को स्थायी रखने के लिए संयम और ब्रह्मचर्य का भरपूर पालन कीजिये।

३. भोजन हल्का, सुपाच्य और कम ही कीजिए। भारीपन अवगत होने पर तुरन्त उपवास कीजिए।

४. पेट को हल्का और साफ रखिए। कब्जियत होने पर त्रिफला चूर्ण, पंचसकार चूर्ण या गुलकन्द अथवा अन्य कोई साधारण दवा लेकर मल को साफ कर लीजिए।

५. यह रोग सर्वप्रथम गले में होता है। नाक और गले की झिल्ली प्रदाहयुक्त हो जाती है। इसके लिए दो प्रयोग सर्वोपयोगी हैं एक गरम पानी में थोड़ा नमक डाल कर गरारा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(कुल्ला) करना और दूसरा नाक में सरसों का तेल सूंघना। जिन लोगों को बार-बार सर्दी-जुकाम होता है उन्हें हम कड़वा तेल सुघाने का प्रयोग कराते हैं। बङ्गाल में स्नान के पूर्व सिर में सरसों के तेल की मालिश करने और सूंघने का आम रिवाज़ है। दमा के रोगियों को बार-बार सर्दी-जुकाम होने पर सरसों का तेल सूंघने की आदत डाली जाती है। इन्फ्लुएन्जा में यह प्रयोग नाक एवं गले की झिल्ली को सुरक्षित रखने के लिए बहुत हितकर होगा। नित्य प्रातःकाल उठकर दो बूंद सरसों का तेल सूंघना चाहिए। शुद्ध सरसों के तेल से किसी प्रकार का विकार नहीं होगा जैसा कि टीका आदि लगवाने से प्रायः हो जाता है।

(६) यह रोग आर्द्र वातावरण से अधिक होता है, अतः बरसात में भीगने से बचना चाहिए। ओस पड़ने वाले खुले स्थान में नहीं सोना चाहिए और गीले कपड़े नहीं पहनने चाहिएं।

(७) तुलसी की पत्ती, काली मिर्च, दालचीनी और अदरक की चाय भी इस रोग से बचने में बड़ा काम करती है, ऐसा कुछ प्राचीन वैद्यों का कथन है। इसलिए १०-१५ तुलसी पत्र तथा ५-७ काली मिर्च जरा सा टुकड़ा दालचीनी और अदरक कूटकर पानी में उबाल लें और शक्कर या नमक मिला कर चाय की भांति पीना चाहिए। रोग के फैलने के समय में इस के द्वारा अच्छा बचाव होता है।

(८) रात को अधिक जागने, बाज़ारू मिठाई, गले फल, बासी भोजन खाने और भीड़-भाड़ के स्थानों में जाने से अपने को बचाना चाहिए।

(९) रहने के स्थान को अधिक से अधिक साफ़-सुथरा रखना चाहिए। घर में नित्य नीम के पत्तों और गुग्गुल (गूगर) की धूनी देनी चाहिए। फ्लिट और डी. डी. टी. अथवा मिट्टी तैल छिड़कने से भी संक्रामक कीटाणु मर जाते हैं, परन्तु इनका प्रयोग मंहगा होता है। सर्व साधारण जन वातावरण की शुद्धि के लिए गुग्गुल, राल, नीम की पत्ती, देवदारु इत्यादि के धूप से काम निकाल सकते हैं।

रोग हो जाने पर

उपर्युक्त बचाव के नियमों का भली-भांति पालन करने पर यह निश्चय है कि रोग नहीं होगा। बचाव के नियमों के पालन में असावधानी हो जाने से यदि रोग हो भी जाये तो कदापि उससे घबराना या भयभीत नहीं होना चाहिए। घर के किसी व्यक्ति को यदि रोग हो जावे तो शेष घर वालों का यह परम कर्तव्य है कि वे अपने को तथा पास-पड़ौस वालों को रोग से बचावें और सब प्रकार की सफ़ाई इत्यादि की सावधानी रक्खें। निर्भय हो कर विधिवत् रोगी की परिचर्या करते हुए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) रोग होते ही रोगी को साफ़ और हवादार कमरे में आराम से लेटे रहना चाहिए। बच्चों को रोगी से अलग रखना चाहिए। पीने के लिये गर्म पानी देना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आधा गिलास पानी में एक चुटकी भर नमक डाल कर रोगी को गरारा (कुल्ला) करा देना चाहिये ।

(२) ज्वर की अवस्था में रोगी को अन्न कदापि न दें। एक दो दिन का उपवास संभव हो तो करावें । दूध, चाय, मुसम्मी का रस या मुनक्का खिला कर पानी पिला दें ।

(३) यह बराबर ध्यान रखना घाहिए कि रोगी का गला साफ़ रहे। इस के लिए गले में दवा लगाना और उपर्युक्त प्रकार से बार-बार गरारा करना चाहिए ।

(४) अन्य लोगों को रोग न लगे इसके लिए रोगी के अधिक पास से किसी को बात न करने देना चाहिए। रोगी के थूक या कै को तुरन्त राख या चूना से दबा देना चाहिए । रोगी के कपड़ों को दूसरों से अलग और साफ़ रखना चाहिए।

आयुर्वेदिक दवा

इन्फ्लुएञ्जा में अब तक के अनुभव से आयुर्वेदिक औषधि विशेष लाभकारी सिद्ध हुई है । इसलिए शास्त्रोक्त आयुर्वेदिक औषधि का ही प्रयोग करना चाहिए ।

महालक्ष्मीविलास रस (नारदीय) की एक-एक रत्ती की एक गोली। गोदन्ती हरताल—२ रत्ती के साथ मिलाके चौथाई तोला अदरक का रस मिला कर शहद में लेना चाहिए। यह जवान आदमी के लिए पूरी खुराक है । इस प्रकार की तीन खुराकें सुबह दोपहर, शाम नित्य देनी चाहिए। बच्चों के लिए आयु के अनुसार मात्रा निश्चित करनी चाहिए ।

नारदीय लक्ष्मीविलास रस सुलभ न हो तो संजीवन वटी, कल्पतरु रस, और आनन्द भैरव का प्रयोग किया सकता है। रोगी को अधिक खांसी और जुकाम हो तो मरीचादि वटी, एलादि वटी, खदिरादि वटी, लवङ्गादि वटी, व्यासादि वटी—किसी भी वटी को चूसने के लिए दिया जा सकता है। यदि कफ न निकलता हो और खांसी ज्यादा हो तो चन्द्रामृत लोह को मिश्री के साथ चूसने को देना चाहिये या गुलबनफ्शा काढ़ा पीने को देना चाहिये ।

वैद्यों से निवेदन

इन्फ्लूएञ्जा की इस महामारी के कारण राष्ट्र की अधिकांश जनता संकटग्रस्त है । ऐसी दशा में प्रत्येक वैद्य-हकीम का यह परम कर्तव्य है कि निःस्वार्थ-भाव से जनता की सेवा के लिये कमर कस कर कार्य क्षेत्र में आ जावे। इस महामारी पर विजय उनकी और आयुर्वेद यूनानी की श्रेष्ठ ऐतिहासिक विजय होगी। बिना इस बात की अपेक्षा किए कि सरकार या उस के अधिकारी इस कार्य में हमारा सहयोग लेते हैं या नहीं—मेरा प्रत्येक वैद्य-हकीम से साग्रह निवेदन है कि अपना सारा ज्ञान अनुभव और शक्ति जनता की सेवा में और रोगपीडित जनों की रक्षा में लगा दीजिए। निःस्वार्थ भाव से आप जो सेवा

(शेष २९ पृष्ठ पर देखिये)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

योगिराज श्री कृष्ण के कुछ स्मरणीय वचन

कर्मयोगः—

(१)

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूः, मा ते सङ्गो ऽस्त्वकर्मणि ॥

गीता २ । ४७

तेरा कर्म में ही अधिकार है फलों में कभी नहीं। कर्मफल की इच्छा से तू कार्य में प्रवृत्त न हो और न अकर्म में तेरी आसक्ति हो। निकम्मा बन कर मत बैठा रह।

(२)

योगस्थः कुरु कर्माणि,
सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिध्द्यसिध्द्योः समो भूत्वा,
समत्वं योग उच्यते ॥

गीता २ । ४०

हे अर्जुन ! आसक्ति को त्याग कर तथा सफलता और असफलता में समान बुद्धि वाला हो कर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर। यह समत्वभाव ही योग के नाम से कहा जाता है।

(३)

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभते ऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम्, असक्तः स विशिष्यते ॥

गीता ३ । ७

हे अर्जुन ! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में कर के अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है ॥

(४)

तस्मादसक्तः सततं, कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म, परमाप्नोति पूरुषः ॥

गीता २ । १९

इस लिये तू अनासक्त हुआ हुआ निरन्तर कर्तव्य कर्म का अच्छी प्रकार आचरण कर, क्यों कि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है।

(५)

कर्मणैव हि संसिद्धिम्, आस्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि, संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥

गीता ३ । २०

जनकादि ज्ञानी जन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए है इस लोकसंग्रह (लोकहित-अधर्म से हटाकर लोगों को धर्म मार्ग में प्रवृत्त करना) को देखता हुआ भी तू कर्तव्य कर्म करता जा।

देशोन्नति का उपाय

जब वेदादि सत्यग्रंथों का पठन-पाठन, ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का यथावत् अनुष्ठान और सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है।

महर्षि दयानन्द स० प्र० ११ समु०।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां आनी चाहियें)

आदर्श की ओर

लेखक : आचार्य भद्रसेन जी, प्रकाशक— आदर्श साहित्य निकेतन केसरगंज अजमेर पृष्ठ १३० मूल्य १।)

आचार्य भद्रसेन जी की 'प्रभु भक्त दयानन्द और उन के आध्यात्मिक उपदेश' नामक पुस्तक की समालोचना हमने गुरुकुल-पत्रिका के गत अङ्क में प्रकाशित की थी। उन्हीं की 'आदर्श की ओर' नामक एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक हमें प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में मानव-जीवन, उच्चादर्श, सदाचार, सुविचार आदि अनेकों जीवनोपयोगी विषयों पर बड़ी ओजस्विनी सरल और प्रभावोत्पादिका भाषा में प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक वैसे तो सभी के लिए उपयोगी है पर कुमार कुमारियों और युवक-युवतियों के लिए तो यह मार्ग-दर्शक होने के कारण विशेष रूप से उपादेय है। यदि इस पुस्तक को विद्यालयों में सदाचार की पाठ्य-पुस्तक के रूप में रखा जाये तो छात्र-छात्रायें इस से अत्यधिक लाभ उठा सकती हैं। पुस्तक की छपाई तथा आकार प्रकारादि अत्यन्त आकर्षक हैं। आचार्य भद्रसेन जी आदर्श-साहित्य निकेतन द्वारा जो ऐसे उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित कर के जनता की सेवा कर रहे हैं इस के लिए वे अभिनन्दन के पात्र हैं। हम इस पुस्तक का सर्वत्र अधिकाधिक प्रचार चाहते हैं।

शिक्षण तरङ्गिणी

लेखक तथा प्रकाशक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, एम. ए. आर्य कन्या गुरुकुल राजवाड़ी पोरबन्दर (सौराष्ट्र) मूल्य ५)

अनुसन्धान विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, आर्य जगत् के एक सुप्रसिद्ध मनीषी हैं जो बड़े उत्तम साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। गतवर्ष उन्हें 'वैदिक ज्योति' नामक अनु-सन्धान पूर्ण ग्रन्थ पर सार्वदेशिक सभा की ओर से दयानन्द पुरस्कार निधि का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने शिक्षा विषयक अपने २५ लेखों को संगृहीत किया है जिन में निम्नलिखित तथा अन्य विषयों पर अत्युत्तम प्रकाश डाला गया है। शिक्षा के कुछ ज्ञातव्य विषय, संस्कृत शिक्षा में प्रगति की आवश्यकता, शिक्षा में मनोविज्ञान की स्थिति, हमारे शिक्षक और विद्यार्थियों में अपनी संस्कृति के लिए उच्च भाव हो, शिक्षा पर दर्शन का प्रभाव, शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का प्रकार, उपनिषदों में शिक्षा का रहस्य, संस्कृत के अध्ययनाध्यापन में कुछ नवीनता की आवश्यकता, वर्तमान संस्कृत शिक्षा और वेदों का अध्ययनाध्यापन, विज्ञान क्षेत्र में भारत की अमर देन, प्राचीन कालीन भारत में विमान निर्माण, प्राचीन भारत का समुन्नत नौ विमान निर्माण, भारत का आयु-र्वैदिक विज्ञान इत्यादि। इस विषयसूची से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि यह ग्रन्थ कितना उपयोगी होगा। वस्तुतः सुयोग्य लेखक ने इन तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य विषयों का परिमार्जित भाषा में बड़ा विशद विवेचन किया है। प्रत्येक शिक्षा प्रेमी को इस उत्तम ग्रन्थ से लाभ उठाना चाहिए। हम आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री का इस अत्यन्त उपयोगी उत्तम ग्रन्थ के निर्माण और प्रकाशन पर हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ नान जी भाई कालिदास जी मेहता ने इस प्रशंसनीय ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ उदार आर्थिक सहायता दे कर अभिनन्दनीय कार्य किया है। प्रत्येक शिक्षणालय को इस की प्रति अपने पुस्तकालय में अवश्य ही रखनी चाहिए जिस से सब शिक्षित नर-नारी लाभ उठा सकें। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

—

गुम रसीद पुस्तकों की सूचना

गुरुकुल कांगड़ी (जिला सहारनपुर) पुरुषार्थ निधि रसीद पुस्तक संख्या ६३८, ४४०, ४४५, ४८२ की गुम हो गई हैं।

गुरुकुल प्रेमी दानी तथा अन्य महानुभावों से निवेदन है कि यदि कोई इन रसीदों से धन प्राप्त करता हुआ मिले तो उसे तुरन्त पुलिस के सुपुर्द कर दें और गुरुकुल को सूचित करें।

—धर्मपाल विद्यालङ्कार, स० मुख्याधिष्ठाता,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

❋

इन्फ्लुएंजा से बचाव

(पृष्ठ २६ का शेष)

करेंगे उस के प्रतिफल में जनता का आशीर्वाद आप को परम कीर्ति और सिद्धि प्रदान करेगा।

—

(वैद्यराज श्री पं० धर्मदत्त जी आयुर्वेदाचार्य वैद्य विशारद द्वारा संशोधित। उन के अनुभवानुसार गुरुकुल की चाय इस रोग में विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है।)

—सम्पादक 'गुरुकुल-पत्रिका।'

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन—

यह प्रसन्नता की बात है कि चिर प्रतीक्षा के पश्चात् स्व० श्री बाल गङ्गाधर खेर की अध्यक्षता में केन्द्रिय शासन द्वारा आयोजित राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन (रिपोर्ट) गत १२ अगस्त को लोक सभा में प्रस्तुत किया गया जिस के विशेष उल्लेखनीय अंश निम्न-लिखित हैं।

(१) संविधान में जिस प्रकार के लोक-तन्त्रीय शासन विधान की कल्पना की गई है उस को देखते हुए अंग्रेज़ी भारतीय जनता की आम भाषा नहीं हो सकती। अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा की योजनाएं भारतीय भाषाओं में ही बनाई जा सकती हैं।

(२) स्पष्ट रूप से अखिल भारतीय कार्यों के लिए भाषा माध्यम हिन्दी ही है।

(३) संघ की भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाएं भी देवनागरी लिपि में स्वेच्छा से लिखी जाएं। इस से सब भाषाएं एक-दूसरे के सम्पर्क में आ सकेंगी।

(४) जब भाषा परिवर्तन होगा तब उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्यवाही केवल हिन्दी भाषा में करनी होगी। उच्चतम न्यायालय के फैसलों का अधिकृत पाठ भी हिन्दी में ही प्रकाशित होगा। भाषा परिवर्तन होने पर उच्च न्यायालयों के फैसले, डिग्रियां और आदेश देश भर के लिए एक ही भाषा में होने चाहियें इस के लिए सभी क्षेत्रों में ये हिन्दी में ही होने चाहिएं। जहां तक उच्च न्यायालयों के कानूनी आदेशों, डिग्रियों और अन्य आदेशों का सम्बन्ध है, ये मूल रूप से हिन्दी में होने के अलावा प्रादेशिक भाषाओं में भी होने चाहियें।

(५) परिवर्तन होने के समय देश के सभी कानून हिन्दी में होने चाहिएं। इसलिए राज्यों और संसद् द्वारा बनाये जाने वाले कानूनों की भाषा तथा किसी कानून के अन्तर्गत निकाले गये आदेशों, नियमों आदि की भाषा हिन्दी होनी चाहिए। जनता की सुविधा के लिये इन कानूनों का विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में भी अनुवाद होना चाहिए।

(६) हिन्दी पढ़ाना प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने पर शुरु कर के दसवीं कक्षा तक चालू रखना चाहिये। देश भर के अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा अनिवार्य रूप से हिन्दी में होनी चाहिये। हां यह निर्णय राज्य सरकारों पर छोड़ देना चाहिये कि हिन्दी को कब से अनिवार्य बनाया जाये।

(७) सभी विश्वविद्यालयों को हिन्दी के माध्यम से परीक्षाएं लेने की व्यवस्था करनी चाहिये।

(८) जिन वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा संस्थाओं में देश के विभिन्न भाषा क्षेत्रों के छात्र पढ़ते हैं, उन की शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना चाहिये।

(९) आवश्यक सूचना देने के बाद अखिल भारतीय सेवाओं के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का माध्यम, अंग्रेज़ी के अतिरिक्त वैकल्पिक रूप से हिन्दी भी कर देना चाहिये।

(१०) संघ सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों के प्रकाशनों में अङ्कों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग भी किया जाना चाहिए। इत्यादि

राष्ट्रभाषा आयोग के इन प्रस्तावों को हमने भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय से प्राप्त विज्ञप्ति के अनुसार उन्हीं शब्दों में प्रकाशित किया है। हम इन प्रस्तावों का जो २० में से केवल दो सदस्यों की असहमति से आयोग ने किये हैं हार्दिक समर्थन करते हैं। यद्यपि आयोग ने यह विचार प्रकट किया है कि 'उस के लिये अभी न तो यह कहना आवश्यक है और न संभव है कि १९६५ तक हिन्दी सामान्यतया अंग्रेज़ी का स्थान ले लेगी। यह उन प्रयत्नों पर निर्भर होगा जो इस बीच में इस के लिए किए जायेंगे' तथापि उस ने प्रतिवेदन के अन्त में स्पष्ट लिखा है कि "भारत की राजभाषा को उस का उचित स्थान मिलना चहिये ताकि वह भारत की एकता में सहायक हो सके। इस में हम ज़ितनी देर करेंगे, उतनी ही हमारी हानि है।"

इसलिये सन् १९६५ तक हिन्दी को अंग्रेज़ी का स्थान सब राज्य कार्यों के लिये अवश्य ले लेना चाहिये इस प्रकार की स्पष्ट घोषणा न होने से राष्ट्रभाषा प्रेमियों को जो कुछ निराशा होनी सम्भव थी उस का इन शब्दों से पर्याप्त समाधान हो सकता है। वस्तुतः आयोग ने जो क्रियात्मक प्रस्ताव रखे हैं, उन को कार्यरूप में परिणत करने पर यह सर्वथा निश्चित है कि सन् १९६५ तक हिन्दी प्रत्येक राजकार्य में प्रयुक्त होने लगेगी और पूर्णरूपेण अंग्रेज़ी का, राजभाषा का स्थान ले सकेगी। अतः केन्द्रिय शासन के गृह मन्त्रालय के राज्य मन्त्री श्री दातार ने १७ अगस्त को लोक सभा में यह जो घोषणा की कि 'सन् १९६५ अथवा उस से पहले भी सन् १९६२ तक केन्द्र का सरकारी कामकाज हिन्दी में आरम्भ किया जा सकेगा।' हम इस का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। अब केन्द्रिय शासन तथा प्रादेशिक शासनों के अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि आयोग के इन प्रस्तावों को शीघ्रातिशीघ्र क्रियात्मक रूप देकर वे उक्त उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सक्रिय सहयोग प्रदान करें। खेद है कि शिक्षामन्त्रालय आदि के एतद्विषयक कार्य की प्रगति सन्तोषजनक नहीं है। हम आयोग के उपर्युक्त प्रस्तावों का जहां हार्दिक अभिनन्दन करते हैं वहां उस की इस बात पर कि 'इस समय संघ के किसी प्रयोजन के लिये अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय।' हम सन्तोष प्रकट नहीं कर सकते क्योंकि हमें भय है कि अंग्रेज़ी को राज-भाषा के रूप में रखने के उत्सुक कई अधिकारी इस का दुरुपयोग करेंगे और उस से आयोग के उद्देश्य की पूर्ति में भी बाधा पड़ेगी यद्यपि आयोग को यह इष्ट नहीं है। आयोग के ऊपर उद्धृत प्रस्ताव देश की एकता की वृद्धि में सहायक होंगे इस में हमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं अतः छोटी-मोटी बातों में कुछ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मतभेद होने पर भी हम उस के प्रस्तावों को अभिनन्दनीय समझते हैं। आयोग ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया है कि हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के माध्यमिक स्कूलों के छात्रों को हिन्दी के अतिरिक्त और कई भारतीय भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाय। इस से पंजाब की हिन्दी रक्षा समिति की मांगों को पुष्टि मिलती है यह सार्वदेशिक भाषास्वातन्त्र्य समिति के प्रधान श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त का कथन यथार्थ ही है।

एक लिपिप्रसार आन्दोलन का समर्थन—

हमें इस बात का विशेष हर्ष है कि राजभाषा आयोग ने जहां अन्य उत्तम प्रस्ताव भारत की एकता की दृष्टि से रखे हैं वहां उस ने यह भी कहा है कि "सङ्घ की भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाएं भी देवनागरी लिपि में स्वेच्छा से लिखी जाएं। इससे सब भाषाएं एक दूसरे के सम्पर्क में आ सकेंगी।" इससे एक लिपि प्रसार आन्दोलन को विशेष बल मिलेगा। भारत के परम माननीय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने ७ अगस्त को हैदराबाद में आन्ध्र साहित्य विद्वत्परिषत् का उद्‌घाटन करते हुए पुनः इस विचार को प्रकट किया कि भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषाओं को देवनागरी लिपि को अपना लेना चाहिये इससे उनको सीखना अन्य प्रान्त वासियों के लिये सुगम हो जाएगा। केरल के मुख्य-मन्त्री श्री रामकृष्ण राव जी ने त्रिवेन्द्रम् में १२ अगस्त को इस का समर्थन करते हुए ठीक ही कहा (जैसे कि हमने गत मास की सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था) कि यदि प्रादेशिक भाषा-भाषी देवनागरी लिपि को एक सर्व-सामान्य लिपि के रूप में अपना लें तो भाषा समस्या बहुत कुछ स्वयं हल हो जायेगी और भाषा-विषयक विवादों की प्रायः समाप्ति हो जाएगी। हम इस आंदोलन का अधिकाधिक प्रसार चाहते हैं और सब प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों से इस में सहयोग का अनुरोध करते हैं।

भ्रष्टाचार की शोचनीय वृद्धि—

देश में धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण भ्रष्टाचार की कितनी निन्दनीय वृद्धि हो रही है इस के सैकड़ों उदाहरण सुगमता से दिये जा सकते हैं। अभी ७ अगस्त को उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के अधिवेशन में सरकार के कृषि-मन्त्री श्री हुकमसिंह जी ने खाद्य पदार्थों में मिलावट विषयक प्रश्नों का उत्तर देते हुए यह स्वीकार किया कि 'यदि लोग समझते हों कि उन्हें घी मिल रहा है तो धोखा है, अगर वे समझते हों कि उन्हें शुद्ध सरसों का तेल मिल रहा है तो धोखा है, अगर वे समझते हों कि वे आटा ले कर आटा खाते हैं तो ग़ल्त फ़हमी (भ्रम) में हैं और तो और शुद्ध डालडा उन्हें मिल जाता है यह भी नहीं समझना चाहिये।' यह अवस्था कितनी निन्दनीय है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। श्री हुकमसिंह जी ने इस का जो स्पष्ट चित्रण उपर्युक्त शब्दों में किया वह यथार्थ ही है किंतु इस से किस का सन्तोष हो सकता है? श्री हुकमसिंह जी ने इसी वक्तव्य में कहा है कि 'यह बात नहीं कि मिलावट वालों के विरुद्ध

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हम कार्यवाही नहीं करते पर इस प्रकार मिलावट जा नहीं सकती। जनता की सरकार तब तक इस प्रकार के काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकती जब तक जनता साथ न दे।'

इस में सन्देह नहीं कि जनता को भी इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रबल आंदोलन करके इसे दूर करने में पूर्ण सहयोग देना चाहिये किन्तु मुख्यतया यह सरकार का कर्तव्य है कि वे ऐसे भ्रष्टाचारियों को जो जनता के स्वास्थ्य के साथ इस प्रकार खिलवाड़ कर के अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं अति कठोर दण्ड दें। छोटे-मोटे आर्थिक दण्ड से ऐसी अवस्था में काम नहीं चल सकता। इसके लिए तो मनुस्मृति आदि के प्राचीन विधानानुसार हस्तच्छेदनादि अत्यधिक कठोर दण्ड देने की आवश्यकता है ताकि किसी को ऐसे कुत्सित कर्म करने का फिर साहस न हो।

स्व० देवदास गांधी और गुरुकुल—

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी के सुपुत्र और हिन्दुस्तान टाइम्स के यशस्वी सम्पादक श्री देवदास जी गांधी का गत ३ अगस्त को हृदय गति अवरुद्ध होने से बम्बई में देहावसान हो गया यह जानकर हमें अत्यधिक दुःख हुआ। उन से दो तीन बार मिलने का हमें भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था और हमने उन्हें बड़ा नम्र सज्जन पाया था। श्री काकाकालेलकर जी के पत्र 'मङ्गल प्रभात' में उनके सुपरिचित मित्रों ने लिखा है कि वे उच्च कोटि के प्रतिभाशाली थे। उन का हिन्दी प्रेम अदम्य था। उन की नम्रता की कोई हद न थी। वे क्षोभ से रहित थे। किसी से उन को कभी जोर से बोलते हुए नहीं सुना। धैर्य और क्षमा की तो मानो उन मे कोई सीमा ही नहीं थी। बड़े से बड़े अपराध पर उन्होंने लोगों को क्षमा किया है। इत्यादि

ऐसे गुणी महानुभाव के देहावसान से जो अखिल पत्रकार संघ के प्रधान रह चुके थे तथा जिन का अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से संबन्ध था देश को महती क्षति पहुंची है इस में सन्देह नहीं किन्तु यहां यह बात उल्लेखनीय है (जैसा कि उनके निधन के पश्चात् हिन्दुस्तान टाइम्स आदि में भी प्रकाशित हुआ है) कि उन्होंने गुरुकुल काङ्गड़ी में भी कुछ समय तक श्रद्धेय महात्मा मुन्शीराम जी की छत्र-छाया में रह कर शिक्षा प्राप्त की थी। दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचारार्थ सब से पहले जो उन्होंने अपनी सेवा समर्पित की तथा उन में उपरि-लिखित गुणों का जो विकास हुआ उस में उन की गुरुकुल शिक्षा का विशेष प्रभाव था यह निःसन्दिग्ध है। भाई देवदास जी ने अन्तर्जातीय विवाह करके भी सामाजिक क्रान्ति का सूत्र-पात किया था। हम गुरुकुल वासी उन के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन के शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य देने तथा उन की पवित्रात्मा की सद्गति के लिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

श्रावण मास के बीत जाने पर भी वर्षा अपना पूरा रूप नहीं दिखला रही। तीन चार घण्टे से अधिक वर्षा कभी हुई ही नहीं। यद्यपि प्रातःकाल प्रतिदिन आकाश में घनघोर घटा छाई रहती है, किंतु एक दो घण्टे में सारे बादल फट जाते हैं, और भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणों से उत्पन्न ताप और प्रकाश से दिन को तपा कर एक विचित्र सा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं। आम और जामुन की ऋतु सर्वथा समाप्त हो चुकी है। साधारणतया कुलवासियों का स्वास्थ्य उत्तम है।

साहित्य परिषद्

आज से अनेक वर्ष पूर्व ब्रह्मचारियों की ज्ञान तृप्ति के लिए साहित्य परिषद् नामक सभा का जन्म तथा इसका विकास हुआ था। इसका अध्यक्ष आचार्य और मन्त्री महाविद्यालय का कोई सुयोग्य, सुशील मनोनीत छात्र होता था। विद्यार्थी, उपाध्याय अथवा बाहर का कोई विशिष्ट विद्वान् इसके अधिवेशन में अपना एक निबन्ध पढ़ता था। अन्त में सभासद् उस निबन्ध पर प्रश्न अथवा उत्तम सुझाव प्रस्तुत करते थे। फिर इस प्रकार निबन्ध को संशोधित अथवा परिवर्द्धित कर उसे पुस्तकाकार दिया जाता था। किन्तु दुर्भाग्यवश, समय एवं परिस्थितियों के कुचक्र में फंसने के कारण इसके अधिवेशनों में कुछ शिथिलता की प्रवृत्ति आई और शनैः शनैः यह परिषद् ही सर्वथा लुप्त हो गई।

इस वर्ष पुनः मान्य कुलपति जी ने इसके उत्थान के लिए सुझाव प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि इसके अभाव में छात्र अपनी योग्यता एवं बुद्धि का पूर्ण विकास करने में सर्वथा असमर्थ हैं। परिणाम स्वरूप ३ अगस्त १९५७ शनिवार को श्री पं० सुखदेव जी जी दर्शनवाचस्पति शिक्षाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी की अध्यक्षता में वेदोपाध्याय श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड सम्पादक अं० सं० हि० कोष और "गुरुकुल पत्रिका" का "संस्कृत भाषा सर्व भाषाओं की जननी" इस विषय पर उनके संस्कृत में लिखित गवेषणापूर्ण निबन्ध के आधार पर आर्यभाषा में भाषण हुआ। उस पर छात्रों ने प्रश्न किए तथा श्री प्रो० रामनाथ जी वेदालङ्कार एम० ए० ने भाषण के अन्यतम पहलू पर सुझाव प्रस्तुत किये व्याख्याता के उत्तर के पश्चात् शिक्षाध्यक्ष जी ने अध्यक्षीय भाषण में परिषद् के वास्तविक रूप को प्रकट किया और इस प्रकार शांतिपाठ के बाद इस परिषद् का प्रथम अधिवेशन समाप्त हुआ। भगवदनुकम्पा से परिषद् का शीघ्र ही उत्थान और विकास होगा।

श्रावणी उपाकर्म

१० अगस्त शनिवार को अमृत वाटिका में बनी यज्ञशाला में प्रातः ७ बजे श्रावणी बृहद्यज्ञ सम्पन्न हुआ। इसमें चारों वेदों के कुछ विशिष्ट मन्त्रों का पाठ हुआ। अन्त में श्री पं० सुखदेव जी ने श्रावणी उपाकर्म की प्राचीन परिपाटी पर प्रकाश डालते हुए सभी कुलवासियों को वेदाध्ययन के लिए प्रेरित किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाधीनता दिवस

१५ अगस्त प्रातः काल चार बजे सभी कुलवासियों ने सानन्द सोल्लास सम्पूर्ण श्रद्धानन्द नगरी में प्रभात फेरी की । आठ बजे गुरुकुल कार्यालय के सामने ध्वजारोहण का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया । उस स्थान को झण्डियों तथा वन्दन मालाओं से खूब सजाया गया था । सभी कुलवासी मौन धारण किये उसके चारों ओर हाथ बांधे खड़े थे । पूज्य आचार्य जी ने अपने कर कमलों से राष्ट्रियध्वज को फहरा दिया । सभी ने करतलध्वनि से अपना हर्ष प्रकट किया । और फिर भारत माता की जय के नारों से आकाश गूंज उठा । पूज्य आचार्य जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में राष्ट्रियध्वज का महत्त्व बताया और सभी कुलवासी वहां से रवाना हुए ।

अगले दिन १६ अगस्त १६५७ को प्रातः ८ बजे विद्यालय प्रार्थना भवन में पूज्य आचार्य जी की अध्यक्षता में सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के कारणों तथा परिणामों पर एक सभा हुई ।

कृष्ण जन्माष्टमी

१८ अगस्त १६५७ रविवार को प्रातः ६ बजे विद्यालय भवन में कृष्ण जन्माष्टमी के पुनीत पर्व पर श्री रामनाथ जी वेदालङ्कार एम० ए० उपाध्याय वैदिक साहित्य की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति, श्री भागीरथ जी शास्त्री और श्री ओम्प्रकाश जी वेदालङ्कार एम० ए० प्रभाकर शास्त्री हिंदी उपाध्याय डी० ए० वी० कौलिज अम्बाला ने योगिराज श्री कृष्ण चन्द्र जी के जीवन के अन्यतम पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उनसे छात्रों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया । अन्त में प्रो० श्री रामनाथ जी ने गीता के महत्त्व पर प्रकाश डाला और शांति पाठ के बाद सभा विसर्जित हुई । गुरुकुल आर्य समाज में उस दिन सायं श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की अध्यक्षता में श्री कृष्ण जन्माष्टमी समारोह से मनाई गई ।

संगीत सम्मेलन

२६ जुलाई १६५७ रात्रि ८॥ बजे वेद मन्दिर में श्री धर्मपाल जी विद्यालङ्कार की अध्यक्षता में एक संगीत सम्मेलन का आयोजन हुआ । इसमें मैसूर राज्य के भूतपूर्व आस्थान विद्वान् संगीतज्ञ श्री स्वामी नाद ब्रह्मानन्द जी तथा उनकी शिष्य मण्डली ने विशेष भाग लिया। उस दिन वेद मन्दिर संगीत प्रेमियों से खचाखच भरा हुआ था । यह सब श्री डा० अनन्तानन्द जी की प्रेरणा और ब्र० मधुकर के परिश्रम का परिणाम था । सभी कुलवासियों की ओर से उन्हें धन्यवाद दिया जाता है ।

बन महोत्सव

२ अगस्त १६५७ को ११ बजे सहारनपुर के जिलाधीश महोदय श्री नरेन्द्रसिंह जी सिरोही, अतिरिक्त जिलाधीश श्री देवेशचन्द्र जी दुबे तथा अन्य महानुभावों के साथ गुरुकुल पुरी में पधारे । श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति, श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार सहायक मुख्याधिष्ठाता तथा कृषि विद्यालय के आचार्य श्री वैष्णव जी ने उनका स्वागत किया । वृक्षारोपण का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रारम्भ श्री जिलाधीश जी ने अपने कर कमलों द्वारा किया।

यह कार्य समारोह पूर्वक समाप्त हुआ।

५-४-२०१४ —प्रशान्तकुमार।

—

कृपालु ग्राहकों से निवेदन

गुरुकुल पत्रिका के कृपालु ग्राहकों ने इस बात को स्वयम् अनुभव किया होगा कि गत श्रावण मास से गुरुकुल पत्रिका को सब प्रकार से उपयुक्त और नियमित बनाने के लिये विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। 'सम्पादकीय' के अतिरिक्त जो प्रत्येक उत्कृष्ट कोटि की पत्रिका का आवश्यक अङ्ग होता है, सदाचार निर्माणस्तभ, छात्र जगत्, आरोग्यस्तम्भ तथा शिक्षाप्रद कथा इत्यादि का इस में समावेश किया गया है जिससे यह सब के लिये अधिकाधिक उपयोगी और लाभप्रद हो सके। आर्थिक दृष्टि से इसे स्वालम्बी बनाने के लिये ग्राहक महानुभावों का विशेष सहयोग अपेक्षित है। यदि प्रत्येक ग्राहक कम से कम तीन नये मित्रों को प्रेरित कर के इस का ग्राहक बना ले तो 'गुरुकुल-पत्रिका' के परिवार में अनायास अच्छी वृद्धि हो सकती है। जहां विद्वान् लेखकों और कवियों से हमारा निवेदन है कि वे अपनी उत्तम रचनाएं श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड सम्पादक गुरुकुल-पत्रिका गुरुकुल कांगड़ी के पते पर भेजने की कृपा किया करें, वहां आप से प्रार्थना है कि उपर्युक्त रूप में सहयोग दे कर हमें अनुगृहीत करें जिस से अधिक से अधिक लोग इस से लाभ उठा सकें। जो इस कार्य में विशेष सक्रिय सहयोग देंगे उन के नाम समय-समय पर हम सधन्यवाद प्रकाशित करते रहेंगे।

निवेदक—

महेश प्रसाद चौधरी

प्रबन्धक—'गुरुकुल-पत्रिका'

गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, (हरिद्वार)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरत्न ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुन:प्याज़ श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर को नीरोग रखिये ।

वर्षा ऋतु में जठराग्नि मन्द पड़ जाती है । शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता । अनेक रोग प्रबल हो उठते हैं । जब आप जरा सा भी मौसमी विकार अपने शरीर में देखें तो हमारी निम्नलिखित फलप्रद औषधियों का प्रयोग कर के नीरोग हो सकते हैं ।

१. लवण भास्कर चूर्ण

जठराग्नि को तीव्र करने के लिए प्रसिद्ध चूर्ण है । यह भूख लगाता है, अरुचि दूर करके पेट साफ रखता है ।

२. गुरुकुल चाय

इन्फ्ल्यूएञ्जा रोग को दूर करती है, खांसी, नज़ला, जुकाम, ज्वर तथा सुस्ती को दूर कर के स्फूर्ति लाती है ।

३. मलेरिया वटी

मलेरिया ज्वर को शीघ्र आराम करने के लिये इस का प्रयोग कीजिये ।

४. रक्त शोधक

रक्त विकार और त्वचा सम्बन्धी रोगों पर अनुभूत है । फोड़े, फुन्सी, खाज़, खुजली दूर करता है ।

५. दाद का मरहम

दाद, खाज, खुजली आदि अनेक चर्म रोगों पर इस मरहम से शीघ्र आराम पहुंचता है ।

६. जीवनी

हैजे के लिए अपूर्व गुणकारी है । दस्त तथा उल्टी शुरू होते ही इसे देने से रोग जल्द दूर होता है ।

नोट—विस्तृत जानकारी के लिये बड़ा सूचिपत्र मुफ्त मंगायें ।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार ।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

वर्ष ९ आषाढ़ २०१४ अङ्क ११

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति

श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार

श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

पूर्णाङ्क १०७ ★

जून १९५७

इस अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक

विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति

३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति--८

भारतीय संस्कृति का विकास तथा ह्रास

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

रामायण से महाभारत के समय में तीसरा बड़ा भेद यह दृष्टिगोचर होता है कि जातियों और वर्गों के परस्पर मिश्रण से भारतीय जन-समाज में विविधता उत्पन्न हो गई थी। रामायण-काल में आर्यों और राक्षसों को दो विभिन्न दलों में बांटा हुआ पाते हैं। यद्यपि राक्षस लोग भी प्रायः प्राचीन आर्यों के धर्मच्युत वंशज ही थे, तो भी उनकी एक अलग श्रेणी बन गई थी। वैदिक काल के आर्य और दस्यु अब आर्य और राक्षस इन दो परस्पर विरोधी संकेतों से सूचित किये जाते थे। यह रामायण काल की स्थिति थी। महाभारत काल में हम आर्यों और राक्षसों का विवाह संबन्धों द्वारा परस्पर मिश्रण पाते हैं। ऐसे सम्बन्धों का एक दृष्टान्त घटोत्कच था जो आर्य वंशज भीमसेन और राक्षस वंशज हिडम्बा का पुत्र था, इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त महाभारत में और भी मिलते हैं। उन के अतिरिक्त महाभारत में जिन भिन्न-भिन्न जातियों के नाम मिलते हैं उनका कुछ परिचय निम्नलिखित श्लोक से प्राप्त होता है।

यवनाश्वीन काँबोजा दारुणा म्लेच्छ जातयः,
सकृद्दुहा कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह।
तथैव रमणाश्वीना तथैव दशमालिकाः,
सर्वज्ञाः यवना राजन् शूराश्चैव विशेषतः॥

इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि महाभारत के भीष्म-पर्व के लिखे जाने के समय भारत निवासियों का निम्नलिखित जातियों से सम्पर्क था—यवनाश्वीन, कांबोज, सकृदुह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमणाश्वीन, दशमालिक, सर्वज्ञ, यवन और शूर। यह ठीक है कि महाभारत में कुछ अंश प्रक्षेपक के रूप में पीछे से भी मिलाये जाते रहे। परन्तु जिन जातियों के राजाओं और योद्धाओं ने दोनों ओर से महाभारत में भाग लिया उन पर ध्यान देने से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत के आर्यों के मित्रता और विवाह आदि के सम्बन्ध जाति और देश की सीमाओं का अतिक्रमण करके बहुत अधिक विस्तृत हो गए थे। यही कारण था कि आर्य और अनार्य का स्पष्ट मौलिक भेद महाभारत में दृष्टिगोचर नहीं होता। साथ ही हमें यह भी मानना पड़ता है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाभारत के समय की भारतीय संस्कृति बहुत अधिक समृद्ध और विस्तृत हो गई थी। कर्तव्याकर्तव्य-शास्त्र और तत्वज्ञान के सम्बन्ध में महाभारत में जो विशेषता पाई जाती है, उसका एक मुख्य कारण यह भी था कि अन्य जातियों से आर्य-जाति का सम्पर्क बहुत अधिक बढ़ गया था।

जिस मानसिक विकास की ओर मैंने ऊपर निर्देश किया है उसका दिग्दर्शन करना हो, तो आप महाभारत के भगवद्गीता, वेद और नीति, शान्ति-पर्व आदि ज्ञानात्मक भागों को पढ़ जाइये। उनको पढ़ने से प्रतीत होता है कि रामायणकाल का सारभूत और सरल कर्त्तव्यशास्त्र और तत्वज्ञान फैलता और विकसित होता हुआ बड़े विशाल रूप में आ गया है। अकेली भगवद्गीता ही उस मानसिक विकास को सूचित करने के लिए पर्याप्त है, जो त्रेता युग की समाप्ति के मध्य **में** आर्य जाति में हुआ। शांति-पर्व को पढ़ कर हम उस आश्चर्यजनक राजनीतिक प्रगति का परिचय प्राप्त करते हैं, जो उस समय के आर्यों में हो रही थी। वह प्रगति सर्वतोमुखी थी। शांतिपर्व को पढ़ने से हमारे सामने उस समय की समृद्ध और विस्तृत भारतीय संस्कृति का सुन्दर चित्र खिंच जाता है। वह चित्र रामायण-काल की अपेक्षा बहुत अधिक पेचीदा है, परन्तु साथ ही कई गुणा अधिक विविधतापूर्ण और गहरे रंगों से पूर्ण है। हम उससे महाभारत-कालीन भारतीय राष्ट्र की वास्तविक दशा का पूरा २ अनुमान लगा सकते हैं। विचारों में बारीकी और नफासत आ गई थी। हर चीज़ के बालों की खाल निकाली जाती थी। परन्तु चरित्रों में और कर्मों में बहुत शिथिलता आ गई थी।

राजनीति के क्षेत्र में भी महाभारत का काल रामायण काल की अपेक्षा बहुत अधिक विविधतापूर्ण है। रामायण-काल की राज्य पद्धति सभी प्रदेशों में प्रायः एक सी थी। उसे हम राज्यसत्तात्सक शासन-पद्धति कह सकते हैं। राजा राज्य करता था, आचार्य, पुरोहित और मन्त्री उसे सलाह देते थे और सहायता करते थे। रामायण में अनेक प्रकार की शासन-पद्धतियों के चिन्ह नहीं मिलते। राज्य-प्रणालियों की छानबीन ही रामायण में नहीं की गई, सामान्य रूप से राजाओं के धर्म बतलाये गये हैं। राजा अच्छा हुआ तो राज्य अच्छा, राजा बुरा हुआ तो राज्य बुरा। रामायण की राजनीति का यही सार है। महाभारत की राजनीति ऐसी सरल नहीं है। उस समय हम शासन-पद्धति को कई श्रेणियों में बंटा हुआ पाते हैं। रामायण में केवल राजा थे, महाभारत में सम्राट् नाम के राजाधिराजों का भी वर्णन मिलता है। सभा-पर्व में लिखा है—

गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः।
न च साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट् शब्दो हि कृच्छ्रभाक् ।

अपनी परिमित सीमाओं में राज्य करने वाले राजा तो घर घर में हैं. परन्तु वे सम्राट् पदवी के अधिकारी नहीं। सम्राट् पद का प्राप्त करना बहुत कठिन है। जब पांडवों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ने राजसूय-यज्ञ का संकल्प किया तब सम्राट् की पदवी जरासन्ध को प्राप्त थी। श्रीकृष्ण की सहायता से भीमसेन ने जरासन्ध का वध कर दिया तब सम्राट् की पदवी महाराज युधिष्ठिर को प्राप्त हो गई। राजा और सम्राट् में वही भेद था जो आज 'किंग और एम्परर' में है। रामायण में राजा और सम्राट् का कोई भेद दिखाई नहीं देता।

राजनीतिक क्षेत्र में रामायण-काल से महाभारत-काल में जो दूसरा भेद आ गया था, वह यह था कि जहां रामायण के समय में 'गण' 'रिपब्लिक' की कोई चर्चा नहीं मिलती, वहां महाभारत में उनकी एक से अधिक स्थान पर चर्चा मिलती है। जब अर्जुन उत्तर दिशा के राजाओं को जीतने गया, तो उसने पर्वतों में जाकर गण लोगों पर भी विजय प्राप्त की।

पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः,
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः।

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि पौरव को जीतने के पश्चात् पर्वत में रहने वाले उत्सव संकेत नाम के सात गणों को जीता। गण शब्द से यहां प्रजातन्त्र राज्य का ही बोध होता है। इसमें पहले कुछ इतिहास-लेखक सन्देह करते थे, परन्तु अब प्राचीन संस्कृत साहित्य के गम्भीर अनुशीलन से यह सिद्ध हो गया है कि संघ और गण शब्द प्राचीन काल में प्रजातन्त्र राज्य 'रिपब्लिक' के ही सूचक थे। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह विदित होता है कि गण राज्य भी अनेक प्रकार के होते थे, उनमें से कुछ आयुधोपजीवी कहलाते थे तो कुछ शास्त्रोपजीवी। इस प्रकार हम महाभारतकाल में शासन प्रणालियों में भी बहुत भिन्नता और विविधता पाते हैं।

इस प्रकार रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक जो परिवर्तन हुए उन्हें यदि हम एक नाम देना चाहें तो वह 'विकास' यह नाम ही हो सकता है। आजकल के विज्ञानवाद में सरल से पेचीदा की ओर, और एकता से विविधता की ओर जाने को ही विकास कहते हैं। ऐसा विकास रामायण-काल से आरम्भ होकर महाभारत-काल तक निरन्तर होता रहा। फलतः भारतीय संस्कृति उन युगों में निरन्तर विकसित होती रही।

यूरोप के अर्वाचीन तत्वज्ञान में एक सदी पूर्व विकास और उन्नति ये दोनों पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे। डारविन की एवोल्यूशन की थ्योरी ने जिस विचारधारा को जन्म दिया था उसका यही मूल सिद्धान्त था कि सृष्टि के आरम्भ से अब तक भौतिक जगत् में जो परिवर्तन होते रहे हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य उन्नति है। उस समय के विकासवादी मानते थे कि प्राकृतिक शक्तियाँ अपने रथ पर बिठा कर मनुष्य को निरन्तर उन्नति की दिशा में ले जा रही हैं। अब पश्चिम की वह विचार-धारा बहुत कुछ क्षीण हो गई है। गत १८ वर्षों के इतिहास ने मनुष्य जाति के दिमाग से यह बात निकाल दी है कि प्रकृति का रथ आगे ही आगे चलता जायगा जब तक कि वह अनन्त उन्नति तक न पहुंच जाय। मनुष्य जाति ने बड़े दुःख से अनुभव किया है कि यह प्रकृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रथ यदि अपनी अन्धी चाल से चलता जाय तो मनुष्य जाति को बड़े भयंकर अन्ध कूप में भी गिरा सकता है। विकास और सभ्यता की रेलगाड़ियां गत ३५ वर्षों में दो बार किस्मत की चट्टान से टकरा कर चकनाचूर हो चुकी हैं। इस कारण मुझे यह लिखने में कुछ भी संकोच नहीं कि रामायण काल से महाभारत काल तक भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति में जो विकास हुआ था, वह वस्तुतः मनुष्यता का ह्रास था।

--

जैट विमान चार घंटे में अमरीका के आर पार

अमरीका का प्रथम जेट विमान 'बोइना ७०७ अन्तरिक्ष बिहारी' ने अमरीका की एक किनारे से दूसरे सिरे तक की दूरी को केवल ३ घंटे ४८ मिनट में पार किया। यह दूरी सिएटल वाशिङ्गटन से बाल्टीमोर मेरीलैंन्ड तक २३२७ मील होती है। अर्थात् इसकी औसत चाल प्रति घंटा ६१२ मील हुई।

अमरीका वा अन्य देश की ११ कम्पनियों न १४१ ऐसे अन्तरिक्ष विहारी जहाज़ों के निर्माण का आर्डर दिबा हुआ है। यह उसका प्रथम नमूना है। इसका कुल भार जिसमें १२५६७ पौंड, इन्धन का भार सम्मिलित है १६१५८१ पौंड होता है। इस पर ८० से लेकर ११० यात्री तक बैठाये जा सकते है। इस ऐतिहासक यात्रा में ५२ यात्री सफर कर रहे थे। यह ३१००० फीट की ऊंचाई पर उड़ता रहा। एक समय वायु का अनुकूल झोंका पाकर इसकी चाल ६६८ मील प्रति घंटा के हिसाब से हो गई थी

★

'बोइन्ग ७०७ अन्तरिक्ष विहारी जहाज़' वाल्टीमोर, मेरीलैन्ड के हवाई अड्डे 'फ्रैन्डशिप ऐयरपोर्ट' में ऐतिहासक यात्रा समाप्ति पर अधिकारियों से अभिनन्दन प्राप्त कर रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानने पर प्रबल आक्षेप

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

जो लोग ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानते हैं उन्हें अनेक प्रबल आक्षेपों का सामना करना पड़ेगा जिन का समाधान उन के लिये असंभव है।

अनेक ऐसे मन्त्र हैं जिन के कई-कई यहां तक कि सौ तक ऋषि हैं उदाहरणार्थ—

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ऋ० ९. ६६. १९।

इस एक ही मन्त्र के जो सामवेद सं. ६२७ १४६४, १५१८ में भी आया है—

'शतं वैखानसा ऋषयः'

अर्थात् सौ वानप्रस्थ ऋषि हैं। क्या इस का यह तात्पर्य समझा जाये कि इस २४ अक्षरों के गायत्री छन्द के मन्त्र को सौ ऋषियों ने मिल कर बनाया? ऐसी असङ्गत तथा बेहूदी कल्पना को कौन निष्पक्षपात विद्वान् स्वीकार कर सकता है? यदि यह माना जाए कि सौ या अधिक वानप्रस्थ ऋषियों ने इस मन्त्र का रहस्य जान कर इस का प्रचार किया तो इस में कोई असङ्गत बात नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार—

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ऋ० ९. ११. ५३।

इस सामवेद मं. ६५३ के 'शतं वैखानसा ऋषयः' अर्थात् सौ वानप्रस्थ ऋषि बताये गए हैं। मन्त्रों के कर्ता ऋषियों को मानने वाले क्या यह कहेंगे कि २४ अक्षरों वाले इस मन्त्र को सौ ऋषियों ने मिल कर बनाया? क्या यह सर्वथा असङ्गत और उपहासास्पद कल्पना नहीं है? सौ या अधिक ऋषियों द्वारा मन्त्र-प्रोक्त भावना वा प्रार्थना का प्रचार मानने में कोई आक्षेपयोग्य बात नहीं यह स्पष्ट है।

सर्वानुक्रमणी ९. ६६ तथा आर्षानुक्रमणी ९. १६ के अनुसार इन मन्त्रों के सौ वैखानस ऋषि स्पष्टतया उल्लिखित हैं यथा—

पवस्व शतं वैखानसा अष्टादश्यनुष्टुप्
परास्तिस्र आग्नेयः। सर्वानुक्रमणी ९. ६६।
असिद्धगोत्रास्तु पवस्वसूक्तं,
वैखानसा नाम शतं विदुस्ते।

'वैखानसा नाम शतं विदुस्ते' इन शब्दों से भी यही भाव निकलता है कि सौ वैखानस (वानप्रस्थ ऋषि) इन मन्त्रों को पूर्णतया जानते और उन का विशेष प्रचार करने के कारण इन के ऋषि कहलाते हैं। दो-दो चार-चार ऋषियों वाले मन्त्र तो सैकड़ों हैं अतः हमें उन का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

ऋग्वेद ९. १०७ के 'सप्तर्षयः' सात ऋषि बताये गए हैं। क्या इस छोटे से सूक्त को सात ऋषियों ने मिल कर बनाया?

ऋ. १०. ५१. १। ३, ५, ७, ९ और १०. ५३. १–३, ६–११ के 'देवा ऋषयः' अर्थात् अनेक विद्वान् ऋषि हैं। ऋ. १०. १३६ के जिस में ७ मन्त्र हैं 'मुनयो वातरशनाः' अनेक मुनि ऋषि हैं।

ऋग्वेद ८ मण्डल के ३४ वें सूक्त के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'एन्द्रि याहि हरिभिः' इत्यादि तीन मन्त्रों के 'वसुरोचिषोऽङ्गिरसः सहस्रसंख्याका ऋषयः' अर्थात् यज्ञ से प्रकाशमान प्राणविद्या जानने वाले हज़ार ऋषि हैं। ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानने वालों के अनुसार क्या यह माना जाए कि एक हज़ार ऋषियों ने अनुष्टुप् छन्द के इन तीन मन्त्रों को मिल कर बनाया ? यह कल्पना कितनी असङ्गत और उपहासास्पद है? हज़ारों ऋषियों को किन्हीं वैदिक रहस्यों का प्रकाशक मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार सैंकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिन से इस वाद का स्पष्ट खंडन होता है कि ऋषि मन्त्रों के कर्ता हैं। उन से यही सिद्ध होता है कि ऋषि मन्त्रद्रष्टाओं को ही कहते हैं।

एक दूसरा आक्षेप जो अत्यन्त प्रबल है वह यह है कि एक ही मन्त्र के ऋषि भिन्न-भिन्न वेदों में और उन्हीं वेदों के भिन्न-भिन्न स्थलों में भी पृथक् हैं उदाहरणार्थ—

१. ऋ. ४. ५८. ३ में 'चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

यह मन्त्र आया है जिस का ऋषि वामदेव है। यही मन्त्र यजुर्वेद १७. ९१ में भी पाया जाता है परन्तु उस का ऋषि 'साध्याः' ऐसा लिखा है अर्थात् अनेक साधना करने वाले।

२. शास इत्था महांअस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन॥

यह मन्त्र ऋग्वेद १० १५२. १ में आया है जहां इसका ऋषि 'शासः भरद्वाजः' है। यही मन्त्र अथर्व १. २०. ४ में भी आया है जहाँ इस का ऋषि 'अथर्वा' है।

३. मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कम्।
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्॥

यह मन्त्र ऋ. १०. १६१. १ का है जहाँ इस का ऋषि 'यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः' लिखा है। यही मन्त्र अथर्व ३. ११. १ में भी है और वहाँ उस का ऋषि ब्रह्मा है।

४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

यह सुप्रसिद्ध मन्त्र ऋ. १. १८९. १ में आया है जिस का ऋषि 'अगस्त्य' है। यही जब ४०. १६ में आता है तो इस का ऋषि 'दध्यङ्ङाथर्वण' है।

५. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

यह मन्त्र ऋ. १. ११५. १ में आया है जहां इस का ऋषि 'कुत्स आङ्गिरसः' है। यजु. १३. ४६ में इस का ऋषि साध्याः और प्रजापतिः है। अथर्व. १३. २. ३५ में इस का ऋषि ब्रह्मा है और अ. २०. १०७. १४ में सूर्यः, देवी, कुत्सः इस प्रकार हैं।

६. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।

इस मन्त्र का यजु. ३५. ८ में स्वयंभू ब्रह्म ऋषि है और अथर्व. २. १. २ में वेनः।

७. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

इस सुप्रसिद्ध मन्त्र का जो ऋ. १०. १२१. ५ में आया है ऋषि 'हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः' है और यजु. ३२. ६ में इस का ऋषि स्वयंभु ब्रह्म है ।

८. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ।

इस का ऋषि ऋ. ८. ४४. १ में विरूप आदित्य है और यजु. ३. १ में अग्नि है ।

नील्स बोर

अणुशक्ति के शान्तिमय उपयोग पर दिये जाने वाले पुरस्कार के प्रथम विजेता एक डेन्मार्क के भौतिकी विज्ञान वेत्ता । नील्स बोर डेन्मार्क के अणु विज्ञान के विज्ञ जिन्होंने सं० १९२२ में भौतिकी विज्ञान में नोबल पुरस्कार प्राप्त किया था अब ७५००० डालर के पुरस्कार को प्राप्त करने में सफल हुये हैं । यह पुरस्कार अणुशक्ति के शान्तिमय उपयोग के लिये दिया गया है।

श्री आइज़नहोवर, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रधान ने जैनेवा के अधिवेशन में अपील करने पर इस पुरस्कार की संस्थापना सं. १९५५ में फोर्ड मोटर कम्पनी द्वारा १० लाख डौलर के अनुदान से हुई थी। इसका उद्देश्य अणुशक्ति के शान्तियम उपयोग का विकास करना है। श्री प्रोफेसर बोर की आयु ७१ वर्ष की है। वर्तमान अणु विषयक मान्यताओं के एक जन्मदाताओं में से हैं । अणु की शारीरिक बनावट तथा भौतिकी विज्ञान के क्वान्टम् (अवयव) सिद्धांत के प्रतिपादन पर उनको नोबल पुरस्कार दिया गया था । सं. १९२० से कोपनहेगन (डेन्मार्क) की भौतिकी विज्ञान (सैद्धान्तिक) संस्था के संचालक रहे हैं और इस संस्था की स्थापना में भी उन्हों ने सहायता दी है । द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तराल में प्रथम अणुबौम्ब के निर्माण में उन्होंने सहयोग दिया था जिसका परीक्षण लौस अलामोस न्यू मैक्सिको में दिया गया था । —

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन में भूमिपुनर्वितरण और कृषक-निर्वाण

श्री हर्षदेव मालवीय

सुनयात सेन की सन् १९२४ में मृत्यु के बाद जब कम्युनिस्टों और कोमिंतांग के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया तब माओ कुछ चुनिन्दा लोगों के साथ चीन के दक्षिणी प्रान्त क्यांगसी, क्यांगसू और क्वांगसी में चले गये। वहां उन्होंने विद्रोह का झंडा उठाया और काफी विशाल क्षेत्र में, जिसका क्षेत्रफल सम्भवतः वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार के जितना होगा, उन्होंने सोवियत राज्य की स्थापना की। यह बात लगभग सन् १९२७-२८ की है। माओत्से-तुंग को इस समय जो शक्ति प्राप्त हुई, उसका मूल कारण उनका अग्रगामी भूमि-सुधार था। उन्होंने तब जमींदारी प्रथा को बिला मुआविजे के खत्म किया। धनवान कृषकों की भूमि भी हस्तगत कर ली गयी। मध्यम वर्गीय कृषकों की भी कुछ जमीन ली गयी, और भूमि का पुर्नवितरण कर दिया गया। लगभग सब भूमिहीन लोग भूमि पा गये। वह चीन का प्रथम भूमि-पुर्नवितरण था। परन्तु जैसा कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के आज के अधिकारी लेखक कहते हैं, यह दौर घोर उग्रपंथी था। बड़ी उग्र नीतियां चला कर भले ही सब कम्युनिस्ट पार्टी ने देहाती समाज के निम्नतम वर्ग का समर्थन प्राप्त किया हो, पर उसी के साथ उन्होंने काफी वर्गों को अपना दुश्मन बना लिया और उनका समर्थन प्राप्त न कर सके। उनकी तत्कालीन स्थिति में यह एक बिहित कमजोरी थी। फिर भी बड़ी वीरता के साथ, बड़ी लगन के साथ, बड़े त्याग के साथ वहाँ पर चीनी कम्युनिस्टों ने अपना काम किया, विशाल लाल सेना बनायी और वे अपना क्षेत्र बढ़ाने का प्रयास करने लगे।

पर यह चीज ज्यादा दिन चलनी न थी। च्यांगकाई शेक ने उनको डाकू कह कर उनका नाश करना अपनी कोमिंतांग का प्रथम ध्येय बना लिया। विशाल सेनायें संग्रहीत की गयीं। जर्मनी से और ब्रिटेन तथा जापान से फौजी विशेषज्ञ बुलाये गये। तमाम अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किये गये। विदेशी साम्राज्यवादियों ने खुल कर च्यांगकाई शेक की मदद की और उसके एवज में शंघाई, तिन्सतिन, इत्यादि नगरों मे उन्होंने अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस प्रकार, विदेशी साम्राज्यवादियों से प्राप्त सहायता से बड़ी फौजें इकट्ठी कर च्यांगकाई शेक ने चीन के दक्षिणी प्रांतों में एकत्र कम्युनिस्ट सेनाओं के विरुद्ध तीन-चार विराट फौजें भेजीं। प्रथम तीन या चार आक्रमणों को चीनी कम्युनिस्टों ने पराजित किया और भागती सेनाओं के अस्त्र-शस्त्रों को लेकर अपने को सुसज्जित किया। परन्तु इसके बाद च्यांगकाई शेक ने जो अति प्रबल सेना भेजी तो उसके आगे कम्युनिस्टों के पैर न ठहरे। सन् १९३१-३२ के लगभग उनको वहां से छोड़ कर भागना पड़ा। यहीं पर चीनी कम्युनिस्टों का और महान् माओ का इतिहास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में अपूर्व ८ हजार मील लम्बा महाप्रस्थान होता है। इस महाप्रस्थान में अनेकानेक कष्टों का सामना करते हुए च्यांगकाई शेक की फौजों से मुठभेड़ करते हुए, भूखों मरते हुए, घनघोर जंगलों, विशाल नदियों, अभेद्य पर्वतों को पार कर वे लोग उत्तर पश्चिम चीन के शेन्सी प्रान्त के नगर येनन पहुंचे। और यही येनन चीनी कम्युनिस्टों का नया गढ़ हो गया। यहां पर बमबारी चलती रही, और इन लोगों ने पहाड़ों को खोद कर गुफायें बनायीं और वहीं से शेन्सी प्रदेश के काफी बड़े हिस्से पर अपना आधिपत्य जमा कर रहने लगे। इस प्रान्त में तब एक व्यापक प्रबल किसान आन्दोलन था और इससे कम्युनिस्टों को शेन्सी में बड़ा बल प्राप्त हुआ।

अपने क्षेत्र में माओत्से-तुंग और उनके कम्युनिस्ट साथी अभी ठीक से जम भी न पाये थे कि च्यांगकाई शेक ने उन पर एक और भीषण आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी। इसी तैयारी की देख रेख करने च्यांग शेन्सी प्रान्त की राजधानी सियान नामक नगर पहुंचे, जहाँ से येनन लगभग २५०-३०० मील की दूरी पर है। उस समय च्यांगकाई शेक ने अपनी कोमितांग फौजों का नेतृत्व एक युवक जनरल के हाथों सौंप दिया था, जिसका नाम च्यांग सू-लियांग था। इस च्यांग सू-लियांग के पिता चांग सू-लिन चीन के मंचूरिया प्रदेश के एकाधिकारी शासक थे, बड़े शक्तिमान थे। पर उनके प्रदेश पर सन् १९३१ में जापान ने आक्रमण किया था और उसको अपने कब्जे में कर लिया था और बाद में चांग सू-लिन को धोखा दे कर मरवा डाला था। सन्-१९३१ के बाद सन् १९३२ और ३३ में जापानी फासिस्टशाही ने चीन के मंचूरिया प्रदेश के नीचे स्थित प्रांत जिहोल और चहार पर आक्रमण कर दिया था। उस समय सारे चीन में इस बारे में बड़ी प्रबल भावना थी कि गृह-युद्ध खत्म हो और च्यांगकाई शेक कम्युनिस्टों से लड़ना बन्द करें और कोमितांग और कम्युनिस्ट साथ हो कर चीन को त्रस्त करने वाले जापानी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध करें। नवयुवक जनरल च्यांग सू-लियांग चीनी राष्ट्र की इस भावना से स्वयं भी उद्वेलित था और फिर उसको अपने पिता के हत्यारे जापानी साम्राज्यवादियों से गुस्सा भी था। अतः, उसने सियान आये च्यांगकाई शेक को गिरफ्तार कर लिया और वह चाहता था कि उसको मार डाले। उसका कहना था कि च्यांगकाई शेक के रहते सारा चीन एक होकर जापान के खिलाफ युद्ध नहीं करेगा। उसी समय च्यांग सू-लियांग का चीनी कम्युनिस्ट नेता चौ ऐन-लाई से गुपचुप कुछ सम्बन्ध भी था और कम्युनिस्टों के हस्तक्षेप करने के बाद ही च्यांग सू-लियांग इस बात पर राजी हो गया कि च्याँगकाई शेक को मारा न जाय। चीन के इतिहास में यह सुप्रसिद्ध सियान कांड कहा जाता है और इसके बाद कम्युनिस्ट और कोमितांग मिल कर जापान के विरुद्ध युद्ध करने लगे। उस समय जो समझौता कम्युनिस्टों और कोमितांग के बीच हुआ उसके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फलस्वरूप यह तय हुआ था कि कम्युनिस्ट लोग अब जमींदारी प्रथा का उन्मूलन बन्द कर देंगे, ताकि देश में आन्तरिक संघर्ष न हो और सारा देश एक होकर जापान के विरुद्ध युद्ध करे। पर साथ ही यह भी तय हुआ था कि चीन के गरीब किसानों को राहत देने के लिए लगान में और व्याज में कमी की जायगी।

इस सियान कांड के बाद सारा चीन देश जापानियों के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष में लग गया। चीन के उत्तर-पश्चिम प्रदेश में अधिकांशतः कम्युनिस्ट सेनाएं लड़ती रहीं और साथ ही दक्षिण चीन के फूकियन, आनहुई, चीकियांग, इत्यादि प्रान्तों में भी कम्युनिस्ट गुरिल्ला फौजों ने बड़ी वीरता के साथ जापानियों के साथ संघर्ष किया। कोमिंतांग वाले भी जापानियों से लड़ते रहे। पर कम्युनिस्टों और कोमिंतांग की लड़ाई के तरीकों में यह अन्तर था कि कम्युनिस्ट जिस क्षेत्र में कार्य करते थे, वहां वे साथ-ही-साथ लगान में कमी और व्याज में कमी करते जाते थे। इसके फलस्वरूप जनता में उनका समर्थन बढ़ता चला गया, और उनकी जड़ें मजबूत होती चली गयीं। इसके विपरीत, कोमिंतांग पक्ष इस दिशा की ओर कोई भी ध्यान न देता था, वरन् कोमिंतांग के सैनिक किसानों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के बजाय कुछ क्रूर व्यवहार ही करते थे। कम्युनिस्टों और कोमिंतांग का जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चा सन् १६४५ तक चला। जब जापान युद्ध में पराजित हो गया। उसके बाद कम्युनिस्ट और कोमिंताँग के बीच चीन में संयुक्त रूप से शासन चलाने के लिए बातें हुईं, पर वे असफल रहीं और पुनः गृह-युद्ध छिड़ गया। इस गृह-युद्ध की लम्बी कहानी है। इसमें संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ने च्यांगकाई शेक को अपने कम्युनिस्ट-विरोध के कारण बहुत सहायता दी, पर च्यांगकाई शेक का दल इतना भ्रष्ट था, वहां स्वार्थ-सिद्धि और अवसरवादिता का इतना बोलबाला था, कि इन तमाम सहायताओं के बावजूद कोमिंतांग कम्युनिस्टों के मुकाबले ठहर न सका। धीरे-धीरे च्यांगकाई शेक की फौजों को कम्युनिस्ट पीछे ढकेलते चले गये और अन्ततोगत्वा च्यांगकाई शेक को चीन से भाग कर फारमोसा नामक टापू पर अपना अड्डा जमाना पडा। १ अक्तूबर सन् १६४१ को चीन में नये जनवादी गणतन्त्र की स्थापना हो गयी, जिसके अध्यक्ष माओत्से-तुंग हुए।

सन् १६३५ में जापान की हार के बाद जब पुनः कम्युनिस्ट और कोमिंतांग का गृह-युद्ध प्रारंभ हुआ तो कम्युनिस्टों ने अपने शासित क्षेत्रों में पुनः भूमि-सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत तमाम जमींदारों की जमीनें ले लीं जाती थीं। हां, उनमें से जो निम्न स्तर के थे, और जो स्वयं काश्त करते थे उनकी कुछ जमीन छोड़ दी जाती थी। साथ ही मालदार किसानों की तमाम अतिरिक्त भूमि, उनकी जोत के लायक छोड़ कर, ले ली जाती थी। हां, मध्यम वर्गीय किसानों से कोई दखलन्दाजी नहीं की जाती थी। इस प्रकार जो भूमि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपलब्ध होती थी उसको ग्राम की जनसंख्या के अनुपात से बांट दिया जाता था। उदाहरणार्थ, यदि एक गांव में ४०० एकड़ ज़मीन पुर्नवितरण के लिए प्राप्त हुई और वहाँ की आबादी २०० व्यक्तियों की है, तो प्रत्येक व्यक्ति को २ एकड़ भूमि प्राप्त होती थी। इस प्रकार, यदि एक परिवार में ५ प्राणी हैं तो उस परिवार को १० एकड़ भूमि मिल जाती थी। और जो भूमि इस प्रकार ग्रहण की गई उसके लिए न तो जमींदारों को कोई मुआविजा ही दिया गया और न ही किसानों को उसके लिये राज्य को कुछ देना पड़ा। भूमि-वितरण का यह क्रम बराबर चलता रहा। उसका व्यापक और विस्तृत वर्णन दिया जा सकता है, पर स्थानाभाव के कारण हम उसमें यहाँ नहीं जाना चाहते। इन्हीं भूमि-सुधार-कार्यक्रमों को सन् १९५० में ही एक भूमि-सुधार अधिनियम द्वारा पुष्टि दे दी गई। कहा जा सकता है कि चीन के सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास में सन् १९५० में पास होने वाला भूमि-सुधार कानून ही पहला भूमि कानून है। इसके पहिले वहाँ कोई कानून ही न था।

जब यह भूमि-सुधार कार्यक्रम पूरा हो गया तो चीन में कोई भी व्यक्ति ऐसा न बचा जिसके पास भूमि न हो। अलबत्ता, प्रत्येक परिवार को जो भूमि मिली वह बहुत ही कम थी। अधिकांश आराजियां अब अलाभकर हो गईं। स्पष्ट था कि अलाभकर आराजियों के रहते कृषक उत्पादन को बढ़ा नहीं सकता था। अतः प्रारम्भ से ही कम्युनिस्ट पक्ष ने पारस्परिक सहायता कार्यक्रम चलाया। इस के अन्तर्गत एक ग्राम के ८-१० परिवार एक-साथ मिल जाते थे। किसी के पास हल है और बैल नहीं। किसी के पास कुआं है तो मोट नहीं। तो यह ८-१० परिवार वाले आपस में मिलकर एक-दूसरे को सहायता देते थे। भूमि अवश्य इनकी अलग-अलग रहती थी। उस पर संयुक्त रूप से खेती तो न की जाती थी, परन्तु इस प्रकार की पारस्परिक सहायता उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। ऐसा भी हुआ कि अगर किसी खेत का स्वामी किसान अस्वस्थता के कारण खेत न जोत सका, तो उसके पड़ोसी ने आकर उसका खेत जोत दिया और उसके एवज में उसकी फसल काटने पर उसको कुछ प्राप्त हो गया। यह पारस्परिक सहायता क्रम उत्तरोत्तर सर्वत्र चीन में व्यापक होता चला गया। इसका लाभ कृषकों को दिखाई पड़ा। उनकी आय में इजाफा हुआ। सारे देश का कृषि-उत्पादन भी तेजी के साथ बढ़ा।

इस सफलता को देख कर उत्तर चीन में, जहां पर कम्युनिस्टों का शासन पुराना हो चुका था, एक और प्रयोग किया गया। इसे पहले दर्जे की सहकारी खेती कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत एक ग्राम में कुछ घराने—और ये घराने प्रायः वही हुआ करते थे, जो इसके पूर्व पारस्परिक सहायता आन्दोलन में भाग ले चुके थे और परस्पर सहयोग के लाभ को समझ चुके थे—अपनी भूमि को मिलाकर और अपने खेती के साधनों को इकट्ठा कर आयोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बाकायदे प्रबन्धकारिणी समिति हुआ करती थी। कार्य का सुन्दर विभाजन हुआ करता था और खेती के मुनाफे को न्यायोचित रूप से बांटा जाता था। यह कार्यक्रम सन् १९५३ और ५४ तक काफी आगे बढ़ गया। पर इस बीच एक विरोधाभास इन सहकारी समितियों में प्रकट हो गया।

इस विरोधाभास को हम कुछ स्पष्ट कर दें। इन कृषि-उत्पादक सहकारी समितियों में उसके सदस्यों की आय दो प्रकार की होती थी। प्रथम, उसके द्वारा किए गये कृषि-श्रम के अनुसार; और द्वितीय, उसको जितनी भूमि सहकारी समिति में आई, उस पर एक स्वामित्व-लाभाँश। अब हुआ क्या? जिन परिवारों के पास भूमि स्वल्प थी, वे खूब मन लगाकर कृषि करते थे, मेहनत करते थे, ताकि उनको श्रम-लाभाँश अधिक प्राप्त हो। और जिस परिवार के पास भूमि अधिक होती थी वह श्रम कम करते थे, श्रम से बचते थे, कारण उनको यह विश्वास था कि स्वामित्व-लाभांश से उनको एक मजे की आय हो ही जायेगी। जब कृषि-उत्पादक सहकारी समितियों के बनने के पश्चात् आय बढ़ने लगी तो स्वल्प भूमि वाले परिश्रमी कृषकों ने कहना शुरू किया कि मेहनत तो हम करते हैं, आय तो हमारे परिश्रम के फलस्वरूप बढ़ रही है, और यह स्वामित्व-लाभांश वाला आदमी बिना किसी प्रकार की मेहनत किये रकम काटता जाता है। तो परस्पर संघर्ष शुरू हो गया। स्थिति कुछ-कुछ चिन्ताजनक होने लगी।

कृषकों की इस स्थिति का प्रभाव कम्युनिस्ट पार्टी में भी दिखाई पड़ा। उस में दो विचार के लोग हो गए। एक कहने लगे कि अब हमको सहकारी आन्दोलन को रोक देना चाहिए और जो कुछ हमने सहकारी समितियां बना ली हैं उन्हीं को और सुदृढ़ करना चाहिये। इसके विपरीत, दूसरे विचार वाले कहते थे कि हमको सहकारी आन्दोलन को और भी तेज कर देना चाहिए। यह विवाद कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत गंभीर हो गया। फिर चीन के नेता माओ ने सन् १९५५ के प्रारंभ के महीनों में दो-तीन माह तक बराबर नीचे के ग्रामों का दौरा किया। स्वयं उन्होंने भूमि की स्थिति का अध्ययन किया और उस के बाद सन् १९५५ के जुलाई मास में उन्होंने एक रिपोर्ट कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मुख पेश की। इस रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि किसान तो समाजवाद की ओर जाना चाहता है पर कम्युनिस्ट पक्ष के ही कुछ लोग डर-दब रहे हैं, हिचकिचा रहे हैं। और उन्होंने हिदायत दी कि चीन में सहकारी आँदोलन को और आगे बढ़ाना चाहिए। कम्युनिस्ट वहां इसलिये सफल हुए कि उन्होंने भूमि-समस्या को प्राथमिकता प्रदान की और उसको हल करने वाली छुटपुट फुटकर बातें करने के बजाय सीधे-साधे भूमि का पुनर्वितरण कर दिया। आज निश्चय ही चीनी कृषक सुखी हैं, प्रसन्न हैं। यह तो चीन के गावों में जा कर वहां के किसानो को देख कर पता ही लग जाता है।

—आर्थिक-समीक्षा से साभार।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत में पीकदान का इतिहास

(ई० पू० ३०० से प० १५०० तक)

श्री बाबूराम वर्मा, एम. ए.

भारत में ताम्बूल के इतिहास का अध्ययन करते समय मैंने यह आवश्यक समझा कि उस से संबधित उन विभिन्न वस्तुओं का इतिहास भी प्रस्तुत करूं, जो तांबूल चबाने वाले बहुधा भारतवर्ष में व्यवहार में लाते हैं। फलतः मैंने एक निबन्ध सरौते[1] पर प्रकाशित किया, जिसमें उसका १३०० ई० तक का इतिहास बताया। तांबूल से संबधित दूसरी वस्तु जिसे घर स्वच्छ रखने को तांबूल चबाने वाले व्यवहार में लाते हैं, पीकदानी है, जिसके अभाव में, ताम्बूल के साथ व्यवहृत पदार्थों जैसे पान, लौंग, सुपारी, चूना और कत्था के कारण मुख में अत्याधिक थूक आने से वस्तुतः सारा घर ही पीकदान न बन जाए। सामाजिक स्वच्छता के समर्थकों ने भारत में सदैव ही ताम्बूल चबाने वालों की सड़क के दोनों किनारों पर थूकने की गन्दी प्रवृति की भर्त्सना की है। ताम्बूल विक्रेताओं की दुकानों के सामने की भूमि पर एक दृष्टि करने से ही इस आलोचना की सत्यता प्रत्यक्ष हो जाएगी, क्योंकि इसकी कोई दुकान ऐसी नहीं है जिसके सामने की भूमि ताँबूल चबाने वालों के लाल थूक से भद्दी न हो गई हो। कदाचित इसी कारण से भारत के सभी मार्गों में जन भागों पर तांबूल चबाना दुराचार,[2] समझा गया, जैसा कि सत्रहवीं शताब्दी के एक लेखक ने अभिलिखित किया है। घरेलू जीवन में पीकदान का व्यवहार स्वच्छता के प्रति बड़े ध्यान को दिखाता है और भारत में स्वच्छता के इतिहास में इसके उपयोग का स्पष्ट ही स्थान है। इसी लिए हमें अन्वेषण करके देखना चाहिए कि क्या भारतीय जीवन और संस्कृति में पीकदान का व्यवहार तांबूल के आने के साथ साथ ही आया या इस से कुछ पूर्व।

---

१. देखिए 'भारत इतिहास संशोधन मंडल' त्रैमासिक १६४८, पृष्ठ ८-१४।

२. भट्टोजी दीक्षित का शिष्य वरदराज 'जीवार्ण-पदमंजरी में कहता है' सर्वेषां देशे पथि ताम्बूलभक्षणं दुराचारः। [भारतीय विद्या खण्ड ६ संख्या २ (फर्वरी १६४५) के पृष्ठ २८ के अनुसार]

३. तांबूल के इतिहास का अध्ययन करते समय मैंने तांबूल चबाने के रिवाज के संबंध में पूर्ण और विवेचित् साहित्य के संबंध में अपने मित्रों से पूछा। उन मित्रों में से केवल राजाराम महाविद्यालय कोल्हापुर, के डा० ए० एन० उपाध्ये ने, मेरा ध्यान एन० एम० पेन्ज़र की तांबूल चबाने की मनोहर कथा (Romance of Betel chewing) की ओर आकर्षित किया (सी० ऐच० टौनी के कथासरित्सागर के अनुवाद का खण्ड ८ का परिशिष्ट २ पृष्ठ २३७-३१६ इस ८२ पृष्ठ के दीर्घकाय निबन्ध की ओर जिसमें पेन्ज़र ने तांबूल चबाने के व्यवहार का विस्तार, इसकी ठीक प्रकृति, अगणित उत्सवादि जिनमें ताम्बूल का भाग है, और इस व्यवहार का भाषा विज्ञान और नृविज्ञान की दृष्टि से महत्व के सम्बन्ध में लाभदायक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तांबूल चबाने संबंधी उपकरणों के इतिहास का अध्ययन करते समय हमें एसे उपकरणों की ओर ध्यान देना चाहिए जा संग्रहालयों में एकत्र है। पेन्जर अपने 'तांबूल चबाने की मनोहर कथा' नामक निबंध में ऐसे उपकरणों के वर्णन में कुछ पृष्ठ देता है। [टॉनी के 'कथासरित्सागर' के अनुवाद के खण्ड ८ के पृष्ठ २४९-२५४] इस वर्णन में से कुछ मैंने लिए हैं—

विक्टोरिया और एल्बर्ट संग्रहालय (लन्दन) कक्ष ८ (धातुकर्म)—

पांचवा बक्स—पीतल का सिरेह (Sireh) सुमात्रा के बक्स। कुछ पर सभी ओर स्वस्तिक चिन्ह खुदा हुआ है।

तेरहवां बक्स—पीतल का इकट्ठा कंघा और सुपारी काटने का सरौता (तञ्जौर का) काटने वाला भाग 'पुरुष और लघु आकार स्त्री जैसा' है।

पीतल की खरल

चौदहवां व सत्रहवां बक्स—सिंहल के सरौते और चूने के पात्र बज्रायस (steel) के सरौते (आकार साढ़े चार से साढ़े ग्यारह इञ्च तक) भीतर रौप्य जड़ाई और ऊपर पित्तल का खोल—एक का रूप अजगर का है जिसका शिर पक्षी का है।

—शृंखला वाले चूने के पात्र जिनका आकार पुरानी अंग्रेजी जेबी घड़ियों के आधान जैसा चूना लगाने की डंडो जिसका शिर चपटा है, और चौड़ाई १॥ इञ्च है।

दीवार पर लगे बक्स २५ वें व २७ वें—रंगीन कांच से जड़े हाथीदांत, हड्डी, या मोती के हत्थों वाले सरौते कुछ का रूप पशुओं जैसा है, जैसे अश्व, मोर आदि का।

तांबूल चबाने संबंधी उपकरणों का आधुनिक ग्रन्थों में वर्णन—

१. ए० के० आनंदकुमार स्वामी की मध्यकालीन सिंहल कला—

चित्र ४६ (छोटे आकार के नमूनों का चित्रों सहित वर्णन पृष्ठ ३३६-७ पर है।)

पृष्ठ २३८-९—तांबूल के बटुओं का अति सुन्दर वर्णन।

चित्र ३०-३३—छोटे बड़े चोर जेब वाले और रेशमी कढ़ाई वाले, अंडाकार और वर्गाकार तांबूल बटुवों के चित्र।

२. मलय राजकीय एशियाई परिषद्, खंड ३, १९२५–पृष्ठ २२, २८।

मलय परीकथाओं में वर्णित ठोस स्वर्ण के तांबूल बटुवे—प्रत्येक मलय घर में तांबूल बटुवा या तश्तरी होती थी जिस में चबाने की सभी वस्तुएं लगी रहती थी, जैसे इलायची, लौंग, कत्था, चूना, तंबाकू—छोटा पान रखने

सामग्री एकत्र की है, ध्यान आकर्षित करने के के लिए मैं डा० उपाध्ये का कृतज्ञ हूं।

प्रिज़ुलस्की के अनुसार ताम्बूल, मूल शब्द 'बूल' और उपसर्ग 'ताम' से बना है। 'बूल' आस्ट्रो-एशियाटिक (अ—भारतोआर्य) 'बाल से मिलता है जिसका अर्थ है 'जिसे लपेटते हैं' [अधिक विवरण के लिए प्रिज़ूलस्की का निबन्ध देखिए 'इण्डोआर्यो में अनार्य चिह्न'—पैरिस की भाषा विज्ञान परिषद् पत्रिका, खण्ड २४, संख्या ३ (पूर्ण संख्या ७५) १९२४, २२५-२५८]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का बटुवा, पान पर चूना लगाने की धातु-डंडी और विचित्र आकृतियों वाले सुपारी काटने के सरौते।

३. एच. लिंग. रौथ की "प्राचीन रौप्य कर्म-मलय और चीनी", लन्दन, (१९१०, चित्र संख्या, ३, ४, ५, ३०–३४, ३८–४७, ५०–५३, ५७–६२)।

—सुपारी रखने के पात्रों, चूने के पात्रों और पान रखने के आधानों के चित्र।

४. एच. लिंग रौथकी "सारावाक और उत्तर बोर्नियो के निवासो" खण्ड २, पृष्ठ ३९, लैंड डायक द्वारा पहनी जाने वाली पान की टोकरी का वर्णन।

५. जातिविज्ञान संग्रहालय की निर्देशिका (ब्रिटिश संग्रहालय में)।

न्यूगिन्नी के उत्तरी तट से परे एंनोराइट द्वीप से प्राप्त तांबूल चबाने के उप-साधनों जैसे चूना लगाने की डंडी के चित्र, जिन में से कुछ की आकृति छिपकली की पूंछ जैसी—न्यूगिन्नी द्वीपसमूह (दक्षिण पूर्व) से प्राप्त कुछ उदाहरण, कुछ मनुष्याकृति के कुछ मकराकृति के।

सिंहल से प्राप्त तांबूल चवर्ण उप-साधनों के चित्र।

ऊपर दिये गये तांबूल चर्वण के उप-साधनों के वर्णन में मुझे पीकदान[1] का संकेत नहीं मिला, जिस से प्रस्तुत निबंध में मुझे मतलब है।

१. य०र० दाते और च०ग० कर्वे के मराठी 'शब्दकोश' में (पूना, १९३६, खंड ५, पृष्ठ २००४) पिकदानी, पिकदाणी, पिंकदानी, पिंकदान, पिकधरणी, पिकपात्र, आदि शब्दों को देता है—

कोश में इन शब्दों का व्यवहार इस प्रकार दिया है—

(१) पिकदान—

"पिकदानें ऊर्ध्वमुखें।
तांबूल पत्रें अतिसुरेखें॥"

हरिविजय ३४, १५८।

(२) पिकधरणी–(१६०८–१६४९ ई०)

"तांबुलाची पिकधरणी।
तेमीप्रसे मुख पसरुनी॥"

—तुकाराम की 'गाथा' १७४६।

---

१. पीकदान के इतिहास पर अपने मित्र प्रा० डी० डी० कोशाम्बी से विमर्श करते समय मुझे ज्ञात हुआ कि प्राचीन रोमन भी, बड़े-बड़े भोजों के पश्चात् उलटियां करने को कुछ पात्र प्रयोग करते थे। इस सम्बंध में मैंने जेरोम कार्कोपिनो (अनुवाद इ०ओ० लौरिमर, लन्दन, १९४६) की "प्राचीन रोम में दैनिक जीवन" का अध्याय ९, पराड और संध्या भी पढ़ा। रोमनों के पेटूपन का वर्णन करते समय लेखक का मत है—

पृष्ठ २७१–२, मार्शल एकाधिक लोगों के सम्बन्ध में कहता में जिन्हें दास को 'आवश्यक पात्र' लोन को चुटकी भर बजानी पड़ती थी जिस में वह "उस में से पी हुई शराब को पुनः ठीक-ठीक नापते थे", और दास अपने मत्त स्वामी के शरीर को संभालते थे। और अन्त में बहुधा ऐसा होता था कि फर्श का बहुमूल्य संगमरमर "सिना" के मध्य थूकने मैं खराब हो जाता था।

धनी रोम के, जो सारे रोमन साम्राज्य के धन को खींचता था, और फर्श के संगमरमरी काम को खराब करता था भद्दे पेटूपन के समक्ष भारतवासियों की तांबूल चबा कर मार्गों पर थूकने की प्रवृत्ति नगण्यता में मिल जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) पिकपात्र—(१५६६ ई—१६४६ ई०)

'मृदुमवाक चोटिंगणें ।
पिकपात्रें झककती ।।'

—मुक्तेश्वर, आदिपर्व ४८, १७ ।

उपर दिए उद्धरणों में पिकदान शब्द का व्यवहार तांबूल के साथ आया है । संत तुका-राम और महाराष्ट्र के कवि मुक्तेश्वर सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में वर्तमान थे ।

२. संस्कृत बाह्य शब्दों के कोश 'राज्य व्यवहार कोश' । (पूना, १८८०) । जिसे शिवा महान् की आज्ञा से रघुनाथ पंडित ने १६७६ ई० में रचा, हमें "पीकदान" और "तस्त" शब्द निम्न उद्धरण में मिलते हैं—

पृष्ठ ३, राजवर्ग, श्लोक २६, २७ ।
" · · · तस्तं गण्डूषपात्रकम् ।।२६।।
पीकदानी—नामनी द्वे पतद्ग्रह-कलाचिके ।"

यहां "पीकदानी" का अर्थ संस्कृत शब्द 'पतदग्रह' और "तस्त" का अर्थ "गण्डूषपात्रक" (मुख प्रक्षालन का पात्र) से समझाया गया है ।

३. 'पारसीभाषानुशासन' नामक पारसी शब्दकोश (बनारसीदास जैन द्वारा सम्पादित, लाहौर १९४५) जिस की रचना संवत् १६०० (१५४४ई०) से पूर्व हुई, हमें "तस्तरी" शब्द "हस्त प्रक्षालक" के अर्थ में निम्न उद्धरण मिलता है—

पृष्ठ ९—अध्याय १, श्लोक ७९ ।
" · · तस्तरी प्रोक्ता हस्तप्रक्षालकस्तथा ।।७९।।"

ऊपर दिये गये संदर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत-बहिर शब्द 'पिकदानी', 'तस्त' (अथवा तस्तरी) सत्रहवीं शताब्दि में या उस से भी पूर्व 'पीकदान' और 'हस्त प्रक्षालक' के अर्थ में प्रचलित थे ।

४. यूल और बुर्नेल के "हाब्सन-जाब्सन" में (लन्दन १९०३) 'पिगदान' पर निम्न लेख है—

पृष्ठ ७०९ पीगदान, हिन्दी पीकदान, पीक चबाएं तांबुल से निकाला हुआ रस है । १६६५ ई० दास · · · पीकदान ले जाते थे ।

—बर्नियर, कांस्टेबल द्वारा प्रकाशित २१४, २८३ में 'पिकदान'[1] १६७३ ई०—भारत में फर्श पर दरियां बिछाई जाती हैं, जिन के ऊपर वहीं की मिट्टी के जिसे चीन कीं मिट्टी के बाद बड़ा अच्छा मानते है, 'पीगदान' होते है, जिसमें वे पीक डालते है । —फ्राइर, २२३ ।

१६८४ ई० हेडगे, 'थूकने के पात्र' क्रय करने के सम्बन्ध में कहता है । —दैनिकी, हैक्लूयट परिषद्, १४६ ।

---

१. बर्नियर द्वारा कहा पीकदान का प्रयोग अमीरों और राजाओं में विशेषतः दिल्ली और आगरा में सीमित था । इन में से कितने ही गावतकियों के सहारे लेटे पालकी में बैठ, ओठों को लाल करने, श्वास को मीठा करने, दोनों आशयों के लिए पान खाते, छः-छः आदमियों के कन्धों पर चलते थे । पालकी के दोनों ओर मिट्टी या चांदी आदि का पीकदान लिए नौकर रहता था । (बर्नियर पृष्ठ २८३) ।

मिट्टी के पीकदान कहाँ बनते थे ? आईने अकबरी १५९० ई०) 'चीन की तस्तरियों का' जो अकबर के दस्तरखवां पर व्यवहृत होती थी, उल्लेख करता है । (आईने अकबरी खण्ड ', पृष्ठ ५०-५१, ग्लैडविन का अनुवाद, कलकत्ता, १८९७) ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महान राजर्षि स्वामी श्रद्धानन्द

श्री अवधेश कुमार

सन् १९१९ का वह जमाना था। देश के कोने कोने में रोलेट एक्ट के विरोध में आन्दोलन चल रहे थे। इसमें भारत की राजधानी दिल्ली भी किसी प्रकार पीछे न रही थी और रहती भी कैसे जब कि सफलता के देवता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज स्वयं आन्दोलन के नेता थे। इसी सिलसिले में ३० मार्च को एक जलूस निकला। आगे २ स्वामी जी चल रहे थे और पीछे था जन समुदाय। जलूस जब घण्टाघर के समीप पहुंचा तो सहसा शस्त्रास्त्रों से लैस गोरखों की संगीनें निरीह जनता का खून पीने के लिए तन गई। फिर भी जनता के भाग्य-विधाता आगे ही बढ़ते गये, और पीछे पीछे जनता ने 'भारत माता की जय' के नारों से एक बार आकाश को गुंजा दिया। वह जुलूस गोरखों के अत्यन्त निकट पहुंचा तब गोली चलाने के लिए उनकी बन्दूकें सीधी तन गईं। इसी बीच सहसा स्वामी जी का सिंहनाद सुनाई दिया 'निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले मेरे सीने में संगीनें भोंक दो'। इतना कहना ही था कि गोरखों का खौलता हुआ खून ठंडा पड़ गया। जनता ने भारतमाता की जय के नारों के साथ फिर एक बार आगे कूच किया। यह था स्वामी जी का साहस! यह थी स्वामी जी की निर्भयता! यह था उनका त्याग! यह थी उनकी तीव्र तपस्या! केवल यही नहीं बल्कि ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं। जो उनके अभूतपूर्व साहस तथा बलिदान की भावना को दर्शाते हैं।

स्वामी जी का यह गुण था कि वे जिस काम को पकड़ लेते थे उसको पूरा कर दिखाते थे। उस समय गुरुकुल स्थापित करना कोई सहज कार्य न था। पहले तो उनको सहायता देने वाला कोई न था, सब उनकी बातों पर हंसते थे, उन्हें पागल बताते थे। पर धुन के पक्के स्वामी जी ने यह प्रण कर लिया कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिए ३० हजार रुपया इकट्ठा न कर लूंगा तब तक घर में पैर तक न धरूंगा। उन दिनों तीस हजार रुपया इकट्ठा करना कोई खेल न था। लोग अपने बच्चों को जगलों में पढ़ाने के लिए तैयार न थे। पर दृढ़प्रतिज्ञ स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसकी कोई पर्वाह न की। और कहते हैं कि उन्हें इतनी धुन सवार होगई थी कि जब वे चन्दा इकट्ठा करने के लिए जालन्धर आये तब वे अपने घर न जाकर आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरे। अपनी भाभी जी के पूछने पर कहा कि भाभी जी! मैंने यह प्रण कर लिया है कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिए ३० हजार रुपये इकट्ठे न कर लूंगा तब तक घर में पैर तक न धरूंगा। यह थी इनकी दृढ़ प्रतिज्ञा और यह था उनका कार्य-कौशल, जिसने उन्हें मिट्टी से सोना बना दिया था। इसी प्रकार की एक घटना है कि वे अपना 'सद्धर्मप्रचारक' पत्र उर्दू में प्रकाशित किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करते थे। पर एक दिन उन्हें आभास हुआ कि यह पत्र हिन्दी में निकलना चाहिए, यह राष्ट्र धर्म का तकाजा है। उन्होंने रातोंरात सारा प्रबन्ध कर डाला और प्रातःकाल से पत्र हिन्दी में निकलने लगा।

वे जिस चीज़ को ठीक समझ लेते थे उसके पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे, केवल उन्हें उस चीज़ का आभास होना चाहिए था। इस लिए उन्होंने केवल शिक्षा क्षेत्र में ही क्रान्ति पैदा की हो ऐसी बात नहीं, अपितु उन्होंने जब शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उसे देश व्यापी बना दिया। लाखों मलकाने राजपूतों को जो मुसलमान बन गये थे, हिन्दू बिरादरी में पुनः शामिल किया। इसी प्रकार राष्ट्रीय कार्य क्षेत्र में भी वे किसी से पीछे न थे। उन दिनों अमृतसर में जलियानवाला बाग का काण्ड घट चुका था। लोग कांग्रेस का नाम तक भी लेने को डरते थे। ऐसे समय में अमृतसर में काँग्रेस अधिवेशन हो सकेगा यह किसी को आशा न थी। ऐसी परिस्थिति में इस कार्य का भार आपने अपने सबल कन्धों पर लिया। इस सिलसिले में द्वार-द्वार पर जाकर स्वामी जी ने कांग्रेस का प्रचार किया। गांव-गाँव में जाकर सहायता की प्रार्थना की। गली-गली में घूम कर चन्दा प्राप्त किया और इस प्रकार अधिवेशन को सफल कर दिखाया। इससे हम पता लगा सकते हैं कि उनमें कितनी कार्यक्षमता थी। कितनी लगन थी, कितना निर्भीक साहस था। इसी कारण प्रत्येक कार्य में सफलता आपके चरण चूमती थी। अछूतोद्धार का कार्य सबसे पहले आपने ही प्रारम्भ किया।

आपने केवल हिन्दुओं की ही सेवा की हो ऐसा नहीं। बलिदान से लगभग आठ साल पूर्व रौलेट एक्ट के पुरस्कार स्वरूप चली गोली में मारे गये मुसलमानों के परिवारों की आपने तन-मन-धन से सेवा की थी। एक मुसलमान के शब्दों में—अगर स्वामी जी उस समय मुसलमानों की मदद न करते तो उनके औरत और बच्चे दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाते। इससे पूर्व ४ अप्रैल १६१६ को दिल्ली के मुसलमानों के निमन्त्रण पर प्रसिद्ध जामामस्जिद की वेदी से जहां से कुछ इने गिने व्यक्ति प्रवचन कर सकते थे, वेदवाणी का उपदेश दिया था। और हिन्दू मुस्लिम एकता की जोरदार अपील करते हुए आजादी नारा बुलन्द किया था। और तब वहां उपस्थित जनता ने हिन्दू-मुस्लिम जिन्दाबाद के नारों से उस भाषण का स्वागत किया था। उनको देख कर भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रेमजे मैकडानल ने कहा था 'वर्तमान काल में यदि कोई कलाकार ईसा का जीवित मॉडल चाहे तो मैं इस भव्य मूर्ति की ओर इशारा करूंगा। यदि कोई चित्रकार सैन्ट पीटर के चित्र के लिए नमूना मांगे तो मैं उसे इस भव्यमूर्ति के दर्शन की प्रेरणा करूंगा' इन वाक्यों से हम सहज ही पता लगा सकते हैं कि उनका चेहरा कितना उज्वल था। उनका मन कैसा निर्मल था। उनके विचार कितने उच्च थे कि उनके दर्शन मात्र से ही बड़े २ आदमी उनकी ओर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खिंच जाते थे।

स्वामी जी को ये गुण कैसे प्राप्त हुए, इसकी भी एक विस्मय जनक घटना है। कहते हैं कि स्वामी जी जब युवा अवस्था में थे तो उन्हें किसी कारणों से हिन्दू-संस्कृति से घृणा पैदा होगई थी और वे दिनों दिन ईसाई मत की ओर झुकते जा रहे थे। उन दिनों महर्षि दयानन्द जी बरेली में आये हुए थे। उनके व्याख्यानों से स्वामी जी के पिता नानकचन्द्र जी बहुत प्रभावित हुए। और उन्होंने अपने पुत्र को सन्मार्ग पर लाने की अभिलाषा से महर्षि दयानन्द जी के व्याख्यान सुनने की प्रेरणा की। पहले तो वे न माने पर बाद में पिता जी के आग्रह करने से राजी हो गये। महर्षि के दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। उनकी दिनचर्या और विद्वत्ता को देख कर उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। तब से वह आर्यसमाज की ओर झुके। जिस प्रकार लोहा पारस के सम्पर्क से सोना बन जाता है, ठीक उसी प्रकार स्वामी जी महर्षि के सम्पर्क से ही इतने महान् बन सके। तदनन्तर स्वाध्याय तथा तपस्या ने उन्हें तपा कर सुन्दर सोना बना दिया।

बनार्ड शा ने गान्धी की पुण्यतिथि पर बहुत ही ठीक कहा था कि बहुत भला होना भी खतरनाक होता है। स्वामी जी की गणना भी इन्ही प्रकार के लोगों में की जा सकती है। १९१६ के दिसम्बर मास के २३ तारीख की बात है। नया बाजार दिल्ली के एक भवन में जो आज श्रद्धानन्द बलिदान-भवन के नाम से प्रसिद्ध है, मसनद का सहारा लिए स्वामी जी विराजमान थे। कई दिनों से वे बीमार चले आ रहे थे। शाम के चार बजने को थे कि अब्दुलरशीद नाम का एक आदमी इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में शंका समाधान करने के लिए स्वामी जी के पास आया। स्वामी जी ने कहा मैं आजकल बीमार हूं, फिर कभी आना। तब उसने स्वामी जी से पानी पीने को मांगा। पानीं देने के बाद जब नौकर दूसरे कमरे में गया तब इस मदान्ध को मौका मिल गया उसने फुर्ती से पिस्तौल निकाल कर स्वामी जी के सीने पर दनादन तीन गोलियां दाग दीं। स्वामी जी इस विनश्वर शरीर को छोड़ कर सदा के लिए चल बसे। आर्यसमाज का सूर्य पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होगया। हिन्दू जाति का उद्धारक सदा के लिए चल बसा। देश का महान् उद्धारक लुट गया। एक जलता हुआ दीपक सदा के लिए बुझ गया।

ऐसे उच्च आत्माओं का नाम स्मरण तथा कार्यों की आलोचना सदा प्रेरणा प्रद होता है। उनके स्मृति को स्थिर करने का उपाय उनकी शिक्षाओं के अनुरूप कार्य करना तथा उनके चलाये हुए कार्यों को जारी रखना है। अतः आइये हम उनसे प्रवर्तित इस गुरुकुल शिक्षा पद्धति को अपने आचरणों से पल्लवित करें और उनकी शिक्षा के अनुसार पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए देश व जाति के सच्चे सेवक बनने का शुभ संकल्प करें।

——

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार

मैं निस्संकोच भाव से यह कह सकता हूं कि बुद्ध के जीवन से मुझे बहुत प्रेरणा मिली है और उससे मैंने बहुत कुछ सीखा है।

मेरी धारणा है कि हिन्दू-संस्कृति में बौद्ध-संस्कृति भी जरूर शामिल है। इसका सीधा सा कारण यही है कि बुद्ध स्वयं एक भारतीय थे और केवल भारतीय ही नहीं, हिन्दुओं में भी हिन्दू थे। मुझे बुद्ध के जीवन में एक भी बात ऐसी नहीं मिली जिससे यह साबित हो कि उन्हों ने हिन्दू-धर्म छोड़ कर कोई नया मत ग्रहण कर लिया था।

काफी विचार के बाद मैंने यह राय बनाई है कि बुद्ध के उपदेशों की खास-खास बातें आज हिन्दू-धर्म का अविभाज्य अङ्ग बन गई हैं। गौतम बुद्ध ने हिन्दू-धर्म में जो महान् सुधार किये हैं उन्हें त्याग सकना अब हिन्दू-भारत के लिए असम्भव है। बुद्ध के महान बलिदान, उत्कृष्ट त्याग, और निष्कलङ्क पवित्रता ने हिन्दू-धर्म पर एक अमिट और चिरस्थायी छाप छोड़ी है और हिन्दू-धर्म इस महान् गुरु का सदा आभारी रहेगा। मैं तो यहां तक कहूंगा कि आज बौद्ध-धर्म के नाम से जो धर्म प्रचलित है उसमें से हिन्दू-धर्म ने जो वस्तुएं ग्रहण की हैं वे बुद्ध के जीवन और उपदेशों में थी ही नहीं।

तथागत का जीवन हिन्दू-धर्म के श्रेष्ठतम सिद्धान्तों से पगा हुआ था। वह कई ऐसे सिद्धान्तों को पुनः प्रकाश में लाये जो केवल वेदों में दबे ढ़के पड़े थे और जिन्हें लोग भूल चुके थे। वेदों में निहित सुनहरी सत्य शब्द जंजाल से ढक गया था। परन्तु इस महान् हिन्दू आत्मा ने यह आवरण नष्ट कर दिया। उन्होंने वेदों के कुछ शब्दों का नया ही अर्थ लगाया, जिसकी उनकी पीढ़ी के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। भारत की भूमि इन नवीन अर्थों को अपनाने के लिए स्वभावतः उपयुक्त थी ही।

तथागत के हृदय की तरह उनके उपदेश भी सर्वग्राही और विशाल थे। इसी लिए उनका शरीर न रहने पर भी बौद्ध-धर्म फैला और सारी दुनियां में छा गया। सम्भव है कि लोग मुझे बौद्ध मानने लगें परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यह विजय हिन्दू-धर्म की ही विजय थी। बुद्ध ने कभी हिन्दू-धर्म का खण्डन नहीं किया। उन्होंने तो इस धर्म के आधार को मजबूत बनाया; इसमें एक नया जीवन फूँक कर इस की एक नई व्याख्या की।

पहली बात में एक सर्वव्यापक शक्ति—ईश्वर—में विश्वास को लेता हूं। मेरे सामने अनेक बार यह राय जाहिर की गई है और मैंने पुस्तकों में भी पढ़ा है कि बुद्ध अनीश्वर-वादी थे। मेरे विचार से यह धारणा बुद्ध के मूलतत्व के विरुद्ध है। बुद्ध ने उन त्याज्य परम्पराओं का खण्डन किया था जो उन के समय में ईश्वर के नाम पर चल पड़ी थीं। सम्भवतः इसी खण्डन से यह भ्रम पैदा हुआ कि उन का ईश्वर में विश्वास न था। यह सही है कि उन्होंने इस बात का खण्डन किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि ईश्वर नाम का पुरुष द्वेष से प्रेरित हो सकता है, अपने कर्मा पर पश्चाताप कर सकता है, संसारी राजाओं की तरह घूस और प्रलोभनों के सामने झुक सकता है और पक्षपात कर सकता है। उनकी आत्मा इस बात के प्रति विद्रोह कर उठी कि ईश्वर नाम का एक प्राणी प्रसन्न होने के लिए उन जीवों का खून मांग सकता है जो स्वयं उसी ने पैदा किये हों।

बुद्ध ने भारत को एक बहुत बड़ी बात यह सिखाई कि निर्दोष पशुओं की बलि से संतुष्ट होने वाला ईश्वर, ईश्वर नहीं है। इस के विपरीत जो उसे प्रसन्न करने के लिये पशुओं की बलि देते हैं, वे दोहरा पाप करते हैं।

ईश्वर के नियम अनादि और अपरिवर्तनशील हैं और उन्हें ईश्वर से अलग नहीं किया जा सकता। ईश्वर की पूर्णता ही इस स्थिति पर निर्भर है। इस सिद्धान्त को न समझने से ही यह भ्रम पैदा हो गया कि बुद्ध का ईश्वर में विश्वास नहीं था बल्कि उनकी आस्था नैतिक नियमों में थी। ईश्वर-सम्बन्धी इस भ्रम के कारण ही 'निर्वाण' जैसे महान् शब्द का भी गलत अर्थ लगाया गया। निर्वाण का अर्थ अनन्त में विलीन होना नहीं है। जहां तक मैं बुद्ध के जीवन के मुख्य तत्वों को समझ पाया हूं निर्वाण का अर्थ मनुष्य की सब बुराइयों का नाश है। निर्वाण कब्र की अन्धकारमय मुर्दा शान्ति नहीं है। इस शान्ति में जीवन है। यह उस आत्मा की स्थिति है जिसने स्वयं को पहचान लिया हो, जिसे अनादि अनन्त परमेश्वर के हृदय में वास का बोध हो गया हो।

गौतम ने हमें सिखाया कि हीन से हीन जन्तु को भो हमें अपने बराबर मानना चाहिए। यह धारणा कि मनुष्य सभी पशुओं और जन्तुओं का स्वामी है थोथे अभिमान की द्योतक है। इस के विपरीत अधिक गुण-सम्पन्न होने के कारण उस का दरजा पशु-जगत् के ट्रस्टी (न्यासी) का है। ऋषिवर बुद्ध का जीवन इस सत्य की साकार प्रतिमा था। मैंने बचपन में 'लाइट ऑफ एशिया' नामक रचना के उन अंशों को पढ़ा था जिसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार भगवान् बुद्ध ने क्रुद्ध और मूढ़ ब्राह्मणों के देखते-देखते उनके यज्ञ के बलि के पशुओं में से एक मेमने को अपने कन्धे पर उठा लिया और उन्हें किसी भी पशु का वध करने के लिए ललकारा। परन्तु उन की उपस्थिति-मात्र से उन ब्राह्मणों का पत्थर हृदय पिघल गया; उन्होंने गौतम को नजर भर कर देखा और अपने छुरे फेंक दिये। पशु-बलि न हुई।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि यदि आप बलि देना चाहते हैं तो अपने अहम् की, अपनी वासना, भौतिक और सांसारिक लालसाओं की बलि दीजिये। यह बलिदान आपका कल्याण करेगा।

गौतम ने दूसरी बात यह बताई कि जात-पात बिलकुल गलत चीज़ है। ऊंच-नीच के उस भेद-भाव को जो हिन्दू-धर्म की जड़ों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खोखला कर रहा था, मिटा दिया। परन्तु उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म का विरोध नहीं किया। वर्ण-धर्म, जात-पात से भिन्न वस्तु है। वर्ण जहां जीवनदाता है वहां जात-पात मृत्युकारी है। जात-पात का सब से घृणित रूप है अस्पृश्यता। इस लिये आप छूआ-छूत को दूर कर दें। मैं चाहता हूं कि आप तुरन्त ही यह घोषित कर दें कि सभी व्यक्ति बराबर हैं। जब तक आप एक भी आदमी को अछूत समझते हैं आप बौद्ध-धर्म से इन्कार करते हैं, मानवता का विरोध करते हैं।

भगवान् बुद्ध ने जिस से स्रोत से प्रेरणा प्राप्त की, उस आदि स्रोत का, संस्कृत और संस्कृत के ग्रन्थों का जब तक अध्ययन नहीं किया जायेगा, तब तक बौद्ध-धर्म का अध्ययन अधूरा ही रहेगा।

आप पश्चिमी जगत् की चमक को देखकर प्रभावित न हों। बुद्ध ने अविस्मरणीय शब्दों में कहा है कि यह शरीर अस्थाई और नश्वर है। यदि आंखों से दीखने वाले पदार्थों और सदा परिवर्तनशील शरीर की निस्सारता का ज्ञान हो जाय तो अक्षय निधि प्राप्त होगी और इस जीवन में शान्ति मिलेगी—ऐसी शान्ति और सुख जो कल्पना के परे हैं। इस के लिये पूर्ण विश्वास और आत्म-समर्पण आवश्यक है।

बुद्ध, ईसा या मुहम्मद ने क्या कार्य किया? उन का जीवन आत्म-बलिदान और त्याग से ओत-प्रोत था। बुद्ध ने सारा सांसारिक सुख इस लिये छोड़ा कि वह अपना वह सुख जो सत्य की खोज में कष्ट उठाने वाले मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं, सारी दुनियां के साथ बांट लेना चाहते थे।

बुद्ध की अहिंसा आज भी जीवित है और समय के साथ विकसित ही होती जायेगी। इसका जितना अधिक प्रयास किया जायेगा यह उतनी ही प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली बनती जायेगी। एक दिन वह भी आयेगा जब सारा संसार आश्चर्य-चकित हो चमत्कार! चमत्कार!! पुकार उठेगा।

यदि एशिया स्वयं अपने सिद्धान्तों का पालन कर सका तो वह समस्त संसार का पथ-प्रदर्शन कर सकेगा। इस समूचे महाद्वीप पर जिस में भारत, चीन, जापान, बर्मा, लङ्का और मलाया आदि देश शामिल हैं बौद्ध-धर्म की छाप आज भी मौजूद है।

—

श्रद्धानन्द विशेषाङ्क पर सम्मति

"गुरुकुल-पत्रिका" का श्रद्धानन्द-जन्म-शताब्दी अङ्क पढ़ा, बोधप्रद एवं मनोरंजक है। अच्छे-अच्छे मंजे हुए विद्वानों के लेख, तथा कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं का सुन्दर समावेश किया गया है। इस अङ्क को द्विगुण कर के और भी उत्कृष्ट बनाया जा सकता था। यह अंक संग्रह करने योग्य है, सम्पादक-मण्डल को बधाई।

—नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैज्ञानिक प्रकर्षों का भविष्यभाषी

फ्रेंच कहानीकार—जुले वर्न

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

उन्नीसवीं शती के नवम दशक की यह बात है। एक दिन भरावदार लाल-लाल गल-मौछ वाला एक पुरुष फ्राँस के शिक्षा-मन्त्री से भेंट करने के लिये जा पहुंचा। भेंट-पत्री (विजिटिंग कार्ड) को निहारते ही शिक्षा-कार्यालय के स्वागत-सचिव का मुखारविन्द उल्लास से चमक उठा—'आईए, वर्न महोदय पधारिए'—आराम कुर्सी प्रदान करते हुए उसने कहा—"कृपया यहां थोड़ा समय विश्राम कीजिए! आप तो देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर की यात्रा करते रहते हैं, अतः आप थके हुए होंगे!

और ठीक ही था। कलम-बाज जुले वर्न सचमुच परिश्रांत था। उसने अनेक बार पृथ्वी की परिक्रमा की थी। एक बार तो महासागर के अन्तराल में प्रविष्ट होकर उसने ८० दिन दिन तक साठ हजार मील की साहस-यात्रा की थी। चद्रलोक में परिभ्रमण किया था और धरित्री के पेट तक में वह प्रविष्ट हो गया था। द्वीप-द्वीपान्तर के आदिवासियों के साथ उसने वार्तालाप किए थे। "लेखक" जुले वर्न की यात्रा से इस भूमण्डल का शायद ही कोई प्रदेश अछूता रह गया हो।

परन्तु "मानव" जुले वर्न तो घर-घुसना सा था। यदि उसे किसी बात की थकान लगी होगी तो वह थी लिखने की। लगातार ४० वर्ष तक वह अपनी जन्मभूमि आमीन में, अपने मकान के दुतल्ले पर, एक छोटी-सी कोठरी में बैठा-बैठा कलम चलाता रहा। एक वर्ष में वह दो पुस्तकें लिख डालता था।

जुले वर्न एक महान् स्वप्नद्रष्टा था। इतना ही नहीं आने वाले विश्व की रूपरेखा आँकने वाला एक महान् आलेखक था। अभी तो रेडियो के आविष्कार में पर्याप्त समय बाकी था कि उसने टेलीविजन की कार्य-प्रणाली लिख डाली थी। उसने इसका नाम "फोनो-टेलीफोटो" रखा था। राइट बन्धुओं द्वारा आविष्कृत वायुयान के उड़ाये जाने से ५० वर्ष पहले ही वर्न के कल्पना-व्योम में 'हेलीकोप्टर' परिक्रमा कर चुके थे। बीसवीं शती की शायद ही कोई ऐसी वैज्ञानिक सम्भावना बची रह गई हो, जिसका भविष्य-दर्शन इस कल्पनाशील मानव ने न किया हो। इस विषय में तो अंश-मात्र भी आशंका नहीं रही है कि पनडुब्बियों, डुबकने जहाजों, गगनचुम्बी भवनों, यान्त्रिक सीढ़ियों और कवच-सज्जित गाड़ियों आदि की वैज्ञानिक कहानियों का तो यह "पितामह" था।

आने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों के विषय में जुले वर्न इतनी विषदता के साथ आलेखन करता था कि उस की संभावनाओं के विषय में वैज्ञानिक परिषदें चर्चाएँ किया करती थीं और वर्न द्वारा दिये गये आंकड़ों का संतुलित हिसाब लगाने के लिये गणित-शास्त्री कई सप्ताह लगा डालते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जुले वर्न के साहित्य से प्रेरणा पाने वाले अनेक विश्वविश्रुत साहसिकों और वैज्ञानिकों ने उसे कृतज्ञतापूर्ण मानांजलियाँ अर्पित की हैं। विमान द्वारा उत्तरी ध्रुव में जाने वाले साहसिक एडमिरल बर्ड ने कहा था — "जुले वर्न मेरे प्रदर्शक थे।"

आकाश में १६ किलोमीटर (१०-मील) तक की ऊंचाई पर तथा सागर की अधिक से अधिक गहराई तक पहुंच ने वाले आंगस्ट पिक्कार्ड एवं वायरलेस के आविष्कार मारकोनी आदि अनेक विज्ञानविशारदों ने यह स्वीकार किया है कि वैज्ञानिक साहसों के लिए हमें प्रारम्भिक प्रेरणा प्रदान करने वाला एक ही व्यक्ति था—जुले वर्न ! फ्रांस की लोक-सभा में मार्शल ल्योते ने एकबार कहा था— "आधुनिक विज्ञान क्या है ? जुले वर्न ने जो कुछ शब्दों में व्यक्त किया था, उसीका व्याव-हारिक रूप आज का विज्ञान है !"

वह स्वयं ही कहा करता था कि एक व्यक्ति जिस वस्तु की कल्पना कर सकता है, दूसरा उसे निर्माण करके बता सकता है। अपने कल्पना लोक में प्रबुद्ध अनेक तरंगों को वास्त-विक रूप में देखने का सौभाग्य भी जुले वर्न को प्राप्त हुआ था।

जुले वर्न का जन्म सन् १८२८ में नांतिस् नगर नें हुआ। अभी नेपोलियन महान् के अवसान (१८२१) को सात ही वर्ष हुए थे। रेलगाड़ी का प्रचलन प्रारंम्भ हुए पांच ही वर्ष बीत पाये थे। अतलांतिक महासागर का अवगाहन करने वाले जहाजों में यन्त्रों की स्थापना की जा रही थी। उनके अन्दर वाष्प-यंत्र की योजना के साथ-साथ पाल भी लगाये जाते थे कि कहीं एंजिन बंद हो जाने पर स्टीमरों की यात्राएँ ठप्प न हो जाएं।

पिता के आग्रह से १८ वर्ष की भरी तरुणाई में वर्न ने पेरिस में कानून-शास्त्र का अध्ययन प्रारंभ किया। परन्तु वर्न को तो कविताएं और नाटक लिखने की धुन सवार थी। वार्ता-लाप में वह बड़ा हाजिर-जबाब था और व्यवहार में बेपरवाह।

इसी समय एक दिन वर्न के लिए एक अनुकूल घटना अचानक हो घटित हुई। एक सांझ को पेरिस के एक शानदार प्रीतिभोज के समारंभ से उकता कर वर्न अचानक ही खड़ा हो गया और सीढ़ियां उतरने लगा। अन्तिम सीढ़ी पर आते ही उसकी एक महाशय से भेंट हो गई। ये महाशय थे फ्रांस के लोकप्रिय साहित्यकार अलक्जेंडर ड्यूमा। दोनों की इस प्रथम भेंट ने ही गाढ़ मैत्री का सूत्रपात किया। इस प्रेम-परिचय का ही परिणाम आया कि जुले वर्न सर्वात्मना लेखन कार्य की ओर जुट गए ! दोनों मित्रों ने मिल कर एक नाटक का प्रणयन किया। फ्रांस में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के क्षेत्र में जो महान् कार्य ड्यूमा ने किया, वैसा ही यशस्वी कार्य भूगोल के विषय में करने का वर्न ने निश्चय किया।

पिता की सहायता से वर्न शेयर बाजार में दलाल का काम भी करने लगा। इस प्रकार वर्न की दशा उन्नत होने लगी। तो भी अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुराने घर में ही रहने और लिखने का कार्य उसने चालू रखा। प्रातः छः बजे ही वह लिखने में जुट जाता था। वह एक सामयिक पत्र के लिए वैज्ञानिक विषयों पर लिखा करता था। दस बजते ही दलाल लोगों की-सी पोशाक में सजकर शेयर-बाजार में उपस्थित हो जाता था।

जुले वर्न ने अपना प्रथम वैज्ञानिक उपन्यास "बैलून में पांच सप्ताह" बारी-बारी से पंद्रह प्रकाशकों के पास भेजा था, परन्तु सभी ने लौटा दिया। यह देखकर वर्न खिज उठा और उपन्यास को अँगीठी में डालने लगा। परन्तु वर्न की गृहिणी ने दौड़ कर उसे बचा लिया। गृहिणी ने पतिदेव से बचन प्राप्त कर लिया कि दो तीन अन्य प्रकाशकों को पुस्तक भेज देना ठीक है। सोलहवें एक प्रकाशक ने उसे स्वीकार किया और पुस्तक प्रकाश में आई।

देखते ही देखते यह अतिशय लोकप्रिय हो गई। सर्वाधिक बिक्री वाली पुस्तकों में यह गिनी जाने लगी। सभ्य संसार की प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद होगया। सन् १८६२ तक इस पुस्तक के चौंतीस वर्ष के लेखक की ख्याति दूर-दूर देशों तक फैल चुकी थी। वर्न ने शेयर बाजार को अंतिम प्रणाम कर दिया और प्रति वर्ष दो उपन्यास लिखकर देने का ठेका एक प्रकाशक के साथ कर लिया!

इसके पश्चात् वर्न ने "धरती के पेट में" नामक पुस्तक लिख डाली। इस उपन्यास के पात्र आइसलैण्ड द्वीप के एक ज्वालामुखी के मुख के रास्ते पृथ्वी के पेट में प्रविष्ट होते हैं और सहस्रों संकटों का मुकाबला करते हुए इटली देश के एक दूसरे ज्वालामुखी में से प्रवाहित होते हुए लावा-प्रवाह के साथ बाहर निकलते हैं। पृथ्वी के गर्भ में जो कुछ भी हो रहा है उसके विषय में सभी प्रकार की विज्ञान की बातों के सिवाय नाना कल्पनाएँ भी इस कहानी में गूँथी गई हैं। साथ ही साथ रोम-हर्षक साहसिकता की आकर्षक सामग्री भी इसमें प्रस्तुत है। पढ़ते-पढ़ते वाचकगण उकताते ही नहीं।

इसी समय स्वेज नहर-निर्माण का यशस्वी कार्य पूर्ण करके विख्यात फ्रेंच इंजिनीयर फर्डिनैण्ड दि लेपेप्स पेरिस आया। वर्न के कृति-कौशल पर वह आफरीं हो गया। उसने फ्रेंच सरकार से निवेदन करके इस अद्भुत साहित्य-स्रष्टा को "लिजियन आफ ऑनर" का पदक दिलवा कर सम्मानित किया।

इन्हीं दिनों वर्न-दंपती के घर पुत्र जन्म की बधाइयाँ आने लगी और लक्ष्मी का प्रवाह भी इनके आँगन में आने लगा। वाचक-संसार में तो इसका जय-जयकार पहले से ही हो रहा था। इस प्रकार राजधानी पेरिस में प्रतिष्ठा प्राप्त करके वर्न ने आमीन नगर में जा बसने का निश्चय किया। आमीन आकर इसने एक बढ़िया जहाज मोल लिया! नया सुन्दर सा घर बनाया उसके ऊंचे मीनार की चोटी पर जहाज के कप्तान की-सी एक केबिन बनवाई! नाना नकशों, चित्रों और पुस्तकों से उस कुटीर को सुसज्जित करके उसने निर्बाध रूप से लिखना प्रारंभ किया। अपने जीवन के पिछले चालीस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष वर्न ने इसी कुटीर में बिताए।

वर्न की समस्त कृतियों में कदाचित् "अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा" पुस्तक ही सबसे अधिक ख्यातिमान् हुई। पेरिस के एक समाचार पत्र में यह धारावाहिक रूप में छपा करती थी। इस विशद कहानी का नायक "फोग" है। इस ने अपने आप एक शर्त लगाई और उसके विजय के लिए होड़ में उतर पड़ा। इस स्पर्धा-कथा को पढ़ने के लिए देश-देशान्तर के लोग "फोग" के साथ इतने अधिक ओतप्रोत हो गए कि यह "कल्पना वीर" अपनी यात्रा के किस पड़ाव तक पहुँच पाया है—यह जानने के लिए सहस्रों पाठक अखबारों की प्रतीक्षा में रहते थे और लन्दन और न्यूयार्क के अखबार वाले अपने पेरिस स्थित संवाददाता से रेडियो संदेश अपने कार्यालयों में मंगवाते थे।

यह बात है सन् १८७२ की। इसके ७०वर्ष पश्चात् न्यूयार्क के एक समाचार-पत्र में समाचार छपा कि नेली ब्ली नामक महिला ने ७२ दिवस में पृथ्वी की परिक्रमा की है। इस प्रकार इस महिला ने "फोग महाशय" की काल्पनिक विक्रम-कथा के लेखे (रिकार्ड) पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद साईबेरिया पार करने वाली रेलवे लाईन तैयार हुई और उसकी सहायता से एक फ्राँसीसी ने ४३ दिवस में यह परिक्रमा पूरी की थी। पर ध्यान में रहना चाहिए कि साईबेरिया आर पार करने वाली रेल-लाईन की भविष्यवाणी तो वर्न साहब वर्षों पहले कर चुके थे। "समुद्र की तलहटी ६० हजार मील" यह नाम है वर्न साहब की एक सामुद्रिक साहस-कथा पुस्तक का। इस कथा में वर्न महोदय ने "नोटिलस्" नामक जिस पनडुब्बी (सबमेरीन) की परिकल्पना की है, वह विद्युत् शक्ति से परिचालित होती थी इतना ही नहीं, वह समुद्र में से ही बिजली पैदा कर लिया करती थी। वर्न महोदय की इस कल्पना को ब्रिटिश विज्ञान-विशारदों ने अभी हाल में ही सिद्ध कर दिखाया है। नोटिलस् पनडुब्बी महीनों तक जल में निमग्न रह सकती थी। अमरीकन नौका-विभाग की नवीनतम सबमेरीन ने महीनों तक सागर के अन्तर्गर्भ में रहने का जो करिश्मा कर दिखाया है उसकी मूल प्रेरणा वर्न महोदय की "नोटिलस्" ही है।

भविष्यदर्शी वर्न महोदय को अधिकाधिक कीर्तिमान् बनाने वाली है एक पुस्तक—"अमरीकन पत्रकार की स्मरण-पोथी"। यह पुस्तक बहुत कम वांची गई है।

सन् २८९० में न्यूयार्क का नाम "विश्व-नगरी" बन गया है। यह विश्व की राजधानी है। उसके प्रधान मार्ग १००-१०० गज चौड़े हैं। उनके दोनों ओर हजार-हजार फीट ऊंची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं। भूमण्डल की आबोहवा को मानव ने अपने वश में कर लिया है। उत्तरी ध्रुव के निर्जन हिम प्रदेशों में खेतीबारी होने लगी है। मेघ-मंडलों पर विज्ञापन अंकित किए जाते हैं। वर्न महोदय की इस कथा का नायक "विधाता का पहरेदार" नामक अखबार निकालता है। उसके वाचक गण आठ करोड़ हैं। इस समाचारपत्र के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संवाददाता विभिन्न ग्रहों में निवास करते हैं टेलिवीजन द्वारा समाचार भेजते हैं। पत्र के ग्राहक अपने दीवानखाने में बैठे-बैठे ब्रह्मांड की घटनाओं के नाना दृश्य निहार सकते हैं। वह पोथी वर्न महाशय ने आज से कोई ६०-७० वर्ष लिखी थी—इस बात पर सहज में विश्वास हो नहीं होता !

अब वर्न महाशय का बुढ़ापा समीप आगया। जीवन का सौख्य शनैः शनैः कम होने लगा। ईर्षालु साहित्य-सेवी जन इनका विरोध करने लगे। उस युग में फ्रैंच लेखकों में वर्न महाशय की पुस्तकें सबसे अधिक पढ़ी जाती थी तो भी फ्रांस की "साहित्य एकेडेमी" में इस वृद्ध और लोकप्रिय कहानीकार को स्थान नहीं मिला। अन्तिम दिनों में वर्न-दादा मधुमेह की बीमारी से पीड़ित रहने लगे थे। नयनों की ज्योति कम हो चली थी। बहरापन भी बढ़ने लगा था। वर्न-दादा की अन्तिम कृतियां सरमुख्त्यारों और अत्याचारियों के आगमन की विभीषिका से भरी हुई हैं।

सन् १६०५ की २४ वीं मार्च को आमीन में ही वर्न दादा का अवसान हुआ। समस्त संसार के प्रतिनिधि उसकी मैयत में मौजूद थे। फ्रैंच एकेडेमी के ४० सदस्य, देशदेशान्तरों के राजदूत, सम्राटों और राष्ट्रपतियों के विशेष प्रतिनिधि एकत्र होकर उसकी समाधि पर श्रद्धा के पुष्प चढ़ा रहे थे। समाधि फूलों का ऊंचा अंबार खड़ाहो गया था। उन सब श्रद्धांजलियों में पेरिस के एक समाचार पत्र की अंजलि कदाचित् वर्न महाशय के हृदय को अधिक स्पर्श कर रही थी—"कहानी कहने वाले दादा जी सदा के लिए चले गए।"

—

चूहों से बचाव

गोदामों में पड़े अनाज का दूसरा शत्रु है—चूहा। सौ चूहे वर्ष भर में २०० से २७० मन तक अनाज नष्ट कर सकते हैं। एक वर्ष में चूहों के एक जोड़े से ८०० चूहे और पैदा हो जाते हैं। शहरों और देहातों के प्रायः सभी घरों में चूहे काफी नुकसान पहुंचाते हैं।

चूहों से बचने का पहला उपाय यह है कि गोदामों का फर्श सीमेंट और कंक्रीट का बनाया जाय, उन के दरवाजे ठीक तरह बन्द होते हों और उन के नीचे के किनारे पर ६ इंच तक टीन की पट्टियां लगी हों।

चूहों को मारने का सर्वोत्तम विष जिंक फासफाइड है। इस विष को सीले अनाज, गेहूं या चने के आटे में मिला कर रकाबी में उन स्थानों में रख दिया जाता है जहां से चूहे प्रायः गुजरते हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गीता का महत्व

अमेरीकन विद्वान् प्रो० एजर्टन की सम्मति

१९२५ के अपने छोटे से विवेचन में मैंने गीता को (भारत की प्रिय बाइबल) यह नाम दिया था। अब भी यही नाम इस के लिए अच्छा प्रतीत होता है। मूल उद्धरण से ही देखिये "भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक की सामूहिक धार्मिक चेतना में यह व्याप्त है।" अतः भारतीयों में इस के न जानने का वही अर्थ है जो किसी आंग्लभाषी का बाइबल को न जानने का। यह भारत के अनेक राजनीतिक और बौद्धिक नेताओं का मूल स्त्रोत रही है। महात्मा गांधी, जिन्हें हम एक राजनीतिक की अपेक्षा जातीय सांस्कृतिक रूप में अधिक देखते हैं, इस के प्रतीक हैं। एक शताब्दी से कुछ ही पूर्व यूरोप और अमेरिका के विद्वान् भगवद्गीता से परिचित हुए। यह ग्रन्थ जर्मनी के वॉन हमबोल्ट और अमेरिका के इमर्सन जैसे विचार मनीषियों की निष्ठा का पात्र बन गया। अमेरिका के कुछ दार्शनिक और राजनीतिक सङ्गठन आज गीता के प्रति भारतीयों के सदृश ही पूज्य शुद्धि रखते हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसे विद्वानों की संख्या बढ़ती जाती है, जो पाश्चात्य विचार-धारा को सर्वोत्कृष्ट समझते हैं।

परन्तु अब अनुभव करते हैं कि पूर्व के अन्य देशों के सदृश (उदाहरणार्थ चीन) भारतवर्ष ने भी सभ्यता, कला, साहित्य, चिन्तन यहां तक कि मानव संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में महान् सर्जनात्मक कृतियां प्रस्तुत की हैं। प्रत्येक शिक्षित नर-नारी को यह ज्ञात होना चाहिये कि भारत में ऐसी वस्तुओं का अस्तित्व है। सभ्यता स्वेज की सीमा पर ही समाप्त नहीं हो जाती और भारतीय साहित्य, भारतीय कला, भारतीय दर्शन, भारतीय सङ्गीत आदि आज भी जीवित हैं।

कुछ भारतीय साहित्य एवं कला की प्रवेश योग्य कृतियां ऐसी हैं जिन का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं और वह परिचय निश्चय ही बहुत आनन्ददायक और लाभप्रद है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति संस्कृत-भाषा की शिक्षा के बिना भारतवर्ष की सांस्कृतिक कृतियों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु यह ऐसी गम्भीर समस्या नहीं जैसी कि कल्पना की जाती है। यदि किसी की भाषा में भाषाशास्त्र-विषयक प्रवृत्ति न भी हो तो भी वह एक वर्ष में संस्कृत भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह सरल शैली में लिखे संस्कृत-साहित्य का रसास्वादन और आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर सके। यद्यपि ऐसा करते हुए उसे शब्दकोष की भी कुछ सहायता लेनी होगी।

निःसन्देह इस के लिये कुछ परिश्रम करना होगा। स्वान्तः सुखाय पाठक के ध्यान को आकृष्ट, तथा अध्ययन की प्रवृत्तियों को उत्साहित करने वाले साहित्य से किसी नवशिक्षार्थी के प्रथम परिचय पाने पर उस की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अभिरुचि जाग जाती है और कठिनाइयों की गम्भीरता नष्ट हो जाती है।

मेरे विचार में भगवद्गीता, अन्य किसी भी संस्कृत ग्रन्थ की अपेक्षा, उपर्युक्त गुणों से अधिक विभूषित है। अधिकांश में यह सुबोध एवं सरल है। संस्कृत के प्रथम अथवा द्वितीय वर्ष के अध्ययन के उपरान्त एक विद्यार्थी, जिसने कि तीन अथवा चार अध्यायों के अध्ययन में सहायता प्राप्त की है और जो ग्रन्थ की शैली तथा प्रतिपाद्य विषय से भलि-भाँति परिचित हो गया है, वह बिना किसी शिक्षक तथा शब्दकोश की सहायता के इस पुस्तक का पारायण कर सकेगा। इस के साथ-साथ वह संसार की महान् धार्मिक पुस्तकों में से एक, जो कि भारतवर्ष की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली 'बाइबल' है, का परिचय प्राप्त कर रहा होगा। अध्ययन करते हुए, इस ग्रन्थ की प्रभावशालिता एवं महत्ता का ज्ञान लेना उस के लिये संभव होगा। इस के लिए उसे अपने धर्म परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। गीता की सरलता, महिमा तथा उस में वर्णित माननीय प्रतिष्ठा इस बात को भलि-भांति स्पष्ट कर देगी कि भारतीय जनता का इस के प्रति, २०० वर्ष के पश्चात् अभी तक भी ज्यों का त्यों प्रभावशाली रहने वाला, इतना आकर्षण क्यों है। गीता में आकर्षण-शून्य भी अनेक अंश हैं, परन्तु क्या बाइबल में ऐसे अंश नहीं ? जिन के सम्बन्ध में भक्तों की यह आन्तरिक भावना होती है कि काश ! बाइबल में ये न होते।

("भगवद्गीता" नामक पुस्तक से उद्धृत)।

—

ज्ञातव्य बातें

१. विश्व भर में २,००० फुट से अधिक लम्बे कुल ७ रेलवे प्लेटफार्म हैं, जिन में से ५ भारत में हैं। लम्बाई की दृष्टि से उत्तर-पूर्वी रेलवे का सोनपुर का प्लेटफार्म दूसरे स्थान पर और दक्षिण-पूर्वी रेलवे का खड़गपुर का प्लेटफार्म तीसरे स्थान पर है।

२. भारत में प्रतिवर्ष ५५ करोड़ ५५ लाख पौंड तम्बाकू पैदा होता है और तम्बाकू उत्पादन में भारत का स्थान, अमरीका और चीन के बाद, तीसरा है।

३. भारत ने १९२८ में एमस्टर्डम में हुए ओलिम्पिक खेलों में पहली बार भाग लिया था। तब से अब तक हाकी के खेल में वही सदा विजयी रहा है।

४. भारत में चावल की खेती की जापानी पद्धति १९५३-५४ में अपनायी गयी थी। इस से चावल के उत्पादन में १९५३-५४ में १,३१, ३९५ टन, १९५४-५५ में ४,९६, ४०० टन और १९५५-५६ में ८,२८,१९० टन की वृद्धि हुई।

५. भारतीय समाचार-पत्र प्रति वर्ष लगभग ६०,००० टन न्यूज प्रिंट इस्तेमाल करते हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नीदरलैण्ड में संस्कृत का अध्ययन

प्रोफेसर जे० डब्ल्यू० डी० जोंग

नीदरलैंड में संस्कृत भाषा के अध्ययन के सम्बन्ध में आपको कुछ बताते हुए मुझे गर्व और प्रसन्नता का अनुभव होता है। मैं आल-इण्डिया रेडियो का अत्यन्त आभारी हूं, जिसने मुझे यह सुअवसर प्रदान किया।

डच लोग भारतीय संस्कृति में बहुत रुचि ले रहे हैं। इससे भी पहले सत्रहवीं शताब्दी में, जब डच व्यापारी दक्षिणी-भारत के समुद्र-तटों पर व्यापार कर रहे थे, उन की इस विषय में विशेष रुचि थी।

१६०६ में पुलीकट में पहली डच बस्ती की स्थापना हुई। यहाँ न केवल व्यापारियों को भेजा जाता था, बल्कि डच उपनिवेश-वासियों की आध्यात्मिक आवश्यकता का ध्यान रखने और ईसाई धर्म के उपदेशों के प्रसार के लिए पादरियों को भी भेजा जाता था।

इन पादरियों में से अब्राहम रोगेरियस नामक एक व्यक्ति का परिचय दो ऐसे ब्राह्मणों से हो गया जो पुर्तगाली भाषा बोलते थे। अपने दस वर्ष के पुलीकट-प्रवास-काल में रोगेरियस ने इन लोगों से प्राप्त जानकारी का सावधानी से संचय किया ताकि वह हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों का विस्तृत विवरण दे सके। उस के इस अध्ययन का विवरण, उसकी मृत्यु के दो वर्ष बाद, सन् १६५१ में प्रकाशित हुआ।

उस की पुस्तक में, जिस का अनुवाद जर्मनी और फ्रांसीसी भाषा में भी हुआ है, हिन्दू धर्म का विस्तृत विवरण प्रथम वार दिया गया है। अंग्रेज विद्वान् श्री वर्नेल ने १८६८ में इस पुस्तक की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

"प्राचीनतम होते हुए भी, दक्षिण भारतीय हिन्दू-धर्म का संभवतः यह अत्यधिक पूर्ण विवरण है। इस के अलावा, रोगेरियस पहला व्यक्ति था, जिस ने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भर्तृहरि शतक' को यूरोप के पाठकों के लिए सुलभ किया। निःसँदेह यह अनुवाद शाब्दिक नहीं है, क्योंकि रोगेरियस को उन दो ब्राह्मणों पर निर्भर रहना पड़ता था, जो उसे पुर्तगाली भाषा में जानकारी देते थे।"

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में और भी कई पादरियों और अधिकारियों ने, अपने भारत-प्रवास-काल में प्राप्त हिन्दू जीवन के अनुभवों को शब्दबद्ध किया लेकिन मैं यहां उन के नाम और उन की सेवाओं का विवरण नहीं दूंगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं--सम्पादक ।

श्री मातुः सूक्तिसुधा

अनुवादक श्री पँ० जगन्नाथ वेदालङ्कार, प्रकाशक श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, मूल्य ।||) ।

प्रस्तुत पुस्तक श्री अरविन्दाश्रम की संचालिका श्री माता जी के Words of the Mother नाम से अंग्रेज़ी में प्रकाशित दो भागों का संस्कृत में अनुवाद है । अनुवाद को मैंने मूल वचनों से मिला कर देखा और अत्यन्त शुद्ध पाया । संस्कृत अत्यन्त सरल, ओजस्विनी और परिष्कृत है । अनुष्टुप्, मन्दाक्रान्ता, आर्या, वसन्त, तिलका, शार्द्दूल विक्रीड़ित, उपजाति, आदि कई छन्दों का आश्रय किया गया है । भाव को अनुवाद में स्पष्टतया लाने का यत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है । अन्त में संस्कृत में एक विशेष विवरण देकर अभीप्सा उन्मीलनम्, रूपान्तरम् आदि शब्दों को संस्कृत पाठकों के लिए स्पष्ट किया गया है । श्री माता जी की ये उक्तियां जैसी अत्यन्त स्फूर्ति तथा शान्तिदायिनी हैं, सँस्कृत अनुवाद भी उन के ठीक अनुरूप हुआ है । हम पं० जगन्नाथ जी को इस सफलतापूर्ण प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देते हुए उन का अभिनन्दन करते हैं । --श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।

साहित्य-समीक्षा

गान्धी मार्ग—गांधी विचारधारा का त्रैमासिक पत्र जनवरी १९५७ सम्पादक—श्री एस्. के. जॉज. गांधी स्मारक निधि प्रकाशन विभाग (मणि भुवन लैबरनम रोड़ बम्बई ७) द्वारा संचालित पृष्ठ ७२ वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का १२ आने ।

महात्मा गान्धी एक जगद्विख्यात महापुरुष तथा विचारक थे । वे किसी नये दर्शन, मत या सम्प्रदाय के प्रवर्तक न थे जैसे कि इस पत्र के मुख पृष्ठ पर हीडन का स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय यह वाक्य दिया गया है कि "गान्धीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई मत या सम्प्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूं । तथापि उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों में जो विचार प्रकट किए थे उन को जानना जनता के लिए आवश्यक है । इस त्रैमासिक पत्र का कार्य गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष स्व० श्री बालगङ्गाधर खेर के शब्दों में 'गांधीवादी जीवन-प्रणाली को खुले तौर पर चारों ओर फैलाना और वर्तमान समस्याओं पर उसे चरितार्थ करना होगा । पत्र का यह प्रथम अङ्क हमारे सन्मुख है जिस में महात्मा गांधी जी की विचारधारा से सम्बद्ध १५ उत्तम प्रकाशित हुए हैं । इन में से श्री होरेस अलेक्जेंडर का गांधी और सर्वधर्म समभाव, बिहार के राज्यपाल श्री रङ्गराव जी दिवाकर का 'गांधीवादी अध्ययन' मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पट्टाभिसीतारामैय्या का 'गांधी और गांधीवाद' कुमारी मार्गरेट् बॉर का 'धार्मिक शिक्षा का गांधी मार्ग' श्री जी. रामचन्द्रन् का 'गाँधी से मेरी प्रथम भेंट' महात्मा जी के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

घनिष्ट मित्र और सहयोगी श्री एच् एस् मोलक का 'महात्मा गांधी का सेवाभाव' श्रीमती म्यूरियल् लेस्टर का 'गांधी का नेतृत्व' काका-कालेलकर का 'गांधी और भाषा समस्या' इत्यादि लेख विशेष उपयोगी और विचारोत्तेजक हैं। श्री रामचन्द्रन् ने अपने लेख में बताया है कि किस प्रकार सन् १६२४ में महात्मा गांधी जी के २१ दिनों के उपवास के दिनों में प्रार्थना रूप में उन के दर्शन से उन का दिल प्रज्वलित हो उठा और एक चमक की तरह उन के मन में इस सत्य का उदय हुआ कि दुनियां में परमेश्वर मौजूद है और वह मानवों की अन्त-रात्मा पर राज्य करता है। इस से पूर्व वे कट्टर नास्तिक थे। श्री होरेस अलेक्ज़ेंडर के लेख के ये शब्द उल्लेखनीय हैं कि 'मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस्लाम का सही अर्थ लगाना मेरे लिए आसान नहीं हुआ। जब मैंने कुरान शरीफ़ का अध्ययन धार्मिक श्रद्धा की भावना से करने का प्रयत्न किया तो उस का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ यद्यपि नम्रतावश कोष्टक में उन्होंने लिख दिया है कि—(यह स्पष्ट है कि इस में मेरा ही दोष होगा) पृ० १० ।

सामूहिक प्रार्थना को धार्मिक शिक्षा का गांधी मार्ग बताते हुये कुमारी मार्गरेट् ने अपने उत्तम लेख में ठीक ही लिखा है कि—'अगर इस्लाम से मतलब कुरान शरीफ को खुदा की सर्वश्रेष्ठ उक्ति समझना और हज़रत मुहम्मद को खुदा के आखिरी और श्रेष्ठतम पैगम्बर स्वीकार करना हो तो फिर दूसरे धर्म वालों में उस के प्रति बहुत ही कम भक्ति-भाव का निर्माण हो सकेगा। और अगर ईसाइयत से मतलब यह श्रद्धा हो कि ईसामसीह ही परम पिता (परमेश्वर) का पैदा किया हुआ एक मात्र पुत्र थे और उन का प्रायश्चि-त्तात्मक बलिदान ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग है, तो उस का असर भी केवल उन्हीं लोगों पर होगा जो लोग पहले से ईसाई बने हुए हैं या दूसरे सब धर्मों के गुणों से इन्कार कर के ईसाई धर्म का स्वीकार करने को तैयार हैं। अतः महात्मा गाँधी जी के शब्दों में लेखिका ने धर्म का यह लक्षण किया है जो आदमी के स्वभाव तक को बदल डालता है, जो मनुष्य को आन्तरिक सत्य के साथ अभेद रूप से बांध देता है और जो हमेशा परिशुद्ध बनाता रहता है। यह तो उस सर्वसाक्षी परमेश्वर से मार्ग-दर्शन मिलने का विश्वास है।' इत्यादि पृ० ३२ ।

इसी प्रकार अन्य लेख भी महात्मा गांधी जी की विचारधारा और उन के सन्देश पर उत्तम प्रकाश डालने वाले हैं। इस दृष्टि से हम इस पत्र का अभिनन्दन करते हैं। यह दुख की बात है कि भारतीय विद्वानों के लेख इस अङ्क में कम हैं और पाश्चात्यों के ही अधिक हैं जिस की शिकायत सम्पादक महोदय ने भी 'वास्तव में भारतीय मित्रों से लिखवाना मुश्किल होता है' जबकि गांधी के विदेशी प्रशंसक एवं अनुयायी पत्रोत्तर देने और लेख भेजने में बड़े तत्पर रहते हैं। इत्यादि शब्दों में की है। जहां महात्मा गांधी जी के अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वाक्य उद्धृत किये जाएं वहां उन का पूरा प्रतीक देना चाहिए। खेद है कि मुख पृष्ठ पर उद्धृत "गांधी वाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई मत या सम्प्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूं।" इस महत्त्वपूर्ण वचन का प्रतीक नहीं दिया गया। सम्पूर्णतया यह पत्र सब विचारकों के लिये उपयोगी और उपादेय है। शुद्ध, प्रायः सर्वत्र प्रचलित देव-नागरी लिपि में ही यदि इस में लेख प्रकाशित किए जाएं और अिस अेक जैसे व्याकरण विरुद्ध विचित्र रूप न रहें तो अत्युत्तम होगा।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

उत्तराखण्ड का नकशा

प्रकाशक—रामेश्वर पुस्तकालय श्री चन्द्र जी का मन्दिर पो. ओ. कनखल (हरिद्वार) मूल्य ।।।)

२२ इंच × ३४ इंच आकार में मोटे कागज पर श्री स्वामी बुद्धि चन्द्र पुरी ने यह नकशा तैयार किया है। इस नकशे में उत्तराखण्ड के गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ, मान-सरोवर आदि तीर्थ स्थानों को जाने के पैदल और मोटर के मार्ग दिखाए हैं। इस प्रदेश की नदियां और पगडंडियां भी इस मानचित्र में अङ्कित की गई हैं। उत्तराखण्ड के इन भागों में यात्रा करने वालों के लिए यह मानचित्र बड़ा उपयोगी है।

--रामेश वेदी।

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी विशेषाङ्क पर सम्मति

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी विशेषांक। सम्पादक समिति—सर्व श्री सुखदेव दर्शन-वाचस्पति, शंकरदेव विद्यालङ्कार और रामेश वेदी। प्रकाशक--मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। वार्षिक मूल्य ४)।

यह गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका है। इस विशेषांक में स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध में अनेक रोचक संस्मरण तथा ज्ञानवर्धक लेख दिए गए हैं। यत्र-तत्र उन के धर्मोपदेश भी दिए गए हैं। भारतीय संस्कृति को समझने के लिए इस में लेखों का चुनाव अच्छा हुआ है। छपाई-सफाई की दृष्टि से भी अङ्क सुन्दर है।

—उषावल्लभ, आज, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

आषाढ़ प्रारंभ हो चुका है और गुरुकुलोद्यान की कुटज-कलियाँ महकने लगी हैं परन्तु अभी तक वर्षा के आगमन का कोई चिन्ह नहीं दिखाई दे रहा है। बीच में कई बार आंधी और मेघों की चढ़ाइयां होती रहीं। तथापि उत्ताप में कोई कमी नहीं आई! प्रभात अवश्य सुहावने होते हैं पर दिन खूब तपर हे हैं। ऊपर पर्वतों पर वर्षा होने के समाचार आये हैं अतः नहर का पानी कुछ-कुछ गंदला होगया है। पावस-दूत कृष्ण चातक के कलरव प्रारंभ हो गये हैं, अतः वर्षा शीघ्र ही आनी चाहिए। आमों की मौसम अपने प्रकर्ष पर है। कुल की आम्रवाटिकाओं में दिन भर ग्राहकों की रौनक रहती है। लीचियाँ समाप्त हो चलीं।

विद्यालय-विभाग के छात्र अपनी मंसूरी यात्रा से लौट आये हैं। आषाढ़ के प्रारंभ से कुल में भी इन्फ्लूएंजा का प्रभाव फैल रहा है। छोटे छात्रों में कई छात्र इन्फ्लूएंजा से प्रभावित हैं, परन्तु चिन्ता जनक स्थिति नहीं है। रोक-थाम की व्यवस्थाएँ कर दी गई हैं। इन्फ्लूएंजा के लिए गुरुकुल फार्मेसी द्वारा निर्मित गुरुकुल चाय बहुत लाभप्रद सिद्ध हो रही है।

नवीन सत्र

दीर्घावकाश के बाद २० जून से कॉलेज विभाग की पढ़ाई नियम पूर्वक प्रारंभ हो चुकी है। विद्यालय विभाग की पढ़ाई प्रथम जुलाई से प्रारंभ होजायगी। छात्र यात्राओं से लौट आये हैं। पुस्तकालय का कार्य भी प्रारंभ होगया है।

नये भवन

आयुर्वेद महाविद्यालय के ऊपर के तल्ले पर जीव-विज्ञान प्रयोगशाला का भवन बन कर तैयार होगया है। नवीन सत्र से छात्रों की कक्षा वहीं लगा करेगी। विज्ञान-भवन की नींव भर चुकी है। वर्षा काल के पश्चात् भवन निर्माण का कार्य प्रारंभ हो जायगा।

संग्रहालय में नई वृद्धि

पक्षियों के रंगीन चित्र

गत मास संग्रहालय में पक्षियों के दो रंगीन चार्टों की वृद्धि हुई। इनमें संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में वर्णित निम्न पक्षियों को अपने असली रंगों में दिखाया गया है—श्येन, काष्ठकूट (कठफोड़ा), तीवर, गरुड़, कादम्ब, कारण्डन, क्रौंच और खञ्जन। इन चित्रों को ब्रह्मचारी कैलाश चतुर्दश श्रेणी ने श्री पं० शंकर देव जी विद्यालंकार की देख-रेख में बड़े प्रामाणिक रूप में तैयार किया है। इस से पहले गत वर्ष श्री शंकर देव जी ने कालिदास वर्णित पक्षियों के चार्ट तय्यार करवाने, पक्षियों की सही पहिचान करने, श्री सालिम अली व्हिस्लर तथा श्री कुमार धर्मकुमार सिंह (भावनगर) आदि पक्षीशास्त्रज्ञों की पुस्तकों से उनके रंगीन चित्र खोजने, इन पक्षियों की विशेषतायें प्रदर्शित करने वाले कालिदास के श्लोकों को ढूंढने तथा इन्हें सुलेख में पक्षियों के नामों के साथ चार्टों पर अंकित करने में बहुमूल्य सहयोग दिया था और इस प्रकार तय्यार किये गए तीन चार्टों में राजहंस, चक्रवाक, सारस, मयूर, सारंग, चातक, हारीत, बलाका, सारिका, कोयल, शुक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और पारावत को इनके असली रंगों में दिखाया गया है। इन रङ्गीन चार्टों से संग्रहालय की शोभा बहुत बढ़ गई है और ये न केवल सामान्य दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बन गये हैं, अपितु संस्कृत-साहित्य के रसिकों तथा कलामर्मज्ञों को वाङ्मय में वर्णित पक्षियों का सजीव रूप में प्रदर्शित करने के कारण शिक्षा का उत्कृष्ट साधन बन गये हैं। इस का अधिकांश श्रेय श्री पं० शंकरदेव जी को है, संग्रहालय इस से उन का ऋणी है।

उन का पोरबन्दर चला जाना संग्रहालय के लिए एक बड़ी अपूरणीय क्षति है। आशा है संग्रहालय को उन का बहुमूल्य सहयोग बाहर जाने पर भी मिलता रहेगा और वे अब गुजरात के पुरातत्व, इतिहास, लोक कला की बहुमूल्य वस्तुओं द्वारा संग्रहालय को समृद्ध बनाने की कृपा करेंगे।

आयुर्वेद परिषद् का उत्सव

पिछले दिनों गुरुकुलीय आयुर्वेद परिषद् का उत्सव आदरणीय गुरुवर श्री वैद्य धर्मदत्त जी के सभापतित्व में बड़े उत्साह से मनाया गया। विवरण में इस वर्ष की गई विशेष प्रगतियों का परिचय दिया गया। निम्नलिखित छात्र अपनी विशेष उपलब्धियों के लिए सभापति द्वारा पुरस्कृत और अभिनन्दित हुये।

१. ब्रह्मचारी सुरेन्द्रकुमार भारद्वाज ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।
२. ब्र० रामदेव ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा मे २ य स्थान प्राप्त किया।
३. ब्र० चन्द्रप्रकाश ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया।
४. ब्र० राजेश्वर भाटिया ने बोर्ड की तृतीय वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।
५. ब्र० नृपेन्द्रकुमार ने बोर्ड की तृतीय वर्ष की परीक्षा में तृतीय स्थान प्राप्त किया।

निम्नलिखित छात्रों ने परिषद् की उन्नति के लिए विशेष कार्य किए। तदर्थ उन का भी सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन किया गया। ब्र० सुरेन्द्रप्रकाश, ब्र० नृपेन्द्र कुमार, ब्र० राजेन्द्रनाथ, ब्र० हरिप्रकाश, ब्र० विष्णुदत्त, ब्र० सुरेन्द्र कुमार, ब्र० दीनदयालुसिंह, ब्र०

श्री राजेश्वर जी भाटिया मन्त्री, आयुर्वेदीय छात्र परिषद् जो भारतीय चिकित्सा परिषद् की तृतीय वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रेमचन्द्र, ब्र० धनप्रकाश, ब्र० सुरेन्द्र मोहन, ब्र० योगेन्द्र कुमार ।

परिषद् के अध्यक्ष और मन्त्री के रूप में उत्साहवर्धक कार्य करने के लिये क्रमशः ब्र० जयप्रकाश और ब्र० राजेश्वर को सन्मानित किया गया। रात्रि में परिषद् के सदस्यों ने पार्लमेंट, कवि-सम्मेलन और चारु वेशभूषा प्रतियोगिता के मनोरंजन कार्य-क्रम प्रस्तुत किए जो कि बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुए ।

मान्य अतिथि

पिछले मास कई मान्य अतिथियों ने गुरुकुल विश्वविद्यालय का अवलोकन किया, जिन में केन्द्रिय मन्त्री श्री दातार जी, उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री हुकमसिंह जी तथा डेवलपमेंट कमिश्नर श्री भगवन्तसिंह जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर प्रदेश के आयुर्वेदीय विभाग के संचालक श्री कुलकर्णी जी भी आयुर्वेद कालेज का निरीक्षण करने कुल में पधारे। आपने नवनिर्मित जीव-विज्ञान की प्रयोगशाला और द्रव्यगुण संग्रहालय का अवलोकन कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

शोक वार्ता

दुःख का विषय है कि कुल के सुयोग्य स्नातक श्री आत्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार का २४ मई को अपने निवास स्थान गोरखपुर में अवसान हो गया। आप कई मास से बीमार चले आ रहे थे। गोरखपुर में अपनी सेवा-भावना और चिकित्सा-कार्य द्वारा आपने अच्छा यश संपादन किया था। आप सन् १९३३ में गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से स्नातक हुए थे।

कुल के योग्य स्नातक और दयानन्द आयुर्वेद कालेज जालन्धर के आचार्य श्री ओम्दत्त जी आयुर्वेदालङ्कार का पिछले दिनों एक मोटर दुर्घटना द्वारा देहावसान हो गया है। आप सन् १९३७ में गुरुकुल के स्नातक बने थे और शिक्षण-कार्य में आप ने अच्छी कीर्ति पाई थी। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक और भूतपूर्व सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री पं. जगन्नाथ जी विद्यालङ्कार का गत २५ जून को देहरादून में देहावसान हो गया।

उक्त तीनों स्नातक बन्धुओं के आत्मीय जनों के प्रति कुलवासी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। इन के अतिरिक्त 'गुरुकुल पत्रिका' के संयुक्त सम्पादक श्री रामेश वेदी के सुपुत्र ब्र. सुरेश का गत २७ जून को आकस्मिक दुर्घटना से देहरादून में देहावसान हो गया। वह बड़ा होनहार सुशील बालक था। उस के शोक में विद्यालय में सभा की गई। भगवान् दिवंगत आत्माओं को शांति और सुगति तथा उन के सब सम्बन्धियों को धैर्य प्रदान करे।

सूचना

जो संरक्षक विद्यार्थियों के प्रवेश के समय १००) इमारत फण्ड का इकट्ठा जमा न करवा सकें वे प्रति मास २) भी जमा करवा सकेंगे। आचार्य

★ गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२५
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २. भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध ,उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरत्न ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुनःप्याज़ श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीमःबकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फार्मेसी के दो उपहार

इन्फल्यूंएन्जा से बचने के लिये

गुरुकुल चाय का सदा प्रयोग करें। यह चाय दैनिक प्रयोग के लिये उत्तम है। इस से खांसी, नज़ला, ज़ुकाम, अङ्गों का टूटना आदि अनेक रोगों को आराम मिलता है।

मूल्य १ छटाँक ४० नये पैसे।

रक्त शोधक

फोड़े, फुन्सी व त्वचा रोगों में लाभप्रद है। यह रक्त को शुद्ध कर के शरीर को नीरोग बनाता है।

मूल्य ३)०० शीशी।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश वेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

पूजनीय महात्मा
गांधी

सम्पादक—
श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष ९ श्रावण २०१४ अङ्क १२

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १०८
जौलाई १९५७

★

व्यवस्थापक : श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

घोर प्रतिक्रिया के पुजारी

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

नई दिल्ली के प्रधान मन्त्री-भवन से श्रीमती इन्दिरागांधी की कृपा से एक पुस्तक प्राप्त हुई है जिस का नाम 'ज्योति" है। पुस्तक की छपाई, कागज़, आकार प्रकार आदि का क्या कहना है ? भारत के प्रकाशनों में सर्वोत्कृष्ट कोटि का कह सकते हैं। पुस्तक 'जनहित निधि' नाम की संस्था की ओर से प्रकाशित हुई है। प्रतीत होता है कि यह हमारे प्रतिभासम्पन्न प्रधान मन्त्री जी की क्रियाशीलता का नवीनतम परिणाम है।

पुस्तक में सरदार के. एम. पानिक्कर का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है "The danger of Reaction" प्रतिक्रिया का खतरा। किसी विद्यमान क्रिया अथवा गति का विरोध करने के लिए जो क्रिया अथवा गति की जाती है अथवा होती है, उसे प्रतिक्रिया कहते हैं। सरदार पानिक्कर ने प्रतिक्रिया के जो दृष्टान्त दिये हैं उन्हें पढ़ कर यह आश्चर्य होता है कि उन्होंने जिन्हें प्रतिक्रिया कहा है वे प्रतिक्रियाएं हैं अथवा पानिक्कर साहब का अपना लेख प्रतिक्रियाओं का पुलिन्दा है।

सरदार पानिक्कर ने देश की जिन बातों को प्रतिक्रिया का नाम दिया है वे ये हैं। आप लिखते हैं कि इन दकियानूसी विचारों में से सब से मुख्य अपनी जाति के किसी बीते हुए स्वर्णीय युग का विश्वास है। पानिक्कर साहब की राय है कि जो लोग यह मानते हैं कि उन का भूतकाल सुन्दर था वे भविष्य को कभी सुन्दर नहीं बना सकते। भूतकाल के स्वर्णयुग में विश्वास रखने के परिणामों के बारे में सरदार पानिक्कर की अद्‌भुत राय है। आप लिखते हैं कि हाथ की कारीगरी, पुराने दवा-दारू, खद्दर आदि के सब आंदोलन प्राचीनता वाद के ही परिणाम हैं। सरदार की राय में ग्रामों की दशा पर अधिक ध्यान देना भी प्रतिक्रियावाद का परिणाम है।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि हमारे प्राचीनतावाद का एक बड़ा खतरनाक पहलू यह है कि आध्यात्मिकता को भारत का विशेष गुण माना जाय। आप की राय है भारत की दरिद्रता और दासता का कारण आध्यात्मिकता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की श्रेष्ठता में विश्वास ही है। प्रतिक्रियावाद का एक भयानक दृष्टान्त सरदार पानिक्कर की राय में शराबबन्दी का आन्दोलन है। गौ के लिए पूजा का भाव शराबबन्दी से भी अधिक दोषयुक्त है क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से हानिकारक है। यह स्थापना कर के सरदार पानिक्कर ने इस बात पर बहुत दुःख प्रकट किया है कि भारत में गोमांस के खाने को बुरा माना जाता है। आप का मत है कि मनुष्य जाति में गोमांस का भक्षण बहुत प्रचलित है उसे बुरा मानना निरी मूर्खता है।

आगे चल कर पानिक्कर साहब लिखते हैं कि दो और बहुत विस्तृत भ्रमात्मक वस्तुओं की ओर निर्देश कर देना भी यहां जरूरी है, । हैं—(१) ज्योतिष और (२) आयुर्वेद! उन की राय में ये दोनों अव्वल दर्जे के वहम हैं। 'नैशनल' नाम से सरदार पानिक्कर को बहुत चिढ़ है। आयुर्वेद से सब से बड़ी शिकायत उन्हें यह है कि उसे 'नैशनल सिस्टम ऑफ मेडीसन' समझा जाता है। इस प्रकरण के अन्त में वे लिखते हैं कि आयुर्वेद का सुधार करने की बात उठाना भी केवल राष्ट्रीय हिमाकत का परिणाम है। क्योंकि सुधार होने के पश्चात् आयुर्वेद 'एलोपेथी' में ही समा जायेगा। प्रतिक्रियावाद के अन्य दृष्टान्तों में सरदार पानिक्कर ने देश की कई अन्य भावनाओं को सम्मिलित कर दिया है यथा संन्यासियों तथा पंडितों के लिए आदर का भाव, त्याग की प्रशंसा, कल कारखानों की उन्नति से भय आदि। हिन्दू-समाज के पलि भक्ति और पत्नीव्रत आदि के आदर्शों का उपहास करते हुए नवीनता के इस पुजारी ने उन्हें भी प्रतिक्रियावाद का नमूना बताया है।

अन्त में सरदार पानिक्कर ने लिखा है कि हमारे देश में सब से अधिक खतरनाक प्रवृत्ति यह हो रही है कि शिक्षा को राष्ट्रीय बनाया जाय। वे इस प्रवृत्ति को लम्बी राजनीतिक दासता का परिणाम मानते हैं। उन की राय में यह भी घोर प्रतिक्रियावाद का फल है कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाय। राम और कृष्ण के प्रति भक्ति की भावना को पानिक्कर महोदय मानसिक दासता की पराकाष्ठा समझते हैं।

हम गेंद को दीवार की ओर फेंकते हैं। गेंद दीवार की ओर क्रिया करती है। जब गेंद दीवार से टकरा कर वापिस लौटती है तब उस की गति को प्रतिक्रिया कहते हैं। भारत सदियों तक राजनीतिक और मानसिक दासता में ग्रस्त रहा। उसे हम नीचे की ओर गति या क्रिया कह सकते हैं। समय ने पलटा खाया और हमारे देश ने दासता की चट्टान से टकरा कर ऊपर की ओर उठना आरम्भ किया। राष्ट्रीय चेतना आरम्भ हुई जिस की सहायता से हम ने अपने आप को समझा, अपने व्यतीत-काल के महत्त्व को पहचाना और तब स्वाधीनता प्राप्त कर ली। यह दासता की ओर क्रिया की प्रतिक्रिया थी।

आत्मज्ञान और स्वाधीनता का प्रारम्भ प्रतिक्रया के रूप में हुआ था पर जब हमने उसे प्राप्त कर लिया तब वह प्रतिक्रिया न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रही, 'स्वयं क्रिया' बन गई। सरदार पान्निकर ने आत्मज्ञान और राष्ट्रीयता को प्रतिक्रिया बतलाया है परन्तु यदि सत्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाय, सरदार पानिक्कर के विचारों का परीक्षण किया जाय तो प्रतीत होगा कि वही स्वयं प्रतिक्रियावादी हैं। क्योंकि देश में बढ़ती हुई स्वात्माभिमान और स्वाधीनता की प्रवृत्तियों से डर कर वे उसे पश्चिम की दलदल में घसीटना चाहते हैं। यदि सरदार पानिक्कर के दृष्टिकोण से देखा जाय तो महात्मा गांधी सब से बड़े प्रतिक्रियावादी थे। यदि उनके सब विचार इतने हानिकारक थे जितने सरदार पानिक्कर उन्हें समझते हैं तो उनसे बचने का शायद एक ही उपाय है कि भारत की किश्ती को इंगलैंड या रूस के जहाज़ के पीछे बाँध दिया जाय। स्वाधीन भारत में तो कुछ न कुछ भारतीयता रहेगी ही और भारतीयता से पानिक्कर साहब को चिढ़ है। स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् देश के अनेक पाश्चात्य विचारों के पुजारियों में यह भावना पैदा हो गई है कि कहीं सचमुच हमें भारतीय ही न बनना पड़े। इस भय ने जो प्रतिक्रया पैदा की है सरदार पानिक्कर का लेख उसका एक नमूना है। लेख में विचारों की उलझन इतनी स्पष्ट है कि उसे सिद्ध करने के लिये युक्ति की आवश्यकता नहीं—आश्चर्य ही है कि यह लेख श्रीमती इन्दिरागांधी द्वारा संपादित और प्रधानमंत्री के भवन से प्रकाशित ग्रन्थ में संपादकीय टिप्पणी के बिना कैसे प्रकाशित हो गया।

—

लोकमान्यतिलकः

(२३ जु० १८५७—१ अगस्त १६२०)

१

यो वेदशास्त्रगणितादिविशारदः सन्
गीतारहस्यमलिखच्छुभभावपूर्णम् ।
ग्रन्थांश्च वेदविषये विलिलेख साधून्
तं लोकमान्यतिलकं विनयेन नौमि ॥

२

स्वातन्त्र्यमस्ति सहजो मनुजाधिकारः
तल्लप्स्यते खलु मयेति जुघोष वीरः।
सेहे तदर्थमिह भीषमयातना यः
तं लोकमान्यतिलकं विनयेन नौमि ॥

३

यत् किञ्चिदत्र कथयेयुरिमे समेताः,
नाहं मनागपि बुधा विहितापराधः।
इत्यादिकां विभयवाचमुदाहरन्तं
तं लोकमान्यतिलकं विनयेन नौमि ॥

४

सम्पाद्य चारु शुभ केसरिनामपत्रं
यश्चेतनां जनमनस्सु समानिनाय ।
आसक्तिहीनमनसा च चकार सेवां
तं लोकमान्यतिलकं विनयेन नौमि ॥

ध्रुवः—

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हम अपने राष्ट्र को कैसे सुन्दर बनायें ?

श्री आचार्य पं० चूड़ामणि जी शास्त्री

(भू० पू० आचार्य सनातन धर्म कालेज मुलतान)

हम पर राष्ट्र का ऋण है

भारत हमारे लिए अधिक से अधिक सुख-सामग्री उपलब्ध कर रहा है, अधिक से अधिक हमें सुरक्षित दशा में—दीर्घ जीवन दशा में लाने का प्रयत्न कर रहा है—मानो हमें ऋणी बना रहा है। तब हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है कि हम भी राष्ट्र को सुन्दर बनायें—राष्ट्र का दिया हुआ ऋण उतारें।

कभी भारतीय ऋषियों ने मनुष्य पर तीन ऋण रखे थे, जिनका उतारना सब के लिए आवश्यक था। वे ऋण थे १ देव ऋण, २ ऋषिऋण, और ३ पितृऋण। हम, यज्ञ दान पुण्य आदि शुभकर्म पूरा कर देव ऋण से, वेदों और दूसरी शिक्षाओं को प्राप्त कर—विद्वान् बन कर ऋषिऋण से, एवं विवाह द्वारा उत्तम सन्तान उत्पन्न कर और उसे राष्ट्रसेवा योग्य बना कर पितृऋण से छूट जाते थे। परन्तु वेदों में 'राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि' इत्यादि वचनों के देखने से यह भी निश्चित होता है कि चौथा राष्ट्रऋण भी था। राष्ट्र जब हमें सुखी करे तो हम उसे सुखी क्यों न करें ? राष्ट्र हमें जीवन दे तो हम उस के लिए अपना जीवन न्यौछावर क्यों न करें ? यदि नहीं करते तो तीन ऋणों से छूट जाने पर भी हम चौथे ऋण से ऋणी अवश्य रह जाते हैं। जब तक हम इस चौथे ऋण से नहीं छूट जाते तब तक मुक्ति न मिल सकेगी। ऋण न चुकाता हुआ ऋणी पुरुष जैसे संसार में निन्दनीय होता और प्रभु के आगे दण्डनीय हो जाता है वही स्थिति हमारी होगी।

चाहे कोई साधु हो या महात्मा संन्यासी हो या उदासी, वैरागी हो या निर्मला, ब्राह्मण हो या व्यापारी, पुरुष हो या स्त्री कोई भी हो जब तक इस राष्ट्रऋण से छूट नहीं जाता तब तक वह मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। ऋणी को मुक्ति कैसे मिले ?

यदि हम समाधिस्थ हो कर देखें तो स्पष्टतया यह ऋण प्रतीत होने लग जाता है। क्या साधु महात्मा जो इस शान्त वातावरण में समाधि लगाकर प्रभु चिन्तन कर रहे हैं, उसमें राष्ट्र का सुप्रबन्ध कारण नहीं है ? क्या ब्राह्मण समुदाय, व्यापारी समुदाय, उद्योगपति समुदाय, अध्यापक, वैद्य, डाक्टर या वकील समुदाय एवं श्रमिक वर्ग या महिला वर्ग, सभी राष्ट्रीय सुप्रबन्ध में सुख नहीं पा रहे ? इसका सीधा उत्तर है कि अवश्य हम राष्ट्र के सुन्दर शान्त वातावरण में ही सुख पा रहे हैं। अतः हम सब—हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पार्सी, सिख, यहूदी सब—भारत के ऋणी हैं। यदि सुख के प्रबन्ध में कोई कमी है तो राष्ट्र उसे पूरा करने में दिन-रात लगा हुआ है। अतः हम सब का कर्त्तव्य हो जाता है कि हम भारत का ऋण उतारें—उसे सुन्दर बनाने में सहायक हों।

राष्ट्र को सुन्दर बनाने में हमें यह बात भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यान में रखनी चाहिए कि इसे सुन्दर बनाने में अपनी सुन्दरता का ध्यान हटाना होगा—अपने को मिटाना होगा—बताशा मिटेगा तो दूध को मीठा बना सकेगा। यदि बताशा बताशा बना रहेगा——घुला नहीं तो दूध को मीठा न कर सकेगा। बीज मिटेगा तो जनता को अन्न फल फूल दे सकेगा। चन्दन घिसेगा तो दूसरों को सुगन्ध या ठण्डक पहुंचा सकेगा। काफूर जलेगा, तो दूसरों को प्रकाश दे सकेगा। सुरमा पिसेगा तो दूसरों को नेत्र ज्योति दे सकेगा। तिल पिसेगा तो दूसरों को स्नेह (चिकनाहट) दे सकेगा। मिट्टी कुटेगी तो जनता को सुन्दर बर्तन देकर सुखी कर सकेगी। इसलिए हमें भी अपने को मिटा कर ही राष्ट्र को सुन्दर आबाद करना होगा। स्वयं अमीर न बन कर राष्ट्र को ही अमीर बनाना होगा।

(१) साधु महात्माओं का कर्त्तव्य—

हमारे साधु महात्मा देश की विभूति हैं। वे संग्रह की भावना छोड़ चुके हैं अतः उन को राष्ट्रहित सोचने का उत्तम अवसर मिलता है। वे सोचें कि जब हमें राष्ट्र के सुन्दर प्रबन्ध में समाधि सुख मिलता है, जनता से भोजन और विश्राम मिलता है, सत्कार और सम्मान मिलता है तो हमारा भी कर्तव्य है कि हम उपदेश द्वारा जनता को कर्तव्यमार्ग का उपदेश दें उन में आ रही बुराई को रोकें, राष्ट्र में सङ्गठन शक्ति उत्पन्न करें।

अब जनता को केवल वैराग्यमय उपदेश देना ठीक नहीं। अब तो जनता में उत्साह भरना, उस की शक्ति की सराहना करना—उन्हें बड़े-बड़े कार्यों को पूरा करने के लिए तैयार करना ही परम कर्तव्य होना चाहिए। अब तो अभ्युदय का——सांसारिक उन्नति का——मार्ग सुन्दर बनाते हुए ही मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करना होगा। सचमुच इस राष्ट्र सेवा में ही हमारी मुक्ति छिपी पड़ी है।

मेरी समझ में तो ऐसा आता है कि अब साधु महात्माओं को अपनी मुक्ति की चिन्ता छोड़ कर राष्ट्र की दुःखमुक्ति की भावना पूरी करनी चाहिए। हम जिन का अन्न खा चुके हैं यदि वे दुःखी हैं, उद्विग्न हैं, कर्तव्यहीन हैं अतएव निर्धन होकर कष्ट भोग रहे हैं तो हमें मुक्ति न मिल सकेगी। क्योंकि हम ऋणी बने हुए हैं हमारा ध्यान भी न जमेगा क्योंकि हम ऋणग्रस्त हैं। बस इस ऋण से छूटना हमारा भी कर्तव्य है।

हमें अब मादक वस्तुएं छोड़नी चाहिएं। महात्माओं ने तो दूसरों से इनका परित्याग कराना है। महात्माओं का वातावरण तो निर्लोभ, निर्व्यसनी, अस्वादु, सहिष्णु और कर्तव्यशील होना चाहिए। उनको भाँग, गांजा, चर्स आदि का सेवन शोभा नहीं देता।

धन्य हैं वे महात्मा, नमस्कार है उन ऋषियों को—जो राष्ट्र के उत्थान में, गोरक्षा में, अनाचार निवारण में, सत्सङ्गप्रचार में लगे हुए हैं। मैं सभी महात्माओं को नमस्कार करता हुआ उन की सेवा में नम्र निवेदन करता हूं कि वे इस कर्मभूमि में सब को कर्तव्यकर्म का उपदेश देते हुये प्रभुसत्ता का ज्ञान दे कर सब का जीवन सुन्दर बनायें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञान और कर्म का समुच्चय ही राष्ट्र को देना चाहिए केवल ज्ञानमार्ग वेदविहित नहीं है और ना ही कर्महीन जीवन सम्भव हो सकता है। इतना निवेदन करता हुआ मैं महात्मजनों से क्षमाप्रार्थी होता हुआ इस पथ का पथिक बनने की प्रेरणा करता हूँ।

(२) ब्राह्मण महोदयों का कर्तव्य—

विद्वान् ब्राह्मण भी देश की विभूति हैं। इनको तो गृहस्थ भी चलाना है और राष्ट्रसेवा भी करनी है। धन्य हैं वे विद्वान् जो मन्दिरों और धर्मस्थानों में कथा करके अपना जीवन निर्वाह चला रहे हैं, उन्हें इस से दोनों लाभ प्राप्त हो जाते हैं—जीविका भी और सेवा भी। अतः इन का भी राष्ट्रसेवा करना परम कर्तव्य हो जाता है। ये सभी अवसरों में जनता की बुराई दूर करते चलें उन की आलस्य भावना दूर करें—उन्हें सत्कर्म करने की प्रेरणा देते रहें। जनता में वीरता की भावना उत्पन्न करें, राष्ट्रीय एकता को सब में उद्बुद्ध करें और साम्प्रदायिक भावना को समाप्त करें। संस्कृत-साहित्य का स्वयं अध्ययन कर जनता में उसे प्रचलित करना भी उन का एक महान् कर्तव्य है। जनता को शिक्षित करना शिक्षा को ऊंचे स्तर पर ले जाना इन्हीं का कर्तव्य है।

ब्राह्मण देवता समझें कि जनता जब हमें सन्मान, धन, जीवन निर्वाह सामग्री, विश्राम और सुख दे रही है तो यदि हमने बदले में उसे कर्तव्यारूढ़ नहीं किया तो सचमुच ऋणी हो रहे हैं। बस उस ऋण से छूटना ही उन का कर्तव्य होना चाहिए। ब्राह्मण का जीवन विज्ञानमय था, त्याग और तपस्यामय था, संयमी ओर पुरुषार्थी था, ब्राह्मण की महत्ता ब्रह्मवर्चसी होने में थी। उस के पास ब्रह्म का, विज्ञान का, तेज का प्रभाव था। वे शान्त थे पर तेजस्वी थे। उन को अब अपने उसी स्वरूप का ध्यान रखना चाहिये, वैसा बन कर दिखाना चाहिये। ब्राह्मणी वर्ग भी अब बदले, गार्गी मैत्रेयी बने, राष्ट्रीय नारी की नेत्री बने, सब को अपना बनाए, अपने में ले, चुम्बक बने, सब का आकर्षण करे, समय की गति को पहचाने। इतना कर्तव्य पूरा करता हुआ ब्राह्मण समाज भारत के ऋण से छूट सकता है।

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।'
यजुर्वेद

(३) राष्ट्र के शासकों का कर्तव्य—
(क्षत्रिय कर्तव्य)

राष्ट्र के छोटे-बड़े सभी शासकों के हाथ में शासन है। बड़े शासकों पर बड़ा उत्तर-दायित्व है और छोटों पर छोटा। पर दायित्व है सभी शासकों पर। यदि वे शासक गण उसे पूरा नहीं करते तो वे भी राष्ट्र के ऋणी बनते हैं। ऋणी बनना ठीक नहीं। उन्हें अपना शासकीय जीवन पूर्ण उद्योगमय बनाना चाहिए, आलसी जीवन शासकों के लिए कलङ्क है। एवं जुआ खेलना, स्त्री सम्पर्क में रहना, विनोद साधनों में अत्यासक्त होना, व्याकुल हो जाना, रिश्वत लेना ये सभी शासक में कलङ्क हैं। इन्हें दूर करना होगा। शासक अपने को पहरेदार समझें, सदा जागरूक रहें सावधान रहें। उनके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हाथ से कोई अन्याय न होने पाये, वे रिश्वत से ऐसे दूर रहें जैसे कोई काले सर्प से हट कर रहता है। उन्हें निर्धनों, असहायों, अनाथों, विद्वानों और महिलाओं की मूक पुकार सुननी चाहिये। मिलने के समय उन्हें उनकी बारी का पूरा ध्यान हो इसमें धनी या सम्बन्धी का रत्ती भर भी पक्षपात न हो—बारी पर उनकी प्रार्थना सुननी चाहिये उनका कष्ट हटाना चाहिये। दीनों की मुखाकृति को वे पहचानें, वञ्चकों की दृष्टि को पहचानें। नीर और क्षीर का विवेक करें। भूले भटकों के वे मार्गदर्शक बनें। वे सोचें कि हमारी यदि यह दशा होती रही तो हम शासक से क्या आशा रखते। ऐसा मनोविज्ञान प्रत्येक शासक में होना चाहिये। अपना कर्तव्य पूरा करता हुआ शासक अपना मार्ग भी सरल बनाता है और अपनी सन्तान को भी उसका अधिकारी बनाता है–मानो कर्तव्यपरायण शासक अपने वंश को शासनाधिकार दिलाता है। नहीं तो उसका मार्ग सदा के लिये बन्द हो जाता है। अतः शासकगण अपने कर्तव्य में सावधान रहे तभी भारत सरकार के ऋण से छूट सकता है जो ऋण, सरकार ने उसे शासक बना कर उस पर डाला है।

शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।

(४) राष्ट्र के प्रति अध्यापकों के कर्तव्य—

मैं यह शब्द निःसंकोच होकर कह सकता हूं कि राष्ट्र पर अध्यापकों का ऋण है। इसी वर्ग ने राष्ट्र को विद्वान् बनाया है इसी ने राष्ट्र को जीविका योग्य बनाया है, इसी ने सब को जीवनीय कर्तव्य दिये हैं, ये ही राष्ट्र के सच्चे गुरु हैं अतः सम्मान के योग्य हैं। अतः राष्ट्र का—जनता और सरकार का—कर्तव्य हो जाता है कि वह अध्यापकों के ऋण से छूटे, उन्हें सुखी करे, उन की आवश्यकताओं को पूर्ण करे।

इसके साथ में अध्यापक वर्ग की सेवा में भी निवेदन करता हूं कि—अध्यापक वर्ग ! आप राष्ट्र को बदलें, आप तो राष्ट्र के दैनिक उपदेशक हैं, उपदेश द्वारा राष्ट्र को ऊंचा उठायें। आप जो चाहें कर सकते हैं। कच्चे घड़े पर जैसी रेखाएं डालें वे पकने पर अमर हो जाएंगी—अमिट हो जाएंगी। अब समय आ गया है कि हम राष्ट्र में राष्ट्रीय भावनाएं जागृत करें, स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकें। अतः मैं आपकी सेवा में कुछ संकेत रखता हूं आप कृपया उपदेश देते समय या पढ़ाते समय इन विचारों को उपस्थित करते रहा करें—

१ बालकों और युवकों में ब्रह्मचर्य की शिक्षा देना, उस के साधन, जैसे अल्पव्यय, सादा भोजन, व्यायाम, सिनेमा से बचना, स्त्री संसर्ग से बचना, पढ़ाई को लक्ष्य बनाना, बुरी संगति से बचना इत्यादि उपस्थित करना।

२. गुरुजनों का सम्मान, उनके अनुशासन में रहना, माता पिता के प्रति सम्मान भावना, उनकी सहायता को ऋण समझ कर आगे चल कर उसे उतारना।

३. स्वावलम्बन, किसी शिल्प को हस्तगत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करना, भृत्यता से शिल्प को स्थायी जीवनोपाय समझना, कृषिकार्य में लगना, यदि धन है तो किसी व्यापार में लगाना या कोई उद्योग हस्तगत करना अथवा गोरक्षा कार्य को हस्तगत करना, भृत्यता या सर्विस को अन्तिम-लाचारी का उपाय-समझना।

४. सभी पत्र व्यवहार राष्ट्रभाषा हिन्दी में करना, अंगरेजी की तरह इसे अन्तर्राष्ट्रीय बनाने की धारणा रखना, प्रान्तीय भावना को गौणता और भारतीय भावना को मुख्यता देना, संस्कृत का अध्ययन अवश्य करना, इसी भाषा को सच्ची शान्ति का साधन समझना।

५. सब में राष्ट्रीय भावना उद्‌बुद्ध करना, पर मत सहिष्णु बनना, मानव को साम्प्रदायिकता से ऊपर उठाना, भारतीय संस्कृति की रक्षा करना, राष्ट्र को सुचरित्र से सुन्दर बनाना।

अध्यापक को उपवेतन लेने की भावना से विद्यालय में छात्रों के अध्यापन में कम ध्यान देने की दुर्भावना हटा देनी चाहिये यह दुर्भावना शिक्षक के लिए कलंक है। इसकी अपेक्षा निर्धनता में जीवन बिताना उत्तम। पर इस कलंकित जीवन से जीना कदापि ठीक नहीं। बस अपना पूरा कर्तव्य पालन करने से आप भी भारतीय ऋण से छूट जाएंगे।

(६) राष्ट्र के प्रति भारत के नवयुवकों का कर्तव्य—

प्यारे भारत के नवयुवको! भारत तो तुम्हारा है। सच्चे रूप में तो तुम ही भारत नैया को पार लगाने वाले खेवैय्या हो—तुम ही भारत को उच्च शिखर पर ले जाने वाले व्योमयान हो। तुमने ही अब सोचना है कि भारत में भ्रष्टाचार क्यों बढ़ रहा है? क्यों लोग सत्यमार्ग से पीछे हटते जा रहे हैं? इसका कारण ढूँढो। इसके लिए समाधि लगाओ।

मेरी समझ में तो यह आता है कि हमारी असंगत–अयुक्त आवश्यकताएं बढ़ गयी हैं—विवाहों में असंगत लेन देन बढ़ गया है उसे पूरा करने के लिए लोग जैसे भी बनता है—पाप से या छल से धन संग्रह में जुट जाते हैं। आज क्यों बी. ए. एम. ए. शास्त्री और ग्रेजुएट कन्याएं ३०-३२ वर्षों तक कुमारी बैठी हुई हैं? क्या उनके मेल के वर नहीं मिलते? मिलते हैं, पर उनकी मांगें इतनी बढ़ी हुई होती हैं कि भावी ससुराल वाले उसे पूरा नहीं कर पाते, अतः विवश होकर रह जाते हैं। नवयुवक वर, मांगने में इतने तैयार होकर बैठते हैं कि जहां सम्बन्ध हो उसे समूचा लूट लें खाली कर दें—"यदि हमने आज तक की सारी पढ़ाई की रकम चुकती न करली तो और मौका कब मिलेगा? वे वर यह नहीं सोचते कि 'अन्ततः हमने भी आगे चल कर किसी का ससुर बनना है—इस प्रथा से हमें भी तो एक दिन आकाश के तारे गिनने पडेंगे। क्या पता कि मुझे कितने दामादों के आगे माथा रगड़ना पड़ेगा? बस इसी विचार-शून्यता से वरों की मांगें देख कर लोग छलछन्द से, पाप से जेसे जैसे रुपया एकत्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करते हैं। तब क्या मैं यह कह सकता हूं कि जिन नवयुवकों ने इस पाप से भारत को निकालना था वे ही इसे स्वयं पाप के गढ़े में ढकेल रहे हैं।' तब भारत सुन्दर कैसे बनेगा ? हम तो अपने को सुन्दर बनाने में लग गये। सुन्दर तो एक ने होना है—हमने या भारत ने। हमने जगत् को लूटा। और जगत् ने हम को लूटा तब लुटे तो दोनों ही। तब लुटेरा राष्ट्र कैसे सुन्दर बन सकता है ? अतः नवयुवकों को यह बुरी प्रथा मूलतः बन्द कर देनी चाहिए। याद रखो ईसाई और मुसलमान इस बीमारी से बचे रहने से आगे बढ़ रहे हैं, फल रहे हैं। परन्तु हम दिन प्रतिदिन घट रहे हैं, निस्तेज हो रहे हैं, अल्पायु और दीर्घरोगी हो रहे हैं। अतः तुम इसे समाप्त कर भारत के ऋण से छूटो।

राष्ट्र के प्रति भारतीय महिलाओं का कर्तव्य—

भारत की माननीय देवियो ! आप भी भारत की महान् विभूति हैं। आप ने सदा से भारत को सुन्दर बनाया है—अपने को मिटाया है पर भारत का सम्मान बढ़ाया है। पाकिस्तान बनने तक यह चमत्कार आपने दिखाया है जिसकी हम स्तुति करते हैं। सच-मुच भारत का एक-एक बच्चा आपका ऋणी है। आप आधा भारत हैं—सम्पूर्ण भारत की संचालिका शक्ति हैं। स्वतन्त्र भारत ने आप को ऊंचा आसन देने के लिये अच्छे नियमों का निर्माण किया है और अब भी कर रहा है। अतः आप का भी कर्तव्य है कि आप भारत राष्ट्र को सुन्दर बनायें।

आप का सर्वप्रथम कर्तव्य है कि आप भारतीय ऋषिकन्या बन कर भारतीय संस्कृति की रक्षा करें—भारत को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनायें। आप के लिये विद्या का क्षेत्र विस्तीर्ण है, आप का अधिकार भी विस्तीर्ण किया जा रहा है। आप के प्रति सम्मान भावना भी अपेक्षया बढ़ रही है। अतः आप अपनी सन्तान को उत्तम शिक्षा देकर राष्ट्र का उपकार करें। अपने साथी से मिल कर राष्ट्र को सुन्दर बनाने में लग जायें। भारत की सुन्दरता दूसरे राष्ट्रों की सुन्दरता से न नापी जाय प्रत्युत इसे भारतीय आदर्श से सुन्दर बनाया जाय। माताओ, बहिनो ! सच जानना दूसरे राष्ट्र बहुत बड़ी उन्नति करते हुए भी अशान्त हैं—चिन्तातुर हैं—एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुये हैं, अतः उन के बाह्य चमत्कार को देख कर भारत को वैसा बनाने की सलाह न देना और न ही स्वयं उस प्रवाह में बह जाना, याद रखना संसार का महिलावर्ग भोगवाद से अशान्त है—वह कहीं विश्राम लेना चाहता है। भारत का साहित्य अब संसार को प्रिय लगने लगा है। इस लिए ऋषि आदर्श पर राष्ट्र को ऊंचा उठाओ। आप यदि दूसरे राष्ट्र में भी जाओ तो उसे भारतीय रङ्ग से रङ्ग दो, उस पर भारतीयता की छाप लगा दो। तभी सच्ची शान्ति का प्रचार हो सकेगा।

भारत की बुरी प्रथाओं को भी आपने दूर करना है। भारत का कन्या वर्ग समाज के लेन-देन से व्याकुल है—इसी व्याकुलता से वह कौमारव्रत निभा रहा है। अपने-अपने परिवार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में यह विचार फूंक दो, कन्या पक्ष वालों से लेना या लूटना बन्द करो। अपने वीरों को, पुत्रों को यही पाठ पढ़ाओ कि अपनी कमाई से सुन्दर बनो। पत्नी के धन से सुन्दर मत बनो। उत्तमा बाहु वित्तेन स्त्रीवित्तेनाधमाधमाः। ऐसा कर के आप कन्या वर्ग का महान् उद्धार करोगी तब भारत और अधिक सुन्दर हो जायगा। तब आप भी भारत के ऋण से छूट जायेंगी।

गुरुकुल मुलतान में हमारे मान्य तथा आदर्श संस्कृताध्यापक श्री पं. चूड़ामणि जी शास्त्री का यह लेख राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से अत्यधिक माननीय है जिस से उन की उज्ज्वल देश भक्ति का परिचय मिलता है। आगामी स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में जो १५ अगस्त को पड़ता है हमने उस का प्रकाशन विशेष उपयोगी समझा है।

—सम्पादक, गुरुकुल-पत्रिका।

मन को उद्बोधन

(कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी अजमेर)

मन मेरे तरुवर बन जा
तरु बन सब को सुख पहुंचा।
मन मेरे तरुवर बन जा॥

ज्यों-ज्यों फल आएं त्यों-त्यों
नीचे को ही शीश झुका।
मन मेरे तरुवर बन जा॥

कर शाखाओं का संकेत
चलते जन को पास बुला
छाया में अपनी बिठला
पत्तों का फिर पंखा झला
पत्थर की भी चोटें खा
फिर भी मीठे फल खिला।

मन मेरे तरुवर बन जा॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खण्ड प्रलय

श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

महाभारत संग्राम

महाभारत संग्राम को हम भारतीय सभ्यता और भारतीय विभूति का खण्ड प्रलय कह सकते हैं। रामायण काल के पश्चात् भारतीय सभ्यता में जो प्रगति प्रारम्भ हुई वह महाभारत के समय में अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई थी। उस प्रगति का रूप क्या था? यदि इस प्रश्न का उत्तार संक्षेप में देना हो तो हम कह सकते हैं कि वह धर्म की ओर से अर्थ की ओर प्रगति थी। रामायण काल में हम प्रत्येक मानवी चेष्टा को मापने के लिए धर्म के नपैने को प्रयोग में आता देखते हैं। उसके पश्चात् किस समय नपैना बदलने लगा, और भारतीय समाज की प्रवृत्ति सांसारिक विभूति की ओर बढ़ने लगी, यह ठीक २ बतलाना कठिन है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि महाभारत के समय नपैना सर्वथा परिवर्तित हो चुका था। भीष्म और द्रोण जैसे आचार्य अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य के निश्चय के लिए 'अर्थ' की अदालत से फैसला मांगते थे। जब उनसे पूछा गया कि वह धार्मिक पाँडवों का साथ न देकर पापी दुर्योधन का साथ क्यों देते हैं। तो उन्होंने अर्थ की दुहाई दी। इसी प्रवृत्ति से खिन्न होकर महामुनि व्यास ने कहा था।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते? ॥

महामुनि कहते हैं कि मैं हाथ उठा कर घोषणा करता हूं कि अर्थ और काम की प्राप्ति धर्म से ही हो सकती है। ऐसी दशा में मनुष्य धर्म की ही सेवा क्यों न करे?

महाभारत कालीन भारतवर्ष की तुलना जब हम रामायण कालीन भारतवर्ष से करते हैं तब हमें निम्नलिखित भेद स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

१. महाभारतकाल में वेदवक्ता ऋषियों और उनके आश्रमों के वर्णन नहीं मिलते।

२. कर्त्तव्याकर्त्तव्य की मुख्य कसौटी धर्म को नहीं माना जाता था। अवसर वादिता ने उसका स्थान ले लिया था। जब रथ में बैठे हुए अर्जुन ने दलदल में फंसे हुए कर्ण पर तीर चलाने की तैयारी की तब कर्ण ने अर्जुन से अपील की कि वह ऐसा न करे। उसके उत्तार में श्री कृष्ण ने यह युक्ति नहीं दी कि अर्जुन का कार्य धर्मानुकूल है, प्रत्युत यह युक्ति दी कि जब दुःशासन ने द्रौपदी का चीर हरण किया था, तब तुम्हारा धर्म कहां गया था? इस युक्ति का अभिप्राय स्पष्ट है कि तुम्हारे पाप का उत्तर यदि पाप से दिया जाय तो वह अनुचित नहीं है। जिसमें हमारा लाभ होगा, हम वैसा करेंगे। इसे आप अर्थ सेवा के नाम से पुकारें या अवसरवादिता के नाम से एक ही बात है।

३. देश की राजनैतिक परिस्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया था। रामायण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के समय में राजा थे, परन्तु कोई सम्राट् नही था। राजसूय यज्ञ होते थे और दिग्विजय भी होते थे,परन्तु भिन्न२ राज्यों की स्वाधीनता नष्ट नहीं होती थी। बाली वध के प्रसंग में तपस्वी राम ने दावा किया है कि सारे देश पर इक्ष्वाकुओं का अधिकार है। परन्तु वह अधिकार साम्राज्य स्थापना के रूप में प्रकट नहीं हुआ था। महाभारत काल में गणतन्त्र राज्य थे, स्वतन्त्र राज्य थे। युधिष्ठिर ने जरासन्ध का नाश करके ही सम्राट् पदवी प्राप्त की थी।

४. धन, सम्पत्ति, सांसारिक सुख प्राप्ति के साधन और शस्त्रास्त्र की दृष्टि से महाभारत का समय रामायण के समय से बहुत आगे बढ़ गया था।

संसार की जातियों के इतिहास के सापेक्ष अध्ययन से यह परिणाम निकला है कि जब और जहां चरित्र शक्ति का क्षय और विभूति का संचय हो जाता है, वहां नाश अवश्यंभावी होता है। किसी देश के इतिहास को ले लीजिये, आपको उसके उतार चढ़ाव के मूल में यही कारण मिलेगा। इतिहास के अध्ययन से 'स्मृति' का यह वाक्य सर्वथा सत्य सिद्ध होता है,

अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति,
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥मनु०

व्यक्ति हो या राष्ट्र, चरित्रहीन शक्ति के बल से बढ़ सकता है, उसे अनेक सुख प्राप्त हो सकते हैं। वह शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त कर सकता है परन्तु अन्त में उसे समूल नाश का मुंह देखना पड़ता है। यही भारतवर्ष में हुआ। महाभारत की चरित्रहीन विभूति और राजसी शक्ति राष्ट्र के नाश का कारण बनी। महाभारत संग्राम राष्ट्रों के उदयास्त के सिद्धान्त का ज्वलन्त नमूना है।

खण्ड प्रलय का रूप

महाभारत संग्राम का भारतवर्ष पर जो प्रभाव हुआ, उसे हम भारतीय सभ्यता और विभूति का खण्ड प्रलय' नाम से निर्दिष्ट कर कर सकते हैं। युद्ध के आरम्भ में अर्जुन ने कृष्ण के सम्मुख जो आशंका रखी थी वह सत्य सिद्ध हुई, अर्जुन ने आशंका प्रकट की थी कि युद्ध से जो कुल नाश होगा, उस से देश भर में अधर्म और अनाचार फैल ज़ायेंगे जिस से अन्त में सब को नरक में जाना पड़ेगा। महाभारत में केवल एक कौरव कुल का नहीं,अपितु सैकड़ों कुलों का सर्वनाश हो गया। आचार्य और नरेश, ब्राह्मण और क्षत्रिय सेनापति और सिपाही सब नष्ट हो गये। शस्त्रास्त्र विद्या और अनन्त ऐश्वर्य मिट्टी में मिल गये। युद्ध के अन्त में भगवान् कृष्ण के साथी यादव लोग शराब के नशे में मस्त होकर आपस में लड़ गये और नष्ट हो गये। उस दुःख से दुःखी हो कर कृष्ण जी जंगल में चले गये और एक शिकारी के तीर से मारे गये। इतना विनाश हो जाने पर विश्वविजयी अर्जुन कृष्ण के परिवार को लेकर द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ की ओर जा रहा था तब डाकुओं ने उस पर हमला कर दिया और स्त्रियों को छीन कर ले गये। यह यदि मानवता का खण्ड प्रलय नहीं था तो क्या था ?

प्रलय से क्या बचा ?

मैंने महाभारत को खण्ड प्रलय का नाम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिया है। खण्ड प्रलय में सर्वनाश नहीं होता। कुछ भाग नष्ट हो जाता है और कुछ शेष बच जाता है। महाभारत ने भारतवर्ष का सब कुछ नष्ट कर दिया। नाम को पांडव जीत गए, परन्तु वस्तुतः वे भी परास्त हो गए। वह जीत उन के लिये हार से भी अधिक दुःखदायिनी सिद्ध हुई। खिन्न और दुःखित हो कर वे हिमालय की ओर चले गए और बर्फ में गल कर समाप्त हो गये।

इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह एक बहुत आवश्यक और मनोरंजक प्रश्न है कि महाभारत के खण्ड प्रलय में से कौनसी कीमती वस्तु बच निकली ? केवल पंचभूत और मनुष्यों के शरीर ही बच गये अथवा कुछ और भी बचा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि महाभारत के व्यापी विनाश में से एक ऐसी वस्तु बच निकली, जिसने भारत देश के गौरव और जीवन की परम्परा को कायम रखा। वह वस्तु थी भारतीय संस्कृति। विभूति नष्ट हो गई, परन्तु संस्कृति बच रही। यदि कहीं क्षत्रियों के परस्पर संघर्ष में विचार भेद के कारण संस्कृति भी नष्ट हो जाती तो शायद महाभारत के पश्चात् ही देश की वह दशा हो जाती जो मुसलमानों के आक्रमणों के पश्चात् हुई। दोनों ही दल एक धर्म और एक संस्कृति के उपासक थे, इस कारण महाभारत संग्राम ने संस्कृति की मर्यादा को अछूता छोड़ दिया। विभूति का नाश होने पर भी संस्कृति बच गई, इसी का यह फल हुआ कि भारत नष्ट हो कर भी बचा रहा। निर्बलता आ जाने पर भी जाति में जीवन बना रहा जो फिर से संपुष्ट हो कर कालान्तर में भारतवर्ष के अभ्युदय का कारण बना। महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध के पश्चात् कालान्तर में फिर अपनी प्राचीनतम परम्पराओं के साथ भारतीय राष्ट्र का फिर से समृद्धि की चोटी पर पहुंचना प्रमाणित करता है कि राष्ट्रों की असली जीवन शक्ति उस की संस्कृति है। युग युगान्तर के उतार-चढ़ाव के थपेड़ों को सह कर भी यदि भारतीय राष्ट्र आज तक जीवित है तो वह उस की वैदिक काल से लेकर अब तक के अत्यन्त दीर्घ समय में फैली हुई संस्कृति के कारण ही है। राष्ट्र का सब कुछ नष्ट हो जाय, परन्तु एक संस्कृति जीवित रह जाय तो उस के पुनर्जीवित होने की आशा रहती है और यदि इस के विपरीत संपूर्ण विभूति विद्यमान रहे, परन्तु संस्कृति नष्ट हो जाय तो जाति का सर्वनाश असंदिग्ध हो जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मचर्य और दीर्घायु

श्री स्वा० विज्ञान भिक्षु जी

ब्रह्मचर्य के विषय में

(१) ब्रह्मचर्य वह व्रत है जिस में शक्ति की पूंजी जमा की जाती है। आगे चल कर जिस के सूद पर हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं वह पूंजी तो हमें बुढ़ापे तक जीवित, स्वस्थ और प्रसन्न रख सकती है।

(२) मैंने एक वृद्ध की चमकती हुई लाल गालों को देख कर उससे पूछा कि इस बुढ़ापे में भी आप का चेहरा इतना लाल क्यों है? तो उस ने हंस कर उत्तर दिया कि मेरे घड़े में छेद नहीं। जो डालता हूं वह जमा होता जाता है। समझ गये।

(३) पढ़ाई में सफलता प्राप्त करने के लिये सुन्दर स्वस्थ मस्तिष्क की आवश्यकता होती है और मस्तिष्क की स्वस्थता केवल ब्रह्मचर्य पर निर्भर होती है। अब्रह्मचारी को तो थोड़ा पढ़ने पर भी सिर दर्द या चक्कर आने लगता है।

(४) जो बहुत कुछ खा-पी कर अब्रह्मचर्य के पास से बचना चाहता है वह शीघ्र ही राजयक्ष्मा (तपेदिक) का शिकार हो जाता है। जिस हौज में पानी जमा होने का एक ही मार्ग हो और निकलने के मार्ग हों पांच (पांच विषय) वह हौज तो शीघ्र ही खाली हो जायेगा।

(५) अब्रह्मचर्य से नाशवान् विषय सुख मिलता है परन्तु ब्रह्मचर्य से चिरस्थायी स्वास्थ्य मनः प्रसाद और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। अब्रह्मचर्य मृत्यु के पास ले जाता है और ब्रह्मचर्य से मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर जाता है।

(६) स्वाभाविक ब्रह्मचर्य से शरीर की नसें लोहे की तरह दृढ़ स्नायु इस्पात की तरह मजबूत और मन वज्र की तरह कठोर हो जाता है। इसी एक के धारण करने से मनुष्य को क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज दोनों मिल जाते हैं।

(७) ब्रह्मचर्य जीवन को सुरक्षित रखने वाले साधनों में व्यायाम, प्राणायाम, भ्रमण, एकान्तवास, परिमित भोजन और संकल्पों की शुद्धता, ये मुख्य साधन हैं।

(८) ब्रह्मचर्यमय घास के बिछौने में गहरी नींद आ जाती है किन्तु अब्रह्मचर्य गुलाब के बिछौने में वह नींद नहीं आ सकती क्योंकि उसमें कांटा चुभने का भय बना रहता है।

(९) चेहरे की सुन्दरता खाली रूप की सुन्दरता से पूरी नहीं होती जब तक ब्रह्मचर्य के द्वारा उस रूप में लावण्य भरा हुआ न हो। लावण्य वह सौन्दर्य है जो मोती में मिलता है मोती को देखने वाला अपना प्रतिबिम्ब उस में प्रतिबिम्बित हुआ देखता है। ठीक इसी तरह लावण्य वाले पुरुष के गालों में देखने वाले की भी परछाहीं पड़ जाती है। यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१०) ब्रह्मचर्य को स्थिर रखने में ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी की प्रबल भावना आवश्यक है। दोनों समझें कि हमने विवाह होने से पूर्व प्रसन्नता पूर्वक नियम से सादा जीवन, परिश्रमी स्वभाव रखना है आकर्षक तत्त्व से पृथक् रहना है। इसे जीवन की भित्ति समझना चाहिए। किन्तु इच्छा न होने पर भी बलपूर्वक—दिखावा में आकर यदि ब्रह्मचर्य रखा जाए तो उस से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी।

आयु वृद्धि के विषय में

संसार इतना आकर्षक है कि मनुष्य कितनी भी दुरवस्था (बुरी हालत) में क्यों न पड़ा हो, फिर भी जीना चाहता है। देर तक जीना मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा है। वेद में सौ और सौ से भी अधिक वर्ष तक जीने की प्रार्थना की गई है। वेद आज्ञा देता है "मा पुरा जरसो मृथाः" 'ऐ मनुष्य ! तू बुढ़ापे से पहले न मर।'

दीर्घजीवी पुरुष सेवा, उपकार, भगवद् भजन एवं दीर्घकाल तक कारोबार चलाता हुआ अधिक से अधिक पुण्य, अधिक से अधिक सुख और अधिक से अधिक धन प्राप्त कर सकता है।

यदि किसी ने मूर्खता से अधिक से अधिक चालाकी का जीवन व्यतीत किया [illegible]धिक से अधिक लोगों को धोखा दिया अधिक से अधिक निर्धनों और दुर्बलों को कष्ट पहुंचाया तो यही आयु उस के नरक का भी कारण हो सकती है। प्रकाश में पढ़ाई भी की जा सकती है और जूआ भी खेला जा सकता है यह तो मनुष्य की योग्यता पर निर्भर है कि प्रकाश से क्या प्राप्त किया जाय ?

आयु बढ़ाने के साधनों में संयमी जीवन, पौष्टिक भोजन, श्रममय जीवन और पूरा विश्राम ये चार मुख्य साधन हैं। सुखी जीवन, प्रसन्न रहना, भ्रमण, अल्प भाषण और सच्ची कमाई का घर में आना ये पांच साधन मनुष्य का स्वास्थ्य स्थिर रखते हैं यही स्वास्थ्य आयु वृद्धि का कारण होता है।

मेरी समझ में, पापमय जीवन आयु घटाता और पुण्यमय जीवन आयु बढ़ाता है। पापमय जीवन से धन भले ही मिल जाय, चोरी से अच्छे सामान भी मिल जाएं, पर निर्मल आत्मा अन्दर ही अन्दर व्याकुल रहता है वही व्याकुलता आयु को घटा देती है। यदि पूर्व पुण्य से तब भी आयु नहीं घटी तो उस का जीवन और भविष्य अवश्य घट रहा होता है जिसे वह मूर्खतावश महसूस नहीं करता।

रेखा दिखा कर, ज्योतिषी से विश्वास लेकर, आयु बढ़ने की खुशी न मनाओ। इस में धोखा हो सकता है। किन्तु सेवा और संयमी जीवन से निश्चय रूप में तुम्हारी आयु बढ़ेगी इस में कोई धोखा नहीं। इस मार्ग पर चलना कभी न भूलना।

ठगी जीवन वाला उजले वस्त्र भी धारण करता है बाहर से प्रसन्न भी दीखता है अपने ठगी जीवन को अच्छा बताने की युक्तियां भी वह संसार के आगे रखता है परन्तु अन्दर ही

(शेष ४४० पृष्ठ पर देखिए)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नीदरलैण्ड में संस्कृत का अध्ययन

प्रोफेसर जे० डब्ल्यू० डी० जोंग

क्रमवद्ध अध्ययन

इन दो शताब्दियों में, भारत के संबन्ध में बहुत सी जानकारी प्राप्त हुई, लेकिन निःसंदेह हिन्दू संस्कृति का कोई क्रमवद्ध अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सका। यद्यपि बहुत से डचों ने आधुनिक भारतीय भाषाओं—हिन्दुस्तानी, तामिल और तेलुगु का कुछ ज्ञान उपार्जन कर लिया था, तथापि हरवर्ट दी जगेर के अतिरिक्त किसी को संस्कृत नहीं आती थी। हरवर्ट एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था, जिस ने प्राचीन भाषाओं गणितशास्त्र, वनस्पति विज्ञान और ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन लीडन विश्वविद्यालय में किया था।

१६७० से १६८० तक वह कारोमंडल में रहा और वहाँ तामिल, और तेलुगु का अध्ययन किया।

दुर्भाग्यवश यह जानकारी सुरक्षित नहीं रखी गयी। बाद में १८ वीं शताब्दी में इस ज्ञान-संचय की गति कुछ धीमी पड़ गई और हिंदू-धर्म का अध्ययन केवल व्यापार, सरकारी कामकाज और धर्म-प्रचार जैसी व्यावहारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही किया गया।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

उन्नीसवीं सदी में पहल-पहल विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ। लीडन विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा के प्रथम प्राध्यापक श्री हमकर थे। उन्होंने संस्कृत और अन्य भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहित किया। उन की मृत्यु के बाद लीडन विश्वविद्यालय में हिब्रू के प्राध्यापक श्री रटगर्स ने उन का स्थान लिया। लेकिन हालैंड में संस्कृत के व्यापक प्रसार का श्रेय हैंडरिक कर्न को है। उन्होंने जर्मनी, स्लाव और आंग्ल-ईरानी भाषाओं का गहन अध्ययन किया और संस्कृत के जर्मन विद्वान् वैंबर के परामर्श पर ज्योतिष-शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ "वराहमिहिर की बृहत्संहिता" का नया संस्करण प्रकाशित किया। बाद में रायल एशियाटिक पत्रिका में इस का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। कुछ दिनों बाद कर्न ने कालिदास की शकुन्तला का अनुवाद किया, जिससे हालैंडवासियों की संस्कृत-अध्ययन में रुचि बढ़ी हैंडरिक कर्न को दो वर्ष तक बनारस में रहने का अवसर मिला, जहां वे अनेक संस्कृत विद्वानों के संपर्क में आए।

बौद्ध साहित्य का अध्ययन

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में श्री कर्न ने बौद्ध-धर्म में भी गहरी रुचि लेनी शुरू कर दी थी। 'भारतीय अध्ययन' ग्रन्थमाला के अन्तर्गत आपने बौद्ध-धर्म का विस्तृत इतिहास,

---

(४३९ पृष्ठ का शेष)

अन्दर वह घुलता रहता है। बस यही स्थिति उस की आयु को घटा देती है। अतः दीर्घायु जीवन चाहने वालों को पाप कर्म से नितान्त बचना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जातकमाला के एक संस्करण और बच्चों के लिए बाल-शब्दकोष का प्रकाशन किया। ८४ वर्ष की आयु में जब श्री कर्न की मृत्यु हुई, उस समय तक नीदरलैंड में संस्कृत-अध्ययन की ओर काफ़ी रुचि बढ़ चुकी थी। बाद में इनके विद्वान् उत्तराधिकारी स्पेयर ने इन के काव्य को आगे बढ़ाया।

प्रोफेसर वेगल का नाम मैं भारतीय विद्वानों के मुख से प्रायः सुनता हूं। १९२५ में उन्होंने भारतीय और हिंदेशियायी पुरातत्त्व-अध्ययन के लिए एक संस्थान की स्थापना की।

वर्तमान काल में संस्कृत-अध्ययन

लीडन, ऐम्सटर्डम और ग्रेनिंगम विश्व-विद्यालय में संस्कृत के पृथक् विभाग हैं। लीडन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक क्वीपर कुछ गिने चुने योरोपीय विद्वानों में से हैं, जिन्हें द्राविड़ और मुंडा भाषाओं का विशद ज्ञान है। श्री गौन्डा की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदेशिया में संस्कृत' भारत में प्रकाशित हुई है।

ऐम्सटर्डम के भूतपूर्व प्राध्यापक फेडगन ने भारतीय दर्शन के अध्ययन में विशेष रूप से योगदान दिया है। उन के उत्तराधिकारी प्रोफेसर शार्प ने 'कादम्बरी' का अनुवाद किया है और कालिदास के अन्य ग्रन्थों का भी विशद अध्ययन कर रहे हैं। ग्रेनिंगम विश्वविद्यालय के डा० एन्सिन्क बौद्ध-धर्म के 'महायान' का अंग्रेजी और डच भाषा में अनुवाद कर चुके हैं और आज कल वे सांख्यदर्शन के अध्ययन में व्यस्त हैं।

वेदामृत गीत

पूजनीय देव

ओं त्वमग्ने व्रतपा असि देवः आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥ ऋग्वेद ८. ११. १। यजु. ४. १६।

शब्दार्थ—हे ज्ञानमय परमात्मन्! (त्वम्) तू (व्रतपाः) व्रतपालक (असि) है (देवः) तू ज्ञानसुख-दाता देव है (आ) और (मर्त्येषु) हम मनुष्यों में (आ) समन्तात् समाया हुआ है। (त्वम्) तू (यज्ञेषुईड्य) यज्ञों में पूजनीय है।

चतुर्दिक् तुम्हीं नाथ छाये हुए हो।
मधुर रूप अपना बिछाये हुए हो॥
तुम्हीं व्रत-विधाता नियन्ता जगत् के,
स्वयं भी नियम सब निभाये हुए हो॥

प्रभो! शक्तियां दिव्य अनुपम तुम्हारी।
तुम्हीं दूर तुम पास आये हुए हो॥
करें हम भजन पुरण्य शुभकर्म जितने,
सभी से प्रथम स्थान पाये हुए हो॥

तुम्हारी करें वन्दना देव! निशिदिन।
तुम्हीं इस हृदय में समाये हुए हो॥

★ —निरंजनदेव आयुर्वेदालङ्कार 'प्रियहंस'।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विद्यार्थी और सदाचार

श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी शास्त्रार्थ महारथी

ओ३म् । व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। यजु० १९. ३० ।

(व्रतेन) व्रत के द्वारा मनुष्य (दीक्षाम्) अधिकार को (आप्नोति) प्राप्त करता है और (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम्) चतुरता को (आप्नोति) प्राप्त करता है और (दक्षिणा) दक्षिणा से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त करता है तथा श्रद्धया श्रद्धा से (सत्यम्) सत्य (आप्यते) प्राप्त किया जाता है ।

आर्य नवयुवको !

इस मन्त्र में एक बड़ी विचार की बात है कि व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है। जब कोई भी मनुष्य किसी कार्य को करने के लिए हृदय से तैयार हो जाता है और निरन्तर विघ्न बाधाओं के आने पर भी पीछे नहीं हटता तो उसे दीक्षा प्राप्त होती है, प्रवेश प्राप्त होता है। आजकल बच्चों में पढ़ने की रुचि नहीं है और इस का कारण है कि उन्होंने पढ़ने का व्रत नहीं लिया। यदि व्रत लेते तो पढ़ते और सीखते क्योंकि जिस बात का व्रत ले लेते हैं उसे बिना सिखाये सीख लेते हैं उदाहरणतः व्यसनों का कोई स्कूल नहीं है और न ही कोई अध्यापक है इसी प्रसार गाली देना सिखाने का तथा चरस और भङ्ग पीना सिखाने का भी कोई विद्यालय नहीं है, बिना अध्यापक के सीख जाते हैं। हां सिनेमा के लिए तो कह देंगे कि सीख कर आए हैं। परन्तु जितनी जल्दी वे सिनेमा की बातों को सीखते और याद कर लेते हैं इतनी जल्दी विद्यालय के पाठ को नहीं सीखते। सिनेमा के गाने बहुत शीघ्र याद कर लेते हैं। एक बार रघुनन्दन जी एक विद्यालय में ले गए और एक विद्यार्थी से कहा कि गाना सुनाओ। एक छात्र खड़ा हुआ और गाना प्रारंभ किया—

मेरा मन डोले मेरा तन डोले ।

मैंने कहा, "यह आप बच्चों को क्या सिखा रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "मैं मीठी दवा देकर बलवान् बनाना चाहता हूं ।

यह मीठी दवा नहीं, मीठा विष है। इस से हमारी पीढ़ियाँ उल्टी होती जा रही हैं। लड़कों की तो बात ही क्या जब लड़कियों तक को यह गाना याद है तो इस का अर्थ यह हुआ कि माता-पिता और अध्यापक सब अन्धकार में हैं। स्कूलों और कालिजों में चले जाइये आप को पता लग जायेगा कि बच्चों की प्रवृत्ति अपने सुधार में नहीं है। परन्तु कुछ बच्चे अपनी उन्नति का ध्यान रखते हैं यदि ध्यान दिया जाए तो यह प्रवृत्ति उन्नत हो सकती है।

जब-किसी भी कार्य के लिए व्रत ले लिया जाता है, दृढ़ संकल्प ले लिया जाता है तो उस कार्य में दीक्षा हो जाती है। फिर उस दीक्षा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से दक्षिणा प्राप्त होती है। दक्षिणा का अर्थ चार आने वाली दक्षिणा नहीं है अपितु दक्षिणा का अर्थ है कि उसे चतुरता प्राप्त होती है, उस कार्य में उत्साह प्राप्त होता है। दीक्षा से कुछ न कुछ प्राप्त होता है और जब दक्षिणा मिल गई तो श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। श्रद्धा का अर्थ है श्रद्+धा=सत्य का धारण करना, सचाई में धारणा Maintenance in truth, settlement in truth. जब सत्य में धारणा हो जाती है तो फिर असत्य भाषण समाप्त हो जाता है। आज विद्यार्थी की सत्य में धारणा नहीं है इस लिए बात-बात पर झूठ बोला जाता है। अध्यापक घर के लिए काम देता है। दूसरे दिन पूछता है, 'काम कर लिया' तो विद्यार्थी उत्तर देते हैं 'हां कर लिया' परन्तु जब अध्यापक एक बच्चे से पूछता है कापी लाए तो कहता है 'घर भूल गया।' अध्यापक कहता है घर से लाओ तो विद्यार्थी तुरन्त बहाना बना देता है, माता जी घर पर नहीं हैं। सत्य के न होने से विद्यार्थियों में से सरलता और सादगी जाती रही। हमारा अत्यन्त पतन हो गया है। सचाई को प्राप्त करने का एक ही उपाय है सत्य में धारणा। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी; एक बच्चा खेल रहा है उस के पास ही एक लालटैन जल रही है। बच्चा खेलता हुआ लालटैन की चिम्नी को हाथ लगाना चाहता है। एक बुद्धिमान् व्यक्ति वहां बैठा है। वह जानता है कि बच्चा हाथ लगा देगा तो उस का हाथ जल जाएगा अतः वह उसे लालटैन के पास से हटा देता है। बच्चा पुनः खेलता हुआ हाथ लगाने के लिए वहां पहुंच जाता है और हाथ लगाना चाहता है वह व्यक्ति फिर हटा देता है। बच्चा तीसरी बार फिर हाथ लगाने पहुंचता है क्योंकि उसे यह पता नहीं कि चिम्नी को हाथ लगाने से हाथ जल जाएगा। वह चिम्नी को हाथ लगा देता है। जब हाथ लगा दिया, तब श्रद्धा हो गई, सत्य में धारणा हो गई। अब यदि कोई व्यक्ति उस बच्चे का हाथ पकड़ कर चिम्नी को लगाना चाहे तो वह पीछे हटेगा। क्योंकि अब उस की सत्य में धारणा हो गई है। परन्तु जहां कोई बच्चा या बड़ा व्यक्ति शारीरिक कष्ट भोग कर मानता है यह मानना अच्छा नहीं है, जैसा बुद्धिमान् बताए उसी प्रकार मान लेना ही श्रेष्ठ है। उदाहरण के लिए एक शराबी से कहें कि शराब पीना अच्छा नहीं, इस के पीने से मुंह से दुर्गन्ध आती है, फेफड़े खराब हो जाते हैं, धन नष्ट होता है, अतः इस का पीना छोड़ दो, तो वह कहता है छूटती नहीं। उसे शराब की हानियां बताई जाती हैं और समझाया जाता है कि शराब के नशे में ऐसी अवस्था हो जाती है कि शराबी नालियों में गिर पड़ता है और उस के मुंह को कुत्ते चाटते हैं, तब शराबी कहता है जब ऐसी अवस्था होगी तो छोड़ देंगे। परन्तु इस के शारीरिक कष्ट भोग कर छोड़ना बुद्धिमानी नहीं।

इस के साथ ही एक बात और भी स्मरण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रखने की है हम में श्रद्धा तो अवश्य होनी चाहिए, परन्तु श्रद्धा का अर्थ अन्ध-विश्वास नहीं है।

आप कुमार हैं और आप को सदाचार की शिक्षा देनी है। कुमार का अर्थ है 'कामयते भोगान् इति कुमारः' जो भोगों की कामना करे उसे कुमार कहते हैं। छोटे बच्चों को, मेरे बाल ठीक हैं या नहीं, कुर्त्ते के बटन ठीक लगे हैं या नहीं, कपड़े अच्छी प्रकार साफ हैं या नहीं—इत्यादि बातों का विशेष पता नहीं होता। जब बच्चा बड़ा हो कर कुमार बनता है, तो वह बालों की ओर भी ध्यान देता है, उन में प्रतिदिन कंघी करता है, कपड़ों को भी स्वच्छ रखता है परन्तु आज कुमारों में अति हो गई है जो ठीक नहीं क्योंकि Excess of every thing is bad. किसी भी बात में अति का होना बुरा है। प्रत्येक कुमार को अपने दांत स्वच्छ रखने चाहियें, नाखून भी ठीक हों बढ़े हुए न हों, कपड़े भी स्वच्छ हों, बालों में तेल भी डला हुआ हो। यह सब कुछ ठीक है क्योंकि 'कुत्सितं मारयति इति कुमारः' जो बुराइयों को मारता है उस का नाम कुमार है। परन्तु ये सब बातें मर्यादा में रहनी चाहियें।

अब दो लाइन बन गई। आप आंख, नाक, दांत, वस्त्र आदि सब की स्वच्छता का ध्यान रखते हुए सफ़ाई से रहें परन्तु कोई कुत्सित बात नहीं होनी चाहिए। आप स्वच्छता से रहें परन्तु स्वच्छता सजावट में नहीं आनी चाहिए अन्यथा गाड़ी का Derailment हो जायेगा पटड़ी से नीचे उतर जायेगी।

संसार में सब भले बनना चाहते हैं परन्तु क्या भलाई स्वाभाविक वस्तु है? एक व्यक्ति धर्मात्मा है तो इसी लिए कि वह धर्म का आचरण करता है। एक व्यक्ति धनी है तो इस लिए कि उस ने धन का संचय किया है। एक व्यक्ति विद्वान् है तो उस ने विद्या इकट्ठी की है। ये सभी बातें स्वाभाविक नहीं हैं। यदि ये बातें स्वाभाविक होतीं तो धर्मात्मा व्यक्ति धर्मात्मा कहलाता ही नहीं जैसे—कुत्ता भी स्वामी भक्त है और नौकर भी—परन्तु नौकर का दर्जा कुत्ते की अपेक्षा ऊंचा है क्योंकि कुत्ते में स्वभाव से स्वामी भक्ति है। कुत्ते को डण्डा मारो तो भी पूँछ हिलाता हुआ स्वामी के पास आ जाता है परन्तु मनुष्य अविश्वास को रोक कर विश्वास को बाहर लाया है इस लिये वह प्रशंसा के योग्य है।

जीवात्मा में धार्मिकता या विद्वत्ता स्वाभाविक नहीं है। एक और उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति एक सेठ के पास गया और जा कर कुछ रुपये जमा कर दिए कि मैं एक मास के पश्चात् आकर ले लूँगा। एक मास के पश्चात् आ कर रुपये वापस मांगे तो सेठ जी ने पूरे रुपये दे दिये। वह व्यक्ति बड़ा प्रसन्न हुआ और सेठ जी की बड़ी प्रशंसा की। दूसरी ओर एक व्यक्ति एक सन्दूक में कुछ रुपये रखता है। कुछ समय के पश्चात् उन रुपयों को बाहर निकालता है और जितने रुपये रक्खे थे उतने ही रुपये पा कर उस की प्रशंसा करता है तो लोग कहेंगे कि क्या सन्दूक भी बेईमान हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकती थी और जब वह बेईमान नहीं हो सकती तो इमानदार भी नहीं हो सकती। सेठ की प्रशंसा हो सकती है क्योंकि वह उन रुपयों को खा सकता था अथवा वह कह सकता था कि मुझे कब दिए थे परन्तु सन्दूक न रुपयों को खा सकता है और न यह कह सकता है कि मुझे रुपए कब दिए थे।

हम भला बनना चाहते हैं परन्तु भलाई स्वाभाविक वस्तु नहीं है अतः जो स्वभाव से विद्वान् और धर्मात्मा है उस से सीखना होगा वह परमात्मा है जिसको आजकल के कई लोग नहीं मानते। फिर प्रश्न होता है कि जो ईश्वर को नहीं मानते वे धर्मात्मा और विद्वान् कहां से हो गए ? इस का समाधान यह है कि ईश्वर की ओर से ज्ञान आया है परन्तु उन ज्ञान प्राप्त करने वालों ने बताया नहीं कि धर्म का मूल कारण क्या है। जैसे पिता ने अपने पुत्र को शिक्षा दी परन्तु जिस से उस ने सीखी थी लड़के को उस के दादा का नाम नहीं बताया तो वह दादा को क्या जाने ठीक इसी प्रकार ज्ञान तो प्रभु से ही आता है परन्तु लोग उस को बताते नहीं इस लिए अन्य लोग उस को नहीं जानते। हमारे अन्दर उत्तम गुण आते हैं, इन गुणों को हम माता-पिता से सीखते हैं—यह बात तो ठीक है परन्तु माता-पिता स्वतन्त्र कारण नहीं हैं। सशेष

छात्र जगत्

विचार-तरङ्ग

श्री भारत भूषण देहली

महान् पर्वत भी निर्झरिणी के वेग को रोक न सका। निर्झरिणी उस पर्वत शृंखला के उतार-चढ़ाव को पार करती हुई लक्ष्य की ओर बढ़ती रही।

मार्ग में भयङ्कर चट्टानें बाधक बनीं, किन्तु वह हताश न हुई। उसने उन्हें भी चूर्णकर अपने पथ का पथिक बनाया।

क्या मनुष्य इस से कुछ नहीं सीख सकता ?

\+ \+ \+

हमने कमल को कीच में तथा गुलाब को कंटकों में मुस्काते देखा है। समझ में नहीं आता सृष्टि का मुकुटमणि मानव क्यों क्षणिक दुःखों में रो देता है ?

यदि विघ्न बाधाओं को वह अपने व्यक्तित्व विकास में सहायक मान ले तो क्या सदा प्रसन्न नहीं रह सकता ?

बादल घुमड़ते हैं। बिजली चमकती है। तूफ़ान चलते हैं। भयङ्कर वर्षा होती है। अन्धकार ही अन्धकार छा जाता है। हम समझते हैं प्रलयकाल आ गया। पर नहीं, ऐसा क्योंकर हो सकता है? यह तो हमारे समझने की ही भूल होती है।

समय बीतता है। रवि-किरणें मुखरित होती हैं। वातावरण आलोकित हो उठता है।

क्या प्रकृति के इस अटूट नियम के अनुसार दुःख के बाद सुख नहीं आता ?

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन भारत शिक्षण पद्धति

भगवद्गीता द्वारा उस का निदर्शन

(१)

प्रिंसिपल अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए पी. एच्. डी. देहली

[हमारे मान्य मित्र इस लेख के लेखक डॉ० अविनाशचन्द्र जी बोस एक उच्च कोटि के शिक्षा वैज्ञानिक और विचारक हैं। आप बम्बई विश्वविद्यालयान्तर्गत राजाराम कालेज कोल्हापुर में अंग्रेज़ी विभाग के अध्यक्ष थे। उस के पश्चात् आप आयर् गए और वहां से पी. एच्. डी. की उपाधि प्राप्त कर के अनेक महाविद्यालयों में उच्च पदों पर कार्य करते रहे। गत कुछ वर्षों से आप मध्यप्रदेश के लाहिरी कॉलेज आदि में प्रिंसिपल रह कर गत वर्ष कार्य निवृत्त हुए हैं। आप का वेदों का अनुशीलन भी बड़ा गहन और विशाल है। आप ने The Call of the Vedas नामक अत्युत्तम पुस्तक लिखी है जो विद्याभवन बम्बई से प्रकाशित हुई है। हमारी प्रार्थना पर उन्होंने निम्न महत्त्वपूर्ण विचारोत्तेजक लेख भेजने की कृपा की है। भविष्य में भी उन के अत्युत्तम लेखों से पाठक लाभ उठाते रहेंगे ऐसा दृढ़ विश्वास है। –सम्पादक, गु. कु. प.]

ऋग्वेद में गुरु की शिक्षा से शिष्य किस प्रकार लाभान्वित होता है इस का सजीव सुरम्य वर्णन निम्न शब्दों में पाया जाता है––

अक्षेत्र वित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट्
स प्रैति क्षेत्रविदानु शिष्टः।
एतद् वै भद्रमनुशासनस्योत
स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥
ऋग्० १०. ३२. ७।

इस का तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति जो क्षेत्र वा भूमि के विषय में अनभिज्ञ है उस से प्रश्न करता है जो उस का ज्ञाता है। उस मार्गदर्शक की शिक्षा पा कर वह आगे यात्रा करता जाता है। शिक्षा वा अनुशासन का यही सुख है कि शिष्य उस मार्ग को प्राप्त कर लेता है जो उसे सीधा प्रगति की ओर ले जाता है। इस से सूचित होता है कि शिक्षा का उपक्रम वा आरम्भ शिष्य से होता है। वह एक यात्री के समान है जो किसी अज्ञात प्रदेश को देखना चाहता है। यह किसी यात्री के लिए संभव है कि वह स्वयं इधर-उधर भ्रमण कर के कुछ देख सके किन्तु जब उसे ऐसा मार्गदर्शक प्राप्त हो जाता है जो उस प्रदेश से भली-भांति परिचित हो तो वह इधर-उधर निरुद्देश्य भटकने में समय नष्ट नहीं करता और न दर्शनीय मुख्य वस्तुओं के देखने से वञ्चित रह जाता है। इसी प्रकार आचार्य की अधीनता में रह कर शिष्य, ज्ञान के क्षेत्र में सुरक्षित भूमि पर पैर रखता है और वह इस के लिए सरलतम तथा लघुतम मार्ग का आश्रय लेता है।

इस प्रकार आचार्य विद्यार्थी के लिए एक मार्गदर्शक है जो यात्री के समान अज्ञात को जानने के लिए उत्सुक है। विद्यार्थी की जिज्ञासा उसे मार्गदर्शक खोजने को प्रेरित करती और उसे आचार्य के पास पहुंचने का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अधिकार प्रदान करती है । वह प्रश्न पूछता है। उस का मुख्य कार्य प्रश्न पूछना है जिस का ऊपर उद्धृत वेदमन्त्र के 'अप्राट्' शब्द में स्पष्ट निर्देश है। मनु ने शिक्षा प्रकार का वर्णन करते हुए कहा है कि—

'नापृष्टः कस्य चिद् ब्रूयात् ।'

अर्थात् जब तक कोई प्रश्न न करे तब तक शिक्षक को कुछ न बोलना चाहिए ।

इस का अभिप्राय यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी का कार्य सक्रिय था निष्क्रिय नहीं । उस का मन शिक्षक द्वारा दिए ज्ञान को प्राप्त करने और उसे सुरक्षित रख देने के लिए ही न था । शिक्षक जो ज्ञान देता था वह उस की मानसिक चाह अथवा जिज्ञासा के उत्तर में होता था । शिक्षा का अधिकारी बनने के लिए उसे शिक्षक के प्रति नम्र और श्रद्धालु होना आवश्यक था पर साथ ही ज्ञान की प्राप्ति में उसे शिक्षक से प्रश्न अवश्य करने चाहिएं यह नियम था । इस लिए गीता में कहा है—

'तद् विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया ।।'
४. ३४ ।

अर्थात् तू ज्ञानियों के प्रति नम्रता, चारों ओर से प्रश्न और सेवा के द्वारा ज्ञान को प्राप्त कर । यजुर्वेद ३० । १० में कहा है—

'शिक्षायै परि प्रश्निनम् ।'

शिक्षा के लिए ऐसे विद्यार्थी को प्राप्त करो जो चारों ओर से प्रश्न करने वाला अर्थात् सच्चा जिज्ञासु हो ।

यह एक मनोरञ्जक बात है कि स्वयं भगवद्गीता गुरु से प्रश्न द्वारा सीखने के प्रकार का एक—आदर्शभूत स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है और इस प्रकार प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती है। युद्ध क्षेत्र में इस समस्या के समाधान में स्वयम् असमर्थ हो कर कि किस प्रकार अपने निकट-तम और प्रिय बन्धुओं का हनन किया जाना उचित होगा जो युद्ध में उस के विरुद्ध खड़े हैं जब कि क्षत्रिय के रूप में यह उस का कर्तव्य हो जाता है, अर्जुन उसी प्रकार श्री कृष्ण के पास आता है जैसे एक शिष्य अपने आचार्य के पास जाया करता था और उस से शिष्य के रूप में अपने को स्वीकार करने की प्रार्थना करता है—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।'
(गीता २. ७ ।)

अर्थात् मैं आप का शिष्य हूं । अपने शरणागत मुझे आप शिक्षा दें यह कह कर वह अपने को सम्पूर्णतया उन के प्रति समर्पित कर देता है । श्री कृष्ण महाराज उस समय उस के आचार्य बन जाते हैं और महाभारत की कथा के अनुसार वह बातचीत हो जाती है जो प्राचीन भारत के आश्रमों में हुआ करती थी । पर्याप्त समय तक प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया चलती रहती है जिस से भगवद्गीता के ७०० में से ५८७ श्लोक भरे हुए हैं । इस बीच में अर्जुन १५ वार बोलता और १३ प्रश्न करता है, एक वार टीका टिप्पणी करता और अन्तिम उत्तर देता है । योगिराज श्री कृष्ण प्रश्नों का उत्तर देते हैं और कई वार उत्तर के समर्थन में व्याख्या करते हैं । विषय का न केवल सद्यः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तुत विषय के रूप में निरूपण किया गया है किन्तु मौलिक तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। आचार्य शिष्य की मानसिक अवस्था को जानते हुए बड़ी गहराई में जाते हैं।

हम श्री कृष्ण को आचार्य की आदर्श मनोवृत्ति को अपनाता हुआ पाते हैं। वे अपने संवाद को मुस्कराते हुए (प्रहसन्निव) प्रारम्भ करते हैं। यद्यपि श्री कृष्ण ने अर्जुन को साधारणतया मित्र के रूप में सम्बोधित किया है तथापि कहीं-कहीं प्रिय पुत्र (तात) के रूप में भी उसे पुकारा है जैसे कि आचार्य शिष्य को पुकारा करता था। कई वार विशेषतः प्रारम्भ में शिष्य का मन इस बात से कुछ उत्तेजित सा है कि गुरु सुनने में परस्पर विरुद्ध सी बातें उस के सन्मुख रख रहे हैं। अर्जुन सोचता है कि उस के गुरु ने ज्ञान को कर्म के ऊपर रखा है तो फिर उसे कर्म करने के लिए वे क्यों कहते हैं ? (ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते, मता बुद्धिर्जनार्दन। तत् किं कर्मणिघोरे मां, नियोजयसि केशव ॥) वह अपने गुरु (श्री कृष्ण जी) पर यह आरोप लगाता है कि वे दो प्रकार की परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाली बातें कह कर उसे मोह या गड़बड़ में डाल रहे हैं और वह निश्चित रूप से जानना चाहता है कि उस के लिए क्या श्रेयस्कर वा कल्याणकारी है।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥
गीता ३. २।

एक अन्य स्थान में वह अपने आचार्य (श्री कृष्ण जी) की स्थापना पर सन्देह प्रकट करते हुए कहता है कि—
'कथमेतद् विजानीयां, त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥'
४. ४।

अर्थात् मैं यह कैसे जानूं कि आप ने ही पहले विवस्वान् को उपदेश दिया था जब कि उस का जन्म आप से पहले हुआ।

एक अन्य स्थान पर अर्जुन समझता है कि उस के गुरु जी ने परस्पर विरोधी वचन कह दिया है—
संन्यासं कर्मणां कृष्ण, पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं, तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥
गीता ५. १।

किन्तु अन्त में शिष्य को गुरु जी की बात पर विश्वास हो जाता है और वह कहता है—
सर्वमेतत् ऋतं मन्ये, यन्मां वदसि केशव ॥
गीता १०. १४।

आप मुझे जो कुछ कहते हैं उसे मैं सर्वथा सत्य मानता हूं। गुरु के लिए यह सब से बड़ा पुरस्कार है। शिष्य गुरु के वचनों को सुनने के लिए जिन्हें अब वह अमृत के नाम से पुकारता है उत्सुक है। अपने गुरु के रूप में उस ने एक ऐसे अद्भुत महापुरुष को पाया है जिस ने उस के सब संशयों को दूर कर दिया है। (असमाप्त)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंग्रेज़ी-संस्कृत-हिन्दी भाषा कोष
English-Sanskrit-Hindi Dictionary

श्री श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा निर्मीयमाण

English	संस्कृत	हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्द
Accord (v. i.)	युज् रुधा. उ. कर्मवाच्ये (युज्यते)	मिलना, समान होना,
	संवद् भ्वा. प. (संवदति)	एक मन वाला होना
	एकचित्ती भू. प. (भवति)	
	सम्मतो भू. प. ,,	
Accord (v. t.)	दाजु हो. उ. (ददाति दत्ते)	देना
Accord (n)	सहमतिः, ऐकमत्यम्, स्वीकरणम्, एक चित्तता ।	सहमति, स्वीकृति, एकचित्तता
(Mus. n.)	(सं. शा.) स्वरैक्यम्, तालैक्यम् ।	बं०–सामञ्जस्य क०–सामरस्य, स्वीकरण मल०–ऐकमत्यम्, संगीते ऐकतालम्
With one accord	एकचित्तीभूय ।	एकचित्त होकर
Of one's own accord	स्वेच्छया, कामतः, स्वयम् ।	स्वेच्छा से, स्वयम् अपनी इच्छा से,
Accordance (n,	अनुसारः, सादृश्यम्, अनुरोधः, अनुरूपता ।	अनुसार, मेल, अनुरोध, क०–अनुमति आ०—ऐक्यभाव मल०—ऐकमत्यम्, सादृश्यम्
In accordance with his words	तद्वचनानुसारम्, तद्वचनानुरोधेन ।	उसके वचन के अनुसार, उसके अनुरोध से
Accordant (adj)	अनुयायी, अनुरूपः ।	अनुयायी, सहमत
According (to) (adv)	अनुरूपम्, अनुसारेण, समस्तपदेषु अनु यथा ।	अनुरूप, जैसा कि, अनुसार
--to seniority	अनुज्यैष्ठ्यम्	ज्येष्ठता के अनुसार
--to desire.	यथेष्टम्, यथाभिमतम्	यथेष्ट, इच्छानुसार
—to one's power	यथाशक्ति ;	शक्ति के अनुसार
Accordingly (adv)	तथैव, तदनुसारतः, तदनुरूपम् ।	वैसे ही, उसके अनुसार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

English	संस्कृत	हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्द
Accordian (Mus. n.)	(सं० शा०) सङ्गीतवाद्यविशेषः	(सं० शा०) हारमोनियम के समान एक हलका बाजा
Accost (v. t.)	प्रथमं सम् भाष् भ्वा. आ. (संभाषते, अभिभाषते, आभाषते) अभिधा. जुहो० उ० (अभिदधाति, अभिधत्ते) सम् आ+मन्त्र चुरा० आ० (समामन्त्रयते) सं बुध् णिच् (सम्बोधयति) नमस् कृ. तना० उ० (नमस्करोति-कुरुते) कुशलं पृच्छ् तुदा० प० (पृच्छति)	प्रथम वार संभाषण करना, कुशलक्षेम पूछना, नमस्कार करना, ते०—अभिवादनमु चेयु
Accosted (P.P.)	अभिहितः, अभिभाषितः (पु०) अभिभाषिता (स्त्री)	संभाषण किया हुआ, नमस्कृत, कुशलक्षेम पूछा हुआ
Accouchement (n)	प्रसवः (पु.) प्रसूतिः (स्त्री)	प्रसव, बच्चा जनना क० मल०—प्रसूति, मरा०—प्रसवक्रिया
Accoucher (n)	प्रसववैद्यः, प्रसूतिवैद्यः	प्रसव वैद्य (जो वैद्य प्रसव कराने में सहायता दे) क०—प्रसूतिकार मल०—प्रसूतिवैद्यन् मरा०—प्रसवकारी वैद्य
Account (n)	गणना, संख्यानम्, लेखा, कारणम्, विवरणम्, वृत्तान्तः, उपाख्यानम्	लेखा, गणना, (भारतीय संविधान में स्वीकृत शब्द) हिसाब, वृत्तान्त, विवरण
Account (v t)	गण् चुरा० प० (गणयति) संख्या अ० प० (संख्यायति) लेखां कृ० तना० उ० (करोति—कुरुते)	गणना करना, गिनती करना, हिसाब करना
Balancing account	गणनां समीं कृ० तना० उ० (समीकरोति—कुरुते) ★	लेखा, गणना वा हिसाब को सम-तुलित करना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

श्री अरविन्द जी के कुछ महत्वपूर्ण वचन

(उन के १५ अगस्त के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में संकलित)

१. जगन्माता से पहले यह अभीप्सा करो और प्रार्थना करो कि तुम्हारा मन अचञ्चल हो, तुम में शुद्धि, स्थिरता और शान्ति का निवास हो, तुम में जागृत चेतना हो, प्रगाढ़ भक्ति हो, समस्त आन्तर और बाह्य कठिनाइयों का मुकाबला करने के लिये तुम में बल तथा आध्यात्मिक सामर्थ्य हो। यदि चेतना जागृत हो जाती है और वहां भक्ति एवं अभीप्सा की तीव्रता रहती है तो मन के लिये यह संभव हो जायगा कि वह ज्ञान में विकसित हो सके इस शर्त पर कि वह अचञ्चल होना और शान्त होना सीख ले।

—योग के आधार पृ० २६ से।

२. अपनी वर्तमान परिस्थितियों और उन के विरोध से विचलित मत होओ। प्रायः ये अवस्थाएं एक प्रकार की परीक्षा के तौर पर साधक कर लायी जाती हैं। यदि तुम शान्त और अविचलित रह सको और इन अवस्थाओं में अपने आप को अन्दर से जरा भी विचलित न होने दे कर अपनी साधना जारी रख सको तो इस से तुम को उस सामर्थ्य को प्राप्त करने में सहायता मिलेगी जिस की बहुत आवश्यकता है, कारण, योगमार्ग सदा आन्तर और बाह्य कठिनाइयों से आकीर्ण रहता है और इन कठिनाइयों का सामना करने के लिये साधक को एक अचञ्चल, दृढ़ और ठोस सामर्थ्य को अपने में विकसित करना होता है।

—योग के आधार पृ० ३१।

३. समता के विना साधना में किसी सुदृढ़ स्थापना का होना सम्भव नहीं। जवस्थाएं चाहे जितनी भी अप्रिय हों, दूसरों का व्यवहार चाहे जितना भी प्रतिकूल हो, तुम्हें उन को पूर्ण स्थिरता और विना किसी हलचल मचाने वाली प्रतिक्रिया के, ग्रहण करना सीखना होगा। इन चीजों से समता की परीक्षा होती है। जब सब कुछ ठीक तरह से चल रहा हो और जनसमह तथा परिस्थिति अनुकूल हो उस समय तो स्थिर और सम होना सहज है ही; किन्तु परिस्थिति जब इस के विपरीत होती है तभी यह अवसर होता है कि स्थिरता, समता और शान्ति पूर्ण होने की परीक्षा की जा सके और उन में नवीन शक्ति का संचार कर उन्हें सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण बनाया जा सके।

—योग के आधार पृ० ३७।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कवि की श्रद्धांजलि

कवि—श्री कमल साहित्यालङ्कार (विजनौर)

श्रीमद्दयानन्द शत-शत प्रणाम।
तुम अन्तर्दीप जलाने वाले।
शत-शत प्रणाम योगी ऋषि वर्चस।
विश्व धर्म के व्रत नेमी ऊज्र्वस।
मुनिवर, आर्य भारती के ज्ञाता।
ब्रह्मचारी ! हे जग त्राता।
संस्कृति के पावन सावन घन तुम,
वेद ज्ञान कराने वाले।
दयानन्द शत-शत प्रणाम।

सिन्धु बिन्दु के कूल मूल प्रान्तर।
किसी लोक में भी निमिष न अन्तर।
बाहर भीतर पण-पण तृण अणु कण।
अर्ध उतुंग हिमानी हो या व्रण।
ईश्वर का वास पास थल-थल में।
तुम आत्म ज्योति दिखाने वाले।
दयानन्द शत-शत प्रणाम।

आज तुम्हारी ज्ञान गिरा गायक।
हैं निखिल विश्व शान्ति के नायक।
वर्ण भेद जाति भ्रान्ति के भोगी।
'एकोऽहं बहुस्याम' के बने हैं योगी।
मानव मन नयनों जन-जीवन से।
तुम ही तमतोम हटाने वाले।
दयानन्द शत-शत प्रणाम।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां आनी चाहियें)

"प्रभुभक्त दयानन्द और उन के आध्यात्मिक उपदेश"—लेखक–आचार्य भद्रसेन जी 'आदर्श साहित्य निकेतन' केसर गंज अजमेर। पृष्ठ २०८, मूल्य १)५० ।

मैंने आचार्य भद्रसेन जी कृत 'प्रभुभक्त दयानन्द और उन के आध्यात्मिक उपदेश' नामक पुस्तक को आद्योपान्त बहुत ध्यान से पढ़ा। पुस्तक अत्यन्त उत्तम, उपयोगी और सब के लिये उपादेय है। महर्षि दयानन्द जी को अधिकतर लोग केवल एक सुधारक के रूप में ही देखते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे कितने उन्नत और साधु सन्त शिरोमणि तथा आदर्श प्रभु भक्त थे इस बात को कम लोग जानते हैं। आचार्य भद्रसेन जी ने इस दृष्टि से महर्षि दयानन्द के जीवन और कार्य पर विचार करते हुए उन के आध्यात्मिक उपदेशों का जो उन के वेद भाष्यादि समग्र ग्रन्थों और जीवन चरित्रों में से संग्रह किया है वह अत्यन्त उपयोगी और सभी जिज्ञासुओं के लिये विशेष उपादेय है, इस में मुझे अणुमात्र भी सन्देह नहीं। ऐसे समय में जब सच्ची आध्यात्मिकता न्यून हो रही है और उस का स्थान अनेक प्रकार के पाखण्ड अथवा अविश्वास ले रहे हैं इस पुस्तक को लिख कर आचार्य भद्रसेन जी ने जनता का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक की छपाई तथा आकार प्रकार सब अत्याकर्षक है। —धर्मदेव।

संस्कृतान्ध्र हिन्दी बोधिनी प्रथम भाग रचयिता—साहित्य चक्रवर्ती कर्ण वीर नागेश्वर कवि, प्रकाशक—आन्ध्र भारती प्रकाशन मंदिर वेटपालेम (गुन्टूर) आन्ध्र प्रदेश। मू० १)५०

साहित्य चक्रवर्ती कर्णवीर नागेश्वर कवि जी आन्ध्रप्रदेश के अद्‌भुत संस्कृत और राष्ट्र भाषा के प्रेमी हैं। आन्ध्र भाषा (तेलुगु) तो उन की मातृ भाषा है जिस के वे महान् पंडित हैं। इस पुस्तक को लिख कर उन्होंने संस्कृत और हिन्दी जानने की इच्छा रखने वाले सब विद्यार्थियों तथा अन्य नर-नारियों का बड़ा उपकार किया है। हिन्दी संस्कृत जानने वाले इस के द्वारा आन्ध्र भाषा (तेलुगु) का सुगमता से अभ्यास कर सकते हैं। २० पाठों में इस पुस्तक में हिन्दी संस्कृत के सामान्य नियमों का अच्छा परिचय दे दिया गया है। क्रम सरल और उत्तम है, जिस के लिये लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। यदि हमारी इच्छानुसार तेलुगु को भी देवनागरी लिपि में लिखा जाता तो और भी अच्छा होता। दो चार स्थानों पर प्रमाद-वश अशुद्धि रह गई है आशा है उसे अगले संस्करण में ठीक कर लिया जाएगा उदाहरणार्थ पृष्ठ ३६ पर 'त्वदीय भारतीयजन्मस्य अतीव-धिकारः' ऐसा छपा है 'जन्मनः' प्रयोग होता है। पृष्ठ ५० पर 'उत्तर प्रदेशस्य राज्यपालः श्री मुन्शी महोयस्य' ऐसा छपा है 'राज्यपालस्य' ऐसा पाठ होना चाहिये। सम्पूर्णतया यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और प्रशंसनीय है जिस के लिये हम सुयोग्य लेखक का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। —धर्मदेव।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रङ्ग

श्रावण मास के प्रारम्भ हो जाने पर भी अभी तक प्रतिवर्ष की भांति वर्षा की निरन्तर बौछार प्रारम्भ नहीं हुई। दिनभर में एक आध घण्टे के लिए कठिनाई से कुछ बूँदा बांदी हो जाती है। परिणाम स्वरूप आकाश में मेघों के वर्तमान रहने पर भी ग्रीष्म का कुछ प्रकोप है। लेकिन फिर भी कुल भूमि के सभी मैदान, उद्यान एवं वाटिकाएं हरियाली से भरपूर हैं। दो-एक वार वर्षा के आ जाने से रसाल में रस तथा जामुन में गहरा जामुनी रङ्ग आ चुका है। आजकल सभी कुलवासी आम तथा जामुन खाते हुए सुनहरे प्रभात एवं शाम के समय इतस्ततः भ्रमण करते हुए सानन्द दिन व्यतीत कर रहे हैं। आषाढ़ मास के अन्त में थोड़े समय के लिए श्लेष्म ज्वर की वायु का झोंका आया था जो कि अब सर्वथा जाने को उद्यत है।

विशेष व्याख्यान

आषाढ़ मास में यहां पर मान्य श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक श्री पं. इन्द्र जी विद्या-वाचस्पति, श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री तथा श्री ओम्प्रकाश जी पुरुषार्थी सेनापति आर्यवीर दल आदि अनेक महानुभावों के "पञ्जाब में हिन्दी आन्दोलन तथा उस का औचित्य" इस विषय पर ओजस्वी भाषण हुए। इस के अतिरिक्त श्री डॉक्टर विश्वेश्वर प्रसाद जी अध्यक्ष इतिहास विभाग देहली विश्व-विद्यालय का वेद महाविद्यालय प्रार्थना भवन में "सन् १८५७ की क्रांति" इस विषय पर एक विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ।

अद्भुत साहस

३ जुलाई १९५७ को श्री पं० हरिवंश जी वेदालङ्कार एम. ए. की अध्यक्षता में महा-विद्यालय के छात्रों का एक दल पुण्यभूमि में भ्रमणार्थ गया। वहां एक चरवाहे ने उन्हें बताया कि यहाँ एक साँप है जो कि हमारे लिए भयप्रद सिद्ध हो रहा है। ब्रह्मचारी उस स्थान पर ३ घंटे तक ढूँढते रहे पर वह न मिला। जब वे हताश हो गए तब पं० हरिवंश जी तथा ब्र० हरिशंकर जी उस की तलाश में इधर-उधर चक्कर काटते रहे। इतने में अकस्मात् ब्र० हरिशंकर ने उसे एक बंसेली के पत्तों में आराम करते देखा। तब सब यहां आए और ब्र० गोपाल तथा पं. हरिवंश जी ने उस की पूंछ पकड़ कर उसे खींचा। परिणाम स्वरूप उसने पीछे मुड़कर आक्रमण किया और सभी उसे छोड़कर भाग खड़े हुए। पर जब थोड़ी देर बाद उन्होंने मुड़ कर देखा तो वह बंसेली में फिर प्रविष्ट हो रहा था। ये फिर पहुंचे और उसे खींच कर पृथ्वी, पर पटक ब्र० गोपाल ने इसे एकदम दबा लिया और पं० हरिवंश जी ने इस का मुख पकड़ कर बोरी में बन्द कर दिया और कन्धों पर उठा गुरुकुल ले आए। लाते हुए ब्रह्मचारियों के कन्धे छिल गये, जिस से उस के भार का अनुमान लगाया जा सकता है। उस की लम्बाई लगभग १६ फीट तथा मोटाई २ फ़ीट

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। इस समय वह आयुर्वेद महाविद्यालय की बनी नई प्रयोगशाला में उसी दिन से अनशन किए पड़ा है। उस को देखने के लिए दर्शकों की भीड़ लगी रहती है। इस दल में ब्र० योगराज तथा ब्र० मदनगोपाल भी सम्मिलित थे। ब्रह्मचारियों के इस साहसिक कार्य की हम सराहना करते हैं।

श्रेणी सान्मुख्य

गुरुकुल महाविद्यालय में श्रेणीवार सान्मुख्य हुआ। इस में त्रयोदश श्रेणी जिस के नायक ब्र० महाव्रत जी थे विजयी रही। इस सान्मुख्य के प्रबन्धकर्ता ब्र० जगन्नाथ जी थे। उन्होंने विद्यार्थियों में उत्साह फूँका। उस की प्रशंसा की जाती है।

नई नियुक्तियां

नए सत्र के प्रारम्भ होने के साथ ही यहां विज्ञान विभाग, गणित एवं जीव विज्ञान की श्रेणियाँ तथा इतिहास संस्कृत आदि विषयों में वाचस्पति श्रेणी खुल गई हैं। विज्ञान विभाग के आचार्य श्री फ़कीरचन्द्र जी एम. एस्. सी. जो यहां अनेक वर्षों से रसायन शास्त्र के उपाध्याय थे नियुक्त हुए हैं। इस के अतिरिक्त श्री सुरेशचन्द्र जी एम. एस. सी. गणित तथा पं० दर्शनलाल जी एम. एस. सी. भौतिकी शास्त्र के उपाध्याय नियुक्त हुए हैं। लगभग २२ छात्र भी नए प्रविष्ट हो चुके हैं।

कृषि-विद्यालय

इस वर्ष कृषि विद्यालय में ६७ नए छात्र प्रविष्ट हुए हैं। अधिकारी गण इस बात पर गंभीरता पूर्वक विचार करने में संलग्न हैं कि कृषि विद्यालय के छात्र स्वयं अपने हाथ से कोई काम करें और उन्हें कुछ पारिश्रमिक भी दिया जाए। इस से उन में कार्यक्षमता की वृद्धि होगी तथा स्वावलम्बन की शिक्षा भी मिलेगी। वे समय आने पर देश के सच्चे उपकारक सिद्ध होंगे। इस के अतिरिक्त उन के क्रियात्मक कार्य के लिए एक शिल्प शाला तथा डेरी फार्म आदि के निर्माण की चर्चा की जा रही है। मधु मक्षिकाओं का पालन तथा नर्सरी की तरफ भी ध्यान दिया जा रहा है।

विशेष अधिवेशन

२० जुलाई १६५७ शनिवार के दिन विद्यासभा के सदस्य कुलभूमि में पधारे। जिन में श्री भगवान् देव जी आचार्य गुरुकुल झज्जर, श्री जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति उप कुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय, श्री रघुवीर जी शास्त्री आदि अनेक महानुभाव उपस्थित थे। २१ जौलाई १६५७ प्रातः ७॥ बजे सिद्धान्ती जी आचार्य जी तथा शास्त्री जी ने महाविद्यालय के छात्रों को अपने दर्शनों से कृत-कृत्य किया और श्री रघुवीर जी शास्त्री ने पञ्जाब में हिन्दी आन्दोलन के कारणों की विस्तृत व्याख्या करते हुए वर्तमान काल में आंदोलन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। इसी दिन साढ़े नौ बजे विद्या सभा का अधिवेशन हुआ। रात्रि साढ़े आठ से साढ़े ९ बजे तक उक्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महानुभावों का महाविद्यालय के छात्रों के साथ प्रीति भोज संपन्न हुआ और तत्पश्चात् ३ घंटे तक उन की छात्रों के प्रतिनिधियों के साथ अतिथि भवन में आश्रम व्यवस्था तथा आश्रम शुल्क सम्बन्धी चर्चा हुई।

५-४-१४ —प्रशान्तकुमार।

सूचना

'गुरुकुल-पत्रिका' के सब ग्राहकों और प्रेमियों को सूचना दी जाती है कि गुरुकुल विश्वविद्यालय के मान्य मुख्याधिष्ठाता श्री पं० इन्द्र जी विद्या-वाचस्पति के आदेशानुसार श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड इस पत्रिका के सम्पादक और श्री महेशप्रसाद चौधरी प्रबन्धकर्ता नियुक्त किये गये हैं। निम्नलिखित महानुभावों की सम्पादक समिति मान्य मुख्या-धिष्ठाता जी ने नियत की है।

१. श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।
२. श्री पं० हरिदत्त जी वेदालङ्कार एम. ए. उपाध्याय इतिहास, अध्यक्ष गुरुकुल संग्रहालय।
३. श्री प्रो० चम्पत स्वरूप जी एम. एस्. सी उपाध्याय वनस्पति शास्त्र तथा प्राणिविज्ञान।
४. श्री पं० रामेश बेदी जी आयुर्वेदालङ्कार अध्यक्ष प्रकाशन विभाग गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी।
५. श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड (मन्त्री सम्पादक समिति तथा का० सम्पादक गुरुकुल-पत्रिका)।

गुरुकुल-पत्रिका के व्यवस्थापक पूर्ववत् श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति एम. पी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल काङ्गड़ी रहेंगे।

पत्रिका को सब प्रकार से उन्नत करने का इस सम्पादक समिति तथा अन्य विद्वानों के सहयोग से पूर्ण प्रयत्न किया जाएगा। ग्राहक महानुभाव भी अपने मित्रों और प्रेमियों को अधिक संख्या में ग्राहक बना कर सक्रिय सहयोग प्रदान करें। विद्वानों तथा प्रेमियों के निर्देशों का हम सहर्ष स्वागत करेंगे। इस अङ्क में सम्पादकीय तथा कई अन्य उपयोगी स्तम्भ प्रारंभ कर दिये गए हैं।

—महेशप्रसाद प्रबन्धकर्ता।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

शिक्षा का मुख्योद्देश्य—सच्चरित्र निर्माण

वेदादि सत्य शास्त्रों के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के समविकास के साथ-साथ सच्चरित्र निर्माण है। वेदों में आचार्य के मुख से शिष्य के प्रति कहलवाया गया है कि—

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि · · · · चरित्रांस्ते शुन्धामि ॥ (यजुर्वेद ६. १५)

अर्थात् हे शिष्य ! मैं उत्तम शिक्षा के द्वारा तेरी वाणी, प्राण, आंख, कान आदि सब अङ्गों और तेरे चरित्र को पवित्र बनाता हूं। ब्रह्मचर्य को शिक्षा की आधारशिला बताते हुए वेदों में कहा गया है कि—आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

(अथर्व० ११. ५. १७)।

अर्थात् आचार्य ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचारी की इच्छा करता है। आचार्य शब्द का मुख्य अर्थ ही यास्काचार्य कृत निरुक्त के अनुसार 'आचारं ग्राहयति' अर्थात् सदाचार का ग्रहण कराने वाला यह है। स्वयं पूर्ण सदाचारी और संयमी बन कर ही आचार्य शिष्यों को ब्रह्मचारी बना सकते हैं। मनुस्मृति में 'आचारः परमो धर्मः' यह कह कर आचार को न केवल परमधर्म बताया गया है अपितु—

'आचाराल्लभते ह्यायुः,
आचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचारो धनमक्षय्यम्,
आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

इत्यादि श्लोकों में मनु महाराज ने कहा है कि सदाचार से ही मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है, सदाचारी पुरुष जनता का प्रेमपात्र बनता है, सदाचार अक्षय धन है और सदाचार सब बुराइयों को नष्ट कर देता है। ऐसे ही वचन अन्य प्राचीन ग्रंथों में पाए जाते हैं जिन में सदाचार की महिमा गाई गई है। गुरुकुल शिक्षाप्रणाली में सच्चरित्र निर्माण की ओर अति विशेष ध्यान दिया जाता है। खेद है कि हमारे देश की तथा विदेशों की शिक्षा संस्थाओं में अभी तक इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता जिस के भयङ्कर परिणामों को (उदाहरणार्थ युवकों और युवतियों का नैतिक पतन, छात्र छात्राओं में बढ़ती हुई अनुशासन हीनता, उच्च जीवनादर्श का अभाव आदि) देश के मान्य नेता और उच्च कोटि के शिक्षा वैज्ञानिक अनुभव कर रहे हैं। हमारे महामान्य राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने २८ दिसम्बर १९५५ को दिये अपने एक भाषण में कहा था 'हमारी वर्तमान शिक्षाप्रणाली सवा सौ वर्ष पुरानी है। उस समय जिस उद्देश्य को सामने रख कर यह प्रारम्भ की गई थी वह अब नहीं रहा किन्तु प्रणाली अब भी वही है। मैं यह नहीं कहता कि इस में हेर फेर के प्रयत्न नहीं किये जा रहे किन्तु हमें अभी तक इन प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली। हो सकता है कि जितना प्रयत्न किया जाना चाहिये वह नहीं किया गया। शिक्षा में सुधार प्राइमरी शिक्षा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से प्रारम्भ होना चाहिये । (नवभारत टाइम्स २६-१२-५५) ऐसा ही अन्य अनेक वार उन्होंने कहा है । मान्य उपराष्ट्रपति मनीषी डा. राधाकृष्णन् भी सच्चरित्र निर्माण के बिना शिक्षा सर्वथा व्यर्थ है और उस के अभाव में हमारे देश की कोई योजना सफल नहीं हो सकती यह कितनी ही वार कह चुके हैं । मान्य श्री राजगोपालाचार्य जी ने आगरा विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण देते हुए २२ दिसम्बर १९५६ को कहा कि समस्त नागरिकों के चरित्र का अच्छा होना नितान्त अनिवार्य है । किन्तु यह देख कर दुःख होता है कि हमारे राष्ट्र के शिक्षणालय अधिकतर इस विषय में उदासीन हैं । हम महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के निम्नलिखित लक्षण की ओर सब विद्यालयों और महाविद्यालयों के संचालकों और केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करना अपना कर्तव्य समझते हैं कि 'जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उस को शिक्षा कहते हैं । (सत्यार्थ प्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश) ।

यदि शिक्षा के इस लक्षण को ध्यान में रखते हुए सब शिक्षक विद्यार्थियों के अन्दर विद्या के साथ-साथ सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि को विकसित कराना और इस के लिए सब समुचित साधनों को काम में लाना अपना कर्तव्य समझें तो सब का कल्याण हो सकता है । हमें प्रसन्नता है कि शिक्षा वैज्ञानिकों का ध्यान अब इस ओर जा रहा है ।

बंबई से प्रकाशित होने वाली 'Teaching' नाम की त्रैमासिक पत्रिका के जून सन् १९५७ के अङ्क में 'वैलों दे सा' नामक सम्भवतः फ्रांसदेशीय विद्वान् का Psychological time in education (शिक्षा में मनोवैज्ञानिक काल) शीर्षक का एक उत्तम लेख प्रकाशित हुआ है जिस के अन्त की दो पंक्तियां हमें बहुत ही अच्छी लगीं और इस टिप्पणी में उन को उद्धृत करना हमें उचित प्रतीत होता है—

Instruction without moral foundations is like a building on foundation of sand. With them, it is like an impregnable fortress and bed-rock.

अर्थात् सदाचार की आधार शिला के बिना शिक्षा रेत की नींव पर बने भवन के समान है । सदाचार की आधार शिला के साथ दी गई शिक्षा, दृढ़ चट्टान पर बने अभेद्य दुर्ग के समान है ।

एक लिपि प्रचार आन्दोलन

विश्वबन्द्य महात्मा गांधी जी ने 'नवजीवन' के २१-६-५७ के अङ्क में लिखा था कि—

"सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिये एक ही लिपि का होना फायदेमन्द (लाभदायक) है और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है । यदि तमाम व्यवहार्य और राष्ट्रीय कामों के लिये इन सब लिपियों के स्थान पर देवनागरी का उपयोग होने लग जाए तो वह एक भारी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रगति होगी । उस से भारत सुदृढ़ हो जाएगा और भिन्न-भिन्न प्रान्त एक दूसरे के अधिक निकट आ जाएंगे । हमें एक ऐसी सर्वमान्य लिपि की जरूरत है जो जल्दी से जल्दी सीखी जा सके और देवनागरी के समान सरल जल्दी से सीखने योग्य और तय्यार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं ।"

महात्मा गांधी जी के इस विचार से हम सर्वथा सहमत हैं और 'हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि (सार्वदेशिक सभा, देहली द्वारा प्रकाशित) नामक अपनी पुस्तक में हमने बङ्गाली, गुजराती, पंजाबी, मलयालम, उड़िया, असमी, कन्नड़, तेलगु, तामिल आदि प्रादेशिक भाषाओं के अनेक उदाहरण देकर इस बात को दिखाया है कि किस प्रकार इन भाषाओं का संस्कृत से निकट सम्बन्ध है । किन्तु लिपिभेद के कारण इन भाषाओं को परस्पर सर्वथा भिन्न समझा जाता है । हमारा विश्वास है कि यदि इन सब भाषाओं के लिए एक सर्वमान्य देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाने लगे तो भाषा विषयक वाद-विवादों का ही प्रायः अन्त हो जाए तथा इन भाषाओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना लोगों के लिए अति सुगम हो जाए । राष्ट्र की एकता की दृष्टि से इस आन्दोलन का जो महत्त्व है उस का निर्देश करते हुए हमारे मान्य राष्ट्रपति जी ने कलकत्ता में १६ जनवरी सन् १६५७ के एक भाषण में ठीक ही कहा था कि 'प्रादेशिक भाषाओं के प्रचारकों को गम्भीरता से सोचना चाहिए कि क्यों न वे एक सर्वमान्य लिपि को स्वीकार कर लें । तामिल के अतिरिक्त भारत की सब प्रादेशिक भाषाओं तथा लङ्का और बर्मा की भाषाओं की एक ही वर्णमाला है । ये सभी भाषाएं संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं । यदि इन की एक ही सामान्य लिपि हो जाए तो इस से भाषाभेद बहुत कुछ दूर हो जाएंगे । इस से राष्ट्रिय एकता को भी सहायता मिलेगी और संस्कृत के साथ इन भाषाओं का सम्बन्ध इस के द्वारा अधिक दृढ़ हो जाएगा ।' कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी की गीताञ्जलि के देवनागरी लिपि में प्रकाशित संस्करण से हमें उस अत्युत्तम ग्रंथ के रसास्वादन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । 'माध्वविजयामृत' नामक कर्णाटक भाषा किन्तु देवनागरी लिपि में प्रकाशित ग्रन्थ से कन्नड़ का हमने सुगमता से अभ्यास कर लिया । ऐसा ही अन्य महानुभावों का अनुभव है । इस प्रकार साहित्य प्रेमी सर्वथा भिन्न और विचित्र सी लिपियों के सीखने में अधिक समय नष्ट न करके अनेक भाषाओं के उत्तम साहित्य से अनायास लाभ उठा सकेंगे । सब प्रदेशों के विद्वानों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे राष्ट्रिय दृष्टि से अत्यावश्यक इस एकलिपि विस्तार आन्दोलन को प्रबल बनाने में पूर्ण सक्रिय सहयोग प्रदान करें । इस से हमारी सङ्कीर्णता दूर होगी तथा हम एक विशाल दृष्टिकोण को अपना सकेंगे । यह बताने की आवश्यकता नहीं कि पंजाब में भी अधिकतर विवाद पंजाबी भाषा के (जो संस्कृत बहुल होने के कारण हिन्दी भाषा के अति निकट है) कारण इतना नहीं जितना उस के अनिवार्य रूपेण गुरुमुखी में लिखने और पढ़ाये

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाने पर है। इस आन्दोलन के द्वारा ऐसे सब विवाद शांत हो जाएंगे। इस विषय में विद्वानों के लेखों का हम स्वागत करेंगे। उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग की मुख्य पत्रिका 'शिक्षा' के अप्रैल १९५७ के अङ्क में श्री राधेश्याम बंका के 'एक राष्ट्र के लिए एक लिपि की आवश्यकता' विषयक उत्तम लेख को देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रावणी उपाकर्म और वैदिक स्वाध्याय

श्रावणी उपाकर्म का पर्व इस वर्ष श्रावण-पूर्णिमा २६ श्रावण तदनुसार १० अगस्त शनिवार को पड़ता है। इस दिन से प्राचीन भारत के आश्रमों में वेदों का विशेष रूप से स्वाध्याय प्रारम्भ किया जाता था। इसका यही मुख्य सन्देश है कि सब आर्य बालक और बालिकाएं तथा सब आर्य नरनारियां वेदों के प्रतिदिन अर्थ सहित स्वाध्याय का व्रत लें और इसके द्वारा अपने जीवनों को उन्नत बनाएं। वेद को सच्चा मित्र बताते हुए ऋग्वेद के ज्ञानसूक्त (१०। ७१) में कहा है कि यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। य ईं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्।" अर्थात् जो मनुष्य परमेश्वर को मिलाने अथवा उसका ज्ञान प्राप्त कराने वेद-रूप मित्र का परित्याग कर देता है वह जो कुछ भी सुनता है वह असत्य सुनता है। वह पुरुष पुण्य के मार्ग को पूर्णतया नहीं जान सकता। मनु महाराज ने 'वेदाभ्यासो हि विप्रस्य, तपः परमिहोच्यते।' इत्यादि श्लोकों के द्वारा वेद के स्वाध्याय को विद्वानों का परम तप कहा है। योगिराज श्री कृष्ण ने भी भगवद् गीता अ० १३ में वाणी के तप का प्रतिपादन करते हुए 'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते। यह कह कर स्वाध्याय को उसमें प्रमुख स्थान दिया है। वैदिकधर्मोद्धारकशिरोमणि महर्षि दयानन्द जी ने 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।" यह नियम बनाकर वेद के स्वाध्याय और प्रवचन को सब आर्यों का धर्म ही नहीं, परम धर्म बताया है। यह खेद की बात है कि बहुत से आर्य अपने इस परम धर्म का पालन नहीं करते इस लिये उनके जीवनों में भी वह पवित्रता नही पाई जाती जो स्वाध्यायशील सच्चे आर्यों में होनी चाहिये। गुरुकुल के प्रवर्तक हमारे पूज्यपाद आचार्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 'आर्यों के नित्य कर्म' नामक पुस्तक में ठीक ही लिखा था कि आर्यगृह में कोई भी स्त्री पुरुष ऐसा नहीं होना चाहिये जो नित्य स्वाध्याय न करले। इससे धर्म में तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी। आपत् काल में भी धैर्य स्थिर रखने का अभ्यास बढ़ेगा।" (आर्यों के नित्यकर्म १—२१) हमारा समस्त आर्यों से अनुरोध है कि वे श्रावणी उपाकर्म के उपलक्ष्य में यह व्रत ग्रहण करें कि प्रतिदिन कम से कम एक वेदमन्त्र का अर्थ सहित स्वाध्याय किये बिना भोजन ग्रहण न करेंगे। इससे उन्हें तथा उनके परिवारों को विशेष लाभ होगा। दैनिक पंच महायज्ञों में से प्रथम ब्रह्मयज्ञ में संध्या और स्वाध्याय दोनों का समावेश है। इसकी किसी भी अवस्था में उपेक्षा न होनी चाहिए।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत	५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	५)००
वरुण की नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	)८७
वैदिक-सूक्तियां	"	१)७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	"	२)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	"	१)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)००
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)००
सोम-सरोवर, सजिल्द,	श्री चमूपति	२)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१)२५
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग		)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध		२)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली		)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द		७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		)७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		)५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४)००
सम्राट् रघु	"	१)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	"	)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू	"	१)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	"	२)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	"	)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश. तीन भाग		३)५०
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१)२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	५)००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२)५०
लहसुनः प्याज़	श्री रामेश बेदी	२)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	"	३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	"	२)००
सोंठ, तीसरा "	"	१)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	"	१)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	"	१)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	"	५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	"	३)२५
नीमः बकायन (अनेक रोगों में उपयोग).	"	१)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	"	)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५	बरगद	)७५
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१)२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी एस् सी. के लिए)		१)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		)७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१)५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	"	१)५०
जमींदार	"	२)००
सरला की भाभी. १. २ भाग	"	२)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर को नीरोग रखिये ।

वर्षा ऋतु में जठराग्नि मन्द पड़ जाती है । शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता । अनेक रोग प्रबल हो उठते हैं । जब आप जरा सा भी मौसमी विकार अपने शरीर में देखें तो हमारी निम्नलिखित फलप्रद औषधियों का प्रयोग कर के नीरोग हो सकते हैं ।

१. लवण भास्कर चूर्ण

जठराग्नि को तीव्र करने के लिए प्रसिद्ध चूर्ण है । यह भूख लगाता है, अरुचि दूर करके पेट साफ रखता है ।

२. गुरुकुल चाय

इन्फ्ल्यूएञ्जा रोग को दूर करती है, खांसी, नज़ला, जुकाम, ज्वर तथा सुस्ती को दूर कर के स्फूर्ति लाती है ।

३. मलेरिया वटी

मलेरिया ज्वर को शीघ्र आराम करने के लिये इस का प्रयोग कीजिये ।

४. रक्त शोधक

रक्त विकार और त्वचा सम्बन्धी रोगों पर अनुभूत है । फोड़े, फुन्सी, खाज, खुजली दूर करता है ।

५. दाद का मरहम

दाद, खाज, खुजली आदि अनेक चर्म रोगों पर इस मरहम से शीघ्र आराम पहुंचता है ।

६. जीवनी

हैजे के लिए अपूर्व गुणकारी है । दस्त तथा उल्टी शुरू होते ही इसे देने से रोग जल्द दूर होता है ।

नोट—विस्तृत जानकारी के लिये बड़ा सूचिपत्र मुफ्त मंगायें ।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार ।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

वर्ष ९ आषाढ़ २०१४ अङ्क ११

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

पूर्णाङ्क १०७
जून १९५७

★

इस अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति--८

भारतीय संस्कृति का विकास तथा ह्रास

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

रामायण से महाभारत के समय में तीसरा बड़ा भेद यह दृष्टिगोचर होता है कि जातियों और वर्गों के परस्पर मिश्रण से भारतीय जन-समाज में विविधता उत्पन्न हो गई थी। रामायण-काल में आर्यों और राक्षसों को दो विभिन्न दलों में बांटा हुआ पाते हैं। यद्यपि राक्षस लोग भी प्रायः प्राचीन आर्यों के धर्मच्युत वंशज ही थे, तो भी उनकी एक अलग श्रेणी बन गई थी। वैदिक काल के आर्य और दस्यु अब आर्य और राक्षस इन दो परस्पर विरोधी संकेतों से सूचित किये जाते थे। यह रामायण काल की स्थिति थी। महाभारत काल में हम आर्यों और राक्षसों का विवाह संबन्धों द्वारा परस्पर मिश्रण पाते हैं। ऐसे सम्बन्धों का एक दृष्टान्त घटोत्कच था जो आर्य वंशज भीमसेन और राक्षस वंशज हिडम्बा का पुत्र था, इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त महाभारत में और भी मिलते हैं। उन के अतिरिक्त महाभारत में जिन भिन्न-भिन्न जातियों के नाम मिलते हैं उनका कुछ परिचय निम्नलिखित श्लोक से प्राप्त होता है।

यवनाश्वीन कांबोजा दारुणा म्लेच्छ जातयः,
सकृदुहा कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह।
तथैव रमणाश्वीना तथैव दशमालिकाः,
सर्वज्ञाः यवना राजन् शूराश्चैव विशेषतः॥

इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि महाभारत के भीष्म-पर्व के लिखे जाने के समय भारत निवासियों का निम्नलिखित जातियों से सम्पर्क था—यवनाश्वीन, कांबोज, सकृदुह, कुलत्थ, हूण, पारसिक, रमणाश्वीन, दशमालिक, सर्वज्ञ, यवन और शूर। यह ठीक है कि महाभारत में कुछ अंश प्रक्षेपक के रूप में पीछे से भी मिलाये जाते रहे। परन्तु जिन जातियों के राजाओं और योद्धाओं ने दोनों ओर से महाभारत में भाग लिया उन पर ध्यान देने से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत के आर्यों के मित्रता और विवाह आदि के सम्बन्ध जाति और देश की सीमाओं का अतिक्रमण करके बहुत अधिक विस्तृत हो गए थे। यही कारण था कि आर्य और अनार्य का स्पष्ट मौलिक भेद महाभारत में दृष्टिगोचर नहीं होता। साथ ही हमें यह भी मानना पड़ता है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाभारत के समय की भारतीय संस्कृति बहुत अधिक समृद्ध और विस्तृत हो गई थी। कर्तव्याकर्तव्य-शास्त्र और तत्वज्ञान के सम्बन्ध में महाभारत में जो विशेषता पाई जाती है, उसका एक मुख्य कारण यह भी था कि अन्य जातियों से आर्य-जाति का सम्पर्क बहुत अधिक बढ़ गया था।

जिस मानसिक विकास की ओर मैंने ऊपर निर्देश किया है उसका दिग्दर्शन करना हो, तो आप महाभारत के भगवद्गीता, वेद और नीति, शान्ति-पर्व आदि ज्ञानात्मक भागों को पढ़ जाइये। उनको पढ़ने से प्रतीत होता है कि रामायणकाल का सारभूत और सरल कर्त्तव्यशास्त्र और तत्वज्ञान फैलता और विकसित होता हुआ बड़े विशाल रूप में आ गया है। अकेली भगवद्गीता ही उस मानसिक विकास को सूचित करने के लिए पर्याप्त है, जो त्रेता युग की समाप्ति के मध्य में आर्य जाति में हुआ। शांति-पर्व को पढ़ कर हम उस आश्चर्यजनक राजनीतिक प्रगति का परिचय प्राप्त करते हैं, जो उस समय के आर्यों में हो रही थी। वह प्रगति सर्वतोमुखी थी। शांतिपर्व को पढ़ने से हमारे सामने उस समय की समृद्ध और विस्तृत भारतीय संस्कृति का सुन्दर चित्र खिंच जाता है। वह चित्र रामायण-काल की अपेक्षा बहुत अधिक पेचीदा है, परन्तु साथ ही कई गुणा अधिक विविधतापूर्ण और गहरे रंगों से पूर्ण है। हम उससे महाभारत-कालीन भारतीय राष्ट्र की वास्तविक दशा का पूरा २ अनुमान लगा सकते हैं। विचारों में बारीकी और नफासत आ गई थी। हर चीज़ के बालों की खाल निकाली जाती थी। परन्तु चरित्रों में और कर्मों में बहुत शिथिलता आ गई थी।

राजनीति के क्षेत्र में भी महाभारत का काल रामायण काल की अपेक्षा बहुत अधिक विविधतापूर्ण है। रामायण-काल की राज्य पद्धति सभी प्रदेशों में प्रायः एक सी थी। उसे हम राज्यसत्तात्मक शासन-पद्धति कह सकते हैं। राजा राज्य करता था, आचार्य, पुरोहित और मन्त्री उसे सलाह देते थे और सहायता करते थे। रामायण में अनेक प्रकार की शासन-पद्धतियों के चिन्ह नहीं मिलते। राज्य-प्रणालियों की छानबीन ही रामायण में नहीं की गई, सामान्य रूप से राजाओं के धर्म बतलाये गये हैं। राजा अच्छा हुआ तो राज्य अच्छा, राजा बुरा हुआ तो राज्य बुरा। रामायण की राजनीति का यही सार है। महाभारत की राजनीति ऐसी सरल नहीं है। उस समय हम शासन-पद्धति को कई श्रेणियों में बंटा हुआ पाते हैं। रामायण में केवल राजा थे, महाभारत में सम्राट् नाम के राजाधिराजों का भी वर्णन मिलता है। सभा-पर्व में लिखा है—

गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियंकराः।
न च साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट् शब्दो हि कृच्छ्रभाक्।

अपनी परिमित सीमाओं में राज्य करने वाले राजा तो घर घर में हैं. परन्तु वे सम्राट् पदवी के अधिकारी नहीं। सम्राट् पद का प्राप्त करना बहुत कठिन है। जब पांडवों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ने राजसूय-यज्ञ का संकल्प किया तब सम्राट् की पदवी जरासन्ध को प्राप्त थी। श्रीकृष्ण की सहायता से भीमसेन ने जरासन्ध का वध कर दिया तब सम्राट् की पदवी महाराज युधिष्ठिर को प्राप्त हो गई। राजा और सम्राट् में वही भेद था जो आज 'किंग और एम्परर' में है। रामायण में राजा और सम्राट् का कोई भेद दिखाई नहीं देता।

राजनीतिक क्षेत्र में रामायण-काल से महाभारत-काल में जो दूसरा भेद आ गया था, वह यह था कि जहां रामायण के समय में 'गण' 'रिपब्लिक' की कोई चर्चा नहीं मिलती, वहां महाभारत में उनकी एक से अधिक स्थान पर चर्चा मिलती है। जब अर्जुन उत्तर दिशा के राजाओं को जीतने गया, तो उसने पर्वतों में जाकर गण लोगों पर भी विजय प्राप्त की।

पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः,
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः ।

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि पौरव को जीतने के पश्चात् पर्वत में रहने वाले उत्सव संकेत नाम के सात गणों को जीता। गण शब्द से यहां प्रजातन्त्र राज्य का ही बोध होता है। इसमें पहले कुछ इतिहास-लेखक सन्देह करते थे, परन्तु अब प्राचीन संस्कृत साहित्य के गम्भीर अनुशीलन से यह सिद्ध हो गया है कि संघ और गण शब्द प्राचीन काल में प्रजातन्त्र राज्य 'रिपब्लिक' के ही सूचक थे। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से यह विदित होता है कि गण राज्य भी अनेक प्रकार के होते थे, उनमें से कुछ आयुधोपजीवी कहलाते थे तो कुछ शास्त्रोपजीवी। इस प्रकार हम महाभारतकाल में शासन प्रणालियों में भी बहुत भिन्नता और विविधता पाते हैं।

इस प्रकार रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक जो परिवर्तन हुए उन्हें यदि हम एक नाम देना चाहें तो वह 'विकास' यह नाम ही हो सकता है। आजकल के विज्ञानवाद में सरल से पेचीदा की ओर, और एकता से विविधता की ओर जाने को ही विकास कहते हैं। ऐसा विकास रामायण-काल से आरम्भ होकर महाभारत-काल तक निरन्तर होता रहा। फलतः भारतीय संस्कृति उन युगों में निरन्तर विकसित होती रही।

यूरोप के अर्वाचीन तत्वज्ञान में एक सदी पूर्व विकास और उन्नति ये दोनों पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे। डारविन की एवोल्यूशन की थ्योरी ने जिस विचारधारा को जन्म दिया था उसका यही मूल सिद्धान्त था कि सृष्टि के आरम्भ से अब तक भौतिक जगत् में जो परिवर्तन होते रहे हैं, उनका अन्तिम लक्ष्य उन्नति है। उस समय के विकासवादी मानते थे कि प्राकृतिक शक्तियाँ अपने रथ पर बिठा कर मनुष्य को निरन्तर उन्नति की दिशा में ले जा रही हैं। अब पश्चिम की वह विचार-धारा बहुत कुछ क्षीण हो गई है। गत १८ वर्षों के इतिहास ने मनुष्य जाति के दिमाग से यह बात निकाल दी है कि प्रकृति का रथ आगे ही आगे चलता जायगा जब तक कि वह अनन्त उन्नति तक न पहुंच जाय। मनुष्य जाति ने बड़े दुःख से अनुभव किया है कि यह प्रकृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रथ यदि अपनी अन्धी चाल से चलता जाय तो मनुष्य जाति को बड़े भयंकर अन्ध कूप में भी गिरा सकता है। विकास और सभ्यता की रेलगाड़ियां गत ३५ वर्षों में दो बार किस्मत की चट्टान से टकरा कर चकनाचूर हो चुकी हैं। इस कारण मुझे यह लिखने में कुछ भी संकोच नहीं कि रामायण काल से महाभारत काल तक भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति में जो विकास हुआ था, वह वस्तुतः मनुष्यता का ह्रास था।

--

जैट विमान चार घंटे में अमरीका के आर पार

अमरीका का प्रथम जैट विमान 'बोइना ७०७ अन्तरिक्ष बिहारी' ने अमरीका की एक किनारे से दूसरे सिरे तक की दूरी को केवल ३ घंटे ४८ मिनट में पार किया। यह दूरी सिएटल वाशिङ्गटन से वाल्टीमोर मेरीलैंन्ड तक २३२७ मील होती है। अर्थात् इसकी औसत चाल प्रति घंटा ६१२ मील हुई।

अमरीका वा अन्य देश की ११ कम्पनियों ने १४१ ऐसे अन्तरिक्ष विहारी जहाज़ों के निर्माण का आर्डर दिबा हुआ है। यह उसका प्रथम नमूना है। इसका कुल भार जिसमें १२५९७ पौंड, इन्धन का भार सम्मिलित है १९१५८१ पौंड होता है। इस पर ८० से लेकर ११० यात्री तक बैठाये जा सकते है। इस ऐतिहासक यात्रा में ५२ यात्री सफर कर रहे थे। यह ३१००० फीट की ऊंचाई पर उड़ता रहा। एक समय वायु का अनुकूल झोंका पाकर इसकी चाल ६९८ मील प्रति घंटा के हिसाब से हो गई थी

★

'बोइन्ग ७०७ अन्तरिक्ष विहारी जहाज' वाल्टीमोर, मेरीलैन्ड के हवाई अड्डे 'फ्रैन्डशिप ऐयरपोर्ट' में ऐतिहासक यात्रा समाप्ति पर अधिकारियों से अभिनन्दन प्राप्त कर रहा है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानने पर प्रबल आक्षेप

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

जो लोग ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानते हैं उन्हें अनेक प्रबल आक्षेपों का सामना करना पड़ेगा जिन का समाधान उन के लिये असंभव है।

अनेक ऐसे मन्त्र हैं जिन के कई-कई यहां तक कि सौ तक ऋषि हैं उदाहरणार्थ—

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ ऋ० ९. ६६. १९।

इस एक ही मन्त्र के जो सामवेद सं. ६२७ १४६४, १५१८ में भी आया है—

'शतं वैखानसा ऋषयः'

अर्थात् सौ वानप्रस्थ ऋषि हैं। क्या इस का यह तात्पर्य समझा जाये कि इस २४ अक्षरों के गायत्री छन्द के मन्त्र को सौ ऋषियों ने मिल कर बनाया? ऐसी असङ्गत तथा बेहूदी कल्पना को कौन निष्पक्षपात विद्वान् स्वीकार कर सकता है? यदि यह माना जाए कि सौ या अधिक वानप्रस्थ ऋषियों ने इस मन्त्र का रहस्य जान कर इस का प्रचार किया तो इस में कोई असङ्गत बात नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार—

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः॥ ऋ० ९. ११. ५३।

इस सामवेद मं. ६५३ के 'शतं वैखानसा ऋषयः' अर्थात् सौ वानप्रस्थ ऋषि बताये गए हैं। मन्त्रों के कर्ता ऋषियों को मानने वाले क्या यह कहेंगे कि २४ अक्षरों वाले इस मन्त्र को सौ ऋषियों ने मिल कर बनाया? क्या यह सर्वथा असङ्गत और उपहासास्पद कल्पना नहीं है? सौ या अधिक ऋषियों द्वारा मन्त्र-प्रोक्त भावना वा प्रार्थना का प्रचार मानने में कोई आक्षेपयोग्य बात नहीं यह स्पष्ट है।

सर्वानुक्रमणी ९. ६६ तथा आर्षानुक्रमणी ९. १६ के अनुसार इन मन्त्रों के सौ वैखानस ऋषि स्पष्टतया उल्लिखित हैं यथा—

पवस्व शतं वैखानसा अष्टादश्यनुष्टुप्
परास्तिस्र आग्नेयः। सर्वानुक्रमणी ९. ६६।
असिद्धगोत्रास्तु पवस्वसूक्तं,
वैखानसा नाम शतं विदुस्ते।

'वैखानसा नाम शतं विदुस्ते' इन शब्दों से भी यही भाव निकलता है कि सौ वैखानस (वानप्रस्थ ऋषि) इन मन्त्रों को पूर्णतया जानते और उन का विशेष प्रचार करने के कारण इन के ऋषि कहलाते हैं। दो-दो चार-चार ऋषियों वाले मन्त्र तो सैकड़ों हैं अतः हमें उन का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

ऋग्वेद ९. १०७ के 'सप्तर्षयः' सात ऋषि बताये गए हैं। क्या इस छोटे से सूक्त को सात ऋषियों ने मिल कर बनाया?

ऋ. १०. ५१. १। ३, ५, ७, ९ और १०. ५३. १–३, ६–११ के 'देवा ऋषयः' अर्थात् अनेक विद्वान् ऋषि हैं। ऋ. १०. १३६ के जिस में ७ मन्त्र हैं 'मुनयो वातरशनाः' अनेक मुनि ऋषि हैं।

ऋग्वेद ८ मण्डल के ३४ वें सूक्त के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'एन्द्रि याहि हरिभिः' इत्यादि तीन मन्त्रों के 'वसुरोचिषोऽङ्गिरसः सहस्रसंख्याका ऋषयः' अर्थात् यज्ञ से प्रकाशमान प्राणविद्या जानने वाले हज़ार ऋषि हैं। ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानने वालों के अनुसार क्या यह माना जाए कि एक हज़ार ऋषियों ने अनुष्टुप् छन्द के इन तीन मन्त्रों को मिल कर बनाया ? यह कल्पना कितनी असङ्गत और उपहासास्पद है? हज़ारों ऋषियों को किन्हीं वैदिक रहस्यों का प्रकाशक मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

इसी प्रकार सैंकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिन से इस वाद का स्पष्ट खंडन होता है कि ऋषि मन्त्रों के कर्ता हैं। उन से यही सिद्ध होता है कि ऋषि मन्त्रद्रष्टाओं को ही कहते हैं।

एक दूसरा आक्षेप जो अत्यन्त प्रबल है वह यह है कि एक ही मन्त्र के ऋषि भिन्न-भिन्न वेदों में और उन्हीं वेदों के भिन्न-भिन्न स्थलों में भी पृथक् हैं उदाहरणार्थ—

१. ऋ. ४. ५८. ३ में 'चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

यह मन्त्र आया है जिस का ऋषि वामदेव है। यही मन्त्र यजुर्वेद १७. ९१ में भी पाया जाता है परन्तु उस का ऋषि 'साध्याः' ऐसा लिखा है अर्थात् अनेक साधना करने वाले।

२. शास इत्था महांअस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन॥

यह मन्त्र ऋग्वेद १० १५२. १ में आया है जहां इसका ऋषि 'शासः भरद्वाजः' है। यही मन्त्र अथर्व १. २०. ४ में भी आया है जहां इस का ऋषि 'अथर्वा' है।

३. मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कम्।
अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्॥

यह मन्त्र ऋ. १०. १६१. १ का है जहां इस का ऋषि 'यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः' लिखा है। यही मन्त्र अथर्व ३. ११. १ में भी है और वहाँ उस का ऋषि ब्रह्मा है।

४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

यह सुप्रसिद्ध मन्त्र ऋ. १. १८९. १ में आया है जिस का ऋषि 'अगस्त्य' है। यही जब ४०. १६ में आता है तो इस का ऋषि 'दध्यङ्ङाथर्वण' है।

५. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

यह मन्त्र ऋ. १. ११५. १ में आया है जहां इस का ऋषि 'कुत्स आङ्गिरसः' है। यजु. १३. ४६ में इस का ऋषि साध्याः और प्रजापतिः है। अथर्व. १३. २. ३५ में इस का ऋषि ब्रह्मा है और अ. २०. १०७. १४ में सूर्यः, देवी, कुत्सः इस प्रकार हैं।

६. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।

इस मन्त्र का यजु. ३५. ८ में स्वयंभू ब्रह्म ऋषि है और अथर्व. २. १. २ में वेनः।

७. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पतिरेक ग्रासीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामु-
तेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

इस सुप्रसिद्ध मन्त्र का जो ऋ. १०. १२१. ५ में ग्राया है ऋषि 'हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः' है ग्रौर यजु. ३२. ६ में इस का ऋषि स्वयंभु ब्रह्म है ।

८. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
ग्रास्मिन् हव्या जुहोतन ।

इस का ऋषि ऋ. ८. ४४. १ में विरूप ग्रादित्य है ग्रौर यजु. ३. १ में ग्रग्नि है ।

नील्स बोर

ग्रणुशक्ति के शान्तिमय उपयोग पर दिये जाने वाले पुरस्कार के प्रथम विजेता एक डेन्मार्क के भौतिकी विज्ञान वेत्ता । नील्स बोर डेन्मार्क के ग्रणु विज्ञान के विज्ञ जिन्होंने सं० १९२२ में भौतिकी विज्ञान में नोबल पुरस्कार प्राप्त किया था ग्रब ७५००० डालर के पुरस्कार को प्राप्त करने में सफल हुये हैं । यह पुरस्कार ग्रणुशक्ति के शान्तिमय उपयोग के लिये दिया गया है।

श्री ग्राइज़नहौवर, संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका के प्रधान ने जैनेवा के ग्रधिवेशन में ग्रपील करने पर इस पुरस्कार की संस्थापना सं. १९५५ में फोर्ड मोटर कम्पनी द्वारा १० लाख डौलर के ग्रनुदान से हुई थी। इसका उद्देश्य ग्रणुशक्ति के शान्तियम उपयोग का विकास करना है। श्री प्रोफेसर बोर की ग्रायु ७१ वर्ष की है। वर्तमान ग्रणु विषयक मान्यताग्रों के एक जन्मदाताग्रों में से हैं । ग्रणु की शारीरिक बनावट तथा भौतिकी विज्ञान के क्वान्टम् (ग्रवयव) सिद्धांत के प्रतिपादन पर उनको नोबल पुरस्कार दिया गया था । सं. १९२० से कोपनहेगन (डेन्मार्क) की भौतिकी विज्ञान (सैद्धान्तिक) संस्था के संचालक रहे हैं ग्रौर इस संस्था की स्थापना में भी उन्हों ने सहायता दी है । द्वितीय विश्वयुद्ध के ग्रन्तराल में प्रथम ग्रणुबौम्ब के निर्माण में उन्होंने सहयोग दिया था जिसका परीक्षण लौस ग्रलामोस न्यू मैक्सिको में दिया गया था । —

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन में भूमिपुनर्वितरण और कृषक-निर्माण

श्री हर्षदेव मालवीय

सुनयात सेन की सन् १९२४ में मृत्यु के बाद जब कम्युनिस्टों और कोमिंतांग के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया तब माओ कुछ चुनिन्दा लोगों के साथ चीन के दक्षिणी प्रान्त क्यांगसी, क्यांगसू और क्वांगसी में चले गये। वहां उन्होंने विद्रोह का झंडा उठाया और काफी विशाल क्षेत्र में, जिसका क्षेत्रफल सम्भवतः वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार के जितना होगा, उन्होंने सोवियत राज्य की स्थापना की। यह बात लगभग सन् १९२७-२८ की है। माओत्से-तुंग को इस समय जो शक्ति प्राप्त हुई, उसका मूल कारण उनका अग्रगामी भूमि-सुधार था। उन्होंने तब ज़मींदारी प्रथा को बिला मुआविजे के खत्म किया। धनवान कृषकों की भूमि भी हस्तगत कर ली गयी। मध्यम वर्गीय कृषकों की भी कुछ जमीन ली गयी, और भूमि का पुनर्वितरण कर दिया गया। लगभग सब भूमिहीन लोग भूमि पा गये। वह चीन का प्रथम भूमि-पुनर्वितरण था। परन्तु जैसा कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के आज के अधिकारी लेखक कहते हैं, यह दौर घोर उग्रपंथी था। बड़ी उग्र नीतियां चला कर भले ही सब कम्युनिस्ट पार्टी ने देहाती समाज के निम्नतम वर्ग का समर्थन प्राप्त किया हो, पर उसी के साथ उन्होंने काफी वर्गों को अपना दुश्मन बना लिया और उनका समर्थन प्राप्त न कर सके। उनकी तत्कालीन स्थिति में यह एक निहित कमजोरी थी। फिर भी बड़ी वीरता के साथ, बड़ी लगन के साथ, बड़े त्याग के साथ वहाँ पर चीनी कम्युनिस्टों ने अपना काम किया, विशाल लाल सेना बनायी और वे अपना क्षेत्र बढ़ाने का प्रयास करने लगे।

पर यह चीज ज्यादा दिन चलनी न थी। च्यांगकाई शेक ने उनको डाकू कह कर उनका नाश करना अपनी कोमिंतांग का प्रथम ध्येय बना लिया। विशाल सेनायें संग्रहीत की गयीं। जर्मनी से और ब्रिटेन तथा जापान से फौजी विशेषज्ञ बुलाये गये। तमाम अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किये गये। विदेशी साम्राज्यवादियों ने खुल कर च्यांगकाई शेक की मदद की और उसके एवज में शंघाई, तिन्सतिन, इत्यादि नगरों मे उन्होंने अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस प्रकार, विदेशी साम्राज्यवादियों से प्राप्त सहायता से बड़ी फौजें इकट्ठी कर च्यांगकाई शेक ने चीन के दक्षिणी प्रांतों में एकत्र कम्युनिस्ट सेनाओं के विरुद्ध तीन-चार विराट फौजें भेजीं। प्रथम तीन या चार आक्रमणों को चीनी कम्युनिस्टों ने पराजित किया और भागती सेनाओं के अस्त्र-शस्त्रों को लेकर अपने को सुसज्जित किया। परन्तु इसके बाद च्यांगकाई शेक ने जो अति प्रबल सेना भेजी तो उसके आगे कम्युनिस्टों के पैर न ठहरे। सन् १९३१-३२ के लगभग उनको वहां से छोड़ कर भागना पड़ा। यहीं पर चीनी कम्युनिस्टों का और महान् माओ का इतिहास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में अपूर्व ८ हजार मील लम्बा महाप्रस्थान होता है। इस महाप्रस्थान में अनेकानेक कष्टों का सामना करते हुए च्यांगकाई शेक की फौजों से मुठभेड़ करते हुए, भूखों मरते हुए, घनघोर जंगलों, विशाल नदियों, अभेद्य पर्वतों को पार कर वे लोग उत्तर पश्चिम चीन के शेन्सी प्रान्त के नगर येनन पहुंचे। और यही येनन चीनी कम्युनिस्टों का नया गढ़ हो गया। यहां पर बमबारी चलती रही, और इन लोगों ने पहाड़ों को खोद कर गुफायें बनायीं और वहीं से शेन्सी प्रदेश के काफी बड़े हिस्से पर अपना आधिपत्य जमा कर रहने लगे। इस प्रान्त में तब एक व्यापक प्रबल किसान आन्दोलन था और इससे कम्युनिस्टों को शेन्सी में बड़ा बल प्राप्त हुआ।

अपने क्षेत्र में माओत्से-तुंग और उनके कम्युनिस्ट साथी अभी ठीक से जम भी न पाये थे कि च्यांगकाई शेक ने उन पर एक और भीषण आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी। इसी तैयारी की देख रेख करने च्यांग शेन्सी प्रान्त की राजधानी सियान नामक नगर पहुंचे, जहाँ से येनन लगभग २५०-३०० मील की दूरी पर है। उस समय च्यांगकाई शेक ने अपनी कोमितांग फौजों का नेतृत्व एक युवक जनरल के हाथों सौंप दिया था, जिसका नाम च्यांग सू-लियांग था। इस च्यांग सू-लियांग के पिता चांग सू-लिन चीन के मंचूरिया प्रदेश के एकाधिकारी शासक थे, बड़े शक्तिमान थे। पर उनके प्रदेश पर सन् १९३१ में जापान ने आक्रमण किया था और उसको अपने कब्जे में कर लिया था और बाद में चांग सू-लिन को धोखा दे कर मरवा डाला था। सन्-१९३१ के बाद सन् १९३२ और ३३ में जापानी फासिस्टशाही ने चीन के मंचूरिया प्रदेश के नीचे स्थित प्रांत जिहोल और चहार पर आक्रमण कर दिया था। उस समय सारे चीन में इस बारे में बड़ी प्रबल भावना थी कि गृह-युद्ध खत्म हो और च्यांगकाई शेक कम्युनिस्टों से लड़ना बन्द करें और कोमितांग और कम्युनिस्ट साथ हो कर चीन को त्रस्त करने वाले जापानी साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध करें। नवयुवक जनरल च्यांग सू-लियांग चीनी राष्ट्र की इस भावना से स्वयं भी उद्वेलित था और फिर उसको अपने पिता के हत्यारे जापानी साम्राज्यवादियों से गुस्सा भी था। अतः, उसने सियान आये च्यांगकाई शेक को गिरफ्तार कर लिया और वह चाहता था कि उसको मार डाले। उसका कहना था कि च्यांगकाई शेक के रहते सारा चीन एक होकर जापान के खिलाफ युद्ध नहीं करेगा। उसी समय च्यांग सू-लियांग का चीनी कम्युनिस्ट नेता चौ ऐन-लाई से गुपचुप कुछ सम्बन्ध भी था और कम्युनिस्टों के हस्तक्षेप करने के बाद ही च्यांग सू-लियांग इस बात पर राजी हो गया कि च्याँगकाई शेक को मारा न जाय। चीन के इतिहास में यह सुप्रसिद्ध सियान कांड कहा जाता है और इसके बाद कम्युनिस्ट और कोमितांग मिल कर जापान के विरुद्ध युद्ध करने लगे। उस समय जो समझौता कम्यु-निस्टों और कोमितांग के बीच हुआ उसके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फलस्वरूप यह तय हुआ था कि कम्युनिस्ट लोग अब जमींदारी प्रथा का उन्मूलन बन्द कर देंगे, ताकि देश में आन्तरिक संघर्ष न हो और सारा देश एक होकर जापान के विरुद्ध युद्ध करे। पर साथ ही यह भी तय हुआ था कि चीन के गरीब किसानों को राहत देने के लिए लगान में और व्याज में कमी की जायगी।

इस सियान कांड के बाद सारा चीन देश जापानियों के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष में लग गया। चीन के उत्तर-पश्चिम प्रदेश में अधिकांशतः कम्युनिस्ट सेनाएं लड़ती रहीं और साथ ही दक्षिण चीन के फूकियन, आनहुई, चीकियांग, इत्यादि प्रान्तों में भी कम्युनिस्ट गुरिल्ला फौजों ने बड़ी वीरता के साथ जापानियों के साथ संघर्ष किया। कोमितांग वाले भी जापानियों से लड़ते रहे। पर कम्युनिस्टों और कोमितांग की लड़ाई के तरीकों में यह अन्तर था कि कम्युनिस्ट जिस क्षेत्र में कार्य करते थे, वहां वे साथ-ही-साथ लगान में कमी और व्याज में कमी करते जाते थे। इसके फलस्वरूप जनता में उनका समर्थन बढ़ता चला गया, और उनकी जड़ें मजबूत होती चली गयीं। इसके विपरीत, कोमितांग पक्ष इस दिशा की ओर कोई भी ध्यान न देता था, वरन् कोमितांग के सैनिक किसानों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के बजाय कुछ क्रूर व्यवहार ही करते थे। कम्युनिस्टों और कोमितांग का जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चा सन् १९४५ तक चला। जब जापान युद्ध में पराजित हो गया। उसके बाद कम्युनिस्ट और कोमिताँग के बीच चीन में संयुक्त रूप से शासन चलाने के लिए बातें हुईं, पर वे असफल रहीं और पुनः गृह-युद्ध छिड़ गया। इस गृह-युद्ध की लम्बी कहानी है। इसमें संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ने च्यांगकाई शेक को अपने कम्युनिस्ट-विरोध के कारण बहुत सहायता दी, पर च्यांगकाई शेक का दल इतना भ्रष्ट था, वहां स्वार्थ-सिद्धि और अवसरवादिता का इतना बोलबाला था, कि इन तमाम सहायताओं के बावजूद कोमितांग कम्युनिस्टों के मुकाबले ठहर न सका। धीरे-धीरे च्यांगकाई शेक की फौजों को कम्युनिस्ट पीछे ढकेलते चले गये और अन्ततोगत्वा च्यांगकाई शेक को चीन से भाग कर फारमोसा नामक टापू पर अपना अड्डा जमाना पडा। १ अक्तूबर सन् १९४१ को चीन में नये जनवादी गणतन्त्र की स्थापना हो गयी, जिसके अध्यक्ष माओत्से-तुंग हुए।

सन् १९३५ में जापान की हार के बाद जब पुनः कम्युनिस्ट और कोमितांग का गृह-युद्ध प्रारंभ हुआ तो कम्युनिस्टों ने अपने शासित क्षेत्रों में पुनः भूमि-सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत तमाम जमींदारों की जमीनें ले लीं जाती थीं। हां, उनमें से जो निम्न स्तर के थे, और जो स्वयं काश्त करते थे उनकी कुछ जमीन छोड़ दी जाती थी। साथ ही मालदार किसानों की तमाम अतिरिक्त भूमि, उनकी जोत के लायक छोड़ कर, ले ली जाती थी। हां, मध्यम वर्गीय किसानों से कोई दखलन्दाजी नहीं की जाती थी। इस प्रकार जो भूमि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपलब्ध होती थी उसको ग्राम की जनसंख्या के अनुपात से बांट दिया जाता था। उदाहरणार्थ, यदि एक गांव में ४०० एकड़ ज़मीन पुर्नवितरण के लिए प्राप्त हुई और वहाँ की आबादी २०० व्यक्तियों की है, तो प्रत्येक व्यक्ति को २ एकड़ भूमि प्राप्त होती थी। इस प्रकार, यदि एक परिवार में ५ प्राणी हैं तो उस परिवार को १० एकड़ भूमि मिल जाती थी। और जो भूमि इस प्रकार ग्रहण की गई उसके लिए न तो जमींदारों को कोई मुआविजा ही दिया गया और न ही किसानों को उसके लिये राज्य को कुछ देना पड़ा। भूमि-वितरण का यह क्रम बराबर चलता रहा। उसका व्यापक और विस्तृत वर्णन दिया जा सकता है, पर स्थानाभाव के कारण हम उसमें यहाँ नहीं जाना चाहते। इन्हीं भूमि-सुधार-कार्यक्रमों को सन् १९५० में ही एक भूमि-सुधार अधिनियम द्वारा पुष्टि दे दी गई। कहा जा सकता है कि चीन के सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास में सन् १९५० में पास होने वाला भूमि-सुधार कानून ही पहला भूमि कानून है। इसके पहिले वहाँ कोई कानून ही न था।

जब यह भूमि-सुधार कार्यक्रम पूरा हो गया तो चीन में कोई भी व्यक्ति ऐसा न बचा जिसके पास भूमि न हो। अलबत्ता, प्रत्येक परिवार को जो भूमि मिली वह बहुत ही कम थी। अधिकांश आराजियां अब अलाभकर हो गईं। स्पष्ट था कि अलाभकर आराजियों के रहते कृषक उत्पादन को बढ़ा नहीं सकता था। अतः प्रारम्भ से ही कम्युनिस्ट पक्ष ने पारस्परिक सहायता कार्यक्रम चलाया। इस के अन्तर्गत एक ग्राम के ८-१० परिवार एक-साथ मिल जाते थे। किसी के पास हल है और बैल नहीं। किसी के पास कुआं है तो मोट नहीं। तो यह ८-१० परिवार वाले आपस में मिलकर एक-दूसरे को सहायता देते थे। भूमि अवश्य इनकी अलग-अलग रहती थी। उस पर संयुक्त रूप से खेती तो न की जाती थी, परन्तु इस प्रकार की पारस्परिक सहायता उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। ऐसा भी हुआ कि अगर किसी खेत का स्वामी किसान अस्वस्थता के कारण खेत न जोत सका, तो उसके पड़ोसी ने आकर उसका खेत जोत दिया और उसके एवज में उसकी फसल काटने पर उसको कुछ प्राप्त हो गया। यह पारस्परिक सहायता क्रम उत्तरोत्तर सर्वत्र चीन में व्यापक होता चला गया। इसका लाभ कृषकों को दिखाई पड़ा। उनकी आय में इजाफा हुआ। सारे देश का कृषि-उत्पादन भी तेजी के साथ बढ़ा।

इस सफलता को देख कर उत्तर चीन में, जहां पर कम्युनिस्टों का शासन पुराना हो चुका था, एक और प्रयोग किया गया। इसे पहले दर्जे की सहकारी खेती कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत एक ग्राम में कुछ घराने—और ये घराने प्रायः वही हुआ करते थे, जो इसके पूर्व पारस्परिक सहायता आन्दोलन में भाग ले चुके थे और परस्पर सहयोग के लाभ को समझ चुके थे—अपनी भूमि को मिलाकर और अपने खेती के साधनों को इकठ्ठा कर आयोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बाकायदे प्रबन्धकारिणी समिति हुआ करती थी। कार्य का सुन्दर विभाजन हुआ करता था और खेती के मुनाफे को न्यायोचित रूप से बांटा जाता था। यह कार्यक्रम सन् १९५३ और ५४ तक काफी आगे बढ़ गया। पर इस बीच एक विरोधाभास इन सहकारी समितियों में प्रकट हो गया।

इस विरोधाभास को हम कुछ स्पष्ट कर दें। इन कृषि-उत्पादक सहकारी समितियों में उसके सदस्यों की आय दो प्रकार की होती थी। प्रथम, उसके द्वारा किए गये कृषि-श्रम के अनुसार; और द्वितीय, उसकी जितनी भूमि सहकारी समिति में आई, उस पर एक स्वामित्व-लाभाँश। अब हुआ क्या? जिन परिवारों के पास भूमि स्वल्प थी, वे खूब मन लगाकर कृषि करते थे, मेहनत करते थे, ताकि उनको श्रम-लाभाँश अधिक प्राप्त हो। और जिस परिवार के पास भूमि अधिक होती थी वह श्रम कम करते थे, श्रम से बचते थे, कारण उनको यह विश्वास था कि स्वामित्व-लाभांश से उनको एक मजे की आय हो ही जायेगी। जब कृषि-उत्पादक सहकारी समितियों के बनने के पश्चात् आय बढ़ने लगी तो स्वल्प भूमि वाले परिश्रमी कृषकों ने कहना शुरू किया कि मेहनत तो हम करते हैं, आय तो हमारे परिश्रम के फलस्वरूप बढ़ रही है, और यह स्वामित्व-लाभांश वाला आदमी बिना किसी प्रकार की मेहनत किये रकम काटता जाता है। तो परस्पर संघर्ष शुरू हो गया। स्थिति कुछ-कुछ चिन्ताजनक होने लगी। कृषकों की इस स्थिति का प्रभाव कम्युनिस्ट पार्टी में भी दिखाई पड़ा। उस में दो विचार के लोग हो गए। एक कहने लगे कि अब हमको सहकारी आन्दोलन को रोक देना चाहिए और जो कुछ हमने सहकारी समितियां बना ली हैं उन्हीं को और सुदृढ़ करना चाहिये। इसके विपरीत, दूसरे विचार वाले कहते थे कि हमको सहकारी आन्दोलन को और भी तेज कर देना चाहिए। यह विवाद कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत गंभीर हो गया। फिर चीन के नेता माओ ने सन् १९५५ के प्रारंभ के महीनों में दो-तीन माह तक बराबर नीचे के ग्रामों का दौरा किया। स्वयं उन्होंने भूमि की स्थिति का अध्ययन किया और उस के बाद सन् १९५५ के जुलाई मास में उन्होंने एक रिपोर्ट कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मुख पेश की। इस रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि किसान तो समाजवाद की ओर जाना चाहता है पर कम्युनिस्ट पक्ष के ही कुछ लोग डर-दब रहे हैं, हिचकिचा रहे हैं। और उन्होंने हिदायत दी कि चीन में सहकारी आँदोलन को और आगे बढ़ाना चाहिए। कम्युनिस्ट वहां इसलिये सफल हुए कि उन्होंने भूमि-समस्या को प्राथमिकता प्रदान की और उसको हल करने वाली छुटपुट फुटकर बातें करने के बजाय सीधे-सादे भूमि का पुनर्वितरण कर दिया। आज निश्चय ही चीनी कृषक सुखी हैं, प्रसन्न हैं। यह तो चीन के गावों में जा कर वहां के किसानों को देख कर पता ही लग जाता है।

—आर्थिक-समीक्षा से साभार।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत में पीकदान का इतिहास

(ई० पू० ३०० से प० १५०० तक)

श्री बाबूराम वर्मा, एम. ए.

भारत में ताम्बूल के इतिहास का अध्ययन करते समय मैंने यह आवश्यक समझा कि उस से संबधित उन विभिन्न वस्तुओं का इतिहास भी प्रस्तुत करूं, जो तांबूल चबाने वाले बहुधा भारतवर्ष में व्यवहार में लाते हैं। फलतः मैंने एक निबन्ध सरौते[१] पर प्रकाशित किया, जिसमें उसका १३०० ई० तक का इतिहास बताया। तांबूल से संबधित दूसरी वस्तु जिसे घर स्वच्छ रखने को तांबूल चबाने वाले व्यवहार में लाते हैं, पीकदानी है, जिसके अभाव में, ताम्बूल के साथ व्यवहृत पदार्थों जैसे पान, लौंग, सुपारी, चूना और कत्था के कारण मुख में अत्याधिक थूक आने से वस्तुतः सारा घर ही पीकदान न बन जाए। सामाजिक स्वच्छता के समर्थकों ने भारत में सदैव ही ताम्बूल चबाने वालों की सड़क के दोनों किनारों पर थूकने की गन्दी प्रवृति की भर्त्सना की है। ताम्बूल विक्रेताओं की दुकानों के सामने की भूमि पर एक दृष्टि करने से ही इस आलोचना की सत्यता प्रत्यक्ष हो जाएगी, क्योंकि इसकी कोई दुकान ऐसी नहीं है जिसके सामने की भूमि ताँबूल चबाने वालों के लाल थूक से भद्दी न हो गई हो। कदाचित इसी कारण से भारत के सभी मार्गों में जन भागों पर तांबूल चबाना दुराचार,[२] समझा गया, जैसा कि सत्रहवीं शताब्दी के एक लेखक ने अभिलिखित किया है। घरेलू जीवन में पीकदान का व्यवहार स्वच्छता के प्रति बड़े ध्यान को दिखाता है और भारत में स्वच्छता के इतिहास में इसके उपयोग का स्पष्ट ही स्थान है। इसी लिए हमें अन्वेषण करके देखना चाहिए कि क्या भारतीय जीवन और संस्कृति में पीकदान का व्यवहार तांबूल के आने के साथ साथ ही आया या इस से कुछ पूर्व।

---

१. देखिए 'भारत इतिहास संशोधन मंडल' त्रैमासिक १९४८, पृष्ठ ८-१४।

२. भट्टोजी दीक्षित का शिष्य वरदराज 'जीवार्ग-पदमंजरी में कहता है' सर्वेषां देशे पथि ताम्बूलभक्षणं दुराचारः। [भारतीय विद्या. खण्ड ६ संख्या २ (फर्वरी १९४५) के पृष्ठ २८ के अनुसार]

३. तांबूल के इतिहास का अध्ययन करते समय मैंने तांबूल चबाने के रिवाज के संबंध में पूर्ण और विवेचित् साहित्य के संबंध में अपने मित्रों से पूछा। उन मित्रों में से केवल राजाराम महाविद्यालय कोल्हापुर, के डा० ए० एन० उपाध्ये ने, मेरा ध्यान एन० एम० पेञ्जर की तांबूल चबाने की मनोहर कथा (Romance of Betel chewing) की ओर आकर्षित किया (सी० ऐच० टौनी के कथासरित्सागर के अनुवाद का खण्ड ८ का परिशिष्ट २ पृष्ठ २३७-३१९ इस ८२ पृष्ठ के दीर्घकाय निबन्ध की ओर जिसमें पेञ्जर ने तांबूल चबाने के व्यवहार का विस्तार, इसकी ठीक प्रकृति, अगणित उत्सवादि जिनमें ताम्बूल का भाग है, और इस व्यवहार का भाषा विज्ञान और नृविज्ञान की दृष्टि से महत्व के सम्बन्ध में लाभदायक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तांबूल चबाने संबंधी उपकरणों के इतिहास का अध्ययन करते समय हमें एसे उपकरणों की ओर ध्यान देना चाहिए जा संग्रहालयों में एकत्र है । पेन्जर अपने 'तांबूल चबाने की मनोहर कथा' नामक निबंध में ऐसे उपकरणों के वर्णन में कुछ पृष्ठ देता है । [टॉनी के 'कथासरित्सागर' के अनुवाद के खण्ड ८ के पृष्ठ २४६-२५४] इस वर्णन में से कुछ मैंने लिए हैं—

विक्टोरिया और एल्बर्ट संग्रहालय (लन्दन) कक्ष ८ (धातुकर्म)––

पांचवा बक्स—पीतल का सिरेह (Sireh) सुमात्रा के बक्स । कुछ पर सभी ओर स्वस्तिक चिन्ह खुदा हुआ है ।

तेरहवां बक्स––पीतल का इकट्ठा कंघा और सुपारी काटने का सरौता (तन्जौर का) काटने वाला भाग 'पुरुष और लघु आकार स्त्री जैसा' है ।

पीतल की खरल

चौदहवां व सत्रहवां बक्स––सिंहल के सरौते और चूने के पात्र बज्रायस (steel) के सरौते (आकार साढ़े चार से साढ़े ग्यारह इञ्च तक) भीतर रौप्य जड़ाई और ऊपर पित्तल का खोल––एक का रूप अजगर का है जिसका शिर पक्षी का है ।

––श्रृंखला वाले चूँने के पात्र जिनका आकार पुरानी अंग्रेजी जेबी घड़ियों के आधान जैसा चूना लगाने की डंडो जिसका शिर चपटा है, और चौड़ाई १।। इञ्च है ।

दीवार पर लगे बक्स २५ वें व २७ वें–– रंगीन कांच से जड़े हाथीदांत, हड्डी, या मोती के हत्थों वाले सरौते कुछ का रूप पशुओं जैसा है, जैसे अश्व, मोर आदि का ।

तांबूल चबाने संबंधी उपकरणों का आधुनिक ग्रन्थों में वर्णन––

१. ए० के० आनंदकुमार स्वामी की मध्यकालीन सिंहल कला––

चित्र ४६ (छोटे आकार के नमूनों का चित्रों सहित वर्णन पृष्ठ ३३६-७ पर है ।)

पृष्ठ २३८-९––तांबूल के बटुओं का अति सुन्दर वर्णन ।

चित्र ३०-३३––छोटे बड़े चोर जेब वाले और रेशमी कढ़ाई वाले, अंडाकार और वर्गाकार तांबूल बटुवों के चित्र ।

२. मलय राजकीय एशियाई परिषद्, खंड ३, १९२५–पृष्ठ २२, २८ ।

मलय परीकथाओं में वर्णित ठोस स्वर्ण के तांबूल बटुवे––प्रत्येक मलय घर में तांबूल बटुवा या तश्तरी होती थी जिस में चबाने की सभी वस्तुएं लगी रहती थी, जैसे इलायची, लौंग, कत्था, चूना, तंबाकू—छोटा पान रखने

सामग्री एकत्र की है, ध्यान आकर्षित करने के के लिए में डा० उपाध्ये का कृतज्ञ हूं ।

प्रिजुलस्की के अनुसार ताम्बूल, मूल शब्द 'बूल' और उपसर्ग 'ताम' से बना है । 'बूल' आस्ट्रो-एशियाटिक (अ—भारतोआर्य) 'बाल से मिलता है जिसका अर्थ है 'जिसे लपेटते हैं' [अधिक विवरण के लिए प्रिज़ुलस्की का निबन्ध देखिए 'इण्डोआर्यो मे अनार्य चिह्न'—पैरिस की भाषा विज्ञान परिषद् पत्रिका, खण्ड २४, संख्या ३ (पूर्ण संख्या ७५) १९२४, २२५-२५८]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का बटुवा, पान पर चूना लगाने की धातु-डंडी और विचित्र आकृतियों वाले सुपारी काटने के सरौते।

३. एच. लिग. रौथ की "प्राचीन रौप्य कर्म-मलय और चीनी", लन्दन, (१९१०, चित्र संख्या, ३, ४, ५, ३०–३४, ३८–४७,५०–५३, ५७–६२)।

—सुपारी रखने के पात्रों, चूने के पात्रों और पान रखने के आधानों के चित्र।

४. एच लिंग रौथकी "सारावाक और उत्तर बोर्नियो के निवासो" खण्ड २, पृष्ठ ३९, लैंड डायक द्वारा पहनी जाने वाली पान की टोकरी का वर्णन।

५. जातिविज्ञान संग्रहालय की निर्देशिका (ब्रिटिश संग्रहालय में)।

न्यूगिन्नी के उत्तारी तट से परे एंनोराइट द्वीप से प्राप्त तांबूल चबाने के उप-साधनों जैसे चूना लगाने की डंडी के चित्र, जिन में से कुछ की आकृति छिपकली की पूंछ जैसी—न्यूगिन्नी द्वीपसमूह (दक्षिण पूर्व) से प्राप्त कुछ उदाहरण, कुछ मनुष्याकृति के कुछ मकराकृति के।

सिंहल से प्राप्त तांबूल चवर्ण उप-साधनों के चित्र।

ऊपर दिये गये तांबूल चर्वण के उप-साधनों के वर्णन में मुझे पीकदान[1] का संकेत नहीं मिला, जिस से प्रस्तुत निबंध में मुझे मतलब है।

१. य०र० दाते और च०ग० कर्वे के मराठी 'शब्दकोश' में (पूना,१९३६,खंड ५,पृष्ठ २००४) पिकदानी, पिकदाणी, पिंकदानी, पिंकदान, पिकधरणी, पिकपात्र, आदि शब्दों को देता है–

कोश में इन शब्दों का व्यवहार इस प्रकार दिया है—

(१) पिकदान—

"पिकदानें ऊर्ध्वमुखें।
तांबूल पत्रें अतिसुरेखें॥"
हरिविजय ३४, १५८।

(२) पिकधरणी–(१६०८–१६४९ ई०)

"तांबुलाची पिकधरणी।
तेमीप्रसे मुख पसरुनी॥"
—तुकाराम की 'गाथा' १७४६।

१. पीकदान के इतिहास पर अपने मित्र प्रा० डी० डी० कौशाम्बी से विमर्श करते समय मुझे ज्ञात हुआ कि प्राचीन रोमन भी, बड़े-बड़े भोजों के पश्चात् उलटियां करने को कुछ पात्र प्रयोग करते थे। इस सम्बंध में मैंने जेरोम कार्कोपिनो (अनुवाद इ०ओ० लौरिमर, लन्दन, १९४६) की "प्राचीन रोम में दैनिक जीवन" का अध्याय ९, पराड और संध्या भी पढ़ा। रोमनों के पेटूपन का वर्णन करते समय लेखक का मत है—

पृष्ठ २७१–२, मार्शल एकाधिक लोगों के सम्बन्ध में कहता में जिन्हें दास को 'आवश्यक पात्र' लोन को चुटकी भर बजानी पड़ती थी जिस में वह "उस में से पी हुई शराब को पुनः ठीक-ठीक नापते थे", और दास अपने मत्त स्वामी के शरीर को संभालते थे। और अन्त में बहुधा ऐसा होता था कि फर्श का बहुमूल्य संगमरमर "सिना" के मध्य थूकने मैं खराब हो जाता था।

धनी रोम के, जो सारे रोमन साम्राज्य के धन को खींचता था, और फर्श के संगमरमरी काम को खराब करता था भद्दे पेटूपन के समक्ष भारतवासियों की तांबूल चबा कर मार्गों पर थूकने की प्रवृत्ति नगण्यता में मिल जाती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) पिकपात्र—(१५६६ ई—१६४६ ई०)

'मृदुमवाक चोटिंगणें ।
पिकपात्रें झककती ।।'

—मुक्तेश्वर, आदिपर्व ४८, १७ ।

उपर दिए उद्धरणों में पिकदान शब्द का व्यवहार तांबूल के साथ आया है। संत तुकाराम और महाराष्ट्र के कवि मुक्तेश्वर सत्रहवीं शती के पूर्वाद्ध में वर्तमान थे।

२. संस्कृत बाह्य शब्दों के कोश 'राज्य व्यवहार कोश'। (पूना, १८८०)। जिसे शिवा महान् की आज्ञा से रघुनाथ पंडित ने १६७६ ई० में रचा, हमें "पीकदान" और "तस्त" शब्द निम्न उद्धरण में मिलते हैं—

पृष्ठ ३, राजवर्ग, श्लोक २६, २७।
" . . . . तस्तं गण्डूषपात्रकम् ।।२६।।
पीकदानी—नामनी द्वे पतद्ग्रह-कलाचिके ।"

यहां "पीकदानी" का अर्थ संस्कृत शब्द 'पतदग्रह' और "तस्त" का अर्थ "गण्डूषपात्रक" (मुख प्रक्षालन का पात्र) से समझाया गया है।

३. 'पारसीभाषानुशासन' नामक पारसी शब्दकोश (बनारसीदास जैन द्वारा सम्पादित, लाहौर १९४५) जिस की रचना संवत् १६०० (१५४४ई०) से पूर्व हुई, हमें "तस्तरी" शब्द "हस्त प्रक्षालक" के अर्थ में निम्न उद्धरण मिलता है—

पृष्ठ ६—अध्याय १, श्लोक ७६।
" . . तस्तरी प्रोक्ता हस्तप्रक्षालकस्तथा ।।७६।।"

ऊपर दिये गये संदर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत-बहिर शब्द 'पिकदानी', 'तस्त' (अथवा तस्तरी) सत्रहवीं शताब्दि में या उस से भी पूर्व 'पीकदान' और 'हस्त प्रक्षालक' के अर्थ में प्रचलित थे।

४. यूल और बुर्नेल के "हाब्सन-जाब्सन" में (लन्दन १९०३) 'पिगदान' पर निम्न लेख है—

पृष्ठ ७०६ पीगदान, हिन्दी पीकदान, पीक चबाएं तांबुल से निकाला हुआ रस है। १६६५ ई० दास . . . पीकदान ले जाते थे।

—बर्नियर, कांस्टेबल द्वारा प्रकाशित २१४, २८३ में 'पिकदान'[1] १६७३ ई०—भारत में फर्श पर दरियां बिछाई जाती हैं, जिन के ऊपर वहीं की मिट्टी के जिसे चीन कीं मिट्टी के बाद बड़ा अच्छा मानते है, 'पीगदान' होते है, जिसमें वे पीक डालते है।　　—फ्राइर, २२३।

१६८४ ई० हेडगे, 'थूकने के पात्र' क्रय करने के सम्बन्ध में कहता है।　—दैनिकी, हैक्लूयट परिषद्, १४६।

---

१. बनिया द्वारा कहा पीकदान का प्रयोग ओमराओं और राजाओं में विशेषतः दिल्ली और आगरा में सीमित था। इन में से कितने ही गावतकियों के सहारे लेटे पालकी में बैठ, ओठों को लाल करने, श्वास को मीठा करने, दोनों आशयों के लिए पान खाते, छः-छः आदमियों के कन्धों पर चलते थे। पालकी के दोनों ओर मिट्टी या चांदी आदि का पीकदान लिए नौकर रहता था। (बनियर पृष्ठ २८३)।

मिट्टी के पीकदान कहाँ बनते थे ? आईने अकबरी १५६० ई०) 'चीन की तस्तरियों का' जो अकबर के दस्तरखवां पर व्यवहृत होती थी, उल्लेख करता है। (आईने अकबरी खण्ड ', पृष्ठ ५०-५१, ग्लैडविन का अनुवाद, कलकत्ता, १८६७)।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महान राजर्षि स्वामी श्रद्धानन्द

श्री अवधेश कुमार

सन् १९१९ का वह जमाना था। देश के कोने कोने में रोलेट एक्ट के विरोध में आन्दोलन चल रहे थे। इसमें भारत की राजधानी दिल्ली भी किसी प्रकार पीछे न रही थी और रहती भी कैसे जब कि सफलता के देवता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज स्वयं आन्दोलन के नेता थे। इसी सिलसिले में ३० मार्च को एक जलूस निकला। आगे २ स्वामी जो चल रहै थे और पीछे था जन समुदाय। जलूस जब घण्टाघर के समीप पहुंचा तो सहसा शस्त्रास्त्रों से लैस गोरखों की संगीनें निरीह जनता का खून पीने के लिए तन गई। फिर भी जनता के भाग्य-विधाता आगे ही बढ़ते गये, और पीछे पीछे जनता ने 'भारत माता की जय' के नारों से एक बार आकाश को गुंजा दिया। वह जुलूस गोरखों के अत्यन्त निकट पहुंचा तब गोली चलाने के लिए उनकी बन्दूकें सीधी तन गईं। इसी बीच सहसा स्वामी जी का सिंहनाद सुनाई दिया 'निर्दोष जनता पर गोली चलाने से पहले मेरे सीने में संगीनें भोंक दो'। इतना कहना ही था कि गोरखों का खौलता हुआ खून ठंडा पड़ गया। जनता ने भारतमाता की जय के नारों के साथ फिर एक बार आगे कूच किया। यह था स्वामी जी का साहस! यह थी स्वामी जी की निर्भयता! यह था उनका त्याग! यह थी उनकी तीव्र तपस्या! केवल यही नहीं बल्कि ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं। जो उनके अभूतपूर्व साहस तथा बलिदान की भावना को दर्शाते हैं।

स्वामौ जी का यह गुण था कि वे जिस काम को पकड़ लेते थे उसको पूरा कर दिखाते थे। उस समय गुरुकुल स्थापित करना कोई सहज कार्य न था। पहले तो उनको सहायता देने वाला कोई न था, सब उनकी बातों पर हंसते थे, उन्हें पागल बताते थे। पर घुन के पक्के स्वामी जी ने यह प्रण कर लिया कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिए ३० हजार रुपया इकट्ठा न कर लूंगा तब तक घर में पैर तक न धरूंगा। उन दिनों तीस हजार रुपया इकट्ठा करना कौई खेल न था। लोग अपने बच्चों को जगलों में पढ़ाने के लिए तैयार न थे। पर दृढ़प्रतिज्ञ स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसकी कोई पर्वाह न की। और कहते हैं कि उन्हें इतनी धुन सवार होगई थी कि जब वे चन्दा इकट्ठा करने के लिए जालन्धर आये तब वे अपने घर न जाकर आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरे। अपनी भाभी जी के पूछने पर कहा कि भाभी जी! मैने यह प्रण कर लिया है कि जब तक गुरुकुल की स्थापना के लिए ३० हजार रुपये इकट्ठे न कर लूंगा तब तक घर में पैर तक न धरूंगा। यह थी इनकी दृढ़ प्रतिज्ञा और यह था उनका कार्य-कौशल, जिसने उन्हें मिट्टी से सोना बना दिया था। इसी प्रकार की एक घटना है कि वे अपना 'सद्धर्मप्रचारक' पत्र उर्दू में प्रकाशित किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करते थे । पर एक दिन उन्हें आभास हुआ कि यह पत्र हिन्दी में निकलना चाहिए, यह राष्ट्र धर्म का तकाजा है । उन्होंने रातोंरात सारा प्रबन्ध कर डाला और प्रातःकाल से पत्र हिन्दी में निकलने लगा ।

वे जिस चीज़ को ठीक समझ लेते थे उसके पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे, केवल उन्हें उस चीज़ का आभास होना चाहिए था । इस लिए उन्होंने केवल शिक्षा क्षेत्र में ही क्रान्ति पैदा की हो ऐसी बात नहीं, अपितु उन्होंने जब शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उसे देश व्यापी बना दिया । लाखों मलकाने राजपूतों को जो मुसलमान बन गये थे, हिन्दू बिरादरी में पुनः शामिल किया । इसी प्रकार राष्ट्रीय कार्य क्षेत्र में भी वे किसी से पीछे न थे । उन दिनों अमृतसर में जलियानवाला बाग का काण्ड घट चुका था । लोग कांग्रेस का नाम तक भी लेने को डरते थे । ऐसे समय में अमृतसर में काँग्रेस अधिवेशन हो सकेगा यह किसी को आशा न थी । ऐसी परिस्थिति में इस कार्य का भार आपने अपने सबल कन्धों पर लिया । इस सिलसिले में द्वार-द्वार पर जाकर स्वामी जी ने कांग्रेस का प्रचार किया । गांव-गाँव में जाकर सहायता की प्रार्थना की । गली-गली में घूम कर चन्दा प्राप्त किया और इस प्रकार अधिवेशन को सफल कर दिखाया । इससे हम पता लगा सकते हैं कि उनमें कितनी कार्यक्षमता थी । कितनी लगन थी, कितना निर्भीक साहस था । इसी कारण प्रत्येक कार्य में सफलता आपके चरण चूमती थी । अछूतोद्धार का कार्य सबसे पहले आपने ही प्रारम्भ किया ।

आपने केवल हिन्दुओं की ही सेवा की हो ऐसा नहीं । बलिदान से लगभग आठ साल पूर्व रौलेट एक्ट के पुरस्कार स्वरूप चली गोली में मारे गये मुसलमानों के परिवारों की आपने तन-मन-धन से सेवा की थी । एक मुसलमान के शब्दों में—अगर स्वामी जी उस समय मुसलमानों की मदद न करते तो उनके औरत और बच्चे दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाते । इससे पूर्व ४ अप्रैल १६१६ को दिल्ली के मुसलमानों के निमन्त्रण पर प्रसिद्ध जामामस्जिद की वेदी से जहां से कुछ इने गिने व्यक्ति प्रवचन कर सकते थे, वेदवाणी का उपदेश दिया था । और हिन्दू मुस्लिम एकता की जोरदार अपील करते हुए आजादी नारा बुलन्द किया था । और तब वहां उपस्थित जनता ने हिन्दू-मुस्लिम जिन्दाबाद के नारों से उस भाषण का स्वागत किया था । उनको देख कर भूतपूर्व ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रेमजे मैकडानल ने कहा था 'वर्तमान काल में यदि कोई कलाकार ईसा का जीवित मॉडल चाहे तो मैं इस भव्य मूर्ति की ओर इशारा करूंगा । यदि कोई चित्रकार सैन्ट पीटर के चित्र के लिए नमूना मांगे तो मैं उसे इस भव्यमूर्ति के दर्शन की प्रेरणा करूंगा' इन वाक्यों से हम सहज ही पता लगा सकते हैं कि उनका चेहरा कितना उज्वल था । उनका मन कैसा निर्मल था । उनके विचार कितने उच्च थे कि उनके दर्शन मात्र से ही बड़े २ आदमी उनकी ओर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खिंच जाते थे।

स्वामी जी को ये गुण कैसे प्राप्त हुए, इसकी भी एक विस्मय जनक घटना है। कहते हैं कि स्वामी जी जब युवा अवस्था में थे तो उन्हें किसी कारणों से हिन्दू-संस्कृति से घृणा पैदा होगई थी और वे दिनों दिन ईसाई मत की ओर झुकते जा रहे थे। उन दिनों महर्षि दयानन्द जी बरेली में आये हुए थे। उनके व्याख्यानों से स्वामी जी के पिता नानकचन्द्र जी बहुत प्रभावित हुए। और उन्होंने अपने पुत्र को सन्मार्ग पर लाने की अभिलाषा से महर्षि दयानन्द जी के व्याख्यान सुनने की प्रेरणा की। पहले तो वे न माने पर बाद में पिता जी के आग्रह करने से राजी हो गये। महर्षि के दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। उनकी दिनचर्या और विद्वत्ता को देख कर उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। तब से वह आर्यसमाज की ओर झुके। जिस प्रकार लोहा पारस के सम्पर्क से सोना बन जाता है, ठीक उसी प्रकार स्वामी जी महर्षि के सम्पर्क से ही इतने महान् बन सके। तदनन्तर स्वाध्याय तथा तपस्या ने उन्हें तपा कर सुन्दर सोना बना दिया।

बनार्ड शा ने गान्धी की पुण्यतिथि पर बहुत ही ठीक कहा था कि बहुत भला होना भी खतरनाक होता है। स्वामी जी की गणना भी इन्ही प्रकार के लोगों में की जा सकती है। १९१६ के दिसम्बर मास के २३ तारीख की बात है। नया बाजार दिल्ली के एक भवन में जो आज श्रद्धानन्द बलिदान-भवन के नाम से प्रसिद्ध है, मसनद का सहारा लिए स्वामी जी विराजमान थे। कई दिनों से वे बीमार चले आ रहे थे। शाम के चार बजने को थे कि अब्दुलरशीद नाम का एक आदमी इस्लाम धर्म के सम्बन्ध में शंका समाधान करने के लिए स्वामी जी के पास आया। स्वामी जी ने कहा मैं आजकल बीमार हूं, फिर कभी आना। तब उसने स्वामी जी से पानी पीने को मांगा। पानीं देने के बाद जब नौकर दूसरे कमरे में गया तब इस मदान्ध को मौका मिल गया उसनें फुर्ती से पिस्तौल निकाल कर स्वामी जी के सीने पर दनादन तीन गोलियां दाग दीं। स्वामी जी इस विनश्वर शरीर को छोड़ कर सदा के लिए चल बसे। आर्यसमाज का सूर्य पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होगया। हिन्दू जाति का उद्धारक सदा के लिए चल बसा। देश का महान् उद्धारक लुट गया। एक जलता हुआ दीपक सदा के लिए बुझ गया।

ऐसे उच्च आत्माओं का नाम स्मरण तथा कार्यों की आलोचना सदा प्रेरणा प्रद होता है। उनके स्मृति को स्थिर करने का उपाय उनकी शिक्षाओं के अनुरूप कार्य करना तथा उनके चलाये हुए कार्यों को जारी रखना है। अतः आइये हम उनसे प्रवर्तित इस गुरुकुल शिक्षा पद्धति को अपने आचरणों से पल्लवित करें और उनकी शिक्षा के अनुसार पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए देश व जाति के सच्चे सेवक बनने का शुभ संकल्प करें।

——

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में गांधी जी के विचार

मैं निस्संकोच भाव से यह कह सकता हूं कि बुद्ध के जीवन से मुझे बहुत प्रेरणा मिली है और उससे मैंने बहुत कुछ सीखा है।

मेरी धारणा है कि हिन्दू-संस्कृति में बौद्ध-संस्कृति भी जरूर शामिल है। इसका सीधा सा कारण यही है कि बुद्ध स्वयं एक भारतीय थे और केवल भारतीय ही नहीं, हिन्दुओं में भी हिन्दू थे। मुझे बुद्ध के जीवन में एक भी बात ऐसी नहीं मिली जिससे यह साबित हो कि उन्हों ने हिन्दू-धर्म छोड़ कर कोई नया मत ग्रहण कर लिया था।

काफी विचार के बाद मैंने यह राय बनाई है कि बुद्ध के उपदेशों की खास-खास बातें आज हिन्दू-धर्म का अविभाज्य अङ्ग बन गई हैं। गौतम बुद्ध ने हिन्दू-धर्म में जो महान् सुधार किये हैं उन्हें त्याग सकना अब हिन्दू-भारत के लिए असम्भव है। बुद्ध के महान बलिदान, उत्कृष्ट त्याग, और निष्कलङ्क पवित्रता ने हिन्दू-धर्म पर एक अमिट और चिरस्थायी छाप छोड़ी है और हिन्दू-धर्म इस महान् गुरु का सदा आभारी रहेगा। मैं तो यहां तक कहूंगा कि आज बौद्ध-धर्म के नाम से जो धर्म प्रचलित है उसमें से हिन्दू-धर्म ने जो वस्तुएं ग्रहण की हैं वे बुद्ध के जीवन और उपदेशों में थी ही नहीं।

तथागत का जीवन हिन्दू-धर्म के श्रेष्ठतम सिद्धान्तों से पगा हुआ था। वह कई ऐसे सिद्धान्तों को पुनः प्रकाश में लाये जो केवल वेदों में दबे ढ़के पड़े थे और जिन्हें लोग भूल चुके थे। वेदों में निहित सुनहरी सत्य शब्द जंजाल से ढक गया था। परन्तु इस महान् हिन्दू आत्मा ने यह आवरण नष्ट कर दिया। उन्होंने वेदों के कुछ शब्दों का नया ही अर्थ लगाया, जिसकी उनकी पीढ़ी के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। भारत की भूमि इन नवीन अर्थों को अपनाने के लिए स्वभावतः उपयुक्त थी ही।

तथागत के हृदय की तरह उनके उपदेश भी सर्वग्राही और विशाल थे। इसी लिए उनका शरीर न रहने पर भी बौद्ध-धर्म फैला और सारी दुनियां में छा गया। सम्भव है कि लोग मुझे बौद्ध मानने लगें परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यह विजय हिन्दू-धर्म की ही विजय थी। बुद्ध ने कभी हिन्दू-धर्म का खण्डन नहीं किया। उन्होंने तो इस धर्म के आधार को मजबूत बनाया; इसमें एक नया जीवन फूँक कर इस की एक नई व्याख्या की।

पहली बात में एक सर्वव्यापक शक्ति—ईश्वर—में विश्वास को लेता हूं। मेरे सामने अनेक बार यह राय जाहिर की गई है और मैंने पुस्तकों में भी पढ़ा है कि बुद्ध अनीश्वर-वादी थे। मेरे विचार से यह धारणा बुद्ध के मूलतत्व के विरुद्ध है। बुद्ध ने उन त्याज्य परम्पराओं का खण्डन किया था जो उन के समय में ईश्वर के नाम पर चल पड़ी थीं। सम्भवतः इसी खण्डन से यह भ्रम पैदा हुआ कि उन का ईश्वर में विश्वास न था। यह सही है कि उन्होंने इस बात का खण्डन किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि ईश्वर नाम का पुरुष द्वेष से प्रेरित हो सकता है, अपने कर्मों पर पश्चात्ताप कर सकता है, संसारी राजाओं की तरह घूस और प्रलोभनों के सामने झुक सकता है और पक्षपात कर सकता है। उनकी आत्मा इस बात के प्रति विद्रोह कर उठी कि ईश्वर नाम का एक प्राणी प्रसन्न होने के लिए उन जीवों का खून मांग सकता है जो स्वयं उसी ने पैदा किये हों।

बुद्ध ने भारत को एक बहुत बड़ी बात यह सिखाई कि निर्दोष पशुओं की बलि से संतुष्ट होने वाला ईश्वर, ईश्वर नहीं है। इस के विपरीत जो उसे प्रसन्न करने के लिये पशुओं की बलि देते हैं, वे दोहरा पाप करते हैं।

ईश्वर के नियम अनादि और अपरिवर्तनशील हैं और उन्हें ईश्वर से अलग नहीं किया जा सकता। ईश्वर की पूर्णता ही इस स्थिति पर निर्भर है। इस सिद्धान्त को न समझने से ही यह भ्रम पैदा हो गया कि बुद्ध का ईश्वर में विश्वास नहीं था बल्कि उनकी आस्था नैतिक नियमों में थी। ईश्वर-सम्बन्धी इस भ्रम के कारण ही 'निर्वाण' जैसे महान् शब्द का भी गलत अर्थ लगाया गया। निर्वाण का अर्थ अनन्त में विलीन होना नहीं है। जहां तक मैं बुद्ध के जीवन के मुख्य तत्वों को समझ पाया हूं निर्वाण का अर्थ मनुष्य की सब बुराइयों का नाश है। निर्वाण कब्र की अन्धकारमय मुर्दा शान्ति नहीं है। इस शान्ति में जीवन है। यह उस आत्मा की स्थिति है जिसने स्वयं को पहचान लिया हो, जिसे अनादि अनन्त परमेश्वर के हृदय में वास का बोध हो गया हो।

गौतम ने हमें सिखाया कि हीन से हीन जन्तु को भी हमें अपने बराबर मानना चाहिए। यह धारणा कि मनुष्य सभी पशुओं और जन्तुओं का स्वामी है थोथे अभिमान की द्योतक है। इस के विपरीत अधिक गुण-सम्पन्न होने के कारण उस का दरजा पशु-जगत् के ट्रस्टी (न्यासी) का है। ऋषिवर बुद्ध का जीवन इस सत्य की साकार प्रतिमा था। मैंने बचपन में 'लाइट ऑफ एशिया' नामक रचना के उन अंशों को पढ़ा था जिसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार भगवान् बुद्ध ने क्रुद्ध और मूढ़ ब्राह्मणों के देखते-देखते उनके यज्ञ के बलि के पशुओं में से एक मेमने को अपने कन्धे पर उठा लिया और उन्हें किसी भी पशु का वध करने के लिए ललकारा। परन्तु उन की उपस्थिति-मात्र से उन ब्राह्मणों का पत्थर हृदय पिघल गया; उन्होंने गौतम को नजर भर कर देखा और अपने छुरे फेंक दिये। पशु-बलि न हुई।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि यदि आप बलि देना चाहते हैं तो अपने अहम् की, अपनी वासना, भौतिक और सांसारिक लालसाओं की बलि दीजिये। यह बलिदान आपका कल्याण करेगा।

गौतम ने दूसरी बात यह बताई कि जात-पात बिलकुल गलत चीज है। ऊंच-नीच के उस भेद-भाव को जो हिन्दू-धर्म की जड़ों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खोखला कर रहा था, मिटा दिया। परन्तु उन्होंने वर्णाश्रम-धर्म का विरोध नहीं किया। वर्ण-धर्म, जात-पात से भिन्न वस्तु है। वर्ण जहां जीवनदाता है वहां जात-पात मृत्युकारी है। जात-पात का सब से घृणित रूप है अस्पृश्यता। इस लिये आप छूआ-छूत को दूर कर दें। मैं चाहता हूं कि आप तुरन्त ही यह घोषित कर दें कि सभी व्यक्ति बराबर हैं। जब तक आप एक भी आदमी को अछूत समझते हैं आप बौद्ध-धर्म से इन्कार करते हैं, मानवता का विरोध करते हैं।

भगवान् बुद्ध ने जिस से स्रोत से प्रेरणा प्राप्त की, उस आदि स्रोत का, संस्कृत और संस्कृत के ग्रन्थों का जब तक अध्ययन नहीं किया जायेगा, तब तक बौद्ध-धर्म का अध्ययन अधूरा ही रहेगा।

आप पश्चिमी जगत् की चमक को देखकर प्रभावित न हों। बुद्ध ने अविस्मरणीय शब्दों में कहा है कि यह शरीर अस्थाई और नश्वर है। यदि आंखों से दीखने वाले पदार्थों और सदा परिवर्तनशील शरीर की निस्सारता का ज्ञान हो जाय तो अक्षय निधि प्राप्त होगी और इस जीवन में शान्ति मिलेगी—ऐसी शान्ति और सुख जो कल्पना के परे हैं। इस के लिये पूर्ण विश्वास और आत्म-समर्पण आवश्यक है।

बुद्ध, ईसा या मुहम्मद ने क्या कार्य किया? उन का जीवन आत्म-बलिदान और त्याग से ओत-प्रोत था। बुद्ध ने सारा सांसारिक सुख इस लिये छोड़ा कि वह अपना वह सुख जो सत्य की खोज में कष्ट उठाने वाले मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं, सारी दुनियां के साथ बांट लेना चाहते थे।

बुद्ध की अहिंसा आज भी जीवित है और समय के साथ विकसित ही होती जायेगी। इसका जितना अधिक प्रयास किया जायेगा यह उतनी ही प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली बनती जायेगी। एक दिन वह भी आयेगा जब सारा संसार आश्चर्य-चकित हो चमत्कार! चमत्कार!! पुकार उठेगा।

यदि एशिया स्वयं अपने सिद्धान्तों का पालन कर सका तो वह समस्त संसार का पथ-प्रदर्शन कर सकेगा। इस समूचे महाद्वीप पर जिस में भारत, चीन, जापान, बर्मा, लङ्का और मलाया आदि देश शामिल हैं बौद्ध-धर्म की छाप आज भी मौजूद है।

—

श्रद्धानन्द विशेषाङ्क पर सम्मति

"गुरुकुल-पत्रिका" का श्रद्धानन्द-जन्म-शताब्दी अङ्क पढ़ा, बोधप्रद एवं मनोरंजक है। अच्छे-अच्छे मंजे हुए विद्वानों के लेख, तथा कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं का सुन्दर समावेश किया गया है। इस अङ्क को द्विगुण कर के और भी उत्कृष्ट बनाया जा सकता था। यह अंक संग्रह करने योग्य है, सम्पादक-मण्डल को बधाई।

—नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैज्ञानिक प्रकर्षों का भविष्यभाषी

फ्रेंच कहानीकार—जुले वर्न

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

उन्नीसवीं शती के नवम दशक की यह बात है। एक दिन भरावदार लाल-लाल गल-मौछ वाला एक पुरुष फ्राँस के शिक्षा-मन्त्री से भेंट करने के लिये जा पहुंचा। भेंट-पत्री (विजिटिंग कार्ड) को निहारते ही शिक्षा-कार्यालय के स्वागत-सचिव का मुखारविन्द उल्लास से चमक उठा––'आईए, वर्न महोदय पधारिए'––आराम कुर्सी प्रदान करते हुए उसने कहा—"कृपया यहां थोड़ा समय विश्राम कीजिए! आप तो देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर की यात्रा करते रहते हैं, अतः आप थके हुए होंगे!

और ठीक ही था। कलम-बाज जुले वर्न सचमुच परिश्रांत था। उसने अनेक बार पृथ्वी की परिक्रमा की थी। एक बार तो महासागर के अन्तराल में प्रविष्ट होकर उसने ८० दिन दिन तक साठ हजार मील की साहस-यात्रा की थी। चद्रलोक में परिभ्रमण किया था और धरित्री के पेट तक में वह प्रविष्ट हो गया था। द्वीप-द्वीपान्तर के आदिवासियों के साथ उसने वार्तालाप किए थे। "लेखक" जुले वर्न की यात्रा से इस भूमण्डल का शायद ही कोई प्रदेश अछूता रह गया हो।

परन्तु "मानव" जुले वर्न तो घर-घुसना सा था। यदि उसे किसी बात की थकान लगी होगी तो वह थी लिखने की। लगातार ४० वर्ष तक वह अपनी जन्मभूमि आमीन में, अपने मकान के दुतल्ले पर, एक छोटी-सी कोठरी में बैठा-बैठा कलम चलाता रहा। एक वर्ष में वह दो पुस्तकें लिख डालता था।

जुले वर्न एक महान् स्वप्नद्रष्टा था। इतना ही नहीं आने वाले विश्व की रूपरेखा आँकने वाला एक महान् आलेखक था। अभी तो रेड़ियो के आविष्कार में पर्याप्त समय बाकी था कि उसने टेलीविजन की कार्य-प्रणाली लिख डाली थी। उसने इसका नाम "फोनो-टेलीफोटो" रखा था। राइट बन्धुओं द्वारा आविष्कृत वायुयान के उड़ाये जाने से ५० वर्ष पहले ही वर्न के कल्पना-व्योम में 'हेलीकोप्टर' परिक्रमा कर चुके थे। बीसवीं शती की शायद ही कोई ऐसी वैज्ञानिक सम्भावना बची रह गई हो, जिसका भविष्य-दर्शन इस कल्पनाशील मानव ने न किया हो। इस विषय में तो अंश-मात्र भी आशंका नहीं रही है कि पनडुब्बियों, डुबकने जहाज़ों, गगनचुम्बी भवनों, यान्त्रिक सीढ़ियों और कवच-सज्जित गाड़ियों आदि की वैज्ञानिक कहानियों का तो यह "पितामह" था।

आने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों के विषय में जुले वर्न इतनी विषदता के साथ आलेखन करता था कि उस की संभावनाओं के विषय में वैज्ञानिक परिषदें चर्चाएँ किया करती थीं और वर्न द्वारा दिये गये आंकड़ों का संतुलित हिसाब लगाने के लिये गणित-शास्त्री कई सप्ताह लगा डालते थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जुले वर्न के साहित्य से प्रेरणा पाने वाले अनेक विश्वविश्रुत साहसिकों और वैज्ञानिकों ने उसे कृतज्ञतापूर्ण मानांजलियाँ अर्पित की हैं। विमान द्वारा उत्तरी ध्रुव में जाने वाले साहसिक एडमिरल बर्ड ने कहा था — "जुले वर्न मेरे प्रदर्शक थे।"

आकाश में १६ किलोमीटर (१०-मील) तक की ऊंचाई पर तथा सागर की अधिक से अधिक गहराई तक पहुंच ने वाले आंगस्ट पिक्कार्ड एवं वायरलेस के आविष्कार मारकोनी आदि अनेक विज्ञानविशारदों ने यह स्वीकार किया है कि वैज्ञानिक साहसों के लिए हमें प्रारम्भिक प्रेरणा प्रदान करने वाला एक ही व्यक्ति था——जुले वर्न ! फ्रांस की लोक-सभा में मार्शल ल्योते ने एकबार कहा था— "आधुनिक विज्ञान क्या है ? जुले वर्न ने जो कुछ शब्दों में व्यक्त किया था, उसीका व्याव-हारिक रूप आज का विज्ञान है !"

वह स्वयं ही कहा करता था कि एक व्यक्ति जिस वस्तु की कल्पना कर सकता है, दूसरा उसे निर्माण करके बता सकता है। अपने कल्पना लोक में प्रबुद्ध अनेक तरंगों को वास्त-विक रूप में देखने का सौभाग्य भी जुले वर्न को प्राप्त हुआ था।

जुले वर्न का जन्म सन् १८२८ में नांतिस् नगर नें हुआ। अभी नेपोलियन महान् के अवसान (१८२१) को सात ही वर्ष हुए थे। रेलगाड़ी का प्रचलन प्रारम्भ हुए पांच ही वर्ष बीत पाये थे। अतलांतिक महासागर का अवगाहन करने वाले जहाजों में यन्त्रों की स्थापना की जा रही थी। उनके अन्दर वाष्प-यंत्र की योजना के साथ-साथ पाल भी लगाये जाते थे कि कहीं एंजिन बंद हो जाने पर स्टीमरों की यात्राएँ ठप्प न हो जाएं।

पिता के आग्रह से १८ वर्ष की भरी तरुणाई में वर्न ने पेरिस में कानून-शास्त्र का अध्ययन प्रारंभ किया। परन्तु वर्न को तो कविताएं और नाटक लिखने की धुन सवार थी। वार्ता-लाप में वह बड़ा हाजिर-जबाब था और व्यवहार में बेपरवाह।

इसी समय एक दिन वर्न के लिए एक अनुकूल घटना अचानक हो घटित हुई। एक सांझ को पेरिस के एक शानदार प्रीतिभोज के समारंभ से उकता कर वर्न अचानक ही खड़ा हो गया और सीढ़ियां उतरने लगा। अन्तिम सीढ़ी पर आते ही उसकी एक महाशय से भेंट हो गई। ये महाशय थे फ्रांस के लोकप्रिय साहित्यकार अलक्जेंडर ड्यूमा। दोनों की इस प्रथम भेंट ने ही गाढ़ मैत्री का सूत्रपात किया। इस प्रेम-परिचय का ही परिणाम आया कि जुले वर्न सर्वात्मना लेखन कार्य की ओर जुट गए ! दोनों मित्रों ने मिल कर एक नाटक का प्रणयन किया। फ्रांस में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के क्षेत्र में जो महान् कार्य ड्यूमा ने किया, वैसा ही यशस्वी कार्य भूगोल के विषय में करने का वर्न ने निश्चय किया।

पिता की सहायता से वर्न शेयर बाजार में दलाल का काम भी करने लगा। इस प्रकार वर्न की दशा उन्नत होने लगी। तो भी अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुराने घर में ही रहने और लिखने का कार्य उसने चालू रखा। प्रातः छः बजे ही वह लिखने में जुट जाता था। वह एक सामयिक पत्र के लिए वैज्ञानिक विषयों पर लिखा करता था। दस बजते ही दलाल लोगों की-सी पोशाक में सजकर शेयर-बाजार में उपस्थित हो जाता था।

जुले वर्न ने अपना प्रथम वैज्ञानिक उपन्यास "बैलून में पांच सप्ताह" बारी-बारी से पंद्रह प्रकाशकों के पास भेजा था, परन्तु सभी ने लौटा दिया। यह देखकर वर्न खिज उठा और उपन्यास को अँगीठी में डालने लगा। परन्तु वर्न की गृहिणी ने दौड़ कर उसे बचा लिया। गृहिणी ने पतिदेव से बचन प्राप्त कर लिया कि दो तीन अन्य प्रकाशकों को पुस्तक भेज देना ठीक है। सोलहवें एक प्रकाशक ने उसे स्वीकार किया और पुस्तक प्रकाश में आई।

देखते ही देखते यह अतिशय लोकप्रिय हो गई। सर्वाधिक बिक्री वाली पुस्तकों में यह गिनी जाने लगी। सभ्य संसार की प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद होगया। सन् १८६२ तक इस पुस्तक के चौंतीस वर्ष के लेखक की ख्याति दूर-दूर देशों तक फैल चुकी थी। वर्न ने शेयर बाजार को अंतिम प्रणाम कर दिया और प्रति वर्ष दो उपन्यास लिखकर देने का ठेका एक प्रकाशक के साथ कर लिया!

इसके पश्चात् वर्न ने "धरती के पेट में" नामक पुस्तक लिख डाली। इस उपन्यास के पात्र आइसलैण्ड द्वीप के एक ज्वालामुखी के मुख के रास्ते पृथ्वी के पेट में प्रविष्ट होते हैं और सहस्रों संकटों का मुकाबला करते हुए इटली देश के एक दूसरे ज्वालामुखी में से प्रवाहित होते हुए लावा-प्रवाह के साथ बाहर निकलते हैं। पृथ्वी के गर्भ में जो कुछ भी हो रहा है उसके विषय में सभी प्रकार की विज्ञान की बातों के सिवाय नाना कल्पनाएँ भी इस कहानी में गूँथी गई हैं। साथ ही साथ रोम-हर्षक साहसिकता की आकर्षक सामग्री भी इसमें प्रस्तुत है। पढ़ते-पढ़ते वाचकगण उकताते ही नहीं।

इसी समय स्वेज नहर-निर्माण का यशस्वी कार्य पूर्ण करके विख्यात फ्रेंच इंजिनीयर फर्डिनैण्ड दि लेपेप्स पेरिस आया। वर्न के कृति-कौशल पर वह आफरीं हो गया। उसने फ्रेंच सरकार से निवेदन करके इस अद्भुत साहित्य-स्रष्टा को "लिजियन आफ ऑनर" का पदक दिलवा कर सम्मानित किया।

इन्हीं दिनों वर्न-दंपती के घर पुत्र जन्म की बधाइयाँ आने लगी और लक्ष्मी का प्रवाह भी इनके आँगन में आने लगा। वाचक-संसार में तो इसका जय-जयकार पहले से ही हो रहा था। इस प्रकार राजधानी पेरिस में प्रतिष्ठा प्राप्त करके वर्न ने आमीन नगर में जा बसने का निश्चय किया। आमीन आकर इसने एक बढ़िया जहाज मोल लिया! नया सुन्दर सा घर बनाया उसके ऊंचे मीनार की चोटी पर जहाज के कप्तान की-सी एक केबिन बनवाई! नाना नकशों, चित्रों और पुस्तकों से उस कुटीर को सुसज्जित करके उसने निर्बाध रूप से लिखना प्रारंभ किया। अपने जीवन के पिछले चालीस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष वर्न ने इसी कुटीर में बिताए।

वर्न की समस्त कृतियों में कदाचित् "अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा" पुस्तक ही सबसे अधिक ख्यातिमान् हुई। पेरिस के एक समाचार पत्र में यह धारावाहिक रूप में छपा करती थी। इस विशद कहानी का नायक "फोग" है। इस ने अपने आप एक शर्त लगाई और उसके विजय के लिए होड़ में उतर पड़ा। इस स्पर्धा-कथा को पढ़ने के लिए देश-देशान्तर के लोग "फोग" के साथ इतने अधिक ओतप्रोत हो गए कि यह "कल्पना वीर" अपनी यात्रा के किस पड़ाव तक पहुँच पाया है—यह जानने के लिए सहस्रों पाठक अखबारों की प्रतीक्षा में रहते थे और लन्दन और न्यूयार्क के अखबार वाले अपने पेरिस स्थित संवाददाता से रेडियो संदेश अपने कार्यालयों में मंगवाते थे।

यह बात है सन् १८७२ की। इसके ७० वर्ष पश्चात् न्यूयार्क के एक समाचार-पत्र में समाचार छपा कि नेली ब्ली नामक महिला ने ७२ दिवस में पृथ्वी की परिक्रमा की है। इस प्रकार इस महिला ने "फोग महाशय" की काल्पनिक विक्रम-कथा के लेखे (रिकार्ड) पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद साईबेरिया पार करने वाली रेलवे लाईन तैयार हुई और उसकी सहायता से एक फ्राँसीसी ने ४३ दिवस में यह परिक्रमा पूरी की थी। पर ध्यान में रहना चाहिए कि साईबेरिया आर पार करने वाली रेल-लाईन की भविष्यवाणी तो वर्न साहब वर्षों पहले कर चुके थे। "समुद्र की तलहटी ६० हजार मील" यह नाम है वर्न साहब की एक सामुद्रिक साहस-कथा पुस्तक का। इस कथा में वर्न महोदय ने "नोटिलस्" नामक जिस पनडुब्बी (सबमेरीन) की परिकल्पना की है, वह विद्युत् शक्ति से परिचालित होती थी इतना ही नहीं, वह समुद्र में से ही बिजली पैदा कर लिया करती थी। वर्न महोदय की इस कल्पना को ब्रिटिश विज्ञान-विशारदों ने अभी हाल में ही सिद्ध कर दिखाया है। नोटिलस् पनडुब्बी महीनों तक जल में निमग्न रह सकती थी। अमरीकन नौका-विभाग की नवीनतम सबमेरीन ने महीनों तक सागर के अन्तर्गर्भ में रहने का जो करिश्मा कर दिखाया है उसकी मूल प्रेरणा वर्न महोदय की "नोटिलस्" ही है।

भविष्यदर्शी वर्न महोदय को अधिकाधिक कीर्तिमान् बनाने वाली है एक पुस्तक—"अमरीकन पत्रकार की स्मरण-पोथी"। यह पुस्तक बहुत कम वांची गई है।

सन् २८९० में न्यूयार्क का नाम "विश्व-नगरी" बन गया है। यह विश्व की राजधानी है। उसके प्रधान मार्ग १००-१०० गज चौड़े हैं। उनके दोनों ओर हजार-हजार फीट ऊंची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं। भूमण्डल की आबोहवा को मानव ने अपने वश में कर लिया है। उत्तरी ध्रुव के निर्जन हिम प्रदेशों में खेतीबारी होने लगी है। मेघ-मंडलों पर विज्ञापन अंकित किए जाते हैं। वर्न महोदय की इस कथा का नायक "विधाता का पहरेदार" नामक अखबार निकालता है। उसके वाचक गण आठ करोड़ हैं। इस समाचारपत्र के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संवाददाता विभिन्न ग्रहों में निवास करते हैं टेलिवीजन द्वारा समाचार भेजते हैं। पत्र के ग्राहक अपने दीवानखाने में बैठे-बैठे ब्रह्मांड की घटनाओं के नाना दृश्य निहार सकते हैं। वह पोथी वर्न महाशय ने आज से कोई ६०-७० वर्ष लिखी थी—इस बात पर सहज में विश्वास हो नहीं होता !

अब वर्न महाशय का बुढ़ापा समीप आगया। जीवन का सौख्य शनैः शनैः कम होने लगा। ईर्षालु साहित्य-सेवी जन इनका विरोध करने लगे। उस युग में फ्रेंच लेखकों में वर्न महाशय की पुस्तकें सबसे अधिक पढ़ी जाती थी तो भी फ्रांस की "साहित्य एकेडेमी" में इस वृद्ध और लोकप्रिय कहानीकार को स्थान नहीं मिला। अन्तिम दिनों में वर्न-दादा मधुमेह की बीमारी से पीड़ित रहने लगे थे। नयनों की ज्योति कम हो चली थी। बहरापन भी बढ़ने लगा था। वर्न-दादा की अन्तिम कृतियां सरमुख्त्यारों और अत्याचारियों के आगमन की विभीषिका से भरी हुई हैं।

सन् १९०५ की २४ वीं मार्च को आमीन में ही वर्न दादा का अवसान हुआ। समस्त संसार के प्रतिनिधि उसकी मैयत में मौजूद थे। फ्रेंच एकेडेमी के ४० सदस्य, देशदेशान्तरों के राजदूत, सम्राटों और राष्ट्रपतियों के विशेष प्रतिनिधि एकत्र होकर उसकी समाधि पर श्रद्धा के पुष्प चढ़ा रहे थे। समाधि फूलों का ऊंचा अंबार खड़ाहो गया था। उन सब श्रद्धांजलियों में पेरिस के एक समाचार पत्र की अंजलि कदाचित् वर्न महाशय के हृदय को अधिक स्पर्श कर रही थी—"कहानी कहने वाले दादा जी सदा के लिए चले गए।"

—

चूहों से बचाव

गोदामों में पड़े अनाज का दूसरा शत्रु है—चूहा। सौ चूहे वर्ष भर में २०० से २७० मन तक अनाज नष्ट कर सकते हैं। एक वर्ष में चूहों के एक जोड़े से ८०० चूहे और पैदा हो जाते हैं। शहरों और देहातों के प्रायः सभी घरों में चूहे काफी नुकसान पहुंचाते हैं।

चूहों से बचने का पहला उपाय यह है कि गोदामों का फर्श सीमेंट और कंक्रीट का बनाया जाय, उन के दरवाजे ठीक तरह बन्द होते हों और उन के नीचे के किनारे पर ६ इंच तक टीन की पट्टियां लगी हों।

चूहों को मारने का सर्वोत्तम विष जिंक फासफाइड है। इस विष को सीले अनाज, गेहूं या चने के आटे में मिला कर रकाबी में उन स्थानों में रख दिया जाता है जहां से चूहे प्रायः गुजरते हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गीता का महत्व

अमेरीकन विद्वान् प्रो० एजर्टन की सम्मति

१९२५ के अपने छोटे से विवेचन में मैंने गीता को (भारत की प्रिय बाइबल) यह नाम दिया था। अब भी यही नाम इस के लिए अच्छा प्रतीत होता है। मूल उद्धरण से ही देखिये "भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक की सामूहिक धार्मिक चेतना में यह व्याप्त है।" अतः भारतीयों में इस के न जानने का वही अर्थ है जो किसी आंग्लभाषी का बाइबल को न जानने का। यह भारत के अनेक राजनीतिक और बौद्धिक नेताओं का मूल स्त्रोत रही है। महात्मा गांधी, जिन्हें हम एक राजनीतिक की अपेक्षा जातीय सांस्कृतिक रूप में अधिक देखते हैं, इस के प्रतीक हैं। एक शताब्दी से कुछ ही पूर्व यूरोप और अमेरिका के विद्वान् भगवद्गीता से परिचित हुए। यह ग्रन्थ ज़र्मनी के वॉन हमबोल्ट और अमेरिका के इमर्सन जैसे विचार मनीषियों की निष्ठा का पात्र बन गया। अमेरिका के कुछ दार्शनिक और राजनीतिक सङ्गठन आज गीता के प्रति भारतीयों के सदृश ही पूज्य शुद्धि रखते हैं। पाश्चात्य देशों में ऐसे विद्वानों की संख्या बढ़ती जाती है, जो पाश्चात्य विचार-धारा को सर्वोत्कृष्ट समझते हैं।

परन्तु अब अनुभव करते हैं कि पूर्व के अन्य देशों के सदृश (उदाहरणार्थ चीन) भारतवर्ष ने भी सभ्यता, कला, साहित्य, चिन्तन यहां तक कि मानव संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में महान् सर्जनात्मक कृतियां प्रस्तुत की हैं। प्रत्येक शिक्षित नर-नारी को यह ज्ञात होना चाहिये कि भारत में ऐसी वस्तुओं का अस्तित्व है। सभ्यता स्वेज की सीमा पर ही समाप्त नहीं हो जाती और भारतीय साहित्य, भारतीय कला, भारतीय दर्शन, भारतीय सङ्गीत आदि आज भी जीवित हैं।

कुछ भारतीय साहित्य एवं कला की प्रवेश योग्य कृतियां ऐसी हैं जिन का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं और वह परिचय निश्चय ही बहुत आनन्ददायक और लाभप्रद है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति संस्कृत-भाषा की शिक्षा के बिना भारतवर्ष की सांस्कृतिक कृतियों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु यह ऐसी गम्भीर समस्या नहीं जैसी कि कल्पना की जाती है। यदि किसी की भाषा में भाषाशास्त्र-विषयक प्रवृत्ति न भी हो तो भी वह एक वर्ष में संस्कृत भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह सरल शैली में लिखे संस्कृत-साहित्य का रसास्वादन और आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर सके। यद्यपि ऐसा करते हुए उसे शब्दकोष की भी कुछ सहायता लेनी होगी।

निःसन्देह इस के लिये कुछ परिश्रम करना होगा। स्वान्तः सुखाय पाठक के ध्यान को आकृष्ट, तथा अध्ययन की प्रवृत्तियों को उत्साहित करने वाले साहित्य से किसी नव-शिक्षार्थी के प्रथम परिचय पाने पर उस की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अभिरुचि जाग जाती है और कठिनाइयों की गम्भीरता नष्ट हो जाती है।

मेरे विचार में भगवद्गीता, अन्य किसी भी संस्कृत ग्रन्थ की अपेक्षा, उपर्युक्त गुणों से अधिक विभूषित है। अधिकांश में यह सुबोध एवं सरल है। संस्कृत के प्रथम अथवा द्वितीय वर्ष के अध्ययन के उपरान्त एक विद्यार्थी, जिसने कि तीन अथवा चार अध्यायों के अध्ययन में सहायता प्राप्त की है और जो ग्रन्थ की शैली तथा प्रतिपाद्य विषय से भलि-भाँति परिचित हो गया है, वह बिना किसी शिक्षक तथा शब्दकोश की सहायता के इस पुस्तक का पारायण कर सकेगा। इस के साथ-साथ वह संसार की महान् धार्मिक पुस्तकों में से एक, जो कि भारतवर्ष की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली 'बाइबल' है, का परिचय प्राप्त कर रहा होगा। अध्ययन करते हुए, इस ग्रन्थ की प्रभावशालिता एवं महत्ता का ज्ञान लेना उस के लिये संभव होगा। इस के लिए उसे अपने धर्म परिवर्तन की आवश्यकता नहीं। गीता की सरलता, महिमा तथा उस में वर्णित माननीय प्रतिष्ठा इस बात को भलि-भांति स्पष्ट कर देगी कि भारतीय जनता का इस के प्रति, २०० वर्ष के पश्चात् अभी तक भी ज्यों का त्यों प्रभावशाली रहने वाला, इतना आकर्षण क्यों है। गीता में आकर्षण-शून्य भी अनेक अंश हैं, परन्तु क्या बाइबल में ऐसे अंश नहीं ? जिन के सम्बन्ध में भक्तों की यह आन्तरिक भावना होती है कि काश ! बाइबल में ये न होते।

("भगवद्गीता" नामक पुस्तक से उद्धृत)।

—

ज्ञातव्य बातें

१. विश्व भर में २,००० फुट से अधिक लम्बे कुल ७ रेलवे प्लेटफार्म हैं, जिन में से ५ भारत में हैं। लम्बाई की दृष्टि से उत्तर-पूर्वी रेलवे का सोनपुर का प्लेटफार्म दूसरे स्थान पर और दक्षिण-पूर्वी रेलवे का खड़गपुर का प्लेटफार्म तीसरे स्थान पर है।

२. भारत में प्रतिवर्ष ५५ करोड़ ५५ लाख पौंड तम्बाकू पैदा होता है और तम्बाकू उत्पादन में भारत का स्थान, अमरीका और चीन के बाद, तीसरा है।

३. भारत ने १९२८ में एमस्टर्डम में हुए ओलिम्पिक खेलों में पहली बार भाग लिया था। तब से अब तक हाकी के खेल में वही सदा विजयी रहा है।

४. भारत में चावल की खेती की जापानी पद्धति १९५३-५४ में अपनायी गयी थी। इस से चावल के उत्पादन मैं १९५३-५४ में १,३१, ३९५ टन, १९५४-५५ में ४,९६, ४०० टन और १९५५-५६ में ८,२८,१९० टन की वृद्धि हुई।

५. भारतीय समाचार-पत्र प्रति वर्ष लगभग ६०,००० टन न्यूज प्रिंट इस्तेमाल करते हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नीदरलैंड में संस्कृत का अध्ययन

प्रोफेसर जे० डब्ल्यू० डी० जोंग

नीदरलैंड में संस्कृत भाषा के अध्ययन के सम्बन्ध में आपको कुछ बताते हुए मुझे गर्व और प्रसन्नता का अनुभव होता है। मैं आल-इण्डिया रेडियो का अत्यन्त आभारी हूं, जिसने मुझे यह सुअवसर प्रदान किया।

डच लोग भारतीय संस्कृति में बहुत रुचि ले रहे हैं। इससे भी पहले सत्रहवीं शताब्दी में, जब डच व्यापारी दक्षिणी-भारत के समुद्र-तटों पर व्यापार कर रहे थे, उन की इस विषय में विशेष रुचि थी।

१६०९ में पुलीकट में पहली डच बस्ती की स्थापना हुई। यहाँ न केवल व्यापारियों को भेजा जाता था, बल्कि डच उपनिवेश-वासियों की आध्यात्मिक आवश्यकता का ध्यान रखने और ईसाई धर्म के उपदेशों के प्रसार के लिए पादरियों को भी भेजा जाता था।

इन पादरियों में से अब्राहन रोगेरियस नामक एक व्यक्ति का परिचय दो ऐसे ब्राह्मणों से हो गया जो पुर्तगाली भाषा बोलते थे। अपने दस वर्ष के पुलीकट-प्रवास-काल में रोगेरियस ने इन लोगों से प्राप्त जानकारी का सावधानी से संचय किया ताकि वह हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों का विस्तृत विवरण दे सके। उस के इस अध्ययन का विवरण, उसकी मृत्यु के दो वर्ष बाद, सन् १६५१ में प्रकाशित हुआ।

उस की पुस्तक में, जिस का अनुवाद जर्मनी और फ्रांसीसी भाषा में भी हुआ है, हिन्दू धर्म का विस्तृत विवरण प्रथम वार दिया गया है। अंग्रेज विद्वान् श्री वर्नैल ने १८९८ में इस पुस्तक की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

"प्राचीनतम होते हुए भी, दक्षिण भारतीय हिन्दू-धर्म का संभवतः यह अत्यधिक पूर्ण विवरण है। इस के अलावा, रोगेरियस पहला व्यक्ति था, जिस ने संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भर्तृहरि शतक' को यूरोप के पाठकों के लिए सुलभ किया। निःसँदेह यह अनुवाद शाब्दिक नहीं है, क्योंकि रोगेरियस को उन दो ब्राह्मणों पर निर्भर रहना पड़ता था, जो उसे पुर्तगाली भाषा में जानकारी देते थे।"

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में और भी कई पादरियों और अधिकारियों ने, अपने भारत-प्रवास-काल में प्राप्त हिन्दू जीवन के अनुभवों को शब्दवद्ध किया लेकिन मैं यहां उन के नाम और उन की सेवाओं का विवरण नहीं दूंगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं--सम्पादक ।

श्री मातुः सूक्तिसुधा

अनुवादक श्री पँ० जगन्नाथ वेदालङ्कार, प्रकाशक श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, मूल्य ।।।) ।

प्रस्तुत पुस्तक श्री अरविन्दाश्रम की संचालिका श्री माता जी के Words of the Mother नाम से अंग्रेज़ी में प्रकाशित दो भागों का संस्कृत में अनुवाद है । अनुवाद को मैंने मूल वचनों से मिला कर देखा और अत्यन्त शुद्ध पाया । संस्कृत अत्यन्त सरल, ओजस्विनी और परिष्कृत है । अनुष्टुप्, मन्दाक्रान्ता, आर्या, वसन्त, तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, उपजाति, आदि कई छन्दों का आश्रय किया गया है । भाव को अनुवाद में स्पष्टतया लाने का यत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है । अन्त में संस्कृत में एक विशेष विवरण देकर अभीप्सा उन्मीलनम्, रूपान्तरम् आदि शब्दों को संस्कृत पाठकों के लिए स्पष्ट किया गया है । श्री माता जी की ये उक्तियां जैसी अत्यन्त स्फूर्ति तथा शान्तिदायिनी हैं, सँस्कृत अनुवाद भी उन के ठीक अनुरूप हुआ है । हम पं० जगन्नाथ जी को इस सफलतापूर्ण प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देते हुए उन का अभिनन्दन करते हैं ।

--श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।

साहित्य-समीक्षा

गान्धी मार्ग—गांधी विचारधारा का त्रैमासिक पत्र जनवरी १९५७ सम्पादक—श्री एस्. के. जॉज. गांधी स्मारक निधि प्रकाशन विभाग (मणि भुवन लैबरनम रोड़ बम्बई ७) द्वारा संचालित पृष्ठ ७२ वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का १२ आने ।

महात्मा गान्धी एक जगद्विख्यात महापुरुष तथा विचारक थे । वे किसी नये दर्शन, मत या सम्प्रदाय के प्रवर्तक न थे जैसे कि इस पत्र के मुख पृष्ठ पर हीडन का स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय यह वाक्य दिया गया है कि "गान्धीवाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई मत या सम्प्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूं । तथापि उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों में जो विचार प्रकट किए थे उन को जानना जनता के लिए आवश्यक है । इस त्रैमासिक पत्र का कार्य गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष स्व० श्री बालगङ्गाधर खेर के शब्दों में 'गांधीवादी जीवन-प्रणाली को खुले तौर पर चारों ओर फैलाना और वर्तमान समस्याओं पर उसे चरितार्थ करना होगा । पत्र का यह प्रथम अङ्क हमारे सन्मुख है जिस में महात्मा गांधी जी की विचारधारा से सम्बद्ध १५ उत्तम प्रकाशित हुए हैं । इन में से श्री होरेस अलेक्जेंडर का गांधी और सर्वधर्म समभाव, बिहार के राज्यपाल श्री रङ्गराव जी दिवाकर का 'गांधीवादी अध्ययन' मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पट्टाभिसीतारामैय्या का 'गांधी और गांधीवाद' कुमारी मार्गरेट् बॉर का 'धार्मिक शिक्षा का गांधी मार्ग' श्री जी. रामचन्द्रन् का 'गाँधी से मेरी प्रथम भेंट' महात्मा जी के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

घनिष्ट मित्र और सहयोगी श्री एच् एस् मोलक का 'महात्मा गांधी का सेवाभाव' श्रीमती म्यूरियल् लेस्टर का 'गांधी का नेतृत्व' काका-कालेलकर का 'गांधी और भाषा समस्या' इत्यादि लेख विशेष उपयोगी और विचारोत्तेजक हैं। श्री रामचन्द्रन् ने अपने लेख में बताया है कि किस प्रकार सन् १९२४ में महात्मा गांधी जी के २१ दिनों के उपवास के दिनों में प्रार्थना रूप में उन के दर्शन से उन का दिल प्रज्वलित हो उठा और एक चमक की तरह उन के मन में इस सत्य का उदय हुआ कि दुनियां में परमेश्वर मौजूद है और वह मानवों की अन्त-रात्मा पर राज्य करता है। इस से पूर्व वे कट्टर नास्तिक थे। श्री होरेस अलेक्ज़ेंडर के लेख के ये शब्द उल्लेखनीय हैं कि 'मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस्लाम का सही अर्थ लगाना मेरे लिए आसान नहीं हुआ। जब मैंने कुरान शरीफ़ का अध्ययन धार्मिक श्रद्धा की भावना से करने का प्रयत्न किया तो उस का मुझ पर कोई असर नहीं हुआ यद्यपि नम्रतावश कोष्टक में उन्होंने लिख दिया है कि—(यह स्पष्ट है कि इस में मेरा ही दोष होगा) पृ० १०।

सामूहिक प्रार्थना को धार्मिक शिक्षा का गांधी मार्ग बताते हुये कुमारी मार्गरेट् ने अपने उत्तम लेख में ठीक ही लिखा है कि—'अगर इस्लाम से मतलब कुरान शरीफ को खुदा की सर्वश्रेष्ठ उक्ति समझना और हज़रत मुहम्मद को खुदा के आखिरी और श्रेष्ठतम पैगम्बर स्वीकार करना हो तो फिर दूसरे धर्म वालों में उस के प्रति बहुत ही कम भक्ति-भाव का निर्माण हो सकेगा। और अगर ईसाइयत से मतलब यह श्रद्धा हो कि ईसामसीह ही परम पिता (परमेश्वर) का पैदा किया हुआ एक मात्र पुत्र थे और उन का प्रायश्चि-त्तात्मक बलिदान ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग है, तो उस का असर भी केवल उन्हीं लोगों पर होगा जो लोग पहले से ईसाई बने हुए हैं या दूसरे सब धर्मों के गुणों से इन्कार कर के ईसाई धर्म का स्वीकार करने को तैयार हैं। अतः महात्मा गाँधी जी के शब्दों में लेखिका ने धर्म का यह लक्षण किया है जो आदमी के स्वभाव तक को बदल डालता है, जो मनुष्य को आन्तरिक सत्य के साथ अभेद रूप से बांध देता है और जो हमेशा परिशुद्ध बनाता रहता है। यह तो उस सर्वसाक्षी परमेश्वर से मार्ग-दर्शन मिलने का विश्वास है।' इत्यादि पृ० ३२।

इसी प्रकार अन्य लेख भी महात्मा गांधी जी की विचारधारा और उन के सन्देश पर उत्तम प्रकाश डालने वाले हैं। इस दृष्टि से हम इस पत्र का अभिनन्दन करते हैं। यह दुख की बात है कि भारतीय विद्वानों के लेख इस अङ्क में कम हैं और पाश्चात्यों के ही अधिक हैं जिस की शिकायत सम्पादक महोदय ने भी 'वास्तव में भारतीय मित्रों से लिखवाना मुश्किल होता है' जबकि गांधी के विदेशी प्रशंसक एवं अनुयायी पत्रोत्तर देने और लेख भेजने में बड़े तत्पर रहते हैं। इत्यादि शब्दों में की है। जहां महात्मा गांधी जी के अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वाक्य उद्धृत किये जाएं वहां उन का पूरा प्रतीक देना चाहिए। खेद है कि मुख पृष्ठ पर उद्धृत "गांधी वाद जैसी कोई चीज नहीं है और मैं अपने पीछे कोई मत या सम्प्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूं।" इस महत्त्वपूर्ण वचन का प्रतीक नहीं दिया गया। सम्पूर्णतया यह पत्र सब विचारकों के लिये उपयोगी और उपादेय है। शुद्ध, प्राय: सर्वत्र प्रचलित देवनागरी लिपि में ही यदि इस में लेख प्रकाशित किए जाएं और अिस अेक जैसे व्याकरण विरुद्ध विचित्र रूप न रहें तो अत्युत्तम होगा।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

उत्तराखण्ड का नकशा

प्रकाशक—रामेश्वर पुस्तकालय श्री चन्द्र जी का मन्दिर पो. ओ. कनखल (हरिद्वार) मूल्य ।।।)

२२ इंच × ३४ इंच आकार में मोटे कागज पर श्री स्वामी बुद्धि चन्द्र पुरी ने यह नकशा तैयार किया है। इस नकशे में उत्तराखण्ड के गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर आदि तीर्थ स्थानों को जाने के पैदल और मोटर के मार्ग दिखाए हैं। इस प्रदेश की नदियां और पगडंडियां भी इस मानचित्र में अङ्कित की गई हैं। उत्तराखण्ड के इन भागों में यात्रा करने वालों के लिए यह मानचित्र बड़ा उपयोगी है।

—रामेश वेदी।

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी विशेषाङ्क पर सम्मति

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी विशेषांक। सम्पादक समिति—सर्व श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति, शंकरदेव विद्यालङ्कार और रामेश वेदी। प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार। वार्षिक मूल्य ४)।

यह गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका है। इस विशेषांक में स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध में अनेक रोचक संस्मरण तथा ज्ञानवर्धक लेख दिए गए हैं। यत्र-तत्र उन के धर्मोपदेश भी दिए गए हैं। भारतीय संस्कृति को समझने के लिए इस में लेखों का चुनाव अच्छा हुआ है। छपाई-सफाई की दृष्टि से भी अङ्क सुन्दर है।

—उषावल्लभ, आज, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

आषाढ़ प्रारंभ हो चुका है और गुरुकुलोद्यान की कुटज-कलियाँ महकने लगी हैं परन्तु अभी तक वर्षा के आगमन का कोई चिन्ह नहीं दिखाई दे रहा है। बीच में कई बार आंधी और मेघों की चढ़ाइयां होती रहीं। तथापि उत्ताप में कोई कमी नहीं आई! प्रभात अवश्य सुहावने होते हैं पर दिन खूब तपर हे हैं। ऊपर पर्वतों पर वर्षा होने के समाचार आये हैं अतः नहर का पानी कुछ-कुछ गंदला होगया है। पावस-दूत कृष्ण चातक के कलरव प्रारंभ हो गये हैं, अतः वर्षा शीघ्र ही आनी चाहिए। आमों की मौसम अपने प्रकर्ष पर है। कुल की आम्रवाटिकाओं में दिन भर ग्राहकों की रौनक रहती है। लीचियाँ समाप्त हो चलीं।

विद्यालय-विभाग के छात्र अपनी मंसूरी यात्रा से लौट आये हैं। आषाढ़ के प्रारंभ से कुल में भी इन्फ्लूएंजा का प्रभाव फैल रहा है। छोटे छात्रों में कई छात्र इन्फ्लूएंजा से प्रभावित हैं, परन्तु चिन्ता जनक स्थिति नहीं है। रोक-थाम की व्यवस्थाएँ कर दी गई हैं। इन्फ्लूएंजा के लिए गुरुकुल फार्मेसी द्वारा निर्मित गुरुकुल चाय बहुत लाभप्रद सिद्ध हो रही है।

नवीन सत्र

दीर्घावकाश के बाद २० जून से कॉलेज विभाग की पढ़ाई नियम पूर्वक प्रारंभ हो चुकी है। विद्यालय विभाग की पढ़ाई प्रथम जुलाई से प्रारंभ होजायगी। छात्र यात्राओं से लौट आये हैं। पुस्तकालय का कार्य भी प्रारंभ होगया है।

नये भवन

आयुर्वेद महाविद्यालय के ऊपर के तल्ले पर जीव-विज्ञान प्रयोगशाला का भवन बन कर तैयार होगया है। नवीन सत्र से छात्रों की कक्षा वहीं लगा करेगी। विज्ञान-भवन की नींव भर चुकी है। वर्षा काल के पश्चात् भवन निर्माण का कार्य प्रारंभ हो जायगा।

संग्रहालय में नई वृद्धि

पक्षियों के रंगीन चित्र

गत मास संग्रहालय में पक्षियों के दो रंगीन चार्टों की वृद्धि हुई। इनमें संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में वर्णित निम्न पक्षियों को अपने असली रंगों में दिखाया गया है—श्येन, काष्ठकूट (कठफोड़ा), तीवर, गरुड़, कादम्ब, कारण्डन, क्रौंच और खञ्जन। इन चित्रों को ब्रह्मचारी कैलाश चतुर्दश श्रेणी ने श्री पं० शंकर देव जी विद्यालंकार की देख-रेख में बड़े प्रामाणिक रूप में तैयार किया है। इस से पहले गत वर्ष श्री शंकर देव जी ने कालिदास वर्णित पक्षियों के चार्ट तय्यार करवाने, पक्षियों की सही पहिचान करने, श्री सालिम अली व्हिस्लर तथा श्री कुमार धर्मकुमार सिंह (भावनगर) आदि पक्षीशास्त्रज्ञों की पुस्तकों से उनके रंगीन चित्र खोजने, इन पक्षियों की विशेषतायें प्रदर्शित करने वाले कालिदास के श्लोकों को ढूंढने तथा इन्हें सुलेख में पक्षियों के नामों के साथ चार्टों पर अंकित करने में बहुमूल्य सहयोग दिया था और इस प्रकार तय्यार किये गए तीन चार्टों में राजहंस, चक्रवाक, सारस, मयूर, सारंग, चातक, हारीत, बलाका, सारिका, कोयल, शुक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रौर पारावत को इनके ग्रसली रंगों में दिखाया गया है। इन रङ्गीन चार्टों से संग्रहालय की शोभा बहुत बढ़ गई है ग्रौर ये न केवल सामान्य दर्शकों के ग्राकर्षण का केन्द्र बन गये हैं, ग्रपितु संस्कृत-साहित्य के रसिकों तथा कलामर्मज्ञों की वाङ्मय में वर्णित पक्षियों का सजीव रूप में प्रदर्शित करने के कारण शिक्षा का उत्कृष्ट साधन बन गये हैं। इस का ग्रधिकांश श्रेय श्री पं० शंकरदेव जी को है, संग्रहालय इस से उन का ऋणी है।

उन का पोरबन्दर चला जाना संग्रहालय के लिए एक बड़ी ग्रपूरणीय क्षति है। ग्राशा है संग्रहालय को उन का बहुमूल्य सहयोग बाहर जाने पर भी मिलता रहेगा ग्रौर वे ग्रब गुजरात के पुरातत्व, इतिहास, लोक कला की बहुमूल्य वस्तुग्रों द्वारा संग्रहालय को समृद्ध बनाने की कृपा करेंगे।

आयुर्वेद परिषद् का उत्सव

पिछले दिनों गुरुकुलीय ग्रायुर्वेद परिषद् का उत्सव ग्रादरणीय गुरुवर श्री वैद्य धर्मदत्त जी के सभापतित्व में बड़े उत्साह से मनाया गया। विवरण में इस वर्ष की गई विशेष प्रगतियों का परिचय दिया गया। निम्नलिखित छात्र ग्रपनी विशेष उपलब्धियों के लिए सभापति द्वारा पुरस्कृत ग्रौर ग्रभिनन्दित हुये।

१. ब्रह्मचारी सुरेन्द्रकुमार भारद्वाज ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।
२. ब्र० रामदेव ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा में २ य स्थान प्राप्त किया।
३. ब्र० चन्द्रप्रकाश ने बोर्ड की प्रथम वर्ष की परीक्षा में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया।
४. ब्र० राजेश्वर भाटिया ने बोर्ड की तृतीय वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।
५. ब्र० नृपेन्द्रकुमार ने बोर्ड की तृतीय वर्ष की परीक्षा में तृतीय स्थान प्राप्त किया।

निम्नलिखित छात्रों ने परिषद् की उन्नति के लिए विशेष कार्य किए। तदर्थ उन का भी सार्वजनिक रूप से ग्रभिनन्दन किया गया। ब्र० सुरेन्द्रप्रकाश, ब्र० नृपेन्द्र कुमार, ब्र० राजेन्द्रनाथ, ब्र० हरिप्रकाश, ब्र० विष्णुदत्त, ब्र० सुरेन्द्र कुमार, ब्र० दीनदयालुसिंह, ब्र०

श्री राजेश्वर जी भाटिया मन्त्री, आयुर्वेदीय छात्र परिषद् जो भारतीय चिकित्सा परिषद् की तृतीय वर्ष की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रेमचन्द्र, ब्र० धनप्रकाश, ब्र० सुरेन्द्र मोहन, ब्र० योगेन्द्र कुमार।

परिषद् के अध्यक्ष और मन्त्री के रूप में उत्साहवर्धक कार्य करने के लिये क्रमशः ब्र० जयप्रकाश और ब्र० राजेश्वर को सन्मानित किया गया। रात्रि में परिषद् के सदस्यों ने पार्लमेंट, कवि-सम्मेलन और चारु वेशभूषा प्रतियोगिता के मनोरंजन कार्य-क्रम प्रस्तुत किए जो कि बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुए।

मान्य अतिथि

पिछले मास कई मान्य अतिथियों ने गुरुकुल विश्वविद्यालय का अवलोकन किया, जिन में केन्द्रिय मन्त्री श्री दातार जी, उत्तर प्रदेश के मन्त्री श्री हुकमसिंह जी तथा डेवलपमेंट कमिश्नर श्री भगवन्तसिंह जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर प्रदेश के आयुर्वेदीय विभाग के संचालक श्री कुलकर्णी जी भी आयुर्वेद कालेज का निरीक्षण करने कुल में पधारे। आपने नवनिर्मित जीव-विज्ञान की प्रयोगशाला और द्रव्यगुण संग्रहालय का अवलोकन कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

शोक वार्ता

दुःख का विषय है कि कुल के सुयोग्य स्नातक श्री आत्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार का २४ मई को अपने निवास स्थान गोरखपुर में अवसान हो गया। आप कई मास से बीमार चले आ रहे थे। गोरखपुर में अपनी सेवा-भावना और चिकित्सा-कार्य द्वारा आपने अच्छा यश संपादन किया था। आप सन् १९३३ में गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से स्नातक हुए थे।

कुल के योग्य स्नातक और दयानन्द आयुर्वेद कालेज जालन्धर के आचार्य श्री ओम्दत्त जी आयुर्वेदालङ्कार का पिछले दिनों एक मोटर दुर्घटना द्वारा देहावसान हो गया है। आप सन् १९३७ में गुरुकुल के स्नातक बने थे और शिक्षण-कार्य में आप ने अच्छी कीर्ति पाई थी। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक और भूतपूर्व सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री पं. जगन्नाथ जी विद्यालङ्कार का गत २५ जून को देहरादून में देहावसान हो गया।

उक्त तीनों स्नातक बन्धुओं के आत्मीय जनों के प्रति कुलवासी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। इन के अतिरिक्त 'गुरुकुल पत्रिका' के संयुक्त सम्पादक श्री रामेश वेदी के सुपुत्र ब्र. सुरेश का गत २७ जून को आकस्मिक दुर्घटना से देहरादून में देहावसान हो गया। वह बड़ा होनहार सुशील बालक था। उस के शोक में विद्यालय में सभा की गई। भगवान् दिवंगत आत्माओं को शांति और सुगति तथा उन के सब सम्बन्धियों को धैर्य प्रदान करे।

—

सूचना

जो संरक्षक विद्यार्थियों के प्रवेश के समय १००) इमारत फण्ड का इकट्ठा जमा न करवा सकें वे प्रति मास २) भी जमा करवा सकेंगे।

आचार्य
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२५
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २, भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरत्न ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुन:प्याज़ श्री रामेश वेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी. के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फार्मेसी के दो उपहार

इन्फलयूंएन्जा से बचने के लिये

गुरुकुल चाय का सदा प्रयोग करें। यह चाय दैनिक प्रयोग के लिये उत्तम है। इस से खांसी, नज़ला, जुकाम, अङ्गों का टूटना आदि अनेक रोगों को आराम मिलता है।

मूल्य १ छटाँक ४० नये पैसे।

रक्त शोधक

फोड़े, फुन्सी व त्वचा रोगों में लाभप्रद है। यह रक्त को शुद्ध कर के शरीर को नीरोग बनाता है।

मूल्य ३)०० शीशी।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश वेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : श्री [illegible] हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

दीक्षान्त वेदी पर श्री देशमुख के साथ कुलपति श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, सभा, प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द जी आदि ।

वर्ष ९ ★ वैशाख
अङ्क ९ २०१४

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

पूर्णाङ्क १०५ ★
अप्रैल १६५७

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

भारतीय संस्कृति का विकास तथा ह्रास	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
वेद प्रचार में बाधाएं	श्री मनसुखा
अमेरिका में भारतीय संस्कृति का अध्ययन	श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति--६

भारतीय इतिहास का तीसरा युग

इन्द्र विद्यावाचस्पति

भारतीय इतिहास का सबसे पहिला युग वह था, जब आर्य लोग हिमालय की अधित्यकाओं पर निवास करते थे, उस युग को हम आदि युग, पूर्व युग अथवा वेद युग के नाम से पुकार सकते हैं, वह भारत में आर्य जाति का आदि काल था। उस समय के मंत्र-द्रष्टा ऋषियों को हमारे शास्त्रों में 'पूर्व ऋषय' इन शब्दों से निर्दिष्ट किया गया है, वह हमारे इतिहास का उषा काल था, नया जीवन, नई आशा और नया उत्साह जाति की नस नस में व्याप्त था।

उस आदि युग का अन्त और दूसरे युग का प्रारम्भ उस समय हुआ जब वैदिक ऋषि और आर्य विजेता पर्वतों से उतर कर सप्त-सिंधु प्रदेश में फैल गये, उस समय उनके जीवन आदि काल की स्फूर्ति से युक्त थे, जीवन संबंधी सब धारणायें सरल और उत्साह पूर्ण थीं, उनकी नसों में जीतने और आगे बढ़ने के उत्साह से भरा हुआ रक्त वह रहा था, वह हमारे इतिहास में सत्ययुग 'सतयुग' कहलाया।

उसके पश्चात् तीसरा युग आया, उस समय राजस्थान और सिंध समुद्र की सतह से ऊपर आ चुके थे, उत्तर और दक्षिण में स्थल का रास्ता खुल चुका था, यद्यपि अभी देश का बहुत सा दक्षिणी भाग अभी पूरी तरह प्रकाश में नहीं आया था, तो भी ऋषियों और राजाओं का विरलः संचार लंका तक होता रहा था, ऋषि लोग अपनी तपस्या के लिए एकान्त जंगलों की खोज में किष्किधा तक पहुंच गये थे और रावण स्वर्ण को जीतने की लालसा से प्रेरित होकर हिमालय तक हो आया था, उस समय यद्यपि जीवन की उतनी सरलता नहीं थी जितनी सत्ययुग में थी, तो भी जीवन की शुद्धता बहुत कुछ बनी हुई थी, उस समय के जीवन का एक आदर्श हम राम राज्य की अयोध्या के वर्णन में देख चुके हैं, वह युग हमारे इतिहास में 'त्रेता' युग के नाम से निर्दिष्ट हुआ।

अब हम 'द्वापर' युग पर पहुंचते हैं, उस युग का चित्र हमें महाभारत में मिलता है, 'द्वापर युग' महा भारत युद्ध के साथ समाप्त होता है, उसके पश्चात् 'कलियुग' आरम्भ होता है।

आर्यावर्त से भारतवर्ष

द्वापर युग में हम अपने देश को आर्यावर्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से भारतवर्ष के रूप में परिवर्तित हुआ पाते हैं, इस परिवर्तन में कई चीजें विशेष महत्व रखती हैं, पहली चीज तो यह है कि जहां 'आर्यावर्त' यह नाम देश के साथ आर्य जाति के सम्बन्ध को विशेष रूप से सूचित करता है, वहां 'भारतवर्ष' यह नाम विशुद्ध राजनीतिक है, 'भारत' शब्द की यों तो अनेक व्युत्पत्तियां की गई हैं, परन्तु सबसे अधिक संभव और उपयुक्त व्युत्पत्ति यह है कि सम्राट् दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से देश क नाम 'भारत' और देश से सम्बन्ध भूखण्ड का नाम 'भारत-वर्ष पड़ा प्रतीत होता है कि सम्राट् भरत ने अफगानिस्तान से लेकर लंका तक और सौराष्ट्र से लेकर प्राग्ज्योतिष 'आसाम' तक के सब प्रदेशों को जीत कर देश में चक्रवर्ती राज्य की स्थापना कर दी थी, उसी समय से इस सारे प्रदेश का नाम भारतवर्ष हुआ, यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि अफगानिस्तान और लंका उस समय के भारतवर्ष सें सम्मि-लित थे, अफगानिस्तान उस समय गान्धार देश कहलाता था, वाल्हीक और यवन उससे भी उत्तर में निवास करते थे, ये सब भारत-वर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत समझे जाते थे, इस प्रकार द्वापर युग में भारतवर्ष राजनैतिक दृष्टि से अपनी चरम सीमाओं तक पहुंच चुका था।

इस युग की दूसरी विशेषता यह है कि इस में हम भारत की सीमाओं के अन्दर बसी हुई अनेक जातियों के वर्णन पाते हैं। महा-भारत के पढ़ने से यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य जाति में और उन जातियों में परस्पर अन्तर्जातीय विवाह होते थे और उन विवाहों की सन्तान ऋषि और राजा को पदवी को प्राप्त कर सकती थी। उस समय तक जातियों का बहुत कुछ मिश्रण हो चुका था। हम कह सकते हैं कि उस समय तक भारतवर्ष मुख्य रूप से एक राजनैतिक राष्ट्र बन चुका था।

देश अनेक खण्डों में बटा हुआ था, प्रत्येक खण्ड में अपना-अपना अलग शासन था, उस समय अनेक शासन प्रणालियां प्रचलित थीं। कहीं गणतन्त्र 'लोकतन्त्र' राज्य था, तो कहीं राजतन्त्र, किसी-किसी जगह राजसत्ता दो व्यक्तियों के हाथ में रहती थी, तो कई स्थानों पर राजा था ही नहीं। यादव लोग राजा के बिना ही अपना प्रबन्ध चलाते थे। अनेक शासन प्रणालियों और शासकों के होते हुए भी देश का एक राजनैतिक केन्द्र विद्यमान था। जो राजा सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न और प्रभाव शाली होता था, वह सम्राठ् पद से विभूषित किया जाता था। जरासन्ध अपने समय का सम्राट् था। उसे परास्त कर के सम्राट् पदवी पांडवों ने प्राप्त की, अनेकता में एकता भारत की पुरानी विशेषता रही है, वह महाभारत काल में भी विद्यमान थी।

धार्मिक और सामाजिक जीवन

द्वापर युग का धार्मिक और सामाजिक जीवन त्रेता की अपेक्षा बहुत अधिक पेचिदा और घटिया हो गया था, धन, अस्त्र, शस्त्र और सांसारिक विभूति में बहुत वृद्धि हो गई

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थी। साथ ही सभी वर्णों के धार्मिक और सामाजिक जीवनों में शिथिलता आ गई थी। द्रौणाचार्य जैसे ब्राह्मण को हम यह कहता हुआ पाते हैं—

अर्थस्त पुरुषो दासः दासस्त्वर्थो न कस्यचित।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

हे महाराज, मनुष्य धन का दास है, धन किसी का दास नहीं। मैं क्या करूं ? मैं धन द्वारा कौरवों के हाथों में बंधा हुआ हूं।

जो ब्राह्मण यह वाक्य कहता है, उसके देखते-देखते उसके शिष्य लोग आपस में लड़ कर देश और कुल का नाश कर लें तो कोई आश्चर्य नहीं। उस समय के क्षत्रिय भी राम और भरत के आदर्शों से बहुत गिर चुके थे। ऐश्वर्य में जितनी ही वृद्धि हो गई थी, चरित्र बल में उतनी ही न्यूनता आ गई थी।

विभूति की पराकाष्ठा

हमें अपने पुराने ऐतिहासिक ग्रन्थोंकी प्रत्येक बात अविश्वास योग्य समझने की आदत सी पड़ गई है, यह प्रवृत्ति हमारे अन्दर विदेशी लेखकों के प्रभाव से उत्पन्न हुई है। उन लोगों ने जब भारतवासियों को भयानक दासता के गढ़े में पड़ा देखा तो उनके पूर्वकालीन गौरव को केवल कल्पना की उपज समझ कर उस पर अविश्वास प्रकट् किया, हम लोग उन की विभूति से इतने चकाचौंध में आए कि उन के हर एक वाक्य को ब्रह्मवाक्य की तरह प्रामाणिक मानने लगे, उन्होंने कहा कि पुराने ऋषि मूर्ख चरवाहे थे, तो हमने मान लिया कि ठीक है। उन्होंने लिखा कि रामायण और महाभारत में लिखी सब बातें कपोल कल्पित हैं, हमने उसे भी स्वीकार कर लिया। रामायण और महाभारत में पुष्पक अस्त्र शस्त्र और मणि मुक्ताओं का जो वर्णन है, उसे भी हमने केवल गप्प समझ कर तिरस्कार के योग्य मान लिया। यह हमारी भूल थी। आज हम अपनी आंखों से देख रहे हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क सांसारिक शक्ति और विभूति की कितनी अद्‌भुत चीजें उत्पन्न कर सकता है, यदि उसे खुला अवसर मिल जाय। और पश्चिम के देशों में वही सब चीजें बनाई जा रही हैं, जिन का वर्णन हम महाभारत में पढ़ते हैं। उन सब वस्तुओं का मनुष्य के जोवन पर प्रभाव भी वैसा ही हो रहा है, जैसा महाभारत के समय में हो रहा था। यदि हम महाभारत के समय के भारतवासियों और वर्तमान समय के पाश्चात्य लोगों की चरित्र-सम्बन्धी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तुलना करें, तो शारीरिक और मानसिक भेद तो रहेगा, परन्तु वस्तुत्व का भेद नहीं मिलेगा। राजनैतिक और आर्थिक विभूति की पराकाष्ठा और मानवीय जीवन की घोर शिथिलता महाभारत के समय के विशेषता थी, वही २० वीं शताब्दी के पाश्चात्य जगत् की विशेषता है। उस समय हमारे देश में द्वापर का अन्त और कलयुग का आरम्भ हो रहा था, इस समय पश्चिम में द्वापर का अन्त और कलयुग का प्रारम्भ हो रहा है। हमें यह निश्चय करना है कि हम अपने देश को कलियुग के साथ नत्थी करेगें अथवा अपना पृथक मार्ग निकालेंगे ?

इस प्रश्न पर भावी भारत के भाग्य विधाताओं को गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी

श्री फतहचन्द्र शर्मा "आराधक"

स्वामी जी की शताब्दी के अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी के अतीत काल की स्मृति हरी भरी हो जाती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज स्वामी दयानन्द के मार्ग के जिन दिनों दिव्य पथिक बन गये थे उन दिनों ऋषि के सन्देश का स्वर सारे भारत में गुंजा देना चाहते थे। पंजाब और भारत के अन्य प्रांतों में तो वे आर्य समाज के आन्दोलन को प्राणवाण बना रहे थे। उधर वे लार्ड मैकाले द्वारा देखे गए स्वप्न से चिन्तित थे। लार्ड मैकाले चाहता था कि भारतीय युवक और उन की आत्मा पर अंग्रेज़ी शिक्षा और उसके वातावरण का प्रभाव इतना पड़ जाय कि वे पूरे अंग्रेज़ी रङ्ग में रम जाय। लार्ड मैकाले के स्वप्न को और उस के परिणाम को सोच कर देश में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज थे जिन का हृदय विचलित हो गया। उन्हें लगा इस देश की संस्कृति और सभ्यता को विनष्ट करने के लिए लन्दन के भस्मासुर मैकाले ने यह जाल फेंका है। अगर इस जाल में भारत फंस गया तो यहां भी यूरोप की सभ्यता और संस्कृति का बोलबाला रहेगा।

स्वामी जी के हृदय में एक वेदना थी। यह वेदना उन देश भक्तों की सी नहीं थी कि उन्होंने कुछ कालेज चलाए, बिलकुल अंग्रेज़ी ढङ्ग पर। बनारस में भी सैंट्रल हिन्दू कालिज उन दिनों खुला किन्तु उसके स्वयं कर्ता-धर्ता विदेशी थे। इस कालेज की छात्र-सभा के प्रधान एक विदेशी ही थे। उन दिनों एक कुचक्र चला जा रहा था और अंग्रेज़ अपनी जड़ें इस देश में मज़बूती के साथ गाड़ने के लिए जो भी काम कर रहे थे उस का सार यही होता था कि भारतीय उन के सामने झुकें उन को सर्वोपरि मानें। यह समझ कर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने भारत की प्राचीनतम शिक्षा प्रणाली के आदर्श पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। गुरुकुल कांगड़ी देश की वह राष्ट्रीय शिक्षण संस्था है जिसने देश को राष्ट्र-सेवा, साहित्य-सेवा, अन्वेषण एवं शोध के क्षेत्र में बहुत से विद्वान् दिए हैं। हिन्दी, हिन्दी पत्रकार कला के लिए भी गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने जो काम किया है वह भुलाया नहीं जा सकता।

स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संस्थापित अर्जुन दैनिक और साप्ताहिक पत्र ने देश में कितने विचारक, लेखक और पत्रकार पैदा किये, यह हिन्दी संसार स्वयं जानता है।

अर्जुन जहां निर्भीक पत्र रहा वहां उसने बहुत से देशहित आन्दोलन चलाए। इन आन्दोलनों में उस के संचालक—सम्पादक पण्डित इन्द्र विद्यावास्पति को कई वार जेल जाना पड़ा। अर्जुन के सम्पादक श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार, श्री रामगोपाल विद्यालङ्कार, और श्री जयन्त विद्यावाचस्पति, श्री लेखराम जी बी. ए. अर्जुन की सेवा करते हुए जेल गए। एक प्रकार से जहां गुरुकुल कांगड़ी राष्ट्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के दीवाने पैदा करता दूसरी ओर अर्जुन देश-देश को जगाता। उस के मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां आयी पर अर्जुन किसी के आगे झुका नहीं।

गुरुकुल कांगड़ी के पिछले ५८ वर्षों के साथ एक इतिहास जुड़ा है। जिन दिनों गुरुकुल खोलने की चाह स्वामी जी के हृदय में थी उन दिनों स्थान नहीं मिल रहा था। स्वामी जी के संकल्प की बात नजीवाबाद के उदारमना व्यक्ति मुंशी अमनसिंह जी के हृदय में घर कर गई। मुंशी जी जन्मना वैश्य थे किन्तु थे दूर दर्शी। उन्होंने इस महान् कार्य के लिए अपनी गङ्गा के किनारे भूमि, स्वामी जी को भेंट करनी चाही और एक पत्र स्वामी जी को इस सम्बन्ध में लिखा। इस पत्र को स्वामी जी ने किसी विरोधी का व्यंग समझा। बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद मुंशी जी ने दूसरा पत्र लिखा। इस पत्र के कुछ दिन बाद स्वामी जी की ओर से एक व्यक्ति नजीवाबाद आया और उन्होंने उस स्थल का निरीक्षण किया जो भूमि मुंशी अमनसिंह जी गुरुकुल के लिए देना चाहते थे। कुछ दिन बाद गङ्गा के किनारे बिजनौर जिले की सीमा पर स्थित श्यामपुर कांगड़ी नाम के ग्राम की भूमि में गुरुकुल खोल दिया गया।

बिजनौर में इस गुरुकुल के खुलने से जहां सारे देश का हित हुआ वहाँ बिजनौर के साथ स्वामी श्रद्धानन्द, प्रो० इन्द्र तथा अन्य कुछ गुरुकुल के सम्बन्धित व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ा।

मुंशी अमनसिंह जी तो १९२६ में अपना नश्वर शरीर छोड़ गए और १९२४ की गङ्गा की भीषण बाढ़ में गुरुकुल बदल कर सहारनपुर जिले में चला गया जहां आजकल अच्छी सेवाओं से देश को उपकृत कर रहा है।

बिजनौर में गुरुकुल खोलने से इस जिले का विशेष उपकार हुआ। जिले में कई मान्य विद्वान् गुरुकुल में अध्यापक रहे। इन में सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, स्व० पं० भवानी प्रसाद जी के नाम उल्लेखनीय हैं। स्व० पद्मसिंह शर्मा गुरुकुल कांगड़ी में साहित्य के अध्यापक भी रहे और स्वामी जी के कुछ पत्रों के सम्पादक में भी योग दिया। कुछ कारणों से जब गुरुकुल और महाविद्यालय का झगड़ा हुआ उन दिनों कुछ मन मुटाव भी रहा किन्तु पं० पद्मसिंह शर्मा का हृदय सदा स्वामी श्रद्धानन्द के गुणों का प्रशंसक रहा। यह इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस दिन स्वामी जी का बलिदान हुआ उन दिनों पद्मसिंह जी अपने ग्राम नायक नगला में थे। नायक नगला से उनके परिवार का एक व्यक्ति चांदपुर में मङ्गल की पैंठ के लिए आया था। उसने वहां स्वामी जी के बलिदान का समाचार सुना और गांव लौटने पर पण्डित जी को सुनाया। सुनते ही पद्मसिंह जी मूर्छित हो गए और लगातार अपने स्वाध्याय की कोठरी को बन्द करके रोते रहे। बाद में उन्होंने स्वामी जी के सम्बन्ध में श्रद्धांजलि स्वरूप जो लेख लिखा था उसे आज भी पढ़ कर आंसू आ जाते हैं। स्व० पद्मसिंह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जी शर्मा भी इस समय संसार में नहीं है और आगामी सात अप्रैल को उन की २५ वीं श्राद्ध तिथि है। स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने हिन्दी के उन्नयन में जो सराहनीय कार्य किया है उसके लिए भी दोनों सदा स्मरण किए जाएंगे। स्वामी जी और शर्मा जी साहित्य सम्मेलन के सभापति रहे। शर्मा जी ने मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक भी सर्व प्रथम पाया। इस प्रकार गुरुकुल के संसर्ग से यह सब कार्य हुआ। गुरुकुल कांगड़ी के दूसरे अध्यापक पं० भवानी प्रसाद जी ने अपना पुस्तकालय भी गुरुकुल को सौंप दिया। उनका सारा जीवन आर्य-समाज और गुरुकुल कांगड़ी की सेवा में बीता। अपनी निवास भूमि हल्दौर में रह कर अपने अग्रज स्व० लाला ठाकुर दास के सहयोग से शिक्षा, हरिजनोद्धार, महिला जागरण में भारी काम किया। उनके लिखे दो ग्रन्थ आज भी देश का मार्ग दर्शन कर रहे हैं। एक पर्वपद्धति जो सारे भारत के आर्य जन का प्रिय ग्रन्थ है दूसरा बिजनौर मण्डल का इतिहास यह क्षेत्रीय जानकारी कराता है। आपने अपने पुत्रों को भी गुरुकुल की सेवा में लगाया। भवानीप्रसाद जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामगोपाल विद्यालङ्कार भारत के हिन्दी पत्र सम्पादकों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। दूसरे पुत्र श्री मदनगोपाल विद्यालङ्कार भी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक हैं।

इसके अतिरिक्त मुंशी अमनसिंह जी के दौहित्र श्री नन्दकिशोर विद्यालङ्कार तथा गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी उपाध्याय वागीश्वर विद्यालङ्कार भी बिजनौर में जन्म लेने के कारण गुरुकुल की छत्र छाया में यशस्वी जीवन बिता रहे हैं।

इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द के इस अमर वृक्ष ने बिजनौर के बहुत से लोगों को शिक्षा-दीक्षा देकर सुयोग्य बनाया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की शताब्दी पर एक बार उनकी बिजनौर की उपेक्षित भूमि से सम्बन्ध होने पर जो कृपा भाव रहा वह याद हो आता है। स्वामी जी और उन के सहकर्मी सभी जिन महानुभावों ने जो राष्ट्र के जागरण में कार्य किया उन के प्रति मेरी श्रद्धांजलि अर्पित है।

उस अमृत भरी गोद में बैठ सकते हो

हे मर्त्यलोक के निवासियो ! क्या तुम्हारी निर्बल शक्तियें तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा सकती हैं? छोड़ो इन व्यर्थ चेष्टाओं को और निवास के साथ अपने मन तथा अपने आत्मा का सारा प्रेम उसकी ओर छोड़ दो; भक्ति से ही तुम उसकी ओर पहुंच सकते हो। क्या तुम देखते नहीं कि बच्चे के हाथ पसारते ही माता उसे गोद में ले लेती है। इसी तरह वह जगदम्बा भी तुम्हारे लिए अपनी गोद को हर समय खोले बैठी है। तुम्हारे हाथ पसारने की देर है कि तुम उस अमृत भरी गोद में बैठ कर निश्चिन्त हो सकते हो।

—स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मोपदेश।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धांजलि[1]

डा० सुखदेव

स्वामी श्रद्धानन्द जी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर मुझे गुरुकुल के इस उत्सव में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। सन् १९०१ से लेकर १९२६ में उन का बलिदान होने तक मैं उन के साथ रहा और उन के सिपाहियों में रहा, इसलिए मुझे उन के महान् व्यक्तित्व को निकट से देखने-भालने का और उन से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

स्वामी जी के जीवन के बहुमुखी कार्यों पर कुछ कहना लिखना किसी अच्छे वक्ता या लेखक का काम है। पर मैं न वक्ता हूं न लेखक। फिर भी मैंने इस अवसर पर अपने भाव-सुमन चढ़ाने का साहस किया है, यह स्वामी जी के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा और निष्ठा का ही प्रतीक है। मैंने अपने कुछ संस्मरण स्वामी जी के स्मृति-ग्रन्थ के लिए भी लिखकर दिए हैं। उन के सम्बन्ध में मेरे हृदय में भावों का इतना बवंडर खड़ा होता है कि उसे सिलसिलेवार प्रकट करना और वह भी थोड़े से समय में मेरे लिए असम्भव है। वस्तुतः यह काम जीवन-चरित लेखकों का है। स्वामी जी की जीवनी लिखने का काम तो उन के सुपुत्र पण्डित इन्द्र जी या गुरुकुल के अन्य स्नातक कर सकते हैं और उन्होंने किया भी है।

१. श्रद्धानन्द शताब्दी पर गुरुकुल की पुरानी भूमि में सम्पन्न सम्मेलन में दिया गया भाषण।

स्वामी जी का पहला नाम लाला मुंशीराम जी था, फिर महात्मा मुंशीराम हो गया और सन्यास लेने के बाद वे स्वामी श्रद्धानन्द बने। असल में स्वामी जी इस नाम के लिए जीवन भर अपने आप को तैयार करते रहे थे। वे जिस किसी काम को एक बार नाप-तोल के बाद सही समझ लेते थे, फिर उसे पूरा करने में पूरी श्रद्धा के साथ जुट जाते थे और किसी विरोध या बाधा की परवाह नहीं करते थे। गङ्गा के पार बीहड़ जङ्गलों में गुरुकुल की स्थापना करना उनकी इस अगाध निष्ठा और दृढ़व्रती होने का एक सबूत है।

स्वामी जी के जीवन से लाभ उठाने का सुयोग मुझे तभी से मिला जब मैं लाहौर में मेडिकल कालेज में पढ़ता था। उनके व्याख्यान आर्य-समाज में हुआ करते थे और मुझे उनके सुनने की बहुत उत्सुकता रहती थी। महात्मा मुंशीराम जी शुरू से ही आर्य-समाज में नेता के रूप में सामने आये। वे नेता के लिए आचरण का पवित्र होना बहुत आवश्यक मानते थे। यह कहना अनुचित न होगा कि उन पर महर्षि दयानन्द के जीवन की गहरी छाप पड़ी थी और वे उनके ग्रन्थों से बेहद प्रेम करते थे। महात्मा मुंशीराम जी आर्य-समाज के सिद्धांतों के प्रचार के लिए स्वामी जी के साहित्य को प्रमुख साधन समझते थे, इसी कारण महात्मा मुंशीराम जी ने अपने पत्र 'सद्धर्म प्रचारक, को उर्दू से हिन्दी में किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और उस के जरिए आर्य-समाज के सिद्धान्तों की जोरदार पैरवी की।

महर्षि दयानन्द के समय देश में अंग्रेजी राज था और देश पूरी तरह गुलाम था और गुलामी की सब बुराइयां जनता में व्याप्त थीं। स्वामी जी ने जनता के उद्धार के लिये आर्य-समाज की स्थापना की थी, पर उन के संदेश को आगे के लिए किसी सच्चे अनुयायी और देशप्रेमी की आवश्यकता थी। महात्मा मुंशीराम जी ने अपनी लगन और त्याग व तपस्या से उस स्थान को ग्रहण किया। आर्य-समाज में तब पढ़े लिखे विचारक लोग तो थे, पर उन में बहुत से सरकारी नौकर भी थे जो आर्य-समाज को राजनीति से अलग रखने के पक्षपाती थे। उन में अंग्रेजी सरकार का कोपभाजन बनने की हिम्मत न थी, इस लिए वे यही दलील देते थे कि आर्य-समाज का राजनीति और शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं, उसे तो सिर्फ धर्म का प्रचार करना चाहिए। महात्मा मुंशीराम जी इस बहस में तो नहीं पड़े, पर उन्होंने असली तौर पर इस बात का खण्डन गुरुकुल कांगड़ी जैसी राष्ट्रिय शिक्षा-संस्था खोल कर किया। वे देश की सर्वतोमुखी उन्नति के लिए सदाचार, शिक्षा और राजनीतिक स्वाधीनता सभी को आवश्यक और परस्पराश्रित मानते थे। महात्मा मुंशीराम जी ने अपने मार्ग को पूरी श्रद्धा के साथ चुना था, इस लिए उन्होंने गुरुकुल की स्थापना अपने घर-बार की मोह-ममता छोड़ कर यहां गङ्गा के किनारे जंगलों में की थी और गुरुकुल में सबसे पहले अपने दोनों पुत्रों को भी प्रविष्ट किया था। सदाचार को ले कर वे जो व्याख्यान देते थे उन में उनके जीवन की पूरी छाप रहती थी और इसी लिए उन के श्रोताओं चाहे वे किसी भी मत के मानने वाले हों व अनुयायियों पर गहरा असर भी होता था। जब महात्मा जी कुरबानी देने वालों में सब से आगे रहते थे तो और लोगों पर उन का असर क्यों न होता?

सन् १९०९ में पटियाला के राजा की नाबालिगी का फायदा उठा कर अंग्रेज सरकार ने आर्य-समाज की उभरती हुई शक्ति को कुचलने का यत्न किया तो महात्मा मुंशीराम जी ने अपने जिस साहस और दूरदर्शिता का का परिचय दिया वह आर्य-समाज के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेंगे। सरकार ने सब आर्य-समाजियों को पकड़ कर एक कैम्प में डाल दिया था और आर्य-समाज मन्दिर पर ताला डाल दिया था। आर्य-समाज को राजद्रोही संस्था प्रमाणित करने के लिए सरकार ने मुकदमे का जोरदार नाटक रचा था। यह मुकदमा कई महीने चला और फिर प्रमुख आर्य-समाजियों को रियासत से बाहर निकल जाने का हुक्म देकर मुकदमा उठा लिया गया था। इस मुकदमे में महात्मा मुंशीराम जी ने आर्यों की पैरवी करने के लिए बड़े-बड़े एडवोकेटों तक दौड़-धूप की और उन की मुंह मांगी फीसें देने का भी पूरा यत्न किया पर कोई सामने आने को तैयार नहीं होता था। आर्य-समाजी भी सरकारी कोप का शिकार होने से बचने के लिए समाज की सदस्यता से अपने नाम कटाने लगे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थे। तब महात्मा जी ने आर्यसमाजियों को बड़े ओजस्वी शब्दों में कहा था—"यदि तुम से कहा जाये कि अपने परमात्मा और उस की पवित्र वाणी वेद से विमुख हो कर ही प्रजा-धर्म का पालन हो सकता है तो तुम स्पष्ट कह दो कि जिस आत्मा पर संसार के चक्रवर्ती राजा का भी अधिकार नहीं हो सकता,उसे बेचने के लिए हम तैयार नहीं हैं। जो लोग वैदिक धर्म का गौरव नहीं समझते उन कायरों को आर्यसमाज से अलहदा हो जाना चाहिए।"

पटियाला से जिन आर्य सज्जनों को निर्वासित किया गया उन्हें महात्मा जी ने गुरुकुल में नियन्त्रित कर पनाह दी। उन का स्वागत किया और उन को गुरुकुल की सेवा के लिए अभिसिक्त किया। इन में लाला नन्दलाल जी, मुरारी लाल जी मास्टर, लक्ष्मणदास जी जैसे लोग भी थे, जो आर्यसमाज के सच्चे सेवक थे। शेष कुछ आर्यसमाजी महापुरुषों ने दिल्ली में जा कर आर्यसमाज का कार्य सम्भाला। उन की सेवाओं से समाज की बड़ी उन्नति हुई। पटियाला में महात्मा मुंशीराम जी के आगे आने से आर्यसमाज की प्रतिष्ठा देश में खूब बढ़ी और यह अनुभव किया गया कि सरकार का सही तौर पर मुकाबला करने वाली कोई संस्था है तो वह आर्यसमाज ही है। आर्यस-माज पर ब्रिटिश सरकार ने कड़ी नजर रखनी शुरू की और उसी सिलसिले में भारत के वायसराय लौर्ड चेम्सफोर्ड और संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मेस्टन आर्यसमाज की संस्था गुरुकुल को स्वयं देखने आये। वे असक्त में स्वामी जी की वीरता लेने के ध्येय से आए थे परन्तु स्वामी जी की निर्भयता आदि गुणों से प्रभावित हो कर गए।

महर्षि दयानन्द ने आर्य-समाज को सारे संसार का उपकार करने का उद्देश्य ले कर स्थापित किया था, पर वे स्वयं हिन्दू जाति से आए थे और वेद भी हिन्दू जाति के लोगों में ही माने जाते हैं। इस लिए स्वभावतः उन्होंने अपना काम हिन्दू जाति से ही शुरू किया। उनके बाद आर्य समाज में प्रविष्ट होने वाले लोगों को साम्प्रदायिकता की दलदल से बाहर निकालने का काम महर्षि के सच्चे अनुयायी महात्मा मुंशीराम जी ने किया। उन्होंने गुरुकुल में ब्रह्मचारियों को १४ वर्ष तक बिना किसी जाति या सम्प्रदाय के भेदभाव के एक साथ बैठ कर खाने-पीने का अनूठा परीक्षण सफल कर के दिखाया। गुरुकुल में छूतछात और संकीर्ण साम्प्रदायिकता को कभी स्थान नहीं दिया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस का बहुत आदर करते थे, पर उन्हें उस के तौर-तरीकों पर मतभेद था। वे राजनीति, धर्म और समाज में ऊंचे आचरण व नैतिकता को विशेष महत्त्व देते थे। इसलिए वे उसके राजनीतिक नेताओं का आदर करते हुए भी आर्य-समाज को ही देश के लिए अधिक उपयोगी और लाभदायक समझते थे। जब तक वे जीवित रहे, अपने चरित्र को ऊंचा रख कर आर्य-समाज को भी देश के लिए कुर्बानी करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में आगे बढ़ाते रहे। आर्य-समाज के भीतर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी जी के विरोधियों की कमी नहीं थी, पर बहुमत सदा स्वामी जी के साथ ही रहता था। आर्य-समाज के अतिरिक्त श्री मदनमोहन मालवीय, हकीम अजमल खां और डा० अंसारी जैसे उदार विचारों के सनातनी हिन्दू और राष्ट्रीय मुसलमान भी उनको साथ रखना और उनसे लाभ उठाना बहुत जरूरी समझते थे।

जब गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया तो स्वामी जी भारत में पहले व्यक्तियों में थे। जिन्हों ने उसका स्वागत किया था, क्योंकि वह आंदोलन सत्य व तप के आधार पर चलाया गया था। गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने पत्थर तोड़ कर धन एकत्र किया था और उसे गांधी जी के पास अफ्रीका भेजा था। गांधी जी की विजय हुई तो सरकार ने सिर्फ यही शर्त रखी कि आप इस देश में न रहें। गांधी जी भारत आ गए और सब से पहले अपने बच्चों को ले कर गुरुकुल कांगड़ी महात्मा मुंशीराम जी के पास आए थे। गांधी जी ने ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और अन्य उग्रपन्थी नेताओं से बातचीत की और उन्होंने वचन दिया कि कांग्रेस को हम इसी रास्ते पर चलाएंगे।

पहला जलसा लखनऊ कांग्रेस के समय हुआ, जिसमें लोकमान्य तिलक, डा. अंसारी आदि नेता एकत्र हुए। भला स्वामी जी ऐसे मौके को कब छोड़ सकते थे? उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन के लिए अपना नाम लिखाया और दलितोद्धार के काम को माना हुआ था—जिसे उन्होंने आर्य-समाज की सेवाओं का एक मुख्य अङ्ग हाथ में लेने का विशेष आग्रह किया। उन्होंने कहा—"जब तक छूतछात की समस्या हल नहीं की जाएगी, नौकरशाही हमारे ६ करोड़ भाइयों को हमारे खिलाफ खड़ा करके हमें सफल न होने देगी।" आखीर में स्वामी जी ने कांग्रेस के नेताओं की इस सम्बन्ध में भारी उदासीनता देख कर दुखी मन से कांग्रेस से अलग हो कर दलितोद्धार का कार्य स्वामी जी रूप में करने का निश्चय किया।

स्वामी जी छूत-छात व जात-पात के सवाल को क्रियात्मक ढङ्ग से हल करना चाहते थे। वे इस बात के इतने कट्टर समर्थक थे कि १९०१ ई० में ही उन्होंने अपनी दूसरी पुत्री अमृतकला का विवाह जाति-बन्धन तोड़ कर मेरे साथ किया था।

स्वामी जी की ओजस्विता और निर्भीकता सिर्फ व्याख्यानों और शास्त्रार्थों तक ही सीमित न थी। शेर और दूसरे खूंखार जानवरों वाले घने जङ्गलों में गुरुकुल को कायम करने में उन्हें कभी भय नहीं लगा। उनकी कुटिया गङ्गा के किनारे सब से अलग थी। वे रात को उठ कर आश्रम और गोशाला तक का चक्कर लगा आते थे। इस से भी उग्र निर्भीकता का परिचय उन्होंने चांदनी चौक में घंटाघर के नीचे मार्च १९१९ में दिया था। जो घटना आज संसार-प्रसिद्ध बन चुकी है।

दिल्ली में स्वामी जी के नेतृत्व में १८ दिन तक मुस्लिम हड़ताल रही, ट्राम और तांगे तक सब बन्द थे। हिन्दू-मुसलमानों का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैसा प्रेम शायद फिर कभी देखने को नहीं मिला। गोरखे सिपाही संन्यासी की छाती पर बन्दूकें ताने खड़े रहे, पर उन्हें गोली चलाने की हिम्मत न हुई। लोगों के जोश का वारापार न था। मुसलमान उन्हें जामा मस्जिद के मिम्बर पर ले गए और वहां से एक आर्य-संन्यासी ने एक समयोचित्त सुन्दर प्रार्थना के साथ अपना ओजस्वी भाषण दिया।

राजधानी दिल्ली के इन दृश्यों में ब्रिटिश हकूमत का जनाजा उठता साफ नजर आता था। स्वामी श्रद्धानन्द दिल्ली महानगरी का बेताज बादशाह था।

आर्य-समाज का गौरव महर्षि दयानन्द द्वारा बलिदान देने की पम्परा को आगे बढ़ाया वीर संन्यासी श्रद्धानन्द ने। उनका जीवन जैसा उज्जवल और महान् था वैसा ही उसका अन्त भी शानदार था—वे बहादुर की तरह जिए और बहादुर की तरह ही जाति के लिए अपने प्राणों की आहुति दे गए।

आज आर्य-समाज की स्थिति डांवाडोल है। जिस आर्य-समाज ने अंग्रेजों की ताकतवर हकूमत से लोहा लिया, आज वह अपने कर्तव्य-को भी भूलने लगा है। आर्य-समाज में नेतृत्व की क्षमता है, यह हमें फिर से अपने हाथों में लेनी है। हमें स्वामी जी की इस जन्म-शताब्दी को सही तरीके से मानने का तभी अधिकार हो सकता है जब हम देश की राष्ट्रीयता को बल दें, छूत-छात और जातीयता के भूत को भगाएं और गुरुकुल जैसी आर्य शिक्षा-संस्था को फिर से पुराने रास्ते पर चलने का सच्चा संकल्प करें। उस महापुरुष की आत्मा का हमारे लिए यही सन्देश है।

—

क्या आप जानते हैं ?

★
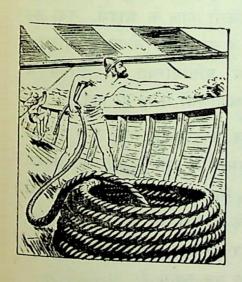
१. चक्र और पुली के समान रस्सा भी मानव जाति का प्राचीनतम उपकरण है। बटे हुए तन्तुओं और तारों के ये सूत्र समुद्रों को लांघने, नयी भूमियों को तोड़ने, पर्वतों को विजय करने और इस प्रकार के असंख्य प्रयोजनों में काम आते हैं।

२. अमेरिका का पेटेण्ट करने वाला कार्यालय प्रतिदिन औसत तीन सौ नए आविष्कारों को पेटेण्ट कराने के प्रार्थनापत्र प्राप्त करता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना क्यों अनिवार्य है ?

श्री सत्यव्रत 'कुशल', वेदालङ्कार, एम. ए.

अस्तित्व के लिये

शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना इस लिये अनिवार्य है क्योंकि शिक्षणालय जीवन के लिये हैं, समाज के लिये हैं। जब सारा समाज और सारा जीवन अन्ताराष्ट्रीय होने जा रहा है तब शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना स्वतः अनिवार्य है।

क्या अन्ताराष्ट्रिय युग में शिक्षणालय बिना अन्ताराष्ट्रिय हुए युग के सच्चे प्रतिनिधि और युग के सच्चे उन्नायक हो सकते हैं ? क्या बिना अन्ताराष्ट्रिय हुए उन का 'विश्व-विद्यालय' नाम सार्थक हो सकता है ? और क्या इस प्रकार वे जीते रह सकते हैं ? अपने गौरव और अस्तित्व के लिये भी उन का अन्ताराष्ट्रिय होना अनिवार्य है।

युग के सच्चे प्रतिनिधि

कितने ही छोटे-बड़े समुदायों की परिधियों को चीरता हुआ मनुष्य 'राष्ट्रियता' तक पहुंचा। फिर वह राष्ट्रियता को भी सीमाओं से घिरी हुई परिधि-मात्र अनुभव करने लगा है। आज वह इस की भी ससीमता को छिन्न-भिन्न करता हुआ अन्ताराष्ट्रियता की उन्मुक्त असीमता में प्रवेश करना चाह रहा है। जब एक ओर मनुष्य आदर्श विश्व-राज्य, आदर्श विश्व-समाज, आदर्श विश्व-संस्कृति, और आदर्श विश्व-धर्म की मधुमयी आशाओं को फलवती देखना चाहता है, तब भिन्न-भिन्न युगों में युग-धर्म के, समाज के, तथा जीवन के आदर्शों के सच्चे प्रतीक, सच्चे प्रतिनिधि, शिक्षणालय क्या कूप-मण्डूकता के ही अपने पुराने संसार में सोते रह सकते हैं ?

किसी समाज व संस्कृति का प्रतिबिम्ब उस का साहित्य होता है। साहित्य में ही उन की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। पर साहित्य के अध्ययन और अध्यापन, विचार और प्रचार, तथा, शोध और खोज के केन्द्र तो शिक्षणालय ही होते हैं। शिक्षणालयों के ही तो माध्यम से साहित्य बोल पाता है। शिक्षणालय ही साहित्य को वाणी, लेखनी और बल प्रदान करते हैं। इस लिये किसी समाज, संस्कृति, एवं युग के सच्चे प्रतिनिधि या सच्चे प्रतिबिम्ब तो वस्तुतः शिक्षणालय ही होते हैं। किसी काल के आदर्श, तथा उन की वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा, सजीव रूप में प्रतिबिम्बित तो वास्तव में तत्कालीन शिक्षणालयों में ही हो पाते हैं।

क्या आज के शिक्षणालयों को वर्तमान युग की उदीयमान अन्ताराष्ट्रियता के अनुरूप अन्ताराष्ट्रिय नहीं होना पड़ेगा ? क्या वर्तमान युग के शिक्षणालय अपने युग के सच्चे प्रतिबिम्ब और सच्चे प्रतिनिधि होने में किसी प्रकार अपवाद बन सकेंगे ?

युग के सच्चे उन्नायक

शिक्षणालय किसी समाज, संस्कृति, व युग के आदर्श प्रतिनिधि तो होते ही हैं, पर साथ ही वे अपने भावी उन्नतिशील युगों के सच्चे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निर्माता व उन्नायक भी होते हैं। यदि वर्तमान विश्व-समाज ने सौ-पचास साल बाद सचमुच अन्ताराष्ट्रिय बन जाना है, या, उसे वैसा बन जाना चाहिये तो विश्व-समाज का, जगत् का, अपने आचरण, विचार और प्रभाव से उस दिशा में नेतृत्व करने वाले, समाज को उस लक्ष्य तक पहुंचा सकने वाले, अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्ति (स्त्री व पुरुष) भी कहीं से आने चाहियें। यह कार्य शिक्षणालयों का ही है कि वे आदर्श विश्व-समाज के प्रतिष्ठापक आदर्श अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्तियों को पैदा करें।

पर क्या स्वयं अन्ताराष्ट्रिय हुए बिना वे अन्ताराष्ट्रिय युग-व्यक्तियों को पैदा कर सकते हैं? क्या शिक्षणालय स्वयं सच्चे अर्थों में धर्मशील हुए बिना विश्व-जीवन के छोटे-बड़े सभी क्षेत्रों में अपने व्यापक प्रभाव से धर्म (समन्वयात्मक परस्परोपयोगिता) की प्रतिष्ठा करने वाले सांस्कृतिक युग-व्यक्तियों को जन्म दे सकते हैं?

व्यक्ति-मात्र की, और प्राणिमात्र की, चिर सुख-शान्ति रूप, लोक और परलोक में वास्तविक कल्याण रूप, अन्ताराष्ट्रिय लक्ष्य से हीन शिक्षणालय विश्व-हित की सच्ची आकांक्षा वाले युग-व्यक्तियों का और उन के द्वारा सब प्रकार से सुखी और समृद्ध अन्ताराष्ट्रिय आदर्श विश्व-समाज का क्या कभी निर्माण करा सकेंगे? क्या कभी वे इस कल्पना को कुछ भी साकार बना सकेंगे?

उन की सार्थकता ही नहीं है

स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े सभी शिक्षणालय अपने को ग्राम-विद्यालय, नगर-विद्यालय, वर्ग-विद्यालय, प्रान्त-विद्यालय, या, राष्ट्र-विद्यालय न कह कर 'विश्व-विद्यालय' ही कहना चाहते हैं और कह रहे हैं, जब कि वस्तुतः विश्व-विद्यालय वे एक अंश में भी नहीं होते हैं। ऊंची दुकान और फीका पकवान! क्या विश्व-विद्यालयता का कोई भी लक्षण उन में घटता है?——

१. क्या जाति-भेद, भाषा-भेद, धर्म-भेद, वर्ग-भेद आदि के, तथा आयु, धन व सम्बन्ध आदि के भेद-भाव से रहित हो कर मनुष्य-मात्र को शिक्षा का समान अवसर वे देते हैं?

२. क्या विश्व-विद्यालय कहे जाने वाले शिक्षणालयों में मनुष्य-मात्र के वैयक्तिक हितों का भी पूरा ध्यान रखा जाता है? क्या मनुष्य-मात्र के वास्तविक कल्याण, सच्ची सुख-समृद्धि (सर्वाङ्गीण लौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस) के, उस के सर्वाङ्गीण विकास के, साधनभूत लौकिक और अलौकिक सर्वविध विद्या-विज्ञानों की वहां समन्वय से ऐसी उत्तम व्यवस्था है कि उन में शिक्षा के लिये विश्व का व्यक्ति-व्यक्ति लालायित हो उठता हो, और, यदि वे वहां शिक्षा लें तो व्यक्ति-व्यक्ति का वास्तविक कल्याण, सच्ची सुख-समृद्धि, उस का पूर्ण विकास, वहां सिद्ध भी हो जाते हों?

३. क्या वे विश्व की, सभी राष्ट्रों की, जगत् की, युग की, सुख-शान्ति की अन्ताराष्ट्रिय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सामाजिक आवश्यकताओं को (वैयक्तिक सुख-समृद्धि के साथ-साथ) समन्वय से ऊंचे या नीचे किसी भी स्तर पर पूरा कर पा रहे हैं ? क्या वे विश्व में शिक्षा के वैयक्तिक व सामाजिक उद्देश्यों की कुछ भी सराहनीय पूर्ति कर पा रहे हैं ।

४. यदि सारे विश्व के नहीं, तो क्या वे अपने राष्ट्र, प्रान्त, और स्थान-विशेष के, या, वर्ग-विशेष के ही कुछ लोगों को उच्चतम सर्वाङ्गीण स्तर पर शिक्षा दे पा रहे हैं ? क्या कुछ ही लोगों को—'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारी धरती ही हमारा परिवार है), 'विश्वे अमृतस्य पुत्राः' (हम सब ही एक परमात्मा की सन्तान होने से भाई-भाई हैं), या, 'माता भूमिः पुत्रो ऽहं पृथिव्याः' (सारी पृथ्वी मेरी माता है और मैं उस का पुत्र हूं) जैसी अन्ताराष्ट्रिय भावना वाले और इस लिये विश्वहित की आक्षांका वाले—अन्ताराष्ट्रिय सांस्कृतिक युग-व्यक्ति किसी भी अंश में वे बना पा रहे हैं ?

तब कैसे उन्हें 'विश्व-विद्यालय', या—राष्ट्र-विद्यालय, प्रांत-विद्यालय, नगर-विद्यालय, या—किसी वर्ग-विशेष का, सम्प्रदाय-विशेष का, विद्यालय भी कहा जा सकता है ? विश्व-विद्यालय तो बहुत दूर, वस्तुतः तो वे **स्थानीय विद्यालय भी नहीं हैं**। फिर सच्चे अर्थों में अन्ताराष्ट्रिय हुए बिना कैसे उन का 'विश्व-विद्यालय' नाम सार्थक हो सकता है ?

अन्ताराष्ट्रिय होना ही होगा

शिक्षणालय व्यक्ति, ग्राम, नगर, प्रांत, राष्ट्र एवं वर्ग-विशेष आदि के, या विश्व के, किसी के भी हितों का ध्यान रखें—हर दृष्टि से उन के अन्ताराष्ट्रिय होने में ही उन के उस लक्ष्य की सर्वाङ्ग-सिद्धि सम्भव है। व्यक्ति से ले कर विश्व तक का एक-एक कण परस्पर सम्बद्ध है । प्रत्येक पारस्परिक सहयोग व सद्भाव पर जीवित है। सच्ची अन्ताराष्ट्रियता में व्यक्ति से ले कर विश्व तक के सभी वर्गों व सम्प्रदायों के, सभी जातियों, संस्कृतियों व धर्मों के, स्वार्थों का अद्भुत समन्वय रहता है ।

फिर, शिक्षणालय अपने युग के आदर्श प्रतिनिधि होने के साथ-साथ भावी युग के सच्चे निर्माता और उन्नायक भी होते हैं। इस दृष्टि से भी उन्हें अन्ताराष्ट्रिय होना ही पड़ेगा । क्योंकि अद्भुत रूप से समन्वित और अत्यन्त व्यापक अन्ताराष्ट्रिय विश्व-संस्कृति और विश्व-धर्म का युग अत्यन्त निकट है। शिक्षणालयों को उस युग के अनुरूप सच्चे अर्थों में अन्ताराष्ट्रिय और 'विश्व-विद्यालय' बनना होगा । अन्यथा, काल क्या एक क्षण के लिये भी किसी की प्रतीक्षा में ठहरा है ? क्या काल के भीषण चरणों ने अपनी रुकावटों और प्रतिकूलताओं को कुचलने में कभी किसी की परवाह की है ?

जो शिक्षणालय युग-धर्म को, काल-धर्म को, क्रान्त दृष्टि से जल्दी ही पहचान कर तदनुसार समुचित मार्ग अपना लेंगे, और,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अन्ताराष्ट्रिय युग के अनुकूल अपनी शिक्षा-विधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लेंगे, वे वर्तमान युग की वैयक्तिक व सार्वभौम सामाजिक आवश्यकताओं को तो पूरा करते ही रहेंगे बल्कि वे अपने युग से सौ-पचास साल, और हो सकता है सदा ही, आगे रहते हुए वर्तमान विश्व-समाज का आदर्श अन्ताराष्ट्रियता की ओर निर्बाध एवं सजीव नेतृत्व भी करते रहेंगे, तथा भावी आदर्श युग के शीघ्र ही उत्थान में सच्चे सहायक, उन्नायक और उस के निर्माता भी बन सकेंगे।

वर्तमान व भावी युगों की मांगों को, व्यक्ति व विश्व-जीवन की मांगों को, अद्भुत समन्वय और क्रान्तिकारिता से पूरा करते रहने वाले शिक्षणालय ही आज जीवित रह सकेंगे। वे ही अपने गौरव और अस्तित्व को कायम रख सकेंगे। उन्हीं की आज कुछ विशेषता समझी जा सकती है और वे ही युग के लिये, विश्व के लिये, तथा अपने राष्ट्र, प्रान्त, जाति व धर्म के लिये अनिवार्य हो सकेंगे। ऐसे शिक्षणालयों के लिये धन की भी कमी नहीं हुआ करती है। उन के लिये तो धन स्वयं बरसने लगता है।

यही कारण है कि अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि, सच्चे निर्माता, व उन्नायक होने के कारण, एवं अपनी सार्थकता, विशेषता, अनिवार्यता, गौरव, तथा अस्तित्व को बनाये रखना अनिवार्य होने के कारण, शिक्षणालयों का अन्ताराष्ट्रिय होना नितान्त ही अनिवार्य है।

दृष्टि-विभ्रम

❀

१. दुनियां के अन्य भागों की अपेक्षा गरम देशों के ऊपर आकाश अधिक नीला रहता है। आकाश की नीलिमा, सर्वत्र, ऊपर की ओर कुछ मील तक ही गई होती है। तेरह मील की ऊंचाई पर आकाश लगभग काले वर्ण का प्रकट होता है।

२. सुबह को सूर्य उदय होता प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में सूर्य उदय नहीं होता। अपनी धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी के साथ घूमते हुए हमें अन्तरिक्ष पर सूर्य के उदय होने की विडम्बना होती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुलोत्सवे श्री चिन्तामणि-द्वारकानाथ-देशमुख-महोदयानाम्

दीक्षान्त-भाषणम्

(सारभागः)

श्रीमन्तः कुलपतिमहोदयाः, नवस्नातकाः, उपस्थिताश्च सज्जनाः,

अनुग्रहो ह्येष भवत् प्रशंसा-
भरेण, सौजन्यवरा, नतांसः ।
चन्द्रावतंसं प्रथमं ततश्च
हंसाधिरूढां प्रणमामि देवीम् ।।
विशारदानां भवतां पुरोऽहम्
सशारदोऽप्यस्मि भृशं विनीतः ।
श्रियोज्झितो वक्तुमना यथावत्
स्वरक्षणयास्मि परं सदुर्गः ।।

❀ ❀

हिन्दीभाषाश्रयि मम मुद्रितं दीक्षान्त-समारोहाभिभाषणं भवद्धस्तगतमेव । कतिपय-दिनेभ्यः प्राक् तु कुलपतिमहोदयैः संस्कृत-माश्रित्य कञ्चिदवसरं यावद् भवता व्याहरणीय मिति प्रादायि मह्यमादेशः । यथा गुरूणां तथा कुलपतिनामाज्ञा ह्यविचारणीया इति सुविदित-मेव मनीषिणाम् । अत एव कंचित् कालं यावदहं संस्कृतभाषायां मदभिभाषणांशं भवतः श्रावयिष्यामि ।

अद्य गौरीगुरोरन्तिकेऽमरतटिनी-रोधसि गुरुकुलस्य पावनप्रसन्ने जलस्थल-पवन-मण्डले भवद्भिः सह समागतस्य भूयान् खलु मम संमदः । अस्यानन्दस्य प्रभवाः पण्डित-वरेण्या इन्द्र-विद्यावाचस्पति-महोदयाः प्रथमतस्तावन्मद् धन्यवादार्हा, यदेतैर्दीक्षान्ताभिभाषणार्थं मामन्त्र्यैष शोभनोऽवसरो मह्यं प्रादायि ।

अनेनैव निमन्त्रणेन कुलपतिमहोदयैर्नितरा महं संमानितः । सप्तसप्ततिनवशतसहस्रतमे संवत्सरे विश्वविद्यालय-रूपेण परिणामितमिदं गुरुकुलमद्य यावत् कतिपयैः प्रथित-यशोभि-र्देशनेतृभिरर्थाद् देशमुखैः दीक्षान्ताभिभाषणेन स्वेन स्वेनान्वगृह्यत । अमीषां––महामना पं० मदनमोहन मालवीय–डॉ० भगवानदास–स्वामी श्रद्धानन्द–डॉ० राजेन्द्रप्रसाद–आचार्य नरेन्द्रदेव –गुरुदेव रवीन्द्रनाथ–डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् –राजर्षि टण्डन–प्रभृतीनां समपंक्ति कृत्वा मामित्थं संमानितवतां कुलपतिमहाभागानामहं वितरामि धन्यवादान् ।

सुविदितमेव भवतां यत् षष्ठिवत्सरेभ्यः प्राक् प्रत्यष्ठाप्यत भारते राष्ट्रिय-कांग्रेस-संस्था । उदञ्चच्च ततः प्रभृति देशेऽस्मदीये कापि नव्या राजनीतिजागर्तिवीचिः । अस्य अभिनव-जागरणस्य च प्रभावः प्रथमतः विभाजितेभ्यो वंगेभ्यः समुत्थितस्य आन्दोलनस्य रूपेण प्रादुर-भूत् । तदनुषङ्गेण च नवभारतस्य नेतारः राष्ट्र संस्कृत्यनुरूपां शिक्षाप्रणालीमधिकृत्य विमर्शं कर्तुमारभन्त । तदनुसारेण च देशस्यास्य स्थाने स्थाने तादृशाः कतिपये विश्वविद्यालयाः प्रत्यष्ठा-प्यन्त । येषां साधारणैरर्थात् शासन-प्रतिष्ठापितै विश्वविद्यालयै र्ना विद्यत कोऽपि सम्बन्धो न च तेभ्यः शासनादुपालभ्यत किमपि साहाय्यम् । ते च विश्वविद्यालयाः स्वातन्त्र्योन्मुखस्य भारतस्य प्रतिभोचितां शिक्षा-प्रणालीं निर्मातु बद्धपरिकरास्तदध्वनि च पुरःसरा अभूवन् । अस्मिन्नारम्भे कतिपये ऽनुभूतासंख्यान्तरायाः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कतिपये चाप्यकालं निमीलन-कवलीभूता आसन्। परन्तु कतिपय विश्वविद्यालय-संचालकैरमीषु दुर्दमनीया लक्ष्यमार्गण-तत्परतात्मनः समदर्शि। विद्यालयाश्च सम्मुखे तस्थुषामपि प्रत्यूहानां विकासपदवीमेवाध्यरोहन्। सैषा उदग्र राष्ट्रिय-संस्था-परम्परा, यस्यां लब्धास्पदं जादवपुर-स्थापत्य-विद्यालयः, शान्तिनिकेतनस्य विश्वभारती, देहलीदत्तपदा जामिया-मिलिया, इदं च भवतां हरद्वारार्पित-दृढ़चरणं गुरुकुलम्।

❋ ❋

आदौ तावत् तां प्राचीनां भारतीय-शिक्षा-प्रणालीं (यद्यपि विदितचरां अभ्यस्त-पूर्वामपि) वर्णयिष्यामि, यां कृत-समुचित-परिवर्तनां पुनरुज्जीवयितुं संरक्षितुं च कृतारम्भाः संस्था-संचालकाः। तामेनां शिक्षा-प्रणालीं वैदिककालादारभ्य प्रचालितां सूत्रकाराः नियमैरबध्नन्।

प्राप्त-पञ्चवर्षवयोऽवस्थो बालकोऽनुष्ठित विद्यारम्भ - संस्कार - लिपि-संख्यादि - शिक्षायामावेश्यत। अष्टमे वर्षे च बालकस्योपनयन-विधिः समपाद्यत। उपनयनं तदानीं न केवलं ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यानामपि तु शूद्राणामपि सममान्यत। एतेषां संस्काराणां विवरणं अनधीतसंस्कृतानां जनानां कृते डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी इत्येतेषां एकस्मिन् प्राचीन-भारतीय-शिक्षा-प्रणाली-विषयके ग्रंन्थे संकलितं सविस्तरं चोपलक्ष्यते।

अयं हि उपनयनसंस्कारो द्वितीय-जनुषा तुल्योऽमन्यत, गुरुश्च पितृतुल्यः। संस्कारावसरे का का वेशभूषा केशभूषा उचितानुचिता वेति तत् संबन्धिभिर्नियमैः सुनिश्चितैर्नियम्यते स्म। संस्कारात् पश्चाच्च गुरुर्ब्रह्मचारिणं शिष्यरूपेण स्वीकरोति स्म। शिक्षावस्थायां गृहे गृहे भिक्षा याचनं गुरोः कृते समिधोदक-पुष्पाद्यवचयनं ब्रह्मचारिणः कर्त्तव्यमभवत्। एवं सद्गुरूः सपर्यार्हो ऽभवत्। तद् वैपरीत्ये च निर्धारित-दुराचारे गुरौ धिक्कार-संदर्शनेऽपि विद्यार्थिनोऽधिकारिण आसन्।

ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी प्रागेव सूर्योदयात् शयनादुत्थित–निर्वर्तित-समयोचित-विधिः अनलसः प्राणायामादिसाधनैः एकाग्रचित्तः, स्वाध्यायमग्नो भवति स्म। तेन च संवर्ज्यान्यासन् विविधानि विलासोपकरणानि। यथा—उपानत्, छत्रं, वाहनं, द्यूतं, नृत्यं, गन्धद्रव्यं, गायनं इत्यादीनि।

तथा च निषिद्धान्यासन्—वितंडावादः, व्यर्थं वार्तालापः, अनृतं वचः, दिवा निद्रा। काम-क्रोध-द्वेष-लोभ-प्रभृतीनां विकाराणां च अनवकाशदानम्। प्रोदसाह्यन्त व्यकास्यन्त च इष्टाः गुणाः, यथा—कर्तव्यपरायणता, विनयः, आत्म-विश्वासः, निरहंकारा मनः-प्रवृत्तिः, इत्येवं विधाः। समाप्त-ब्रह्मचर्याश्रमश्च गृहकोष्ठे कस्मिंश्चित् अवारुध्यत, तत्तेजसा मा भूद् ह्रेपितो भगवान् मार्तण्ड इत्युद्दिश्य। अपराह्णे च न्यमीलयन्त तस्य विद्यार्थिदशा-संसूचकानि समस्तानि चिह्नानि। सुगंधिद्रव्यैश्चासौ अस्नाप्यत। तत् पश्चादेव स स्नातकः गृहस्थाश्रम-प्रवेशोन्मुखः स्वभवनं समावर्त्यते स्म। अयमेव समावर्तन-संस्कार-विधिः। एतदर्थं च समवेता अद्यात्र सर्वे वयम्॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एवं विधायाः सनातन्याः स्फुटोदग्रताया गुरुकुल-परम्परायाः पुनरुत्था स्वर्णिम-स्वप्न-पूर्ताविव महर्षि-दयानन्द-सरस्वती-महाभागा दत्तलक्षा आसन् । तं च स्वप्नमुदर्क-परिणामं कर्त्तुं स्वर्गीयाः स्वामि-श्रद्धानन्द-महाभागाः कुलपितृपदाधिकारिणः प्रायस्यन्त । न मोघ-स्वप्ना भवन्ति कदाचित् पुण्यात्मान इति निर्दिष्टमेव अजस्रं संसारेतिहासक्रमेण । गाँधीमहात्मानोऽपि संदर्भेऽस्मिन् प्राहुः—

न बुद्बुदसमाः स्वप्नाः
अकिंचित् सदृशा मम ।
उदर्क परिणामाँस्तां-
श्चिकीर्षामि यथाबलम् ॥

श्रद्धानन्द-स्वामिनः धृतव्रतां पुराणपरिपाटीं समुत्थापयितुं ऐच्छन् । यामनुसृत्य कृतोपनयन-संस्काराः बालकाः ब्रह्मचर्यव्रतमधार्यन्, ज्ञान-विज्ञानावाप्तये च विद्या परिसंख्यानुसारमिव किमु चतुर्दशहायनानि यावद् गुरुकुले निवास-मकार्यन्त । अनेन प्राचीन संस्कृतिपुनरुज्जीवनेन अस्याः अर्वाचीन विज्ञानेन सार्धं समन्वयं साध-यितु-कामाः आसन् । अकांक्षन् च हिन्दीभाषा-माध्यमेनोपात्त-विद्येषु अन्तेवासिषु जागरयितु-मात्मविश्वासं देशप्रेमाणं च ।

संवत्सरे पञ्चाशदधिक नवशताधिकसह-स्रतमे (१९५०) गुरुकुल-स्वर्ण-समारोहावसरे प्राहुर्मोहमयी-राज्यपालाः श्री. श्रीप्रकाशमहो-दयाः यत् कार्यारम्भदिनेषु तेषु स्तोकमेवा दृश्यत क्षितिजे आशा-मयूख इति । तेषामद-म्यस्य साहसस्य उत्कटस्य उत्साहस्य च लक्षण-मेवैतत् यदमीभिर्न केवलं अस्मद् शिक्षाप्रणालीं याथार्थ्येन राष्ट्रधर्मोचितां स्वयंशासितां च कर्त्तुं व्यवस्यत, अपि तु नैजविचारानुसारेण अध्युषित-मरण्यं, द्रुम-विदारण-कर्कशं कृतं करयुगलं, वन्यश्वापदानां च धृष्टः संत्रासः, सुस्थापित-श्चायं विद्यालयः । अमीषां प्रधानसहायतामभ-जद् अमीषामेव आन्तरिकी दृढाकांक्षा ।

संतोषसंदोहास्पदं चेदं यदमीभिः रोपितो बालतरुरद्य द्रढिमरमणीयो वनस्पतिः समजनि । अस्य च स्कन्धानां छायायां कृतोप-वेशाः कतिपये छात्राः संप्राप्योचितोपयुक्त-शिक्षाः, संघटय्य स्वीयस्वीयं शारीरिकं मान-सिकं आध्यात्मिकं च जीवनं समंजस्य देशस्य च सेवामातेनुः ।

❋ ❋

अन्ततोऽद्य गुरुकुलमामन्त्र्य विहाय च तदीयमादर्शमयं जलवायुमण्डलं व्यवहार-व्यापार–संसारं प्रविविक्षून् नवस्नातकानुद्दिश्य किंचिद् वक्तुमिच्छामि ।

प्रगति–प्रवणेऽस्मिन् भुवने भूयिष्ठमादृत-नियुक्त-वैज्ञानिक-शिल्पनिष्णातेऽपि तादृशा एवावश्यकतया वाञ्छिता मनुजा येषां चरित्रं, न्यायप्रियता, कार्यदक्षता च विश्वासं जनयति लोकानाम् । वत्सरशतानि यावद् दास्य-शृंखला-वरुद्ध-व्यापारः सद्योऽधिगत-स्वातन्त्र्योऽय-मस्माकं देशः । एकदा मानव-प्रगतिपदाग्रणी-रप्यधुना अतिक्रांतो भौतिक-वस्तुषु बहुभि-र्देशान्तरैः स्वोचितमुदग्रं स्थानं पुनः समासाद-यितुं राष्ट्रमण्डले अत्यधिकान् प्रयत्नानपेक्षते । अस्य उच्चलक्ष्यस्य अवाप्तये आवश्यकास्तावन्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एव प्रयासा यावन्तः स्वातन्त्र्य-प्राप्तेः कृते कर्त्तव्या आसन् । वर्षशतावधि दास्यपरिणामतो बधिरीकृतान्तःकरणा इव वयं भारतीयाः । मर्षयामो वयमतिसुकरं अन्यायं अशिष्टतां असत्यं च । सर्वथा परित्याज्येयं नीतिसंस्था-बधिरता । अस्मिन् कार्ये भूयिष्ठा चोत्तरदायिता युष्मत् सदृशां नवयुवकानाम् ।

प्रविविक्षितं बहु-समुत्कण्ठं जगदिदं भवतां कृतेऽनाढ्य सुखसाधनैः । तानि च कृच्छ्रसम्पादयानि दृश्येरन् । अनयैव जीवनाहमहमिकया अत्यन्तमधः पातिता नैतिकी सरणिः । उन्नामिताश्च सलौकिकघोषं दुर्गुणाः—सत्तालोभ-कुटिलता-मिथ्याचार-न्यायनिष्ठौदासिन्य प्रभृतयः इति समक्षमेव भवेद् भवताम् ।

अस्मिन् सत्वविरोधिनि जलवायुमण्डले चरित्रं परीक्ष्येत भवताम् । अस्यैव परिवर्तनाय सुसन्नद्धा भवेयु र्भवादृशाः सुसंस्कृताः दृढशीलाः नवयुवकाः । यदि प्रतिस्वकत्वेन युवा न कमपि विक्रमं साधयितुमसमर्थो भवेत् तर्हि नैतद् विस्मयावहं, किमुतस्वाभाविकमेव । किन्तु समाजस्य वास्तवतः प्रगतिर्यथार्थतश्चारु-शीलत्वं, साधारण-नागरिक-चरित्रोदात्तत्वं तत्कार्यक्षमत्वमेवावलम्बते । कामं संस्कृतेः विकासः सभ्यतायाश्च परिपोषो मितसंख्यानां साधारणानां दार्शनिकानां प्रयत्नानालम्बते । अन्ततस्तु असामान्या असामान्या एव ।

सामान्यजन-वशंवदं पुनरेकं वस्तु । तच्च स्वचरित्रस्थिरत्वं तेन च साधनीभूतेन सामान्याः समाज-प्रगति-कार्ये साहाय्य-प्रदानमनुष्ठातुं पारयन्ति । कार्यं उच्चावचं, किमपि स्यात् । हृदयाभिनिवेशेन निर्वाहणीयं, तच्चरित्रं च सर्वशक्तया संरक्षणीयमिति प्रवच्मि । उच्चावचं पद-निर्भरं न चरित्रमित्यनुभूतिर्मम । एतद् वैपरीत्ये दृष्टवानिदमप्यहं यच्चरित्रमूल्यं न तावत् संभाव्यते धनाढ्यैर्यावन्निर्धनैः । एष एवानुभवो मनुजानां अद्य यावत् यत् सच्चरित-समासादित आनन्दः आसक्ति-जन्यानि सुखान्यतिशेते, जीवने च आनंदाधिकं किं कांक्षणीयम् । व्रताभ्यासिनो यूयम्—

अकर्णा अप्युदारा
भो दत्तकर्णा विदर्णवाः ।
आकर्णयन्तु मद् वाणीम्
अभ्यर्हण-पुरःसराम् ॥

❀

सस्यस्य धर्मः प्रथितः किलैष
यदुप्तबीजादधिक लुनीध्वे ।
उप्ताल्लुनीथाऽऽचरणात् स्वभावं
शालं स्वभावान्नियतिं च शीलात् ॥

शुभा शोभना भवतात् सा नियति र्भवताम् इति ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीयुत चिन्तामणि द्वारिकानाथ देशमुख महोदय के कर-कमलों में

अभिनन्दन-पत्र

माननीय अतिथि,

भागीरथी के तट पर रेत के कुछ चमकीले कणों को चुगते समय हमें तो अचानक ही महा-मूल्य चिन्तामणिरत्न मिल गया । आज का यह प्रभात मङ्गलमय है और यह दिवस भी अत्यन्त शुभ है । हमारे चिरकाल के सञ्चित पुण्य आज सफल हो रहे हैं । आज हमारी इस पवित्र कुल-भूमि की महिमा बढ़ गई है, हमारी आशा-लता में नई कोंपलें फूट रही हैं, और हम अपने आप को धन्य समझ रहे हैं क्योंकि आज इस विद्यामन्दिर में हम अपने प्रिय-अतिथि सुकवि तथा सहृदय श्रीमान् का स्वागत कर रहे हैं और क्योंकि संस्कृत-साहित्य के प्रेमी तथा सरस्वती देवी की निस्पृह सेवा में परायण आप की अर्चना करने का अवसर हमें आज प्राप्त हो गया है । आप का छात्र-जीवन प्रारम्भ से ही अत्युज्ज्वल रहा और आपने विदेश जा कर भी वहां की परीक्षाओं में असाधारण सफलता प्राप्त कर देश के मुख को समुज्ज्वल किया । गणितादि जैसे नीरस तथा काव्य-साहित्य जैसे सरस विषयों में समान गति वाले आप को पा कर बहुमुखी प्रतिभा अपने आप को कृत-कृत्य मान रही है । देश की अर्थनीति को ठीक दशा में संचालन करने की आप की असाधारण क्षमता को बुद्धिमान् आज भी स्वीकार करते हैं । आप इतने निर्भय तथा मनस्वी हैं कि मत-भेद होने पर आपने भारत के गौरवास्पद वित्त-मन्त्रि-पद को ठुकरा दिया और अब आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सभापति बन कर सरस्वती की निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं । सरस्वती आप के मुख में रह कर तथा सौभाग्य-वती श्रीमती दुर्गाबाई जी आप के भवन में आप की सेवा कर रही है । यह देख कर तीसरी देवी कमला भी आप की सेवा क्यों न करना चाहेगी ? माननीय अतिथे, ये वे पावन तपोवन प्रदेश हैं जिन्हें देवता भी विविध पुण्याचरणों द्वारा प्राप्त कर के पञ्च-क्लेशों से छुटकारा पाया करते हैं । यहां एक ओर तो वैदिक संस्कृति के समान निर्मल भागीरथी बह रही है और दूसरी ओर भारतीय उच्चादर्श के समान विशाल हिमाचल सिर उठाए खड़ा है । यहीं पर सृष्टि के आदि युग में प्रथमोदीयमान सूर्य की रश्मियों के साथ-साथ मानव के ज्ञान-नेत्रों को आलोकित करने वाले वैदिक ज्ञान का भी सर्व प्रथम प्रकाश हुआ था ।

यहां मुनिजनों के मानस सरोवर से निकली, अनन्त पथों से गमन करने वाली भ्रम-रहित ज्ञान-गंगा ने पर्वत से उत्पन्न होने वाली भ्रम युक्त जलमयी त्रिपथगा गंगा को जीत लिया है । यहीं पर तीव्र सती व्रत का पालन करती हुई दक्षप्रजापति की पुत्री सती प्रातःस्मरणीय भारतीय नारियों में सर्वप्रथम पद की अधि-कारिणी बनीं । यहीं पर भारत-भूमि को मिथ्या विश्वासों के जाल में जकड़ी देख कर ऋषि-राज दयानन्द ने अपनी पाखण्ड-खण्डिनी-पताका की स्थापना की थी । उसी ऋषि की ज्ञाना-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुवर श्री पं० काशीनाथ जी शास्त्री

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

१

गङ्गा तट पर गुरुकुल प्रारम्भ होने के लगभग ३० वर्ष पीछे यह अनुभव करके कि अब ब्रह्मचारियों को संस्कृत दर्शन की उच्च शिक्षा देने के लिए किसी प्रकान्ड विद्वान् की आवश्यकता है, गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एक विश्वस्त कार्यकर्ता को काशी भेजा। काशी प्राचीनकाल से पण्डितों की खान रही है। भेजते हुए मुख्याधिष्ठाता जी ने अपने कार्यकर्ता को बाबू शिवप्रसाद गुप्त के नाम परिचायक पत्र दिया। जिस में लिखा था कि गुरुकुल के लिए एक प्रथम कोटि के विद्वान् की आवश्यकता है। आप इस कार्य में हमारी सहायता कीजिये। गुरुकुल से कुछ विद्वानों के नाम भी निर्दिष्ट कर दिये गये थे। निर्दिष्ट नामों में से एक नाम पं० काशीनाथ शास्त्री का भी था। गुरुकुल के उस समय के संस्कृत शिक्षकों में से कई विद्वान् पं० काशीनाथ जी से विद्याध्ययन कर चुके थे। अन्य निर्दिष्ट नामों में श्री भागवताचार्य का नाम मुख्य है। पं० भागवताचार्य जी अपनी वावदूकता के लिए प्रसिद्ध थे।

कार्यकर्ता ने काशी पहुँच कर गुप्त जी से परामर्श किया। गुप्त जी ने बताया कि पं० काशीनाथ जी का नाम तो सुना है, परन्तु कैसे हैं और कहां हैं ? यह कुछ मालूम नहीं। तब गुरुकुल से गए हुए सज्जन शास्त्री जी की तलाश में निकले। घन्टों के प्रयत्न के पश्चात् एक विद्यार्थी के साथ शहर की एक तङ्ग गली में पहुंच कर देखा कि अत्यन्त पुराने ढङ्ग के बड़े से कमरे में तख्त पर रजाई ओढ़े हुए एक वृद्ध विद्वान् बैठे हैं और छात्रों को हाथ में पुस्तक लिए बिना ही पढ़ा रहे हैं। कक्षा की समाप्ति के लिए चिरकाल तक बैठ कर प्रतीक्षा करनी पड़ी। जो कुछ देखा वह आश्चर्यजनक था। शारीरिकभाष्य का पाठ चल रहा था। गुरु जी के हाथ में अथवा पास कोई पुस्तक नहीं थी। स्मृति से ही पढ़ा रहे थे। छात्रों के पास पुस्तकें थीं परन्तु उन्हें भी देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कभी-कभी गुरु जी के कहने पर शिष्य लोग भी प्रतीक देख लेते थे। पठन-पाठन स्मरण शक्ति के आधार पर ही चल रहा था।

जब शिष्य लोग चले गए तब गुरुकुल के कार्यकर्ता ने शास्त्री जी के सम्मुख गुरुकुल चलने का प्रस्ताव रक्खा। शास्त्री जी को उन दिनों काशी नरेश से २५ रु० मासिक की दक्षिणा प्राप्त होती थी। उसी से तपस्वी विद्वान् की जीवन-यात्रा चल रही थी। वह काशी से बाहर जाने का प्रस्ताव सुन कर आश्चर्य में पड़ गए और एक वार तो स्तब्ध से रह गए। पुण्य नगरी काशी और भगवती भागीरथी के तट को छोड़ कर कहीं अन्यत्र जाना उन दिनों के पण्डितों को अधमकृत्य सा ही प्रतीत होता था। परन्तु जब उन से निवेदन किया गया कि कांगड़ी ग्राम भी हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तीर्थ का एक अंग है और गुरुकुल का आश्रम भी भागीरथी के तट पर बना हुआ है तब गुरु जी कुछ नरम हो गये और धीरे धीरे दो तीन दिन में ड़ेढ सौ रुपये मासिक दक्षिणा पर गुरुकुल जाने के लिए उद्यत हो गये।

२

कुछ दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् गुरुवर पं० काशीनाथ जी शास्त्री गुरुकुल में पहुंच गये। गुरुकुल में उन्हें 'गुरु जी' इस आदरणीय उपाधि से निर्देश होता था। गुरु जी पुराने ढंत के पान्डित्य का बढ़िया नमूना थे। उनका वेष यह था कि धोती और बन्डी के अतिरिक्त चादर ओढ़ते थे। गर्मियों में चादर के स्थान पर लिहाफ ओढ़ लेते थे। अधिक गर्मी होने पर बन्डी भी उतार देते थे। उनके स्टाक में कोई चौथा कपड़ा नहीं रहता था। धोबी के यहां कोई कपड़ा धुलने नहीं देते थें। नहा कर गीली धोती या तो स्वयं निचोड़ लेते थे अथवा उनका वह शिष्य जो साथ रहता था, निचोड़ देता था। प्रायः वह अपने साथ अपने वड़े आत्मज पं० हरिनाथ जी को रखते थे।

भोजन या तो अपने हाथ से स्वयं बनाते थे अथवा सजातीय शिष्य से बनवाते थे। गुरु जी का जन्मस्थान बलिया था। उनका भोजन वहीं की पद्धति के अनुसार बनता था। एक छोटा सा रसोई घर चिकित्सालय के सामने उनके लिये सुरक्षित कर दिया गया था। दोपहर के समय अध्यापन से निवृत्त होकर गुरु जी स्नान करते और फिर रसोईघर में चले जाते थे। प्रातःकाल के समय केवल दूध पीते थे। विशेषता यह थी कि दूध पी कर दूध के बर्तन में पानी डाल कर उस पानी को भी पी जाते थे। कहा करते थे कि दूध अमृत है, उसके किसी अंश को भी छोड़ना अमृत का तिरस्कार करना है। भोजन के पश्चात् गुरु जी अपने निवासस्थान आनन्दाश्रम में जा कर कुछ समय तक विश्राम करते थे। पुराने गुरुकुल के यात्रियों ने गंगातट पर बने हुए आनन्दाश्रम को अवश्य देखा होगा। वह फूस से छाया हुआ एक आंगनवाला आश्रम था जिसमें छः सात कमरे थे। उसमें पंडित-मन्डली रहा करती थी। जिस पन्डित का परिवार आ जाय उसे परिवार गृहों में चले जाना पड़ता था। आनन्दाश्रम के अधिष्ठातृ-देवता गुरु जी थे।

पुराने पण्डितों को प्रायः पान, तम्बाकू, सुपारी सूँघनी आदि में से किसी न किसी चीज की आदत हुआ करती थी। गुरु जी को सूँघनी की आदत थी। वैसे तो जागृतदशा में सदा थोड़ी थोड़ी देर में सूँघनी सूँघते रहना उनके लिए आवश्यक था, परन्तु जब वे पढ़ाने के लिए बैठते थे, तब वह अनिवार्य हो जाता था। तब बहुत सी सूँघनी चुटकी में ले कर नासिका के मार्ग से मस्तक तक पहुंचाने से मन सावधान सा हो जाता था। उसके पश्चात् गुरु जी को कोई पुस्तक हाथ में लेने की आवश्यकता नहीं रहती थी। शिष्य लोग पाठ बोलते जाते थे और गुरु जी समझाते जाते थे। इस प्रसंग में एक मनोरंजक घटना याद आ गई। उसे भी लिखे देता हूं। एक साल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चौमासे में गंगा का जल बहुत बढ़ गया। गुरुकुल और हरिद्वार के बीच में आवाजाही बिल्कुल बन्द हो गई। परिणाम यह हुआ कि सूँघनी की नई पुड़िया बाजार से न आ सकी और पुरानी पुड़िया खाली हो गई। पूरा एक दिन इसी तरह बीत गया। अगले दिन प्रातः-काल जब हम लोग गुरु जी के सामने पढ़ने के लिए बैठे तब बहुत ही करुणाजनक दृश्य उपस्थित हुआ। गुरु जी कभी विद्यार्थियों की ओर देखते थे और कभी गंगा की धार की ओर। सूँघनी के बिना विद्वता के उस अथाह सागर के मस्तिष्क और वाणी सर्वथा शुष्क हो गये। तीन दिन इसी तरह बीत गये। कोई पाठ न हुआ। चौथे दिन गुरु और शिष्य उसी प्रकार बैठ कर समय व्यतीत कर रहे थे कि इतने में गंगा की धारा में तमेड़ दिखाई दी। तमेड़ कनस्तरों की उस नौका को कहते हैं जिसे तैराक लोग अपनी छाती के बल से भरी हुई गंगा में चलाते हैं। तमेड़ के दिखाई देने पर गुरु जी ने इशारे से एक ब्रह्मचारी को भगाया जिसने तमेड़िये से सूँघनी की पुड़िया ला कर गुरु जी के हाथ में दे दी। उस समय उनके चेहरे की प्रसन्नता देखने योग्य थी। गुरु जी ने सूँघनी की कई चुटकियां इकट्ठी नाक में चढ़ा लीं जिससे एक बार तो आँख और नाक से खूब पानी बह निकला परन्तु थोड़े ही समय में प्रतिमा के सब कपाट खुल गये और कक्षा का क्रम जारी हो गया।

३

अल्पज्ञता और बाल्यावस्था के कारण सब ऐसे छात्रों की तरह हमारे अन्दर भी दुरभिमान की मात्रा पर्याप्त थी। हम लोग अपने को अध्यापकों का कुशल परखैया मानते थे। सब के बारे में सम्मतियां बना रखीं थीं। किसी अध्यापक को हम वैयाकरण तो मानते थे परन्तु उसे साहित्य में कोरा ही समझते थे। उसी प्रकार साहित्य और दर्शन के अध्यापकों के एक देशी ज्ञान की चर्चा करते रहते थे। गुरु जी के सब शिष्यों का प्रतिनिधि बन कर मैं यह कहने का साहस करता हूं कि कई वर्षों तक अध्ययन करके भी हम गुरु जी के चौमुखे पान्डित्य में कोई छिद्र न निकाल सके। व्याकरण, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि विषयों का कोई भी ग्रन्थ ले कर बैठते थे तो कभी गुरु जी की प्रतिभा को रुकते नहीं पाया। प्रत्येक विषय उनके विशाल मस्तक में मानों बड़े बड़े और स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित था। कम से कम हम छात्रों को उस ज्ञान सागर का कोई ओर छोर नहीं दिखाई देता था। अब ५० वर्षों के पश्चात् जब चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखता हूं तब वैसे गम्भीर पान्डित्य का चिन्ह भी दिखाई नहीं देता।

उस पाण्डित्य की गम्भीरता यह थी कि गुरु जी में दिखावे का अणुमात्र भी अंश नहीं था। न किसी से वादविवाद और न शास्त्रार्थ। पठन और पाठन ये दो ही उनके कार्य थे जिनके अतिरिक्त संसार की अन्य महत्वाकांक्षायें उन्हें प्रतीत होती थीं। गंभीरता का यह हाल था कि अध्यापन काल के अतिरिक्त दिन भर में शायद एक दर्जन वाक्य ही बोलते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हों। बातचीत में सदा ठेठ पुरबिया भाषा का प्रयोग करते थे। हम ने खड़ी बोली बोलते हुए उन्हें कभी नहीं सुना। निम्नलिखित घटना से उन की भाषा और सादगी का ठीक-ठीक परिचय मिल सकता है। एक बार लम्बी छुट्टियों में गुरु जी बलिया जाने के लिए तैयार हुए। यात्रा के लिए एक खुर्जी सजाई गई जिसमें एक ओर कुछ कपड़े और दूसरी ओर सत्तू चने आदि बंधे हुए थे। रेल की यात्रा में गुरु जी न जल पीते थे और न खाना खाते थे। जब गाड़ी किसी बड़े स्टेशन पर ठहरती थी तब यदि प्लेटफार्म के नल पर नहाने का अवसर मिल गया और चादर तान कर ओट करने की भी सुविधा हुई तो चने चाब कर पानी पी लेते थे। हम विद्यार्थी लोग गुरु जी को गाड़ी में बिठाने के लिए स्टेशन तक गए। खुर्जी को कन्धे पर डाल कर गुरु जी तीसरे दर्जे के डिब्बे में प्रविष्ट हुए और सीट के नीचे की जगह में बैठने लगे तो हम लोगों ने सीट पर जगह खाली कराकर गुरु जी से निवेदन किया कि महाराज आप नीचे क्यों बैठते हैं सीट पर बैठिए, जगह तो है। गुरु जी ने बहुत भोले ढङ्ग पर उत्तर दिया "अरे यहीं ठीक है वहां से कोई उठाय देई है।" उस समय तो हम लोगों ने यह विश्वास दिला कर कि सारे रास्ते में आपको कोई नहीं उठाएगा, गुरु जी को सीट पर बिठा दिया था। आगे कैसी बीती वह भगवान जाने।

४

गुरु जी को हम जीता-जागता बोलने वाला पुस्तकालय कह सकते हैं। हमारे देश में आदिकाल से ऐसे पुस्तकालय विद्यमान रहे हैं। श्रुति और स्मृति इन दोनों शब्दों का उद्भवस्थान वहीं हैं। ऐसे प्रतिभासम्पन्न विद्वान् वेदों से ले कर काव्यशास्त्रों तक के ग्रन्थों को अपने मस्तक में सुरक्षित रख लेते थे। हमारे इतिहास के मध्यकाल में जब जड़ पुस्तकालयों पर जब विध्वंसक आक्रमण होने लगे तब उन सजीव पुस्तकालयों ने ही हमारी सांस्कृतिक निधि की रक्षा की थी। गुरु जी उन सजीव पुस्तकालयों की माला के शायद अन्तिम कड़ी थे। आज विद्वान् भी बहुत हैं और वक्ता भी बहुत परन्तु वैसा गम्भीर और मौन पांडित्य ढूंढने से भी नहीं मिलता। उन विद्वानों में प्रदर्शन नहीं था। इस कारण उन पर कुदृष्टि भी नहीं पड़ती थी। उस मारकाट के विषय में जैसे बहुत से ऊंचे मन्दिरों का विध्वंस हो गया वैसे ही बहुत से दिखाई देने वाले निर्जीव और सजीव पुस्तकालय भी काल के चक्र में आ गए। यदि उस खण्ड प्रलय में हमारी संस्कृति का आधारभूत साहित्य बचा रहा तो उस का श्रेय पं० काशीनाथ जी जैसे सजीव परन्तु मौन पुस्तकालयों को है। हम लोगों ने लगभग चार वर्ष तक गुरु जी से व्याकरण तथा दर्शनों का अध्ययन किया। वे हमारी शिक्षा के अविस्मरणीय चार वर्ष थे। अपने दार्शनिक साहित्य में हमारी श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती गई। यहां तक कि समय की परिस्थितियों के साथ उस का सामंजस्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत	४)००
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	१)०
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	४)००
वरुण की नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	)८७
वैदिक-सूक्तियां	,,	१)७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)००
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)००
सोम-सरोवर, सजिल्द,	श्री चमूपति	२)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१)२५
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२)२५

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक		मूल्य
संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग		)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७)००, ८)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		२)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली		)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द		७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		)७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		)५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४)००
सम्राट् रघु	,,	१)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू	,,	१)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	०)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	,,	)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग		३)५०
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१)२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरत्न	४)००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२)५०
लहसुन:प्याज़	श्री रामेश वेदी	२)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२)००
सोंठ, तीसरा ,,	,,	१)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	,,	१)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	,,	४)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)	,,	१)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	,,	)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५	बरगद	)७५
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१)२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१)७५

विविध पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए)		१)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		)७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१)५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१)५०
जमींदार	,,	२)००
सरला की भाभी, १, २ भाग	,,	२)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीष्म ऋतु के उपहार

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों को लाभ पहुँचाता है। बच्चे व बूढ़े सब इस का प्रयोग कर सकते हैं। मूल्य १।। माशा ०–६५।

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की कमज़ोरी दूर करने में इस से बढ़ कर दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी रहती है। मूल्य ०–७५ सेर।

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया जाता है। दिमाग को ठण्डक व तरावट दे कर ताज़गी लाता है। दिमाग की कमज़ोरी वाले रोगियों को यह तेल विशेष हितकर है। मूल्य १–३७ ४ औंस।

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह औषधि दुखती आँखों के लिए अकसीर है। कुकरे, दर्द व लाली इस से दूर होते हैं। मूल्य १–०० शीशी।

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातःकाल एक गिलास शर्बत तमाम दिन ताज़गी रखेगा। मू ३–०० बोतल, १–६५ छोटी शीशी।

आमला तेल

यह तेल बढ़िया आमले से तैयार किया जाता है। इस से बालों का गिरना, अकाल में पकना तथा गञ्ज आदि रोग दूर होते हैं। बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है। मूल्य १–२५ ४ औंस।

पायोकिल

पायोरिया रोग की परीक्षित औषधि है। इस के प्रयोग से दांतों से खून व पीप आना रुक जाता है तथा दांत चमकीले और दृढ़ हो जाते हैं। दैनिक प्रयोग के लिए भी उत्तम है। मूल्य १–५० छोटी शीशी।

बाल शर्बत

बच्चों के हरे-पीले दस्त, कब्ज़, उल्टी, खांसी तथा ज्वर आने पर विशेष गुणकारी है। मूल्य १–२५ बड़ी शीशी, ०–४० छोटी शीशी।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक श्री [illegible] विद्यालंकार, [illegible] गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

श्री देशमुख संग्रहालय में एक प्राचीन सिक्के का प्रवर्द्धक ताल की सहायता से सूक्ष्मता से अवलोकन कर रहे हैं ।

वर्ष ९
अङ्क १०

★

ज्येष्ठ
२०१४

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

पूर्णाङ्क १०६ ★
अप्रैल १९५७

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

भारतीय सँस्कृति का विकास तथा ह्रास — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
भारत में पीकदान का इतिहास — डॉ० पी. के. गोडे
महान् राजर्षि स्वामी श्रद्धानन्द — श्री अवधेश कुमार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति--७

भारतीय संस्कृति का विकास तथा ह्रास

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

महाभारत काल

एक समय था, जब यूरोपियन विद्वानों के लेखों से प्रभावित हो कर शिक्षित भारतवासी मानने लगे थे कि सिकन्दर के आक्रमण से पहले भारतवर्ष का कोई इतिहास था ही नहीं। जो कुछ था, सब काल्पनिक था। विन्सैन्ट के 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रन्थ ने कुछ वर्षों तक भारतवासियों पर ऐसा जादू किए रक्खा कि वे भारतभूमि पर सत्यसृष्टि का आरम्भ ईसा से ३ सदी पूर्व सदी मानने लगे थे। हर्ष की बात है कि धीरे-धीरे वह जादू टूट गया। अनेक महारथी विद्वानों ने गहरी छानबीन कर के पाश्चात्य विद्वानों के निराधार मन्तव्यों का भली प्रकार खन्डन कर के यह सिद्ध कर दिया कि भारत का इतिहास ईसा से तीन सौ पूर्व नहीं, अपितु दसों सदियों पूर्व आरम्भ हो चुका था। रामायण और महाभारत आदि जिन ग्रन्थों को पाश्चात्य विद्वानों ने केवल कल्पित कहानियों का नाम दिया था, वस्तुतः वे भारतीय इतिहास के आकर ग्रन्थ 'भंडार' हैं। उन में अत्यन्त प्राचीन काल से ले कर मध्यकाल तक का विस्तृत इतिहास मिलता है। यह ठीक है कि उन में समय-समय पर प्रक्षेपक 'मिलावट' होते रहे, परन्तु असली और नकली को एक-दूसरे से भिन्न करना अधिक कठिन नहीं है। हम थोड़े से परिश्रम से यह जान सकते हैं कि ये उन ग्रन्थों में कितना हिस्सा मौलिक है और कितना प्रक्षेपक? कितना इतिहास है और कितना उपाख्यान।

जब हम विवेचना और तर्क की सहायता से रामायण और महाभारत के रहस्य को समझने का यत्न करते हैं, तब हमारे सामने अपने देश का कई सदियों का इतिहास खुले रूप में प्रकट हो जाता है। इतिहास के विद्यार्थी के लिए दोनों महाकाव्यों की तुलना बहुत ही मनोरंजक और शिक्षादायक है। आज तक की खोज ने यह बात तो स्पष्ट कर दी है कि महाभारत का युद्ध आज से कम से कम ५००० वर्ष पूर्व हुआ था। उस के कुछ काल पश्चात् ही महाभारत लिखा गया होगा। इस दृष्टि से हम महाभारत को सावधानता पूर्वक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बढ़ कर और उस में से मौलिक सत्य को चुनने का यत्न करें तो आज से ५००० वर्ष पूर्व की भारतीय संस्कृति का चित्र खींच सकते हैं।

राम रावण युद्ध महाभारत से कितना समय पूर्व हुआ, यह निश्चय से कहना कठिन है। अब तक भी इतिहास लेखक इस विषय में कोई निश्चित मत नहीं बना सके। फिर भी परम्परा के आधार पर हम इतना तो कह सकते हैं कि रामायण और महाभारत के बीच में कई सदियों का अन्तर होगा। रामायण में हमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति का जो चित्र मिलता है, उसकी यदि हम महाभारत के समय की सभ्यता और संस्कृति से तुलना करें तो हम इस परिणाम पर पहुचेंगे कि मध्य की शताब्दियों में सभ्यता और संस्कृति दोनों में ही बहुत व्यापी परिवर्तन कर दिये थे। जो परिवर्तन हुए, उनका यदि हम एक सामूहिक शीर्षक देना चाहें तो हम 'भारतीय सभ्यता का विकास' यह शीर्षक दे सकते हैं।' विकास शब्द से यह नहीं समझना चाहिये कि हमारी जाति की प्रगति बुरी से अच्छे की ओर ही हुई। विकास और उन्नति में भेद है। उन्नति हुई या अवनति इसका निश्चय प्रत्येक मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार करता है। विकास से मेरा अभिप्राय केवल इतना है कि जो पहले बीज थे, वह अंकुर बन गये और जो पहिले अंकुर थे, वह वृक्ष रूप में परिणत हो गये।

रामायण और महाभारत के समयों की तुलना

रामायण और महाभारत के समयों की तुलना का विषय बहुत बड़ा और कठिन है, यहां उस विषय के विस्तृत विवेचन का अवसर नहीं है। मैं इस लेख में अपने अध्ययन के कुछ थोड़े से परिणामों को संक्षेप में निर्दिष्ट करूंगा जिससे मैं यह प्रकट कर सकूं कि प्राचीन भारतीय संस्कृति कोई संकुचित और गतिहीन वस्तु नहीं थी, प्रत्युत उसका हरेक पहलू नदी की धारा की तरह बहने वाला और विकासशील था। यह संभव है कि वह प्रवाह किसी अंश में उन्नति की ओर जाता हो किसी अंश में अवनति की ओर, परन्तु था वह प्रगतिशील, जो अपने आसपास की परिस्थितियों से प्रभावित होता था और उन्हें प्रभावित करता था।

१. धार्मिक दृष्टि से रामायण काल को हम आर्य काल का नाम दे चुके हैं, उस समय ऋषियों की प्रधानता थी, वेद वक्ताओं को ऋषि कहते हैं, वेदों के व्याख्याकार महान ऋषियों के आश्रम देश के स्थान स्थान पर फैले हुए थे, राजा लोग और प्रजा गण भी प्रत्येक सन्देह को दूर करने के लिये थोड़े ही प्रयत्न से ऋषियों के आश्रमों में पहुंच जाते थे और कर्तव्य की व्यवस्था ले लेते थे। वैदिक देवताओं की वैदिक नामों से अर्चना होती थी, ऋषि लोग आश्रमों में रह कर यज्ञ करते थे और क्षत्रिय पुत्र उनके यज्ञों की रक्षा करते थे, यज्ञों के नष्ट करने वाले लोग धर्म और राज्य के शत्रु समझे जाते थे और नष्ट कर दिए जाते थे। रामायण काल का यह सरल सा धार्मिक चित्र है, जिसे रामायण के पूर्वार्द्ध में पग पग पर चित्रित पाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाभारत के समय की धार्मिक व्यवस्था इतनी सरल नहीं थी, महाभारत में हम अनेक देवताओं का वर्णन तो पाते ही हैं, देवताओं के परस्पर संघर्ष की चर्चा भी पाते हैं। इससे यह सूचित होता है कि भिन्न २ देवताओं को पूजने वाले वर्ग अपनी महिमा को बढ़ाने के लिए देवताओं के संघर्ष की कल्पना करके अपने आराध्य देव की विजयी बनाते थे। ऋषियों के आश्रमों और उनके यज्ञों की रामायण जैसी चर्चा हमें महाभारत में नहीं मिलती। प्रतीत होता है कि वे ऋषि श्रेणी के महात्मा उस समय दुर्लभ हो गए थे। केवल व्यास मुनि कभी-कभी सांसारिक कार्यों में दखल देने के लिए आ जाते थे। परन्तु वह भी वस्तुतः उन का पारिवारिक मामला ही था। महाभारत के समय में एक नई बात यह दृष्टिगोचर होती है कि विष्णु नाम से भगवान् की महिमा का प्रचार बढ़ गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत काल में धर्म का रूप अधिक कठिन और पेचीदा हो गया था। यह बात महाभारत के यक्ष युधिष्ठिर संवाद के निम्नलिखित श्लोक से बिलकुल स्पष्ट होती है।

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्नाः,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्,
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

श्रुतियां अनेक हैं, स्मृतियाँ भी अनेक हैं। ऐसा कोई मुनि नही, जिसे एकभाव प्रमाण माना जाय। धर्म का रहस्य अत्यन्त गम्भीर है। इस कारण उसी को सन्मार्ग समझना चाहिए, जिस पर महापुरुष चलते हैं।

धर्म के सम्बन्ध में इस से अधिक पेचीदा और अनिश्चित व्यवस्था नहीं दी जा सकती। अनेक श्रुतियां बन गई, इसे हम बुद्धि का विकास ही कहेंगे। देवता भी अनेक हो गए और मुनि भी। इसे हम मनुष्य बुद्धि का चमत्कार तो अवश्य ही रहेंगे। परन्तु इस से जन-साधारण कल्याण हुआ या अकल्याण, इस का उत्तर महाभारत युद्ध का परिणाम स्वयं दे सकता है।

सामाजिक अवस्था

रामायण और महाभारत के समयों की सामाजिक अवस्थाओं की तुलना से भी हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि समाज के उन सर्वसम्मत आदर्शों का ह्रास हो गया था, जिस का उज्जवल चित्र हम रामायण में पाते हैं। रामायण के समय में सत्य और असत्य, उचित और अनुचित में भेद करना आसान था। प्रत्येक प्रजा-जन भी समझ सकता था कि कैकेयी का काम बुरा और सीता का अच्छा था। उस के लिए यह निश्चय करना भी कठिन नहीं था कि राम का व्यवहार आर्योचित और रावण का व्यवहार राक्षसोचित था। जब राम और रावण में युद्ध हुआ तो राघव वंश के कोई आर्य विरोधी रावण के साथी बन कर राम को पराजित करने के लिए नहीं पहुंचे। जब भरी सभा में द्रौपदी का अपमान हुआ तब भीष्म और द्रोण जैसे बुजुर्गों को यह कह कर अपने मौन का यह समर्थन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करना पड़ा कि--

अर्थस्य पुरुषो दासः दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः ।।

मनुष्य धन का दास है, धन मनुष्य का दास नहीं। क्या करूं महाराज, मैं धन द्वारा कौरवों के हाथ बिका हुआ हूं।

महाभारत के समय में ब्राह्मण लोग क्षत्रियों की सेनाओं में आ कर लड़ते थे, क्षत्रिय खुला मद्यपान करते थे, जुआ खेलते थे और स्त्रियों का अपहरण करके आसुर विवाह भी करते थे। इस तरह मनुष्यों की व्यक्तिगत स्वाधीनता खूब बढ़ गई थी। पुत्र पिताओं का तिरस्कार करते थे और भाई-भाइयों से द्रोह करते थे। वर्तमान समाज-शास्त्र की भाषा में हम कह सकते हैं कि मानव की स्व-तन्त्रता अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई थी। अर्वाचीन बुद्धिवाद के अनुसार इसे बहुत ऊंचे दर्जे का बुद्धि स्वातन्त्र्य 'फ्रीडम आफ थाट' कह सकते हैं।

भारत की वायुसेवा

भारत की वायुसेवा का राष्ट्रीयकरण अगस्त १९५३ में हुआ था। पहली पंचवर्षीय आयोजना की समाप्ति पर एयर इंडिया इन्टर-नेशनल के पास ९ विमान थे, जो १५ देशों को जानते थे तथा उन का वायु-मार्ग २३,४८३ मील लम्बा था। इंडियन एयर लाइन्स कार्पो-रेशन के पास ९२ विमान थे, जो देश के प्रमुख केन्द्रों में सम्बन्ध स्थापित करते थे और उन का वायु-मार्ग १९,९८५ मील लम्बा था। दूसरी आयोजना में दोनों कार्पोरेशन के लिए ३० करोड़ ५० लाख रु० की व्यवस्था की गई है, जबकि पहली आयोजना में ९ करोड़ ५० लाख रु० की व्यवस्था की गई थी। (वास्तव में १५ करोड़ रु० से अधिक खर्च हुआ था)।

पहली आयोजना में ९ नए हवाई अड्डों का निर्माण हुआ (१९५६ के आखीर में एक और हवाई अड्डा बना)। इस तरह १९५७ के प्रारम्भ में नागरिक उड्डयन विभाग के पास ८२ हवाई अड्डे हो गए। कन्वेन्शन आफ इंटरनेशनल सिविल एवियेशन द्वारा निर्धारित स्तर के अनुसार हवाई अड्डों पर सुविधाओं की व्यवस्था करने में लगभग १८ करोड़ रु० खर्च होगा। इस का काम दूसरी आयोजना की अवधि में शुरू होगा। १९५६ के पूर्वार्द्ध रात्रि वायु डाक सेवा द्वारा प्रतिदिन औसतन १४९ यात्री ७४४५ और माल और १०,८७५ पौंड डाक भेजी गई थी। १९५५ में केवल ६४ यात्री, ३,५८८ पौंड माल तथा ९८३३ पौंड डाक भेजी गई थी। दूसरी आयोजना की अवधि में ८ नए ग्लाइडर हवाई अड्डे १० नए ग्लाइडिंग केन्द्र और ५ उड़न क्लब खोले जायेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आदर्श गृहस्थ-स्वामी श्रद्धानन्द

श्री धर्मवीर वेदालङ्कार[1]

"बाबू जी ! अब मैं चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आप को तो मुझ से अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जाएगी, किन्तु इन बच्चों को मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें।" यह था वह अन्तिम पत्र जो मृत्यु से कुछ ही समय पहले पति अनुरक्ता पत्नी ने एक कागज पर लिख कर कलमदान में रख दिया था। इस साधारण पत्र ने मुंशीराम जी के हृदय में प्रकाश की वह किरण जगा दी जो भावी जीवन के लिये पथ प्रदर्शक बन गई। केवल ३६ वर्ष की आयु में १३ अगस्त १८९१ में धर्मपत्नी शिवदेवी जी का देहान्त हुआ। चारों बच्चों की आयु सामान्य थी। छोटे बच्चे श्री इन्द्र जी की आयु केवल २ वर्ष की थी। इन से बड़े श्री हरिश्चन्द्र की आयु ४ वर्ष की थी। अमृतकला ६ वर्ष और वेदकुमारी १० वर्ष की थी। बच्चों को लालन-पालन के लिए मुंशीराम जी पर दूसरा विवाह करने को सब ओर से जोर डाला गया परन्तु वे अपने विचार पर दृढ़ रहे और बच्चों के लिये माता के अभाव की पूर्ति करने का, जो संकल्प किया उस पर दृढ़ रहे। यह दृढ़ता ही उन के जीवन के महान् उत्कर्ष का निमित्त बन गई और गृहस्थ आश्रम पत्नी के देहान्त के साथ ही प्रायः पूरा हो गया। आर्यसमाज के प्रचार की धुन बहुत पहले ही लग चुकी थी। अब पूरी तरह उसी में रम गए।

लाला मुंशीराम जी का विवाह सम्बन्ध जालन्धर के ऐसे रईस परिवार में हुआ, जो बाद में आर्यसमाज के रङ्ग में रङ्ग गए और लाला मुंशीराम जी भी उसी रङ्ग में रङ्ग गए। दोनों परिवारों का यह मिलन आर्यसमाज के लिए वरदान सिद्ध हुआ। दोनों परिवारों में जन्म लेने वाले लाला देवराज जालन्धर की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था कन्या महाविद्यालय और लाला मुंशीराम हरिद्वार की सुप्रसिद्ध शिक्षा-संस्था गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक के नाते शिक्षा के क्षेत्र में वह महान् कार्य कर गए जिस को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। १८८६ में कन्या महाविद्यालय की और १९०२ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की गई थी। वैसे कन्या महाविद्यालय की स्थापना की कल्पना करने वाले श्री मुंशीराम जी ही थे। लाला देवराज जी की बहिन शिवादेवी जी के साथ लाला मुंशीराम जी का विवाह सम्बन्ध हुआ था।

लाला मुंशीराम जी अपने विवाह और भावी पत्नी के सम्बन्ध में जो कल्पना किए हुए थे वे पूरी न हुईं। स्वच्छ जीवन बिताते हुए और अंग्रेज़ी उपन्यास पढ़ते हुए उन्होंने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में अपने हृदय में जो चित्र अङ्कित किया था उस के सर्वथा विपरीत पत्नी को पा कर वे एकाएक निराश हो गए; परन्तु उस निराश के साथ ही एक नई आशा

१. भूतपूर्व मन्त्री, अखिल भारतीय श्रद्धानन्द ट्रस्ट, दिल्ली।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी हृदय में घर कर गई। उन्हों ने स्वयं लिखा है कि—"मैं विवाह के धूम-धड़क्के से निवृत्त हो कर बहुत निराश हुआ। मैंने समझा था कि वधू युवति मिलेगी। परन्तु वह अभी बाल्यावस्था में ही थी। फिर यह निश्चय किया कि मैं उसे स्वयं पढ़ाऊंगा और इस विचार ने मुझे बहुत ही सन्तोष दिया। मैंने उसी समय बाल विवाह की कुप्रथा के भयङ्कर परिणाम अनुभव किए थे और इसी लिए आर्यसमाज में प्रवेश करते ही मैंने इस के संशोधन में बड़ा भाग लिया। मेरा निश्चय है कि यदि उस समय विवाह का ख्याल ही मेरे अन्दर न डाला जाता, तो काशी से ग्रेजुएट बन कर मैं किसी अन्य ऊंची दशा में चला जाता। कम से कम धर्मपत्नी की आयु १६ वर्ष की होती और परस्पर की प्रसन्नता से आंखें खोल कर विवाह होता तो मैं उस अन्ध-कूप में गिरने से बच जाता, जिस में आगामी दो-ढ़ाई वर्ष गिरा रहा।"

ये विचार विवाह के समय के नहीं हैं परन्तु उस समय के हैं जब लाला मुंशीराम कल्याण-मार्ग के पथिक बनने के बाद आत्म-चिन्तन में लग चुके थे। गत जीवन था सिंहावलोकन करते हुए वे इस परिणाम पर पहुंचे थे। बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि शिवदेवी एक आदर्श महिला सिद्ध हुई। उन का पति अनुराग ऐसा अनुकरणीय था कि पतन के उस अन्धकूप से मुंशीराम जी का उद्धार करने में वे परम सहायिका सिद्ध हुईं। उन्होंने जिस धैर्य, साहस और साहिष्णुता से काम लिया वह कमाल था वैसे विवाह के समय लाला मुंशीराम नास्तिकता की लहर में बह रहे थे। किसी भी धर्म में उन का विश्वास नहीं था। आस्तिक भावना पर नास्तिक भावना की मोटी काली चादर पड़ी हुई थी।

पिता जी के आदेश पर मुंशीराम जी पत्नी सहित बरेली चले आए। यहां का अन्धकारमय जीवन सम्भवतः घोरतम पतन का जीवन था। पत्नी ने अशिक्षिता होते हुए भी जिस अनुराग का परिचय दिया उस से मुंशीराम जी की आंखें खुल गईं। एक दिन कुसंगति में पड़ कर मुंशीराम जी खूब पी गए। शराब ने ऐसा रङ्ग जमाया कि उस के नशे में दो मित्रों के बहकावे में आ कर एक वेश्या के यहां पहुंच गए। उस से पहले केवल महफ़लों में नाच तमाशा ही देखा था लेकिन वेश्या के यहां जाने का केवल पहला ही मौका था। न मालूम भीतर क्या भाव पैदा हुए कि वहां से तुरन्त लौट आए। "नापाक-नापाक" कहते हुए नीचे तो उतर आए परन्तु नशा नहीं उतरा था। घर पहुंच कर बैठक में जा कर तकिए पर लेट गए। नौकर ने जूते उतारे और उसी के सहारे ऊपर पहुंचे। बरामदे में पहुंचते ही उल्टी शुरू हो गई। पत्नी ने आ कर उन को संभाला, मुंह धुलाया और कपड़े उतारे। बिस्तर पर लिटा कर सिर और माथा दबाना शुरू किया, घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार की वहां छाया भी नहीं थी। स्नेहमयी माता की ममता, सहोदरी बहन का प्रेम, आदर्श पत्नी की भक्ति, स्वामि-भक्त सेवक की सेवा और परोपकारी पुरुष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की उदारता आदि के सब गुणों का उस व्यवहार में अपूर्व मेल था। मुंशीराम जी गहरी नींद में सो गए। रात को एक बजे आंख खुली, तो पत्नी बैठी हुई पैर दबा रही थी। पानी मांगने पर गरम दूध का गिलास ला कर उस ने मुंह को लगा दिया। पता चला कि पत्नी ने अभी भोजन न किया था, पूछने पर उस ने कहा कि आप के भोजन किए बिना मैं कैसे कर लेती? सारी घटना सुना कर मुंशीराम जी ने क्षमा मांगी तो पत्नी ने केवल इतना ही कहा कि "आप मेरे स्वामी हैं। यह सब सुना कर मेरे सिर पाप क्यों चढ़ाते हो? मुझे तो माता जी का आदेश यही है की आप की सेवा में लगी रहूं।" मुंशीराम जी ने स्वयं स्वीकार किया कि "रात को बिना भोजन किए दोनों सो गए और दूसरे दिन मेरा जीवन ही बदल गया।"

दूसरी घटना सेवापरायण शिवदेवी के चरित्र पर अधिक प्रकाश डालती है। शराब के पारसी व्यापारी का तीन सौ रुपया मुंशीराम जी को देना था। उस को टाल दिया जाता परन्तु रुपया देने की चिन्ता कैसे टलती? शिवदेवी ने चिन्ता जानने का आग्रह किया। चिन्ता का कारण मालूम कर भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करने से पहले ही पत्नी ने हाथ से कड़े उतार कर मुंशीराम जी को दे दिये। मुंशीराम जी ने संकोच से कहा "यह कभी नहीं हो सकता। तुम को और आभूषण देने के बजाय मैं तुम्हारे जो आभूषण हैं उन से भी तुम्हें कैसे वंचित करूं।" पत्नी ने तुरन्त दूसरी जोड़ी दिखा कर कहा, "एक पिता जी ने और दूसरी श्वसुर जी ने दी है इन में से एक बेकार है। यह शरीर जब आप का है तब इस को लेने में संकोच क्यों।" अन्त में कड़े दे कर बिल का रुपया चुका दिया गया। शेष रुपया शिवदेवी जी की सुपूर्दगी में रख दिया गया और यह प्रतिज्ञा की कि कमाने के बाद इस रकम को पूरा कर के यह जोड़ी बनवाई जावेगी। यह एक साधारण घटना है परन्तु मुंशीराम जी के जीवन में परिवर्तन लाने में इस घटना का, असाधारण हाथ है।

गृहस्थ के सम्बन्ध में मुन्शीराम जी के सारे विचार और कल्पनाएं ऐसी घटनाओं से बदल गईं। अंग्रेज़ी उपन्यासों के आधार पर खड़े किए गए हवाई महलों का स्थान कठोर वास्तविकता ने ले लिया और उसी दृष्टि से अपने गृहस्थ के सम्बन्ध में सोचना आरम्भ किया। शिवदेवी को शिक्षित करने का संकल्प कर के वे उस की पूर्ति में लग गए।

माई लाडी नाम की एक बूढ़ी स्त्री घर-घर जा कर स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखाया करती थी। शिवदेवी जी ने भी उस से पढ़ना-लिखना शुरू किया। बाद में उस स्त्री ने मिशन के स्कूल में नौकरी कर ली और परिचित घरों की लड़कियों को स्कूल के लिए ले जाना शुरू किया। मुंशीराम जी की बड़ी लड़की वेदकुमारी को भी उस के कारण मिशन स्कूल में भर्ती करा दिया गया। उन दिनों की एक घटना का उल्लेख मुंशीराम जीं की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पंजिका की तारीख १६ अक्टूबर १८८८ (२ कार्तिक सम्वत् १९४५) में इस प्रकार लिखा गया मिलता है "कचहरी से लौट कर जब मैं घर गया तो वेद कुमारी दौड़ कर आई और जो भजन पाठशाला में सीख कर आई थी सुनाने लगी—

"इक बार ईसा-ईसा बोल,
तेरा क्या लगेगा मोल।
ईसा मेरा राम रसिया,
ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया॥"

मैं बहुत चौकन्ना हुआ, तब पूछने पर पता लगा कि आर्य-जाति की पुत्रियों को अपने शास्त्रों की निन्दा करनी भी सिखाई जाती है। निश्चय किया कि अपनी पुत्रियों के लिए पुत्री-पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिए।

तब लाला मुंशीराम आर्य-समाज में प्रवेश करने के बाद जालन्धर आर्य-समाज के प्रमुख नेता बन चुके थे। उन को इस घटना का सहन करना सम्भव भी न था। अपनी सन्तान को अपने शास्त्रों और पूर्व पुरुषों की निन्दा करते हुए वे देख नहीं सकते थे। तीसरे ही दिन आर्य-समाज के अधिवेशन में उन्होंने उस घटना की चर्चा की तो पता चला कि अन्य आर्य-समाजियों को भी अपनी कन्याओं की शिक्षा के सम्बन्ध में वैसी ही शिकायत है। रात को अपील लिखी गई और कन्या-पाठशाला के लिए चन्दा जमा करना शुरू किया गया। जालन्धर कन्या-महाविद्यालय सरीखी विशाल संस्था इसी प्रयत्न का शुभ परिणाम है।

गृहस्थ-जीवन में पत्नी का वियोग पति के लिये सब से बड़ा दुःख है। उस पति के लिए यह दुःख और भी भारी बन जाता है जिस ने अपनी पत्नी के जीवन का निर्माण कुछ प्रयत्न कर के किया होता है। आर्य-समाजियों के घरों की स्थिति समान्य हिन्दुओं के घरों से कुछ अधिक अच्छी नहीं थी। इस लिए लाला मुंशीराम जी और लाला देवराज जी ने उन दिनों में महिला उत्थान के लिए जो प्रयत्न किए थे वे अत्यन्त सराहनीय थे। शिवदेवी जी को उस का दोहरा लाभ मिला। लाला देवराज जी की बहिन होने से उस परिवार में पैदा हुई प्रगति एवं जागृति का भी उन को लाभ मिला। उन की माता जी धर्म-परायण, भक्ति भावना प्रधान महिला थीं। नित्य-नियम से वह पूजा-पाठ आदि किया करती थीं। उन के वे संस्कार शिवदेवी जी में मुंशीराम जी के प्रयत्नों से अभी फलने-फूलने शुरू हुए ही थे कि दैव के प्रकोप ने उन के गृहस्थ को आ घेरा। घर में नई सन्तान के आने की खुशियां सहसा ही दुःख में परिणत हो गईं। पांचवीं सन्तान के पैदा होने के समय सम्वत् १९४८ के श्रावण मास के अन्त में शिवदेवी जी को असह्य प्रसव वेदना हुई। डाक्टरों की सहायता से कन्या तो पैदा हुई, किन्तु जन्म के साथ ही उन का देहान्त हो गया। मानों, वह अगली आवश्यम्भावी घटना की ओर एक संकेत था। मुंशीराम जी अपना कुछ और ही कार्य-क्रम बनाए हुए थे। प्रसव-वेदना से अत्यन्त निर्बल हो जाने से पत्नी को धर्मशाला के आर्य-समाज

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के उत्सव पर वायु परिवर्तन के लिए और कुछ वहां पर्वत पर बिताने के लिए अपने साथ ले जाना चाहते थे परन्तु उस अनहोनी की उन को भी कोई ऐसी कल्पना नहीं थी। इस लिए १५ अप्रैल को धर्मशाला जाने का कार्यक्रम स्थिर किया जा चुका था। लेकिन १२ भाद्रपद को ही शिवदेवी जी का स्वास्थ्य एकाएक फिर बिगड़ गया। शाम को जो दस्त और कै आना शुरू हुई, तो औषधोपचार के बाद सबेरे तीन बजे बन्द हुई। १३ भाद्रपद का दिन आराम से बीता, परन्तु १४ तारीख को फिर दस्त शुरू हो गए। डाक्टरी औषधोपचार के बाद भी स्वास्थ्य संभला नहीं। माता जी भाई देवराज जी तथा अन्य सगे सम्बन्धी सब चिन्ता में डूब गए। माता जी ने पुत्री को गोद में लिया। रात इसी प्रकार बीती। रात्रि को वह माता जी से बोली कि "यह कितना बड़ा अपराध है कि जिन की मुझे सेवा करनी चाहिए वह मेरी सेवा कर रहे हैं।" माता जी ने सान्त्वना दी और देवराज जी ने कुछ भजन सुनाने शुरू किए। १५ भाद्रपद सम्वत् १९४८ (३१ अगस्त १८९१) की सबेरे साढ़े चार बजे मुंशीराम जी बाहर खड़े डाक्टर से परामर्श कर रहे थे। परामर्श करने के बाद लगभग ५ बजे भीतर गए तो शिवदेवी जी ने अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में कहा कि "बाबू जी! बाबू जी!" मुंशीराम जी ने नाड़ी हाथ में ली और "ओ३म्" का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिए। मृत्यु को पराजित करने में कुछ भी उठा न रखा गया, किन्तु उस को कौन पराजित कर सकता है? जीवन की यही अन्तिम सीमा है जिस पर पहुंच कर मनुष्य को अपनी सीमित शक्ति और साधनों का परिचय मिलता है।

सबेरे दुःख पूर्ण समाचार चारों ओर शहर में फैल गया। जिस ने सुना वही सम-वेदना प्रगट करने आ पहुंचा। हजारों की उपस्थिति में सबेरे ९ बजे वैदिक विधि से दाह संस्कार किया गया। मुंशीराम जी ने अत्यन्त धैर्य और साहस के साथ इस अपार संकट को झेला। केवल १८ वर्ष गृहस्थ बिताने के बाद इस विपति का आना एक पहाड़ टूटने के समान था किन्तु जिस अविचल भाव से उस का सामना किया गया, उस का पता इसी से चलता है कि लाला मुंशीराम जी ने धर्मशाला आर्य-समाज के उत्सव पर जाने का विचार स्थगित नहीं किया। निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार हरिश्चन्द्र के साथ धर्मशाला चल दिए। ताई जी तीनों बच्चों को अपने साथ तलवन ले गईं। उन्हों ने इस संकट में बड़ा सहारा सहा दिया। मुंशीराम जी ने दो मास धर्मशाला और उस के आस-पास में आर्य-समाज का प्रचार करने में लगा दिए।

प्रारम्भ में शिवदेवी जी के पत्र का उल्लेख किया गया है वह उन्हों ने रात्रि के एक बजे पुत्री वेद कुमारी से कलम कागज ले कर लिखा था और पुत्री ने उसे कलमदाम में रख दिया। मृत्यु के बाद जब उस का सब सामान संभाला गया तब पुत्री ने वह पत्र मुंशीराम जी के हाथ में ला कर दिया। निःसन्देह इस आदर्श-गृहस्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के निर्माण में मुंशीराम जी की अपेक्षा शिवदेवी जी को कहीं अधिक श्रेय है किन्तु उन की मृत्यु के बाद आदर्श को निभाने में मुंशीराम जी ने जिस वीरता का परिचय दिया वह आज के युग में कितने पुरुषों में पाई जाती है। यह असाधारण धीरता और वीरता मुंशीराम जी के जीवन के वह गुण हैं जो सदा ही किसी न किसी रूप में प्रगट होते रहे हैं और उन के ही कारण उन्हों ने अपने जीवन का आदर्श ढङ्ग से निर्माण कर एक ऐसा उदाहरण अपने पीछे छोड़ दिया जो अनेक संसारी स्त्री-पुरुषों के जिए पथ-प्रदर्शक बन गया है। आसाधारण पुरुषों के जीवन के निर्माण का यही क्रम है।

सिक्कों के जोवन की झांकियां

सबसे पहला भारतीय रुपया नवाब सिराजुद्दौला की राय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी, कलकत्ते में स्थापित एक टकसाल में ढाला गया।

प्रथम आधुनिक टकसाल की बुनियाद १८२४ में कलकत्ते में रखी गई। इस टकसाल में १३ लाख रु० की एक मशीन रखी गई, जो एक अगस्त १८२९ को चालू हुई। उस समय यह टकसाल प्रतिदिन दो लाख चांदी के सिक्के बना सकती थी।

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद अलीपुर में एक नई टकसाल का निर्माण कार्य शुरू किया गया और १९ मार्च १९५२ को वित्त मन्त्री श्री सी० डी० देशमुख ने इस का उद्घाटन किया। यह टकसाल प्रतिदिन प्रति पारी (८ घन्टे) १२ लाख सिक्के बना सकती है। टकसाल का उद्घाटन करते हुए श्री देशमुख ने कहा था कि "यदि भारत सिक्कों की दशमिक प्रणाली अपनाने का निश्चय करे तो नये सिक्के ढालने के लिए यह टकसाल बहुत प्रसिद्ध उपयोगी सिद्ध होगी।

१९१४ से भारत ने कई देशों के लिए सिक्के ढाले हैं, जिन में आस्ट्रेलिया, भूटान, श्री लङ्का, मिस्र, पाकिस्तान, सऊदी अरब, स्ट्रेट सेटिलमेंट, भारत के पुर्तगाली उपनिवेश तथा ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका के देश भी हैं। इस में भारत की रियासतों के लिए भी सिक्के ढाले गए।

इस समय देश में तीन टकसालें हैं—एक अलीपुर में, एक बम्बई में और एक हैदराबाद में। अनुमान है कि हफ्ते में ५४ घन्टे काम कर के ये टकसालें पहली अप्रैल १९५७ तक ६१ करोड़ सिक्के बना लेंगी। ये तीनों मिल कर प्रति मास लगभग ८ करोड़ सिक्के बनाती हैं।

कलकत्ते की टकसाल ने युद्ध के समय १९४४-४५ में १,०४,८७,२७,८०० सिक्के ढाले। विश्व में शायद ही कहीं इतने सिक्के ढले होंगे।

कलकत्ते की टकसाल में पदक (मेडल) आदि भी बनाये जाते हैं और जनता के लिए नाप के पैमानों और बाटों की जांच की जाती है।

विभिन्न मूल्यों के सिक्कों के ढालने में निम्नलिखित धातुओं और अपमिश्रणों का इस्तेमाल होता है। शुद्ध निकिल (रुपया अठन्नी, चवन्नी) तांबा और निकिल (दुअन्नी, इकन्नी और अधन्ना) और तांबा (पैसा)।

निकिल के नकली सिक्के बनाना बहुत कठिन है। क्योंकि इस के पिघलाने के लिए अत्यधिक ताप (१४५२० सेंटीग्रेड) आवश्यकता होती है और सिक्के बनाने के लिए विशेष प्रकार के उपकरण इस्तेमाल किये जाते हैं।

कलकत्ते की टकसाल में कुछ जाली सिक्के प्रदर्शन के लिए रखे हैं और नीचे लिखा हुआ है "धन का लोभ सब पापों का मूल है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अमरीका में संस्कृत-साहित्य का अध्ययन

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

भारत के प्राचीन संस्कृत वाङ्मय के अनुशीलन और अन्वेषण का काम अमरीका में अपेक्षाकृत बहुत पीछे प्रारम्भ हुआ। द्वितीय महायुद्ध के समय तक बहुत कम अमरीकी विद्वान् संस्कृत-विद्याओं की खोज में प्रवृत्त हुए।

संस्कृत ग्रामर के लेखक

प्राध्यापक विलियम ड्वाइट ह्विटनी (१८२७-१८९४) पहले अमरीकन मनीषी थे जिन्हों ने संस्कृत-विद्यान्वेषी प्रख्यात जर्मन विद्वान् वेबर और रुडौल्फ रौथकी शिष्यता में संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। सन् १८५० में श्री ह्विटनी महोदय जर्मनी गए और वहां तीन वर्ष तक बर्लिन और ट्यूबिंगन विश्वविद्यालय में रह कर संस्कृत का अध्ययन करते रहे। सन् १८५४ में आप अमरीका के विख्यात् विद्या-केन्द्र येल विश्वविद्यालय में संस्कृत साहित्य के प्रोफेसर बनाए गए। आपने "तैत्तिरीय प्रतिशाख्य" का सम्पादन किया। यह पुस्तक अमरीकी प्राच्य विद्या परिषद् (अमेरीकन ओरियेन्टल सोसायटी) की पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित होती रही। सन् १८५६ में आपने अपने गुरु रुडौल्फ रौथ के साथ मिल कर "अथर्व वेद संहिता" का संपादन किया। सन् १८६२ में आपने "अथर्व वेद प्रतिशाख्य" का अविकल भाषान्तर विषद् टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया। आपकी लिखी "संस्कृत ग्रामर" सन् १८७१ में प्रकाशित हुई। यह आज तक अपनी विशेषता के कारण विद्वन्मान्य बनी हुई है। अथर्व वेद के अंग्रेजी अनुवाद (१९ काण्ड पर्यन्त) के कारण भी आप की प्राच्य विद्या विशारदों में बड़ी प्रतिष्ठा है। उसे आप अपने जीवन काल में प्रकाशित हुआ नहीं देख पाये। उस अनुवाद को आगे जा कर सन् १९०५ में श्री चर्ल्स रौकवेल लेनमान (१८५९-१९४१) ने सुसंपादित कर के छपाया।

ह्विटनी की परम्परा में अन्य कई अमरीकी विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय की खोज के लिए अच्छा श्रम उठाया है। जिन में चार्ल्स रौकवैल लेनमान, मौरिस्, ब्लूम फील्ड, ई० वाशबर्न हौपकिन्स, हेनरी क्लार्क वारेन, फैंकलिन ईजरटन, नार्मन ब्राऊन और मरे एमेन्यू के नाम अग्रगण्य हैं।

लेनमान

श्री लेनमान भी जर्मनी जा कर तीन वर्ष तक संस्कृत-विद्यान्वेषण में प्रवीणता प्राप्त करते रहे। वहाँ से आ कर १८७६ में आप जौन हौपकिन्स विश्वविद्यालय में संस्कृत-साहित्य के प्राध्यापक नियुक्त किए। यहां पर चार वर्ष तक अध्यापक कार्य कर के आप अमरीका के प्रख्यात हार्वर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत-साहित्य के प्रध्यापक बनाए गए। सन् १८८९ में आप ने अपने भारतवर्ष की यात्रा की और अपने विश्वविद्यालय के लिए आप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत से संस्कृत तथा प्राकृत की बहुत ही अच्छी-अच्छी हस्तलिखित पुस्तकें एकत्र कर के ले गए। सन् १९०० में अपने राजशेखर की प्रसिद्ध नाटिका "कर्पुर मंजरी" का आंग्ल भाषान्तर किया। आप कई वर्षों तक अमेरिकन ओरियेन्टल सोसायटी की पत्रिका का सम्पादन करते रहे। आपने संस्कृत भाषा सीखने के लिए संस्कृत रीडर का भी प्रणयन किया है।

ब्लूम फील्ड

श्री मौरिस ब्लूम फील्ड (१८५५-१९२८) का जन्म आस्ट्रिया में हुआ था। सन् १८६७ में आप अमरीका चले गए और फिर सदा के लिए वहीं पर बस गए। आप ने शिकागो और हौपकिन्स विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई और दो वर्ष तक जर्मनी में रह कर बर्लिन और लाइपजिग के विश्वविद्यालयों में अध्ययन करते रहे। सन् १८८१ में आप को हौपकिन्स विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा और तुलनात्मक भाषा शास्त्र का प्रोफेसर बनाया गया। आप का वेदों का अध्ययन अच्छा था। सन् १८९७ में आपने अध्यापक में मैक्समूलर द्वारा सम्पादित "पूर्व की पवित्र ग्रन्थं माला" के लिए अथर्व वेद के मन्त्रों का भाषान्तर किया। सन् १८९० में आपने "कौशिक सूत्र" का सम्पादन किया। आपने ही अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा का संपादन किया है और ट्यूबिगन (जर्मनी) के प्रोफेसर रिचार्डवान गार्वे के साथ मिल कर उक्त समस्त शाखा की फोटो प्रति भी तैयार की है। सन् १९०८ में आपकी दो प्रसिद्ध कृतियां "वैदिक कौन्कोडैन्स और वेदों की धार्मिक शिक्षाएं" प्रकट हुई। सन् १९१६ में आपकी एक और महत्वपूर्ण पुस्तक "ऋग्वेद की पुनरुक्तियां" प्रकाशित हुई। आपने जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जीवन कथा और शिक्षाओं पर भी एक पुस्तक लिखी है।

अमरीका की सौ वर्ष पुरानी संस्था अमेरिकन ओरियेन्टल सोसायटी ने भारतीय विद्यानुशीलन के क्षेत्र में बड़ा सराहनीय काम किया है। इस संस्था की सामयिक पत्रिका के अधिकतर पन्ने भारतीय विषयों से भरे रहते हैं। इस पत्रिका में ऐतिहासिक खोज के अनेक उच्चकोटि के निबन्ध प्रकट हुए हैं। जिन में प्रो. इजरटन (येल विश्वविद्यालय) का पंचतन्त्र विषयक निबन्ध विशेष उल्लेखनीय है। अमरीका के जीवित प्राच्य विद्या पंडितों में सब से अधिक प्रतिष्ठित हैं। भाँडारकर प्राच्य विद्यामन्दिर पूना द्वारा आयोजित महाभारत के प्रामाणिक संस्करण के सम्पादन में भी आप अपना सहयोग दे रहे हैं। अभी पिछले दिनों ही आपने बौद्धयुगीन संकर-संस्कृत-शब्दकोश और व्याकरण निर्माण का भागीरथ कार्य समाप्त किया है।

श्रीयुत लेनमान महोदय ने भी संस्कृत अन्वेषण के क्षेत्र में बड़ा प्रशंसनीय काम किया है। हार्वर्ड ओरियेन्टल ग्रन्थ माला में आपने संस्कृत, प्राकृतिक और पाली भाषा के अनेक ग्रन्थों के सुसंपादित संस्करण प्रकाशित किए हैं। श्री लार्ड फ्रेडरिक गेल्डनर कृत ऋग्वेद का अविकल भाषान्तर तीन खण्डों में इस ग्रन्थ माला में छापा गया। इस में प्रत्येक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सूक्त पर विषद् टिप्पणियां दी गई हैं।

सन् १८९३ की शिकागो की विश्व-धर्म परिषद् के लिए स्वामी विवेकानन्द जी का अमरिका में जाना भारतवर्ष की गौरव वृद्धि के बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। स्वामी विवेकानन्द जी के व्याख्यानों को सुन कर तथा उन की अङ्गरेजी कृतियों को पढ़ कर अमरीका के अनेक विचारक और सुलेखक भारतीय तत्वज्ञान, भारतीय संस्कृति और भारतीय इतिहास के अनुशीलन के लिए प्रवत्त हुए। स्वामी जी द्वारा अमरीका में संस्थापित अनेक आश्रमों द्वारा वेदांत और उपनिषदों के तत्वज्ञान को और तत्रत्य सुधीजनों का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

इसी प्रकार कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर को अमरीका-यात्रा ने भी अमरीका के विज्ञजनों को भारत के सांस्कृतिक उत्तराधिकार की ओर आकृष्ट किया। भारतीय तत्वज्ञान पर व्याख्यान देने के लिए कई ज्ञान सन्तों ने भारत के मूर्धन्य दार्शनिक श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन को भी निमंत्रित किया। तथापि द्वितीय महायुद्ध ने कुछ पूर्व तक अमरीका की अभिरुचि भारत के प्राचीन साहित्य की ओर कम ही रही।

इस समय अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में भारत की पुरानी विद्याओं के अध्ययन की व्यवस्था है। जिन में केलिफोर्निया, हार्वर्ड, शिकागो, प्रिन्सटन, जौन हौपकिन्स, येल और पेनसलवेनिया मुख्य है। पेनसलवेनिया में भारतीय संस्कृति के प्रत्येक अङ्ग के अध्ययन का प्रबन्ध किया गया है। दक्षिण एशिया की संस्कृति के अध्ययन के लिए भी वहां एक विभाग खोला गया है। इस में भारतीय इतिहास, मानव वंश विज्ञान, दर्शन शास्त्र, संस्कृत पाली, हिन्दी,उर्दू तथा भारत की अन्य भाषाएं पढ़ने का भी प्रबन्ध है।

सन् १९३८ में भारतीय विषयों के अध्ययन के लिए अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालय द्वारा एक विशाल योजना बनाई गई। यह विभाग अब दक्षिण एशिया नाम से प्रसिद्ध है। इस विभाग में भारत, पाकिस्तान, लंका, नेपाल और तिब्बत के विषय में चार लाख पुस्तकें विद्यामान हैं। इन में अधिकतर पुस्तकें अंगरेजी में तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में हैं। भारत तथा उस के पड़ौसी देशों के विषय में दस हजार ग्रंथ हैं। यह विभाग दिनों दिन समृद्ध होता जा रहा है। भारत से बाहर विद्यमान यह भारतीय विषयों का एक अन्यतम ग्रंथ है। इस प्रकार भारतीय पुरातत्व और इतिहास के विषय अमरीकी जनता की दिलचस्पी बढ़ती जा रही है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वेद-प्रचार में बाधाएं

श्री मनसुखा

वेद भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान, सत्यअध्यात्म-विद्या के आदि स्रोत हैं। वेद मनुष्यकृत नहीं; बल्कि, सिद्ध ऋषि-मुनियों को, ईश्वर कृपा से इलहाम द्वारा प्रकट हुए तथा अनुपम काव्यमय भाषा में अभिव्यक्त सौंदर्यमय कृति हैं।

यदि यह सब सही है। और मेरे ख्याल में तो हर एक वेदविद्या-पाठी तथा अध्यात्म में रुचि अथवा प्रेरणा रखने वाला, उपरोक्त कथन से सहमत होगा। तब प्रश्न उठता है कि वेद का इतना अधिक सर्वोपरि महत्व, स्वयं सिद्ध होते हुए भी क्यों, वेद प्रचार में इतनी अधिक कमी और शैथिल्य रहा? भला क्यों, ऋषि दयानंद को सम्पूर्ण वेद संग्रह कर ने के लिए मूल प्रति जर्मनी से मंगानी पड़ी, भारत में मिल न सकी। फिर क्यों, महात्मा बुद्ध जैसे महान् दार्शनिक और सिद्ध पुरुष ने वेद अवहेलना की? इस का उत्तर हमें वेद भगवान् की किसी त्रुटि में नहीं (क्यों कि वह ज्ञान कम से कम मेरे मन में तो पूर्ण सत्य है) बल्कि हमें अपनी ही वेद-विषयक ज्ञान की त्रुटियों अथवा दोषों में खोजना होगा।

जब कभी भी अनधिकारी आध्यात्मिक धर्म-ग्रन्थों का अवलोकन करेंगे क्या तो, वे समझेंगे ही नहीं या अर्थ का अनर्थ ही कर देंगे। यहां तक कि स्थूल बुद्धि से किसी श्रुति ग्रंथ की पूरे दिल और ईमानदारी से भूरी-भूरी प्रशंसा भी खतरे से खाली नहीं। क्यों कि कहावत है—बेवकूफ दोस्त से तो अक्लमन्द दुश्मन भला।

वेद प्रचार में दो तरह के लोगों से बाधाएँ पड़ीं। एक तो निरीश्वरवादी, भौतिकवादी नास्तिक दुष्टजनों से : दूसरे, उन से भी कहीं अधिक वेद के ही अनुयायी और भक्त, परन्तु मोटी बुद्धि 'अंध श्रद्धा' से ग्रस्त अज्ञानियों से।

कुछ ने निस्सन्देह आज नहीं तो महात्मा बुद्ध के जमाने में अवश्य वेद ज्ञान और परम्परा-प्रतिष्ठा को अपने स्वार्थ साधन का हेतु बनाया होगा। लेकिन मैं इन की इतनी अधिक परवाह नहीं करता; नाही, सच पूछो तो मुझे नास्तिक वेद विरोधियों की ही कुछ फिकर है। लेकिन डर तो मुझे, सब से अधिक, उन वेदभक्तों से है, जो अपनी अंध-श्रद्धा और स्थूल बुद्धि के कारण ना चाहते हुए भी (बल्कि उस का उल्टा चाहते हुए भी) वेद-प्रचार में बाधा पहुँचा रहे हैं। मेरे इस कथन का सारा तात्पर्य ही उन से 'कुछ अनुरोध' करना है। विशेष कर इस लिए कि वेद-प्रेमी होने के नाते ऐसा कहने का न मेरा सिर्फ हक है, बल्कि मुख्य तौर पर मैं इसे अपना एक मुख्य कर्तव्य समझता हूँ। यदि मैं इस प्रयास में, अनायास ही किसी का दिल दुखा जाऊं, तो उस के लिए क्षमा प्रार्थी हूं।

महात्मा बुद्ध के जमाने में, कुछ स्वार्थी पण्डे पुरोहितों ने वेद परम्परा को इस कदर तोड़ा मरोड़ा था कि अधिकांश, वेद का समूल तात्पर्य और अर्थ केवल, बाह्य यज्ञादिक कर्म-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

काण्ड, यहाँ तक कि पशु बलि भी समझा किये। ऐसा अनर्थ देख कर स्वाभाविक ही निष्पक्ष निडर बुद्ध ने कहा——यदि यही कुछ वेद है तो वेद भी मुझे स्वीकृत नहीं। यद्यपि आश्चर्य की बात यह है कि शायद ही महात्मा बुद्ध ने स्वयं कभी वेदों का पाठ किया हो। यदि वह स्वयं वेद अवलोकन करते तो आसानी से समझ जाते कि जो कुछ भी वेद के नाम पर उन दिनों में हो रहा था, कदापि भी वेद अभिप्रेत न था; बल्कि शत-प्रतिशत वेद-निषिद्ध——वेदाज्ञा के विरोध में था।

अब आप लो, मध्यकालीन भारत को; यद्यपि गीता और रामायण महाभारत आदि दूसरे धर्म-ग्रन्थों का इतना अधिक मान और प्रचार था, यद्यपि महान् सिद्ध भक्तकवियों ने उन गिरावट के दिनों में, भारत की मुख्य विशेषता धर्म-रुचि और आध्यात्मिक प्रेरणा को सूखने न दिया, हरा-भरा रक्खा; लेकिन वेद-प्रचार तो न्यूनतम ही रहा। इसका एक कारण, मुझे लगा। वेद केवल त्याग, संन्यास परलोक की ही बात नहीं करता; बल्कि उतना ही महत्व इस दुनियां, यहां के सुखों भौतिक इन्द्रिय-जनित श्री-ऐश्वर्य, सुख-भोग को बतलाता है। इस कारण उस निराशा और गुलामी के काल में, आम जनता को पौष्टिक और पुरुषार्थ को ललकारने वाली वैदिक 'देववाणी' से, भक्त-कवियों की मधुर और सन्तोष तथा सहन करने के लिए कहने और प्रोत्साहन देने वाली 'नारी वाणी' ही अधिक प्रिय लगी होगी——ऐसा होना स्वाभाविक सा है।

परन्तु आज तो भारत स्वतन्त्र हो चुका है। इसलिए घोर पुरुषार्थ और स्वतन्त्र मार्ग की गुंजाइश ही नहीं, नितान्त आवश्यक भी है। क्यों ना हम फिर से वेदज्ञान का पुनरुत्थान करें ? क्यों ना हम फिर दुबारा, वेद की घोर गर्जन भरी 'दैविक पुरुष वाणी' सुनें और उस के कायल हों तथा उस पर अमल करें कि 'ऐ लोगों, दुनियाँ में आए हो तो जीना सीखो, अर्थ-काम (अभ्यूदय) और धर्म-मोक्ष (निःश्रेयस) दोनों ही सिद्ध करो और सुख से जीओ मौज से जीओ।'

आधुनिक काल में वेद प्रचार के लिए दो स्तुत्य प्रयत्न हुए : एक तो ऋषि दयानन्द द्वारा और दूसरा श्री अरविन्द जी ने किया। और साथ ही साथ दो घोर विरोधी भावनाएं अथवा मत मतान्तर भी वेद महत्व अथवा प्रचार के विरुद्ध काम करती रहीं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का ऐंसा मत है कि, वेद तो प्रमुखतया एक असभ्य, असंस्कृत बर्बर जङ्गली जाति के, प्राकृतिक शक्तियों के प्रति प्रकट, डर अथवा प्रशंसा भरे अधकचरे विचार-भावनाएं उद्‌गार हैं, केवल उन विद्वानों की नासमझी का ही द्योतक है। परन्तु उन पढ़े-लिखे अंग्रेजीदां बाबू क्लास (उन में से पहले एक में भी था) पर मुझे बहुत ही ताज्जुब भी होता है और तरस भी आता है कि जिन्होंने वेद बिना पढ़े, बिना समझे, अपने अंग्रेज गुरुओं और स्वामियों का वेद-विषयक मत स्वीकार कर लिया। बहरहाल, मुझे उन विदेशियों से विशेष कुछ शिकायत नहीं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पहले तो उन लोगों के लिए, हमारी धर्म-संस्कृति से पूर्णतया परिचित न होने के कारण ऐसी भूल कर दना स्वाभाविक ही था। दूसरे उस समय में, ईसाई धर्म के प्रचार के लिए दूसरे धर्मों और विशेषकर वेद को 'गौण' सिद्ध करने की उन्हें आवश्यकता भी थी। लेकिन उन भारतीय-संस्कृति के प्रेमी, वेद-भक्त और कभी-कभी संस्कृत भाषा के प्रचण्ड पण्डित तक—ऐसे लोगों का क्या किया जाए; जो अनजानते में, अपरोक्ष रूप से, अपने अनावश्यक पक्षपात अथवा हठधर्मी से 'वेद प्रचार' को बेहद हानि पहुंचा रहे हैं। सो कैसे ?

पहले तो यह कहना कि वेद सब 'सत्य विद्या' के भण्डार हैं और सत्य विद्या से 'अध्यात्म-शास्त्र' के अलावा और सब दूसरे 'ज्ञान-विज्ञानों' का मतलब भी ले लेना, वेद के साथ अन्याय करना है। वेद कोई ज्योमेट्री, भूगोल अथवा पाकशास्त्र की किताब नहीं कि उसमें यह लिखा हो कि हवाई जहाज कैसे बनाया जाता है या पोदीने की चटनी कैसे पीसो ? नहीं जी, वेद तो केवल 'अध्यात्म-विद्या' विद्याओं की भी विद्या 'राज विद्या'-'ब्रह्म विद्या' के मुख्य और मूल ग्रन्थ हैं। इस कारण, उनमें मनुष्य-जीवन विज्ञान अर्थात् कैसे जिएं ? जिन्दगी में क्या-क्या खोजें और क्या-क्या करें ? तथा प्रभुभक्ति से भरे संगीतमय उद्गार—ऐसे और इतना ही महत्वपूर्ण ज्ञान और अभिव्यक्ति भरी है। इसका क्या क्षेत्र और महत्व कुछ कम है कि हमें दूसरे और भी विषयों और क्षेत्रों को वेद के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता है। सच पूछो तो, अध्यात्म-शास्त्र, ब्रह्मविद्या सब विद्याओं से सर्वोपरि अति महत्वपूर्ण प्रथम ज्ञान है। इसलिए वेदों का महत्व और क्षेत्र, हमें उस 'विशेष ज्ञान' तक ही सीमित बतलाना चाहिए। खामख्वाह के लिए, अनावश्यक पक्षपात करने से, बजाय लाभ के हानि ही अधिक है। वेद कोई ऐनसाईक्लोपीडिया नहीं है।

दूसरी हठधर्मी हो रही है—संस्कृत के विद्वानों की तरफ से। जो, यह कहें कि वेद बिना संस्कृत जाने समझ ही नहीं आ सकते; वे क्या जानते बूझते 'वैदिक-ज्ञान' को, केवल चन्द संस्कृत विद्वानों तक ही सीमित नहीं रह सकते हैं ? और ऐसा सोचना कि अर्थ ना समझते हुए भी, यज्ञादिक अवसरों पर, वेद मंत्रों के केवल जाप मात्र से ही कल्याण हो जाएगा——लगभग ऐसा ही सोचना है कि तोता रामराम रटता मोक्ष पा जाएगा। जनाब, कल्याण, मोक्ष, सद्गति-सद्बुद्धि कोई इतनी आसान या सस्ती चीज नहीं कि बिना समझे श्रवण अथवा उच्चारण मात्र से ही मिल जाए। उसके लिए तो घोर प्रयत्न करना होता है—मनन और निदिध्यासन जो समझा न जाएगा, उस पर मनन कैसे होगा और जो मनन नहीं किया गया——ऐसा ज्ञान प्रतिष्ठित क्यों कर होगा ? लिहाजा-वेद को संस्कृत में पढ़ो या हिन्दी में (अथवा पढ़ो ही नहीं) आवश्यकता तो इस बात की है कि वेद अभिव्यक्त 'आध्यात्मिक ज्ञान' को तपस्या द्वारा आत्मसात् कर लो तथा 'धर्म पुरुषार्थ' द्वारा 'मेधा', 'ऋतम्भरा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रज्ञां' साधो और सिद्ध करो। फिर, यदि किसी भी प्रकार ईश्वर कृपा से तुम्हें मोक्ष, 'ब्रह्मज्ञान' सिद्ध हो जाए तो कौन पूछता है––'तुमने वेद पढ़े या नहीं, संस्कृत भी आती है या नहीं। गीता में स्पष्ट लिखा है—'जिसे ब्रह्मज्ञान सिद्ध हो, उसको वेदों से इतना ही प्रयोजन है, जितना कि चहुं ओर जल होने पर, किसी छोटे जलाशय को, हो सकता है।' यह ब्रह्म-विद्या कुछ है ही ऐसी—बहुत पढ़ो-लिखो कुछ भी समझ न आए और चाहे कुछ भी न पढ़ा हो (कबीर की तरह कालाअक्षर भैंस बराबर) और सब कुछ आ जाए समझ—'हो जाए आत्मसात।'

'ढ़ाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होए।'

वेदों को केवल उसने समझा है जो स्वयं वेद (सिद्ध) हो गया। लेकिन व्यावहारिक तौर पर वेदमन्त्रों का अधिकृत हिन्दी अनुवाद और उनका ही नित्य पाठ तथा मनन वेद प्रचार में अति सहायता रहेगा—ऐसा मेरा निश्चित सा मत होता जा रहा है।

मूर्ख और बुद्धिमान्

संसार में कई प्रकार के लोग होते हैं। कुछ मूर्ख हैं और कुछ बुद्धिमान हैं इस कहानी को सुनिये और फिर अपना निर्णय दीजिए।

एक समय की बात है कि दो भाइयों ने एक ऐसी पनचक्की के निर्माण करने का निश्चय किया जो केवल उन्हीं के लिए पीसने का काम करे तथा जो उन्हें पूरी तरह नजर आता रहे अर्थात् उनके मुख्य द्वार से अधिक दूर न हो। इसमें केवल एक ही कठिनाई थी कि आसपास कोई नदी नहीं थी। परन्तु इन भाइयों को तो इस बात का कभी विचार तक नहीं आया। वे चक्की के लिए पत्थर ले आए, चार दिवारी उठा ली, तथा छत बनाने लगे।

तभी एक राही उधर से गुजरा। प्रचलित प्रथानुसार उसे इन भाइयों की योजना की सफलता के लिए शुभ कामना प्रकट करनी चाहिए थी, किन्तु यह देखकर कि वे तो व्यर्थ ही में परिश्रम कर रहे हैं, उसने चुपचाप अपनी राह लेने का निश्चय किया।

सहसा दोनों भाइयों ने उसे पीछे से आवाज दी, "अरे क्या तुमने शिष्टाचार भी भुला दिया है?

अब तो आप भी अनुमान लगा सकते हैं कि वे दोनों भाई केवल मूढ़ ही नहीं थे वरन् धृष्ट भी थे। इस पर राही ने पूछा, "क्या मुझ से कोई अशिष्टता हो गई है?"

"तुमने हमारी सफलता के लिए शुभाकांक्षा क्यों नहीं प्रकट की?"

अब राही ने उत्तर दिया "भाई, मैंने तो अपनी शुभकामना प्रकट की थी किन्तु खेद है कि मेरा स्वर जल के कोलाहल के कारण आप को सुनाई नहीं दिया। यह कहते ही वह राही आगे बढ़ा। ऐसे मूढ़ों के साथ तर्क-वितर्क करने में लाभ ही क्या था?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मध्य क्षेत्र

मध्य क्षेत्र में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश हैं। उत्तर प्रदेश उन चार राज्यों में से है जिन के क्षेत्र अथवा प्रशासन पर राज्य-पुनर्गठन का कोई असर नहीं पड़ा। मध्य-क्षेत्र का क्षेत्र-फल २,८४,६०० वर्ग मील और जनसंख्या ८ करोड़ ६० लाख है।

इस क्षेत्र में जनसंख्या औसतन २८४ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। उत्तर प्रदेश की औसत जनसंख्या ५५७ व्यक्ति प्रति वर्गमील है और कहीं-कहीं तो ७०० व्यक्ति प्रति वर्गमील तक है। मध्य प्रदेश की औसत जनसंख्या १५२ व्यक्ति प्रति वर्गमील है। इस क्षेत्र में कुल आबादी का ८० प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर है। देश में कुल आबादी का लगभग ७० प्रतिशत भाग खेती का काम करता है।

मध्य प्रदेश क्षेत्रफल में उत्तर प्रदेश से बड़ा है, परन्तु उस में खेती अपेक्षाकृत कम क्षेत्र में होती है। मध्य प्रदेश में ४ करोड़ २ लाख एकड़ में खेती होती है और उत्तर प्रदेश में ४ करोड़ १४ लाख एकड़ में। दोनों राज्यों के कुल वनों का ८० प्रतिशत भाग मध्य प्रदेश में है।

उत्तर प्रदेश की कुल कृषि-भूमि के ३० प्रतिशत भाग में अर्थात् १ करोड़ २६ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। मध्य प्रदेश में यह संख्या क्रमशः ५.५ प्रतिशत और २० लाख एकड़ है। मध्य क्षेत्र की कुल कृषि-भूमि के १८.७ प्रतिशत भाग में और देश की कुल कृषि-भूमि के १७.१ प्रतिशत भाग में सिंचाई होती है। सिंचाई के साधनों में नहरें तथा कुएं सब से महत्त्वपूर्ण हैं। इन साधनों से मध्य क्षेत्र ५४ लाख एकड़ और देश में ६७ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है। तालाबों से १६ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होती है।

मुख्य फसलें

मध्य क्षेत्र की ६ करोड़ २० लाख एकड़ कृष्य-भूमि में से ७ करोड़ ८० लाख एकड़ (८३ प्रतिशत) में खाद्यान्न पैदा किया जाता है। ६४ लाख एकड़ भूमि में तिलहन, २५ लाख एकड़ में कपास और २७ लाख एकड़ में गन्ना पैदा होता है। गन्ना उत्तर प्रदेश में और कपास मुख्यतः मध्य प्रदेश में होती है। पटसन केवल उत्तर प्रदेश में ३३,००० एकड़ भूमि में होता है।

मध्य क्षेत्र खाद्य-सामग्री में आत्म-निर्भर है। यहां कृषि-उत्पादन बढ़ाने की अभी काफी गुंजाइश है। उत्तर प्रदेश में ८२ लाख १० हज़ार एकड़ और मध्य प्रदेश में १ करोड़ ८० लाख ७० हज़ार एकड़ भूमि कृषि योग्य होते हुए भी बेकार पड़ी है। कुल खेती के केवल १८.७ प्रतिशत भाग में ही सिंचाई होती है। देश के कुल वनों का ३३ प्रतिशत भाग मध्य क्षेत्र में है, जो इस क्षेत्र के २३ प्रतिशत भाग में फैला हुआ है। यहां वनों से भी काफी लाभ हो सकता है। मध्य प्रदेश के वनों में अच्छी किस्म की इमारती लकड़ी पाई जाती जाती है। साथ ही इस क्षेत्र में मेंगनीज, खनिज-लोह, कोयला, बाक्साइट और हीरा भी काफी मिलता है। चीनी-उद्योग यहां का सब से बड़ा उद्योग है। देश में चीनी की कुल मिलों की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आधी से भी अधिक मिलें यहां (उत्तर प्रदेश में) हैं और वे लगभग ६० प्रतिशत चीनी बनाती हैं।

फिर भी इस क्षेत्र में संचार की बहुत कमी है। देश में प्रति १००० वर्गमील क्षेत्र में औसतन २८० मील लम्बी सड़कें हैं, परन्तु मध्य प्रदेश में यह औसत केवल ११३ मील है। उत्तर प्रदेश में नैपाल और तिब्बत की सीमाओं पर भी काफी दूर तक सड़कें नहीं हैं।

मध्य क्षेत्र में पिछड़ी जातियों की संख्या काफी है। मध्य प्रदेश में २८ प्रतिशत और उत्तर प्रदेश में १८ प्रतिशत आबादी इन्हीं की है।

दूसरी आयोजना

दूसरी आयोजना में ४ अरब ४४ करोड़ रु० का खर्च आंका गया है। इसमें से आयोजना की अवधि में उत्तर प्रदेश १ अरब १४ करोड़ ३० लाख रु० और मध्य प्रदेश ४७ करोड़ ७० लाख रु० दे सकेगा अर्थात् यह क्षेत्र १ करोड़ ६२ लाख रु० दे सकेगा। बाकी २ अरब ८२ करोड़ रु० की कमी रहती है, इसे पूरा कर करने के लिए इस क्षेत्र को काफी प्रयत्न करना पड़ेगा।

केन्द्रीय सरकार की कुछ मुख्य योजनाएं मध्य क्षेत्र में हैं। मध्य प्रदेश में भिलई इस्पात कारखाना और भारी बिजली कारखाना योजना पूरी होने से और कोयले का उत्पादन बढ़ने से इस क्षेत्र में और विशेषकर मध्य प्रदेश में, अर्थ व्यवस्था काफी सुधर जायेगी।

इस क्षेत्र में बिजली उत्पादन की क्षमता ५ लाख ३० हजार किलोवाट (उत्तर प्रदेश में ३ लाख १० हजार और मध्य प्रदेश में २ लाख २० हज़ार किलोवाट बढ़ जाएगी। उत्तर प्रदेश में २१७८ मील लम्बी नयी सड़कें बनाई जाएंगी और १५६० मील पुरानी सड़कें सुधारी जाएंगी।

खाद्य-उत्पादन

दूसरी आयोजना में खाद्यान्न-उत्पादन में ४५ लाख टन की वृद्धि होगी और ४२ लाख एकड़ भूमि में सिंचाई होने लगेगी।

१९५५-५६ में देश में ६ करोड़ ३५ लाख टन अन्न पैदा हुआ। इस का ३० प्रतिशत अर्थात् २ करोड़ ९० लाख टन मध्य क्षेत्र में पैदा हुआ, १ करोड़ १६ लाख टन उत्तर प्रदेश में और ७३ लाख मध्य प्रदेश में। स्मरण रहे कि १९५५-५६ में १९५३-५४ और १९५४-५५ की अपेक्षा कम अन्न पैदा हुआ। १९५३-५४ में १ करोड़ ९६ लाख टन और १९५४-५५ में २ करोड़ ४ लाख टन अन्न पैदा हुआ था। जहां तक उत्पादन बढ़ाने का प्रश्न है, उत्तर-प्रदेश में १९५५-५६ में पहली आयोजना के आधार-वर्ष (१९४९-५०) से कुछ ही अधिक उत्पादन हुआ, परन्तु मध्य प्रदेश में १९५०-५१ से ही उत्पादन बढ़ना आरम्भ हो गया था और १९५५-५६ में १९५०-५१ की अपेक्षा ४७ लाख टन अधिक अन्न पैदा हुआ।

मध्य क्षेत्र में १९४९-५२ में १ करोड़ ६० लाख से १ करोड़ ७० लाख टन तक अनाज पैदा होता था। १९५४-५५ में उत्पादन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बढ़ कर २ करोड़ ४ लाख टन हो गया था, परन्तु १९५५-५६ में यह घट कर फिर १ करोड़ ९० लाख टन रह गया। यह गिरावट मुख्यतः उत्तर प्रदेश में मौसम अनुकूल न होने के कारण आई।

पहले दूसरी आयोजना में २८ लाख ९० हजार टन अधिक अन्न पैदा करने का प्रस्ताव था। बाद में राज्य सरकारों के साथ विचार-विमर्श करके यह संख्या बढ़ा कर ४१ लाख २ हजार टन कर दी गयी, मध्य प्रदेश में १७ लाख २ हजार टन और उत्तर प्रदेश में २४ लाख टन। साथ ही अन्य फसलों के उत्पादन का लक्ष्य भी बढ़ाया गया। कपास का लक्ष्य १० लाख ७२ हजार गांठ से बढ़ाकर ११ लाख ७२ हजार गांठ, तिलहन का १६ लाख ३४ हजार टन से बढ़ाकर १८ लाख ३१ हजार टन और गन्ने का ३८ लाख ४५ हजार टन से बढ़ाकर ४० लाख २१ हजार टन कर दिया गया। उत्तर प्रदेश में पटसन के उत्पादन का लक्ष्य १ लाख १० हजार गांठ रखा गया है।

"अधिक अन्न उपजाओ" तथा अन्य कार्यक्रमों से, प्राप्त सूचनाओं के अनुसार १९५६-५७ में ५ लाख ६४ हजार टन अतिरिक्त खाद्यान्न पैदा होगा, ३ लाख ९४ हजार टन उत्तर प्रदेश में और १ लाख ७० हजार टन मध्य प्रदेश में।

अनुमान है कि मध्य क्षेत्र में १९५७-५८ में ९ लाख ५० हजार टन अतिरिक्त अन्न पैदा होगा। इसमें से ५ लाख २० हजार टन उत्तर प्रदेश में और ४ लाख ३० हजार टन मध्य-प्रदेश में होगा।

श्रद्धानन्दोविजयते

श्री मेधार्थी विद्यालङ्कार

(१)

श्रद्धया स्मर्यते यस्य,
नाम सूर्यं समुज्ज्वलम्।
तमहं श्रद्धया वन्दे,
श्रद्धानन्दं गुरूत्तमम्॥

(२)

विश्वासभूमिरार्याणां,
मातृभूमेश्च रक्षिता।
नेताऽभूद् भारतीयानां,
श्रद्धानन्दो महायतिः॥

(३)

ऋषिकल्पं तमाचार्यंश्रद्धानन्दं महौजसम्।
श्रद्धया परयोपेताःप्रणमामः पुनः पुनः॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत के विविध युगों के पंचांग

काल गणना या पंचांग का जन्म कब हुआ, यह बताना भी उतना ही कठिन है जितना इतिहास का आरम्भ बताना। ज्यों-ज्यों सामाजिक जीवन संगठित होता गया त्यों-त्यों लोगों को पूर्णिमा और प्रथमा जैसी तिथियों की ज़रूरत पड़ती गयी। किसानों को इस लिए कि फसल बोने और काटने का मौसम पता होना चाहिए और अन्य लोगों को भी अपने-अपने काम-धन्धे के लिए चन्द्रमा के घटने बढ़ने आदि का पहले से ज्ञान होना जरूरी था।

भारतीय पंचाँग के विकास-क्रम को हम तीन युगों में बांट सकते हैं। पहला, वैदिक युग, जो आदिकाल से १३५० ईस्वी पूर्व तक, दूसरा, वेदांग ज्योतिष युग, जो १३५० ईस्वी पूर्व से ४०० ईस्वी तक और तीसरा, ४०० ईसवी से आधुनिक काल तक मानना चाहिये। तीसरे का नाम सिद्धांत ज्योतिष युग है।

वैदिक युग

वेद-मंत्रों में प्रायः सूर्य, चन्द्रमा कुछ ग्रहों, मासों और ऋतुओं का वर्णन मिलता है। इनसे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वैदिक आर्यों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों के अनुसार किसी पंचांग का प्रचार रहा होगा। इस युग में नक्षत्रों के अनुसार दिनों की गणना होती होगी। इस अनुमान का वैसे कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं और नाहीं सप्ताह के दिनों और तिथियों का। वेदांग ज्योतिष काल में भारत में ज्योतिष की काफी उन्नति हुई। वेदांग ज्योतिष में गणित के कुछ ऐसे नियमों का संग्रह था जिनके अनुसार पहले ही पंचांग बनाया जा सकता था। वेदांग ज्योतिष में ५ वर्षों का एक युग माना गया था। एक युग में १८३० सावन दिन और १८६० तिथियां होती थीं। एक युग में ६२ चन्द्रमास और ६० सौरमास माने जाते थे। नया साल सर्दियों में सूर्य के दक्षिणायन और सूर्य तथा चन्द्रमा के धनिष्ठ नक्षत्र में आने से आरम्भ होता था। वेदांग ज्योतिष में ग्रहों और नक्षत्रों की गति का कोई उल्लेख नहीं है।

युग के पांचों वर्षों के अलग-अलग नाम होते थे। हर युग में लौंद के दो महीने होते थे और ३० चन्द्रमासों के बाद एक-एक जोड़ दिया जाता था। वेदांग ज्योतिष युग में हर तिथि को दिन के बराबर गिना जाता था लेकिन ६१ दिन के बाद एक तिथि कम कर दी जाती थी। चारसौ ईसवी तक वेदांग ज्योतिष के अनुसार पंचांग बनने प्रायः बन्द हो गये थे। इस के बाद सिद्धांत ज्योतिष के अनुसार पंचांग बनने आरम्भ हुए।

५५० ईसवी के आसपास देश में पांच सिद्धांतों का प्रचार था। लेकिन इन में सूर्य सिद्धांत सर्वश्रेष्ठ था और इस का आज भी भारत में बहुत प्रचार है। सिद्धांत ज्योतिषियों ने साल का आरम्भ, सूर्य के वसन्त संपात यानी सूर्य के विषुवत रेखा पर आने से माना है और आम प्रयोग में आने वाले वर्ष का आरम्भ अगले दिन से।

सूर्य सिद्धांत में सौर वर्ष ३६५. २५८७६ दिनों का और चन्द्रमास २९. ५३०६ का होता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। इस प्रकार १२ चन्द्रमास सूर्य सिद्धांत वर्ष से १०. ८६ दिन कम रह जाते हैं यानी चन्द्र वर्ष, सौर वर्ष से लगभग ११ दिन कम रह जाता है। इस अन्तर को पूरा करने के लिए लौंद महीने का आविष्कार किया गया।

चन्द्रमासों के नाम उन नक्षत्रों पर रखे गये जो पूर्णिमा को या इसके निकट पड़ते थे। उदाहरणार्थ, चित्र नक्षत्र के निकट की पूर्णिमा से आरंभ होने वाला मास 'चैत्र' और कृत्रिक नक्षत्र के निकट की पुर्णिमा से आरम्भ होने वाला मास 'कार्तिक' कहलाया।

सूर्य सिद्धांत वर्ष अयन वर्ष से २४ मिनट बड़ा होता है। पिछले १४०० वर्षों से यह अन्तर इसी तरह बढ़ता चला जा रहा है और इसका नतीजा यह हुआ है कि सौर वर्ष, अब वसन्त सपात के अगले दिन से आरम्भ होने की बजाय, २३ दिन हट गया है। अब से १४०० वर्ष पूर्व हमारे जो पर्व और त्योहार आदि जिस ऋतु में होते थे उन में भी २३ दिन का अन्तर पड़ गया है। हमारे ज्योतिषियों को विषुवों का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण यह गलती होती रही। भारत ही नहीं योरप में भी १६८७ तक यह गलती चलती रही।

बारह सौ ईसवी के आसपास भारत में मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया और मुसलमान शासकों ने शासन कार्य में हिजरी सम्वत् को स्थान दिया। भारतीय पंचांगों का चलन किन्हीं क्षेत्रों और धार्मिक कामों तक ही सीमित हो गया।

अकबर ने १५८४ में तारीख इलाही नामक एक नया पंचांग शुरु किया। लेकिन १६३० ईसवी तक आते-आते इसका भी प्रायः लोप हो गया। अंग्रेजों के आगमन, १७५७ से, शासन और अन्य कामों के लिए अंग्रेजी या ईसवी सन् आरम्भ हो गया।

पंचांग सुधार का विचार देश में नया नहीं है। स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलक ने आधुनिकतम जानकारी के अनुसार पंचांग बनाने का विचार सब से पहले प्रगट किया। प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार हिसाब लगाने के कारण भारतीय पंचांगों में त्रुटि रह जाती थी।

नवम्बर १९५२ में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक परिषद ने डा० एम० एन० साहा की अध्यक्षता में एक पंचांग सुधार समिति नियुक्त की। समिति को देश में चलने वाले सब पंचांगों के अध्ययन करने और वैज्ञानिक जानकारी पर आधारित एक सही और एक सा पंचांग बनाने के बारे में सुझाव देने का काम सौंपा गया।

समिति ने पता लगाया कि देश में कम से कम ३० पंचांग चलते हैं। सब के आरम्भ भिन्न-भिन्न घटनाओं से हैं और इनके अनुसार वर्ष भी अलग-अलग दिन से आरम्भ होते हैं। देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में पंचांगों के हिसाब का तरीका भी भिन्न-भिन्न पाया गया।

इस समिति ने १९५५ में अपना प्रतिवेदन दिया और भारत सरकार ने इसकी सिफारिशों के अनुसार सारे देश के लिए एक सा पंचांग बनाना स्वीकार कर लिया। ★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन में भूमिपुनर्वितरण और कृषक-निर्वाण

श्री हर्षदेव मालवीय

चीन भारत के ही समान कृषिप्रधान देश है। वहां भी ग्राम-ग्राम में चीनी कृषक भारतीय कृषकों के समान बड़े सुसभ्य, सुसंस्कृत, धर्मनिष्ठ तथा अतिथियों का हृदय से सत्कार करने वाले हुआ करते थे। पर धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ वहां के किसान भी भारत के ही समान पददलित हुए। उनका बौद्धिक, नैतिक और चारित्रिक पतन हुआ, और वे भूखे और नंगे हो गये। चीन में यांगत्सी क्यांग, ह्वांग हो, हिलुन्कियांग इत्यादि, विशाल नदियां हैं। इन नदियों में भयंकर बाढ़ें आया करती थीं। बाढ़ों से अपार भूमि क्षेत्र जल मग्न हो जाता था, और इन भयंकर बाढ़ों के पश्चात् वहां भीषण अकाल पड़ता था। भूख की दावाग्नि जला करती थी और लाखों-लाखों चीनी कृषक दाने-दाने अनाज के लिए तरस कर मर जाते थे।

ऐसी विकट थी चीन की स्थिति। फिर भी यह स्मरण रहे कि चीन में जमींदारी-सामन्ती प्रणाली भारत के समान विदेशी विजेताओं, आक्रान्तकों और शासकों द्वारा नहीं लादी गई थी। वहां सामन्ती प्रथा, चीन के महान् नेता माओत्से-तुंग के अनुसार, लगभग तीन हजार साल पुरानी है। वे कहते हैं कि ईसा पूर्व ११२९ शताब्दी में ही, जब चीन में चौ वंश के सम्राटों का राज्य था, तब से भूमि सामन्ती प्रथा के अन्तर्गत है। एक और बात ध्यान में रखने योग्य है। चीन में, वर्तमान नवचीन को छोड़ कर, प्रारम्भ से ही कभी शासन प्रणाली ग्रामों में व्यापक न हुई। मोटी तौर पर ऐसा समझिये कि एक जिले के केन्द्रीय-शहरी स्थल तक सरकारी शासन हुआ करता था। परन्तु उसके नीचे ग्रामों में, विशाल चीन देश के सुदूर ग्रामों में, कोई शासन होता ही न था। बाओचांग और चाओचांग नामक छकु व्यक्ति हुआ करते थे, जो क्रमशः सौ या दश ग्रामीण घरों से कर वसूल करने की जिम्मेदारी उठाते थे। यही बाओचांग और चाओचांग चीनी कृषकों के भाग्य विधाता हो गये। प्रारम्भिक काल में, जब समाज में महान् कन्फ्यूसियस, लाओत्से, मोत्से इत्यादि चीनी संतों एवं शिक्षकों की शिक्षा का प्रभाव था, समाज में धर्म, न्याय, औचित्य की परम्परा थी। तब तो यह मामला ठीक चला। परन्तु समयकाल के साथ जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी और व्यापार बढ़ा, वस्तु विनिमय प्रारम्भ हुआ और फिर बड़े-बड़े सामन्तों का प्रादुर्भाव हुआ, और जब उनकी ऐयाशी और निरंकुशता प्रारम्भ हुई, तब यही बाओचांग और चाओ-चांग चीनी कृषकों के क्रूर शोषक हो गये। फिर तो चीनी कृषकों का पैदा किया हुआ धान उनके पेट में न जा कर महलों की रंग-रेलियां पूरी करने के लिए पहुंचने लगा और रुदन एवं चीत्कार तमाम चीन में व्याप्त हो गया।

चीनी कृषक भारतीय कृषकों के समान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ही परिश्रमी हैं। उसने इन सब आततायियों के आगे ऐसे ही सिर नहीं झुकाया। वह बराबर विद्रोह करता रहा। चीन के किसानों के हिंसात्मक विद्रोही की लम्बी कथा है, वह प्राय: बराबर ही चीन के इतिहास में दिखायी पड़ती है। उसका लम्बा इतिहास है। उसमें हम यहां नहीं जा सकते। पर कह दिया जाय कि इन तमाम कृषक विद्रोहों में १८४८ और १८६३ के बीच होने वाला तेपिंग कुषक विद्रोह सब से घनघोर, सब से गंभीर था। उस समय विद्रोही कृषकों की सेना चीनी सम्राट के केन्द्रीय शासन-स्थल पीकिंग के दरवाजे खट-खटाने लगी। फिर यह तमाम विद्रोह कुचल दिया गया, उसका भी कारण है। माओ ने अपनी अगणित रचनाओं में इसका बृहद् विश्लेषण किया है। उसमें भी हम यहां नहीं जा सकते।

फिर सन् १९११ आया। उस समय वर्तमान चीन के राष्ट्रपिता डा. सुनयात सेन के नेतृत्व में एक क्रांति हुई। इस क्रांति ने गलित मांचू वंश के सम्राटों के राज्य का खात्मा कर दिया। डा. सुनयात सेन महामानव थे। उनका व्यापक, विस्तृत दृष्टिकोण था। उन्होंने सान-मिन-चू-ई नामक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इन चीनी शब्दों के अर्थ हैं—जनता के तीन सिद्धांत। इनका तात्पर्य यह था कि चीन के कोटि-कोटि मानवों में से प्रत्येक मानव को वस्त्र, भोजन एवं निवास प्राप्त हो, उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हो, इत्यादि। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए और १९११ की क्रांति की परम्परा को आगे ले जाने के लिए डाक्टर सुनयात सेन ने कोमितांग नामक अपनी एक पार्टी की स्थापना की। सन् १९२४ में उनका देहान्त हो गया। और इसके बाद उस दल का नेतृत्व च्यांग काई शेक के हाथ में आया। सन् १९२४ में ही कोमितांग के एक राष्ट्रीय सम्मेलन में च्यांगकाई शेक ने एक भाषण में कहा कि हम किसानों की हालत को सुधारना चाहते हैं। पर बाद में च्यांगकाई शेक और कोमितांग इस मूल सिद्धांत को बिल्कुल भूल गये। चीन में गृह-युद्ध छिड़ गया। और च्यांगकाई शेक जिन सामन्ती युद्ध-पोषक सामन्तों को कुचलने के लिए दक्षिण से उत्तर को महाप्रस्थान कर रहे थे, उन्हीं के आगे उसने घुटने टेक दिये, उन्हीं से उसने समझौता किया और वे उस पर हावी हो गये। फलस्वरूप, चीन के दबे पिसे भुखमरे किसानों को राहत देने का क्या होता? उनको राहत देने के लिए जिन सामन्तों के हित पर आघात करना था, च्यांगकाई शेक उन्हीं के हाथों में बिक चुके थे।

पर इसी के साथ-ही-साथ चीन के प्राचीन लम्बे इतिहास में कृषि विद्रोह की जो परम्परा चली आयी है, उसको भी अपने को किसी-न-किसी रूप में व्यक्त करना ही था। सन् १९१७ में जब रूस में क्रांति हुई, तो उससे चीन के राष्ट्रपिता डा० सुनयात सेन बहुत प्रभावित हुए। कहते हैं कि वे स्वयं लेनिन से मिले और वे महान् लेनिन के व्यक्तिगत दोस्त हो गये। और इससे रूसी क्रांति के विचार शनै-शनै

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन को भी पहुंचें। उन्हीं विचारों के फलस्वरूप सन् १९२१ में एक नाव पर जहाँ शायद ८ या ९ आदमी एकत्रित थे, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। उस नाव पर ९ आदमियों द्वारा बनायी जाने वाली उस कम्युनिस्ट पार्टी के आज चीन में एक करोड़ सदस्य हैं और उस पार्टी का आज चीन पर एकछत्र राज्य है।

इस चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का भी एक लम्बा और घटनापूर्ण इतिहास है। उसमें हम यहां नहीं जाना चाहते। पर एक दो बातें बता दी जाएं। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रारंभिक वर्षों में चीन के वर्तमान महान् नेता माओत्से-तुंग, जो अवश्य उस नाव वाली बैठक में मौजूद थे, केन्द्रीय नेतृत्व में नहीं रहे। प्रारंभिक वर्षों में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व चैन हू-सुई नामक एक पीकिंग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के हाथ में था। माओत्से तुंग, उस समय पीकिंग विश्वविद्यालय में पुस्तकाध्यक्ष थे। यहां पर माओ ने घनघोर अध्ययन किया। और प्रारंभिक वर्षों से ही माओ कहते रहे कि चीनी क्रांति तभी सफल हो सकती है जब उसमें कृषकों का महान् योग हो। चैन हू-सूई के नेतृत्व में चलने वाला दूसरा पक्ष अब दक्षिणपंथी कहा जाता है। उस समय डा० सुनयात सेन के जीवन काल में चीन में कोमिंतांग और कम्युनिस्ट पार्टी में पारस्परिक सहयोग रहता था। जब माओ को केन्द्रीय नेतृत्व में नहीं लिया गया और केन्द्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व की नीतियों से उन्हें असन्तोष हुआ तो वे पीकिंग विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष पद को छोड़ कर अपने हूनान प्रान्त चले गये और वहां पर उन्होंने किसानों का संगठन किया। (सावशेष)

कवीन्द्रो रवीन्द्रः

१

सुकाव्येन नित्यं जनान् मोहयन्तं
सुवाचा सुधर्मं सदा बोधयन्तम् ॥
कुरीतीः कुतर्कांस्तथा खण्डयन्तं
रवीन्द्रं नमामः कवीन्द्रं सुधीन्द्रम् ॥

२

सुशिक्षाप्रसारो भवेच्छात्रवर्गे
तमिस्रा तथाऽज्ञानजन्या विनश्येत् ॥
अतः शान्तिकेतं शुभं स्थापयन्तं
रवीन्द्रं नमामः कवीन्द्रं सुधीन्द्रम् ॥

३

परेशाय गीताञ्जलिं स्वर्पयन्तं
तथा तेन कीर्तिं सुसम्पादयन्तम् ॥
सुभक्त्या च शान्तिं समासादयन्तं
रवीन्द्रं नमामः कवीन्द्रं सुधीन्द्रम् ॥

४

स्वदेशस्य कीर्तिं सदा वर्धयन्तं
सुसङ्कीर्णभावान् सदा दूरयन्तम् ॥
जनेष्वत्र सौहार्दमुत्पादयन्तं
रवीन्द्रं नमामः कवीन्द्रं सुधीन्द्रम् ॥

—धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नया मन्त्री-मण्डल

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के परामर्श से १७ एप्रिल १९५७ को राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने जो नया मन्त्री-मण्डल बनाया है, उन के नाम तथा कार्य इस प्रकार हैं—श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधान मन्त्री का कार्य करते हुए विदेशी मामलों के मन्त्रो रहेंगे और आणविक शक्ति विभाग के अध्यक्ष पद पर रहेंगे।

मन्त्री-मण्डल के सदस्यों के फोटो के साथ उन का नाम और कार्य यहां दिया जा रहा है-बाँयें से दायें—

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद—शिक्षा और वैज्ञानिक अन्वेषण। श्री गोविन्द वल्लभ पन्त—घरेलू मामले। श्री मोरार जी रणछोड़जी देसाई—व्यापार और उद्योग। श्री जगजीवन-राम—रेलवे।
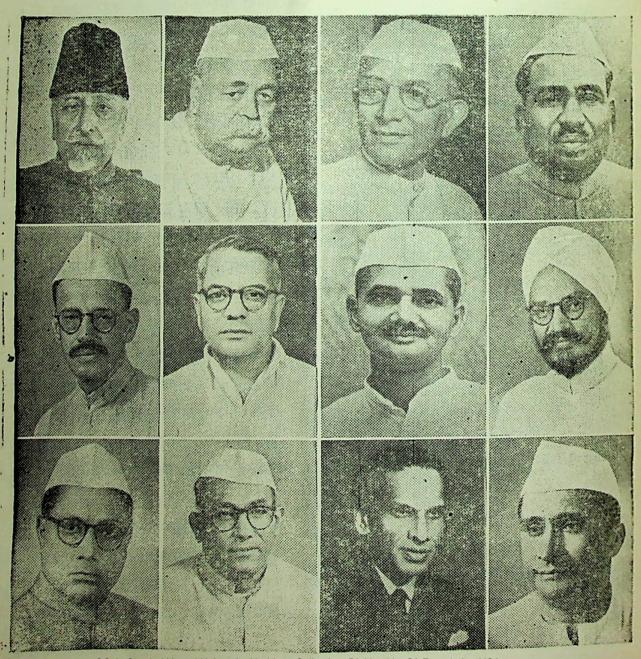
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री गुलजारी लाल नन्दा—श्रम, रोज़गारी योजना। श्री तिरुवल्लूर चेट्टी कृष्णमाचारी—वित्त। श्री लाल बहादुर शास्त्री—परिवहन और संचार। सरदार स्वर्णसिंह—फौलाद, खान और ईंधन।

श्री किसम्बल्लई चेङ्लाचार्य रेड्डी—सार्वजनिक निर्माण भवन और प्रसार। श्री अजित प्रसाद जैन—खाद्य और कृषि। श्री वेंगालिल कृष्णन कृष्णा मेनन—रक्षा। श्री सदाशिव कानोजी पाटिल—सिंचाई और शक्ति।

विस्मयजनक सत्य

श्री स्किओ

★
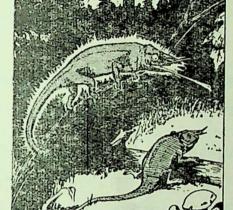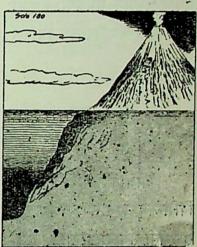
१. रङ्ग बदलने वाला गिरगिट क्रुद्ध होने पर राख की तरह धूसर वर्ण हो जाता है। युद्ध में विजयी होने पर हरित वर्ण तथा पराजित का रङ्ग मलिन-पीत हो जाता है।

२. हिमालय का मौन्ट-एवरेस्ट शिखर विश्व का उच्चतम शिखर है। यह समुद्र के धरातल से २९०२८ फीट ऊंचा उठा हुआ है। हवाई द्वीप (प्रशान्त महासागर में) का पर्वत शिखर माउनाकी समुद्र की गर्भस्थ तल से ३०७८५ फीट ऊंचा उठा हुआ है परन्तु इस में से १७००० फीट की ऊंचाई जलमग्न है।
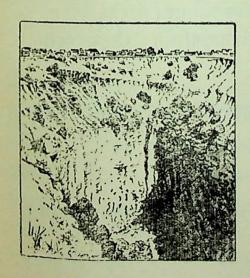
३. दक्षिण अफ्रीका में किम्बर्ली की हीरे की खान इतनी बड़ी है कि उसे मनुष्य द्वारा खोदा गया, सब से बड़ा छिद्र कहा जाता है। यह खान एक मील घेरे में १३३५ फीट गहरी चली गई है। १९१४ में इस का परित्याग कर दिया गया था। इस में ६४०४ पौंड हीरे निकाले गए थे।

—०—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तरप्रदेश मुख्यमन्त्रिणां डाक्टर श्रीसम्पूर्णानन्द-महाभागानां अभिनन्दनम्

अभ्यागत महानुभाव,

सौभाग्यमिदमस्मदीयं यत् पुण्य-श्लोकस्य, श्रद्धेय चरणस्य, गुरोः श्रीस्वामी श्रद्धानन्दस्य तपोवनेऽस्मिन् समवेताः सकलाः कुलवासिनो वयमद्य विद्याव्यसनिनोऽनवद्य-यशसो माननीयस्य स्वमुख्यमन्त्रिमहोदयस्य स्वागतं हृदयेन समाचरामः ।

विद्वत्प्रवर,

न केवलं मुख्यमन्त्रित्वेन अपितु स्वविद्वत्तया भारतीयां संस्कृतिं संस्कृतभाषां प्रति च स्वकीय-निष्ठया, गुरुकुले अस्यादर्शेषु च निसर्ग-पक्षपातेन क्रीतानीव हृदयानि न प्रेक्षावता।

श्रीमान् हि सरस्वत्याः सविशेषकृपा-भाजनं ज्ञानं च श्रीमतः सर्वतोमुखम् । विद्याया अत्यन्त विभिन्नेषु प्रस्थानेष्वपि अस्खलितां स्वलेखनीं व्यापार्य समुपार्जितमार्येण निर्मलं यशः। आत्मानं सरस्वती-समाराधनयोग्यं कर्त्तुमिच्छताम् अस्माकं पथप्रदर्शकानि श्रीमतश्चरण-चिह्नानि । दैनन्दिनशासन-समस्या-प्रसितस्याऽपि श्रीमतोऽनवच्छिन्ना साहित्य-सेवासमुत्साहयत्यस्मान् ।

भारतवर्षे हृदयायमानस्य उत्तरप्रदेशस्य जनतयास्वशासनसूत्रं एकस्य आस्तिकस्य विपश्चितश्च करकमलयोः समर्प्य पुरापि स्वविवेकशीलताऽऽविष्कृताऽऽसीत् । सम्प्रति पुनरपि द्वितीय वर्षपञ्चकाय श्रीमन्तमेव नेतृपदेऽभिषिच्य पूर्ववत् स्वविश्वासः प्रकटितः--इति प्रहृष्यति नितान्तमस्माकं स्वान्तम् ।

गुरुकुले हि माननीयस्य इदमागमनं नेदम्प्रथमं इत्यनावश्यकमेवाऽस्य परिचय-प्रदानम् । तथापि देशस्य राष्ट्रियशिक्षा-संस्थासु अन्यतमेयं स्वाधीनतायुगेस्मिन् राष्ट्रकर्णधाराणां सहानुभूतिं सविशेषमर्हतीति निवेदनं नाऽप्राप्तकालं स्यात् ।

अन्ते च, अस्मदीयानुरोधमनुवर्त्तमानेन माननीयेन यदिहागत्य वयमनुगृहीतास्तदर्थं कृतज्ञतां प्रकाशयन्तो वयं भूयोऽपि श्रीमन्तमभिनन्दामः ।

एते वयं स्मः

श्रीमतो विनयावनताः गुरुकुलस्य गुरुजनाः अन्तेवासिनश्च ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल संग्रहालय (१९५६-५७ की प्रगति)

श्री हरिदत्त वेदालङ्कार

मुद्रा विभाग—इस में पचास नई भारत की प्राचीनतम आहत मुद्राओं की तथा कुमारपाल के एक सोने के सिक्के की वृद्धि हुई। ३८ प्राचीन मुद्राओं की अनुकृतियां तैयार कराई गईं। बहुमूल्य मुद्राओं को सुरक्षित रखने के लिए गाडरेज की अलमारी मंगवाई गई। श्री ठाकुर अर्जुनसिंह जी अध्यक्ष, जिलाबोर्ड सहारनपुर ने संग्रहालय को १०५ मुगलकालीन सिक्के दान देने की कृपा की।

चित्र विभाग—इस में राजस्थानी शैली के आठ नये प्राचीन रङ्गीन चित्र उपलब्ध किए गये। इन में से पांच नाथ द्वारा शैली के प्रतिनिधि हैं, इन में कृष्ण लीला के विविध दृश्यों, वसुदेव का शिशु कृष्ण सहित गोकुल गमन, हिण्डोल लीला, दधि मन्थन, बकासुर-वध, कंस-वध, कालिय दमन, चीर हरण, श्री कृष्ण का गोपाल बालों के साथ गौएं चराने आदि का चित्रण है। अन्य चित्रों में क्षीर सागर में शेषशायी विष्णु, कमलालया लक्ष्मी के, गजों द्वारा अभिषेक को और तैमूरलङ्ग को प्रदर्शित किया गया है।

मूर्ति विभाग—गत वर्ष २१ नई पाषाण मूर्तियां संग्रहालय में आईं। इन में विशेष उल्लेखनीय मूर्तियां निम्न हैं—पद्मपाणि बोधिसत्व की मूर्ति, जिस में सातवीं शती ईस्वी की ब्राह्मी में 'ये धर्मा हेतु प्रभवा' का बौद्ध मंत्र उत्कीर्ण है, ८ वीं शताब्दी ईस्वी की हरिहर की प्रतिमा का सिर, बुद्ध के परिनिर्वाण का कुषाणकालीन दृश्य, अमृत घट लिए पद्मासन पर बैठे बोधिसत्व, मैत्रेय, गुप्तकालीन जटाजूट और किरीट युक्त हरिहर का शीर्ष, कपर्दी आकृति वाला बुद्ध का सिर, कुबेर तथा हारीती, मकर वाहिनी गङ्गा, जैन तीर्थंकर का सिर, भार उठाने वाले कीचक युक्त स्तम्भशीर्ष, महिषासुर का वध करती हुई चतुर्भुजी देवी की मूर्ति।

गत वर्ष प्राचीन भारत की मृण्मूर्तियों का संग्रह इस दृष्टि से किया गया कि वे विद्यार्थियों तथा सामान्य जनता को प्राचीन भारत के वेष-भूषा, आमोद-प्रमोद, केश विन्यास आदि का सजीव परिचय देने में सहायक हों। इस प्रकार की ३० नई मूर्तियां संग्रहालय के लिए उपलब्ध की गईं। ये शुंग, कुषाण एवं गुप्तकाल की हैं। इन में स्त्री पुरुषों के विविध अलङ्करणों, हार, कटक, ताटंक चक्र, कर्णकुण्डल, ग्रैवेयक, स्तनहार और विभिन्न प्रकार के केश विन्यासों का बड़ा सुन्दर चित्रण है।

कालिदास द्वारा वर्णित पक्षियों के चित्र—आलोच्य वर्ष में संस्कृत एवं प्राचीन इतिहास में वर्णित कतिपय महत्त्वपूर्ण विषयों के स्पष्टीकरण के लिए संग्रहालय में कुछ नवीन चित्र विशेषरूप से तैयार करवाये गए। कालिदास के ग्रन्थों में आने वाले पक्षियों का नाम यद्यपि सब काव्य प्रेमियों को ज्ञात है पर उन के यथार्थ रूप का ज्ञान बहुत कम व्यक्तियों को होता है। इस कमी को दूर करने के लिये इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष तीन रङ्गीन चार्ट बनवाये गये। इन में राजहंस, चक्रवाक, सारस, मयूर, सारङ्ग, चातक, हारीत, बलाका, सारिका, कोयल, शुक और पारावत को इन के असली रङ्गों में दिखाया गया है और इन के साथ मेघदूत रघुवंश आदि ग्रन्थों के इन पक्षियों से सम्बद्ध श्लोक और इन के हिन्दी तथा अंग्रेजी नाम लिखे गये हैं। इन रङ्गीन चित्रों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख ने संग्रहालय में आने पर विशेष रूप से पसन्द किया था।

वेश-भूषा के चार्ट—गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी पुरातत्व की सामग्री के आधार पर प्राचीन भारत की वेश-भूषा के आठ नये चार्ट विशेष रूप से तैयार करवाये गये। इन में सिन्धु सभ्यता के पांच हजार वर्ष पुराने वस्त्राभूषण, ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में शुंग एवं सातवाहन युग की पगड़ियां और शिरोवस्त्र, अजन्ता के भित्तिचित्रों में पाई जाने वाली उच्च वर्ग की वेष-भूषा, दसवीं शताब्दी ईस्वी में कलिंग, (उड़ीसा) में पाये जाने वाले स्त्रियों के केश-विन्यास के विभिन्न फैशन बड़े मनोरम और शिक्षाप्रद रूप में प्रदर्शित किये गये हैं।

बृहत्तर भारत सम्बन्धी चित्र—आलोच्य

स्त्रियों की प्राचीन शिरोभूषा का एक चित्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वर्ष में भारत से बाहर के देशों में पाई जाने वाली भारतीय कला के कुछ चार्ट तैयार करवाये गये और चित्र उपलब्ध किये गये। बनवाये गये चित्रों में जावा के बोरोबुडुर स्तूप की सामान्य योजना तथा बेग्राम की खुदाई से प्राप्त हाथी दान्त की वस्तुओं पर अंकित विभिन्न आभूषणों के चार्ट हैं। चीनी दूतावास के सौजन्य से प्राप्त चीन में पाये जाने वाले भारतीय एवं बौद्ध स्मारकों के रंगीन तथा सादे चित्र भी इस वर्ष संग्रहालय में विशेष रूप से प्रदर्शित किये गये हैं। इन में तुनह्वांग और युनकांग तथा पिंगलिंग के बौद्ध गुहामन्दिरों में अंकित भित्तिचित्रों, उत्कीर्ण मूर्तियों की तथा विभिन्न प्रकार की बुद्ध प्रतिमाओं की रंगीन अनुकृतियां बड़ी मनोहारिणी हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय संग्रहालय सप्ताह—गत वर्ष यूनेस्को द्वारा निर्धारित तिथियों में गुरुकुल संग्रहालय सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस का विशेष कार्य क्रम ज्ञान—विज्ञान के विभिन्न विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा चित्रों की सहायता से करवाये जाने वाले विशेष व्याख्यान थे। श्री पं० हरिदत्त जी वेदालंकार, एम. ए. ने बृहत्तर भारत की कला पर, श्री पं० शंकरदेव विद्यालंकार, एम. ए. ने हरिद्वार और उसके आस-पास पाये जाने वाले पक्षियों पर, श्री रामेश बेदी हिमालय के सांपों पर, श्री प्रो० चम्पतस्वरूप एम. एस. सी. ने प्राणिशास्त्र के नमूनों को संग्रहालय के लिये एकत्र करने की पद्धति पर तथा श्री मदनगोपाल ने रंगीन मछलियों पर व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानों के कार्यक्रम में विद्यार्थियों तथा जनता ने बड़े उत्साह से भाग लिया और इस से संग्रहालय द्वारा लोकशिक्षण और ज्ञान-प्रसार का कार्य भली भांति सम्पन्न हुआ। इस के अतिरिक्त इस सप्ताह में विभिन्न स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों को संग्रहालय देखने के लिये विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया।

श्रद्धानन्द जन्मशताब्दी प्रदर्शनी—आलोच्य वर्ष में गुरुकुल के उत्सव पर जब श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी समारोह मनाया गया उस समय संग्रहालय में एक सप्ताह के लिये श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस में स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लिखी गई उर्दू, अंग्रेजी, और हिन्दी की दुष्प्राप्य पुस्तकों का संग्रह और प्रदर्शन किया गया था। स्वामी जी द्वारा संपादित समाचार पत्रों में सद्धर्मप्रचारक और उन के हस्तलिखित पत्र तथा उन की जीवनी से सम्बन्ध रखने वाले चित्र प्रदर्शित किये गये थे। इस प्रदर्शनी से हज़ारों व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

नया मूर्ति भवन—संग्रहालय में सामग्री अधिक बढ़ जाने से सब वस्तुओं को भली भांति प्रदर्शित करने के लिये स्थान की बड़ी कमी थी। प्राचीन मूर्तियों को समुचित रूप से रखने के लिये कोई जगह नहीं थी। गत वर्ष मूर्तियों के प्रदर्शन के लिये ३० फुट लम्बा १५ फुट चौड़ा टीन की छत का एक भवन बनाया गया है। इस में सब महत्त्वपूर्ण मूर्तियां बड़े सुचारु एवं व्यवस्थित ढंग से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
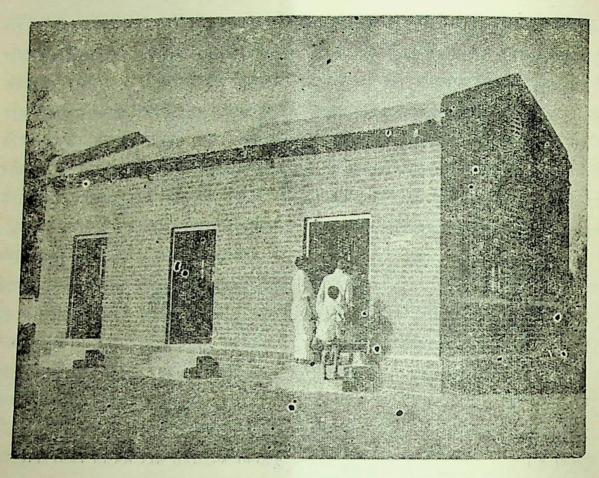
नया मूर्तिभवन

प्रदर्शित की गई हैं। इन से इस प्रदेश की मूर्ति कला के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है।

दर्शकों की संख्या—हरिद्वार के एक महत्व-पूर्ण तीर्थस्थान होने और गुरुकुल संग्रहालय के वेद मन्दिर में अवस्थित होने के कारण इसे देखने के लिये दर्शक भारत के प्रत्येक प्रान्त से बड़ी संख्या में आते हैं और इस संग्रहालय से बड़ा लाभ उठाते हैं, अपने देश की प्राचीन संस्कृति और इतिहास का तथा पुरातत्व का परिचय प्राप्त करते हैं। पुरातत्व एवं प्रकृति विज्ञान संग्रहालय में गत वर्ष के विभिन्न मासों में दर्शक संख्या इस प्रकार रही—अप्रैल—१००५६, मई—५४३८, जून—४७३४, जुलाई—४६१८, अगस्त—६३५६, सितम्बर—३६८०, अक्टूबर—३२५६, नवम्बर—३८८४, दिसम्बर १८६४, जनवरी—१३१४, फरवरी—३६१४, मार्च—२७५६ कुल संख्या ५२२००। इस से यह स्पष्ट है कि गत वर्ष इस संग्रहालय से आधे लाख से भी अधिक व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

मान्य दर्शक—गत वर्ष संग्रहालय देखने के लिये अनेक माननीय दर्शक पधारे। इन में श्री मदनमोहन जी नागर, संग्रहालय संचालक उत्तरप्रदेश, श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी अध्यक्ष मथुरा संग्रहालय, और विश्वविद्यालय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनुदान आयोग के अध्यक्ष श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख थे। श्री देशमुख जी ने १४-४-५७ को इस संग्रहालय का निरीक्षण कर इस के सम्बन्ध में निम्न सम्मति प्रगट की--

'मुझे संग्रहालय की विभिन्न प्रकार की विविध वस्तुओं में बड़ी दिलचस्पी थी। संग्रहालय में स्थान की कमी है इस लिये यह दो भागों में विभक्त है। मूर्तियां पास के ही एक दूसरे स्थान में हैं। संग्रह को उत्तम बनाने का प्रत्येक प्रयास किया गया है और इस में बहुत से चित्र प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर विशेष रूप से तैयार कराये गये हैं। मुझे कालिदास द्वारा वर्णित पक्षियों और प्रपुष्पित होने वाली वनस्पतियों के रंगीन चित्रों और फोटोग्राफों में विशेष अभिरुचि थी। इन्हें चित्रित करने के प्रयत्न बड़े सफल और काफी व्यापक थे। इस संग्रहालय में वह सभी कुछ है जो एक शिक्षा संस्था के संग्रहालय का लक्ष्य होना चाहिये। इस संग्रहालय की एक वांछनीय विशेषता स्थानीय पुरातत्व की वस्तुओं की ओर ध्यान देना है। मैं इस संग्रह की उत्कृष्टता और वैविध्य के लिये इस के संगठनकर्त्ता को बधाई देता हूं।'

आभार प्रदर्शन—गत वर्ष संग्रहालय के
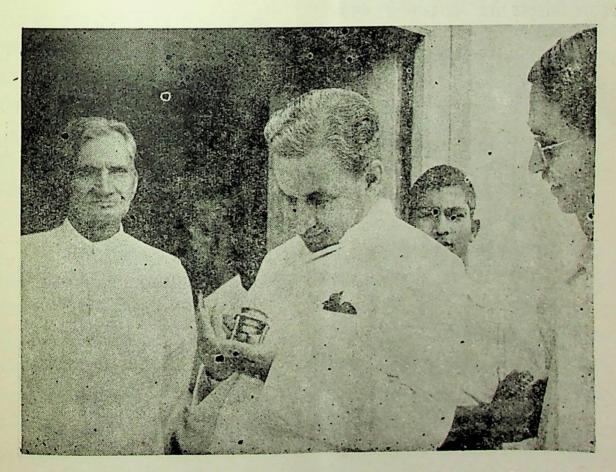
श्री देशमुख संग्रहालय में एक प्राचीन सिक्के का प्रवर्द्धक ताल की सहायता से सूक्ष्मता से अवलोकन कर रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार्य में और इस की सर्वाङ्गीण उन्नति में श्री पंडित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति उपकुलपति, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से निरन्तर प्रबल प्रेरणा प्राप्त होती रही है। श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार ने इस के विविध कार्य सम्पन्न कराने में बहुमूल्य सहायता की है। श्री मदनमोहन जी नागर संग्रहालय संचालक, उत्तर प्रदेश तथा श्री कृष्णदत्त जी वाजपेयी, अध्यक्ष मथुरा संग्रहालय ने विविध प्राचीन वस्तुओं की उपलब्धि में बड़ी सहायता की है और इस की उन्नति के लिये अपने बहुमूल्य सुझाव दिये हैं। श्री ठा० अर्जुनसिंह जी चेयरमैन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सहारनपुर ने मुगल-कालीन चाँदी के सिक्के दे कर संग्रहालय को कृतार्थ किया। चीनी दूतावास ने चीन में भारतीय कला के प्रदर्शक रंगीन चित्रों के दो एलबम तथा पचास सादे चित्र भेंट किये हैं। फ्रेंच दूतावास तथा विशेषतः इस के सांस्कृतिक अधिकारी पैडौन्क्स ने प्राचीन कम्बुज और चम्पा की भारतीय कला के कुछ चित्र भेज कर हमें अनुगृहीत किया है। गुरुकुल संग्रहालय इन सब महानुभावों का बड़ा आभारी है और उसे यह आशा है कि भविष्य में भी इन का बहुमूल्य सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा और संग्रहालय की उन्नति होती रहेगी।

—

श्री देशमुख जी संग्रहालय में मूर्तियों का निरीक्षण कर रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी आवश्यक हैं—सम्पादक ।

मेरे पिता (संस्मरण)

लेखक—श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति । प्रकाशक—वाचस्पति पुस्तक-भण्डार, जवाहर नगर, दिल्ली । मूल्य ४) ।

हिन्दीभारती के यशस्वी लेखक श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति नें इस पुस्तक में अपने पिता जी (लोकवंदित स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी महाराज) के संस्मरण लिखे हैं। इन संस्मरणों के प्रकाश में हमें स्वामी जी के चारित्रिक विकास का एक स्पष्ट और उज्ज्वल चित्र प्राप्त होता है । किस प्रकार स्वामी जी शनैः शनैः प्रेय से श्रेय की ओर तथा भोग से त्याग की ओर तथा स्वार्थ से परार्थ एवं सेवा और साधना की ओर अपूर्व आत्म-विश्वास और श्रद्धा के साथ अग्रसर होते गए—इस समूचे जीवन-विकास की कहानी जानने को मिलती है ये संस्मरणात्मक शब्द-चित्र ऐसी स्वच्छ, सरल और आकर्षक शैली में आँके गये हैं कि पढ़ते हुए उपन्यास से भी अधिक रोचक प्रतीत होते हैं।

२. 'सर्वमेध यज्ञ' तथा 'पटपरिवर्तन' आदि प्रकरण तो इतने अधिक प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं कि वाचक की चेतना द्रवित हो जाती है। इन स्मृति-चित्रों में गुरुकुल काँगड़ी के प्रारम्भिक निर्माण और विकास की कहानी भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। कुल का वह गौरव-मय अतीत चल-चित्रों की भांति नयनों के आगे उतराने लगता है।

आत्मीयजनों के चरित्र आँकते समय भाव-प्रवण हो जाना अति सहज होता है। प्रस्तुत स्मृति-पुस्तक में लेखक ने तटस्थ रहते हुए बड़ी संयत भाषा में घटनाओं का अङ्कन किया है। अवश्य ही हिन्दी भाषा के संस्मरणात्मक चरित्र-साहित्य में यह पुस्तक समादृत होगी। लेखक की मिताक्षरी परन्तु मनोहर अङ्कन-शैली हृदय पर अपना अचूक प्रभाव छोड़ जाती है। पुस्तक का मुद्रण और रूप विधान सुन्दर है।

—शंकरदेव ।

श्रद्धानन्द विशेषाङ्क पर सम्मतियाँ

श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी विशेषाङ्क । मुद्रक—गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार । मूल्य ५७ नये पैसे ।

यह विशेषाङ्क स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन के अनेक पहलुओं तथा उनके दर्शन पर यथेष्ठ प्रकाश डालता है। इस में अनेक विद्वान् लेखकों के लेख प्रकाशित किये गये हैं। यह विशेषाङ्क संग्रहणीय है इस में सन्देह नहीं। —आज, बनारस।

१३ अप्रैल को भारत राष्ट्र के सभी राज्यों में श्रद्धानन्द जन्म-शताब्दी समारोह विशेष रूप से मनाया गया। इस अवसर पर स्वामी श्रद्धानंद के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मुख्य पत्रिका गुरुकुल पत्रिका ने विशेषांक प्रकाशित किया है। विशेषांक में स्वामी श्रद्धानन्द जी के सम्बन्ध में यथासंभव अधिक से अधिक आकर्षक शिक्षाप्रद जानकारी संगृहीत की गई है। अनेक आकर्षक चित्र भी हैं। विशेषांक संग्रह योग्य है। विशेषांक के संस्मरण संबंधी लेख विशेष रूप से पठनीय हैं।

—हिन्दी-संदेश, अम्बाला ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु-रङ्ग

प्रतिवर्ष उत्सव समाप्त होते ही अच्छी गर्मी पड़ने लगती थी। परन्तु इस बार संपूर्ण वैशाख मास मामूली गर्मी में ही व्यतीत हो गया। समय-समय पर बदलियाँ आ जाने से तथा कुछ-कुछ वर्षण हो जाने से मौसम सुहावना होता रहा है। ज्येष्ठ शुरू हो जाने पर भी लू का प्रकोप नहीं प्रारम्भ हुआ। इन दिनों प्रकृति भी अति मनोहर है। कुल की सभी आम्र-वाटिकाएं आम्रफलों से लदी हुई झूम रही हैं। जामुन भी बौरा रहे हैं। ग्रीष्मकालीन नवागत पंखियों के कलरवों से गुरुकुलपुरी के उद्यान और वनकुंज गूंजते रहते हैं। विशेषत: कोयल और पपीहे के मधुर आलापों से इस ऋतु का वैभव द्विगुणित हो उठा है। अमलतास-वीथी अपनी पीत-सुषमा से ज्येष्ठ मास का अभिनन्दन कर रही हैं। मोतिया के झुरमुट महक उठे हैं। ऋतुफलों में खरबूजे-तरबूज और प्यालों की बहार है। बिल्व-फल भी पक रहे हैं। कुल की बगिया की लीचियां भी अब तैयार हुई समझिए। प्रातः पर्यटन और नहरस्नान का बड़ा आमोद है। दिनभर सैलानियों और अतिथियों के याता-यात से गुरुकुल के प्रधान पथों पर रौनक बनी रहती है। सब कुलवासी सानन्द हैं।

दीर्घावकाश

ग्रीष्मकालीन दीर्घावकाश १९ एप्रिल से प्रारम्भ हो चुके हैं। दो मास के पश्चात् २० जून को पुनः नया सत्र प्रारम्भ होगा। विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारी अपने गुरुजनों सहित एक मास के लिए मंसूरी के पहाड़ पर गये हैं। मंसूरी को प्रधान पड़ाव मान कर वे समीपस्थ पर्वत-घाटियों का परिभ्रमण करते हुए स्वास्थ्य-लाभ करेंगे।

अभिनन्दन

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक तथा तिब्बी एकेडमी, लखनऊ ने १९५६-५७ के आर्थिक वर्ष में आयुर्वेद की उत्कृष्ट पुस्तकों पर कुल बारह पुरस्कार प्रदान किए हैं। इन में से तीन पुरस्कार गुरुकुल के स्नातकों को प्राप्त हुये हैं।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में चरक तथा चिकित्सा के प्राध्यापक श्री धर्मदत्त विद्यालङ्कार को उन की अंग्रेजी पुस्तक 'आयुर्वेदिक इण्टरप्रेटेशन ऑफ मेडिसिन' पर साढ़े तीन सौ रुपये का पुरस्कार मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की फार्मेसी के अधीक्षक श्री अत्रिदेव विद्यालङ्कार को उन की संस्कृत-साहित्य में आयुर्वेद पुस्तक पर तीन सौ पचास रुपये का पुरस्कार मिला है। श्री रामेश बेदी को उन की 'देहात की दवाएं' पुस्तक पर सौ रुपये का पुरस्कार मिला है। कुल के इन यशस्वी स्नातकों की साहित्य सेवाओं की यह सरकारी मान्यता प्राप्त होने पर हम इनका अभिनन्दन करते हैं।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
मेरा धर्म श्री प्रियव्रत ५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत श्री प्रियव्रत ४)००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल श्री प्रियव्रत ५)००
वरुण की नौका, २ भाग श्री प्रियव्रत ६)००
वैदिक विनय, ३ भाग श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना श्री रामनाथ)८७
वैदिक-सूक्तियां ,, १)७५
आत्म-समर्पण श्री भगवद्दत्त १)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान ,, २)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या ,, १)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)००
ब्राह्मण की गौ श्री अभय)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) श्री वेदव्रत २)००
सोम-सरोवर,सजिल्द, श्री चमूपति २)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र श्री धर्मदेव १)२५
अग्निहोत्र श्री देवराज २)२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका, १, २, भाग)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु प्रत्येक १)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध २)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग श्री रामदेव ६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द ७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग)७५
अपने देश की कथा श्री सत्यकेतु १)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव)५०
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)००
मेरे पिता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ४)००
सम्राट् रघु ,, १)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू ,, १)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र ,, २)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन ,,)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन श्री नित्यानन्द १)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग ३)५०
आत्म-मीमांसा श्री नन्दलाल २)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा श्री विश्वनाथ १)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १)२५
सन्ध्या-रहस्य श्री विश्वनाथ २)००
जीवन-संग्राम श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) श्री रामरक्ष ५)००
आसव-अरिष्ट श्री सत्यदेव २)५०
लहसुन:प्याज श्री रामेश बेदी २)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)००
सोंठ, तीसरा ,, ,, १)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण ,, १)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग),, १)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५ बरगद)७५
स्तूप निर्माण कला श्री नारायण राव ३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १)२५
जल चिकित्सा श्री देवराज १)७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग श्री यज्ञदत्त १)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी.के लिए) १)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार))७५
आर्यभाषा पाठावली श्री भवानी प्रसाद १)५०
आत्म बलिदान श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,, १)५०
जमींदार ,, २)००
सरला की भाभी, १, २ भाग ,, २)००, ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीष्म ऋतु के उपहार

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों को लाभ पहुँचाता है। बच्चे व बूढ़े सब इस का प्रयोग कर सकते हैं। मूल्य १॥ माशा ०-६५।

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की कमजोरी दूर करने में इस से बढ़ कर दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी रहती है। मूल्य ०-७५ सेर।

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया जाता है। दिमाग को ठण्डक व तरावट दे कर ताज़गी लाता है। दिमाग की कमज़ोरी वाले रोगियों को यह तेल विशेष हितकर है। मूल्य १-३७ ४ औंस।

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह ओषधि दुखती आँखों के लिए अकसीर है। कुकरे, दर्द व लाली इस से दूर होते हैं। मूल्य १-०० शीशी।

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातःकाल एक गिलास शर्बत तमाम दिन ताज़गी रखेगा। मू. ३-०० बोतल, १-६५ छोटी शीशी।

आमला तेल

यह तेल बढ़िया आमले से तैयार किया जाता है। इस से बालों का गिरना, अकाल में पकना तथा गञ्ज आदि रोग दूर होते हैं। बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है। मूल्य १-२५ ४ औंस।

पायोकिल

पायोरिया रोग की परीक्षित ओषधि है। इस के प्रयोग से दांतों से खून व पीप आना रुक जाता है तथा दांत चमकीले और दृढ़ हो जाते हैं। दैनिक प्रयोग के लिए भी उत्तम है। मूल्य १-५० छोटी शीशी।

बाल शर्बत

बच्चों के हरे-पीले दस्त, कब्ज़, उल्टी, खांसी तथा ज्वर आने पर विशेष गुणकारी है। मूल्य १-२५ बड़ी शीशी, ०-४० छोटी शीशी।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : श्री धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्री डा० कालका प्रसाद जी भटनागर गुरुकुल के अधिकारियों के साथ

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पूर्णाङ्क ११६ ★
मार्च १९५८

इस अङ्क में

विषय | पृष्ठ-संख्या

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

वर्ष १० चैत्र २०१४ अङ्क ८

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओं स नः शक्रश्चिदाशकत् दानवाँ अन्यराभरः ।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ।।

(सः) वह (शक्रः) शक्तिमान् (नः चित्) हमें भी (आ अशकत्) शक्ति युक्त करे क्योंकि वह (दानवान्) दान देने वाला (अन्तराभरः) अन्तस्तल को भरने वाला है (इन्द्रः) वह परमेश्वर अपनी (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षाओं से हमें समर्थ करे ।

विनय

जगत् उद्यान के हे दिव्य माली
सकल जगत् के विधाता शक्तिशाली !
खड़े हम दीन कब से हाथ खाली
कृपा की दृष्टि क्यों तुम ने हटाली ?

न करुणा की कसर का कुछ गिला है
तुम्हीं से तो हमें सब कुछ मिला है ।।
कहां पर नाथ वह जावे भिखारी
जिसे हो नित्य की ही भीख प्यारी ? ।।

तुम्हीं हो नाथ विपदा में सहायक
तुम्हीं हो दीन रक्षक लोकनायक ।
तुम्हें कोई नहीं आपत्ति भारी
तुम्हीं हो दोषमोचन दुःख हारी ।

न लौकिक चाह मुझको कुछ रही है
बिनय हे प्राणधन तुम से यही है ।
करो सामर्थ्य मय मन प्राण जीवन
करूं जिससे विफल मैं मोह बन्धन ।

दया कर नाथ दुखिया का करो हित
गहनतम भेद, पथ कर दो प्रकाशित ।।

—श्री सत्यकाम विद्यालंकार ।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एकता से अनेकता की ओर

श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

भारत में विक्रम काल की समाप्ति राजा हर्षवर्धन के साथ हो गई। तब से लेकर महाराज पृथ्वीराज के काल को हम मध्यकाल कह सकते हैं। उसे योरुप के इतिहास की नक्ल में कुछ लेखकों ने अन्धकार काल भी कहा है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से उस काल में सर्वथा अन्धेरा नहीं है, तो भी सांस्कृतिक और राजप्रवृत्तियों की दृष्टि से उसे अन्धकार काल कहा जा सकता है। हम १२ वीं शताब्दी के भारत को ७वीं शताब्दी के भारत से सर्वथा भिन्न पाते हैं। जहाँ ७वीं शताब्दी का भारत एक सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग के समान प्रतीत होता है,वहां १२ वीं शताब्दी के भारत को ऐसे जीर्ण और जर्जरितदुर्ग से उपमा दी जा सकती है,जिसके जिस भाग पर ठोकर लगी, वही भाग गिरता दिखाई दिया। विक्रम काल में कई बार विदेशियों ने भारत में घुसने का प्रयत्न किया, कहीं कहीं घुस भी आए, पर सदा देश का कोई न कोई वीर सेनापति उन्हें परास्त करता रहा। फलतः हर्षवर्धन के समय में हम सारे देश को विदेशी आक्रान्ताओं के प्रभाव से सर्वथा मुक्त पाते हैं। कई सदियों तक देश विदेशी आक्रमणों से सदा मुक्त रहा। इस विधान के काल में देश की दशा में जो परिवर्तन आये,दुर्भाग्य की बात थी कि वे कल्याणकारी नहीं थे। परिवर्तन व्यापी थे, जाति के केवल एक या दो अङ्गों पर ही उनका प्रभाव नहीं हुआ, समाज, साहित्य, धर्म और राजनीति सभी पर उन परिवर्तनों का विषैला प्रभाव हुआ। उसी का यह परिणाम हुआ कि जब ८ वीं शताब्दी के मध्य में अरब के लोगों ने सिंध पर आक्रमण किया तो सिन्ध के शासक उनकी प्रगति को न रोक सके। उस समय सिन्ध में राजपूतों का राज्य था, परन्तु प्रजा बहुतकर बौद्ध धर्म को मानने वाली थी। यह आश्चर्य की बात है कि जहां भारत से बाहिर के बौद्ध महात्मा बुद्ध के सब उपदेशों का पालन करते हुए भी ऐसी भूल में कभी नहीं पड़े कि शत्रु के सामने अहिंसा की चादर तान कर खड़े हों, वहां भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव राजनीति के लिये बहुत हानिकारक होता रहा। मौर्य साम्राज्य के शीघ्रपतन का मुख्य कारण सम्राट् अशोक द्वारा राजनीति में बौद्ध सिद्धान्त का प्रवेश ही था। सिन्ध में भी बौद्ध धर्म ने राष्ट्र की राजनीतिक दृढ़ता को बहुत हानि पहुंचाई। सिन्ध के राजा, प्रजा का असहयोग होने के कारण अरब लोगों का प्रतिरोध न कर सके।

सिन्ध पर अरबों का अधिकार हो गया, परन्तु अभी देश के अन्य भागों में अधिक शिथिलता नहीं आई थी, इस कारण अरब सेनाएं आगे न बढ़ सकीं।

परन्तु जब लगभग दो सदी बाद महमूद गजनवी और उसके पश्चात् मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किया तो भारत की दशा बदल चुकी थी, देश वही था, क्षत्रिय वंश वही थे, परन्तु जाति की दशा इतनी बदल चुकी थी,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि देश का किला रेत की दीवार की तरह गिरता चला गया। यह भारी परिवर्तन कैसे हो गया, यदि इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना हो तो हमें देश के उन ४०० वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास पर गहरी दृष्टि डालनी होगी। तभी हम सम्पूर्ण ऐतिहासिक परम्परा के मूल कारणों को समझ सकते हैं, अन्यथा नहीं।

उक्त लगभग ४ शताब्दियों के इतिहास की प्रगति को हम यदि कोई एक शीर्षक देना चाहें तो वह होगा 'एकता से अनेकता की ओर' जीवन की प्रत्येक दिशा में हम जाति को अनेकता की दिशा में बढ़ता देखते हैं। सबसे पहले आप धार्मिक प्रगति पर दृष्टि डालिये। महात्मा बुद्ध से पूर्व देश धार्मिक दृष्टि से एक ही दायरे के अन्दर था। उस समय के धर्म को हम केवल व्यवच्छेद क लिये 'वैदिक धर्म' 'श्रौत धर्म' अथवा 'भारतीय धर्म' कह सकते हैं, उस समय की भाषा में तो वह केवल धर्म के शब्द से ही निर्दिष्ट किया जाता था। वेदों के समय से लेकर महात्मा बुद्ध से पूर्व काल तक उसमें अनेक परिवर्तन हुए। ब्राह्मण, सूत्र और उपनिषदों में से होता हुआ वह रामायण तथा महाभारत तक पहुंचा, और समयान्तर में उस में बहुत से दोषों का प्रवेश हो जाने से उसका रूप इतना विकृत रूप हो गया था कि महात्मा बुद्ध को उसके विरुद्ध प्रतिवाद करना पड़ा। बौद्ध धर्म के मैदान में आ जाने से देश में एक की जगह दो धार्मिक प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गईं, जिनका संघर्ष लगभग ३०० वर्षों तक जारी रहा।

उसके पश्चात् बौद्ध धर्म के प्रति ज़ोरदार प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। गुप्तकाल में, जो विक्रमकाल का ही एक परिच्छेद था वह प्रतिक्रिया चरम सीमा तक पहुंच गई, जिससे भारत में बौद्ध धर्म बहुत निर्बल पड़ गया। राजा हर्षवर्धन ने फिर एक बार अपने राज्यकाल में प्राचीन श्रौत धर्म के समकक्ष बना कर बौद्ध धर्म को जागृत करने की चेष्टा की, परन्तु वह यत्न अधिक सफल न हुआ, और हर्षवर्धन के पश्चात् राज धर्म बौद्ध धर्म का लोप हो गया। कहीं कहीं जन धर्म के रूप में वह टिमटिमाता रहा। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य के के प्रचार ने उसके रहे सहे बल को भी तोड़ दिया।

भारत मे बौद्ध धर्म प्रायः लुप्त हो गया। परन्तु इसके आने से पूर्व की जो एकता थी, वह वापिस न आ सकी। बौद्ध मत कई रूपों में अपने अवशेष छोड़ गया। बौद्धमत के निर्वाणवाद ने वेदान्त के नैष्कर्म्यवाद के रूप में पुनर्जन्म ले लिया। बौद्धमत में ईश्वर के स्थान पर महात्मा बुद्ध की, और उसके साथी जैनमत में महावीर स्वामी तथा जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियों की पूजा होने लगी थी। उसके प्रभाव से, और उसके उत्तर के रूप में प्राचीन भारतीय धर्म में भी देवताओं की मूर्तियां बनने और पुजने लगीं। यदि यह मान लिया जाय कि मूर्त्त रूप में भगवान् की पूजा बौद्ध काल से पहले भी प्रचलित थी, तो इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बौद्ध और जैन मतों के प्रभाव से उसमें कुछ वृद्धि हुई। मूर्त्ति पूजा का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि धार्मिक क्षेत्र में अनेक देवतावाद की भावना दृढ़ हो कर धार्मिक अनेकता का कारण बनी।

जब एक बार देवताओं की संख्या बढ़ने लगी और उनके भक्तों ने अपने अपने पूज्य देव का यशोगान करने और प्रसन्न करने के लिये नये नये पुराणों की रचना की। प्रत्येक बड़े देवता का पुराण बन गया, जिस से धार्मिक अनेकता चरम सीमा तक पहुंच गई। अनेक नये नये पुराणों तथा उपपुराणों की रचना और अनेक देवताओं के नाम पर मंदिरादि निर्माण का विशेष ज़ोर इन्हीं चार शताब्दियों में रहा। इस प्रकार ये शताब्दियां भारत में सब अनेकताओं की आधारभूत अनेकता—धर्म सम्बन्धी अनेकता की जननी बन गई।

देवता शब्द का वैदिक समय में क्या अर्थ था, और समय के साथ उसमें क्या परिवर्तन होते गये? भावात्मक देवता के स्थान में आ कर प्राकृतिक देवता कैसे बैठ गये, और अन्त में उन्होंने लगभग मानव रूप कैसे धारण कर कर लिया, यह एक अलग ऐतिहासिक विवेचना का विषय है। यहां तो केवल इतना निर्देश करना चाहता हूं कि बौद्ध और जैन मतों के कारण मूर्ति पूजा की भावना ने अनेक देवता वाद को बद्धमूल कर दिया, जिससे भारत का सम्पूर्ण सामाजिक संगठन शिथिल होने लगा।

★

सच्ची विद्या का प्राप्ति कैसे होगी

विद्या को जड़ जगत् के अन्दर खोजते हुए तुम कैसे प्राप्त कर सकते हो? विद्या की तलाश में सर्व विद्याओं के भण्डार, ज्ञान के स्रोत, परमात्मा की शरण में जाने की ज़रूरत है। चेतन के लिये जड़ की शरण लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। ज्ञान स्वरुप परमात्मा की शरण लेकर उसी से तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा करते हुए जब तुम तत्त्व ज्ञानी बनोगे तब तुम्हारे लिये धन, खान्दान, आचरण और आयु सबके सब सुखदायी होंगे और तुम अपने चेतन स्वरूप को समझकर जड़ प्रकृति के अन्धकार से पृथक् होने का यत्न करोगे। उस यत्न के आरम्भ में तुम्हें ज्ञान स्वरूप के प्रकाश के दर्शन होंगे और इसी प्रकार तुम जन्म-मरण के दुःख से छुटकारा पा सकोगे।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज
धर्मोपदेश भाग १ पृ० १०६—७।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दीर्घायु का मार्ग

श्री एलक्जन्दिर केलतसेव

गत वर्ष सोवियत पत्रों में दागेस्तान के एक ग्राम में मनाए गये एक असामान्य 'विवाह' का समाचार प्रकाशित हुआ था। यह विवाह रजत, या स्वर्ण, यहां तक कि हीरक जयन्ती भी नहीं था। अहमद अदाभाव और उनकी पत्नी अलीएवान ने अपने दाम्पत्य जीवन का सौवां वसन्त मनाया था—यह एक ऐसी जयन्ती थी जिसका अब तक कोई नाम नहीं रखा गया है।

स्वभावत: अनेक व्यक्ति पूछ रहे थे : मनुष्य कितने दिनों जीवित रह सकता है ?

१५८ वर्षीय सामूहिक कृषक मख़मूद इवाज़ोव जिन्होंने सोवियत संघ की कृषि प्रदर्शनी में भाग लिया था, सोवियत संघ में विख्यात हैं। उनके कार्य के प्रशंसास्वरूप गत वर्ष सोवियत सरकार ने उन्हें आर्डर आफ रैड बैंनर आफ लेबर (श्रम के लाल झंडे का पदक) से विभूषित किया। ओसेतियावासी महिला तेपो आब्जीव ने वास्तव में दीर्घायु का रेकार्ड कायम कर दिया था। हाल ही में १८० वर्ष की आयु में उसका देहान्त हुआ।

फिर भी लोग गलती से यह मान लेते हैं कि दीर्घायु पर्वतों पर रहने वाले काकेशियाई जनतन्त्रों के निवासियों का ही सौभाग्य है। इसके विपरीत, आंकड़ों के अनुसार, वृद्ध लोगों की बहुसंख्या—सोवियतसंघ में दो लाख से अधिक वृद्ध नामांकित किये गये हैं—देश के अन्य भागों में बसती है। मास्को और लेलिन ग्राद, यूक्रेन तथा वेलोरूस में बहुत से अत्यधिक वृद्ध लोग हैं।

साईबेरिया में सौ वर्ष से अधिक की आयु के लोग

काकेशस की तुलना में साईबेरिया में सौ साल की उम्र वाले लोगों की संख्या तिगुनी है जब कि याकूतिया के कठोर जलवायु में उनकी संख्या अवखाजिया के समृद्ध अर्द्धोष्ण जिलों (जार्जियाई जनतन्त्र के कृष्ण सागरीय तट) की तुलना में कहीं अधिक है।

ओलशंका, देरगाची और पुदियांका (युक्रेन के खारकोव प्रदेश में) के ग्रामों में, रूसी संघ के वोरोनेज़, कुर्स्क और आर्केंजल प्रदेशों में खास तौर पर सौ वर्ष से अधिक आयु के लोगों की संख्या अत्यधिक है। इन क्षेत्रों में सौ साल से अधिक उम्र के लगभग ६ हजार स्त्री-पुरुषों के नाम अङ्कित किये जा चुके हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सौ वर्ष मानव-जीवन की सीमा कदापि नहीं है। उसके बाद पचास वर्ष या उससे भी ज्यादा समय तक जीवित रहना सर्वथा सम्भव है।

तो फिर कोई अपने जीवन को इतने दीर्घकाल तक कैसे कायम रख सकता है ? इतनी बड़ी उम्र में अपने को किस प्रकार हृष्ट-पुष्ट तथा काम करने योग्य रख सकता है ?

डाक्टरों ने अलग अलग नुस्खे बताए हैं। उदाहरणार्थ कुछ ने "आधा पेट भोजन" की सिफ़ारिश की है तो दूसरों ने इस बात पर जोर दिया कि सब कुछ निरामिष भोजन पर निर्भर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करता है। उनके अलावा ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने चमत्कार पूर्ण "जड़ी-बूटियों" के प्रयोग का परामर्श दिया है। फिर भी दीर्घायु का वास्तविक स्रोत ओषधि अथवा निरामिष भोजन नहीं है, उसका स्रोत संनिकर्ष और लस्सी (एलिविजर और सेरम) भी नहीं है और न सोडियम स्नान या गिनसेंग की जड़ ही है। इसका उत्तर पाने के लिए हमें वृद्धजनों के अनुभवों का ही पता लगाना होगा।

उनके अनुभव सब को बताने चाहियें और उन से इस बात की खोज करने में बड़ी मदद मिलेगी कि करोड़ों लोगों का जीवनकाल किस तरह बढ़ाया जा सकता है।

विज्ञान के सम्मानित कार्यमर्मी प्राध्यापक सर्कीज़ोव—सेराजिनी का, जो कई वर्षों से दीर्घायु की समस्या का अध्ययन कर रहे हैं, कहना है—

सोवियत विज्ञान दैहिक वृद्धावस्था (यानी प्राकृतिक वृद्धावस्था) और व्याधिकीय वृद्धा-में (अर्थात् समय से पूर्व आने वाली वृद्धा-वस्था जिसके लिये मनुष्य स्वयं ही दोषी होता है,) सूक्ष्मता से भेद करता है। यह सुविदित है कि जीवांगों के मुख्य कार्य प्रत्यक्षतः केन्द्रीय स्नायु–तन्त्र की स्थिति और प्रथमतः मस्तिष्क बाह्यक पर निर्भर करते हैं। हमारे जीवांगों में होने वाली संश्लिष्ट और प्रमुख प्रक्रियाओं में मस्तिष्क-बाह्यक (कोरटेक्स) सक्रिय भाग लेता है और उन्हीं में आयु-प्रसार की प्रक्रिया निहित है।

अब तो इस बात में तनिक भी सन्देह बाकी नहीं रहा कि अतिरिक्त चाप-वृद्धि, धमनियों में कठोरता और कैंसर प्रभृति अच्छे स्वास्थ्य के शत्रु केन्द्रीय स्नायु-तन्त्र में अविरल और दीर्घकालीन गड़बड़ी के कारण पनपते हैं। यह भी अब मालूम हो चुका है कि मद्यसार और निकोटिन जो हमारे स्नायु तंत्र तथा रक्त धमनियों के लिये छद्मरूपी विष हैं, जीवांगों को बहुत नुक्सान पहुंचाते हैं।

समय से पहले की वृद्धावस्था को रोकना

समय से पहले आने वाली वृद्धावस्था को किस तरह रोका जाय, यह पूछे जाने पर प्राध्यापक सर्कीज़ोव-सेराजिनी ने बताया कि सर्व पूर्व तथा सर्व प्रथम उन बातों का प्रभाव कम करना आवश्यक है जो व्याधिकीय वृद्धा-वस्था को तेज़ी से लाते हैं। फिर जीवांग की यौवन की शक्ति को बनाए रखने के लिए सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बात काम है। अनेक लोगों की घातक गलती यह है कि वे विश्वास करते हैं कि वृद्ध व्यक्ति को कम घूमना-फिरना चाहिए और काम उसके जीवांगों के लिये हानि-प्रद होता है।

आयु बढ़ाने में काम निर्णायक भूमिका अदा करता है। यह सुविदित है कि सुव्यवस्थित काम के बल पर व्यक्ति महान् रूसी शरीर विज्ञानशास्त्री अकादमिशियन पावलोव के शब्दों में अपने जीवन काल में एक निश्चित गति अथवा "ढर्रा" बना लेता है।

खाली बैठने का प्रभाव

इवान पेत्रोविच पावलोव कहा करते थे—एक क्लर्क अपना काम करते हुए जो बहुत ज्यादा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कठिन नहीं होता, ७० वर्ष तक ठीक चलता रहता है परन्तु ज्यों ही वह अवकाश ग्रहण करता है और फलतः अपने नित्यप्रति का ढर्रा छोड़ देता है, जीवांग काम करने में असमर्थ हो जाते हैं और वह शीघ्र मर जाता है।

वृद्धावस्था में पूरी तरह का काम छोड़ देने वाले प्रत्येक के साथ आम तौर पर यही होता है। हमें कई ऐसे मामलों का पता है जिनमें अपेक्षाकृत स्फूर्तिवान्, प्रसन्न चित्त तथा हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति पेन्शन पर अवकाश ग्रहण करते ही सहसा निर्बल हो गये और बीमार पड़ गये। यही कारण है कि अवकाश ग्रहण करने के बाद व्यक्ति को कदापि काम-काज करना पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहिए। उसे कुछ हल्के काम या बागबानी जैसे कोई शौकिया कार्य, यहां तक कि व्यायाम भी करना चाहिए परन्तु किसी भी दशा में जीवांगों को गत्यात्मकता के जीवनदायी प्रभाव से वंचित नहीं करना चाहिए।

अतएव दीर्घायु की प्रमुख पूर्व आवश्यकताओं मेंसे एक काम है, यह हजारों वृद्ध लोगों के जीवन से सिद्ध हो चुका है। काम ने मनुष्य सृष्टि की है, वह हमारे जीवन से अविभाज्य है और वृद्धावस्था के लिए हमारा सहारा है।

(सोवियत संघ के विचार और समाचार ३१ अगस्त १९५७)। इसके साथ निम्न समाचार को पढ़ने से जो उसी पत्र में प्रकाशित है निरामिष भोजन के साथ भी दीर्घायु का सम्बन्ध स्पष्ट ज्ञात होता है जिसके अन्य भी सैकड़ों उदाहरण हैं। वेदों के कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः; यजु. ४०। २ इस आदेश के साथ कि मनुष्यों को कम से कम सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा करनी चाहिये इस लेख में निर्दिष्ट उपाय की अद्भुत समानता है। 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इत्यादि मन्त्रों में ३०० अथवा इससे भी अधिक आयु का निर्देश स्पष्ट मिलता है।

मास्कोवासी लियूबोव पुझाक १५४ वर्ष की हो गई उन्होंने पुश्किन, नेक्रासोव, चेखोव और लियो तौल्स्तौव को देखा था

मास्को, १. ७. ५७ (तास)—

मास्को निवासिनी लियूबोव पुझोक १५४ वर्ष की हैं। वह १८०३ ई० में उत्पन्न हुई। उसकी याददाश्त बहुत अच्छी है और बहुत सी ऐसी घटनाओं जो सौ वर्ष पहले हुई थीं इस तरह जिक्र करती हैं जैसे कल ही हुई हों। पुश्किन् की मृत्यु के समय पुझाक की आयु ३४ वर्ष की थी। उन्होंने पुश्किन, नेक्रासोव, चेखोव और लियो तौल्स्तौय को देखा था।

उनका कहना है कि परिवार की मैं ही अकेली ऐसी सदस्या नहीं जो सौ वर्ष से अधिक से जीवित रही हो। मेरा एक भाई ११८ वर्ष का है, दूसरा १२२ वर्ष का है और मेरी बहिन ११२ वर्ष की है।

दीर्घजीवी विज्ञान के अध्ययन में संलग्न वैज्ञानिक बहुधा पुझाक के पास आते हैं। उन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह कहती हैं, "मैं नहीं जानती कि यह मेरी खुराक के कारण है या किसी और कारण, पर मैंने गोश्त कभी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं खाया । सब से अधिक मैं कशीदा काढ़ना पसन्द करती हूं । आज दिन तक मैं सभी काम अपने आप करती हूं और बाज़ार जाकर चीजें खरीदना भी पसन्द करती हूं । मैं आधी रात गए सोने जाती हूं और छह बजे सवेरे उठ जाती हूं

महर्षि दयानन्दस्मरणम्

(१)

ईशस्य भक्तं निषयेष्वसक्तं
धर्मप्रचारे सततं प्रसक्तम् ।
ब्रह्मर्षिवर्यं बुधमौलिभूतं
वन्द्यं दयानन्दमहं नमामि ।।

(२)

वेदादिशास्त्रैः सुपवित्रबुद्धिं
मेधाविनं धर्मजलेन सिक्तम् ।
धन्यः कृतो येन निजान्वयस्तं
वन्द्यं दयानन्दमहं नमामि ।।

(३)

आदाय पाखंडविदारिणीं तां
हस्ते पताकां ननुगैरिकाह्वाम् ।
पाखंडिचित्तानि विकम्पयन्तं
वन्द्यं दयानन्दमहं नमामि ।।

(४)

कर्तुं प्रचारं परितः श्रुतीनां
सर्वान् मनुष्यांश्च चरित्र युक्तान् ।
संस्थापयंन्तं सुविशुद्ध संस्थां
वन्द्यं दयानन्दमहं नमामि ।।

(५)

स्वातन्त्र्य युद्धस्य भरं वहन्तं
द्वन्द्वेषु सर्वेषु समान चित्तम् ।
दत्वाधनं घालकं रक्षयन्तं
वन्द्यं दयानन्दमहं नमामि ।।

—ब्र० सुभाषचन्द्रः एकादशश्रेणीस्थः गुरुकुल कांगड़ी ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वेदों के सरस मधु गीत

श्री पं रामनाथ जी वेदालंकार वेदोपाध्याय, गुरुकुल कांगड़ी

मैं चाहता हूं कि संसार का प्रत्येक मानव सत्य की साधना करने वाला हो, और प्रत्येक सत्यसाधक के ऊपर मधु बरसे, मधु का झरना झरे। पवन अपनी शीतल, मन्द लहरियों के साथ मधु बहा कर लायें। कल-कल करती सरिताएं अपनी सलिल-साराओं के साथ मधु प्रवाहित करती हुई आयें। रसभरी ओषधियां अपने अमृत रस से हमारे जीवनों में मधु संचारित करें। इन सब से मधु पाकर हम मधुमय हो जायें।

मधु वाता ऋतायते,
मधु क्षरंति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

- ऋग् १।९०।६।

× × ×

कभी अपने श्याम आंचल से माता के समान सबको आच्छादित करती हुई और कभी अपनी शान्त, मधुर, चटकीली चन्द्रिका को छिटकाती हुई विश्रामदायिनी रात्रियाँ हमारे लिए मधुमयी हों। जागृति और नवस्फूर्ति देने वाली स्वर्णिल उषाएं मधुमयी हों। समस्त पार्थिव लोक मधुमय हो। पितृतुल्य पालनकर्ता द्युलोक भी मधुमय हो।

मधु नक्तमुतोषसो,
मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥

—ऋग्. १।९०।७।

× × ×

हरित पत्रों का दुकूल ओढ़े हुए ये वृक्ष-वनस्पति हमारे लिए मधुमय हों। रश्मियों से जगत् को प्रकाशित करने वाला पावन सूर्य मधुमय हो। अपने स्तनों से अमृतोपम दूध को क्षरित करने वाली गौएं मधुमयी हों।

मधुमान्नो वनस्पति—
मधुमां अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥

—ऋग्. १।९०।८।

× × ×

अहा! यह सामने मधुमयी लता दिखाई दे रही है। यह 'मधुयष्टि' अपने अन्दर मधुरस को लेकर उत्पन्न हुई है। हे मधुलते! मधु के के लिए हम तुम्हें खनन करते हैं। तू मधुमय है, हमें भी मधुमय कर। हमें भी मधुमय कर।

इयं वीरुन्मधुजाता, मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि, सा नो मधुमतस्कृधि ॥

—अथर्व. १।३४।१।

× × ×

मेरे जिह्वाग्र पर मधु हो, जिह्वामूल में मधु हो। हे मधु तुम मेरे एक-एक ज्ञान में, एक-एक संकल्प में, एक-एक कर्म में रम जाओ, तुम मेरे चित्त में बस जाओ।

जिह्वाया अग्रे मधु मे, जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो, मम चित्तमुपायसि ॥

—अथर्व. १।३४।३।

× × ×

मेरा घर से निकलना मधुमय हो, निकल कर कर्म क्षेत्र में पग रखना मधुमय हो। मेरी वाणी में मधु हो, प्रत्येक गति-विधि में साक्षात्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खाने की सलाह दी जाती है—इसका अर्थ होता है भोजन को हजम करने से पहले उसके अन्दर भगवान् का आवाहन करना। निवेदन का अर्थ है संपर्क में रखना; भोजन भगवान् के संपर्क में रखा जाता है अर्थात् उनके प्रभाव के अधीन रक्खा जाता है। यह बड़ी ही अच्छी, बड़ी ही उपयोगी पद्धति है; यदि तुम्हें मालूम हो कि इसे कैसे किया जाता है तो आन्तरिक रूपांतर के लिये जो परिश्रम मनुष्य को करना पड़ता है वह बहुत कुछ कम हो जायगा। क्योंकि संसार में हम अन्य सब लोगों के साथ एक हो कर रहते हैं। तुम सब प्रकार की क्रियाओं और सब प्रकार के मनुष्यों से आने वाले प्रकंपनों, असंख्य प्रकंपनों को आत्मसात् किये बिना एक भी सांस नहीं ले सकते। अतएव, यदि तुम अपने आपको अछूता रखना चाहो तो तुम्हें जैसा कि मैं कह चुका हूं, अपने आपको एक छन्ने की स्थिति में बनाए रखना चाहिये और किसी अवांछनीय वस्तु को प्रवेश नहीं करने देना चाहिये। अथवा मुंह पर एक आवरण डाल लो जैसे कि छूत की बीमारी वाले और विषाक्त वातावरण वाले स्थान को पार करते समय करते हैं, अथवा उसी ढंग की कोई चीज़ करो।

हमारे चारों ओर इतना घना, पूर्ण समर्पण की भावना से इतना घनीभूत वातावरण होना चाहिये कि कोई भी चीज़ अपने आप छने बिना प्रवेश न कर सके। तुम्हारे चारों ओर बुरे विचार, अशुभ इच्छाएं होती हैं, बुरे लोगों द्वारा भेजी हुई हानिकारक रचनाएं विद्यमान रहती हैं। हवा इन सब चीज़ों से, इन अन्धकार पूर्ण हानिकारक बीजाणुओं से भरी रहती है। सर्वदा सावधानी के साथ निगरानी रखना, पग-पग पर सतर्क बने रहना, संभलकर और चौकसी तथा बचाव का ख्याल रखते हुए धीरे-धीरे चलना कितना कष्टकर है, और फिर भी हम निश्चित नहीं हो सकते। परन्तु तुम यदि अपने को ज्योति के, सहर्ष और सच्चे आत्म-समर्पण एवं अभीप्सा की ज्योति के लबादे से ढक दो जो कि एक अद्भुत छन्ना है, तो वह अपने आप तुम्हें संरक्षण प्रदान करेगा। उस समय अवांछनीय शक्तियां केवल प्रवेश ही नहीं कर पातीं बल्कि वे अपने स्रष्टा के ऊपर वापस फेंक दी जाती हैं, स्वयं आक्रामक ही शिकार बन जाते हैं।

तप का स्वरूप

यथ र्थ शुद्ध भाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, ब ह्येन्द्रियों को अधर्माचरण में जाने से रोकना अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन से सदा शुभकर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना, पढ़ाना, वेदानुकूल आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। —महर्षि दयानन्द सरस्वती।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जीवनीय और स्वास्थ्य

ब्र० प्रेमकृष्ण, आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी

स्वास्थ्य का उत्तम होना जहां प्राकृतिक देन है वहां ऋतु अनुकूल भोजन भी शरीर की स्वस्थता में अत्यन्त सहायक एवं साधक है। शरीर की स्वस्थता का मुख्य आधार जीवनीयों (विटामिन्स) का उचित मात्रा में सेवन है। मानसिक शारीरिक स्वस्थता इन जीवनीय पदार्थों पर ही निर्भर है। अंग्रेजी की निम्न कहावत सर्वथा सत्य है कि "A sound mind in a sound body" अर्थात् जीवन का वास्तविक आनन्द शरीर की स्वस्थता में ही है। स्थूल रूप से हम यही समझते हैं कि पर्याप्त मात्रा में पोषक भोजन का सेवन और थोड़ा सा व्यायाम शरीर की स्वस्थता के लिये पर्याप्त है। परन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर यह मालूम होता है कि भोजन में पर्याप्त प्रोटीन, कार्बो हाईड्रेट्स, लवण और वसा लिए जाएं और व्यायाम किया जाए तो स्वस्थ रहा जा सकता है। इन लम्बे लम्बे शब्दों से क्या तात्पर्य हुआ यह हम देखते हैं। प्रोटीन्स भोजन के वे भाग हैं जो शरीर में टूट-फूट को ठीक करते हैं और तन्तुओं को स्वस्थ रखते हैं। कार्बोहाड्रेट्स हमें ताप और शक्ति प्रदान करते हैं। लवण अस्थियों और तन्तुओं के निर्माण में सहायता करते हैं और वसा शरीर में वृद्धि करती है।

उपर्युक्त बातें ठीक हैं, परन्तु ऐसा भी देखने में आता है कि बहुत से लोग उपर्युक्त भोजन लेने पर भी स्वास्थ्य से कोसों दूर रहते हैं। इसका कारण यही है कि जिस प्रकार मोटर में इंधन (पेट्रोल) होने पर भी जब तक चिनगारी नहीं लगाई जाती तब तक मोटर नहीं चलती है, उसी प्रकार शरीर में जाने वाले आहार में जब तक जीवनीय रूपी चिनगारी नहीं लगती तब तक हमें आहार का पूरा लाभ नहीं होता।

जीवनीय वे आश्चर्यजनक पदार्थ हैं जो हमारे आहार के लिए चिनगारी का कार्य करते हैं। इन्हें जीवनीय इस लिए कहा जाता है क्योंकि ये जीवन के लिए परम आवश्यक होते हैं। जैसे जैसे विज्ञान उन्नति करता गया वैसे-वैसे विभिन्न जीवनीय तत्त्वों का आविष्कार होता गया। तो क्या जब इन जीवनीय तत्त्वों का आविष्कार नहीं हुआ था तब लोग रोगग्रस्त ही रहते थे? नहीं, उस समय इनके अभाव से होने वाले रोगों को घरेलू चिकित्सा से नष्ट किया जाता था। प्रारम्भ में इन जीवनीय तत्त्वों को गोलियों के रूप में लिया जाता था परन्तु शनैः शनैः इन्हें सीधा वनस्पतियों द्वारा लिया जाने लगा।

जीवनीय वनस्पति जगत् में उत्पन्न होते हैं और विभिन्न प्राणियों द्वारा खाए जाने के बाद हमारे भोजन में आते हैं। ये रासायनिक संगठनों द्वारा कृत्रिम रूप से भी बनाए जाते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं, और इनका प्राप्ति स्थान मुख्यतया प्राकृतिक पदार्थ है। क्रियाओं तथा कमी से होने वाले रोगों के आधार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर इनके कई भेद किए गए हैं। सामान्यतया इन्हें A, B, C, D, E आदि नामों से पुकारा जाता है।

जीवनीय ए शरीर में आँखों व तन्तुओं की शक्ति बनाए रखता है। यह बच्चों की वृद्धि से विशेष सम्बन्ध रखता है तथा शरीर में रोग-निरोधक शक्ति को बढ़ाता है। यह मुख्यतः दूध, पनीर, मक्खन, टमाटर, गाजर, चुकन्दर और पौधों के हरे डंठलों आदि में पाया जाता है। इसकी कमी से रात्रि अन्धता तथा दाँतों की अनियमित वृद्धि आदि रोग हो जाते हैं। इस जीवनीय की ४०० यूनिट की साधारणतया प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है। गर्भिणी स्त्रियों व बच्चों को इसकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। जीवनीय बी. मुख्यतः दो भागों में विभक्त है। जीवनीय बी.१ तथा जीवनीय बी.२ जीवनीय बी.१ वातवाहिनियों के लिए विशेषकर पुष्टिकर है और इसके सेवन से भूख बढ़ती है। यह मुख्यतः चावल, चोकर सहित आटा, खमीर, गाजर, शलजम आदि में पाया जाता है। इसकी कमी से बेरी बेरी, पॉली न्यूरिटिस, आदि रोग हो जाते हैं। साधारणतया इसकी ५ मिलिग्राम प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। परन्तु गर्भिणी स्त्रियों को इसका २ मिलिग्राम तक प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।

जीवनीय बी.२ त्वचा को स्वस्थ व रोग-रहित रखने के लिए और शारीरिक वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह मुख्यतः खमीर, दूध, मटर व फलियों आदि में पाया जाता है। इसकी कमी से अनेक प्रकार के चर्म रोग मुख व होठों की सूजन आदि रोग हो जाते हैं। शरीर को इसकी दो से तीन मिलिग्राम प्रति दिन आवश्यकता पड़ती है।

स्वास्थ्य की इस आश्चर्यजनक वर्णमाला में तीसरा पदार्थ जीवनीय C है। यह शरीर की विभिन्न कलाओं (Membranes), त्वचा कोशिकाओं आदि को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है। साथ ही वह गर्भ की वृद्धि के लिए परम आवश्यक है। यह मुख्यतः हरे पत्र शाकों, खट्टे फल (नारंगी, द्राक्षा, नींबू) टमाटर आदि में पाया जाता है। इसका सबसे बड़ा प्राप्ति स्थान आमला होता है। इसकी कमी से Scurvy, Subcutaneous haemorrhages, जबड़ों की सूजन आदि रोग हो जाते हैं। इसको शरीर की आवश्यकतानुसार ३० से ६० मिलिग्राम प्रतिदिन भोजन में लेना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियों को इसकी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

जीवनीय D बच्चों की शारीरिक वृद्धि के के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह मक्खन, पनीर, आदि में पाया जाता है। इस जीवनीय का मुख्य प्राप्ति स्थान सूर्य के प्रकाश में उपस्थित अल्टावॉयलेट् किरण हैं। शरीर के जिस भाग के सम्पर्क में यह किरणें आती हैं उस भाग में जीवनीय D की उत्पत्ति होने लगती है। यही कारण है कि आज विदेशों में भी सूर्य-स्नान बड़ा ही लोकप्रिय होता जा रहा है। सर्दियों में पर्याप्त सूर्यस्नान, विशेषतः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बच्चों को, सर्दी से बचाता है और रोगनिरोधक शक्ति को बढ़ाता है। इसकी कमी से Rickets दन्तक्षय आदि रोग हो जाते हैं। इसकी स्त्रियों व बच्चों को ५०० से ८०० यूनिट प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है, परन्तु वयस्कों को ४०० यूनिट प्रतिदिन पर्याप्त रहते हैं।

जीवनीय तत्वों के इस विवरण में अन्तिम पदार्थ है जीवनीय E। यह जीवनीय गर्भ की वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह मुख्यतः बिनौले के तेल व चुकन्दर के पत्तों में पाया जाता है। इसकी कमी से स्त्रियों में बन्ध्यात्व पुरुषों में अण्डकोश विकार आदि रोग हो जाते हैं। इसकी कमी से पुरुषों में गर्भोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। स्त्रियों में इसकी कमी स्वाभाविक गर्भपात का कारण बनती है।

इस प्रकार हमने देखा कि उपर्युक्त जीवनीय तत्वों की शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। इनके अभाव में मनुष्य की दोनों प्रकार की स्वस्थता, शारीरिक एवं मानसिक अपरिपक्व रह जाती है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मनुष्य के जीवन में जीवनीय तत्त्वों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि जल और वायु की।

—:—

महामति चाणक्य के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र

१. सुखस्य मूलं धर्मः ।।
सुख का मूल कारण धर्म है।

२. धर्मस्य मूलमर्थः ।।
धर्म का मूल अर्थ है।

३. अर्थस्य मूलं राज्यम्
अर्थ का मूल राज्य है।

४. राज्यमूलमिन्द्रियजयः।
इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने से ही राज्य की सत्ता रह सकती है।

५. इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः।
विनय अर्थात् नम्रता इन्द्रियों के जय का प्रधान कारण है।

६. विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।
विनय वा नम्रता का मूल वृद्धों की सेवा और उनकी सङ्गति है।

७. वृद्धसेवाया विज्ञानम्।
वृद्धों और अनुभवी विद्वानों की सेवा से विशेष ज्ञान की प्राप्ति होती है।

८. विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत्।
इस विज्ञान के द्वारा मनुष्य आत्मोन्नति का प्रयत्न करे।

९. सम्पादितात्मा जितात्मा भवति।
जिसने अपनी आत्मा को सम्हाल लिया वही जितात्मा वा जितेन्द्रिय कहाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य कर्तव्य

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर

मधुर वेद वीणा बजाये चला जा।
जो सोते हैं उन को जगाये चला जा ॥

(१)

कुकर्मों की कीचड़ में जो फंस रहे हैं
अविद्या अन्धेरे में जो धंस रहे हैं।
उन्हें सत्य पथ तू बताए चला जा,
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(२)

निराकार प्रभु है सभी में समाया
सभी फिर हैं अपने न कोई पराया।
घृणा फूट मन से मिटाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(३)

चुराना नहीं लोभ वश धन किसी का
दुखाना नही तुम कभी मन किसी का।
ये सन्देश घर घर सुनाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(४)

जगत् युद्ध की ज्वाल में जल रहा है
प्रबल चक्र अन्याय का चल रहा है।
मनुजता जगत् को सिखाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(५)

अखिल विश्व में भावना भव्य भर के
स्वकर्तव्य उद्देश्य को पूर्ण कर के।
तू ऋषिराज का ऋण चुकाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(६)

समझ के जो चन्दन लगा धूल बैठे
पड़े भ्रान्ति में नाम तक भूल बैठे।
उन्हें आर्य फिर तू बनाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

(७)

'प्रकाशार्य' ग्रामों, गली, हाट, घर में
नगर, देश-देशान्तरों विश्व भर में।
दयानन्द की जय मनाये चला जा
मधुर वेद वीणा बजाये चला जा ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य

स्वामी रङ्गनाथानन्द जी एम. ए. मन्त्री श्री रामकृष्ण मिशन, नई देहली

शिक्षा के सुप्रसिद्ध इस केन्द्र में शिक्षा के विषय में अपने विचार प्रकट करना ही मुझे उचित प्रतीत होता है। राजनैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति से पूर्व हमारी शिक्षा का कोई उच्च ध्येय न था। किन्तु हमारे देश के मान्य नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द स्वामी श्रद्धानन्द जी महात्मा गान्धी आदि ने इस विषय पर विशेष रूप से विचार किया था क्यों कि शिक्षा पर ही देश की उन्नति निर्भर है। इसलिये इन नेताओं ने यह विचार प्रकट किया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो जनता के लिये हित कारक हो। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार भी इस प्रश्न पर विचार करती रही है कि शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिये। उसके कुछ उच्च उद्देश्य होने चाहियें। साधन ध्येय की पूर्ति के लिये होते हैं। पहले हमें अपने सामने स्पष्ट ध्येय रखना चाहिये। सरकार करोड़ों रुपया शिक्षा पर खर्च करती है उसका क्या उद्देश्य है ? शिक्षा के इन ध्येयों को हम इस क्रम से रख सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र जो शिक्षा देता है वह उस राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है।

(१) हमारे राष्ट्वासियों को अपनी उत्तराधिकार में प्राप्त संस्कृति, सभ्यता की रक्षा और वृद्धि में तत्पर रहना चाहिये। हमारा भूत के प्रति एक ऋण है और भविष्य के लिये उत्तरदायित्व है। विदेशीय शासन के कारण इस निरन्तरता को स्थिर रखने में हम समर्थ न थे अतः हमारे नेताओं ने स्वराज्य के लिये प्रयत्न किया। चरित्र और सदाचारादि की उच्चता के साथ दूसरे देशों की अच्छी बातों को ग्रहण करने में उद्यत होना चाहिये। संयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा संघ या U.N.E.S.C.O. में भी यही आदर्श रखा जाता है। भारतीय छात्र के लिये यह आवश्यक है कि वह प्राचीन संस्कृति को समझने और उस की रक्षा करने में समर्थ हो पर साथ ही दूसरे देशों की अच्छी संस्कृति को भी ग्रहण कर सके।

समाज का उत्पादक अवयव

(२)प्रत्येक व्यक्ति समाज का उत्पादन शील अंश बन सके। वह दूसरों पर निर्भर वा भार भूत न हो। आजकल यह पहले की अपेक्षा भी अधिक आवश्यक है। उसे शारीरिक श्रम के द्वारा, मानसिक शक्ति वा बुद्धि के द्वारा, कला वा शिल्प व्यवसाय तत्त्वज्ञान, विज्ञान आदि के द्वारा समाज का एक उपयोगी और उत्पादक अंश बनना चाहिये।

(३) शताब्दियों की दासता के पश्चात् हमें स्वतन्त्रता वा प्रजातन्त्रराज्य प्राप्त हुआ है। इस प्रजातन्त्रराज्य को नागरिकों के हार्दिक सहयोग की आवश्यकता है। शिक्षित युवकों और युवतियों के द्वारा इस प्रजातन्त्रराज्य को समर्थन और सच्चा सहयोग प्रत्येक क्षेत्र में मिलना चाहिये। शिक्षा संस्थाओं को प्रजातन्त्र-वाद, सहानुभूति की भावना, सहिष्णुता आदि की निर्माणशाला होना चाहिये। शिक्षित युवकों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को उत्तम नागरिक बनना चाहिये। वही राष्ट्र के लिये सर्वोत्तम शक्ति हैं। तभी हम सामाजिक, आर्थिक और अन्य दृष्टियों से उन्नत हो सकेंगे।

मन हृदय और चरित्र विकास

४. इस आन्तरिक विकास से ही मनुष्य वस्तुत: सुखी हो सकता है। नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के विना केवल समाज का उत्पादक अंश बन जाने से काम नहीं चल सकता और न सच्चा सुख वा शान्ति प्राप्त हो सकती है। जब व्यक्ति अपने को आध्यात्मिक धन से सम्पन्न अनुभव करे तभी जीवन की पूर्ति होती है। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति अत्यावश्यक है जिसकी प्राय: देशों में उपेक्षा की जाती है। बर्ट्रण्ड रसल नामक सुप्रसिद्ध विचारक ने बताया है कि मनुष्य और प्रकृति में संघर्ष, मनुष्यों का परस्पर संघर्ष और अपने अन्दर संघर्ष ये तीन अप्रसन्नता के कारण होते हैं। इनके दूर करने के लिये आध्यामिक विकास की बड़ी भारी आवश्यकता है। धार्मिक नैतिक शिक्षा इस दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। इसके बिना जो बाह्य शिक्षा है वह पत्तों को पानी देने के समान है।

अन्ताराष्ट्रिय व्यापक दृष्टि

५. संसार अब विशाल और परस्पर सम्बद्ध हो गया है अत: हमारी अन्ताराष्ट्रिय दृष्टि हो जानी चाहिये। सारे संसार के प्राणियों के साथ हमारी आत्मीयता हो जानी चाहिये। हमारे तत्त्व ज्ञान में इस पर सदा बल दिया जाता था किन्तु हम गत सहस्र वर्षों से अन्यों से कट से गये। हमने अपने को औरों से श्रेष्ठ और अन्यों को म्लेच्छ समझना शुरू किया। यही हमारी अवनति का एक प्रधान कारण हुआ। हमारी शिक्षा को हमें इस योग्य बनाना चाहिए कि जिस से हम सारे संसार को अपना समझने लग जाएं। साम्प्रदायिक,जातीय और संकुचित राष्ट्रिय भावनाओं से भी ऊपर अन्ताराष्ट्रिय व सार्वभौम भावना को हमें अपने अन्दर भरना चाहिये। इसके बिना समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इस समय विज्ञान अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की बड़ी आवश्यकता है अन्यथा हमारी समस्याएं बढ़ती चली जाएंगी। स्वामी विवेकानन्द जी ने ठीक कहा था कि हमारी शिक्षा में धर्म और विज्ञान का पूर्ण समन्वय होना चाहिये क्योंकि मानवमात्र को सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए दोनों की आवश्यकता है। यदि हमारी शिक्षा उत्तम है तो हम इस उद्देश्य की पूर्ति शीघ्र कर सकेंगे। एक अन्य स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि हमें जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है मानव निर्माण करने वाली शिक्षा (Man making educatin) वकील डाक्टर, इंजनीयर बनाने वाली शिक्षा सर्वत्र दी जा रही है किन्तु मानव निर्माण करने वाली शिक्षा की उपेक्षा हो रही है। इनमें से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति अभी तक नहीं हो सकी यह खेद की बात है। ध्येय और उद्देश्यों को स्पष्ट रूप में अपने सामने रखने की आवश्यकता है।

हमारे देशवासियों में प्राय: आलस्य है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार्यक्षमता विदेशीय शासनादि के प्रभाव से कम है। क्रियात्मक दक्षता को युवकों में विकसित करने की आवश्यकता है। श्रम की प्रतिष्ठा वा Dignity of labour को स्थापित करने की आवश्यकता बहुत अधिक है। यहां प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शासन चलाना चाहता है काम करना नहीं। जब यह श्रम की प्रतिष्ठा हमारे देश में स्थापित हो जाएगी तब देश की उन्नति शीघ्र होगी इस में सन्देह नहीं। जातिभेद वा जातपात के कारण भी हमारे लोग अनेक प्रकार के काम करने में संकोच करते हैं। गत महायुद्ध के दिनों में अमेरिकनों ने हस्पतालों को चलाने में हिन्दुओं के सम्बन्ध में यह कठिनाई अनुभव की थी अतः हिन्दुओं के स्थान में उन्हें मुसलमानों को रखना पड़ा था। शिक्षा और कार्य का परस्पर सम्बन्ध वा समन्वय होना चाहिये। महात्मा गान्धी जी द्वारा प्रवर्तित बेसिकशिक्षा पद्धति का यही विचार आधारभूत था। शिक्षा जितनी ऊंची हो मनुष्य की कार्य दक्षता भी उतनी अधिक होनी चाहिये किन्तु भारत में इस से विपरीत अवस्था दृष्टिगोचर होती है। मनुष्य जितना अधिक शिक्षित है। उतना ही कार्य क्षमता में प्रायः कम पाया जाता है। वस्तुतः शिक्षा मनुष्य को अधिक कार्यक्षम बनाने वाली होनी चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने से यह प्रश्न करने की आवश्यकता है कि क्या मैं अपनी समस्त शक्तियों का विकास कर रहा हूं? क्या मैं अपनी संकुचित भावनाओं का परित्याग कर रहा हूं?

इन उद्देश्यों को सन्मुख रख कर कार्य करने से सबको लाभ हो सकता है।

स्वामी रङ्गनाथानन्द जी के २८-२-५८ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति की अध्यक्षता में दिये भाषण के मुख्य अंश—सम्पादक।

विशाल दृष्टि से भारत का उद्धार

लेन देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहे तो यह परमावश्यक है कि वह अपने रत्नों को बाहर लाकर पृथिवी की जातियों में बिखेर दे और इसके बदले में वे जो कुछ दे सकें उसे सहर्ष ग्रहण करे। विस्तार ही जीवन है और संकोच मृत्यु। प्रेम ही जीवन है और घृणा मृत्यु। हमने उसी दिन से मरना शुरु किया जब से हम अन्यान्य जातियों से घृणा करने लगे और यह मृत्यु विना इसके किसी दूसरे उपाय से नहीं रुक सकती कि हम फिर से विस्तार को अपनाएं जो कि जीवन है। —स्वामी विवेकानन्द।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् बुद्ध और वैदिक धर्म

(प्रिन्सिपल अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए पी. एच. डी.)

भारत के लिये महात्माबुद्ध की २५०० वीं जन्म शताब्दी का मनाना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी । इस ने इस भारत के महान् मुनि ने जिसे पौराणिक हिन्दुओं ने भी नवम अवतार के रूप में सन्मानित किया और जिसका समस्त सुधार वादी हिन्दुओं ने उसके महान् आदर्शवाद और श्रेष्ठ व्यक्तित्व के लिये आदर किया युग निर्माता के रूप में जो कार्य किया था उसे प्रमुखता दिलाई । ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान् बुद्ध के विषय में एक बहुमूल्य साहित्य लिखा गया है जिसमें स्व. श्री आनन्दकुमार स्वामी श्री और श्रीमती राइसडेविडस और डा. राधाकृष्णन् जी द्वारा लिखित पुस्तकों का समावेश है और वर्तमानकाल में भी इस विषय पर कई लेख लिखे गये हैं किन्तु अधिक साहित्य की आवश्यकता और आशा की जाती है विशेषत: वेदों के साथ महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की शृङ्खला के विषय में ।

गत कई वर्षों से हमारे विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों के द्वारा यह पढ़ाया जाता रहा है कि बौद्ध मत ब्राह्मणवाद का विरोध था और यह वैदिक धर्म के विरुद्ध एक क्रान्ति थी । साथ ही वैदिकधर्म के विषय में जो सूचना हमारे युवक गत शताब्दी से अधिक काल से प्रति वर्ष प्राप्त करते रहे हैं वह यह है कि इस में पशुओं की बलि दी जाती थी और भगवान् बुद्ध ने ग़रीब पशुओं को वैदिक पुरोहितों से बचाने का यत्न किया । इस वर्णन ने वेद और वैदिक धर्म के विषय में वास्तविक तथ्यों पर आवरण डाल दिया है । हमारे विद्यार्थियों को यह नहीं बतलाया जाता कि महात्मा बुद्ध के मन में वैदिक ब्राह्मणों के चरित्र के लिये इतने आदर का भाव था कि वे सब वर्गों में से लोगों को ब्राह्मण बनाना चाहते थे जो ब्राह्मणों के गौरव में भाग ले सकें (देखो धम्मपद ब्राह्मणवग्ग) और यह बात कम महत्त्व की नहीं है कि महान् अशोक ने अपने शिला लेखों के द्वारा जनता को शिक्षा देते हुए बौद्ध भिक्षु प्रचारक श्रमणों से पूर्व सर्वत्र ब्राह्मणों का नाम लिया है । अब तक हमारे विद्वानों ने भारत में बौद्ध मत के इतिहास को शुद्ध दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया । बहुत से विदेशी विद्वानों की कठिनाई यह है कि वे यह कल्पना नही कर सकते कि एक नवीन मत को जिसने पुराने धर्म की आलोचना की और लोगों को परम्परागत मार्ग से हटाया पुराने धर्म के मानने वाले किसी आदर से देख सकते हैं और नवीन मार्ग दर्शक जो कई अंश में क्रान्तिकारी है प्राचीन परम्परागत धर्म के नेताओं में आदर युक्त स्थान प्राप्त कर सकता है ।

प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की[1] Mahatma Buddha an Arya Reformer (महात्मा बुद्ध एक आर्य सुधारक) यह पुस्तक एक अत्यन्त अभिनन्दनीय प्रकाशन है । इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इस में महात्मा बुद्ध

---

१. पता—पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड गुरुकुल कांगड़ी उ. प्र. मूल्य १.५० ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की शिक्षाओं का वेद के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से अनुशीलन किया गया है और इस विषय पर नवीन प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ पण्डित जी ने बताया है कि ललित विस्तर में बुद्ध के विषय में स्पष्ट लिखा है कि—

स ब्रह्मचारी गुरु गेहवासो,
तत्कार्यकारी विहितान्नसेवी।
सायं प्रभातं च हुताशसेवी,
व्रतेन वेदाश्च समध्यगीष्ट ॥

अर्थात् सिद्धार्थ ने ब्रह्मचारी बन कर गुरुकुल में निवास किया: उन की सेवा की, शास्त्रविहित आहार का सेवन, प्रातःसायम् अग्निहोत्र तथा ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करते हुए वेदों का अध्ययन किया।

इस पुस्तक का सप्तम अध्याय उन लोगों की आंखें खोल देगा जो समझते रहे हैं कि बुद्ध वेदों का विरोधी था। बुद्ध की वेदगू अथवा वेदज्ञ की परिभाषा जैसे कि सुत्तनिपात श्लोक ५२९ में बतायी गई है यह है कि—

वेदानि विचेय्य केवलानि,
समणानं यानि प अत्थि ब्रह्मणानम्।
सब्बा वेदनासु वीतरागो,
सब्बं वेदमनिच्च वेदगूसो ॥

अर्थात् जिसने सब वेदों का अध्ययन किया है और जो सारे संसार को अनित्य समझते हुए सब वासनाओं, आसक्ति और राग से रहित हो गया है वह वेदज्ञ है।

पं० धर्मदेव जी ने बताया है कि महात्मा बुद्ध का वेदविषयक यह विचार अंग्रेज़ी में बौद्धग्रन्थों के अनुवाद का अध्ययन करने वालों से इस लिए अज्ञात रहा कि उन अनुवादों में वेदगू का अर्थ, वेदज्ञ के स्थान में केवल ज्ञानी (Lores adept) या सिद्ध (Accomplished) इत्यादि कर दिया गया है और जहां सुत्तनिपात श्लो. ७९२ आदि में 'विद्वां च वेदेहि समेच्च धम्मं न उच्चावचं गच्छति भूरिप्पञ्जो।' यह कहा गया है कि बुद्धिमान् वेदों के द्वारा धर्म का ज्ञान प्राप्त कर के डांवाडोल नहीं होता, वहाँ अंग्रेजी अनुवादों में केवल Wisdom वा ज्ञान ऐसा अर्थ कर दिया गया है जो यथार्थ नहीं। उन्होंने सुतनिपात श्रो. ५६८ को भी इस वेद विषयक प्रकरण में उद्धृत किया है जहां कहा है कि

अग्गिहुत्तमुखा यञ्जा, सावित्ती छन्दसो मुखम्।

अर्थात् यज्ञों में प्रधान अग्निहोत्र है और वेद का मुख सावित्री वा गायत्री मन्त्र है। इस प्रकार के वचनों से महात्माबुद्ध का वेद और सच्चे वैदिक विद्वानों के लिये आदर का भाव सूचित होता है। पण्डित जी ने बुद्ध की पंचशील अष्टाङ्ग मार्ग आदि विषयक शिक्षाओं की वेदों और वैदिक साहित्य में दिये वचनों से समानता को भी दिखाया और इस सामान्य विश्वासका खण्डन किया है कि महात्माबुद्ध नास्तिक थे। महात्माबुद्ध ने वैदिक शब्द आर्य का जो बार २ प्रयोग किया है उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्हें इस से कितना प्रेम था। वे भी वेदों के 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस आदेश के अनुसार सब को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धर्मात्मा अहिंसादि व्रत पालक बनाना चाहते थे।

श्री आनन्दकुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

Buddha and the Gospel of Buddhism में एक स्थान पर कहा है कि बुद्ध का विशाल वैदिक विचार जगत् में एक अल्प स्थान है। विज्ञान भिक्षु के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन की सप्तम वैदिक दर्शन के रूप में गणना की थी। संयुक्त निकाय में गौतम ने एक प्राचीन नगर का वर्णन किया जो चारों ओर घने जङ्गल से घिर गया था और एक राजा ने उस घने जङ्गल को साफ़ करा दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि उस नगर की शोभा द्विगुणित हो गई। इस वर्णन के पश्चात् भगवान्बुद्ध ने कहा कि मैं ने भी इसी प्रकार एक पुराने मार्ग को—जीवन के प्राचीन मार्ग को खोज निकाला है। प्राचीन काल के बुद्धिमान् लोग इस मार्ग पर चला करते थे। (संयुक्त निकाय १२.६५.१९-२१) मैं भी इसी मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा हूं। (१२. ६५.२२)

पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि महात्माबुद्ध सचमुच ऐसा ही कर रहे थे और उन्होंने प्राचीन वैदिक ऋषियों और ज्ञानियों के मार्ग के विषय में प्रामाणिक सूचना देने का प्रयास किया है। उन्होंने जो आवश्यक महत्त्वपूर्ण कार्य इस सम्बन्ध में किया है इसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं पर मैं यह भी आशा करता हूं कि विशाल वैदिक साहित्य और साथ ही बौद्ध साहित्य में जो विशारदता उन्हें प्राप्त है वे अपने इस विषय का और भी अधिक विस्तृत विवेचन कर के वैदिक धर्म और बौद्ध मत के सम्बन्ध के विषय में जो बहुत काल से भ्रान्तियां चली आ रही हैं उनके निवारण में सहायक होंगे।

—

राष्ट्रीय अपमान

किसी भी स्वतन्त्र देश के लिए यह असम्भव है कि वह अपने क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों—जो इस देश को अपनी मातृभूमि मानते हैं और जिसकी आज़ादी के लिये उन्होंने बड़ी बड़ी कुर्बानियाँ की हों—के आपसी व्यवहार के लिये एक विदेशी भाषा को जारी रखे।

हम इज़राइल से एक सबक सीखसकते हैं। इज़राइल के नए राष्ट्र में संसार के सभी भागों के विविध भाषा भाषी यहूदी एक स्थान पर आकर रहने लगे हैं। पर उनके नेताओं ने तय किया है कि उन सब की एक राष्ट्र भाषा होगी हिब्रू, जिसे उन में से शायद कोई भी नहीं जानता। पुराने धर्मग्रन्थों के सिवा जिस भाषा में कोई साहित्य भी नहीं है। जिस प्रकार यहूदी नेताओं और जनता की देश-भक्ति और उत्साह के द्वारा इस मृत समझी जाने भाषा को पुनर्ज्जीवित किया गया है और आज इजराइल का सारा राजकाज तथा विश्वविद्यालय तक की शिक्षा हिब्रू के माध्यम से होरहे हैं। तब क्या देशभक्त विद्वानों की यह भारतभूमि उस उत्साह, प्रेरणा और निश्चय का परिचय नहीं दे सकती जिनसे कि अन्तः प्रान्तीय व्यवहार और केन्द्रीय प्रशासनिक कार्यों के लिये एक देश भाषा अपनाई जासके। —आचार्य जे. बी. कृपलानी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फूलों की बहार

कविवर श्री पं० वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड, हैदराबाद

(१)

मैं हूं बटोही दूर से आया,
किसी जगह आराम न पाया।
मुंह जो इधर आ मैंने उठाया,
प्रभु ने कैसा दृश्य दिखाया ॥
तेरे बगीचे में बैठूंगा,
और बहारों को देखूंगा।
दरवाज़े को खोलदे माली,
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(२)

फूल वसन्ती फूल रहे हैं,
धीमे धीमे झूल रहे हैं।
बाग़ की आंखें बाग़ के तारे,
हर्ष के फूटे हुए फवारे।
रङ्गत उनकी मैं देखूंगा।
तेरे बगीचे में बैठूंगा।
दरवाज़े को खोलदे माली।
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(३)

क्या हरियाली छाई हुई है,
एक से रङ्गत एक नई है।
क्या सुषमा से सजी मही है,
स्वर्ग यही है स्वर्ग यही है।
मस्त हुआ यह मैं गाऊंगा।
तेरे बगीचे में बैठूंगा।
दरवाज़े को खोलदे माली
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(४)

पास से इनके लोग हैं जाते,
इधर नहीं पर आंख उठाते।
काम में अपने भूले हुए हैं।
इन्हें पता क्या फूल खिले हैं।
इनसे निठल्ला मैं खेलूंगा
तेरे बगीचे में बैठूंगा।
दरवाज़े को खोलदे माली
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(५)

देख इन्हें दिल भर जाता है,
जाने क्या क्या कह जाता है।
किस प्यारे की याद दिलाकर
मुझे बुलाते हैं अपना कर।
इनमें दुःख अपना भूलूंगा
तेरे बगीचे में बैठूंगा।
दरवाज़े को खोलदे माली
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(६)

हंसना इन से मैं सीखूंगा
तेरे बगीचे में बैठूंगा ।
दरवाज़े को खोलदे माली
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

हंस हंस कर ये मर जायेंगे.
खिल खिल कर ये झड़ जायेंगे ।
कैसा जीना कैसा मरना,
जब तक रहना हंसते रहना ।

सर्वसमर्थ

कुछ भी हो, हममें बड़े से बड़े के अन्दर या छोटे से छोटे के अन्दर जो शक्ति है वह हमारी अपनी नहीं है, बल्कि वह हमें उस खेल के लिये दी गई है जिसे यहां खेलना है, उस कार्य के लिये दी गई है जो हमें करना है। हो सकता है कि शक्ति हमारे अन्दर ही गढ़ी गई हो, पर उसका वर्तमान रूप ही अन्तिम नहीं है—चाहे वह शक्तिमय रूप हो या दुर्बलतामय । किसी भी क्षण वह रूप बदल सकता है—किसी भी क्षण हम, विशेषकर योग का दबाब पड़ने पर, दुर्बल को सबल बनते हुए, अयोग्य को योग्य बनते हुए, यंत्रात्मक चेतना को एकाएक या धीरे धीरे एक नई उच्चता की ओर ऊपर उठते हुए या अपनी सोई हुई शक्तियों को विकसित करते हुए देख सकते हैं । हमारे ऊपर, हमारे भीतर हमारे चारों ओर सर्वसमर्थ शक्ति विद्यमान है और उसी पर हमें अपने कार्य, अपने विकास और अपने रूपांतरकारी परिवर्तन के लिये निर्भर रहना चाहिये। अगर हम कार्य में तथा अपने आप उस कार्य के एक यंत्र होने में विश्वास रखें और उस शक्ति पर जो हमें काम में लगाती है श्रद्धा रखते हुए आगे बढ़ें तो स्वयं परीक्षाओं, मुश्किलों और असफलताओं का सामना करते और उन पर विजय प्राप्त करने के समय ही हमारे अन्दर शक्ति आयगी और उन 'सर्वसमर्थ' की शक्ति की हमें जितनी आवश्यकता होगी उसे धारण करने के लिये हमारे अन्दर क्षमता आयगी तथा हम उसके अधिकाधिक पात्र बनते जाएंगे ।

—श्री अरविन्द ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रार्थना प्रबोध

लेखक—पं० ओोंप्रकाश जी शास्त्री विद्या भास्कर, सुखदा—स्मृति ग्रन्थमाला कार्यालय खतौली ज़िला मुजफ़्फरनगर उ. प्र. मूल्य ७५ नये पैसे।

इस पुस्तक में दैनिक अग्निहोत्र, आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्सङ्गों तथा यज्ञादि में उच्चारण किये जाने वाले विश्वानिदेव से अग्नेनय सुपथा तक के ८ प्रार्थना मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या शङ्कासमाधान सहित की गई है। श्री प. गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, पं. बिहारीलाल जी शास्त्री और श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी ने भूमिका और आशीर्वाद में इस व्याख्या की यथार्थ प्रशंसा की है। प्रार्थना मन्त्रों के भाव को समझने के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयुक्त सिद्ध होगी।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

एक शिक्षाप्रद कथा

कभी हिम्मत न हारना

माता पिता और गुरुजन पढ़ने लिखने को कहते थे। बालक का मन पढ़ने लिखने के नाम से भी कोसों दूर भागता। अन्त में वह आये दिन की मार धाड़ और डाट फटकार से तंग आकर घर से भाग निकला।

घूमता फिरता वह एक दिन किसी गांव के समीप एक कुएं पर पहुंचा। कुएं की दीवारें और उसके बाह्य भाग बहुत दृढ़ पत्थरों से बनाये गये थे। फिर भी बालक ने पत्थरों पर बने हुवे वे बहुत से गोल गोल गढ़े देखे, जो कि नित्य प्रति जलार्थियों के घड़ों के रखने से बने थे। उसने वे गहरे गहरे निशान भी पत्थरों पर देखे, जो कि पानी भरते समय रस्सियों के आवा-गवन से पत्थरों पर बन गये थे। उसने सोचा—नित्यप्रति के अभ्यास से जब साधारण मिट्टी के घड़े कठोर पत्थरों में गढ़े डाल सकते हैं और कोमल सन की रस्सियां पत्थरों को काट सकती हैं तब क्या मैं अभ्यास और पुरुषार्थ के द्वारा चार अक्षर भी न सीख सकूंगा? अन्तरात्मा ने उत्तर दिया—क्यों नहीं सीख सकेगा? यह सोचकर बालक लौट कर अपने घर पहुंच गया और परिश्रम करने लगा। आगे चल कर यही बालक बंगाल का सुप्रसिद्ध विद्वान् बोपदेवशास्त्री बना। सच है—

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर पड़त निशान॥

—श्री जगत्कुमार जी शास्त्री देहली।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

शिक्षा और आध्यात्मिक विकास

भारत के जगद्विख्यात विचारक और शिक्षा वैज्ञानिक दार्शनिक विद्वान् उपराष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् जी ने २ मार्च को जबलपुर विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देते हुए उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण विषय पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला। उन्होंने नव स्नातकों को चेतावनी दी कि वैज्ञानिक गवेषणाओं और विज्ञान के प्रयोग के उत्तरोत्तर विकास के साथ मानवीय विषयों के अध्ययन के पतन होने की संभावना है। केवल विद्वान् वा कुशल व्यक्ति को शिक्षित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। उस में कुछ आध्यात्मिक गुण भी होने चाहियें जो उसे विपत्तियों में अविचल रखें और दूसरों के साथ व्यवहार में न्यायपूर्ण रखें। उन्होंने ठीक ही कहा कि बांधों, अधिक रेलवे लाइनों का निर्माण तथा कृषि उत्पादन की वृद्धि आदि सभी जनता का भौतिक स्तर ऊंचा उठाने के लिये आवश्यक हैं किन्तु इस से भी अधिक कुछ और आवश्यक है जिस की ओर हमारे प्राचीन ऋषि मुनि ध्यान दिला गये हैं। हमारे ऋषियों ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा ऐसी हो जो न केवल आजीविका उपार्जन में सहायता दे बल्कि मन को भी स्वतन्त्र करे। शिक्षा का एक उद्देश्य सद्व्यवहार का स्वभाव विकसित करना है नागरिकों के समृद्ध होने का कोई लाभ नहीं यदि उस प्रक्रिया में वे अपने चरित्र और विचार का विकास नहीं करते। हम मान्य उपराष्ट्रपति जी के इन शब्दों का हार्दिक समर्थन करते हैं और शिक्षाधिकारियों से अनुरोध करते हैं कि वे उपर्युक्त आध्यात्मिक विकास और चरित्र निर्माण में सहायक शिक्षा की सब विद्यालयों और महाविद्यालयों में शीघ्र व्यवस्था करें जिसके बिना छात्रों में उच्छृंखलता, अनैतिकता और नास्तिकता बढ़ती चली जा रही है। राज्यसभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए शिक्षा मन्त्री श्री डा० श्री माली जी ने कहा कि भारत सरकार ने सब राज्य सरकारों को सुझाव दिया है कि वे अपने अपने विद्यालयों में विद्यार्थियों और अध्यापकों की सामूहिक प्रार्थना का प्रबन्ध करें। यह बच्चों में नैतिकता की भावना बढ़ाने के विचार से किया जा रहा है।' हम इस निर्देश को प्रथम पग के रूप में अत्यन्त उपयोगी समझते हैं और सब प्रादेशिक सरकारों से अनुरोध करते हैं कि वे इसको अविलम्ब क्रियात्मक रूप देकर नैतिकतापूर्ण वातावरण बनान में सहायक हों।

संस्कृत आयोग का प्रतिवेदन—

इस सम्पादकीय टिप्पणी को लिखते हुए केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त संस्कृत आयोग के सम्पूर्ण प्रतिवेदन (रिपोर्ट) की प्रति हमारे सन्मुख नहीं है तथापि जो उसका सारांश समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है उसके निम्न अंश विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृत की शिक्षा को अनिवार्य कर दिया जाए।

(२) माध्यमिक विद्यालयों के सभी छात्रों के लिए प्रादेशिक या मातृभाषा, संस्कृत और अंग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य हो। हिन्दी केवल कालेज में ऐसे छात्रों को पढ़ानी चाहिए

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें)

१ संस्कृतम् (द्वितीय शतकम्) मूल्यम् .५०
२ जातीय गीतानि ,, .६२

दोनों पुस्तकों के लेखक—श्री पं० कर्णवीर नागेश्वर राव जी आन्ध्र भारती प्रकाशन मन्दिर वेट्पालेम् बापटला ताल्लुक आंन्ध्र प्रदेश। श्री पं० कर्णवीर जी जिनकी मातृभाषा तेलगु है संस्कृत और हिन्दी के बहुत अच्छे विद्वान् हैं जिनकी ५ तेलगु, १३ संस्कृत और ४ हिन्दी की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। संस्कृतम् प्रथम शतक, और संस्कृतान्ध्र हिन्दी बोधिनी की समालोचना हम गुरुकुल पत्रिका में कर चुके हैं। द्वितीय शतक में १०८ श्लोकों में खानखाना रहीम, महाभारत के अनुवादक मौलाशाह, अथर्ववेद के अनुवादक हाजी इब्राहीम, अब्बुल फज़ल मुल्ला मुहम्मद, नकीब खां इत्यादि संस्कृत के मुसलमान विद्वानों और बर्नियर्, कर्नल थेनियरो, कोलब्रूक, हैमिल्टन, सरविलियम् जोन्स, श्लीगल्, बौप् कर्नल टाड इत्यादि पाश्चात्य संस्कृत प्रेमी विद्वानों के विषय में संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जातीय गीत में कवि कर्णवीर जी के राष्ट्रगीत, मातृवन्दन, देशोऽयं मम देशोऽयम्, भारतीय पताका, संस्कृत गानम्, स्वदेशी वस्त्रम्, अध्यापकं प्रति, प्रबोधगानम्, महिला प्रबोधगानम् इत्यादि शीर्षकों से दाक्षिणात्य तालों के अनुसार सुन्दर सरल सरस स्फूर्तिदायक ओजस्वी देश-भक्ति सूचक गीत हैं जो सभी संस्कृत प्रेमियों के लिये उपादेय हैं। इस संस्कृत प्रेम के लिये हम श्री पं० कर्णवीर जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः' के अनुसार जातीय गीतानि के पृ० २४ पर 'वर्धतु' 'रमतु' ऐसे कुछ प्रयोग रह गये हैं उन का अगले संस्करण में संशोधन कर देना चाहिए। ये दोनों लघु पुस्तकें पं० कर्णवीर जी की अन्य संस्कृत. हिन्दी पुस्तकों की तरह प्रशंसनीय और उपादेय हैं।

वैदिक वन्दन

लेखक और प्रकाशक—स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, मिलने का पता—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदानभवन देहली ६ पृष्ठ ३३० मूल्य ५॥)

स्वामी ब्रह्ममुनि जी आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली विद्वान् हैं जिन की वैदिक और दार्शनिक साहित्य के सम्बन्ध में ४६ पुस्तकें इस समय तक जनता के सामने आ चुकी हैं। उन के वेदान्त और सांख्य दर्शन के संस्कृत भाष्य उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् स्वामी जी ने अध्यात्मविषयक वेदों के १४ सम्पूर्ण सूक्तों वा अध्यायों और ईश्वर, जीवात्मा, मन, मोक्ष, ध्यान, अभ्यास, वैराग्य, योग इत्यादि विषयक १४ विषयों के १५० प्रकीर्ण मन्त्रों इस प्रकार लगभग ४०० मन्त्रों की सरल किन्तु विद्वत्तापूर्ण व्याख्या मन्त्रों के ऋषियों, देवताओं की सङ्गति लगाते हुए की है जो न केवल सभी अध्यात्म जिज्ञासुओं के स्वाध्याय के लिये अत्यन्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपयुक्त होगी किन्तु आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्सङ्गों में कथा प्रवचनादि के लिये भी सर्वथा लाभप्रद सिद्ध होगी ऐसा हमारा विश्वास है। प्रत्येक प्रकरण के मन्त्रों के अन्त में सम्पूर्ण प्रकरण का सारांश सरल शब्दों में दे दिया गया है। पाद टिप्पणियों में विद्वानों के लाभार्थ धात्वर्थ तथा ब्राह्मणग्रन्थ, निघण्टु, निरुक्तादि के प्रमाण अपने अर्थ के समर्थन में दिये गये हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ वैदिक अध्यात्मवाद के सच्चे स्वरूप को समझने के लिये अत्यधिक उपयोगी बन गया है। हमें तो इसके पढ़ने में इतना आनन्द आया कि ४ दिनों में ही हमने इस को समाप्त करके विशेष लाभ उठाया। अतः हम बड़े विश्वास के साथ इससे लाभ उठाने के लिये सब अध्यात्मप्रेमियों और जिज्ञासुओं को प्रेरित करते हैं। मन्त्रों के अर्थ के साथ उन की बड़ी उत्तम भावनापूर्ण व्याख्या की गई है जिस को साधारण शिक्षित लोग भी सुगमता से समझ सकते हैं। एक विषय है जिस पर आर्य विद्वानों में भी मतभेद है वह ऋषियों के मन्त्रार्थ अथवा प्रतिपाद्य विषय या देवता के साथ सम्बन्ध का विषय है। सुयोग्य लेखक ने निरुक्तादि के प्रमाण देकर भूमिका में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मन्त्रों के ऊपर संहिताग्रन्थों में जो ऋषियों के नाम पाये जाते हैं वे व्यक्ति विशेषवाचक नहीं अपि तु यौगिक और उपाधि रूप हैं। उन के अपने शब्दों में "ऋषि और देवता का परस्पर सम्बन्ध भी होता है और वह उपयोक्ता उपयोग्य, ज्ञाता ज्ञेय, प्रार्थी प्रार्थनीय, साधक साध्य, भावुक भावनीय, उत्पादक उत्पाद्य, उपासक उपास्य आदि रूप में होता है।' (देखो भूमिका ङ)।

वेदों को अपौरुषेय नित्य ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले सब इससे तो सहमत ही हैं कि ऋषि मन्त्रों के कर्ता नहीं किन्तु द्रष्टा हैं। इसमें भी मतभेद नहीं कि श्रद्धा, दक्षिणा, शिवसंकल्प हिरण्य गर्भ आदि वाले सूक्तों के उपर्युक्त नाम वाले ऋषि-ऋषिकाओं का उल्लेख सूचित करता है कि उन उन विषयों के प्रतिपादन वा प्रचार के कारण ये उनके उप नाम पड़ गये होंगे। इस बात को भी अवश्य मानना पड़ेगा कि मन्त्रों में जो वसिष्ठ, विश्वामित्र, शुनः शेप, कण्व, दीर्घतमा, सुबन्धु आदि नाम आते हैं वे व्यक्ति विशेष वाचक नहीं अपितु यौगिक ही मानने चाहियें अन्यथा वेदों की अनित्यता सिद्ध होगी। स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने इस पुस्तक में व्याख्यात ४०० मन्त्रों के प्रतिपाद्य विषय के साथ ऋषियों का सम्बन्ध बड़ी योग्यता से दिखाया है यद्यपि उनके इस विचार से सब सहमत न भी हों कि ऋषियों के सभी नाम यौगिक और उपाधि रूप ही हैं। इस प्रश्न को स्वाध्यायशील विद्वानों के विचारार्थ अभी छोड़ते हुए हमें यह लिखने में कोई संकोच नहीं कि स्वामी ब्रह्ममुनि जी के ग्रन्थ का वेद विषयक अध्यात्मवाद के ग्रन्थों में बड़ा उच्च स्थान रहेगा। हम इसका प्रचुर प्रचार चाहते हैं और यह आशा करते हैं कि आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्सङ्गों में भी इस से लाभ उठाया जाएगा। हम इस उत्तम ग्रन्थ के निर्माण के लिए सुयोग्य स्वामी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जो अखिल भारतीय नौकरियों में जाना चाहते हों। (३) यह भी विकल्प आयोग ने प्रस्तुत किया है कि अंग्रेज़ी की शिक्षा सब के लिये अनिवार्य न हो अथवा तीन के स्थान पर ४ भाषाएं अनिवार्य हों। (४) सब से अधिक आवश्यकता यह है कि संस्कृत पढ़ान की विधि को सरल बनाया जाए। उसके बिना संस्कृत लोकप्रिय नहीं हो सकेगी। (हिन्दुस्तान २४—२—५८)।

हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि संस्कृत आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृत की शिक्षा को अनिवार्य रूप देने का प्रस्ताव रक्खा है। वस्तुत: संस्कृत की शिक्षा के बिना प्राचीन भारतीय धर्म, संस्कृति, इतिहास तथा तत्त्वज्ञान को समझना नितान्त असम्भव है अत: आयोग के इस प्रस्ताव का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं किन्तु जिस हिन्दी भाषा को उसके जानने वालों की संख्या की सर्वाधिकता के कारण हमारे संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है उसको केवल महाविद्यालयों में और वह भी केवल अखिल भारतीय नौकरियों के प्रत्याशियों को ही पढ़ाया जाए इस प्रस्ताव से हम सहमत नहीं हैं। हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत होने के कारण उसका अध्ययन भी माध्यमिक विद्यालयों में अनिवार्य होना सर्वथा उचित है हां, अंग्रेजी को अनिवार्य रूप से पढ़ाने की आवश्यकता नहीं। जो पढ़ना चाहें उनके लिए उसकी व्यवस्था करना पर्याप्त है। चार भाषाओं को अनिवार्य रूप से अध्यापन सम्भवत: सामान्य छात्रों पर अनुचित दबाव डालना होगा। संस्कृत पढ़ाने की विधि को सरल बनाने और पढ़ाने में अधिकतर संवाद शैली को अपनाने की तो वस्तुत: अत्यधिक आवश्यकता है। इसके बिना संस्कृत को लोकप्रिय बनाना सम्भव नहीं। लम्बे समासों रूपों और व्याकरण पर अत्यधिक बल देने की अपेक्षा यदि संवाद शैली से संस्कृत पढ़ाने का अभ्यास कराया जाए तो शीघ्र इसके सामान्य ज्ञान की प्राप्ति में सफलता हो सकती है। अब विद्यार्थियों में जो विभीषिका संस्कृत की कठिनता के विषय में बैठी हुई है उसे दूर करना चाहिये। हम चाहते हैं कि उपर्युल्लिखित संशोधन के साथ संस्कृत आयोग के प्रस्तावों को संसद् के दोनो सदन और सरकार स्वीकृत कर चिरकाल से उपेक्षित संस्कृताध्ययन को प्रोत्साहित करें।

दक्षिण भारत में राजा जी के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन:

गुरुकुल पत्रिका के गत अङ्क में हम ने श्री राजगोपालाचार्य जी आदि की राष्ट्रहितविरोधिनी प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए लिखा था कि 'अन्य दक्षिण भारतीय नेताओं को भी श्री राजगोपालाचार्य जी आदि के इस राष्ट्रहित विरोधी आन्दोलन का प्रबल विरोध करना चाहिए और राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में प्रबल जनमत जागृत करना चाहिये।' हमें यह देख कर हर्ष होता है कि दक्षिण भारत के विचारशील अनेक नेता इस विषय में जागरूक हैं और उनके नेतृत्व में कई महत्त्वपूर्ण सम्मेलन राजा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जी के आन्दोलन के विरोध में किये गये हैं उदाहरणार्थ २ मार्च को बंगलौर में कर्णाटक प्रान्त के सुप्रसिद्ध नेता और बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल श्री रामचन्द्र रङ्गनाथ दिवाकर जी की अध्यक्षता में कर्णाटक हिन्दी सम्मेलन बड़े उत्साह और समारोहपूर्वक किया गया जिस का उद्घाटन मैसूर राज्य के मुख्यमन्त्री श्री निज लिङ्गप्पाजी ने किया। उसमें सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि 'हिन्दी के विकल्प के बारे में या राजभाषा में एक और भाषा जोड़ने के बारे में सोचना भी घातक है क्यों कि इससे विघटन कारिणी शक्तियों को बढ़ावा मिलेगा तथा संकीर्ण हितों को बल प्राप्त होगा।' सम्मेलन ने भारत सरकार से अपील को है कि वह उचित समय पर हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में जारी करे जिससे किसी प्रदेश या जनता के किसी भाग को हानि न उठानी पड़े।' श्री दिवाकर जी ने अपने भाषण में कहा कि 'कर्णाटक की जनता ने हिन्दी को राजभाषा स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार अपना राष्ट्रिय दृष्टिकोण प्रदर्शित कर दिया है। उन्होंने अपील की है कि आप फूट डालने वाली प्रवृत्तियों के बहकावे में न आइये और द्राविडिस्तान की मांग को ठुकरा दीजिये।'

इसी प्रकार ९ मार्च को राष्ट्रीय महासभा के भू. पू. अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारामैया की अध्यक्षता में हैदराबाद में एक राजभाषा सम्मेलन हुआ जिसका उद्घाटन आन्ध्र प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष श्री कालेश्वर राव ने किया। इस में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि देवनागरी में लिखित हिन्दी ही भारत की राजभाषा होनी चाहिये। जैसे कि भारतीय संविधान की धारा ३४३ (१) में कहा गया है। सम्मेलन में यह भी कहा गया कि आन्ध्र प्रदेश, कर्णाटक और केरल के नेताओं वा जनता की सम्मति मद्रास में हुए दक्षिण भारतीय राजभाषा सम्मेलन के संयोजकों ने नहीं ली यद्यपि यह दावा किया गया था कि वह समस्त दक्षिणी भारतीयों का प्रतिनिधित्व करता है। इस सम्मेलन ने यह सम्मति स्पष्ट रूप से प्रकट की कि अंग्रेजी को राजभाषा और शिक्षा के माध्यम के रूप में रखने से ९९प्रतिशतक भारतीय जनता के प्रगति मार्ग में एक प्रकार से बाधा डाली जाती है। इसी प्रकार हैदराबाद के सर्वमान्य नेता स्वामी रामतीर्थ जी ने लोकसभा के अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा कि यह बहुत दुःख की बात है कि राजा जी जैसे माननीय नेता हिन्दी का विरोध कर रहे हैं। हमें अपने दिमागों में यह बात सदा के लिए साफ कर लेनी चाहिए कि अंग्रेजी न तो भारत की राजभाषा थी और न कभी हो सकती है। उन्होंने दक्षिण भारतीय मित्रों से अपील की कि वे ऐसी कोई बात न करें कि जिस से देश का दूसरी वार विभाजन हो।' हम दक्षिण भारत में इस प्रकार के सम्मेलनों और भाषणों का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं जनमत को राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में और भी अधिक प्रबल बनाया जाएगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

डा० श्री माली को शिक्षा मन्त्री के पद पर नियुक्ति—

'गुरुकुल पत्रिका' के गत फाल्गुन अङ्क में हम ने लिखा था कि "हम मौलाना अबुल कलाम आजाद की सद्गति के लिए भगवान् से प्रार्थना करते और उनके परिवार के लोगों से समवेदना प्रकट करते हुए यह आशा अवश्य करते हैं कि उनके स्थान पर किसी सुयोग्य संस्कृत हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान् और भारतीय संस्कृति के प्रेमी शिक्षावैज्ञानिक की शिक्षा मन्त्री के रूप में नियुक्ति की जाएगी।'

पिछले दिनों केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में जो कई परिवर्तन किए गए हैं उन में से एक वर्तमान शिक्षा विभाग और वैज्ञानिक अनुसन्धान का (जिन दोनों के मन्त्री मौ. आजाद थे) विभाजन करते हुए शिक्षा मन्त्रालय के अध्यक्ष व शिक्षा के राजमन्त्री के रूप में डा. श्री माली जी की फिर से नियुक्ति की है यह जानकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई क्योंकि डा. श्री माली जी हिन्दी, संस्कृत के विद्वान् और भारतीय संस्कृति के प्रेमी सुयोग्य शिक्षा वैज्ञानिक हैं तथा उन्हें शिक्षा मन्त्रालय का अनुभव भी है। हमें आशा है कि उनकी पूर्णतया शिक्षा मन्त्री के रूप में नियुक्ति कर दी जाएगी और उनके मन्त्रित्व में हिन्दी और संस्कृत की उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाओं को तथा उनके विकास की आयोजनाओं को वह प्रोत्साहन दिया जाएगा जो उन को अवश्य मिलना ही चाहिये। वर्तमान शिक्षा पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन करने की दिशा में भी जिसकी भयंकर राष्ट्रहित विरुद्ध त्रुटियों को सभी विचारशील नर-नारी अनुभव करते हैं क्रियात्मक ठोस कदम उठाए जाएंगे ऐसी हम आशा करते हैं।

उपहासास्पद संकीर्णता से धन का अपव्यय—

रामराज्य परिषद् के नेता स्वामी करपात्री जी ने वाराणसी के सुप्रसिद्ध विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों के प्रवेश पर जिस संकीर्णहृदयता का परिचय दिया है और जो उपहासास्पद वक्तव्य देकर नय विश्वनाथ मन्दिर का उपक्रम किया है उसकी जितनी निन्दा की जाए वह थोड़ी है। उन्होंने ५ जनवरी को पौराणिकों की एक सभा में कहा था हरिजनों से भ्रष्ट किये जाने के पश्चात् अब काशी विश्वनाथ मन्दिर के लिङ्ग में ईश्वर का निवास नहीं है। अब उस लिङ्ग की ईश्वर के रूप में पूजा को हम पाप समझते हैं। उन्होंने यह भी घोषणा की कि सनातनी पण्डितों ने अब नये विश्वनाथ मन्दिर को बनाने का निश्चय कर लिया है। उन्होंने बड़े अभिमान के साथ कहा कि यदि हरिजनों और सरकार ने इस मन्दिर को भ्रष्ट किया तो हम हजारों बार ऐसे नये मन्दिर बनाते चले जायेंगे। वर्तमान काशी मन्दिर से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।' स्वामी करपात्री जी के इस वक्तव्य का उदार सनातन धर्माभिमानी विद्वानों ने भी विरोध किया है। वस्तुतः परमेश्वर तो सर्वान्तिर्यामी सर्व व्यापक पतितपावन है उसके किसी स्थान से चले जाने और भ्रष्ट होने की बात ही उपहासजनक है। इस प्रकार की संकीर्णहृदयता से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कभी धर्म की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती । इस के कारण जो धन का अपव्यय होगा उसके लिखने की तो आवश्यकता ही नहीं ।

मौ० आज़ाद का हिन्दी समर्थक अन्तिम भाषण

यद्यपि मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की उर्दू के प्रति कुछ पक्षपात सूचक प्रवृत्ति से अनेक राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमियों को असन्तोष था जिस का हम ने फाल्गुन मास की एक सम्पादकीय में निर्देश भी किया था तथापि उस महापुरुष के प्रति किसी प्रकार अन्याय न हो अतः उन की मृत्यु से एक सप्ताह पूर्व रामलीला मैदान देहली में दिये भाषण के निम्न अंश को उद्धृत करना हमें उचित प्रतीत होता है ।

अखिल भारतीय उर्दू सम्मेलन में भाषण देते हुए मौलाना आज़ाद ने कहा था कि—

'आजादी के बाद हिन्दी और उर्दू का पुराना झगड़ा खतम हो गया है। आईन (संविधान) में हिन्दी को कौमी जबान (राष्ट्र भाषा) मान लिया गया और हर हिन्दुस्तानी का फ़र्ज (कर्तव्य) है कि वह उस फैसले के आगे सिर झुकाए ।

(हिन्दुस्तान २४—२—५८) ।

मौलाना आज़ाद का यह अन्तिम भाषण इस दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि वह उनकी उज्ज्वल राष्ट्रभक्ति का सूचक है और उनके अन्तिम परिपक्व विचार को भी यह सूचित करता है। हम चाहते हैं कि श्री राजगोपालाचार्य जी जैसे अनुभवी लोग भी इससे शिक्षा ग्रहण करते हुए अपने राष्ट्रहित विरोधी आन्दोलन को बन्द कर दें ।

अन्धविश्वास की वेदी पर दम्पती का बलिदान

पठानकोट का एक समाचार ट्रिब्यून आदि पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि वहां के एक युवक दम्पती का यह विश्वास था कि उन्हें भूतों ने पकड़ रखा है । उस भूत बाधा को दूर करने के लिये संसारसिंह नामक व्यक्ति को बुलाया गया जिस के विषय में यह प्रसिद्ध था कि वह भूतों को भगा देता है । उस ओझा ने पति-पत्नी दोनों को लोहे की शृङ्खला वा जंजीर से मारा किन्तु जब उससे भी भूतबाधा को शान्त करने में वह सफल न हुआ तो उसे लाठियों से ज़ोर से मारा जिसका परिणाम यह हुआ कि उन दोनों की उसी स्थान पर मृत्यु हो गई । इस प्रकार अन्धविश्वास की वेदी पर इस युवक दम्पती का बलिदान हुआ । ऐसे अन्धविश्वासों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करके उन्हें दूर करने की आवश्यकता है । यह बड़े दुःख और आश्चर्य की बात है कि अनेक सुशिक्षित व्यक्ति भी बहुत बार इस प्रकार भूत प्रेत आदि विषयक अंधविश्वासों के शिकार बन जाते हैं ।

१६—३—५७ —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
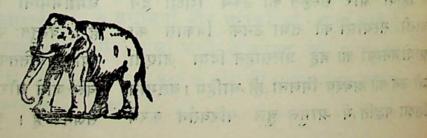
गुरुकुल समाचार

ऋतु रङ्ग

ऋतु में सहसा परिवर्तन हो गया है। प्रात: और सायं गरम कपड़ों के बिना बाहर जाना साधारण बात है। दिन लम्बे स्पष्टत: दृष्टिगोचर होने लगे हैं। सूर्यास्त और सूर्योदय से पूर्व भ्रमण के उपयुक्त अत्यन्त सुहावना समय होता है। किन्तु रात्रि में कीट पतङ्गादि के आगमन से अध्ययन में बाधा उपस्थित होती है। साधारणतया कुलवासी स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

डा० भटनागर जी का शुभागमन

३ मार्च १९५८ सोमवार को प्रात: आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री डा. कालका प्रसाद जी भटनागर, श्री शीतलप्रसाद जी प्रिंसिपल डी. ए वी कॉलिज मुजफ्फर नगर तथा श्री काशी प्रसाद जी प्रोफेसर फिजिक्स आगरा कालेज के साथ गुरुकुल पुरी में पधारे। समस्त उपाध्याय महानुभावों ने श्रद्धानन्द अतिथि भवन के द्वार पर आप सबका स्वागत किया। आप ने ३ मार्च को समस्त गुरुकुल विद्यालयों और महाविद्यालयों का निरीक्षण किया। ४ मार्च को सायंकाल ३ बजे गुरुकुल पुस्तकालय में आप के अभिनन्दन में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ। श्री पं० आद्याचरण जी तथा श्री रत्नाकर जी शास्त्री ने देववाणी में तथा श्री दर्शनलाल जी कपूर उपाध्याय भौतिकी विज्ञान ने उर्दू में भटनागर महोदय का अभिनन्दन किया। आपने अपने भाषण में कहा कि— "मुझे इस बात का गर्व है कि मैं आर्यसमाज में पला हूं और आर्यसमाज मेरी माता है। जो कुछ भी मैंने किया है वह आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की शिक्षा के प्रभाव से किया है।" उन्होंने अपने जीवन के नानाविध अनुभव सुनाए और अन्त में उन्होंने कहा कि "मैं चाहता हूं कि वेद महाविद्यालय की ओर सविशेष ध्यान दिया जाए। वैदिक साहित्य पर दिये गए नानाविध आक्षेपों का यहां के स्नातकों से ही उत्तर दिया जाना सम्भव प्रतीत होता है।" अन्त में गुरुकुल के प्रत्येक महाविद्यालय वेद, आयुर्वेद, कृषि विज्ञानादि की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये उन्होंने शुभकामना प्रकट की। पूज्य आचार्य जी ने उनको बहुत २ धन्यवाद दिया और उनके परामर्श से लाभ उठाने का आश्वासन दिया। उन्हें पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड कृत 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' आचार्य प्रियव्रत जी कृत 'मेरा धर्म' आदि पुस्तकें सादर भेंट की गईं।

गुरुकुल में बी एस. सी की शिक्षा।

अभी हमने श्री भटनागर महोदय के शुभागमन की चर्चा की है। मान्य अतिथि के आने का एक मात्र उद्देश्य गुरुकुल में बी. एस. सी की श्रणी खोलने विषयक था। उन्होंने गुरुकुल की शिक्षा पद्धति तथा पाठ्यक्रम आदि पर दृष्टिपात करने के पश्चात् कहा कि "कि अनेक कालिजों में यह विचार फैला हुआ है कि गुरुकुल में पढ़ाई कुछ नहीं होती, ऐसे ही उपाधि दे देते हैं। पर यह सत्य नहीं। मैं यहां बी. एस. सी की श्रेणी खोल कर गुरुकुल को नहीं, वरन् आगरा विश्वविद्यालय को गौरवान्वित कर रहा होऊंगा, जिसे कि इस प्रकार की संस्था से सम्पर्क स्थापित करने का सौभाग्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राप्त हुआ है। वह दिन दूर नहीं जब कि यहां एम. एस. सी की श्रेणियां भी खुल जायेंगी।"

इङ्गलिश लिटरेरी सोसाइटी

प्रति वर्ष यह सोसाइटी श्रद्धानन्द बलिदान पर्व पर आंग्लभाषा का अभिनय प्रस्तुत करती है। गत बलिदान पर्व पर भी इस सभा ने आँग्लभाषा का अभिनय प्रस्तुत किया था। इस सोसाइटी के मन्त्री श्री प्रशान्त कुमार हैं।

अभी ३ मार्च को जब श्री भटनागर महोदय पधारे तो इस सोसाइटी ने रात्रि ८ बजे मान्य अतिथि की अध्यक्षता में शेक्सपीयर की अमर कृति मर्चैन्ट ऑफ वेनिस के एक दृश्य को प्रस्तुत किया था। विद्यार्थियों की अभिनय कला, नाट्य-प्रवृत्ति तथा विदेशी भाषा पर अद्भुत अधिकार का यह अपूर्व दृश्य था। नाटक को देखकर सभी के मुख से वाह वाह ही निकल उठी। बाहर के अनेक कालिजों में प्रिंसिपल, उपाध्याय तथा स्वयं श्री भटनागर महोदय ने बधाई दी।

ब्र० कौशलेन्द्र द्वादश जिन्होंने कि पोर्शिया का तथा ब्रह्मचारी योगेन्द्र कुमार ने जिन्होंने शाइलॉक का पार्ट किया था विशेष प्रशंसा प्राप्त की। प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार, साहित्याचार्य एम०ए० प्रस्तोता गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने तत्क्षण इन दोनों विद्यार्थियों को १०) का पुरस्कार प्रदान किया। प्रो० गङ्गाराम जी गर्ग एम०ए० उपाध्याय ने १०) सभी अभिनेताओं को प्रदान किये।

इस अभिनय की वेशभूषा तथा अन्य सम्पूर्ण सृजना ब्र० कैलाशचन्द्र चतुर्दश ने की थी। मन्त्री महोदय इन सभी को धन्यवाद प्रदान करते हैं, किन्तु इस नाटक की सम्पूर्ण सफलता का सबसे अधिक श्रेय श्री गङ्गाराम जी गर्ग उपाध्याय आंग्लभाषा को है। उन्होंने नाटक की सफलता के लिए अनेक कष्ट उठाए। अपना अमूल्य समय इसमें देकर नाटक को सफल बनाया अतः उनका विशेष रूप से धन्यवाद करना मन्त्री अपना परम कर्तव्य समझता है। आंग्लभाषा के नाटक के साथ ही विद्यालय विभाग के छात्रों ने संस्कृत में वेणीसंहार का एक दृश्य प्रस्तुत किया था। इस नाटक ने भी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

परीक्षाएं

गुरुकुल कांगड़ी के विज्ञान विभाग की परीक्षाएं इलाहाबाद बोर्ड के साथ १७ मार्च से प्रारम्भ हो चुकी हैं। वेदमहाविद्यालय गुरुकुल महाविद्यालय तथा नवम दशम श्रेणी की परीक्षाएं जो कि विश्वविद्यालय की ओर से होती हैं सात एप्रिल से प्रारम्भ होकर २५ एप्रिल तक चलेंगी। आयुर्वेद महाविद्यालय की परीक्षाएं लगभग १९ मई से तथा विद्यालय विभाग की ८म श्रेणी तक की परीक्षाएं १५ एप्रिल से प्रारम्भ होंगी।

आयुर्वेद परिषत्

गत मास हमने इस परिषत् की उन्नति पर प्रकाश डाला था। इस मास २ मार्च १९५८ को श्री डा० सुन्दरलाल जी भण्डारी भूतपूर्व प्रिन्सिपल आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण हुए। प्रथम में उन्होंने कीटाणुविरोधी (एन्टीबायो-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

टिक) और शुल्व ओषधियों (सल्फाड्ग्स) के घातक प्रभावों पर और दूसरे में २७ रोगों के अपने सम्पूर्ण जीवनभर अनुभूत प्रयोगों पर प्रकाश डाला । मान्य डॉ० जी वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध हैं, हम उनके इन विद्वत्तापूर्ण भाषणों के लिये समस्त कुलवासियों की ओर से धन्यवाद प्रदान करते हैं ।

उक्त परिषत् का उत्सव १७ मार्च १९५८ को श्री वैद्य विशारद कविराज पं० धर्मदत्त जी के सभापतित्व में ३ बजे सम्पन्न हुआ ।

विवरण में इस वर्ष की गई विशेष प्रगतियों का परिचय दिया गया । विशेषकर इस वर्ष कार्यकारिणी द्वारा बनाये गये संविधान का समारोह किया, उसे मन्त्री द्वारा पढ़कर सुनाया गया तथा अध्यक्ष जी द्वारा संविधान के लागू करने की घोषणा की गई । इसके पश्चात् ब्र० नृपेन्द्र कुमार और ब्र० सुरेन्द्र कुमार द्वारा क्रमशः आयुर्वेद का महत्त्व और आयुर्वेद की उपेक्षा क्यों ? इन विषयों को लेकर वक्तव्य दिये गये ।

श्री जयप्रकाश जी भारतीय ए. एम. बी. एस., श्री कौशलेन्द्र जी, श्री अशोक कुमार जी, श्री प्रभुदयाल जी, श्री बुद्धिप्रकाश जी को इन के उत्साहजनक कार्य करने के प्रमाणपत्र दिये गये साथ ही परिषद् के अध्यक्ष श्री राजेश्वर जी और मन्त्री हरिप्रकाश जी एवं उनकी कार्यकारिणी को भी प्रमाणपत्रों द्वारा सन्मानित किया गया ।

अन्त में श्री मान्य सभापति महोदय का भाषण हुआ । आप ने आयुर्वेद की दयनीय स्थिति और उपेक्षादृष्टि की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए आयुर्वेद को चिकित्सा की पूर्ण पद्धति बताया और उसकी उन्नति के लिये बहुमूल्य निर्देश दिये ।

उन्होंने कहा कि एलोपैथी अर्थात् लाक्षणिक चिकित्सा पद्धति भी भारतीय आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति का एक अंग है और आजकल के युग में जिस क्रियाशीलता से उस पद्धति का विकास और प्रकाश हुआ है उसके ज्ञान प्राप्त करने से हमारे विद्यार्थियों को पीछे नहीं रहना चाहिए । परन्तु आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धातों को नहीं छोड़ना चाहिये । यही पद्धति समस्त अन्य चिकित्सा पद्धतियों की आत्मा है । देश के छात्रों की इस ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये । किन्तु साथ ही उन्होंने इस कार्य के लिए दोषी केवल अपनी सरकार को न बता कर आयुर्वेद पढ़ने वाले छात्रों और उक्त चिकित्सा पद्धति को अपनाने वाले वैद्यों को भी ठहराया । उन्होंने कहा कि यह हमारा कर्तव्य है कि हम सभी चिकित्सा पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करें किन्तु आयुर्वेद के क्षेत्र में विशेष प्रगति कर के देश के शासकों को हमें बताना चाहिए कि हमारी पद्धति पूर्ण है । सभी चिकित्सा पद्धतियों का हमारी इसी पद्धति में समावेश हो जाता है । ताकि भविष्य में हम एक भारतीय चिकित्सा पद्धति का भी प्रसार और विस्तार देख लें ।

सायंकाल आयुर्वेद महाविद्यालय के समस्त छात्रों और उपाध्यायों का एक सम्मिलित चित्र लिया गया । तत्पश्चात् एक जल-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पान का आयोजन हुआ जिसमें ऋषिकुल कालेज के भी समस्त उपाध्याय एवं आचार्य सादर निमन्त्रित थे।

रात्रि में परिषद् के सदस्यों ने कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जिनमें कविसम्मेलन और चारु वेशभूषा प्रतियोगिता के मनोरंजन कार्यक्रम बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुए।

श्री पं० जयचन्द्र जी विद्यामार्तण्ड का विशेष सन्मान

यह बड़े हर्ष की बात है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक पं० जयचन्द्र जी विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड का गत २ मार्च को चण्डीगढ़ में भारत के गृह मन्त्री माननीय श्री गोविन्दवल्लभ जी पन्त की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक सन्मान पंजाब सरकार की ओर से किया गया और उन्हें आदर सूचक विशेष वस्त्रों के अतिरिक्त ११०० की राशि भेंट की गई। इस अवसर पर माननीय पन्त जी ने श्री पं० जयचन्द्र जी के विषय में कहा कि वे भारतीय इतिहास में मार्गदर्शक और उच्चकोटि के ऐतिहासिक विद्वान् हैं। हम इस सन्मान के लिये गुरुकुल वासियों और गुरुकुल पत्रिका परिवार की ओर से श्री पं० जयचन्द्र जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

गुरुकुल में सैनिक शिक्षा

देश के अनेक महाविद्यालयों में चल रही एन. सी. सी ट्रेनिङ्ग यहां इस विश्वविद्यालय में भी सन् १९५६ से निरन्तर चलती आ रही है। अनेक छात्र इसमें भाग लेकर देश की सैन्य शक्ति की वृद्धि करने में तथा अनुशासन का नया पाठ सीखने में सफलता प्राप्त कर रहे हैं। लगने वाले बाह्य—शिविरों में भाग लेकर हथियारों का चलाना निशाना लगाना फील्डक्रॉफ्ट आदि अनेक युद्ध कलाओं की तथा सामाजिक शिविरों से स्वयम् अपने ऊपर निर्भर रहने की शिक्षा प्राप्त कर प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व स्वावलम्बन का पुनः पाठ पढ़ रहे हैं। अनेक छात्रों ने बी तथा सी प्रमाणपत्रों की परीक्षा दी। ब्र महाव्रत, सत्यपाल तथा धनप्रकाश आदि ने बी प्रमाणपत्र, हरिप्रकाश (सार्जैन्ट) तथा राजेन्द्रपाल ने सी प्रमाणपत्र प्राप्त किया।

श्री हरपालसिंह जी एम. ए. उपाध्याय पाश्चात्य दर्शन इस विभाग के अध्यक्ष हैं।

आने वाले प्रत्येक राष्ट्रीय पर्व तथा मान्य अतिथियों के स्वागत में यह विभाग स्वागत प्रबन्धादि का कार्य सम्पन्न करता है।

सान्मुख्य

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गुरुकुल पुरी में बैडमिन्टन का सान्मुख्य १८ मार्च से प्रारम्भ हो गया है। लगभग ३० खिलाड़ियों का प्रवेश शुल्क पहुंच चुका है। इस सान्मुख्य के मन्त्री श्री घनश्याम जी त्रयोदश तथा व्यवस्थापक एवं प्रमुख कार्यकर्ता श्री जगलाल जी त्रयोदश हैं। सान्मुख्य की सफलता के लिये हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

—प्रशान्त कुमार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत वेद वाचस्पति	७.००
वेद का राष्ट्रिय गीत	,, ,,	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,, ,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,, ,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग,	श्री अभय हर एक	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत २.००,	ब्राह्मण की गौ	.७५
वैदिक वीर गर्जना	श्री रामनाथ वे० अ०	.८७
वैदिक सूक्तियां	,,	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त ,,	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१.२५
वेद गीतांजलि(वैदिक गीतियां)	श्री प्रियव्रत	२.००
सोम-सरोवर, सजिल्द,	श्री चमूपति	२.००
वैदिक-कर्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	१.५०
वेदों का यथार्थ स्वरूप	,,	६.५०
अग्निहोत्र	श्री देवराज वि० मा०	२.२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका १, २ भाग	.८७	.८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१.२५
पाणीनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध	७.००,	७.००
पंचतन्त्र (सटीक) ,, ,,	२.००	२.००
सरल-शब्दरूपावली		.६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६.००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द अ.	६.००,	७.००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		.७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१. ७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		.५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४.००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४.००
जीवन की झांकियां ३ भाग ,,	.५० .५०	१.००
सम्राट् रघु १.२५	जवाहरलाल नेहरू	१.२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र		२. ०
दिल्ली के स्मरणीय २० दिन ,,		.५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१.००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	५.००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२.५०
लहसुन : प्याज़	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
तुलसी दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२.००
सोंठ तीसरा ,,	,,	१.००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१.००
मिर्च (काली सफेद और लाल)	,,	१.००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	,,	५.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
नीम : बकायन(अनेक रोगों में उपयोग),,		१.२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,,		.५०
देहात की दवाएं, सचित्र .७५	बरगद	.७८
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३.००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१.२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१.७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका. २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१.२५
गुणात्मक विश्लेषण(बी एस. सी. के लिए)		१.००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		.७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१.००
आत्मबलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१.००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा ,,		१.००
जमींदार	,,	२. ०
सरला की भाभी १, २ भाग ,,	२.००,	३.००

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार । (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य [illegible] शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पाव २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

सम्पादक : धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
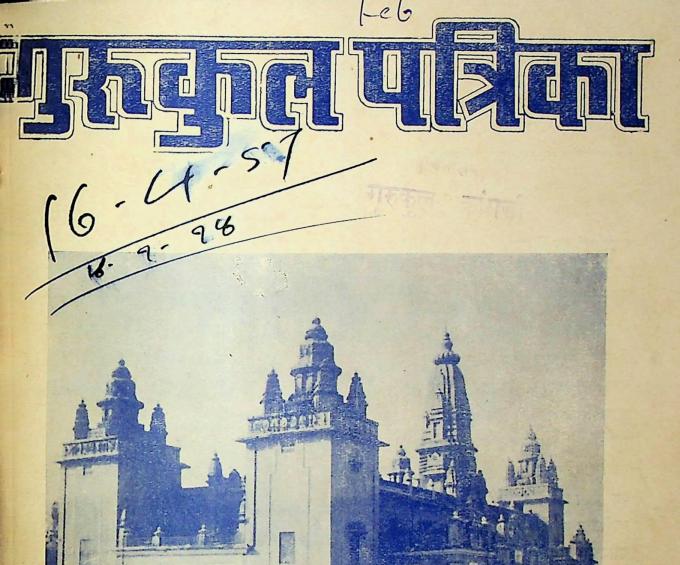
गुरुकुल का वेद-मन्दिर

वर्ष ९
अङ्क ७

★

फाल्गुन
२०१३

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १०३ ★

फरवरी १९५७

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति

श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार

श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

इस अङ्क में

अगले अङ्कों में

श्रद्धा	श्री वासुदेवशरण अग्रवाल
महात्मा मुन्शीराम और गुरुकुल की स्मृतियां	श्री राम्जे मैकडॉनल्ड
स्वामी श्रद्धानन्द जी के संस्मरण	श्री आचार्य अभयदेव

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएँ

मूल्य देश में ४) वार्षिक

विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

भारतीय संस्कृति — ५

आर्यावर्त्त का विस्तार

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

किस समय यह परिवर्तन हुआ, यह कहना तो कठिन है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि अत्यन्त प्राचीन काल में, शायद लाखों वर्ष पहले, भूमि ने एक बहुत जबरदस्त करवट ली, जिसमें पृथ्वी तल के समुद्र, पर्वत, और भूप्रदेशों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। भारत में उस परिवर्तन से दो बड़े परिवर्तन हुए प्रतीत होते हैं। एक परिवर्तन तो यह हुआ कि वर्तमान राजपूताने और सिन्ध के स्थान पर जो समुद्र था, वह सूख गया। समुद्र का पानी दक्षिण की ओर बह कर भारत के दक्षिण, पश्चिम, और पूर्व के समुद्रों का निर्माण हो गया। दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि दक्षिण दिशा में जो पर्वत थे, वे पानी में मग्न हो गये। इस परिवर्तन की स्मृतियाँ हमारे इतिहास व उपस्थानों में मेरू के जलमग्न होने और पर्वतों के छिन्न पक्ष हो कर पृथ्वी पर जम जाने की कथाओं में विद्यमान हैं। उस भौगोलिक कायापलट का परिणाम यह हुआ कि आर्यावर्त की सीमा बढ़ने लगी। जो आर्यावर्त न केवल मध्यभारत के समीप आ कर समुद्र द्वारा परिमित हो जाता था, उसकी सीमाएँ बहुत आगे तक बढ़ गई। आर्यावत 'ब्रह्मवर्त' की सीमाओं का वर्णन मनुस्मृति ने निम्नलिखित किया है।

हिमवद्विन्ध्योर्मध्य यत्प्राग्विनशनादपि,
तद्देवनिर्मितंदेशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।

हिमालय और विन्ध्यचल के मध्य में और विनशन पर्वत के पूर्व में जो देव-निर्मितदेश है, वह ब्रह्मवर्त कहलाता है। उसमें दक्षिण भूमि का जो भाग था, वह म्लेच्छ देश कहा जाता था।

रामायण का समय

उस समय का चित्र हम वाल्मीकि रामायण में पा सकते हैं। रामायण का समय उपर्युक्त भौगोलिक परिवर्तन से बहुत युगों पीछे हुआ। उस समय गंगावतरण और समुद्र-मन्थन जैसी घटनायें ऐतिहासिक कोटि से निकल कर उपाख्यान में पहुंच चुकी थी।

उस समय देश की राजनीतिक परिस्थिति का चित्र हम रामायण की सहायता से खेंच सकते हैं। देश यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से कई छोटे छोटे राज्यों में बंटा हुआ था, तो भी हर समय उसमें एक सम्राट् या चक्रवर्ती राजा रहता था। चक्रवर्ती पद पाने की विधि यह थी कि जो राजा उस पद का उम्मेदवार होता था वह राजसूय यज्ञ करता था। उस राजा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का सेनाओं द्वारा रक्षित अश्व देश-देशान्तरों में घूम जाता था। वह जिस राजा के राज्य में से गुजरे, यदि उसने घोड़े को रोका तो युद्ध होता था। यदि नहीं रोका तो मान लिया जाता था कि उसने विजेता के चक्रवर्ती पद को स्वीकार कर लिया। युद्ध में यदि अश्व के स्वामी की जीत हुई तो उसकी प्रभुता व्यवस्थित हो जाती थी। इस प्रकार प्रायः प्रत्येक समय में कोई न कोई राजा चक्रवर्ती-पद की योग्यता प्राप्त करता रहता था, और वही अपने समय में देश की एकता का द्योतक केन्द्र होता था। राघव-वंश के संस्थापक सम्राट् रघु ने इसी विधि से चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। रघु के पिता दिलीप ने सौ यज्ञ कर के स्वराज्य और स्वाराज्य दोनों को प्राप्त कर लिया था। देश की सामान्य व्यवस्था यह थी कि अपनी-अपनी सीमाओं में आन्तरिक शासन करने के लिए सब शासक स्वतंत्र थे, परन्तु सार्वदेशिक दृष्टि से उन्हें चक्रवर्ती के नेतृत्व को स्वीकार करना पड़ता था, देश की एकता चक्रवर्ती की सत्ता के कारण व्यवस्थित रहती थी।

उस समय के आर्यावर्त की सामान्य दशा का चित्र रामायण के अयोध्या वर्णन की सहायता से खेंचा जा सकता है। मैंने पहले रामराज्य के संबंध में कुछ लिखा है, उससे उस समय की सामान्य धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। राजा और प्रजा का धार्मिक और सामाजिक स्तर बहुत ऊँचा था। सत्य, कर्तव्य-परायणता और न्याय राजा के और सदाचार व वर्णधर्म का पालन तथा राजभक्ति प्रजा के गुण विशेष बताये जाते थे, जो सामान्य रूप से राजाओं और प्रजातन्त्रों में पाये जाते थे। रामायण में जहाँ भी किसी अच्छे राजा का वर्णन आता है, वहाँ उसे धार्मिक, तपस्वी आदि विशेषणों से विशेषित किया गया है। वृद्धावस्था में प्रायः वे लोग राज्य का बोझ लड़कों पर डाल कर वानप्रस्थ बन जाया करते थे। जब तक राज्य करते थे, प्रजा-पालन को अपना पहिला कर्तव्य मानते थे। यह एक विशेष ध्यान देने योग्य बात है। देश में अनेक छोटे-छोटे राज्यों के होते हुए भी उनके परस्पर संघर्ष अथवा प्रतिस्पर्धा की कोई चर्चा नहीं है। सब शांतिपूर्वक अपनी अपनी सीमाओं में सन्तोषपूर्वक निवास करते थे। केवल एक राजा को, जो राजसूय यज्ञ द्वारा चक्रवर्ती-पद को प्राप्त कर लेता था, देश भर का नेता स्वीकार करते थे। इस प्रकार अनेक खण्डों में बंटे रह कर भी वे राजा अखण्ड आर्यावर्त के अन्तरंग भाग बने हुए थे।

प्रजाजन वर्णाश्रम धर्म के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करने में लगे रहते थे। रामयण के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय के वर्ण आजकल की जातिपाँति की तरह कठोर दायरे वाले नहीं थे। कर्मानुसार वर्ण प्राप्त किये जा सकते थे। विश्वामित्र जैसे क्षत्रिय, ब्रह्म-बल को प्राप्त कर सकते थे और अहिल्या जैसी ऋषि-पत्नियाँ अपने ऊँचे पद से गिराई जा सकती थीं। कर्मानुसार वर्ण मिलता था। वर्ण के अनुसार कर्तव्यों का बोझ डाला जाता था। इस तरह मनुष्य-समाज नदी के बहते हुए पानी की तरह शुद्ध रहता था, आजकल के जोहड़ के समाज बन्द समाज की भाँति गन्दा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं होता था ।

लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी । अयोध्या निवासियों की समृद्धि का जो वर्णन रामायण ने किया है, उसमें थोड़ी सी काव्योचित अत्युक्ति हो सकती है, परन्तु सम्पूर्ण के पढ़ने से जो परिणाम निकलता है, वह यह है कि सामान्यतः प्रजाजन सुखी, समृद्ध और हर तरह सन्तुष्ट थे ।

आर्य-साहित्य का आर्षकाल

भारतीय आर्यों के सर्व-प्रथम साहित्य को हम 'वैदिक साहित्य' का नाम दे सकते हैं। श्रुति अथवा वेद ही उस समय आर्यों के मार्ग-दर्शक थे । वही साहित्य था और वही धर्म-शास्त्र । समयान्तर में वेदमंत्रों की व्याख्या की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । साथ ही जीवन के अधिक विस्तृत और पेचीदा हो जाने से जीवन के भिन्न भिन्न भागों पर ग्रन्थों का निर्माण आवश्यक हो गया । उस समय के विद्वान् वेद्ज्ञ ऋषियों ने जिन ग्रन्थों का निर्माण किया, वे ब्राह्मण और उपनिदों के नाम से प्रख्यात हुआ । रामायण में उन द्य ऋषियों में से अनेक की चर्चा आती है, जो ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों के वक्ता थे । वह ऋषियों का काल था । नगरों और ग्रामों से दूर, नदियों के किनारों पर ऋषि लोग पर्णकुटी बना कर अपने शिष्यों के साथ निवास करते थे । सब वर्णों के बालक उनके आश्रमों में रह कर सब प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करते थे । उस समय जो विद्याएँ गुरुकुलों में पढ़ाई जाती थीं, उनकी सूचि बहुत लम्बी है । छान्दोग्य उपनिषद् में नारद और सनत्कुमार की बातचीत में निम्नलिखित विद्याओं का वर्णन है—

'ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेजनविद्या ।'

ऋषि लोग छात्रों को उन की प्रवृत्ति के अनुसार विद्याओं का अध्ययन कराने के साथ साथ तपश्चर्या द्वारा उन के आत्मा, मन और शरीर को बलवान् बनाते थे । इस प्रकार बलिष्ठ बन कर उस समय के आर्यजन नागरिक जीवन में प्रवेश करते थे ।

उस युग में ऋषियों का प्राधान्य था । ऋषि कहते थे उन लोगों को, जो वेद तथा अन्य विद्याओं के पारंगत होने के साथ साथ त्यागी और तपस्वी हों । वे लोग राजाओं का और प्रजाओं का समान रूप से मार्ग-प्रदर्शन करते थे । जंगलों में उनके आश्रमों की रक्षा करना राजाओं का विशेष कर्तव्य समझा जाता था । ऋषि किसी प्रदेश के हों, सारे देश में पूज्य माने जाते थे । इस प्रकार प्रबन्ध की दृष्टि से अनेक भागों में बांटा हुआ भी आर्यावर्त सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से एक और अखंड था ।

विन्ध्य से दक्षिण में

मैंनें ऊपर लिखा है कि हिमालय और विन्ध्याचल के बीच के भाग का नाम आर्यावर्त या ब्रम्हवर्त्त था और उससे दक्षिण के प्रदेश को म्लेच्छ देश कहा जाता था। रामायण में उस प्रदेश के निवासियों को ऋक्ष, वानर और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राक्षस संज्ञाओं से निर्दिष्ट किया गया है। सुग्रीव और हनुमान वानर थे। सुग्रीव का प्रधान मन्त्री मल्लूक था और रावण राक्षस था। सब संज्ञायें ऊन लोगों के शरीर की रचना के आधार पर ही की गई थीं। पर्वतों के निवासी अपनी चढ़ने उतरने की फुर्ती और रंग की विशेषता के कारण वानर, भील आदि जातियों के लोग विशाल डीलडौल और रंग के कारण मल्लूक तथा अत्यन्त दक्षिण के निवासी काले रंग और मुखाकृति के विशेष निर्माण की दृष्टि से उत्तरीय भारत के गोरे और सुंदर आर्यों से सर्वथा भिन्न होने के कारण राक्षस कहलाते थे। वस्तुतः कोई पृथक् राक्षस जाति नहीं थी। पुराणों में लिखा है कि दिति और अदिति दो बहिनें थीं। दिति की सन्तान दैत्य और अदिति की संतान आदित्य कहलायी। जो लोग आर्य धर्म से अलग हो कर जंगलों अथवा दूर देशों में जा कर रहने लगे और ऋषियों के यज्ञों में विघ्नकारी बनने लगे, वे ही राक्षस कहलाये। वे भी उन्हीं पूर्व पुरुषाओं के वंशज थे, जिनके आर्य, और प्रायः उन्हीं देवताओं की आराधना करते थे जिनकी आर्य। भेद इतना ही था कि वे आर्य ऋषियों के यज्ञों का विध्वंस करते थे और आर्य राजाओं को परास्त करने और प्रजाजनों को लूटने और मारने में अपना गौरव मानते थे।

महाराज रामचन्द्र के लंका विजय से भारतीय इतिहास का एक नया परिच्छेद आरम्भ होता है। प्रतीत होता है, विभीषण के राज्यारूढ़ होने से लंका आर्यावर्त्त के विरोधियों का अड्डा न रहा और धीरे धीरे आर्यावर्त्त का ही एक अंग बन गया। इस प्रकार उस देश का राजनैतिक विस्तार हिमालय से लंका तक हो गया।

ज्ञातव्य बातें

१ भारत सरकार ने दूसरी आयोजना की अवधि में देश में खनिज तेल की खोज के लिए ३०करोड़ रुपये की योजना बनाई है।

२ १९५५-५६ में भारत सरकार ने घरेलू व छोटे उद्योगों से लगभग ३ करोड़ ४१ लाख १४ हजार रुपये का सामान खरीदा। पिछले वर्ष एक करोड़, ५ लाख रुपये का सामान खरीदा था।

३ भारतीय रेलों ने १९५५-५६ में विदेशों से लगभग १५ करोड़ ६८ लाख रुपये के मूल्य का सामान खरीदा। इस वर्ष भारत में खरीदे जाने वाले सामान का मूल्य लगभग ९९ करोड़ ५७ लाख रुपये था।

४ १९५५ में सोडा-कॉस्टिक का उत्पादन ३४२५० टन था। १९५६ में कुल उत्पादन ३९०० टन था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वैदिक-धर्म और उपासना

श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति

धर्म का स्वरूप : ईश्वर-विश्वास और उस का जीवन पर प्रभाव

परमात्मा में विश्वास धर्म का आवश्यक अङ्ग है। ईश्वर में विश्वास के आधार पर ही धर्म खड़ा होता है। ईश्वर-विश्वास के बिना धर्म, धर्म नहीं रहेगा। पर यह ईश्वर में विश्वास ऊपर-ऊपर का, सूखा और कोरा शाब्दिक विश्वास नहीं होना चाहिए। यह ईश्वर-विश्वास हृदय की गहराई में बसने वाला, श्रद्धा से सींचा हुआ, मन की भावनाओं में रहने वाला दृढ़ विश्वास होना चाहिए। इस विश्वास का प्रभाव हमारे मन, वचन और कर्म में स्पष्ट दिखाई देना चाहिए। हमारा जीवन इस विश्वास के रङ्ग से रङ्गा हुआ होना चाहिए। जब हम ईश्वर को नहीं मानते थे तब हमारा जैसा जीवन था उस में, और जब हम ईश्वर को मानने लग गए तब हमारा जैसा जीवन बन गया उस में, स्पष्ट भेद दीखना चाहिए। धर्म को इसी लिए स्वीकार किया जाता है कि उस के स्वीकार करने से हमारे जीवन में परिवर्तन आ जाएगा। धर्म को स्वीकार करने का अर्थ है ईश्वर को स्वीकार करना—ईश्वर में विश्वास रखना। इस लिए ईश्वर-विश्वास का सीधा प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ना चाहिए। उस से हमारे जीवन में परिवर्तन आना चाहिए। ईश्वर में विश्वास रखने से हमें अपने जीवन में कोई लाभ मिलना चाहिए। इस विश्वास का फलस्वरूप हमें कोई ऐसी नई चीज मिलनी चाहिए जिसे प्राप्त कर के हम समझें कि हमारा जीवन पहले से भिन्न प्रकार का हो गया है और उस से हमें लाभ पहुंचा है।

ईश्वर-विश्वास से जीवन प्रभावित करने का उपाय : उपासना

ईश्वर में विश्वास रख कर उस से अपने जीवन को प्रभावित करने का और उस से अपने जीवन के लिए लाभ उठाने का उपाय क्या है ? वह उपाय है—प्रभु की उपासना। सभी धर्मों में ईश्वर की उपासना पर बड़ा बल दिया जाता है। सभी धर्मों में ईश्वरोपासना का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः ईश्वरोपासना को ही धर्म समझा जाता है। हम ने ईश्वर की उपासना कर ली तो समझा जाता है कि हम ने धर्म कर लिया। हम ईश्वर की उपासना करने वाले बन गए तो समझा जाता है कि हम धार्मिक हो गए।

उपासना का प्रचलित स्वरूप

ईश्वर की उपासना का स्वरूप क्या है ? और वह हमें लाभ किस प्रकार पहुंचाती है ? प्रायः सभी धर्मों में प्रभु के गुणों का कीर्तन करना, भगवान् की महिमा को बताने और उन के गुणों की प्रशंसा करने वाले भजनों, श्लोकों और मन्त्रों का पाठ करना, भगवान् के किसी नाम या उन के किसी गुण को बताने वाले किसी वाक्य को बार-बार दोहरा कर उस का जप करना और इस प्रकार प्रभु के गुण-कीर्तन के अनन्तर उन को नमस्कार करना ईश्वरोपासना समझा जाता है। इस उपासना के पश्चात्, प्रभु के इस गुण-कीर्तन के पश्चात्, प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि हे प्रभो ! आप तो सदा सब पर कृपा बरसाने वाले हो, मुझ पर भी अपनी कृपा-दृष्टि कीजिए, मेरे अमुक-अमुक कष्टों को दूर कर दीजिए और मुझे अमुक-अमुक फल की प्राप्ति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करा दीजिए । समझा यह जाता है कि इस प्रकार भगवान् की उपासना करने से अर्थात् इस प्रकार भगवान् को उन की महिमा और गुणों की प्रशंसा सुनाने से भगवान् हम से प्रसन्न हो जाते हैं । और इस प्रकार प्रसन्न किए हुए भगवान् से जब हम अपने कष्टों को दूर करने की तथा अपने कामों में सफलता-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं तो हमारी भक्ति और उपासना से, हमारे द्वारा की गई अपने गुणों की प्रशंसा को सुन कर, हम से प्रसन्न हुए ये भगवान् हमारे कष्टों को काट देते हैं और कामों में सफलता प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार भगवान् को उन के गुणों की प्रशंसा सुना कर प्रसन्न करना उन की उपासना, और उपासना के अनन्तर भगवान् से अपने कष्टों को दूर करने तथा अपने कामों में सफलता प्रदान करने की प्रार्थना को भगवान् से अपने जीवन में लाभ प्राप्त करने का उपाय समझा जाता है । ईश्वर में विश्वास रख कर उस से लाभ उठाने का यही प्रकार प्रायः सब धर्मों में स्वीकार किया जाता है ।

हम ने भगवान् को अपने जैसा बना लिया है

हम ने अपने भगवान् को अपने जैसा बना रखा है । हम स्वयं जैसे हैं हम ने अपने भगवान् को भी वैसा ही समझ रखा है । हम प्रशंसा और खुशामद को पसन्द करने वाले हैं । हम में यह कमजोरी है । यदि कोई हमारी प्रशंसा और खुशामद कर दे तो हम उस से प्रसन्न हो जाते हैं, उसे अच्छा समझने लगते हैं और उस के हक में हो जाते हैं। हम उस के दोषों और अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देते, उधर से हम आंखें मीच लेते हैं । उस की प्रशंसा और खुशामद की रिश्वत से प्रभावित हो कर हम उस का पक्ष करने लगते हैं । योग्य और अधिकारी न होने पर भी हम उसे अन्यायपूर्ण रीति से लाभ पहुँचाने लगते हैं । हम ने अपने परमात्मा को भी अपने जैसा प्रशंसा और खुशामद को पसन्द करने वाला समझ रखा है । यह खुशामद की रिश्वत से प्रभावित होने की दुर्बलता हम ने अपने परमात्मा में भी डाल रखी है । हम समझते हैं कि हमारी प्रशंसा और खुशामद की रिश्वत को पा कर परमात्मा भी हम से प्रसन्न हो जाते हैं, हमें अच्छा समझने लगते हैं और हमारे हक में हो जाते हैं । हमारे दोषों और अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देते, उधर से आंखें मीच लेते हैं । हमारी प्रशंसा और खुशामद की रिश्वत से प्रभावित हो कर भगवान् हमारा पक्ष करने लगते हैं । योग्य और अधिकारी न होने पर भी वे हमारे पक्ष में हो कर हमारे कष्टों को काट देते हैं और हमारे कामों में हमें सफलता प्रदान कर देते हैं । भगवान् हमारे आचरण और कर्मों को नहीं देखते, वे तो हमारे द्वारा अपनी प्रशंसा और खुशामद को सुनने के भूखे हैं । जिस ने प्रशंसा और खुशामद सुनने का परमात्मा की यह भूख मिटा दी वे उसी के पक्ष में हो जाते हैं और उस के सब दुःखों को काट देते हैं तथा जो कुछ वह माँगता है वह सब उसे दे देते हैं । ऐसे हम ने अपने भगवान् को समझ रखा है ।

हम ने उपासना को व्यापार की वस्तु बना रखा है

हम ने परमात्मा की भक्ति और उपासना को व्यापार की, लेन-देन की, सौदे की चीज बना रखा है । मुझे कुर्ता सिलवाने के लिए तीन गज कपड़ा चाहिए । दुकानदार को अपनी आवश्यकता की चीजें खरीदने के लिए पैसे चाहिएं । एक चीज की मुझे आवश्यकता है, एक की दुकानदार को । दुकानदार मुझे कपड़ा दे कर मेरी आवश्यकता पूरी कर देता है और मैं बदले

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में उसे पैसे दे कर उस की आवश्यकता पूरी कर देता हूँ। यही बात हम ने भक्ति और उपासना के सम्बन्ध में समझ रखी है। भगवान् को अपनी प्रशंसा और खुशामद चाहिए। मुझे अपने दुःखों से छुटकारा और कामों में सफलता चाहिए। एक चीज की भगवान् को आवश्यकता है और एक की मुझे। मैं भगवान् के गुण गा कर उन की आवश्यकता पूरी कर देता हूँ और बदले में भगवान् मेरे कष्टों को काट कर तथा मुझे मेरे कामों में सफलता दे कर मेरी आवश्यकता पूरी कर देते हैं। ऐसी सौदे और व्यापार की बस्तु हम ने भगवान् की भक्ति को बना रखा है।

भगवान् अपनी प्रशंसा के भूखे नहीं

भगवान् इस प्रकार के अपनी प्रशंसा और खुशामद को पसन्द करने वाले नहीं हैं और भक्ति इस प्रकार की सौदे और व्यापार की वस्तु नहीं है।

वैदिक-धर्म में परमात्मा को आप्त-काम और पूर्ण-काम माना जाता है। परमात्मा में कोई ऐसी कामना नहीं है जो पूर्ण नहीं हुई है, और जिसे उन्होंने पूरा करना है। उन की सब कामनाएँ सदा से स्वभाव से ही पूर्ण हैं। उन्हें कुछ भी नहीं चाहिए। उन्हें कोई कमी अनुभव नहीं होती। इस लिए उन में कोई भी कामना नहीं है। इसी लिए वैदिक-धर्म में परमात्मा को अकाम भी कहा जाता है। परमात्मा के ये आप्त-काम, पूर्णकाम और अकाम नाम एक ही बात को कहते हैं। क्योंकि परमात्मा की सभी कामनाएं सदा से स्वभाव से ही पूर्ण हैं इसी लिए तो वे अकाम हैं—कामनाओं से रहित हैं। और क्योंकि वे अकाम हैं, कामनाओं से रहित हैं, इसी किए तो वे आप्त-काम और पूर्ण-काम हैं। उन की सब कामनाएं पूर्ण हैं, उन्हें कुछ भी नहीं चाहिए। अथर्ववेद में भगवान् के सम्बन्ध में कहा है— 'वे प्रभु अकाम हैं—सारी कामनाओं से रहित हैं, उन्हें अपने लिए किसी भी वस्तु को प्राप्त नहीं करना है; वे धीर हैं—संसार के किसी भी परिवर्तन से उन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता, सदा एक-रस रहते हैं, अपनी समावस्था को नहीं खोते; वे अमृत हैं—मृत्यु से रहित हैं; वे स्वयंभू हैं—अपनी सत्ता का हेतु स्वयं ही हैं, उन की सत्ता में और कोई कारण नहीं, उन्हें किसी ने नहीं बनाया है, वे सदा से स्वयं ही चले आ रहे हैं; वे रस से अर्थात् आनन्द से तृप्त हैं, परिपूर्ण हैं, वे कहीं से भी किसी प्रकार की कमी वाले नहीं हैं।' इस प्रकार के आनन्द से तृप्त और परिपूर्ण, सब प्रकार की कमियों से रहित अकाम परमात्मा परमात्मा को अपने लिए किसी भी वस्तु की इच्छा और आवश्यकता है। उन्हें अपनी प्रशंसा और खुशामद सुनने की भी इच्छा नहीं है। उन्हें कुछ भी नहीं चाहिए। अपनी प्रशंसा और गुणावली का गान भी नहीं चाहिए।

हमें अपने किए का फल अवश्य भोगना पड़ता है

इस लिए हमारे मुख से अपनी प्रशंसा सुन कर भगवान् के प्रसन्न होने और प्रसन्न हो कर हमारे दुःखों को काट देने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। वैदिक-धर्म के अनुसार मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। हमारे शुभ-कर्मों का फल सुख होता है और अशुभ कर्मों का फल दुःख होता है। हम जैसा करेंगे वैसा भरेंगे। हमारे ऋषियों ने कहा है—'हमें अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल सुख और दुःख भोगना ही पड़ता है।' 'कर्म का फल जब तक भोग न लिया जाए तब तक वह सौ करोड़

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कल्पों में भी क्षीण नहीं होता है ।' स्वयं वेद भगवान् में कहा गया है—'मनुष्य जैसा पकाता है, जैसा करता है, वह पकाने वाले को, करने वाले को वैसा ही प्राप्त होता है ।' भाव यह है कि हम जैसा करते हैं वैसा भरते हैं । वेद में अन्यत्र कहा है—'हे वरणीय प्रभो ! (वरुण) असत्यवादी को तुम्हारे पाश बांध लेवें और सत्यवादी को छोड़ देवें ।' और कहा है—मनुष्यों को पहिचानने वाले हे वरणीय प्रभो ! अनृत वाणी वाला झूठा व्यक्ति तुम्हारे पाशों से छूट नहीं पाता है ।' अन्यत्र कहा है—'राजा वरुण सब लोगों के सत्य और झूठ को भली-भांति देखते हुए सब के बीच में चल रहे हैं ।' राजा वरुण सब के बीच में हैं, सब के हृदयों में हैं, और सब के झूठ और सच को भलीभांति देख रहे हैं, असत्यवादी को उन के पाश बांध लेते हैं और सत्यवादी को छोड़ देते हैं । वेद के इन कथनों का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि हमें हमारे पुण्य और पाप-कर्मों का फल सुख और दुःख मिल कर ही रहता है । उस से छुटकारा नहीं है । इस प्रकार वैदिक-धर्म के अनुसार मनुष्य को अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । परमात्मा हमारे मुख से अपनी प्रशंसा के गीत सुन कर हमारे पक्ष में नहीं हो जाते और हम पर कृपा कर के हमारे दुःखों को नहीं काटते । वे तो हमारे द्वारा की गई अपनी प्रशंसा की ओर ध्यान न दे कर हमारे आचरणों को देखते हैं और हमारे शुभा-शुभ आचरणों के अनुसार ही हमें सुख या दुःख देते हैं। सौदे और व्यापार की मनोवृत्ति से की गई हमारी भक्ति से वे कभी प्रभावित नहीं होते ।

मनुष्य जाति के इतिहास की साक्षी

वैदिक-धर्म के इस मन्तव्य की पुष्टि मनुष्य जाति के आज तक के इतिहास से भी होती है । मनुष्य के वैयक्तिक और जातीय जीवन के इतिहास पर दृष्टि डालने से हमें पता लगता है कि भगवान् इस प्रकार हमारे मुख से अपनी स्तुति सुन कर खुशामद-पसन्द मनुष्य की भांति खुश हो कर हमारे दुःखों को कभी नहीं काटते । वर्तमान और पुराने इतिहास में हम देखते हैं कि भक्ति करने वाले पुरुषों के जीवन में उसी प्रकार भांति-भांति के कष्ट और क्लेश आते रहते हैं जिस प्रकार भक्ति न करने वाले नास्तिक लोगों के जीवन में आते रहते हैं। उन्हें भी बीमारी, मृत्यु, काम-काज में घाटा, लड़ाई-झगड़े, प्रिय परिजनों का वियोग, आग, अति-वृष्टि और अनावृष्टि, अकाल, मानापमान, मुकदमेबाजी आदि से मिलने वाले कष्ट और क्लेश उसी प्रकार प्राप्त होते रहते हैं जिस प्रकार भक्ति न करने वाले लोगों को प्राप्त होते रहते हैं । महाराज हरिश्चन्द्र और महाराज रामचन्द्र जी जैसे आस्तिक-शिरोमणि लोगों के जीवन में भी भांति-भांति के कष्ट आते रहे हैं । बड़े-बड़े धर्म-प्रचारक गुरुओं और महात्माओं के जीवन में भी तरह-तरह के दुःख आते रहे हैं ।

इस प्रकार की भक्ति करने वाली, धार्मिक कही जाने वाली जातियों के जीवन में भी हम देखते हैं कि उन्हें उसी प्रकार भांति-भांति के कष्ट-क्लेश होते रहते हैं जिस प्रकार दूसरी जातियों को होते रहते हैं । भारतवर्ष की हिन्दू-जाति बड़ी धर्मप्राण जाति समझी जाती है । हिन्दू लोग बड़े भक्तिशील हैं । नगरों की गली-गली में हिन्दुओं के मन्दिर हैं और नगर-नगर में उन के तीर्थ-स्थान हैं । मन्दिरों के निर्माण और मन्दिरों में प्रतिष्ठापित देवताओं की मूर्तियों की सजावट पर हिन्दू लोग लाखों और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करोड़ों रुपये खर्च कर देते हैं। हिन्दुओं के सोमनाथ के मन्दिर की वैभव, सम्पत्ति और सजावट की कहानी तो इतिहास-प्रसिद्ध है। उस मन्दिर के घण्टे दो सौ-दो सौ मन की सोने की जंजीरों पर लटका करते थे और उस की मूर्ति पर करोड़ों रुपये की कीमत के मणि-माणिक्य जड़े हुए थे। आज भी हिन्दू लोग अपने मन्दिरों और उन में से देवताओं की मूर्तियों की सजावट पर बहुत भारी खर्च करते हैं। और इन मंदिरों में जा कर बड़ी श्रद्धा से अपने देवताओं के आगे नत-मस्तक हो कर उन की भक्ति और उपासना करते हैं। पर यह सब कर के भी क्या हिन्दू-जाति जीवन में आने वाले भांति भांति के कष्ट-क्लेशों से बची रह सकी ? और कष्टों की बात तो जाने दीजिए, पिछले लगभग हजार वर्ष हिन्दू-जाति पराधीन रही है। पहले मुसलमानों के और फिर अंग्रेजों के। इस पराधीनता की अवस्था में हिन्दू-जाति को जो कष्ट भोगने पड़े हैं उन्हें इतिहास पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है। उन्हें यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार मुसलमानों को लीजिए। मुसलमानों की धर्म की कट्टरता तो हिन्दुओं से भी कहीं बढ़ी-चढ़ी है। प्रत्येक मुसलमान बड़ी श्रद्धा और आस्था के साथ दिन में पाँच वार नमाज़ पढ़ता है पर क्या प्रतिदिन श्रद्धा-पूर्वक पढ़ी गई पांच वार की नमाज ने उन की रक्षा कर ली ? भारतवर्ष के मुसलमान लगभग दो सौ साल तक हिन्दुओं की भांति ही अंग्रेजों के गुलाम रहे हैं। इस गुलामी के कारण मुसलमानों को भी हिन्दुओं की तरह ही तरह-तरह के कष्ट भोगने पड़े हैं। इतिहास में एक समय ऐसा रहा है जब कि धरती के प्रत्येक मुसलमानी देश पर योरोप के किसी-न-किसी राष्ट्र का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभुत्व रहा है। संसार भर के मुसलमानों की इस गुलामी और उस से मिलने वाले कष्टों से उन की पांच वार की नमाज़ रक्षा नहीं कर सकी।

यदि यह बात सत्य होती कि दुःख घटाने की नीयत से की हुई भगवान् की स्तुति से प्रसन्न हो कर भगवान् भक्तों के दुःख काट दिया करते हैं तो इतिहास में हमें ऐसी भक्ति करने वाले व्यक्तियों और जातियों के जीवन में कभी दुःख नहीं दीखना चाहिए था।

परमात्मा की उलझन

यहां एक बात और देखने की है। यदि परमात्मा हमारी स्तुति से प्रसन्न हो कर हमारे पक्ष में हो जाया करें और हमारे पक्ष की बातें करने लगें तो परमात्मा के लिए ऐसी उलझन पैदा हो जाए कि उस में से निकलने का उपाय स्वयं परमात्मा को भी न सूझे। न्यायालय में दो व्यक्तियों का अभियोग चल रहा है। दोनों ईश्वर-भक्त हैं। दोनों ईश्वर से अपने-अपने जीतने की प्रार्थना करते हैं। अब परमात्मा दोनों में से किस को विजय दिलाए ? अंग्रेजों और जर्मनों के पिछले दोनों महायुद्धों में इन दोनों देशों और उन के साथी देशों की सरकारों ने अपनी प्रजाओं को हिदायत दी थी कि वे अपने पक्ष की विजय के लिए अपने मन्दिरों में परमात्मा से प्रार्थना करें। दोनों पक्षों के देशों के मन्दिरों में ऐसी प्रार्थनाएं की गई थीं। अब परमात्मा क्या करता ? वह अंग्रेजों के पक्ष को विजय दिलाता या जर्मनों के पक्ष को ? स्पष्ट है कि परमात्मा हमारी इस प्रकार प्रार्थनाओं से हमारे पक्ष में नहीं हो सकते। वे तो हमारे चरित्र व कर्म देखते हैं और उन के अनुसार ही हमें फल देते हैं।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दीक्षा-रात्रि

श्री रत्नाकर शास्त्री, साहित्यरत्न

दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है।

१

नसे निराशा-निशा धरा से, आशा की हो उजियाली,
प्राची के पावन-प्राङ्गण में, पुलक-पुलक प्रकटे लाली,
वन-उपवन नव-जोवन पायें, छाये दिशि-दिशि हरियाली,
कूजे खगकुल, कूके कोकिल, झूम उठे डाली-डाली,

ज्ञान-रश्मि पे प्रकृति-नटी की, त्विषा बढ़ाने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

२

द्वेष-दम्भ छल-छिद्र रहित हों, भूतल में सारे प्राणी,
आत्म-प्रशंसा पर-निन्दा से, कलुषित करे न कोई वाणी,
वसुधा कुटुम्ब सम बन जाये, जागे मानवता कल्याणी,
एक राह हो एक चाह हो, सात्विक शास्त्र प्रमाणी,

मोह-तमो से व्याप्त हृदय की, निशा मिटाने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

३

मन, वचन, कर्म से करे न कोई, कभी किसी का भी अपकार,
अपनी मेरी स्वार्थ-भावना, जल कर होय मही पर क्षार,
कर्म-मार्ग पर बढ़ें निरन्तर, कथनी-करनी हो साकार,
श्रद्धा, भक्ति, तर्क, युक्ति से, मुक्ति-मार्ग का समझें सार,

बोध-शोध से तप्त-चित्त की, तृषा बुझाने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४

मनुज राग की आग त्याग कर, करें ज्ञान-गङ्गा अव-गाहन,
सुरा-सुन्दरी-स्वर्ण-विरत हों, सत्य-सलिल से हो मन पावन,
दया, अहिंसा के भावों का, भू से नभ तक हो अव-छादन,
क्रोध, लोभ, मद, मोह, घृणा का, दूर रहे मन से शासन,

वैदिक-रवि की ज्ञान-किरण ले, उषा जगाने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

५

छुआ-छूत का भूत-भस्म हो, जातिवाद का हो अवसान,
अबला, अनाथ, अतृप्त, अकिंचन, प्राप्त करें पुनि प्रिय संस्थान,
ईति, कुरीति, अनीति मिटें सब, 'पंचशील' का हो कलगान,
विश्व-एकता के सूत्रों पर, रहे विश्व-शासन का ध्यान,

जन-शोषण के सब वादों को, मृषा बताने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

६

अज्ञान-निशा से ज्ञान-उषा तक, घर-घर में हो शिव-पूजन,
करें आत्म-चिन्तन सारे हो जन, ताप-त्रयी का हो उन्मूलन,
शुभ अनन्त की चतुर्दशी यह, दिशा दिखाये अक्षय नूतन,
पर-हित जीने मरने का ध्रुव, मन में हो मृदु-मंजुल-कूजन,

ज्ञान-यज्ञ के हृदय-कुण्ड में, हविषा देने आई है।
दयानन्द की दीक्षा-दात्री, दिशा दिखाने आई है॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिशाओं के चार पुरुष

श्री मनोहर विद्यालङ्कार

य: सभेयो विदथ्य: सुत्वा यज्वा च पूरुष: । सूर्यं चामू रिशादसं तद्देवा: प्रागकल्पयन् ॥
यो जाम्या: प्रत्यमदद्य: सखायं निनित्सति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्सदाहु: अधरागिति ॥
यद्भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषि: । तद्विप्रो अब्रवीद् उदग्गन्धर्व: काम्यं वच: ॥
यश्च पणिरभुजिष्यो यश्च रेवाँ अदाशुरि: । धीराणां शश्वतामहं तद् अपागिति शुश्रुव ॥
ये च देवा अयजन्ताथो ये च परा ददु: । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवानो विराशते ॥

अथर्ववेद २०. १२८. १ से ५।

दिशा शब्द प्रवृत्ति को भी प्रकट करता है। जिस मनुष्य की जैसी प्रवृत्ति होती है, वह उसी दिशा में प्रवृत्त होता है। तथा उसी दिशा के नाम से व्यवहृत होता है।

वेद में दिग्वाची शब्दों के साथ उनके अधिपति आदि का व्यवहार बहुत स्थानों पर हुआ है। इसलिए यदि कहीं पर किसी दिशा का उल्लेख हो तो उस दिशा के अधिपति, रक्षिता इषु आदि का अध्याहार किया हुआ समझना चाहिये।

अब यदि किसी को प्राक् (प्राची दिशा) का मनुष्य कहा जाय तो उससे स्पष्ट ही यह समझना चाहिये कि उस में प्राची दिशा के अधिपति जैसी प्रवृत्तियां होंगी और वह मनुष्य कुछ कुछ उन जैसा होगा या उन जैसा बनने का प्रयत्न कर रहा होगा।

प्राक् - जो पुरुष सभा में बैठने की योग्यता रखता है, सभा के नियमों तथा परम्पराओं से परिचित है। सुगमता से बड़े से बड़े समारोह में उपस्थित हो कर अपने विचार प्रकट करने से नहीं हिचकता। अतएव जनसाधारण उसे अपने देश के बड़े से बड़े संगठन में प्रतिनिधि बना कर भेजने को उद्यत रहते हैं।

जो केवल उत्तम वक्ता ही नहीं है, अपितु सदा उत्पादन कार्य में लगा रहता है, अनघड़ वस्तुओं को सुघड़ तथा अपरिष्कृत मनुष्यों को परिष्कृत करता रहता है।

सदा अपने से बड़े व श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में रहता है। बुरों और अयोग्य व्यक्तियों का संग नहीं करता। बड़ों का आदर करता है, अभावग्रस्त पुरुषों की आवश्यकताओं को पूरा करता है, और इसके लिये स्वयं दान देता और दूसरों को प्रेरित करता है।

जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को नष्ट करता है, वैसे ही जो अपने ज्ञान से शत्रुओं के अज्ञान को नष्ट करता है, तथा प्रेम से द्वेष को नष्ट करके शत्रुता को ही समाप्त कर देता है।

उस गुणी पुरुष को विद्वान्—ज्ञानी—निर्णायक— राजपुरुष, आगे बढ़ने वाला अग्नि या प्राक् कहते हैं, और उसे दूसरों को उन्नत करने में समर्थ समझते हैं।

अधराक्— इसके विपरीत जिस मनुष्य में अपनी बहिन के प्रति कामवासना उत्पन्न हो जाती है, अथवा जो पवित्र स्त्रियों को बुरी निगाह से देखता है। अपने सहायक व मित्र की निन्दा करता है मज़ाक उड़ाता है। और इस प्रकार वयोवृद्ध होते हुए भी नासमझ का सा व्यवहार करता है। अदूरदर्शी बनता है. उसे लोग नीचे जाने वाला- गिरनेवाला- नीच-अधराक् कहते हैं।

अधराक् दक्षिण दिशा को कहते हैं। दक्षिण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिशा का अधिपति इन्द्र है। इन्द्र ऐश्वर्य का प्रतीक है। ऐश्वर्य यदि पथ-भ्रष्ट हो जाए तो उसके उपरोक्त परिणाम होते हैं। दक्षिण दिशा का सम्बन्ध पशुओं से समझा जाता है। इस लिये इस दिशा के अधिपति को पशु-पक्षियों से रक्षा करने वाला कहा जाता है। पशु काम क्रोधादि छः शत्रुओं के प्रतीक होते हैं। इसलिये यहां यह भी संकेत है कि दक्षिण दिशा के यात्री को विशेष रूप से काम क्रोधादि से बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

उदक्— स्वभावतः सम्पन्न पुरुष की सन्तान आलसी व निकम्मी होती है। किंतु इसके विपरीत जो स्वस्थ, सुखी, सुन्दर एवं सम्पन्न पुरुष का पुत्र होते हुए भी साहसी और परिश्रमी होता है। और इसके साथ ज्ञानी तथा कर्मठ होते हुए भी प्रिय एवं हितकर वचन बोलता है। अपने ज्ञान या कर्मण्यता के अभिमान में किसी से घृणा नहीं करता, किसी की उपेक्षा नहीं करता, किसी को कटुवचन नहीं कहता— उसे विद्वान लोग ऊपर जाने वाला— उन्नति करने वाला उदक्— कहते हैं।

उदक् या उत्तर दिशा का अधिपति सोम है। सोम का मुख्य कार्य शान्ति और सभ्यता का प्रसार है। साथ ही यह अभिमान से रक्षा करने वाला है। इसलिये उदक् बनने वाले के लिये सौम्यता का ग्रहण और अभिमान का त्याग ही परमावश्यक वस्तुएं हैं।

अपाक्— जो मनुष्य सच्चे अर्थों में पणि-व्यवहारी— व्यवसायी व्यापारी है और इस प्रकार खूब धन कमाता है, अत्यन्त प्रसिद्ध धनियों में जिसकी गणना है। लेकिन इस कमाए हुए धन का न तो स्वयं उपभोग करता है, और न उत्तम कर्मों के लिये पात्र व्यक्तियों या संगठनों को दान देता है। ऐसा व्यक्ति कभी भी धन के सुखों से परिचित नहीं हो सकेगा। खूब परिश्रम करने पर भी कभी उसका फल नहीं पाएगा। ऐसा व्यक्ति धीरज धरने वाले और जल्दी ही खुशामद से न उफनने वालों में तो अवश्य याद किया जाएगा किन्तु धीर लोग उसे पीछे चलने वाला उलटी दिशा में चलने वाला— अपाक्— ही कहेंगे।

अपाक् या पश्चिम दिशा (प्रतीची) का अधिपति वरुण है। वरुण का मुख्य कार्य संयम तथा ऋत— और अनृत अथवा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में भेद करना है। उसे संयमी और विवेकी होना चाहिये। वरुण पृदाकू से रक्षा करने वाला है, पृदाकू के अर्थ सांप तथा व्याघ्र हैं। जो मनुष्य सांप की तरह से धन पर बैठा रहता है, उसका उपयोग नहीं करता, उससे समाज की रक्षा होनी ही चाहिये।

इसके विपरीत जो लोग बड़े-बड़े व्यक्तियों के आतिथ्य में, उत्पादक संगठनों में बड़े-बड़े उद्योगों में धन का विनियोग करते हैं, और परोपकार के कार्यों के लिये, अभावग्रस्त व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये दान देते हैं, वे सदा धन से फूलते फलते रहते हैं। जैसे सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ कर सब को खूब प्रकाश देते हुए भी स्वयं प्रकाश से पूर्ण रहता है। उसी प्रकार दानी लोग खूब दान करने के बाद भी धन से पूर्ण रहते हुए फलते फूलते रहते हैं। यही बात "पूर्णमादाय पूर्णमेवाव-शिष्यते" में कही गई है।

शब्दार्थ— (यः पूरुषः) जो पुरुष (सभेयो विदथ्यः) सभा संगठनों के योग्य है (सुत्वा यज्वा च) और उत्पादक तथा यज्ञशील है (सूर्य च रिशादसं) सूर्य के समान अज्ञान व द्वेष को नष्ट करने वाले (तद्) उस मनुष्य की (देवः) देवों ने (प्राक्) प्राची पुरुष के रूप में (अक-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ल्पयन्) कल्पना की ।

(यः) जो व्यक्ति (जाम्याः प्रति अमदत्) अपनी बहिन या पवित्र स्त्रियों को देख कर मत्त हो जाता है (यः सखायं निनित्सति) जो अपने सखा की निन्दा करता है (ज्येष्ठो यद् अप्रचेताः) और जो बड़ा होते हुए भी नासमझ रहता है (तद्) उसे (अधराक्)दक्षिण दिशा का पथिक (अहुः) कहते हैं।

(यद्) जो (भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रः) सम्पन्न-पुरुष का पुत्र हो कर (दाधृषिः) साहसी तथा परिश्रमी (भवति) होता है। और (विप्रः गन्धर्वः) कर्मठ तथा ज्ञानी होते हुए भी (काम्यं वचः अब्रवीद्) प्रिय तथा हितकरवचन बोलता है (तद्) उसे (विप्रः गन्धर्वः) कर्मठ तथा ज्ञानी ने (उदक्) ऊपर उठने वाली प्रवृत्तियों वाला उत्तर दिशा के अधिपति तुल्य (अब्रवीत्) कहते हैं।

(यश्च पणिः) जो बड़ा व्यवसायी और (रेवान्) धनवान् होते हुए भी (अभुजिष्यः) न भुङ्क्ते=भोग न करने वाला तथा (अदाशुरिः) यो न ददाति=दान न देने वाला है, (तद्) उस व्यक्ति की (शश्वतां धीराणाम्) बहुत धीरों की गोष्ठी के समय (अपाग् इति) पिछड़ा हुआ—पश्चिम दिगनुगामी आदि शब्दों के द्वारा चर्चा होती हुई सुनी है

(ये च देवाः) जो देव लोग (अयजन्त) यश में लगे रहते हैं तथा (परादुदुः) परोपकारार्थ दान करते हैं (मघवानः) वे समृद्ध भाग्यशाली लोग (सूर्यो दिवमिव) आकाश में सूर्य के समान (विरप्शते) दान करने के बाद भी पूर्ण रहते हैं।

पुरुष	दिशा	अधिपति
प्राक्=	प्राची	अग्निः= आगे बढ़ने वाला
अधराक्=	दक्षिणा	इन्द्रः= ऐश्वर्यशाली
अपाक्=	प्रतीची	वरुणः= नियामक
उदक्=	उदीची	सोमः= शान्ति

उनके कार्य=	रक्षा करना
असितो रक्षिता=	उच्छृङ्खलता से रक्षा करने वाला
तिरश्चिराजीरक्षिता=	पशुपक्षियों व काम;क्रोधादि से रक्षा करने वाला
पृदाकू रक्षिता=	सांप व बाघ से रक्षा करने वाला
स्वजो रक्षिता=	अभिमान से रक्षा करने वाला

इषु का अर्थ है प्रेरक अथवा मार्ग दर्शक। आदित्य, अन्न पितर अशनि अपने २ अधिपति के गुण और कार्य को अपनाने में प्रेरक तथा मार्ग दर्शक का काम करते हैं। इस प्रकरण में इषु नहीं आए हैं; इसलिये विस्तारभय से उनकी यहां व्याख्या नहीं की गई।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आधुनिक काल में संस्कृत-साहित्य का निर्माण

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

ईसाई मत पर रचनाएँ

भारतीय और युरोपीय विद्वानों द्वारा ईसाई मत पर अनेक पुस्तकें संस्कृत में भी लिखी गई हैं। १६ वीं शती के प्रारम्भ में बाइबल का संस्कृत अनुवाद भारतीय विद्वानों की सहायता से कैरी महाशय तथा अन्य मिशनरियों द्वारा किया गया था। उस शती के अन्त तक उस की कई आवृत्तियां हो चुकी थीं। रामायण और महाभारत की रचनाशैली पर ईसामसीह तथा अन्य ईसाई संत पुरुषों की जीवनियां स्वतन्त्र रूप से भी संस्कृत में लिखी गई हैं, जिन में सन् १८३१ में "ख्रिस्तसंगीता" श्री रामचन्द्र विद्याभूषण तथा अन्य पंडितों की सहायता से डब्ल्यू० एच० मिल ने तैयार की। सन् १८४० में "मत-परीक्षा", सन १८४८ में "श्री यीशूख्रिस्तमाहात्म्यम्" तथा सन् १८५० में "श्री पालचरितम्" प्रकट हुए। इन के निर्माण में जौन म्यूर का विशेष हिस्सा है। सन् १८५९ में प्रिन्सिपल बैलेन्टाईन ने ईसाई मत के स्पष्टीकरण के विषय में लिखी हुई अपनी ही पुस्तक का अनुवाद "धर्म-कौमुदी" नाम से प्रकाशित किया। भारतीय लेखकों ने भी इसी प्रकार की पुस्तकें बनाई। प्रसन्नकुमार विद्यारत्न ने सन् १८६३ में संस्कृत पद्य में सौलोमन के गीत लिखे। श्री ताराचरण चक्रवर्ती ने बाईबल के न्यूटेस्टामेण्ट (नया धर्मशास्त्र) के चार सन्तों के उपदेशों का वाल्मीकि रामायण की शैली में सुन्दर अनुवाद "ख्रीष्टोपनिषद्" नाम से किया है।

गद्य-साहित्य

इस युग में संस्कृत गद्य में अनेक उत्तम रचनाएं प्रकट हुईं। काशी के विश्रुत मनीषी पंडित अम्बिकादत्त व्यास का "शिवराजविजय" प्राचीन शैली के प्रौढ़ गद्य का श्रेष्ठ नमूना है। इस के सौष्ठव पर विद्वत्-समाज मुग्ध है। वर्षों से वह संस्कृत के छात्रों का पाठ्य-ग्रन्थ चलता आ रहा है। उस की वर्णन-चातुरी और शब्द-योजना अतिशय आकर्षक है। बंगला के विद्वानों ने बंकिम बाबू और शरद बाबू के कई उपन्यासों का अच्छा अनुवाद किया है। इन्दौर के श्रीपादशास्त्री हरसूकर ने सरल और प्रवाहपूर्ण गद्य में रामदास स्वामिचरितम्, शिवाजी चरितम्, प्रतापचरितम् पृथ्वीराज चरितम्, सिक्खगुरु चरितम् आदि कई पुस्तकों का प्रणयण किया है। अभिनव बाणभट्ट श्री कृष्णमाचार्य जी ने "रघुवंश-विमर्श" लिखा है। शिवराज विजय की शैली के अनुकरण में नासिक के श्री पंडित मेधाव्रत जी कविरत्न ने "कुमुदिनी चन्द्र" नामक उपन्यास लिखा है। पंजाब के श्री चारुदेवशास्त्री को "गांधीचरित्रम्" भी एक उपादेय रचना है। गुरुकुल काँगड़ी के श्री भवानी प्रसाद जी ने "चारुचरितावली" नाम से सात धर्मसंस्थापक महापुरुषों की जीवन-कथा लिखी है। बनारस के डाक्टर मंगलदेव जी शास्त्री ने "प्रबन्ध प्रकाश" में वैदिक विषयों पर अच्छे-अच्छे प्रबन्ध लिखे हैं। मद्रास के एक विद्वान् ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान पर संस्कृत में एक अच्छी पुस्तक बनाई है। प्रसिद्ध विद्वान् हृषिकेश शास्त्री की "प्रबन्ध-मंजरी" भी उपादेय है। श्री स्वामी भागवताचार्य जी ने "भारत परिजात", 'पारिजातोपहार" तथा "पारिजात सौरभ" नाम से तीन भागों में महात्मा गाँधी जी का जीवन-चरित्र लिखने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। गुरुकुल वृन्दावन के आचार्य विश्वेश्वर जी ने 'आचारशास्त्र" पर एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहास के ग्रन्थ

दिवंगत महामहोपाध्याय श्री रामावतार शर्मा ने "भारतानुवर्णनम्" नाम से भारत का एक संक्षिप्त इतिहास लिखा था। लुधियाना कालेज के प्रो० हंसराज अग्रवाल ने संस्कृत-साहित्य का इतिहास दो खण्डों में संस्कृत में लिखा है। इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर सिद्धान्त-शिरोमणि श्री द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री ने एक अतिसुन्दर पुस्तक लिखी है। श्री वीरेन्द्र अग्निहोत्री ने भारत का भूगोल संस्कृत में तैयार किया है

पत्र-पत्रिकाएँ

संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। बहुत-सी पत्रिकाएं तो अस्त हो चुकी हैं। कुछ अब भी निकल रही हैं। अधिकतर पत्र-पत्रिकाएं व्यक्तिगत उत्साह और साहस की ही परिणति रही हैं। कुछ पत्रिकाएं विभिन्न संस्थाओं की ओर से प्रकाशित की जाती रही हैं। कुछ पत्रिकाएं इस लिए निकाली गई थीं कि प्राचीन अप्रकाशित संस्कृत ग्रन्थ और टीकाएं आदि उन में क्रमशः प्रकाशित की जायें। 'विद्योदय" एक पुराना मासिक पत्र था। उसे सन् १८८१ में लाहौर से श्री पंडित हृषीकेश शास्त्री ने निकालना प्रारम्भ किया था। वह कोई पचास वर्ष तक शास्त्री जी तथा उन के सुपुत्र पंडित भवभूति विद्यारत्न तथा पं० भवविभूति विद्याभूषण द्वारा संपादित होता रहा। सन् १८९३ में नवाखाली से जयचन्द्र विद्याभूषण ने 'संस्कृत-चन्द्रिका" प्रकाशित की थी। संस्कृत में सब से पहली साप्ताहिक पत्रिका "मंजुभाषिणी" सन् १८९९ में दक्षिण भारत में कांची से निकली थी। वह कई वर्षों तक प्रकाशित होती रही। अभिनव बाणभट्ट श्री कृष्णमाचार्य जी की "सहृदया" मासिक पत्रिका अनेक वर्षों तक विद्वानों का चित्तप्रसादन करती रही। कोल्हापुर के पंडित अप्पाशास्त्री राशिवडेकर जी की "संस्कृत-चंद्रिका" भी अपने समय में बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। कलकत्ते से सन् १९२६ में "संस्कृत-पद्य-गोष्ठी" नामक समिति द्वारा एक त्रैमासिक पत्रिका केवल पद्य में ही प्रकाशित होती थी। उस में सूचनाएं, नियमावली आदि सब कुछ छन्दोबद्ध रूप में प्रकट होता था। काशी की "मित्रगोष्ठी" "सूर्योदय" और "सुप्रभातम्" भी अच्छी पत्रिकाएं थीं। ये अस्त हो चुकी हैं। प्रयाग से पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री "शारदा" पत्रिका निकाला करते थे। गुरुकुल काँगड़ी के महाविद्यालय विभाग के छात्र कई वर्षों तक "उषा" नामक पत्रिका निकालते रहे। महाराष्ट्र से एक "सुनृत-वादिनी" पत्रिका भी निकला करती थी। कलकत्ते की संस्कृत-साहित्य-परिषद् संस्था की पत्रिका पिछले कोई ३० वर्षों से सफलतापूर्वक निकल रही है। उस का ध्यान-मन्त्र है—"भारते भातु भारती"। इस पत्रिका में कई मौलिक ग्रन्थ प्रकट हो चुके हैं। कर्नाटक के गदग नामक नगर से 'मधुरवाणी" मासिक पत्रिका भी कई वर्षों से सफलतापूर्वक निकल रही है। "संस्कृत रत्नाकर" भी पुराना पत्र है; पहले यह जयपुर से निकला था। अब दिल्ली से प्रकाशित होता है और अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य सम्मेलन का मुख पत्र है। इन के सिवाय इस समय संस्कृत भाषा में निम्नलिखित सामयिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं।

१. संस्कृतम् (अयोध्या), २. संस्कृत साकेतः (अयोध्या), ३. मंजूषा (कलकत्ता), ४. भारती (जयपुर), ५. बालसंस्कृतम् (मुंबई), ६. भाषा (गुन्तूर)। संस्कृत भवितव्यम् (नागपुर)

भविष्य

ऊपर के विवरण से ज्ञात होता है कि १९वीं और २० वीं शती में संस्कृत भाषा में साहित्य-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रचना की धारा क्षीण रूप में भी प्रवहन-शील अवश्य रही है। देश के प्राचीन गौरव के प्रेमी विद्वानों के मन में संस्कृत के पुनरुद्धार की भावना भी जागरित है। मद्रास-सरकार ने अपने राज्य में राजकवि (संस्कृत-भाषा के) नियुक्त करने की प्राचीन प्रथा को प्रारम्भ कर के संस्कृत में साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन दिया है। कई स्थानों पर यह भी प्रयत्न किया गया है कि स्नातकोत्तर-कक्षाओं में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और साहित्य का इतिहास आदि विषय संस्कृत भाषा के माध्यम से पढ़ाये जायें। विश्वविद्यालयों में उच्चतम उपाधि के लिये अपना निबन्ध संस्कृत में लिखने वाले को विशेष मान्यता देने का विचार भी क्रियान्वित हो रहा है। देश के स्वाधीन हो जाने पर तो देश के मान्य नेता और शासक भी संस्कृत भाषा के गौरव और अध्ययन की चर्चाएँ बड़े उत्साह से कर रहे हैं। यह सब कुछ होते हुए भी मन में प्रश्न उठता है। कि क्या संस्कृत भाषा लोकप्रियता प्राप्त करने में सफल होगी? तथ्य तो यह बतलाते हैं कि हमारी उदयोन्मुख प्रजा, विशेषतः छात्र-समाज में संस्कृत का स्नेह कम होता जा रहा है। काशी की राजकीय संस्कृत-परीक्षाओं में पहले प्रति वर्ष बीस हजार के करीब छात्र सम्मिलित हुआ करते थे। वह संख्या अब करीब आधे पर आ गई है। पंजाब की संस्कृत-परीक्षाओं की भी यही दशा है। यह देख कर राष्ट्र के विवेकशील विद्वान् इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि पुराने दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है तथा संस्कृत-शिक्षा के लिए नवीन शैली को शीघ्र ही अपनाना चाहिए, जिस से छात्र-जन उस की ओर आकृष्ट हों।

प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाओं की मातामही संस्कृत है। अतः उनके भाषागत विकास और साहित्य-प्रकर्ष के लिए संस्कृत-भाषा का ज्ञान आवश्यक है। अतः हाईस्कूल तक की कक्षाओं में संस्कृत-भाषा का अध्ययन आवश्यक हो जाना चाहिए। संस्कृत-विज्ञों का यह भी कर्तव्य है कि वे देश की शिक्षित जनता को संस्कृत-साहित्य के समृद्ध रत्न-भण्डार से परिचित करें। जनता संस्कृत-साहित्य के उत्कृष्ट और विशाल ज्ञान-भण्डार से लाभ उठाना चाहती है। परन्तु वह हमारी सारी साहित्यसंपदा पांडित्य-प्रदर्शनात्मक भाषागत दुरूहता से बुरी तरह आवृत है। रामायण, महाभारत, चाणक्यनीति और मनुस्मृति की भाषा को सामान्य संस्कृत भाषा जानने वाला व्यक्ति भी आनन्द से समझ लेता है। अभिप्राय यह है कि संस्कृत-शिक्षा को नवीन पद्धति से शीघ्र से शीघ्र सुबोध और सर्वगम्य बनाना चाहिए। भारते भातु भारती! इति शम्!!

—

चावलों की भूसी से तेल एवं मोम

अमेरिका में चावलों की भूसी से तेल निकालने वाले लोगों ने भूसी से तेल निकालने के साथ-साथ मोम निकालने की एक नयी प्रक्रिया की खोज की है। इस खोज के फलस्वरूप उन्हें आमदनी का एक नया साधन सुलभ हो जायगा।

अमेरिकी कृषि-विभाग की न्यू ओर्लियन्स (लुइजियाना) स्थित 'सदर्न यूटिलाइजेशन रिसर्च ब्रान्च' द्वारा यह नई विधि मालूम की गई है। आशा है कि कुछ ही वर्षों में यह विधि सारे संसार में प्रयोग में लाई जाने लगेगी।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुद्राओं की दशमलव प्रणाली

डॉ. राज. के. निगम

नयी मुद्राओं का चलन आगामी पहली अप्रैल से प्रारम्भ होगा। सचमुच ही यह एक बहुत महत्वपूर्ण और व्यापक परिवर्तन है, जो अपने देश में मुद्राओं के इतिहास में सन् १८४५ के बाद जब रुपये का प्रमाणीकरण हुआ था, होने जा रहा है। अतः इस परिवतन से हमें पूर्णतया परिचित होना नितान्त आवश्यक है।

दशमलव प्रणाली एक प्रकार से अपनी भारतीय मस्तिष्क ही की उपज है, जिसे अपने यहां के एक गणितज्ञ ने लगभग दो हजार वर्ष पूर्व 'शून्य' की खोज कर के निकाला था। अमेरिका और योरप के देशों ने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया और आधुनिक युग में इस प्रणाली के प्रवर्तक कहलाये। आज हम दशमलव प्रणाली को अपना कर संसार के अग्रगामी देशों की समानता करने के साथ एक विस्तृत क्षेत्र में भारतीय परम्परा का पुनः श्री गणेश भी करेंगें।

आज संसार के १४० देशों में से १०५ ने अपनी मुद्राओं को इस प्रणाली पर निर्धारित कर रखा है। इन देशों में भारत के पड़ौसी देश

नये दशमिक सिक्के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
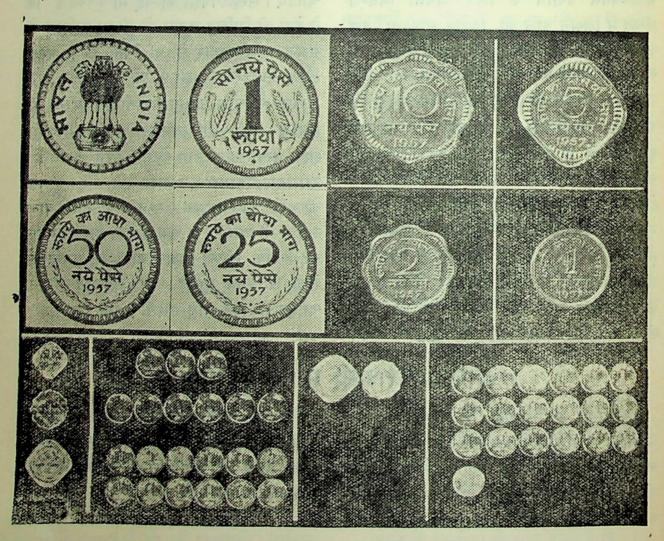
इन्डोनेशिया, लंका आदि भी शामिल हैं। हां, जब कि अमेरिका, फ्रांस रूस, चीन, आदि बड़े देशों ने दशमलव प्रणाली अपनी रखी है ब्रिटेन ने अवश्य ही इस प्रणाली को अभी तक नहीं अपनाया ह।

दशमलव पद्धति चलान का विचार

अपने देश में मुद्राओं की दशमलव प्रणाली लाने का प्रश्न काफा पुराना है। प्रथम वार सन् १८६७ में, उस वक्त की भारत सरकार एक बड़ी जांच के बाद इस नतीजे पर पहुंचा था कि सिद्धान्ततया दशमलव प्रणाली अच्छी पद्धति थी और उसे अमल में लाना उचित था। इस सम्बन्ध में १८७१ में एक विधेयक भी पास हुआ, पर वह लागू नहीं किया जा सका। इसके बाद समय समय पर मुद्राओं और भार-माप को दशमिक प्रणाली पर लाने का प्रश्न कई गैर-सरकारी संस्थाओं ने, जैसे "इंण्डियन साइंस कांग्रेस" ने उठाया। सन् १९४६ में इस संम्बध में केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल पेश हुआ, पर वह पास न हो सका। तत्पश्चात् गत वर्षों में कई एक रिपोर्ट भी लिखी गयी थीं, जिन पर राष्ट्रीय योजना आयोग ने गौर करके सिफ़ारिश की कि दशमलव और मैट्रिक प्रणाली को जल्द प्रचलित करने की कोशिश की जाए। इसी के आधार पर भारत सरकार ने सन् १९५५ और ५६ में विधेयक बनाये और पहली अप्रैल सन् १९५७ से सिक्कों को दशमलव प्रणाली और पहली अप्रैल सन् १९५८ से मार-माप को मैट्रिक पद्धति पर लाने का निश्चय किया है। यही नहीं, और क्षेत्रों में भी दाशमिक प्रणाली का इस्तेमाल होगा।

नयी मुद्राएं

नये सिक्कों के बारे में बहुत कुछ या सभी बातें सन १९५५ के भारतीय मुद्रा संशोधन विधेयक और मुद्रा संम्बधी ११ मई सन १९५६ के आज्ञा-पत्र में हैं। इनमें बताया जा चुका है कि नई मुद्रा की सबसे छोटी इकाई का नाम नया पैसा होगा। और सौ नये पैसों का एक रुपया होगा। आजकल ६४ पैसों या १९२ पाइयों का एक रुपया होता है। इस प्रकार रूपये और पैसों के बीच सीधा सा अनुपात स्थापित होने जा रहा है। एक पैसे के सिक्के के अलावा २,५, १०, २५ और ५० नये पैसों के सिक्के भी टकसाल से जारी होगें। नया पैसा तांबा-जस्त मिश्रित धातु का गोल आकार का होगा। २. ५ और १० नये पैसे की नयी मुद्रा सफेद कुप्रो-निकल धातु की होगी। ५ नये पैसे की मुद्रा चौकोर होगी, वर्तमान दुअन्नी से कुछ छोटी। इसी प्रकार दो पैसे सिक्के की शक्ल कुछ-कुछ वर्तमान इकन्नी और १० नये पैसों के सिक्कों की शक्ल कुछ-कुछ निकल की चवन्नी से मिलती जुलती होंगी। २५ और ५० नये पैसे की मुद्राएं तथा नया रुपया जो फिलहाल नहीं ढाले जायंगे. शुद्ध निकल के होंगे और इन तीनों सिक्कों का आकार गोल होगा। नई मुद्राओं की एक ओर सरकारी सील के साथ देवनागरी में भारत तथा अंग्रेजी में "इण्डिया" अंकित होगा। सिक्कों के पृष्ठ पर सौ नयेपैसे रूपये का आधा भाग, रूपये का चौथा भाग, रुपये का दसवां भाग आदि देवनगरी में लिखा होगा चूंकि शुरू में १, २, ५ और १० नये पैसों की मांग अधिक होगी इसलिए सरकार ने टक्साल से इन्हीं सिक्कों की ज्यादा से ज्यादा संख्या में निकालने का निश्चय किया है। फिलहाल चवन्नी या अठन्नियां, जो पूरी पूरी २५ और ५० नये पैसों के बराबर होंगी, काम देंगी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नयी मुद्रा के चलन से लाभ

आजकल रुपये, आने, पाई का चलन है। इसके अन्तर्गत हिसाब-किताब काफी जटिल सा है। एक बहुत ही साधारण उदाहरण ले लीजिये। यदि एक गज कपड़े का दाम १ रु० ८ आने है, तो ४ गज ८ गिरह के क्या दाम होंगे। इस सवाल में पहले १ रु० आठ आने को ४ से गुणा करेंगे और फिर १ रु० ८ आ० का आधा भाग लेकर दोनों संख्याओं को जोड़ कर ६ रु० १२ आ० की रकम को निकालेगें। अब इसी प्रश्न को दशमलव प्रणाली में देखिये १ रु० ८ आने को १५० नये पैसे मानकर और ४ गज ८ गिरह को ४. ५० मीटर मान कर सीधे तौर पर गुणा करके ६७५ नये पैसे की संख्या मिल जाती है, और इसे दशमलव बिन्दु लगा कर ६. ७५ रूपये लिख सकते हैं। देखिये जब कि ६७५ नये पैसों को दशमलव प्रणाली में सीधे तौर पर हम ६.७५ रुपये लिख सकते हैं, वर्तमान प्रणाली में रुपया, आने और पाई बना कर लिखना होगा। अब जाहिर है कि नयी प्रणाली को अपनाने से हिसाब-किताब में काफी समय बच सकेगा। इससे अन्तर्राष्ट्रिय व्यापार में हिसाब सम्बन्धी बाधा भी दूर हो जायगी। हिसाब-किताब के लिये बनाई गयी मशीनें, जो कि दशमलव प्रद्धति पर आधारित हैं, उनको भी इस प्रयोग में ला सकेंगे।

नये सिक्के भुनाने का प्रबन्ध

पहली अप्रैल से खजानों, रिजर्वबैंक, स्टेट बैंक के कार्यालयों में पुराने सिक्कों के बदले में नये सिक्के मिलने का उचित प्रबन्ध कर दिया गया है। दक्षिण में हैदराबाद स्टेट और मैसूर बैंक भी नये सिक्के देंगे। हमें याद रखना चाहिए कि वर्तमान अठन्नी और चवन्नी के ५० और २५ नये पैसे बनेंगे, दुअन्नी के १२ नये पैसे और इकन्नी ६ नये पैसे। वर्तमान एक पैसे व अधन्ने के बदले में दो नये पैसे और ३ नये पैसे होंगे। शुरू में छोटी संस्थाओं की मुद्रा के हिसाब-किताब में, जिनमें पाइयां शामिल हैं, एक पार्टी को आंशिक हानी हो सकती है। पर यह नहीं के बराबर होगी और ज्यों ज्यों ज्यादा नये सिक्के चलन में आ जायेंगे और पुरानों की वापसी होती जायगी, यह नफा-नुकसान मिट जायगा।

पहली अप्रैल से सरकारी हिसाब-किताब भी दशमलव प्रणाली में होने लगेगा। सरकारी खाते में सभी सिक्कों में धन जमा किया जा सकेगा, लेकिन वहां से भुगतान नये सिक्कों में ही करने का प्रयास किया जायगा। जबकि सरकारी हिसाब-किताब नयी प्रणाली में होने जा रहा है, कितना अच्छा होगा कि हम भी अपने घर के व्यापार और लेन-देन के हिसाब को नयी प्रणाली में लिखना शुरू कर दें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वनवास और वनस्पति

कविराज श्री प्रतापसिंह[1]

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति में जीवन की ऐसी स्थिति निर्माण की थी जिस से मनुष्य सदा ही देश और जाति की सेवा करता रहे । इसी मन्तव्य को सामने रख कर चार आश्रमों का निर्माण किया । जिस के अनुसार जीवन का संघटन कर के जीव विज्ञान की पराकाष्ठा प्राप्त करने का मार्ग निर्देश कर दिया ।

शैशवेभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धक्ये मुनिवृत्तिनां योगेनान्ते तनू त्यजाम् ॥

इस क्रम से जीवन क्रम बांधने का सिलसिला तो किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है । आयौवन पर्यन्त विद्याध्ययन या आजीविका उपार्जन करने की वृत्ति तो सर्वत्र चल रही है । यौवनावस्था के परिपाक से ही गृहस्थ में प्रवृत्त हो कर संतानोत्पत्ति और जीवन संग्राम में आदमी जुट जाता है पर आज के जीवन में मुनिवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाता है । यद्यपि हमारे शासकों ने पचपन और साठ बरस में सेवा वृत्ति की निवृत्ति का नियम बना कर शेष जीवन के लिए पेन्शन दे कर अनेकांश में मनुष्य को सांसारिक झंझटों से मुक्त कर दिया तथापि मनुष्य इस का सदुपयोग न कर के गृहस्थी के झझटों में फंसा रहता है । और व्यर्थ में ही बालबच्चों पुत्रपौत्र के शादी व्याह के अड़ंगों में अड़ा रहता है । मानसिक व्यथा से व्यथित हो कर या तो रोगी हो जाता है या अनन्त काल के कवल में जा कर अपना अन्त कर देता है । प्राचीन ऋषि महर्षियों ने व्यथा को समझ कर मुनिवृत्ति का उपदेश किया था । मननात् मुनिः सांसारिक सब कार्यों का और ज्ञान विज्ञान का मनन करने वाला ही मुनि कहा जाता है । जब मनुष्य परिपक्व ज्ञान को ले कर संसार में भ्रमण करता था तब वह एकदेशीय ज्ञान को छोड़ कर सार्वदेशिक ज्ञान में रत होता था और यही समय उस के अनुसन्धान का था जिनकी प्रवृत्ति मोक्ष की ओर थी वे वेदान्त आदि का अध्ययन अध्यापन करते थे और जिनकी प्रवृत्ति लोकोपकार की थी वे प्रकृति के सुन्दर दृश्य को देख कर उस से संसार के प्राणियों का उपकार करते थे । ऐसे लोगों को हमारे यहां तापस या वनेचर कहते थे । इन्हीं तापसों और वनेचरों ने अनेक प्रकार की वनस्पतियों का संशोधन और अन्वेषण किया और बड़े-बड़े ग्रन्थ रच कर आज आयुर्विज्ञान का महत्वपूर्ण शास्त्र उपस्थित किया है । उस के विद्वान् दो प्रकार के वैद्य होते थे एक यायावर और दूसरे शालिन । एक घूम घूम कर अपनी विद्या का आदान प्रदान कर के अपने ज्ञान का प्रचार करते थे, दूसरे शाला बना कर अनुसन्धान कार्य करते थे । यदि आज विज्ञ समाज के प्रवर्तक इस प्राचीन पद्धति को अपना लें संसार के बहुत से झंझटों को मिटा कर सुखी संसार बना सकते हैं ।

धन्वन्तरि निघण्टु में लिखा है कि किरातगोपालक तापसाद्याःवनेचरास्तत् कुशलास्तथान्ये ।

विदन्ति नानाविदभेषजानां
प्रमाणवर्णाकृतिनामजातिः ।
तेभ्यः सकाशादुपलभ्य वैद्यः
पश्चात् शास्त्रेषु विमृश्य बुद्ध्या
विकल्पयेत् द्रव्यरस प्रभाव
विपाकवीर्याणि तथा प्रयोगात् ।

१ परामर्शदाता, भारत सरकार,
स्वास्थ्य मन्त्रालय, दिल्ली ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह पद्धति आज संसार में सर्वत्र वन विशेषज्ञ और चिकित्सा विज्ञानों में प्रचलित है। किन्तु यह कार्य वे लोग करते हैं जिन का आधार सरकारी वृत्ति है या किसी व्यापार की प्रवृत्ति है। उस का परिणाम यह होता है कि क्रियात्मक तीव्र अनेक चमत्कारी ओषधियां धन और यश कमाने का कार्य कर रही हैं। परन्तु वास्तविक जनता के उपकार की तथा उस के हित अहित की किसी को चिन्ता नहीं। आज औषधि निकलती है और बड़े मूल्य पर बेची जाती है और कुछ समय बाद ही यह दिखाया जाता है कि उसका प्रभाव जाता रहा है। अतः अधिक तीव्रतर औषधि का आविष्कार कर जनता का विश्वास आकृष्ट किया जाता है और उसका प्रचार करने में अरबों रुपये खर्च किया जाता है। आज आप सर्वत्र देखेंगे कि चमत्कारी दवाओं के ढेर के ढेर औषधि व्यापारियों के लगे हुए हैं। इधर जनता विविध रोगों के ढेर में दबी जा रही है। आज हमारे लाखों पेन्शन प्राप्त विद्वान् यदि भारतीय पद्धति से वनस्पतियों की खोज में लग जांय और जन-साधारण में उन की उपयोगिता का प्रचार करें तो आम के आम और गुठली के दाम वाली कहावत चरितार्थ हो सकती है। उन का देश-देशान्तरों में भ्रमण करने से मनोविनोद भी हो जावे। गृह-चिन्ता की निवृत्ति से मानसिक स्वास्थ्य भी सुन्दर हो और उत्तम दवाओं का घर-घर में प्रचार कर प्राचीन रीति नीति का भी समुद्धार हो सके। देश में यह श्लोक गूंजने लगे--

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

—०—

क्या आप जानते हैं ?

श्री स्किओ

❀

१

२
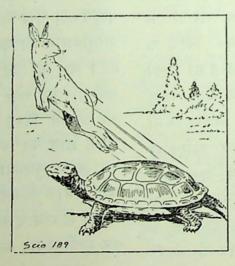
१ खरगोश की सामान्य रूप से आयु अवधि पांच वर्ष, भेड़ की बारह, बिल्ली की तेरह, कुत्ता और बकरी की पन्द्रह, गौ और सूअर की पच्चीस, घोड़े की तीस, ऊंट और सिंह की चालीस, हाथी और ह्वेल की सौ, मगरमच्छ की तीन सौ तथा कछुवे की साढ़े तीन सौ होती है।

२ आँखों की पलकों में वसा कभी नहीं संचित होती, चाहे मनुष्य कितना ही मोटा क्यों न हो जाय।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यक्तित्व वर्ग के कुछ शब्द

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

Individuality (इण्डिविजुएलिटी), Personality (पर्सनैलिटी), Character (कैरेक्टर), Disposition (डिस्पोज़ीशन), Tempetament(टेम्परामेण्ट), Temper (टेम्पर), Complexion (कौम्पलेक्शन)।

इन शब्दों में समानता इतने अंश में है कि ये किसी व्यक्ति वा समुदाय के उस मुख्य गुण वा गुणों को सूचित करते हैं जिस वा जिन के द्वारा उस का अन्यों से भेद किया जा सके। इन में से कैरेक्टर शब्द के विषय में तो कोई मत-भेद ही नहीं। यह शब्द संस्कृत के चरित्र शब्द से निकला है अतः संस्कृत में उस के लिए चरित्रम् और हिन्दी में भी चरित्र शब्द का प्रयोग प्रचलित तथा सर्वथा उचित है।

कैरेक्टर=चरित्रम्, चरित्र। इण्डीविजुए-लिटी=सं० व्यक्तित्वम्। हि० - व्यक्तित्व

इन शब्दों में से इण्डिविजुएलिटी और पर्स-नैलिटी इन दो शब्दों के सूक्ष्म भेद विवेचन की विशेष आवश्यकता है। प्रचलित भाषा में दोनों के लिए प्रायः 'व्यक्तित्व' का प्रयोग कर दिया जाता है। बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़ इत्यादि सभी प्रादेशिक भाषाओं के कोषों में दोनों के लिये 'व्यक्तित्व' का प्रयोग पाया जाता है किन्तु इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। वेब्स्टर् की ए डिक्शनरी ऑफ़ डिस्क्रिमिनेटेड सिनौनिम्स तथा जेम्स फ़र्नाल्ड की 'स्टैण्डर्ड हैंडबुक ऑफ़ सिनौनिम्स,ऐण्टोनिम्स एण्ड प्रीपोजिसन्स इत्यादि के आधार पर मैं इन शब्दों के सूक्ष्मभेद का विवेचन करना आवश्यक समझता हूँ।

इण्डिविजुएलिटी के विषय में वेब्स्टर् के उप-रिनिर्दिष्टपर्यायों के सूक्ष्म भेद निरूपक शब्दकोष में बताया गया है कि इण्डिविजुएलिटी से ऐसे व्यक्तित्व का तात्पर्य है जो एक को दूसरों से भिन्न करता है। प्रायः इस से अपने व्यक्तित्व के दूसरों पर जमाने का भी भाव सूचित होता है जैसे कि वह एक विशिष्टव्यक्तित्व का पुरुष है जहां तक इण्डिविएलिटी शब्द का सम्बन्ध है प्रादेशिक भाषाकोष इस के 'व्यक्तित्व' अर्थ पर सब सहमत हैं यद्यपि इस के साथ कुछ अन्य शब्दों का भी उन में योग पाया जाता है जैसे कि निम्न तालिका से ज्ञात होगा। इण्डिविजु-एलिटी—बंगला—व्यक्तित्व, व्यक्तिगत भाव, पार्थक्य, स्वातन्त्र्य। गुजराती—व्यक्तित्व, प्रत्येकता। मराठी - व्यक्तिता, पृथक्त्व, व्यक्ति विशेष, व्यक्ति, व्यक्तिवैशिष्ट्य।

कन्नड़—व्यक्तित्व, प्रत्येक अस्तित्व, व्यक्ति-लक्षण, स्वकीयते, वैयक्तिक अभिरुचि।

तेलुगु—एकत्वमु, प्रत्येकत्वमु, व्यक्तित्वमु, पृथक्त्वमु मलयालम—एकत्वम्, व्यक्तित्वम्।

तामिल—एकत्तुवम, गुणम, लक्षणम।

इन में से तामिल को छोड़ कर शेष सब में 'व्यक्तित्व' का प्रयोग इण्डिविजुएलिटी शब्द के समानार्थक शब्द के रूप में पाया जाता है। शेष पृथक्त्व, एकत्व, प्रत्येक अस्तित्व आदि शब्द भी उसी भाव के सूचक हैं।

पर्सनैलिटी=सं० व्यक्ति वैशिष्ट्यम्। हि०-विशेष व्यक्तित्व।

'पर्सनैलिटी' के विषय में वेब्स्टर ने लिखा है कि पर्सनैलिटी किसी व्यक्ति के अनजाने या ज्ञान-पूर्वक किये हुए कार्यों, चेष्टाओं तथा शारीरिक, संवेदनात्मक, मानसिक, नैतिक व्यवहार और विशेषकर उस के दूसरों के प्रति सम्बन्ध द्वारा अभिव्यक्त होती है। अतः इस के लिये हम ने संस्कृत में 'व्यक्तिवैशिष्ट्यम्' इस शब्द को चुना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। हिंदी में उस के अतिरिक्त सुगमता के लिये विशेष व्यक्तित्व का प्रयोग किया जा सकता है। जेम्स फ़र्नाल्ड ने अपनी हैन्ड बुक आफ सिनोनिम्स पृष्ठ ११८ में पर्सनैलिटी के विषय में यह जो लिखा है कि पर्सनलिटी से तात्पर्य परिच्छेदक वा अन्यों से भिन्न करने वाले वा विशिष्ट वैयक्तिक चरित्र से है उस से भी व्यक्ति वैशिष्ट्यम् अथवा विशेष व्यक्तित्व इन शब्दों का औचित्य सूचित होता है।

डिस्पोज़ीशन=स्वभाव।

डिस्पोज़ीशन शब्द के लिये संस्कृत व हिंदी में स्वभाव शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है क्योंकि वैब्स्टर आदि के प्रामाणिक अंग्रेजी कोषों के अनुसार इस में मन या आत्मा की प्रमुख प्रवृत्ति अथवा सहज स्वभाव का भाव आता है। प्रादेशिक भाषा कोषों में पर्सनैलिटी और डिस्पोज़ीशन के लिये निम्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग है।

प्रादेशिक भाषाओं में पर्सनैलिटी के लिये प्रयुक्त कुछ शब्द--

बं०--व्यक्तित्व, व्यक्तिगत अस्तित्व, व्यक्ति व्यक्ति विशेष के लक्ष्य करियामन्तव्य। गु०—विशेष जनत्व, व्यक्ति। म० - व्यक्तित्व, व्यक्ति, स्वत्व, बड़ा मनुष्य। क०—व्यक्तित्व वैयक्तिक अस्तित्व, व्यक्ति प्रभाव, महिमातिशय। मल०—प्रत्येकत, मूर्तित्वम्।

इन में से कन्नड़ के 'व्यक्ति प्रभाव' महिमातिशय तथा गुजराती का विशेष जनत्व शब्द हमारे द्वारा निर्धारित व्यक्तिवैशिष्ट्य तथा विशेष व्यक्तित्व इन शब्दों के समीप पहुचते हैं।

डिस्पोज़ीशन के लिये प्रादेशिक भाषाओं के कुछ शब्द -

ब०—मेजाज प्रवणता। गु०—स्वभाव, गुण, धर्म। म०—स्वभाव। आ०—प्रकृति, मनव स्वाभाविक अवस्था क०—प्रकृति, प्रवृत्ति, मनोधर्म, मनस्सु, इष्ट। मल०—स्वभावम्, प्रकृति। ते०—स्वभावमु, गुणमु, इष्टमु, मनसु. इच्छ ता०—मनोविर्त्ति (मनोवृत्ति)।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि अधिकतर प्रादेशिक भाषा कोषों में डिस्पोज़ीशन के लिये स्वभाव शब्द का प्रयोग है और अर्थ की दृष्टि से उसी को हम सर्वथा उपयुक्त शब्द समझते हैं।

टेम्परेमेन्ट=आभ्यन्तर प्रकृतिः, (प्रकृतिः)।

टेम्परेमेन्ट के विषय में वैब्स्टर ने लिखा है कि टेम्परेमेन्ट से तात्पर्य किसी की आंतरिक अथवा स्वाभाविक विशेषताओं और शारीरिक, नाड़ी संस्थान सम्बद्ध अथवा मानसिक अवस्था के परिणाम का है। जेम्स फ़र्नाल्ड ने भी अपनी स्टेण्डर्ड हैन्ड बुक ऑफ़ सिनोनिम्स नामक पुस्तक में यही बात कही है।

टेम्परेमेन्ट शब्द में सभी आभ्यन्तर और स्वाभाविक विशिष्ट गुणों का समावेश होता है। इन अर्थों को ध्यान में रखते हुए हमने टेम्परेमेन्ट के लिये संस्कृत में आभ्यन्तर प्रकृति शब्द को चुना है जिसे सरलता की दृष्टि से संस्कृत और हिंदी में केवल प्रकृति के नाम से भी कह सकते हैं। प्रादेशिक भाषा कोषों में भी उस के लिये अधिकतर 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। उदाहरणार्थ निम्न तालिका देखिये—

बं०--आभ्यन्तरिक प्रकृति। आ०—प्रकृति, स्वभाव मानसिक अवस्था। गु —शरीर प्रकृति। म०—प्रकृति, स्वभाव, स्वभाव वैचित्र्य। क०--मनोधर्म, मनस्सिन प्रकृति, देह प्रकृतिय, वैयक्तिक स्वभाव, स्वभाववैचित्र्य। मल०—स्वभावम्।

इन में बंगला में "आभ्यन्तरिक प्रकृति" शब्द का प्रयोग है जो अर्थ और भाव की दृष्टि अंग्रेजी के टेम्परेमेन्ट शब्द के बहुत समीप पहुँचता है अन्य भाषा कोशों में केवल "प्रकृति" का अधिकतर प्रयोग है जो सरलतार्थ उपादेय है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसी के साथ मिलता अंग्रेजी का टेम्पर यह शब्द है। टेम्पर=सं०--विशिष्ट स्वभावः प्रशान्तता। हि०--विशेष स्वभाव. वैब्स्टर ने टेम्पर के विषय में अपने उपर्युक्त शब्द कोष में अन्यो शान्ति से उसका भेद करते हुये कहा है कि टेम्पर शब्द में सब गुणों का विशेषतः उनका जो अनुभव से प्राप्त किये गये हों, समावेश होता है जो न केवल एक व्यक्ति के विषय में अपितु जाति और युग आदि के विषय में यह निर्धारित करते हैं कि वे प्रस्तुत परिस्थितियों कठिनाइयों और समस्याओं का किस प्रकार मुकाबला वा समाधान करते हैं। इसके लिये संस्कृत में विशिष्ट स्वभावः अथवा स्वभाव विशेषः इस शब्द का और हिन्दी में विशेष स्वभाव शब्द का प्रयोग उचित प्रतीत होता है। किसी-किसी प्रकरण में शान्तता के अर्थ में भी "टेम्पर" का प्रयोग होता है। इसके लिये प्रादेशिक भाषा कोषों में निम्न प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—

बं०—मानसिक अवस्था. उत्तेजनात्यन्त्वेउ मानसिक प्रशान्ति। आ० – मानसिक अवस्था, स्वभाव, प्रकृति धैर्य। क०—शान्तने, स्वभाव, मनोभाव। ते०—गुणमु, स्वभावमु, प्रवृति। गु०—स्वभाव, तबीयत, प्रकृति। म०—प्रवृति, वृति, विशेष स्वभाव।

मराठी का विशेष स्वभाव शब्द अर्थ और भाव की दृष्टि से हमें हिन्दी में अधिक उपादेय प्रतीत हुआ है।

कैम्प्लेक्शन् सं०—मौलिक विशिष्टता हि०—मौलिक विशेषता कोम्पलेक्शन् शब्द के विषय में वैब्स्टर के अपने पर्यायशब्द कोष में लिखा है। कोम्प्लेक्शन् में उस मौलिक विशेषता का भाव आता है जो दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव को निर्धारित करती है। इसी लिये हमने इसके लिये संस्कृत में मौलिक और हिन्दी में मौलिक विशेषता शब्द का सरलता की दृष्टि से प्रयोग उचित समझा है।

गणतन्त्र दिवस की शोभा-यात्रा में
स्टुअर्ट और शर्मन टैंक।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
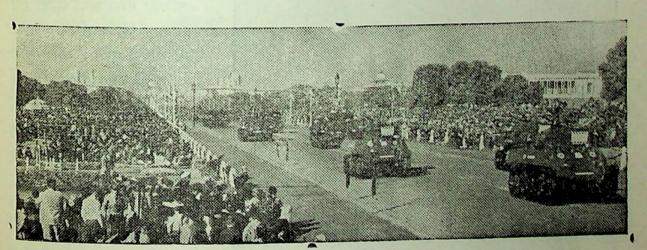
दशमलव प्रणाली क्या है ?

दो हजार वर्ष पहले १० से आगे हिसाब लगाना एक समस्या थी। रोमन प्रणाली के अंकों (I, V, X L, C आदि) का जोड़ना और गुणा करना कठिन था। मिश्रवासी १८ के लिए ३३३३३३ लिखते थे।

ईशा की पहली शताब्दी में एक भारतीय गणितज्ञ ने दशमलव प्रणाली निकाली। अब इसे सारी दुनिया ने अपना लिया है। महान् गणितज्ञ ला प्लासे ने कहा है, 'दशमलव प्रणाली की सरलता के कारण हिसाब लगाना बहुत आसान हो गया है और गणित शास्त्र प्रथम कोटि का आविष्कार बन गया है।"

जब दशमलव प्रणाली का व्यवहार नाप-तोल में होने लगा तो दशमिक प्रणाली का आविष्कार हुआ। यह प्रणाली अब संसार के तीन—चौथाई भाग में प्रचलित है।

पिछले १०० वर्षों में ५८ देश दशमिक प्रणाली अपना चुके हैं। जिन देशों में अच्छी प्रणालियां छोड़ी गई हैं वहां भी दशमिक प्रणाली अपनाली गयी है और देशी प्रणालियां छोड़ दी गई हैं देखना यह है कि इस प्रणाली में ऐसा क्या गुण है जिसके कारण यह इतनी लोकप्रिय हो रही है।

दशमिक प्रणाली १० की संख्या पर आधारित है। हर पैमाने के हिस्से १० के अपवर्त्य होते हैं, जैसे—

१० ग्राम = १ डेका ग्राम; १० डेकाग्राम = १ हेक्टोग्राम; १० हेक्टोग्राम = १ किलो ग्राम। १० मिलीमीटर = १
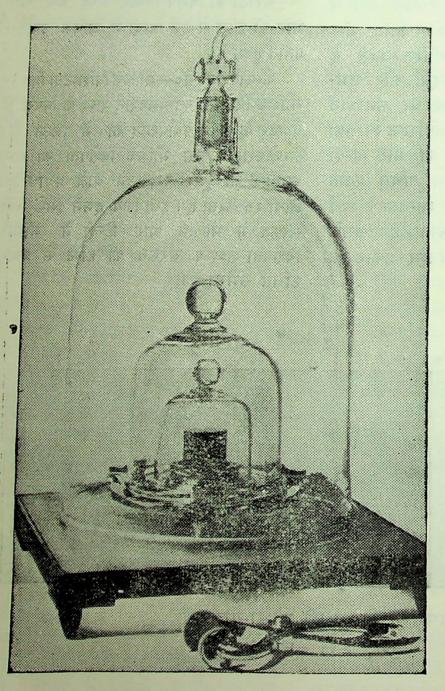
सर्वदेशों से सम्मत किलोग्राम (सहस्र धान्य)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
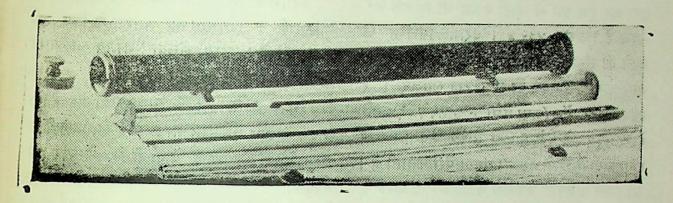
प्रारम्भिक अवस्था का मीटर अपने खोल के हिस्सों के सहित ।

सेंटीमीटर; १० सेंटीमीटर= १ डेसी मीटर; १० डेसीमीटर=१ मीटर ।

१० मिलीलिटर=१ सेंटीलिटर; १० सेंटी-लिटर= १डेसीलिटर; १०डेसीलिटर= १ लिटर। कोई भी पैमाना हो—लम्बाई का या तोल का या परिमाण का— हर रकम को उस से छोटी बड़ी रकम में परिवर्तन करने के लिये केवल एक ही अंक, १०, का प्रयोग किया जायगा। अर्थात् या तो उसमें दस का गुणा किया जायगा या भाग। इसके विपरीत 'मन-सेर' का हिसाब लगाते समय यह याद रखना पड़ता है कि १६ छटांक का १ सेर और ४० सेर का १ मन होता है। इसी तरह 'मील-गज' के हिसाब में १२,३.२२० और ८ की संख्यायें याद रखनी पड़ती हैं।

वर्तमान पैमानों का आरम्भ कैसे हुआ ? लंबाई के लगभग सभी पैमाने हमारे हाथों और पैरों क आधार पर बने हैं। प्रायः सभी भाषाओं में नाप के पैमाने का नाम शरीर के किसी न किसी अंग पर रखा गया है। कुहनी से हाथ की उंगली तक की लम्बाई को वाइविल में 'क्यूबिट' कहा गया है। भारत में इसे 'हाथ' या 'मूजम कहते हैं। अंगुल' और 'गिरह' के विषय में भी यही बात है। तोल के पैमानों के नाम प्रायः अनाज के नाम पर रखे गये हैं, जैसे-'ग्रेन, 'रत्ती, 'कैरेट' आदि।

पैमाने की इकाइयों का परस्पर सम्बन्ध भी भिन्न-भिन्न है। जैसे२८ पौण्ड=१ क्वार्टर, ४ क्वार्टर=१ हण्डरवेट; ३ तोला=१ पलम; ८ पलम=१ सेर; ४० सेर=१मन; मद्रास में २४ तौला १ सेर, परन्तु बंगला और बम्बई में ८०तोला=१ सेर। दशमिक प्रणाली में यह झंझट नहीं है। वह वास्तव में एक 'प्रणाली' है। वह दशमलव प्रणाली की शाखा है।

स्थान मूल्य प्रणाली

४३२ की संख्या को हम चार सौ तीस और दो मानते हैं। क्यों ? परम्परानुसार हम समझते आ रहे हैं कि ४३२ में २ का मूल्य दो ही है परन्तु ३ का मूल्य तीस और ४ का चार सौ है क्योंकि ये संख्यायें दाहिने से बांयी ओर दूसरे (दहाई) और तीसरे (सैकड़ा) स्थान पर हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उनका मूल्य अपने 'स्थान के कारण है। इस मान्यता को स्थान-मूल्य प्रणाली कहते हैं। यह प्रणाली लगभग दो हजार वर्ष पहले भारत में आविष्कृत हुई थी। इस प्रणाली ने गणित शास्त्र में क्रान्ति पैदा कर दी।

किसी रकम के आगे दशमलव-चिन्ह (·)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लगा कर हम उस से छोटी रकम भी सूचित कर सकते हैं। जैसे—४३२'५||। दशमलव-चिन्ह के आगे की संख्यायें क्रमशः दसवां,, सौवां हजारवां भाग होती हैं। रुपये का उदाहरण लीजिए । १ रुपया=१०० सेंट (नया पैसा); ७ रुपये ३५ नये पैसे=७३५ नये पैसे अथवा ७·३५ रुपया। वहां दशमलव से आगे ३५ की संख्या पैसे बताती है। आजकल ७ रुपये ३५ पैसे को ७ रु० ८ आ० ६ पा० लिखना पड़ता है।

दशमिक प्रणाली दशमलव प्रणाली से ही निकली है । इसलिए यह भारत के लिए नयी चीज नहीं है। 'शून्य' संख्या "मानव को भारत की सब से बड़ी देन" है।

राजा जी के शब्दों में "यह उचित है कि भारत अपनी वर्तमान नाप-तोल की प्रणाली को अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर चलाये. जो कि वास्तव में उनकी अपनी दशमलव प्रणाली है।

❀

शिमला में बर्फ के खेल

1　2　3　4
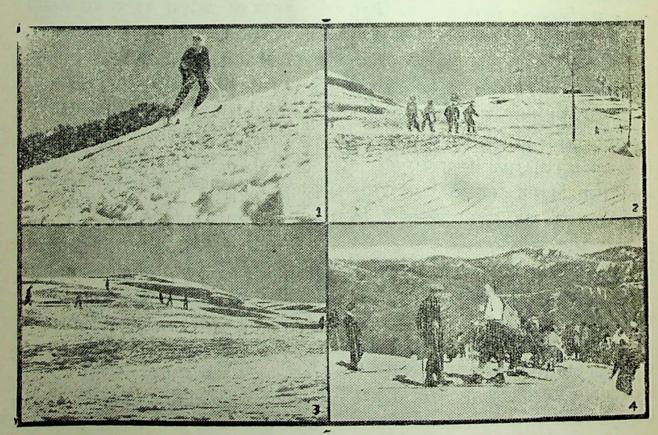
हिमाचल प्रदेश में बर्फ के खेल प्रतिवर्ष अधिक जनप्रिय हो रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्रोध आदि वृत्तियों पर विजय कैसे प्राप्त की जाय ?

श्री अरविन्द

क्रोध की घटना पर विचार करो और देखो कि कितनी छोटी सी बात पर तुम्हें क्रोध आ गया और तुम उबल पड़े। यूं तो आगे चल कर तुम्हें बिना बात के क्रोध आने लगेगा। विचार करो कि ऐसी चेष्ठाएँ कितनी मूर्खतापूर्ण होती हैं। जब क्रोध आये तुम उसे इस प्रकार शांतिपूर्वक देखो मानो तुम्हारी सत्ता के अन्दर किसी और को क्रोध आया हो। ऐसा करने से उसे दूर करने में सचमुच ही कोई कठिनाई नहीं होगी। यह पूर्णतया सम्भव है कि जब क्रोध बाहर फूट आये तब भी हम अपनी सत्ता के एक भाग में पीछे हट कर स्थित हो जाय और निर्लिप्त समचित्तता के साथ क्रोध का निरीक्षण करें। कठिनाई यह है कि तुम डर और घबरा जाते हो इस कारण क्रोध तुम्हारे मन को अधिक आसानी से वश में कर लेता है जो इसे नहीं करना चाहिये।

अगर हमारी प्रकृति में क्रोध प्रबल तत्त्व है, तो हम उसे थोड़े समय के लिये कोरे बल प्रयोग से दबा सकते हैं और उसे आत्मनियंत्रण कह सकते हैं परन्तु अंत में, अतृप्त प्रकृति हमें हरा देगी और वह विकार आश्चर्यजनक शक्ति को लिये हुऐ अप्रत्याशित क्षण में हम पर लौट आवेगा। केवल दो तरीके जिनसे हम विकार को जो हमें गुलाम बनाने की चेष्टा करता है, निश्चित रूपेण जीत सकते हैं। एक तो है अन्य भाव के स्थापन की शैली; अर्थात् जब कभी विकार उठे तब उसके स्थान पर विरोधी गुण को ला बैठाना, क्रोध के स्थान पर क्षमा, प्रेम या सहिष्णुता के विचारों को, काम के स्थान पर पवित्रता के ध्यान-मनन को, अभिमान के स्थान पर नम्रता और अपने अवगुणों या अपनी तुच्छता के विचारों को; यह राजयोग की विधि है परन्तु यह कठिन, धीमी और अनिश्चित है; क्योंकि प्राचीन परम्परा और योग का आधुनिक अनुभव दोनों ही यह दिखाते हैं कि वे लोग, जिन्होंने कितने ही वर्षों से उच्चतम आत्म-प्रभुत्व प्राप्त किया हुआ था, उस चीज की उग्रता पूर्ण वापसी से सहसा आश्चर्यचकित रह गये। जिसे उन्होंने मृत या सदा के लिये वशवर्ती समझ लिया था। परन्तु यह स्थापन-शैली यद्यपि धीमी है तथापि यह प्रकृति की साधारणतम विधियों में से एक है और अधिकतर इस उपाय से ही जिसे बहुधा अनजान में या जान-अनजान में प्रयुक्त किया जाता है, मनुष्य का चरित्र एक जीवन से दूसरे जीवन में या एक जीवन की अवधि में भी बदलता और विकसित होता है। यह शैली चीजों को उनके बीज तक नष्ट नहीं करती, और वह बीज जिसे योग से जला कर राख नहीं कर दिया जाता, फिर फूट निकलने और पूर्ण तथा शक्तिशाली वृक्ष के रूप में पनप उठने में सदा समर्थ रहता है।

—

[२३५ का शेष]

२।। से ३।। तक व्याख्यान, श्री आचार्य भगवानदेव, गुरुकुल झज्जर। विषय—मन को कैसे जीते।

३।। से ४।। व्याख्यान।

४।। से ५ तक भजन।

रात्रि—

व्यायाम-सम्मेलन, ब्रह्मचारियों द्वारा।

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं—सम्पादक।

खेती (कृषि-यन्त्र विशेषांक)

जनवरी १९५७। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने 'खेती' का कृषि यन्त्र विशेषांक प्रकाशित किया है। आज तक विभिन्न राज्यों में जो भी यन्त्र और औजार विकसित किये गये हैं, विशेषाङ्क में उनका विस्तृत विवरण दिया गया है। बोआई से लेकर फसल को बाजार के लिये तैयार करने तक कौन स यन्त्र काम में आते हैं, इन सब की झांकी विशेषाङ्क में मिलती है। गन्ना, गेहूँ, चावल, मूंगफली आदि मुख्य फसलों के काम आने वाले सभी उपयोगी उन्नत औजारों की चर्चा विशेष रूप से की गई है।

विशेषांक हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा प्रयास है और कृषि में रुचि रखने वाले लोगों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है।

विशेषांक की पृष्ठ संख्या ६२ और मूल्य ।) है। पत्रिका के सभी लेख सचित्र, संक्षिप्त, सरल और सभी उपयोगी सूचनाओं से परिपूर्ण हैं।

कृषि यन्त्रों में सुधार का मुख्य उद्देश्य उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खेती को यह विशेषाङ्क बड़ा सहायक सिद्ध होगा। हमारे देहाती किसानों में अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए लेखों में अंग्रेजी शब्दों के उन्मुक्त प्रयोग से बचा जाता तो अच्छा था। जूनियर सीनियर (पृष्ठ १६); पैन्डल, फर्मा (११); सीड ड्रिल, कल्टिवेटर, टूलबार (७८) आदि सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जो औसत देहाती के समझ में नहीं आ सकते। हमारी राय में इन सब के रूपान्तर हिन्दी में रखे जाते और अंग्रेजी के शब्द रखने आवश्यक प्रतीत होते तो कोष्ठों में दे दिये जाते,

—रामेश वेदी।

श्री तिलक-चरितम्

रचयिता—श्री वासुदेव शास्त्री बागेवाडीकर, साहित्याचार्य, शास्त्री-सदन, करुबा पेठ, शोलापुर। मूल्य बारह आने।

सुबोध, सरल और मुहावरेदार संस्कृत भाषा में रची गई यह पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि इस युग में भी देववाणी संस्कृत में संजीवनी शक्ति विद्यमान है। जनसामान्य में अप्रचलित होने पर भी इस भाषा में नमूनेदार कृतियां उपजाई जा सकती हैं। शास्त्री महोदय ने पचास पन्नों की इस छोटी सी पोथी में लोकमान्य तिलक महाराज के यशस्वी जीवन की कहानी संक्षेप में प्रस्तुत की है। पुस्तक की भाषा सुन्दर सुबोध और प्रवाह पूर्ण है। वाक्य छोटे और मुहावरे दार हैं। धातुओं के प्रयोग मनोहर रूप में हुए हैं। सामान्य संस्कृत जानने वाला व्यक्ति भी इस का आनन्द से आस्वादन कर सकता है विद्यालय की उच्च कक्षा के छात्र प्रसादपूर्ण आदर्श संस्कृत गद्य के लिये इस पुस्तक को अपना पथ-प्रदर्शक बना सकते हैं। पाठ्यग्रन्थ के रूप में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। नयनभिराम सुन्दर पोथी का मूल्य बारह आने नगण्य है। छात्रों को पुरस्कार देने के लिये उत्तम उपहार है।

—शंकरदेव।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

मार्च मास के आरम्भ से ऋतु में अपूर्व रमणीयता का संचार हो रहा है। कुल-भूमि की सभी अमराइयाँ आम्र-मंजरियों के संभार से झुकी जा रही हैं। समस्त वातावरण बौरों के परिमल से आमोदित हो उठा है। वासंतिक वातावरण जमते ही वनकुंज और वाटिकाएँ नवागन्तुक प्रवासी पंखियों के कलकूजन से मुखरित हो उठी है इक्के दुक्के पपीहे के आलाप भी प्रारम्भ हो गए हैं। पलाश-पुष्प अपनी बहार पर हैं। मौसम गरमाते ही गुलाब की कलियाँ भी चटकने लगी हैं। गुरुकुल के चहुँ ओर दूर दिगन्त तक गेहूं की खेतियाँ लहलहा रही है। मध्य एप्रिल तक उनकी कटाई हो जायगी। कृषि विद्यालय की शाक वाटिका में मटर की बहार है। कृषि विभाग के छात्रों द्वारा बोई गई ईख डोईवाले के चीनी के कारखाने में भेजी जा रही हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

परीक्षाएँ

मार्च महिना प्रति वर्ष विश्वविद्यालय की परीक्षाओं का होता है। तदनुसार मार्च के अन्त तक सभी परीक्षाएँ समाप्त हो जावेंगी। विद्याधिकारी परीक्षा के लिए कुरुक्षेत्र भैंसवाल और घासी पुरा आदि शाखाओं के छात्र इन दिनों गुरुकुल में आए हुए हैं। परीक्षाएँ समाप्त होते ही छात्र गण गुरुकुलोत्सव की तैयारी में लग जायेंगे।

वार्षिक महोत्सव

कुल का अग्रिम वार्षिक महोत्सव ११ से १५ एप्रिल तक कुल-भूमि में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाएगा। उत्सव को उपयोगी बनाने के लिये अनेक अभिनव आयोजन हो रहे हैं। दीक्षान्त-प्रवचन के लिए श्री चिंतामणि द्वारकानाथ देशमुख (विश्वविद्यालय अनुदान समिति के प्रधान) पधार रहे हैं। वेद-सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहासोपाध्याय) आ रहे हैं। सरस्वती सम्मेलन (संस्कृत में) के सभापति-पद को लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्री ऐयर महोदय अलंकृत करेंगे। कविरत्न श्री हरिशंकर शर्मा के सभापतित्व में एक सुन्दर कवि सम्मेलन सम्पन्न होगा उत्सव पर इस बार आर्य जगत् के कई मनीषी "विद्यामार्तण्ड" की उपाधि से समादृत होंगे। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में समाज सेवा सम्मेलन होगा। कुल के प्रतिष्ठाता पुण्यश्लोक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जन्म शताब्दी मनाई जाएगी। तदर्थ कुल की पुरानी पुण्यभूमि में भी एक दिन उत्सव का आयोजन होगा। श्रद्धानन्द-स्मृति सम्मेलन में स्वामी जी के अनेक साथी और सहकर्मी उनके जीवन और कार्य-कलापों पर अपने निजू अनुभव सुनायेंगे। "गुरुकुल शिक्षा संम्मेलन" में अनेक विद्वान भारत की प्राचीन शिक्षा-विधि के विषय में खोजपूर्ण और विचार-प्रेरक भाषण प्रस्तुत करेंगे। यह दोनों सन्मेलन विशेष रूप से दर्शनीय होंगे।

अभिनन्दन

राष्ट्र के नवीन निर्वाचनों में कुल के तीन सुयोग्य स्नातक विभिन्न सदनों के लिए पुनः निर्वाचित हुए हैं। श्री विनायकराव जी विद्यालंकार हैदराबाद से लोकसभा के लिए काँग्रेस टिकट पर चुने गए हैं। श्री दीनदयालु जी शास्त्री तथा श्री अमरनाथ जी विद्यालंकार क्रमशः उत्तर-प्रदेश और पंजाब प्रदेश की विधानसभाओं के लिए निर्वाचित हुए हैं। तीनों बन्धुओं का कुलवासी इस विजय पर सहर्ष अभिनन्दन करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नवीन भवन

आयुर्वेद महाविद्यालय की आम्र-वाटिका के समीप गु० कु० के नवीन छात्रावास और भोजनालय की सुन्दर इमारत कुल के भक्त श्री राय साहब धर्माराम जी के देख-रेख में बन कर तैयार हो गई है। वेदमंदिर के समीप ही पुरातत्वीय महत्त्व की मूर्तियों के लिए भी एक भवन बन कर उत्सव तक तैयार हो जाएगा।

नवीन प्रकाशन

श्री श्रद्धानन्द जन्म शताब्दी की स्मृति में गुरुकुल विश्वविद्यालय के कुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की कुशल लेखनी से लिखी हुई संस्मरणात्मक सुन्दर पुस्तक "मेरे पिता" उत्सव तक छप कर तैयार हो जाएगी। इसी प्रकार "श्रद्धानन्द-स्वाध्याय-मंजरी" के ग्राहकों के लिए प्रति वर्ष प्रकट होने वाली भेंट पुस्तक के रूप में इस वर्ष गुरुकुलाचार्य श्री प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति की लिखी हुई "मेरा धर्म" नामक पुस्तक भी उत्सव पर प्रकाशित हो जाएगी।

श्रद्धानन्द विशेषांक

लेखकों से निवेदन

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल के आगामी वार्षिकोत्सव के अवसर पर कुलपिता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। शताब्दी के देशव्यापी विविध आयोजनों में हमारी योजना 'गुरुकुल पत्रिका' का एक विशेषाङ्क निकालने की है। इस में स्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में तथा उन के कार्य-कलाप के बारे में विद्वानों, समाज व देश के नेताओं के लेख, कविताएँ, संस्मरण आदि प्रकाशित किए जावेंगे। श्री स्वामी जी द्वारा लिखे हुए महत्वपूर्ण पत्र भी इस अङ्क में देने का हमारा विचार है।

अपने कृपालु लेखकों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएं तथा स्वामी जी के पत्र यथासम्भव शीघ्र भेजने की कृपा करें। स्वामी जी के जीवन के विविध पहलुओं से सम्बद्ध फोटो, चित्र या स्केच जिन महानुभावों के पास सुरक्षित हों वे हमें प्रकाशित करने के लिए भेज देंगे तो बड़ी कृपा होगी। यदि वे चाहेंगे तो उपयोग करने के बाद मूल चित्रों तथा पत्रों को हम सुरक्षित लौटा देंगे। समय बहुत कम रह गया है इसलिए सभी सामग्री हमें जितनी शीघ्र मिल जावे, सम्पादन और प्रकाशन में सुविधा रहेगी।

ग्राहकों से

यहां हम विशेषाङ्क के मुख्य लेखों की सूची दे रहे हैं। इस के पाठक इस की महत्ता तथा उपादेयता का अनुमान कर सकेंगे। स्वामी जी के अनेक फोटो स्केच भी इस में दिये जा रहे हैं। पत्रिका के वार्षिक ग्राहकों को यह विशेषाङ्क साधारण मूल्य में ही भेंट किया जायगा। इस लिए आप यदि अब तक ग्राहक नहीं हैं तो आज ही चार रुपये मनी आर्डर से वार्षिक शुल्क भेज कर ग्राहक बन जाइये।

विज्ञापकों से

यह विशेषाङ्क स्थायी महत्व की चीज है और साधारण अङ्कों की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या में छप रहा है। अपने माल को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए यह बड़ा अच्छा माध्यम सिद्ध होगा आज ही अपना विज्ञापन भेजिये।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्सव का निमन्त्रण

आप को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय का ५७वाँ वार्षिकोत्सव ३० चैत्र तथा १, २, ३ वैशाख २०१४ तदनुसार १२, १३, १४, १५ अप्रैल १९५७ को समारोह के साथ गुरुकुल भूमि में मनाया जायगा। हम प्रेम और आग्रह से आप को इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करते हैं।

इस वर्ष अमरकीर्ति श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को जन्म-शताब्दी का पुण्य पर्व भी वार्षिकोत्सव के साथ मनाया जायगा। यह गुरुकुल ही स्वामी जी महाराज का सब से बड़ा स्मारक है। यह शताब्दी उत्सव समारोह पूर्वक मनाया जायगा और देश के प्रसिद्ध नेता उत्सव में पधारेंगे।

गुरुकुल भारत का सब से प्राचीन, सर्वप्रमुख राष्ट्रिय तथा सांस्कृतिक शिक्षणालय है, जहाँ वैदिक और संस्कृत-साहित्य के साथ-साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, रसायन आदि विविध विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के माध्यम द्वारा ही दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र सुधार के लिए विशेष उद्योग किया जाता है। गुरुकुल काँगड़ी तथा उस की शाखाओं में इस समय तक एक हज़ार से अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस के अतिरिक्त गुरुकुल में प्रसिद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय भी है जिस में उच्च आयुर्वेद शिक्षा के साथ-साथ ऐलोपैथिक विषयों की भी ऊंची शिक्षा दी जाती है और गुरुकुल में एक उत्कृष्ट कृषि-विद्यालय भी स्थापित है जिसे सरकार द्वारा पूर्ण मान्यता प्राप्त है। गुरुकुल के स्नातकों का बड़ा भाग देश, जाति. धर्म और साहित्य सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। वैदिक-धर्म और आर्य-समाज के सिद्धान्तों तथा आदर्शों का क्रियात्मक निदर्शन आप गुरुकुल में ही कर सकते हैं। गुरुकुलोत्सव पर पधारिये और अपनी आत्मा को तृप्त कीजिए। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप अपने परिवार, बन्धु तथा इष्ट-मित्रों के साथ पधार कर उत्सव की शोभा बढ़ावेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्सव का कार्य-क्रम

१२ अप्रैल १९५७ तदनुसार ३० चैत्र २०१३

प्रातः—

७ से ७।। तक संध्या, प्रार्थना तथा हवन-यज्ञ ।

७।। से ८ तक कुलपताका-वन्दन तथा ध्वजगीत ।

८ से ८।। तक भजन ।

८।। से ९।। तक उपदेश, श्री स्वामी अभेदानन्द जी ।
विषय—धर्म व संस्कृति ।

९।। से ११ तक वेद-सम्मेलन ।
सभापति—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, काशी विश्वविद्यालय, बनारस ।

मध्यान्ह—

१ से १।। तक भजन ।

१।। से ४ तक गुरुकुल शिक्षा प्रणाली सम्मेलन ।
सभापति—माननीय श्री कैलाशनाथ जी काटजू, मुख्यमंत्री, मध्य-प्रदेश ।

४ से ४।। तक भजन ।

रात्रि—

७ से ७।। तक भजन ।

७।। से ८।। तक व्याख्यान, श्री शिव-कुमार शास्त्री ।

८।। से १०।। तक कवि-सम्मेलन ।
सभापति—श्री हरिशंकर सम्पादकाचार्य, आगरा ।

१३ अप्रैल १९५७ तदनुसार १ वैशाख २०१४

प्रातः—

७ से ७।। तक सन्ध्या, प्रार्थना तथा हवन-यज्ञ ।

७।। से ८।। तक व्याख्यान, श्री स्वामी व्रतानन्द जी ।
विषय—श्रेय और प्रेय ।

८।। से १०। तक सरस्वती-सम्मेलन (संस्कृत में) ।
सभापति—श्री ऐयर महोदय, डीन फैकल्टी ऑफ आर्ट्स, लखनऊ विश्वविद्यालय ।
विषय—भारतीय विश्वविद्यालयेषु परीक्षासु संस्कृताध्ययनं आवश्यकं स्यात् ।

१०। से ११ तक व्याख्यान, श्री क्षितिश विद्यालङ्कार ।
विषय—एकलव्य ।

मध्यान्ह—

१ से १।। तक भजन ।

१।। से २।। तक व्याख्यान, श्री आनन्द स्वामी जी ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२।। से ४।। तक 'समाज-सुधार सम्मेलन। सभापति—श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ।

४।। से ५ तक भजन ।

रात्रि—

७ से ७।। तक भजन ।

७।। से ८।। तक व्याख्यान, श्री बिहारी लाल । विषय—ऋषि दयानन्द का आन्दोलन और उस का प्रभाव ।

८।। से १०।। तक 'संस्मरण सम्मेलन' (श्री स्वामी जी के संबन्ध में) । सभापति—रायबहादुर दीवान बद्रीदास, उपप्रधान—आ.प्र. सभा, पंजाब ।

१०।।से ११ तक व्याख्यान श्री बुद्धदेव विद्यालंकार ।

१४ अप्रैल १९५७ तदनुसार २ वैशाख २०१४

प्रातः—

७ से ७।। तक भजन ।

७।। से ११ तक दीक्षान्त समारोह—माननीय श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख, अध्यक्ष, यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन, नई दिल्ली ।

मध्यान्ह—

१ से २।। तक भजन ।

२।। से ३।। तक व्याख्यान,श्री यशःपाल सिद्धान्तालंकार ।

३।। से ४।। तक व्याख्यान तथा अपील श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, आचार्य, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

रात्रि—

७ से ७।। तक भजन ।

७।। से ८।। तक व्याख्यान, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, कुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय ।

८।। से ९।। तक व्याख्यान, श्री सत्यव्रत सिद्धातालंकार ।

९।। से १० तक भजन ।

१५ अप्रैल १९५७ तदनुसार ३ वैशाख २०१४

प्रातः—

७ से ७।। तक भजन ।

७।। से १० तक वेदारम्भ संस्कार ।

मध्यान्ह—

१ से १।। तक भजन ।

१।। से २।। तक व्याख्यान, श्री रघुवीर सिंह शास्त्री । विषय—धर्म तथा राजनीति ।

[शेष २२९ पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धानन्द विशेषाङ्क की कुछ रचनाएं

१	श्रद्धा	श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ।
२	मैं गुरुकुल कैसे आया ?	श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति ।
३	सच्चा मानव	श्री सुरेश वेदालंकार ।
४	निर्वाण (कविता)	श्री जगदीश शास्त्री, सम्पादक- चरित्र-निर्माण ।
५	कुछ स्मृतियाँ	श्री गंगा प्रसाद, रिटायर्ड चीफ़ जज ।
	दैवी सम्पत् के स्वामी श्रद्धानन्द जी	श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।
७	महात्मा मुंशीराम व गुरुकुल की स्मृतियाँ	श्री राम्से मैकडानल्ड ।
८	दिव्य पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द	श्री नरदेव शास्त्री ।
९	स्वामी श्रद्धानन्द जी के संस्मरण	डा० अविनाश चन्द्र बोस, पी० एच० डी० ।
१०	महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द	श्री सत्यदेव विद्यालंकार, दिल्ली ।
११	स्वामी जी के स्फूर्तिदायक वचन	संग्रहकर्त्ता श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।
१२	श्री दीन बन्धु एण्ड्रूज और स्वामी श्रद्धानन्द	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ।
१३	स्वामी जी के महत्वपूर्ण पत्र	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा प्राप्त ।
१४	भारत की प्राचीन शिक्षा	श्री महेशचन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी० ।
१५	श्रद्धेय श्रद्धानन्द की श्रद्धा हमारी प्रेरणा का स्रोत बने	श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
१६	स्वामी श्रद्धानन्द	प्रो० मुंशीराम एम० ए०, पी० एच० डी ।
१७	स्वामी श्रद्धानन्द जी के संस्मरण	श्री आचार्य अभयदेव जी ।

गुरुकुल पत्रिका नामक हिन्दी मासिक पत्र के बारे में वक्तव्य

१ प्रकाशन स्थान	गुरुकुल काँगड़ी
२ प्रकाशन की अवधि	मासिक
३ मुद्रक का नाम	श्री रामेश बेदी
जाति	भारतीय
पता	गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार)
४ प्रकाशक का नाम	श्री धर्मपाल विद्यालंकार
जाति	भारतीय
पता	गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार)
५ सम्पादक का नाम	श्री रामेश बेदी
जाति	भारतीय
पता	गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार)
६ उन व्यक्तियों के तथा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा वाले भागीदारों या हिस्सेदारों के नाम और पता जो इस समाचार पत्र के मालिक हैं	आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

मैं धर्मपाल विद्यालंकार इसके द्वारा यह ऐलान करता हूं कि ऊपर दिये हुए विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं ।

--धर्मपाल विद्यालंकार ।

हस्ताक्षर प्रकाशक

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	५)
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	५)
वरुण का नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	।।।=)
वैदिक-सूक्तियां	,,	१।।।)
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१।।)
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२)
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१।)
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	।।।)
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द	श्री चमूपति	२), १॥)
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१।।)
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२।)

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक	मूल्य
संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग	।।।), ।।।=)
साहित्य-सुधा-संग्रह, १, २, ३ बिन्दु	१।), १।), १।)
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध	७), ७)
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध	२), २।।)
सरल शब्दरूपावली	।।=)

ऐतिहासिक तथा जीवनी

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द		७), ६)
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		।।।)
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१।=)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		।।)
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)
सम्राट् रघु	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१।)
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	।।) ।।). १)
जवाहरलाल नेहरू	,,	१।)
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	२)
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	,,	।।)

धार्मिक तथा दार्शनिक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१।।)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश. तीन भाग		३।।)
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१।)
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	५)
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२।।)
लहसुन:प्याज	श्री रामेश बेदी	२।।)
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३)
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२)
सोंठ, तीसरा ,,	,,	१।।)
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१)
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	,,	१)
सांपों की दुनियां, (सचित्र). सजिल्द	,,	५)
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३।)
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)	,,	१।)
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	,,	।।)
देहात की दवाएं, सचित्र ।।।)	बरगद	।।।)
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१।)
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१।।।)

विविध पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)
गुणात्मक विश्लेषण (बी. एस्. सी. के लिए)		१)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		।।।)
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१।।)
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१।।)
जमींदार	,,	२)
सरला की भाभी, १, २ भाग	,,	२), ३।।)

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रीष्म ऋतु के उपहार

भीमसेनी सुरमा

आंखों के लिए इस से बढ़ कर कोई दूसरा सुरमा नहीं है। यह आंखों के सब रोगों को लाभ पहुँचाता है। बच्चे व बूढ़े सब इस का प्रयोग कर सकते हैं। मूल्य ॥=) १॥ माशा।

ब्राह्मी बूटी

बुद्धि को बढ़ाने व मस्तिष्क की कमज़ोरी दूर करने में इस से बढ़ कर दूसरी बूटी नहीं है। हमारे यहां हर समय ताज़ी रहती है। मूल्य ॥।) सेर।

ब्राह्मी तेल

यह तेल शुद्ध ब्राह्मी के द्वारा बनाया जाता है। दिमाग को ठण्डक व तरावट दे कर ताज़गी लाता है। दिमाग की कमज़ोरी वाले रोगियों को यह तेल विशेष हितकर है। मूल्य १।=) ४ औंस।

भीमसेनी नेत्रबिन्दु

यह औषधि दुखती आँखों के लिए अकसीर है। कुकरे, दर्द व लाली इस से दूर होते हैं। मूल्य १) शीशी।

ब्राह्मी शर्बत

ब्राह्मी तेल की तरह यह शर्बत भी इस मौसम में सेवन करने योग्य उत्तम चीज़ है। प्रातःकाल एक गिलास शर्बत तमाम दिन ताज़गी रखेगा। मूल्य ३) बोतल, १॥=) शीशी।

आमला तेल

यह तेल बढ़िया आमले से तैयार किया जाता है। इस से बालों का गिरना, अकाल में पकना तथा गञ्ज आदि रोग दूर होते हैं। बालों को रेशम की तरह मुलायम कर काला करता है। मूल्य १।) ४ औंस।

पायोकिल

पायोरिया रोग की परीक्षित औषधि है। इस के प्रयोग से दांतों से खून व पीप आना रुक जाता है तथा दांत चमकीले और दृढ़ हो जाते हैं। दैनिक प्रयोग के लिए भी उत्तम है। मूल्य १।।) छोटी शीशी।

बाल शर्बत

बच्चों के हरे-पीले दस्त, कब्ज़, उल्टी, खांसी तथा ज्वर आने पर विशेष गुणकारी है। मूल्य १।) बड़ी शीशी, ।=) छोटी शीशी।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
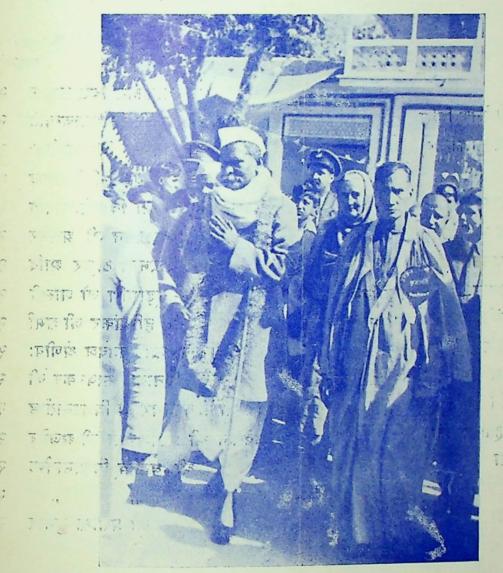
गुरुकुल पत्रिका

स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर श्री राष्ट्रपति जी दीक्षान्त भाषण देने के लिए पधार रहे हैं ।

सम्पादक— श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १०   फाल्गुन २०१४   अङ्क ७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क ११५ ★
फ़रवरी १९५८

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओ३म् उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात् अप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्याय अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥

ऋग्० ११३. १६ ।

शब्दार्थ—हे मनुष्यो : (उदीर्ध्वम्) उठो (नः) हमारे लिये (जीवः) जीवन दायक (प्राणः) प्राण (आगात्) आ गया है, उदय हो गया है (तमः) अन्धकार (अपप्रागात्) हट गया है और यह देखो (ज्योतिः) उषा की ज्योति (आएति) आ रही है । इस ज्योति ने (सूर्याय पन्थाम्) सूर्य के मार्ग को (यातवे) पहुंचने के लिये (आरैक्) खोल दिया है (यत्र) जहां जीवन शक्तियां (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) बढ़ाती ही हैं, उस अवस्था में हम (आ अगन्म) पहुंच गये हैं ।

अरुणोदय

उठो देवगण ! जागो सुन्दर,
यह प्रभात वेला आई ।
निशा कालिमा दूर हो चली,
उषा अरुणिमा नभ छाई ॥ १ ॥

नभ जीवन की आभा फैली,
हुआ प्रकृति का नव शृङ्गार ।
दिव्य ज्योति का उदय हुआ फिर
चमक उठा सारा संसार ॥ २ ॥

प्राची में अरुणोदय होगा,
पल में यह जग जगमग होगा ।
पङ्कजदल में अवनीतल से,
विकसित नूतन जीवन होगा ॥ ३ ॥

अन्तर तम में परम ज्योति यह,
जाग उठेगी अब निश्चय ही ।
उसके दिव्य प्राण को पा कर,
देव बनेंगे मृत्युंजय ही ॥ ४ ॥

पहुंचें हम उस दिव्य मार्ग में,
जहां न फिर जीवन का क्षय है ।
आगे ही आगे बढ़ना है,
गति है, जय है और अभय है ॥ ५ ॥

—श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यकाल की दार्शनिक भित्ति

कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

विक्रमकाल की समाप्ति और मध्यकाल के आरम्भ में भारत में दो ऐसे आचार्य उत्पन्न हुए, जिन्होंने देश के सांस्कृतिक प्रवाह पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। ये दो आचार्य कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य थे। भारत के मध्यकालीन विचार प्रवाह को समझने के लिए इन दोनों आचार्यों केग्रन्थों,सिद्धान्तों और कार्यों का अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। उसके बिना हम आगामी युग के विचारों और उनसे उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियों को नहीं समझ सकते।

प्रचलित ऐतिहासिक मतानुसार कुमारिल ने अपने ग्रन्थ ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में लिखे। कुमारिल भट्ट वेदों और शास्त्रों का उद्भट विद्वान् तथा बहुत प्रसिद्ध वावदूक था। वह कर्म काण्ड में विश्वास रखता था, अतः मीमांसा दर्शन का प्रमुख व्याख्याकार और आचार्य था। वेदों में और ईश्वर में उसकी परम आस्था थी। भारतीय साहित्य की परम्परा में उसे बौद्ध गज केसरी कहते हैं। उस समय के बौद्ध ईश्वर और वेद का खण्डन करते थे। कुमारिल भट्ट ने लेख और वाणीद्वारा बौद्धों का इतना ज़ोरदार खण्डन और कर्मकाण्ड का इतना प्रबल समर्थन किया कि उस समय के पश्चात् भारत में बौद्ध मत नाम मात्र को शेष रह गया। बौद्ध लोग नास्तिकों की गिनती में आ कर देश से निर्वासित हो गए। जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक बार बौद्धों के प्रहारों से आहत हो कर वेदवाणी निम्नलिखित पदों द्वारा अपने दुःख को प्रकट करने लगी।

किंकरोमि क्व गच्छामि,
को वेदानुद्धरिष्यति ?

कुमारिल भट्ट ने वह पद सुनकर उत्तर दिया—

मा बिभेषि वरारोहे,
भट्टाचार्योऽस्ति भूतले।

आचार्य ने आश्वासन दिया कि घबराओ मत, भट्टाचार्य पृथिवी पर जीवित है। कुमारिल भट्ट ने अपने उस आश्वासन को भली प्रकार निभाया और अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के बल से बौद्धों के नास्तिक दर्शनों का खण्डन किया।

वैदिक धर्म में तीन काण्ड हैं। ज्ञान काण्ड कर्म काण्ड और उपासना काण्ड। वैदिक ज्ञान की पूर्णता इन तीनों अंगों पर यथायोग्य समान बल देने से होती है। भगवद्गीता में धर्म के इन तीनों अंगों में पूर्ण साम्यभाव स्थापित किया गया है। यह दुर्भाग्य की बात थी कि कुमारिल भट्ट ने वेदों के युग का विद्वान् होते हुए भी बौद्धों के बुद्धिवाद के विरोध में केवल कर्मकांड की स्थापना की। उन्होंने ज्ञान काण्ड और उपासना काण्ड की प्रायः उपेक्षा की। परिणाम यह हुआ कि जहां वे बौद्ध दर्शन के नास्तिकवाद का खंडन करने में समर्थ हुए, वहां उन्होंने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुख्य रूपों से यज्ञों तक धर्म को सीमित कर के मनुष्य जीवन में अधूरापन पैदा कर दिया। बौद्ध मत शब्द प्रमाण तथा यज्ञादि क्रिया कलाप की व्यर्थता दिखला कर मनुष्यों को व्यावहारिक धर्म और वैराग्य की ओर खेंचता था। कुमारिल भट्ट ने उस दिशा से तो मनुष्यों को हटाया, परन्तु उसके स्थान में जिस कर्म काण्ड प्रधान धर्म का उपदेश दिया, उसमें से भारतीय हृदय की नैसर्गिक भक्ति और त्याग की भावना निर्वासित कर दो गई थी। जनश्रुति है कि अपनी यज्ञ प्रियता से कुमारिल भट्ट इतने प्रभावित हुए कि अन्त में यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित करके स्वयं उसमें अपने शरोर को आहुति दे दी।

कुमारिलाचार्य ने दो काम किये। एक तो भारतवर्ष में बौद्ध सिद्धान्त को अत्यन्त निर्बल कर दिया, और दूसरे कर्मकाण्ड प्रधान धर्म को लोकप्रिय बना दिया। कुमारिल भट्ट के लेखों से यज्ञों में पशु हिंसा की प्रणाली को भी समर्थन मिला।

श्री शंकराचार्य

कुमारिल भट्ट से कुछ समय पीछे शंकराचार्य भारत की रंगस्थली पर अवतीर्ण हुए। जैसे पानी में समतल हो जाने की शक्ति है, इसी प्रकार मानव समाज की भावनायें भी समय पाकर समतल हो जाती हैं। यदि चिरकाल तक गर्मी अधिक हो तो वर्षा आ जाती है। इसी प्रकार यदि किसी जाति की मानवी भावनाओं का केवल एक अंग वृद्धि पाता जाय तो प्रकृति के नियम के अनुसार जोरदार प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, जो साम्य की दशा लाने में सहायक होती है। कुमारिल भट्ट ने बौद्ध शास्त्रियों के कोरे बुद्धिवाद का तो खंडन कर दिया, परन्तु उनके स्थान पर वे केवल कर्मकाण्ड की स्थापना कर सके, जिसका हृदय के साथ कम और स्थूल शरीर के साथ अधिक सम्बन्ध है। हाथ पांव को तो काम मिल गया, परन्तु हृदय सूना रह गया। अन्तरात्मा की प्यास अनबुझी ही रह गई।

इस कमी को पूरा करने के लिए शंकराचार्य कार्य क्षेत्र में आये। शंकराचार्य की अद्भुत चमत्कारिणी प्रतिभा, उनके अगाध पाण्डित्य, और उनकी लोकोत्तरवाग्मिता की प्रशंसा में अधिक लिखना व्यर्थ है। उनके इन गुणों का सिक्का भारत के ही नहीं संसार भर के विद्वानों ने माना है। उन्होंने कुमारिल भट्ट द्वारा समर्थित कर्मकाण्ड की धज्जियां उड़ा कर उसके स्थान पर अद्वैतवाद की स्थापना की। शंकरचार्य का अद्वैतवाद वस्तुत: प्राचीन भारतीय धर्म के आस्तिकवाद और बौद्धों के निर्वाणवाद का समुच्चय था। उनकी आधार भूमि उपनिषदों का 'ब्रह्म' था, तो उसका परिणाम बौद्धों का निर्वाण था। जिस वाहन से शंकराचार्य वैदिक 'ब्रह्म से चल कर बौद्धों के निर्वाण तक पहुंचे, वह मायावाद था। मायावाद को हम शंकराचार्य की उद्भट प्रतिभा का आविष्कार कह सकते हैं। उसकी सहायता से उन्होंने वैदिक कर्मयोग को बौद्ध शास्त्रियों के नैष्कर्म्यवाद से नत्थी कर दिया। बौद्ध पंडितों के आस्तिकता विरोधी प्रचार का अन्त कुमारिल भट्ट ने कर दिया था। अब कुमारिल भट्ट के कर्मकाण्ड को शिथिल करके शंकराचार्य ने भारत के अनेक केन्द्रों में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अद्वैत वाद का असर स्थापित कर दिया। अद्वैतवाद उनके केन्द्रों से प्रवाहित होकर धीरे धीरे सारे देश के शिक्षित समुदाय में फैल गया, और समयान्तर में भारतवासियों के जीवनों पर भी छा गया।

उस समय देश में सर्वत्र सुख शान्ति का राज्य था। न कोई परस्पर संघर्ष था, और न बाहर से आक्रमण का भय। राजा लोग शासन करते थे, ब्राह्मण और विद्वान् लोग अध्ययन, अध्यापन और शास्त्र चर्चा करते थे, वैश्य लोग कृषि वाणिज्य, और व्यापार में संलग्न रहते थे, और शेष प्रजा जन अपने-अपने पेशों द्वारा जाति का पोषण करते थे। उस समय की प्रशान्त राजनीतिक दशा का ही यह परिणाम था कि हम उन दोनों आचार्यों और उस युग के अन्य साहित्यकर्त्ताओं के ग्रन्थों में सामयिक, आर्थिक या राजनीतिक समस्या का कोई निर्देश नहीं पाते। उन्हें यह ध्यान भी नहीं था कि उनके बताये एकांगी सिद्धान्तों का राष्ट्र के चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा? युक्ति का झोंका उन्हें जिधर ले गया, वे उधर गये, और शास्त्रों की अपने अनुकूल व्याख्या द्वारा जनता के मस्तिष्क को भी उधर ही मोड़ दिया। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य की शिक्षा के दो मुख्य परिणाम हुए।

१. बौद्ध शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित नास्तिक-वाद भारत से लगभग निर्वासित हो गया।

२. देश का धर्म, दो भागों में बट गया। जिनकी प्रवृत्ति त्याग की ओर थी वे मायावाद के अनुयायी होकर निष्कर्मता की ओर जाने लगे, और शेष लोगों का धार्मिक जीवन कर्मकाण्ड की सीमाओं में परिमित हो गया। यह मैं साधारण प्रजा की बात कहता हूं। राजा लोग शासन करते रहे, और विद्वान् लोग ग्रन्थ निर्माण करते रहे, परन्तु उन दोनों का परस्पर सम्बन्ध विच्छेद सा रहा। पूर्व युगों के वाल्मीकि और व्यास, कौटिल्य और कालिदास अपने समय के मार्गदर्शक थे। वे सरस्वती का प्रयोग राष्ट्र को जाग्रत करने के लिये करते थे, परन्तु इस युग के विद्वान् संसार की वास्तविक दशाओं से सर्वथा अलग-अलग रहकर केवल बुद्धि और वाणी के प्रयोग तक सरस्वती सेवा को परिमित करलेते थे। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि इसके पश्चात् का सार्वजनिक जीवन ऊंचे दर्जे के विचारकों के नेतृत्व से प्रायः शून्य मिलता है। आगामी युग में व्याकरण और दर्शन पर बड़े-बड़े ओजस्वी ग्रन्थ लिखे गये, पुराणों की पुनरावृत्ति हुई, रामायण और महाभारत में प्रक्षेपकों की भरमार की गई, प्रथम दर्जे के काव्य भी बने, परन्तु शंकराचार्य के पीछे देश में मौलिक चिन्तन का लगभग अभाव सा हो गया है। जो कुछ चिन्तन हुआ भी वह राष्ट्र के जीवन से इतना पृथक् और अस्वाभाविक था कि उससे देश की आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक दशा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रद्धेयाचार्यस्मरणम्

(१)

येषां जीवितमेव सर्वमभवल्लोकोपकारेऽर्पितं,
येषामार्जवमापुनीतमनसामादर्शभूतं भुवि ।
पारं प्राप्तुमशक्नुवन्नहि नरा येषां दयायाः क्वचित्,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ॥

(२)

येषां वाचि सदैव सत्यवचनं, स्पष्टं शुभं बोधदं,
येषां चित्तसरित् स्वभावविमला,कल्याणमार्गावहा ।
दीनोद्धारककर्मसु प्रतिपलं, ये दत्तचित्ता बुधाः,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ॥

(३)

श्रद्धां ये जगदीश्वरे श्रुतिपथे, संमेनिरे मातरम्,
आनन्दं परमेश्वरस्य दयया, तत्कारणाल्लेभिरे ।
धर्मार्थं बलिदानतोऽमरपदं, ये धर्मवीरा ययुः,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ॥

(४)

येषां निर्भयता हि लोकविदितासीदद्वितीया ध्रुवं,
सेनायाः पुरतोऽप्यनावृतमुरो निर्भीकसंन्यासिभिः ।
अस्पृश्यत्वनिवारणार्थमनिशं यत्नं दधानाः परं,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ॥

(५)

यैर्नित्यंजननीसमानमनसा शिष्या वयं लालिताः,
येषां ध्येयमिहाभवद् गुरुकुले, ह्यस्माकमेवोन्नतिः ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

त्यक्त्वा सर्वसुखं स्वकीयमनिशं शिष्योद्धृतौ तत्पराः,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ।।

(६)

सेवाया व्रतमत्र यैः सुकृतिभिर्नित्यं गृहीतं मुदा,
शिष्याणां वमनं स्वकीयकरयोर्येऽधारयन् हर्षतः ।
अस्माकं गुरवोऽभवंश्च पितरो ये मातरो बन्धवः,
श्रद्धानन्दमहोदया यतिवराः, नित्यं निषण्णा हृदि ।।

(७)

आसंस्ते गुणसागरा मतिमतां वर्या दयाम्भोधयः,
तेषां कं कमहं स्मरेयममतिर्शुभ्रं गुणं स्वामिनाम् ।
शब्दाः सन्ति न वर्णयेयमखिलं, येनोपकारं बुधां,
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवरा, नित्यं निषण्णा हृदि ।।

(८)

हे देवेश दयानिधे शिव हरे, ह्ययेषास्ति मेऽभ्यर्थना,
देवानामनुरूपतामिहगता, भूयास्म शिष्या वयम् ।
तेषां सत्स्मरणं दधातु बिमलां श्रद्धां नवं जीवनं
श्रद्धानन्दमहोदया गुरुवरा, नित्यं स्थिता ये हृदि ।।

विनयावनतो

—धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः ।

सत्य-वाणी

यथार्थ प्रेम कभी विफल नहीं जाता । प्रेम की विजय अनिवार्य है । ईश्वर के अन्वेषण में कहाँ भटकते हो ? क्या कभी मानव से प्रेम कर के देखा है ? दीन, दुःखी, दुर्बल, रोगी, अशक्त मनुष्य में क्या ईश्वर नहीं है ? प्रेम की सर्व शक्तिमत्ता में विश्वास कीजिये । क्या तुम्हारे हृदय में प्रेम है ? क्या तुम सम्पूर्ण रूप से निष्काम हो ? यदि हां तो तुम्हारे शक्तिबेध करने की क्षमता किसी में नहीं, अवश्य ही तुम अपने चरित्र बल से सर्वत्र विजय प्राप्त कर सकोगे ।

—स्वामी विवेकानन्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फाह्ययान की भारत यात्रा

अखिल भारतीय रेडियो के सौजन्य से प्राप्त

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

यदि हम अपनी हरेक चीज़ को सदा केवल अपनी दृष्टि से ही देखते रहें तो कभी-कभी पूरे सत्य तक पहुंचना कठिन हो जाता है। एक ही दृष्टि कोण से विचार करते-करते या तो हम सब कुछ प्रकाशमय देखने लगते हैं या अन्धकार-मय। सचाई तक पहुंचने के लिए यह उपयोगी होता है कि हम अपने वर्तमान को और अपने व्यतीतकाल को दूसरों की दृष्टि से भी देखें। भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में भी तब तक एक दूसरे के विरुद्ध दो तरह की धारणाएं बनी रहीं जब तक बाहर से आए हुए यात्रियों के संस्मरण का प्रकाश उस काल पर नहीं पड़ा। कुछ लोग उसे स्वर्णिम युग के नाम से पुकारते थे तो कुछ उसे अन्धकार काल कहते थे। विदेशी यात्रियों द्वारा लिखित विवरणों ने उन पर रोशनी फेंक कर इतिहास के विद्यार्थियों को सचाई तक पहुंचने में बहुत सहायता दी है। उन प्रसिद्ध यात्रियों में से चीन के विद्वान् यात्री फाह्ययान के संस्मरण विशेषरूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे ऐसे समय से सम्बन्ध रखते हैं जिसे वस्तुतः भारत के इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। वह युग था गुप्त वंश के प्रतापी शासकों के दिग्विजय का। यह सर्वसम्मत बात है कि गुप्तकाल भारतीय राजनीति, साहित्य, चित्रकला आदि संस्कृति के सभी अंगों की उन्नति की दृष्टि से असाधारण रूप से आगे बढ़ा हुआ था। प्रथम चन्द्रगुप्त ने जिस गुप्त साम्राज्य की नींव डाली उसके उतराधिकारी समुद्रगुप्त ने दिग्विजय द्वारा उसका विस्तार किया और समुद्रगुप्त द्वितीय ने उसका और अधिक विस्तार तो किया ही साथ ही अच्छे शासन और कलाओं के प्रोत्साहन द्वारा देश को हर प्रकार से सुखी और समृद्ध बनाया। चीनी यात्री फाह्ययान बौद्ध धर्म के ग्रन्थों और गाथाओं की तलाश में जिस समय भारत में आया, उस समय चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के नाम से राज्य कर रहा था। विक्रमादित्य की उपाधि चन्द्रगुप्त को विदेशी आक्रान्ताओं को परास्त करने के उपलक्ष में मिली थी। इतिहास लेखकों का मत है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्यारोहण ३७५ ई० में हुआ। फाह्ययान ने भारत में ४०५ ई० में प्रवेश किया। फाह्ययान ने भारत में घूम कर जो कुछ देखा उसे हम गुप्तकाल की समृद्ध दशा का चित्र समझ सकते हैं।

चीनी यात्री ने गुप्तों की राजधानी पाट-लीपुत्र का बहुत ही उज्वल चित्र खींचा है। अशोक के बनाए हुए महलों को देखकर वह इतना चकित हो गया, उसने लिखा कि वे महल मनुष्य के बनाए हुए मालूम नहीं होते। अशोक के वश में जो दैवी शक्तियां थीं महलों कों उन्होंने ही बनाया होगा। पाटलिपुत्र के अति-रिक्त मगध के अन्य नगरों की भी फाह्यान ने बहुत प्रशंसा की है। उसने वर्णन किया है कि वे शहर बड़े भी हैं और सुन्दर भी। नागरिक लोग धनी और प्रसन्न हैं। उसने लिखा है कि वे लोग मुझे धर्म मार्ग पर चलने के लिये एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए प्रतीत हुए।

यात्रियों के लिये स्थान-स्थान पर विश्रा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मालय बने हुए थे। रास्ते बहुत अच्छी हालत में थे। शहरों में धर्मार्थ चिकित्सालयों की उत्तम व्यवस्था थी। चिकित्सालयों के बारे में फाह्यान ने लिखा हैं इनमें सब तरह के निर्धन और आश्रयहीन रोगी आते हैं, उन्हें तरह-तरह की बीमारियां होती हैं। उनकी भली प्रकार शुश्रूषा होती है। योग्य चिकित्सक उनका इलाज करते हैं। उन्हें आवश्यकतानुसार भोजन और औषध दिये जाते हैं। इस प्रकार उन्हें पूरा आराम दिया जाता है। रोगमुक्त होकर वे चिकित्सालय से चले जाते हैं। इतिहास लेखक विन्सेन्ट स्मिथ ने इस वर्णन का उल्लेख करके सम्मति दी है कि यह संदिग्ध बात है कि उस समय संसार में कहीं अन्यत्र भी चिकित्सा की इतनी सुन्दर व्यवस्था थी। यह व्यवस्था ईसाइयों की अर्वाचीन सेवा सम्बन्धी संस्थाओं का पूर्वरूप थी जिससे दानशील नागरिकों के चरित्र की उच्चता तो प्रतीत होती ही है, अशोक की अद्भुत प्रतिभा का भी परिचय मिलता है, सदियों पश्चात् तक जिसका उत्तम प्रभाव देश पर बना रहा।

मालवा प्रदेश की समृद्धि देखकर फाह्यान बहुत प्रभावित हुआ। उसे वहां प्रकृति के वैभव, लोगों के सौम्य स्वभाव और शासन की मधुरता ने अपनी ओर आकृष्ट किया। मौसम नर्म और रुचिकर था, उसमें न बर्फ थी और न धुन्ध। न कष्ट थे जिनसे यात्री को रास्ते में परेशान होना पड़ा था।

शासन प्रणाली की फाह्यान ने बहुत प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि देश की सरकार बहुत ही समझदार थी और प्रजा को परेशान नहीं करती थी। उसने बड़े सन्तोष से लिखा कि यहां के लोगों को न सरकार में घर के लोगों का व्योरा देना पड़ता है और न मजिस्ट्रेटों के सामने हाज़िर होना पड़ता है। चीन की तरह यहां के लोगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिये पासपोर्ट नहीं लेने पड़ते। वे जहां चाहें इच्छानुसार जा सकते हैं। दण्ड-विधान भी चीन की अपेक्षा बहुत नर्म था। अधिकतर अर्थ दण्ड ही दिया जाता था, और वह भी जैसा अपराध वैसा दण्ड। मृत्युदण्ड तो था ही नहीं। जो लोग डकैती हत्या या विद्रोह के अपराधी समझे जाते थे, उन्हें बड़े से बड़ा दण्ड यह दिया जाता था कि उनका दायां हाथ काट दिया जाता था, परन्तु फाह्यान का कहना है कि यह दण्ड बहुत ही कम दिया जाता था।

राजकर मुख्यरूप से सहकारी भूमियों से ही प्राप्त किया जाता था।। प्रजा पर जो कर लगाये जाते थे, वह बहुत ही हल्के थे, और क्यों कि सरकारी कर्मचारियों को निश्चित और पर्याप्त वेतन दिये जाते थे, उनमें रिश्वत लेने या भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति नहीं थी।

फाह्यान को देश में सुरक्षा की व्यवस्था बहुत ही उत्तम प्रतीत हुई। उसने तीन वर्ष तक पाटलीपुत्र में और दो वर्ष तक ताम्रलिप्ती में रहकर संस्कृत का अध्ययन किया।

इस समय में यात्री ने देश के विविध भागों में कई बार यात्रा की। फाह्यान ने बड़े आश्चर्य और सन्तोष के साथ लिखा है कि इस सारे समय उसका डाकुओं से एक बार भी सामना नहीं हुआ, जो उस युग में भारत से बाहर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आश्चर्य की चीज समझी जाती थी। फाह्यान के इस वृतान्त को पढ़ कर महाकवि कालिदास का एक श्लोक याद आ जाता है जिसमें उसने वर्णन किया है,

यस्मिन्मही शासति वाणिनीनां,
निद्रां विहारार्धपथे गतानाम्।
वातोऽपिनास्त्रंसयदंशुकानि,
को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्॥

महाराज दिलीप के शासन में वायु की भी यह हिम्मत नहीं होती थी कि थक कर क्रीडा स्थान के रास्ते में सोई हुई महिलाओं के अंशुक को शरीर पर से हटाये, चोर या डाकुओं की तो हिम्मत ही क्या हो सकती थी। सुशासन की यही समानता है, जिसके कारण अनेक विद्वान् मानते हैं कि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार का कवि ही था। सुरक्षा की ऐसी सुन्दर व्यवस्था जहां शासन की क्षमता के कारण थी, वहां यह भी मानना पड़ेगा कि पौर जानपदों की नैसर्गिक सच्चरित्रता उसका मूल कारण थी।

गुप्त वंश के राजा पौराणिक हिन्दू धर्म के मानने वाले थे। सम्राट् अशोक की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् ही भारत में बौद्ध धर्म का ज़ोर कुछ घटना आरम्भ हो गया था। ईसवी सदी के प्रारम्भ में हम महात्मा बुद्ध से पहले की धार्मिक पद्धतियों को पुनर्जीवित होता हुआ पाते हैं। पुराणों के वर्तमान रूप की रचना इसी समय में हुई। गुप्तकाल में वह प्रतिक्रिया अपने यौवन पर पहुंच गई थी। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि कई वर्षों तक बौद्ध भिक्षुओं और संस्कृत के पंडितों के सम्पर्क में रह कर भी फाह्यान ने बौद्ध और हिन्दू धर्म के संघर्ष अथवा कलह की कोई चर्चा नहीं की। बौद्ध और अन्य लोग परस्पर प्रेम पूर्वक सहिष्णुता से रहते थे। फाह्यान ने सिन्ध से लेकर यमुना तक लगभग पांच सौ मील की यात्रा की। वह जहां भी गया वहां बौद्ध विहारों को फलती फूलती दशा में पाया। कट्टर हिन्दू राजाओं के राज्य में भी महात्मा बुद्ध के आदेशों का पालन करने का यत्न किया जाता था। फाह्यान ने लिखा है, "सारे देश में कोई व्यक्ति जीवित प्राणी को नहीं मारता, न शराब पीता है और न प्याज़ अथवा लहसुन खाता है। मैंने कहीं मांस की दुकानें या शराब निकालने के कारखाने नहीं देखे।" यह सम्भव है कि यात्री को अधिकतर बौद्ध विहारों के सम्पर्क में रहना पड़ा इस कारण उसे समाज का दूसरा पहलू बिलकुल न दिखाई दिया हो और इस कारण वर्णन में कुछ अत्युक्ति भी आ गई हो तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सामान्यरूप से जीवन के वे ऊंचे आदर्श जिन्हें भारतवासी अत्यन्त प्राचीनकाल से मानते आए थे और महात्मा बुद्ध ने जिनका उपदेश अपने जीवन और वाक्यों से किया था वे व्यावहारिक रूप में भारत में ईसा की पांचवीं शताब्दी के आरम्भ में भी विद्यमान थे। उस समय के शासन की उदारता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जो राजा स्वयं बौद्ध नहीं थे उनके कोश से बौद्ध विहारों को और भिक्षुओं को खुली आर्थिक सहायता दी जाती थी। भिक्षुओं के लिए घर, चारपाई, भोजन, कपड़े आदि की व्यवस्था राज्य की ओर से होती थी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सदाचार निर्माण कैसे हो ?

आचार्य भद्रसेन जी, अजमेर

सदाचार का सभी धर्मों तथा धर्माचार्यों ने आदर किया है। बुद्धिमानों का कहना है कि यदि धन और सम्पत्ति नष्ट हो जाए तो कुछ नष्ट नहीं हुआ। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट हो गया। किन्तु चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया। वास्तव में जिसके पास सदाचार रूपी धन है, उसे संसार में किस चीज़ की कमी ? सदाचार के सम्मुख इन्द्र का पद भी कुछ मूल्य नहीं रखता। मनुष्य के पास चाहे अन्य कुछ भी गुण न हों, चाहे और कोई भी लक्षण न हो किन्तु यदि वह सदाचारी और चरित्रवान् है, तो इसी एक गुण से वह अपने जीवन को परम सुखी तथा यशस्वी बना सकता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य के पास सदाचार नहीं, जो आचरण हीन है, वह सदा निन्दा का पात्र तथा अपयश का भागी बना रहता है। उसका जीवन सदा दुःख मय बना रहता है। आचरण हीन मनुष्य सर्व प्रकार की आधि व्याधियों से घिरा रहता है और अन्त में अल्प आयु में ही अपनी जीवन लीला को समाप्त कर इस संसार से चल देता है। महाराज मनु ने कहा है—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

अर्थात्—दुराचारी पुरुष सदा निन्दा का पात्र बनता है। उसका संसार में अपयश फैलता है। वह सदा दुःख का भागी और बीमार रहता है तथा अल्प आयु में संसार से चल बसता है।

चरित्र-निर्माण

ण अपने जीवन को सदाचारमय बनाने के लिए सर्व प्रथम छोटी-छोटी जीवनोपयोगी बातों का अपने अन्दर धारण करना चाहिए। जीवनोपयोगी छोटी-छोटी बातों को धारण करते करते मनुष्य एक दिन ऊंचे चरित्र का स्वामी बन जाता है। अतः हमें इन्हें छोटा और साधारण समझ कर इन की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। अपने व्यवहार को ठीक रखना, जुआ आदि दुर्व्यसनों में न फंसना, वचन भङ्ग न करना, किसी भी वस्तु को उसके स्वामी की बिना अनुमति के ग्रहण न करना, सदा सत्य का व्यवहार करना, सब के प्रति नम्रता तथा प्रेम का व्यवहार रखना, वार्तालाप में शिष्टता का परित्याग न करना, सदा अनुशासन का पालन करना, मितव्ययी होना, इन सब गुणों को धारण करने से मनुष्य शनैः शनैः एक उच्च और महान् चरित्र का स्वामी बन जाता है अतः इन छोटी-छोटी, पर महत्त्वपूर्ण बातों को कभी छोटी नहीं समझना चाहिए। यह छोटे छोटे चरित्र रूपी सुमन मनुष्य के जीवनोद्यान में चरित्र की सुरभी चहुं ओर फैला देते हैं। खेद है कि हमारे युवक इन बातों को छोटा और साधारण समझ इन की उपेक्षा कर देते हैं। याद रखो छोटी वस्तुओं का समुदाय बड़ी वस्तु के निर्माण का कारण होता है। छोटी ईंटों से एक सुन्दर तथा विशाल भवन बन जाता है। एक-एक वर्षा की बून्द से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तालाब भर जाता है। किन्तु आज मनुष्य को ऊंचा उठाने वाली तथा सदाचार का निर्माण करने वाली उपर्युक्त बातों को हम अपने जीवन में बहुत कम चरितार्थ करते हैं।

आज शासक का शासित के प्रति, दुकानदार का ग्राहक के प्रति, पुत्र का माता पिता के प्रति, जो व्यवहार होना चाहिए उसका सर्वथा लोप हो रहा है। हमारे प्रत्येक व्यवहार में सत्यता, सरलता और ईमानदारी का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। जिधर भी दृष्टि उठाकर देखो, सभी व्यवहारों में चारसौ बीस का बोलबाला है। अनाचार, भ्रष्टाचार,दुराचार आदि, दिनों दिन बढ़ते जा रहे हैं। नाना प्रकार के नशा, सिनेमा आदि दुर्व्यसनों में हम, विशेष कर हमारे नवयुवक आक्रान्त हो रहे हैं। वचन भङ्ग करना तो हमारे लिए एक साधारण सी बात बन गई है। आज हमारे वचन का कोई मूल्य नहीं रहा। आज स्कूलों आदि में एक दूसरों की वस्तु को उड़ा लेना, चुरा लेना साधारण बात बन गई है। इस सम्बन्ध में हमारा नैतिक पतन इतना बढ़ गया है कि परीक्षा के दिनों में एक बेचारा निर्धन छात्र न जाने किस प्रकार से अपनी पाठ्य पुस्तकें खरीद कर लाया है, किन्तु दूसरे लड़के इस बात पर कुछ भी ध्यान न देकर उसकी पुस्तकें चुरा लेते हैं। दुकान पर जाकर उसकी दो रुपये की पुस्तकें चार आने में बेच कर अपने दुर्व्यसन दावानल में उसे स्वाहा कर देते दें। सत्य के व्यवहार का तो हमारे अन्दर से सर्वथा लोप हो गया है। झूठ बोलना, छल, कपट, फरेब यही हमारे जीवन के अंग बनते चले जा रहे हैं। आज न केवल हमारे जीवनों में प्रत्युत वचनों में भी व्यभिचार की मात्रा बढ़ती चली जा रही है। आज हमारे वचन एक निश्चित अर्थवाची नहीं, प्रत्युत परस्पर विरुद्ध अनेकार्थ वाची बन गये हैं। किसके साथ कैसा शिष्ट व्यवहार करना चाहिए यह भी हम और हमारी सन्तानें भूलती चली जा रही हैं। हमारे युवक तथा युवतियां छोटी बातों को लेकर भी अपने से बड़े माता, पिता, गुरु, विद्वान्, आचार्य के साथ अशिष्टता तथा असभ्यता का व्यवहार करने लग जाते हैं। आज हमारे अन्दर से तो अनुशासन का सर्वथा अभाव ही हो रहा है। शिष्य गुरु के अनुशासन में नहीं रहना चाहता; पुत्र अपने पिता के अनुशासन को ठुकरा देता है, सेवक स्वामी के अनुशासन की अवहेलना करता है। हमारे युवक तथा युवतियां आज किसी बड़े से बड़े तथा पूजनीय पुरुष की भी बात सुनने तथा मानने को तैय्यार नहीं। हमारे युवक तथा युवतियों के अन्दर मितव्ययिता का तो सर्वथा लोप ही हो गया है। वे अपने माता पिता के गाढ़े पसीने की कमाई को अपनो पाशविक प्रवृत्तियों की पूर्ति में ही उड़ा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। आज स्कूल में पढ़ने वाला एक निर्धन माता पिता का लड़का भी अपने पिता के पैसे को अपनी फ़जूल खर्चियो में पानी की तरह बहा देता है। आज देश की युवति तथा युवक अपने फैशन के नाना रूपों का प्रदर्शन करना ही अपने जीवन की इति श्री समझने लगा है। हमारे युवक तथा युवतियों के चटकीले भड़कीले प्रदर्शन तथा शृंगारिक हाव भाव क्या

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

छोटे और क्या बड़े सभी शहरों के बाजारों में कदम-कदम पर देखने को मिलेंगें। यही कारण है कि आज फ़िज़ूल खर्ची बढ़ती जा रही है और मितव्ययिता तथा संयम का अभाव होता जा रहा है। अब आप स्वयं विचार करें कि उपर्युक्त गुणों के अभाव में हमारे युवक युवतियों के चरित्र किस प्रकार उच्च और महान् बन सकेंगे। अतः अपने जोवन म सदाचार का सचार करने तथा चरित्रवान् बनने के लिये आवश्यक है कि हम उपर्युक्त गुणों को अपने अन्दर धारण करें। उन्हें छोटा और तुच्छ न समझें। प्रिय युवक, युवतियों ! याद रखो; जिसका चरित्र गया उसका सब कुछ गया। और जिस ने अपने आप को चरित्रवान् बना लिया, जिसने अपने जीवन में सदाचार का संचार कर लिया, मानो उसका जीवन एक आदर्श जीवन बन गया। आदर्श की ओर अग्रसर होना ही चरित्र की पहली सीढ़ी है। आशा है कि हमारे युवक और युवतियाँ चरित्र की इस प्रथम सीढ़ी पर पदार्पण कर अपने आदर्श की ओर अग्रसर होने का पूर्ण प्रयत्न करेगें।

—

जातिभेद का त्याग आवश्यक

यदि हिन्दू धर्मोन्मत्त विधर्मियों के घातक आक्रमणों से अपनी रक्षा करना चाहते हैं, ता उन्हें जातपाँत का सर्वथा त्याग करके अपने को संगठित करना होगा।　　—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

एक बात जो हम ने स्वराज्यसंग्राम में सीखी है वह यह है कि हमें जातपांत को सर्वथा मिटा कर जन्म की बड़ाई का त्याग कर देना चाहिये। इस युग में हमारा यही धर्म है।　　—माननीय श्री जयकर।

शुद्धि, छतछात निवारण संगठन इत्यादि इसी प्रकार के उद्देश्य इस एक ही वाक्य के अन्दर पाए जाते हैं कि 'जातपांत का झंझट तोड़ दो।　　—विनायक दामोदर सावरकर।

हमारी अनेक बुराइयों का कारण यही जातपांत है। ये जातें —जहां स्त्रियों की संख्या अधिक है वहां एक पुरुष के कई स्त्रियां करने, और जहां लड़कियों की कमी है वहां बाजारी व्यभिचार के जीवन का कारण होती हैं। जातपांत की तंग कोठरियों के कारण अपने रक्त में सन्तान उत्पन्न करने का काम बराबर जारी रहता है और सदोष दुर्बलेन्द्रिय बच्चे पैदा होते हैं।　　—माननीय श्री विट्ठलभाई पटेल।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'पावमानी द्विजानाम्—' वेदाधिकार विमर्श

श्री पं० चूड़ामणि जी शास्त्री 'विज्ञान भिक्षु'

कार्य निवृत्त आचार्य सनातन धर्म कालेज, मुलतान

अथर्ववेद १९. ७. १ में एक मन्त्र आता है—**स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्'**। अर्थात् मैंने वेदमाता की स्तुति की है जो कि प्रार्थना करने वाले द्विजों को पवित्र करती है, इसमें वेदमाता की स्तुति की गयी है कि 'वह द्विजों को पवित्र करती है'। इस खंड को देख कर पीछे के विद्वानों ने यह निश्चय कर लिया कि वेदमाता केवल द्विजों को ही पवित्र करती है, अतः द्विजमात्र ही वेद का अधिकारी है।

इसमें प्रश्न उपस्थित होता है कि 'द्विज' कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर कौन दे ? वेद स्वयम् उत्तर दे या कोई धर्मशास्त्र ? यदि कोई धर्मशास्त्र उत्तर दे तो धर्मशास्त्र मुख्य हो जाता है और वेदशास्त्र गौण। तब वेद अपने अर्थ के लिए परमुख प्रेक्षी बन जाता है—दूसरे का मोहताज। उसकी स्वतः प्रमाणता मारी जाती है। परन्तु आज तक ऐसा हुआ नहीं—सदा से वेद को ही मुख्यता मिलती रही है। किन्तु आज कल के प्रायः सभी विद्वान् वेद का अर्थ मनुस्मृति खोलकर ही करते हैं, उसमें लिखा है—**'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णा द्विजातयः'**

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण ही द्विज माने गये हैं।' हो सकता है किसी और स्मृति में भी ऐसा प्रमाण मिल जाए। परन्तु यह बात हृदय में जमती प्रतीत नहीं होती जो वेद, साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों से प्रकाशित हो, जिसमें **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय** (यजु० २६।२) इतना व्यापक उपदेश दिया गया हो—जिसमें ऋषि स्वयं प्रकाशित कर रहा हो कि—जैसे मैं इस कल्याणी वाणी वेद को 'जनेभ्यः' सभी मनुष्यों के लिए कहता हूं—आगे उसने स्वयं भी स्पष्ट कर दिया हो कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अपना पराया और जो इतने दूर का व्यक्ति है कि हम उसके हाथ का पानी भी नहीं पी चुके—जो 'अरण' है अपगतोदक सम्बन्ध है—जो इतना दूर—दूसरे राष्ट्र में बैठा है कि हम जिसके साथ मिलकर कभी खान-पान भी नहीं कर सके उस दूरस्थ व्यक्ति तक भी मेरा वेद पहुंचे।' उस व्यापक वेदोपदेश को भारतीय कतिपथ द्विजों तक सीमित रखना कहां तक सम्मत माना जा सकता है ? जिस वेद में अनेक स्थलों पर 'जन' और 'पुरुष' को सम्बोधन देकर उपदेश दिया गया है, उस वेद को केवल द्विजों तक कैसे सीमित रखा जा सकता है ? वेद का एक उपदेश सुनिये—

> **उद्यानं ते पुरुष ! नावयानं—**
> **जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।**
> **आ हि रोहेममृतं सुखं रथम्,**
> **अथ जिर्विः विदथमावदासि ॥**
>
> अथर्व. ८. १. ६।

हे पुरुष ! हे संसार के मानव ! तेरा ऊपर चढ़ना ही हो—जीवन में उत्थान ही होता चला जाय, 'नावयानम्' नीचे पतन न हो जाय। क्योंकि मैंने (परमेश्वर ने) तेरी आत्मा में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतनी दक्षता भर दी है इतनी चतुरता भर दी है कि तू पापकर्म करने में हिचकेगा—संकोच करेगा। आजा शरीररूपी रथ पर चढ़ बैठ, यह रथ तुम्हें अमर सुख (मुक्ति) तक ले जाएगा। जब बूढ़ा होगा तो ऐसा विदथ-ऐसा ज्ञान-दूसरों को भी देना'। वेद में जब इतना बड़ा उपदेश पुरुषमात्र को दिया गया हो उसे हम परिमित द्विजों तक कैसे रख सकते हैं ?

जिस वेद में यह उपदेश मिले कि—

सुविज्ञानं विकितुषे जनाय—
सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरद् ऋजीयः,
तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्॥

उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा रखने वाले मनुष्य मात्र (न कि द्विज) के लिये—प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अच्छी और बुरी दोनों भावनायें परस्पर संघर्ष करती रहती हैं। कि मैं ही विजय पाजाऊं दूसरी हार जाय, किन्तु सौम्य प्रकृति वाला मनुष्य सत्य और सरल भावना को तो स्वीकार कर लेता है और बुरी भावना को मिटा देता है'। इस सुन्दर उपदेश को—जिसमें अच्छाई और बुराई का निर्णय करना मनुष्यमात्र के हाथ दिया गया हो हम उस वेद को केवल परिमित भारतीय व्यक्तियों के लिये कैसे सीमित रख सकते हैं ? और तो और, यजुर्वेद तो यह कहता है कि—प्रत्येक मनुष्य के मन में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद पहले से ही विद्यमान हैं वे वेद उस में ऐसे चिपके हुए हैं—ऐसे ओतप्रोत हैं जैसे रथ की नाभि में अर। वह मन्त्र यह है—

'यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन्—
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिन् चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे
मनः शिव संकल्पमस्तु॥ यजुः ३४।५

इसमें स्पष्ट 'प्रजानाम्' कहा है 'द्विजानाम्' नहीं कहा है। ऐसी स्थिति में ऐ भारतीय विद्वानों ! वेदों को केवल द्विजों तक सीमित रखने वाले दूर दर्शी ! विपश्चितो ! अब क्या करोगे? वेद तो अब शूद्रों तक पहुंच गये क्यों कि मन तो उनका भी है। अब वेद को शूद्रों के मन से कैसे बाहर निकालोगे वेद तो उस मन में अरों की तरह ओत-प्रोत हो गया है। अब भी चेतो, एक बार फिर समाधि लगाओ कि हमने वेद को केवल द्विजों तक सीमित रखने की भूल की या ठीक किया।

अब मैं आपके सामने एक आपबीती घटना उपस्थित करता हूं—काशी में एक पण्डित सभा है—जो डेढ़ सौ वर्षों से चली आरही है उसके अधिवेशन कभी-कभी हो जाते हैं। सन् १९५० के लगभग काशी में संस्कृत सम्मेलन हुआ उसमें बड़े बड़े विद्वान् आये थे। इस अवसर पर काशी विद्वत् सभा ने भी अधिवेशन लगाया उसमें डेढ दो सौ के समीप चुने हुए विद्वान् बैठे थे मैं भी पहुंच गया। उसमें यह विषय रखा गया कि **'स्त्री शूद्रयोर्वेदाध्ययनाधिकारो नास्ति'** अर्थात् स्त्री और शूद्र वेद नहीं पढ़ सकते।' अधिवेशन का कार्य सम्भवतः श्री सत्यनारायण जी चला रहे थे श्री देवनायकाचार्य्य श्री निरीक्षण पति आदि प्रमुख विद्वान् प्रमुख कार्य कर रहे थे। जब यह प्रस्ताव खुले अधिवेशन में रखा गया तो सभा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में सन्नाटा छा गया कोई विरोध में खड़ा न हुआ। तब मैं साहस करके खड़ा हो गया और 'यथेमां वाचम्' का प्रमाण दिया । इस पर श्री देवनायकाचार्य जी ने संस्कृत में कहा—

'**नायं प्रकारः शास्त्रार्थस्य, न्यायशास्त्रानुसारेण पंचभिः अवयवैः समाधीयताम्**' अर्थात् केवल प्रमाण देना शास्त्रार्थ का प्रकार नहीं है अपने विषय को पांच अवयवों से सिद्ध करो। मैं न्यायदर्शन जानता था उसमें १ प्रतिज्ञा २ हेतु ३ उदाहरण, ४ उपनय और नियमन ये पांच अवयव दिखाये गये हैं।

तब मैंने अपना विषय यूं पुष्ट किया—

१. वेदाध्ययनाधिकारः स्त्रीशूद्रविषयकोऽप्यस्ति, मानवमस्तिष्कस्य, ज्ञानमात्रेऽधिकारित्वात्, २. अद्यतन स्त्रीशूद्रगृहीत वेदज्ञानवत्; ३. तथा चेम सर्वे स्त्रीशूद्रा वेदज्ञानाधिकारिणः, ४. तस्मात् तथा। अर्थात् वेदों के अध्ययन का अधिकार स्त्रियों और शूद्रों को भी है। क्योंकि मानव का मस्तिष्क ज्ञान मात्र का अधिकारी है, जैसे कि आज के स्त्री और शूद्र भी वेदों का ज्ञान प्राप्त करते हुए देखे गये हैं। इसलिये सभी वेद के अधिकारी है अतः पूर्वोक्त बात ठीक सिद्ध होती है।

इस उत्तर को सुनकर सभी विद्वान् शान्त हो गये, कोई एक भी विद्वान् रत्ती भर भी न बोला। तब मुझे यह कह कर बैठा दिया गया कि आपकी बात समाप्त हुई अब कोई दूसरा विद्वान् उठे। तब भारत का होनहार एक और विद्वान् उठा जिसका नाम है 'श्री उषर्बुध'। वह भी अच्छा बोला। सभा समाप्त हुई। बाहर आने पर एक वृद्ध विद्वान् ने मुझे कहा—आपने एक भूल की, विजय पत्र सभा से नहीं मांगा। आपने उनको यह कहना था कि 'या तो मेरे उत्तर का प्रतिवाद करो या विजय पत्र दो'। मैंने सारी आयु काशी में बितादी पर '**मानवमस्तिष्ककस्य ज्ञानमात्रेऽधिकारित्वात्**' यह हेतु कभी नहीं सुना। **प्रकृतमनुसरामः—**

अबतक तो हमने 'पावमानी द्विजानाम्' के अर्थ में मनुस्मृति के प्रमाण का पूर्वपक्ष ही रखा ठीक उत्तर क्या है? इसको मैं अब लिखता हूं कि 'द्विज' का ठीक अर्थ क्या है?

वेद के अंगरूप यास्कप्रणीत निरुक्त में यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' सभी वैदिक नाम आख्यातज हैं धातु से बने हैं एक भी शब्द रूढ़ नहीं। तब हम 'द्विज' पद को कैसे रूढ़ मान लें। अतः द्विज पद की व्युत्पत्ति ढूंढनी चाहिये—व्युत्पत्ति यह है कि 'द्वाभ्यां जायते इति द्विजः' जो दो से उत्पन्न हुआ हो, अर्थात् एक मातृकुल से दूसरा गुरुकुल से। श्री पाणिनि रचित 'संख्या वंश्येन' सूत्र की व्याख्या में श्री भट्टोजि दीक्षित ने लिखा है कि–'वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च' वंश दो प्रकारका माना गया है एक विद्या से और दूसरा जन्म से। इससे सिद्ध होता है कि 'द्विज' विद्या और जन्म दोनों से बनता है अर्थात् जो माता से जन्म लेकर गुरुकुल में—गुरु के घर में विद्वान् बनकर बाहर निकले वह द्विज है। ऐसा द्विज तो मनुष्य मात्र ही हो सकता है उस द्विज को अर्थात् शिक्षित व्यक्ति को—ज्ञानधारी मनुष्य को वेद माता पवित्र कर सकती है न कि केवल जन्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जात द्विज को। ऐसा व्यापक अर्थ स्वीकार करने से हमारा वेद व्यापक हो जाता है सार्वभौम हो जाता है। इससे शिक्षा (कम्पल्सरी) आवश्यक हो जाती है ऐसी स्थिति में वेद माता उन द्विजों को—शिक्षितों को—पवित्र कर सकती है।

निरुक्त में एक मन्त्र आया है जो किसी शाखा का है—वह बड़े महत्त्व का है—

यमेवविद्याः शुचिमप्रमत्तं--
मेधाविनं ब्रह्मचर्य्योपपन्नम् ।
तस्ते न द्रुह्येत् कतमच्चनाह
तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्'

इसमें स्पष्ट लिखा है कि हे ब्रह्म की रक्षा करने वाले ब्राह्मण देवता! तू जिसको भी समझ ले (इसमें कोई द्विज की शर्त नहीं है) कि यह पवित्र, सावधान. मेधावी, और ब्रह्मचारी है परन्तु गुरुद्रोही नहीं है बस उसे ही मुझे दे दे वह इस सुखनिधि वेद की रक्षा करेगा।'

जिस वैदिक साहित्य में वेद का अधिकारी उक्त गुणसम्पन्न कोई भी व्यक्ति हो, चाहे भारत का हो या इंग्लैंड का अमेरिका का हो या रशिया का फ्रांस का हो या अरब का-कोई भी हो वह वेद का अधिकारी माना जा सकता है। अतः भारतीय विद्वानो ! दिल खोलकर अब यह घोषणा कर दो कि—

'वेद ईश्वरीय ज्ञान है, ईश्वर सबके लिये समान है मनुष्यमात्र को—चाहे वह किसी भी राष्ट्र का क्यों न हो वेद का अधिकार है। उसे उपनीतकर-गुरु के समीप लाकर गुरुकुल में सुशिक्षित कर वेद का अधिकार दो। वेद को बन्द रखना मानो सर्प को घड़े में बन्द करना है। वेद तो कहता है कि **पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्'** ऐ पांचप्रकार के मनुष्यो ! मेरे यज्ञ में आओ।' इसकी व्याख्या हम फिर कभी करेंगे।

चूडामणि 'विज्ञान भिक्षु'
फराशखाना मुलतान सेवासमिति देहली।

[सनातनधर्म संस्कृत कालेज मुलतान के कार्य निवृत्त आचार्य सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० चूड़ मणि जी शास्त्री का उदारता सूचक यह महत्त्वपूर्ण लेख हम प्रसन्नता से प्रकाशित कर रहे हैं। हमारा सब निष्पक्ष विद्वानों से अनुरोध है कि अपने अन्दर इसी उदारता को धारण करें जो मान्य शास्त्री जी ने प्रदर्शित की है। अनुदारता से धर्म की हानि होती है रक्षा नहीं।]

—सम्पादक गु० प०

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
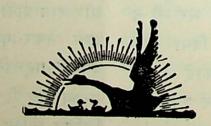
आर्य्यसमाज सैद्धान्तिक राजनीति-पथ पर अग्रसर हो !

धर्म-हीन राजनीति की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।
'स्वराज्य' का अर्थ है सबको सुख-सुविधाएं मिलना।
स्वस्थ आलोचना जनतन्त्र का भोजन है।
लेखनी और वाणी की स्वतन्त्रता आवश्यक है। —गाँधी जी

आर्य्यसमाज और उसके प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने, धार्मिक जगत् में, बुद्धिवाद की समुज्ज्वल ज्योति जगमगायी। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और शिक्षा का समादर तथा सम्मान करना सिखाया। समाज-संशोधन के क्षेत्र में तो उन्होंने वह काम कर दिखाया जो इतिहास के अमर पृष्ठों पर सदैव स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा। विविध दिशाओं में, सबलता तथा सफलता से किये गये आर्य्य-समाज के सेवा-कार्यों की किस महापुरुष ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा नहीं की ?

'स्वराज्य' का स्रोत

भारत की पराधीनता से खिन्न होकर, आज से पचासी वर्ष पूर्व—जब इस देश में किसी राजनैतिक सभा-संस्था का जन्म भी न हुआ था— ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

"आज भारत विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो पूर्ण सुखदायक नहीं होता।"

'स्वराज्य,' 'स्वदेशीयता' का समर्थन, और एक 'सत्तात्मकता' के स्थान में प्रातिनिधिक शासन का वैदिक विधान सर्वप्रथम हमें ऋषि दयानन्द की ही लेखनी तथा वाणी में मिलता है। इसके पश्चात् तो देश के अन्य अनेक महान् नेताओं की अध्यक्षता में असंख्य बलिदानी वीरों ने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए, प्राणों की बाज़ी लगाई। आर्य्यसमाजों के सदस्य तथा सेवक भी व्यक्तिगत रूप से, बहुत बड़ी संख्या में, इस स्वातन्त्र्य-संग्राम में सोत्साह सम्मिलित हुए। अन्ततः महात्मा गांधी का तप, त्याग और पुण्य-प्रताप सफल हुआ। सबको स्वतन्त्रता देवी के दिव्य दर्शन हुए। सम्माननीय नेता श्री सुभाष-चन्द्रबोस ने भी इस दिशा में अति प्रशंसनीय प्रयत्न किया।

'स्वराज्य' का स्वरूप

'स्वराज्य' तो प्राप्त हो गया परन्तु 'सुराज्य' की आवश्यकता अभी बराबर बनी हुई है। महात्मा गांधी की परिभाषानुसार 'सुराज्य' का अर्थ है— अन्न वस्त्र की बहुतायत—इतनी कि उसके बिना किसी को भूखा-नंगा न रहना पड़े। एक बालिका भी घोर अन्धकार में निर्भयता के साथ घूम-फिर सके। एक-दूसरे की रक्षा तथा आदर करे। स्त्रियां, माताएं और बहनें समझी जाएं। ऊंच-नीच का भेद-भाव न हो। कोई मन्त्री महलों में न रहे। किसी मन्त्री या अधिकारी को ऊंची तनख्वाहें न दी जाएं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बड़े-बड़े खर्चीले तथा बरबादी भरे सरकारी महकमे न हों। रिश्वत लेने का पाप नष्ट कर दिया जाए। शिक्षा, मानसिक व्यायाम या दिमागी अय्याशी का नाम न हो, बल्कि उसका अर्थ हो—मानवता का विकास और जीवन यापन सम्बन्धी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होना। 'सुराज्य' का अर्थ यह नहीं है कि मुट्ठी भर लोग तो महलों में रहकर सुख भोगें और करोड़ों बुरी तरह संकट सहें। यदि एक आदमी अपना पेट भरता जाता है, और गरीबों की परवाह नहीं करता तो वह चोरी करता है। 'सुराज्य' में नीचे से नीचे और ऊंचे से ऊंचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। न किसी का शोषण किया जाए और न करने दिया जाए। लेखनी और वाणी दोनों स्वतन्त्र रहें। इत्यादि

धर्म और राजनीति

महात्मा गांधी ने सुराज्य सम्बन्धी जो सुन्दर भावनाएं, उपर्युक्त शब्दों में व्यक्त की हैं, आज उन पर कहां ध्यान दिया जा रहा है? भारतीय 'गणतन्त्र' तो विधान सभाओं के वाचनिक प्रहार और कानूनी कोड़ों की मार से ही भ्रष्टाचार का भूत भगाना चाहता है। धर्म और सदाचार का उसने सर्वथा बहिष्कार कर रक्खा है, जब कि गांधी जी कहते हैं—

'मेरे नज़दीक धर्म-हीन राजनीति कोई चीज़ नहीं है, धर्म के मानी वहमों और गतानुगतिकता के नहीं हैं। द्वेष करने वाला और लड़ने वाला धर्म नहीं, बल्कि विश्व-व्यापी सहिष्णुता का धर्म। मैं धर्म से भिन्न राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकता। वास्तव में धर्म तो हमारे हर एक कार्य में व्यापक होना चाहिए। धर्म का अर्थ कट्टर पन्थ नहीं, उस का अर्थ है—विश्व की राजनैतिक सुव्यवस्था। बाहर की अपेक्षा भीतरी पवित्रता की ज्यादा ज़रूरत है भीतर अगर घुन लगा हो तो उस पर बनाया हुआ सर्वथा दोषहीन राज-विधान भी सफेद कब्र सा होगा। हमें आत्मशुद्धि और आत्म-त्याग की भावना बढ़ानी होगी। चरित्र के बिना सारा ज्ञान बुराइयों की जड़ है। नीति सदाचार और धर्म एक ही बात है इनके बिना मनुष्य-जीवन बालू पर खड़े किए गए मकान की तरह है।

जिस 'धर्म' या 'सदाचार' को भारतीय 'गणतन्त्र' तथा संविधान से सर्वथा बहिष्कृत कर दिया गया है, उस पर महात्मा गांधी कितना बल देते हैं, यह बात उपर्युक्त पंक्तियों से भली-भांति जानी जा सकती है। महात्मा जी ने 'सुराज्य' की परिष्कृत परिभाषा की है, और जिन विशेषताओं को वे 'सुराज्य'-संविधान में सम्मिलित करना चाहते थे, उन का आज कोई जिक्र तक नहीं करता। किसान मजदूर तथा जनता घोर संकट में है। आर्थिक कठिनाइयों ने सब को त्रस्त-ग्रस्त कर रखा है। जिस 'सुराज्य' युग में स्नेह, समता, सहयोग तथा सद्भावना का सुखदायक दृश्य दिखाई देना चाहिये था, आज उसमें दमन, पद-प्रभुता, गोली-कांड, हड़ताल, अनशन, विस्फोट, सत्याग्रह, भुखमरी, निरुद्यमतादि की चण्डी चिंघाड़ रही है! क्या बापू ने ऐसे ही 'स्वराज्य' या

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'सुराज्य' की कल्पना की थी ! क्या इसी 'स्वतन्त्रता' के लिए, देश-भक्त वीरों ने अमूल्य प्राणों की आहुति दी थी ! क्या इसी 'स्वतन्त्रता' के निमित्त अगणित त्यागी-तपस्वी बलि-वेदी पर चढ़े थे ।

राजनैतिक सम्प्रदायवाद

देश में धार्मिक सम्प्रदाय तो क्षीण हो रहे हैं, परन्तु राजनैतिक सम्प्रदायों का बल बढ़ रहा है। इन सम्प्रदायों के ही महन्त-मठाधीशों में से कुछ प्रवीण-पुङ्गव, सत्ता देवी के पण्डे-पुजारी हो जाते हैं । तब उनका आदर्श 'गांधीवाद' न रहकर, विदेशीय शासनविधिका अन्धानुसरण मात्र बन जाता है । वे अपने कृपा-कटाक्ष से निमेष मात्र में देश-द्रोही को देश-भक्त और देश-भक्त को देश-द्रोही-यानी सोने को पीतल और पीतल को सोना-बना डालते हैं । सीधी-सादी और भोली-भाली जनता को अपने मनोमोहक मायाजाल मे फांस लेना, उनके बांएं हाथ का खेल बन जाता है । आज प्रायः केवल 'गांधी जी की जय' बोलकर गाँधी जी का सच्चा आदर्श-संसार के सामने उपस्थित किया जारहा है । परन्तु इस आदर्शवादिता के बेढंगे वातावरण में, सत्य-अहिंसा का श्रवण-सुखद संगीत तो नहीं सुनाई पड़ता, हां, ठाठ-पसन्दी, स्वार्थ-साधना, पदलोलुपता, अधिकार-लिप्सा, बिरादरीवाद, पुर-परिवार- पोषकता आदि की भौंड़ीभणन्तें अवश्य कर्ण-गोचर होती रहती हैं ।

महात्मा गांधी कहते हैं कि "लोकतन्त्र में, लेखनी तथा वाणी स्वतन्त्र होनी चाहिए । रचनात्मक और विवेकपूर्ण आलोचना ही गणतन्त्रीय सरकार का भोजन है । भेड़ों के झुण्ड की भांति बिना सोचे, बिना इधर-उधर देखे, आगे बढ़ना 'प्रगति' नहीं है ? विचार, वाणी और आचार में सत्य होना ही सत्य है ।" परन्तु आज राजनैतिक सम्प्रदायवाद में विचार-स्वातन्त्र्य के लिए कहीं स्थान नहीं ! कोई कितनी ही सद्भावना से, कैसे ही अच्छी बात क्यों न कहे, परन्तु यदि वह गुटबंदी के विरुद्ध है तो कहने वाला अनुशासन की तोप से दाग़ दिया जाता है ।

जनतन्त्र का क्रिया-करम

आज दलतन्त्र या पार्टी-शासन तो है, परन्तु 'जनतन्त्र' नहीं । यही देखकर वर्त्तमान युग के महान् विचारक एवम् गांधीवाद के प्रमुख मर्मज्ञ सन्त विनोवा कहते हैं—

आज की स्थिति क्या है ? मानलो सौ वोटर्स (मतदाता) हैं । इनमें से साठ लोगों ने वोट दिये,चालीस ने नहीं । इनमें तीस वोट जिसे मिले, वह पार्टी राज चलाती है और बाकी तीस वोट भिन्न पक्षों में बंट जाते हैं । इसका मतलब यह हुआ कि तीस लोगों की सत्ता सौ पर चलेगी। इस पर बोगस जनतन्त्र चलता है । पुराने राजा जितना नुकसान कर सकते थे, उससे ज्यादा नुकसान ये कर सकते हैं । क्योंकि लोकमत अनुकूल है, ऐसा दावा ये कर सकते हैं ।"

इतना ही नहीं, सन्त बिनोवा इसी सम्बन्ध में पुनः लिखते हैं–"जैसे बेवकूफ़ बादशाह और उसका वज़ीर विद्वान् और ज्ञानी होता है न बादशाह की चोटी और दाढ़ी जो भी हो, वह वज़ीर के हाथ में ही रहेगी । वह बादशाह तो नाम-मात्र का ही है, क्योंकि वह मूढ़ है । भले

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो उसे सिंहासन पर बिठा दिया हो, फिर भी वह भेड़ासन है। नाम-मात्र का बादशाह परन्तु गुलाम होकर बैठा है। हिन्दुस्तान की जो डिमोक्रेसी (लोकतन्त्र) है, उसकी हालत ऐसे ही बादशाह की-सी है। इसलिये सारे देश का दारोमदार—उसका उद्धार करना या डुबाना आज चन्द लोगों के हाथों में है। यानी हमने डिमोक्रैसी के नाम पर, सारी सत्ता चन्द लोगों के हाथ में देदी है और 'डिमोक्रैसी' 'डिक्टेटर शाही' बनी हुई है।"

मोहमयी सत्ता

वस्तुतः बात यह है कि जिस राजनैतिक सम्प्रदाय या 'सियासी गुट्टे' ने बातें बना या सब्ज़ बाग़ दिखाकर, 'वोट' बटोर लिये वही सत्ताधीश बन बैठा ! फिर पांच वर्ष तक जनता उसकी गुलाम; और वह जनता का स्वामी, सर्दार, सरकार और सब कुछ ! फिर तो योजना युक्तियां अपने कर्कश करों में, कठोर करों की कनक-कुसुमाञ्जलियां लेकर, उन्हें जर्जर जनता के जीर्ण-शीर्ण शरीर पर बिखेरती हैं, सत्ता स्वामिनी दमन-दीपकों से आरती उतारती है, उपेक्षा-उद्भूत आतङ्क-अक्षतों से अर्चना की जाती है और भभकती भाषा में भुनी घुड़कियां झिड़कियां अभिनन्दन के लिए आगे आती हैं।

आज देश में सत्ता देवी के पण्डे-पुजारी तो बहुत हैं, परन्तु निष्पक्ष नेता नहीं दिखाई देता। ऐसा निपुण निरीह नेता जो पद-प्रभुता का प्रभाव और सत्ता-सुन्दरी का बाहु-पाश त्याग कर, जर्जर जनता को गांधीवाद के सच्चे आदर्श की ओर अग्रसर करे। राजनैतिक सम्प्रदाय की सड़ायंद अथवा पार्टी-प्रियता के प्रपंच-पंक से दूर हो। जो निर्भीक और निष्पक्ष होकर बतावे कि स्वतन्त्र देश में लोकतन्त्र किस प्रकार सफल, सबल और सार्थक बन सकता है। गत वर्ष इन पंक्तियों के लेखक ने एक 'खुली चिठ्ठी' लिख कर बड़े विनम्र भाव से, माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की थी कि वे प्रधान मन्त्रित्व का सूत्र, किन्हीं अन्य सुयोग्य हाथों में सौंप कर, अपने विशाल व्यक्तित्व का प्रयोग, 'जन-नायक' रूप में करें। इससे जनता, सत्ता और राजनैतिक, सम्प्रदायवाद आदि सब का सुधार होगा। मेरी उक्त 'खुली चिठ्ठी' को देश के कितने ही विचारक विद्वानों ने 'जनता की आवाज' बताया। महामान्य राष्ट्रपति के यहां से भी सूचना मिली कि उन्होंने वह चिठ्ठी पढ़ ली है। स्वयम् नेहरू जी ने भी उत्तर प्रदेशीय राजनैतिक सम्मेलन के अवसर पर, जौनपुर में भाषण देते हुए कहा—

इधर समाचार पत्रों में इस प्रकार का एक पत्र प्रकाशित हुआ है कि मैं जनता की तभी अधिक सेवा कर सकता हूं, जब प्रधान मन्त्री पद छोड़ कर, जनता के बीच आजाऊं। मैं भी बहुत कुछ यही अनुभव किया करता हूं, और आज से तीन वर्ष पूर्व मैंने ऐसा प्रस्ताव किया भी था, परन्तु मित्रों के बहुत कुछ आग्रह करने पर मैंने यह पद न छोड़ा।

आश्चर्य है कि नेहरू जी जैसे महान् पुरुष जिस कार्य को स्वयम् आवश्यक और उपयोगी समझते हैं, उसे वे मित्रों के आग्रहवश नहीं कर पा रहे। जन-सेवा सम्बन्धी महान् कर्तव्य-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पालन के आगे मित्रों के मोहमय आग्रह का क्या मूल्य हो सकता है। यह बात विचारणीय है। प्रधान मन्त्री, मुख्य मन्त्री, राज्यपाल आदि के तो बंधे-बंधाये काम होते हैं, वे तो नेहरू जी के बिना भी चलते रहेंगे। परन्तु उनका सा विशाल व्यक्तित्व खोजने पर भी न मिलेगा। क्या ही अच्छा हो, पण्डित जी मित्रों का आग्रह त्याग कर, जनता के बीच आजाएं और 'स्वराज्य को' 'सुराज्य' तथा 'दलतन्त्र' को 'गणतन्त्र बनाने का प्रयत्न करें। वे इस कार्य के सर्वथा योग्य एवम् उपयुक्त हैं। सरकारी अधिकारी रहते हुए उन से यह महान् कार्य कदापि न हो सकेगा। विशाल व्यक्तित्व का उचित उपयोग तो जन-नायक के रूप में ही हो सकता है सत्ताधारो की हैसियत से नहीं।

जन-शिक्षण

नेता विहीन स्वतन्त्र भारत में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या वर्तमान परिस्थिति निराशाजनक है? क्या ये 'स्वतन्त्रता' और 'स्वराज्य' निरर्थक रहे! नहीं, ऐसा सोचना भी भयंकर भूल और अक्षम्य अपराध है। 'गणतन्त्र' की स्थापना देश के लिए बड़े गर्व और गौरव की बात है। उसे सब प्रकार सफल सिद्ध कर दिखाना प्रत्येक भारतवासी का प्रधान कर्तव्य है। महात्मा गांधी ने स्पष्ट कहा है कि सरकार तो जनता जैसी बनादे वैसी बनती है। 'प्रजातन्त्र' में लोगों को चाहिए कि वे सरकार की कोई ग़लती देखें तो उसकी ओर उसका ध्यान खींचे। ज़रूरत समझें तो सरकार को हटा दें।" इस राजनैतिक सम्प्रदायवाद के युग में ऐसा कोई नेता या संगठन नहीं जो निष्पक्ष, निर्भय और निर्लिप्त भाव से, पद-प्रभुता तथा सत्ता का मोह त्याग कर, स्वतन्त्र भारत की जनता को राजनैतिक दृष्टि से, उस का कर्तव्य अधिकार बोध करावे। जनतन्त्र के मौलिक सिद्धान्तों को सुनावे-समझावे। 'गांधीवाद की विशेषता बतलावे। 'गांधीवाद' क्या है? धर्म, नीति, नैतिकता, समता, सदाचार, सहयोग, स्वतन्त्रता, स्नेह, सहानुभूति ही तो वास्तविक गांधीवाद है, और कुछ नहीं। ऋषि दयानन्द तथा अन्य महानुभावों ने भी, देश-कल्याण के लिए, इन्हीं तत्वों को बहुत पहले, आवश्यक एवम् अनिवार्य बताया है। कानून बनाने वाली सभा-संसदों तथा परिषदों पर, जनता के गाढ़े परिश्रम की कमाई बरबाद करने से सच्चे 'सुराज्य की स्थापना नहीं हो सकती। इस के लिए तो त्याग-तप, संयम, हृदय-परिवर्तन, सत्य और अहिंसा का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रिय महासभा (कांग्रेस) ने महान् कार्य किया। उसकी आवाज़ पर कोटि-कोटि जनता देश-सेवा के पुण्य पथ पर अग्रसर हुई, त्याग-तप की ज्योति जगमगायी, बलिदानों को बल मिला, फलतः देश स्वतन्त्र हो गया। महात्मा गांधी ने अपनी महान् दूर दर्शिता से सोचा कि कहीं त्यागी-तपस्वी राष्ट्र-सेवक स्वराज्य-सुख पाकर, सत्ता-सेवी न बन जाएं, इसलिये उन्होंने कांग्रेस को समाप्त कर, 'जनतन्त्रवाद' पर विशेष बल दिया था। परन्तु बापू की यह विमल वाणी व्यर्थ गयी!

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाति भेद का अभिशाप

वीर विनायक सावरकर जी

एक सच्ची कथा

ढाका (पूर्वी बंगाल) में एक लम्बा चौड़ा कालिचन्द्र नामक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण कुमार नित्य प्रातः ब्रह्मपुत्रा नदी में स्नान करने जाया करता था। उसका मार्ग ढाका के नवाब के महल के निकट से होकर जाता था। नवाब की इकलौती बेटी झरोखे में से उसे जाते देखती थी। उस का ब्राह्मण कुमार पर प्रेम हो गया। उसने अपने पिता से कहा। पिता ने उस लड़के को बुला कर अपनी बेटी से विवाह करने के लिये कहा। पर ब्राह्मण कुमार ने एक मुसलमान युवती के साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। इस पर नवाब ने अपनी बेटी को हिन्दू हो जाने की अनुमति दे दी। पर रूढ़िवादी पंडितों ने कहा कि किसी मुस्लिम को हिन्दू बनाने की आज्ञा शास्त्र में नहीं। तब नवाब ने उस युवक को मुसलमान हो जाने को कहा पर उसने इन्कार कर दिया, इस पर क्रोध में आकर नवाब ने उस का वध कर डालने की आज्ञा दे दी। ब्राह्मण-कुमार बधस्थल पर गर्दन झुकाए खड़ा है। उसके मुण्ड को रुण्ड से अलग कर डालने के लिये बधिक की तलवार उठ चुकी है। इतने में नवाब की लड़की लड़खड़ाती हुई सामने खड़ी हो जाती है। बधिक से कहती है—इसका नहीं मेरा बध करो। मैं अपने प्रियतम के चरणों में बलिदान करूंगी।

यह देख ब्राह्मण कुमार का हृदय द्रवित हो जाता है। वह उसे हृदय से ग्रहण कर लेता है और विवाह करने के लिये सहमत हो जाता है। इस पर उसे छोड़ दिया जाता है।

युवक ने अपने पिता से और पण्डे पुरोहितों से नवाबनन्दिनी को हिन्दू बना लेने की प्रार्थना की। पर सबने यह कह कर इन्कार कर दिया कि धर्मशास्त्र इस की आज्ञा नहीं देता। तब यह युवक और युवती दोनों जगन्नाथपुरी में पहुंचे। उन्होंने निश्चय किया कि अपने हृदयों की पवित्रता की साक्षी दे कर हम जगन्नाथ जी के चरणों में विवाह बन्धन में बंध जाएंगे पर पण्डों ने उन्हें जगन्नाथ के दर्शन न करने दिये। उन्होंने लातें और घूंसे मारकर दोनों को निकाल दिया। इस पर युवक में प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी। वह मुसलमान बन गया और उसने सम्पूर्ण बंगाल को मुसलमान बना डालने का बीड़ा उठाया। इतिहास में वह 'कालापहाड़' के नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृति का पर्दा

कविवर श्री पं० वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड, हैदराबाद

(१)

पवन के झकोरों से डालें हिली हैं,
हुआ दूर तम सब दिशाएं खिली हैं।
हुए मस्त खुशियों में पंछी हैं गाते,
जो मुरझाये दिल में भी हैं रंग लाते।

(२)

इधर छातियाँ खोल घेरा बनाये,
उठे हैं अचल शान से सिर उठाये।
इधर खेतियां हँस हँस के हैं लहलहाती
हृदय में अनेकों उमंगें उठातीं ॥

(३)

इधर घर से बिछुड़ी नदी जा रही है,
न जाने भरे दिल से क्या गा रही है।
गुंजाती दिशाएं भुजाएं उठाती,
न जाने किसे प्रेम से है बुलाती ॥

(४)

उधर मेघ क्या खेल दिखला रहे हैं,
नये भाव रङ्गत नई ला रहे हैं।
ये अम्बर है, धरणी का या चित्रपट है,
या कोई छुपा खेल दिखलाता नट है ॥

(५)

जिधर देखलो दृश्य कोई निराला,
नजर आता मन को न जाता सम्भाला।
सभी ओर रङ्गों का जाला तना है,
यहाँ पत्ता पत्ता नज़ारा बना है ॥

(६)

ये क्या खोखलापन, ये क्या शून्यता है?
ये है स्तब्धता क्या, ये क्या मौनिता है?
ये क्या शब्द हैं और क्या रंगतें हैं,
न कुछ सूझ पड़ता है, क्या कह रहे हैं ॥

(७)

ये क्या चीज़ है कोई कुछ तो बता दो,
हमें मर्म इनका ज़रा तो जता दो।
खुला है ये आकाश धरती खुली है,
मेरे दिल में करती ये क्या चुलबुली है? ॥

(८)

कोई कैसे समझे, सुझावे, विचारे,
ये छोटा सा दिल और ये गहरे नज़ारे।
वह क्या चीज़ है जो नज़ारा नहीं है,
मगर मन कहीं पर भी टिकता नहीं है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(९)

ये मट्टी ये पत्ते, ये फल फूल सारे,
उसी को समझ आते, जो कुछ विचारे।
नज़ारे उसी के लिये हैं जो देखे,
मैं खुद एक नज़ारा हूं, देखे जो समझे॥

(१०)

ऐ दृश्यों से अपने को दिखलाने वाले,
सभी के दिलों को यों बहलाने वाले।
हे पल पल में रंगत बदल देने वाले।
बिना हाथ तसवीर रच देने वाले॥

(११)

बहुत कुछ है तूने यहां पर दिखाया,
मगर क्या है कुछ भी नहीं यह बताया।
दिखा रूप सच्चा ये पर्दा उठा दे,
मेरे दिल में आनन्द गङ्गा बहा दे॥

आर्यसमाज महिमा

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर।

प्रिय पावन आर्यसमाज, मन भावन आर्यसमाज।
ज्ञान प्रकाशक घोर, अविद्या-तम का हरने वाला॥
भ्रांति-विनाशक भद्र-भावना, उर में भरने वाला।
विकट विरोध विघ्न बाधा, से कभी न डरने वाला॥
देश हितैषी आर्य जाति की सेवा करने वाला।
मानवता का परम पुजारी, लोकमान्य सिरताज॥
प्रिय पावन आर्यसमाज, मन भावन आर्यसमाज।
दीन दुखी विधवा अनाथ, को तूने धैर्य बंधाया।
दलित-वर्ग नारी दल को, समुचित अधिकार दिलाया॥
भेद-भाव कर दूर प्रेम का, पावन पाठ पढ़ाया।
तूने ही सदियों से सोता, भारत देश जगाया॥
'प्रकाश' देश में तूने ही तो, छेड़ी तान स्वराज।
प्रिय पावन आर्यसमाज, मन-भावन आर्यसमाज॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां पत्रिका कार्यालय में भेजनी चाहियें)

आर्यसमाज का इतिहास द्वितीय भाग

लेखक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली द्वारा प्रकाशित पृ ३७६ मूल्य ५) ।

आर्यसमाज के प्रामाणिक इतिहास की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जा रही थी। सुप्रसिद्ध यशस्वी लेखक श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने सार्वदेशिक सभा की प्रार्थना पर इस कार्य को अपने हाथ में लेकर अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। यह इतिहास तीन भागों में समाप्त होगा। प्रथम भाग वि० सं० २०१३ में गतवर्ष प्रकाशित हो चुका है। द्वितीय भाग संवत् २०१४ में प्रकाशित हुआ है जिसमें इस २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से सन् १९४६ तक की आर्यसमाज की गतिविधियों और शिक्षा, समाज-सुधार, शुद्धि, दलितोद्धार तथा राष्ट्रोन्नति के कार्यों पर अत्यन्त प्रामाणिक रूप में प्राप्त तथ्यों के आधार पर सरल, सजीव, सरस और ओजस्विनी भाषा में प्रकाश डाला गया है जैसी कि मान्य पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् इतिहासकार से आशा की जा सकती थी। पुस्तक के इस भाग को ६ खण्डों में विभक्त किया गया है जिनके अन्तर्गत अनेक अध्याय हैं और अन्त में २ परिशिष्टों में से एक में दक्षिण भारत आर्य सम्मेलन मद्रास के अध्यक्ष श्री सत्यमूर्ति जी का अभिभाषण और दूसरे में पं० श्याम जी कृष्णवर्मा का संक्षिप्त जीवन-चरित्र और कार्य दिया गया है।

गुरुकुलों की स्थापना तथा उनका विकास, सरकारी कोप की घटनाएं, पटियाला में अग्नि परीक्षा, काली घटाएं फट गईं, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना, विदेशों में धर्मप्रचार, शुद्धि, जातिभेद विरोध तथा दलितोद्धार, प्रान्तों में आर्यसमाज की प्रगति, दक्षिण में प्रचार, स्वाधीनता संग्राम में आर्यों का सहयोग, स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान, देहली में प्रथम सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन, आर्यसमाज की संस्थाओं का सिंहावलोकन, हैदराबाद में आर्य सत्याग्रह, सत्यार्थप्रकाश पर सिन्ध सरकार का आक्रमण, आर्यसमाज की विविध प्रवृतियाँ, स्वाधीनता प्राप्ति में आर्यसमाज का भाग इत्यादि सभी प्रकरण अत्यन्त उपयोगी और पठनीय हैं जिनमें सुयोग्य लेखक महोदय ने अत्यन्त निष्पक्षपात भाव से घटनाओं का उल्लेख और उनका मार्मिक विवेचन किया है।

यह इतिहास प्रत्येक नरनारी के लिये जो आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील संस्था के विषय में प्रामाणिक परिचय प्राप्त करना चाहता है अनिवार्य रूप से उपादेय है। हम इसका अधिक से अधिक प्रचार चाहते हैं और आशा करते हैं कि न केवल इसका अन्तिम तृतीय भाग शीघ्र प्रकाशित होगा बल्कि इस सम्पूर्ण इतिहास का भारत की प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, रशियन आदि विदेशी भाषाओं में भी यथोचित अनुवाद वा तदाश्रित विवरण का प्रबन्ध किया जायगा जिससे सब देशों का शिक्षित वर्ग आर्यसमाज के विषय में ठीक २ परिचय प्राप्त कर सके।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत के सन्त-महात्मा

लेखक--श्री रामलाल, प्रकाशक--वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लि० ३ राउन्ड बिल्डिग, कालबा देवी रास्ता बम्बई २ पृष्ठ १०१६ मूल्य १०.०० ।

इस ग्रन्थ में भारत के ११४ सन्त महात्माओं के जीवन की रूप-रेखा उनके जीवनदर्शन, चित्र तथा मुख्य-मुख्य उपदेशों सहित दी गई है जिनमें देवर्षि नारद, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, आचार्य शङ्कर, आचार्य रामानुज, मध्वाचार्य, स्वामी रामानन्द, सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त रैदास, सन्त कबीर, गुरुनानक देव, गोस्वामी, तुलसीदास, मीराबाई, सन्त सूरदास, समर्थ रामदास, सन्त तुकाराम, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, योगी श्री अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ, रमण महर्षि इत्यादि सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह सन्त महात्माओं के विषय में प्रचलित विश्वासानुसार परिचय प्राप्त करने के लिए एक उपयोगी ग्रन्थ बन गया है। उन महात्माओं की शिक्षाओं का सार अन्त में दे देने से ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इन जीवनियों के कई अंश विचारशील पाठकों को अविश्वसनीय प्रतीत होंगे क्योंकि प्रचलित विश्वासानुसार उनके जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का श्रद्धालु संग्राहक महोदय ने संग्रह किया है और ऐसा करते हुए प्रतीत होता है उन्होंने अपने विवेक व तर्कशक्ति को काम में लाने की आवश्यकता नहीं समझी तथापि सम्पूर्णतया यह संग्रह उपयोगी है। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी का उल्लेख भी इन महात्माओं की सूची में अवश्य होना चाहिये था। भूमिका 'कल्याण सम्पादक' श्री हनुमान् प्रसाद पोद्दार जी ने लिखी है जो अच्छी है, किन्तु उसके प्रथम ही वाक्य से हम असहमत हैं कि 'सन्त और भगवान् में कोई अन्तर नहीं।' माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी के शुभ वचन ने पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। हम आशा करते हैं कि पुस्तक के अगले संस्करण में संग्रह करते हुए अधिक विवेक को काम में लाया जायगा जिससे यह सब के लिये मान्य और उपादेय हो सके। श्री रामलाल जी इस परिश्रम के लिए अभिनन्दनीय हैं।

वेदों के शुद्ध संस्करण

प्रकाशक स्वाध्यायमंडल आनन्दाश्रम किला पारडी जि० सूरत ।

मान्य श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी की अध्यक्षता में 'स्वाध्याय मण्डल' वेद संहिताओं का शुद्ध संस्करण निकालने के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुका है। इन मासों में उसकी ओर से ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद के सूक्ष्माक्षर शुद्ध संस्करण प्रकाशित हुए हैं जिन का मूल्य क्रमशः १२.०० ?.०० और ४.०० है। सामवेद का नया संस्करण प्रकाशित होने वाला है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। इनका पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है।' प्रत्येक आर्य को अपने घर में वेदों के उत्तम संस्करणों की प्रति रख कर उनका नित्य स्वा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ध्याय करना चाहिये। इन संस्करणों की एक विशेषता यह है कि अन्त में मन्त्रों की वर्णानुक्रम सूची देदी गई है जिससे इनकी उपयोगिता बढ़ गई है। पूर्ववत् टाइप मोटा होने से मन्द दृष्टि नर नारी भी इन से लाभ उठा सकते।

अणुव्रत 'निर्माण अङ्क' सम्पादक श्री सत्यनारायण अणुव्रत कार्यालय पोर्चुगीज़ चर्च स्ट्रीट कलकत्ता १, मूल्य १००।

अणुवृत नामक पाक्षिक पत्र का यह निर्माणाङ्क जो लगभग ३०० पृष्ठों का है अनेक प्रसिद्ध लेखकों और कवियों के राष्ट्र और समाज के नवनिर्माण विषयक उत्तम लेखों, कविताओं तथा एकांकी नाटकादि के कारण बड़ा उपयोगी और उपादेय बन गया है।

श्री विनोद रस्तोगी का 'निर्माण का देवता' एकाङ्की हमें विशेष पसन्द आया।

श्री आचार्य तुलसी जी के 'विश्वशान्ति के प्रेमियों से, अध्यापकों से, भावी समाज की नींव, बहिनों से और सुधारवादी व्यक्तियों से, ये छोटे-छोटे लेख जो इस विशेषाङ्क के अन्त में दिये गए हैं विशेष रूप से मननीय हैं। यद्यपि हमारा दृढ़ विश्वास है कि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् में पूर्ण आस्था के बिना मानवसमाज का कल्याण और समाज का नवनिर्माण नहीं हो सकता तथापि जो प्रयत्न, देशवासियों में सच्चरित्र निर्माण और भ्रष्टाचार के दूरीकरणार्थ इस अङ्क के द्वारा तथा अन्य रूप से किया जा रहा है हम उसे अपूर्ण समझते हुए भी उसका अभिनन्दन करते हैं। उस की पूर्णता तो सच्ची ईश्वर-भक्ति के बिना असम्भव है। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

★

गुरुकुल पत्रिका विषयक विवरण

१. प्रकाशन का स्थान	गुरुकुल कांगड़ी
२. प्रकाशन कब कब होता है	मासिक पत्रिका
३. मुद्रक का नाम	श्री पं० रामेश जी बेदी आयुर्वेदालङ्कार
राष्ट्रिकता	भारतीय
पता	गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, (उ. प्र.)
४. प्रकाशक का नाम	श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार
राष्ट्रिकता	भारतीय
पता	स० मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी
५. सम्पादक का नाम	श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड
राष्ट्रिकता	भारतीय
पता	गुरुकुल कांगड़ी
६. स्वामिनी समिति	पंजाब आर्यप्रतिनिधिसभा जालन्धर द्वारा निर्वाचित आर्यविद्यासभा
७. व्यवस्थापक	श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

राष्ट्रिय एकता विरोधिनी प्रवृत्तियों की प्रबलता

राष्ट्रभाषा हिन्दी पर चारों ओर से आक्रमण

हमें यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि देश के स्वतन्त्र होने पर जिस राष्ट्रिय एकता की आवश्यकता है उसकी ओर बहुत से नेताओं का भी ध्यान बहुत कम है। सर्वत्र प्रान्तीयता और संकुचित प्रादेशिक भावनाओं का बोलवाला दृष्टिगोचर होता है। राष्ट्रिय एकता के साधनों में से एक राष्ट्रभाषा का होना प्रधान साधन है किन्तु भारतीय संविधान में उसके लिए हिन्दी को स्वीकृत किये जाने पर भी अब चारों ओर उसके विरुद्ध एक संगठित षड्यन्त्र चलता हुआ प्रतीत होता है। एक ओर श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे अनुभवी वयोवृद्ध सज्जन इस राष्ट्रभाषा हिन्दी विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए ऐसी असंगत बात कहने में भी संकोच नहीं कर रहे जैसे कि मद्रास में १२ जनवरी के एक भाषण में उन्होंने कहा कि 'अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बनाना न केवल अबुद्धिमत्तापूर्ण है अपितु भारत की बहुसंख्यक जनता के लिये अन्यायपूर्ण भी है। हिन्दी समर्थक दल भारत की केवल ⅓ जनता का प्रतिनिधित्व करता है। अहिन्दी भाषी जनता भारत की जनसंख्या का ⅔ है। दक्षिण भारत बंगाल आदि की बुद्धिजीवी जनता केवल अंग्रेजी जानती है और हिन्दी नहीं जानती" इत्यादि। राजाजी की इस न्यायबुद्धि पर हमें आश्चर्य है। यदि एक क्षण के लिये यह मान भी लिया जाए कि हिन्दी समर्थक दल भारत की ⅓ जनता का प्रतिनिधित्व करता है तो भी अंग्रेजी की तुलना में जिसको वे राजभाषा के रूप में अनन्त काल तक रखना चाहते हैं और जिसको जानने वालों की संख्या भारत में केवल १ प्रतिशतक है उस को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना सर्वथा न्यायसंगत है। राजा जी तथा उनके अनुयायियों को इस असंगत बात का उत्तार देते हुए केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के राज्य मन्त्री श्री माली जी ने १२ जनवरी को प्रयाग के साहित्य सम्मेलन के उपाधि वितरणोत्सव में भाषण देते हुए ठीक ही कहा था कि "स्वतन्त्र देश के लिए इससे अधिक अपमानजनक बात क्या हो सकती है कि एक विदेशी भाषा को जिसे देश के एक प्रतिशतक लोग भी अच्छी तरह से नहीं समझते हैं, हम राजभाषा बनाने को तैयार हो जाएं और हिन्दी का जिसे ४२ प्रतिशतक लोग बोलते हैं और उससे कहीं अधिक समझते हैं, उसका हम तिरस्कार करें। जन सम्पर्क अपनी भाषाओं द्वारा ही हो सकता है जो एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक राज्य के लिये नितान्त आवश्यक है।" दक्षिण भारतीय नेताओं का विशेष रूप से कर्तव्य है कि वे राजा जी आदि की इन अराष्ट्रिय प्रवृत्तियों का जो यहां तक बढ़ गई है कि वे हिन्दी विरोधी संयुक्त मोर्चे का समर्थन करते हुए एक भाषण में कह बैठे 'यदि हिन्दी भाषी अपने प्रयत्न में सफल हो गये और हम पर अपनी भाषा लादने लगे तो मैं द्राविड़ कजगम के नेता श्री अन्ना दुराई के इस सुझाव पर कोई आपत्ति न करूंगा कि तामिलनाड़

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत संघ से अलग हो जाए—आवश्यकता हुई तो हम भी पृथक् राज्य बना लेंगे। इस समय तो हम सब को हिन्दी के विरोध में एक संयुक्त मोर्चा बनाना चाहिये। (हिन्दुस्तान ३१—१—५८) खुले तौर पर प्रबल विरोध करना चाहिये। इस दृष्टि से हम लोक सभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर के इस कथन का अभिनन्दन करते हैं जो मद्रास में ११ फरवरी को भाषण में उन्होंने किया कि 'भारत के लोग प्रजातन्त्र में विश्वास करते हैं और चाहते हैं कि भारत एक रहे। इस लिये उनके पास देश की राजभाषा हिन्दी को मानने के सिवाय और कोई चारा नहीं। राजा जी का यह आन्दोलन निन्दनीय है कि अंग्रेजी को ही भारत की राजकाज की भाषा बनाये रखा जाए। मैं इधर के लोगों को सचेत कर देना चाहता हू कि इस मामले में इस वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ का समर्थन करना देश की फूट की शक्तियों को प्रश्रय देना होगा। अंग्रेज़ी को बनाए रखने का आह्वान अंग्रेज़ों को भारत में फिर से शासन के लिये बुलाने से भी बदतर है।" अन्य दक्षिण भारतीय नेताओं को भी श्री राजगोपालाचार्य, डा० रामस्वामी ऐय्यर इत्यादि के इस राष्ट्र-हित विरोधी आन्दोलन का प्रबल विरोध करना चाहिये और राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में प्रबल जनमत जागृत करना चाहिये। एक ओर जो इस प्रकार खुला हिन्दी विरोधी आन्दोलन चल रहा है वहां दूसरी ओर एक और राष्ट्रियऐक्यविरोधिनी प्रवृत्ति सिर उठा रही है जो कलकत्ता में २७ दिसम्बर १९५७ को हुए एक २०० साहित्यिकों के सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव द्वारा प्रकट होती है। इस सम्मेलन में मांग की गई कि किसी एक भाषा को वह दर्जा न दिया जाए जिससे औरों के साथ भेद-भाव होता हो। सब भाषाओं को राष्ट्रभाषा माना जाए। इनके अध्यक्ष डा० सेनगुप्त ने कहा कि विभिन्न राज्यों में आपसी सम्पर्क का काम अंग्रेज़ी से लिया जाना चाहिये। जैसा कि अब तक होता आया है।" हम इस मांग को भी राष्ट्रिय ऐक्य विरोधी होने के कारण सर्वथा अनुचित समझते हैं। यदि १४ प्रादेशिक भाषाएं सभी राष्ट्र भाषाएं मानी जाएंगी तो राष्ट्रिय एकता जो समस्त राष्ट्र के अन्तः प्रादेशिक व्यवहार के लिए एक ही भाषा के होने पर सम्भव है कैसे रह सकेगी! यह मांग अप्रकट रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी की पीठ पर छुरा भोंकने के समान है। बंगाली, मराठी, गुजराती इत्यादि भाषाओं का प्रादेशिक क्षेत्र है। उतने क्षेत्र में उनको उचित प्रोत्साहन देना ठीक है किन्तु उन सब को समान रूप से राष्ट्रभाषा मानना राष्ट्रिय एकता में बाधा पहुंचाना है। प्रत्येक सच्चे देश-भक्त को राष्ट्रभाषा हिन्दी का सीखना अपना राष्ट्रिय कर्तव्य समझना चाहिये जिस से वह समस्त देशवासियों से सम्पर्क स्थापित कर सके।

इसी प्रकार १७ फरवरी को दिल्ली में हुए उर्दू सम्मेलन में जिसका उद्घाटन हमारे मान्य प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नेहरू ने किया जो यह मांग की गई है कि पंजाब, देहली, उत्तर प्रदेश, विहार, मैसूर, मद्रास इत्यादि में उर्दू को भी क्षेत्रीय भाषा घोषित किया जाए। उसको भी हम सर्वथा अनुचित और राष्ट्रभाषा हिन्दी पर अप्रकट रूप में आक्रमण समझते हैं। मुसलमान या अन्य भाई उर्दू पढ़ें यह उनकी इच्छा है किन्तु अत्यन्त अल्प संख्या में होते हुए उन की इसको सर्वत्र क्षेत्रीय भाषा के रूप में घोषित कराने की मांग राष्ट्रहित विरोधिनी प्रवृत्ति को ही सूचित करती है। समस्त राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रेमियों को इन राष्ट्रिय ऐक्य विरोधिनी प्रवृत्तियों से सतर्क होकर संगठित रूप से प्रबल आन्दोलन करने और हिन्दी को सब प्रकार के उत्तम साहित्य से समृद्ध करने की आवश्यकता है।

भारत के इतिहास को शुद्ध रूप में तैयार करने की आवश्यकता—

३१ जनवरी को राजस्थान साहित्य एकाडमी का उद्घाटन करते हुए मध्यप्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री डा० कैलाशनाथ काटजू ने विद्वानों से अनुरोध किया कि 'वे भारत के इतिहास को फिर से लिखने में अपना ध्यान लगाएं।'

हम डा० काटजू के इस कथन को कि भारत के इतिहास को शुद्ध रूप में लिखने की बड़ी भारी आवश्यकता है सर्वथा समुचित समझते हैं। विदेशी राज्यकाल में इतिहास का उद्देश्य ही भारतीयों में हीन मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करना और उनके अन्दर इस भावना को भरना था कि वे सदा से पराजित होते रहे हैं और उनमें राष्ट्रिय एकता कभी नहीं रही साथ ही वे एक असभ्य देश के वासी हैं। देश के स्वतन्त्र होने पर यद्यपि इस दिशा में भारतीय ऐतिहासिकों ने विद्या भवन बम्बई आदि के द्वारा कुछ प्रयत्न प्रारम्भ किया किन्तु 'वैदिक एज्' आदि ग्रन्थों में वैदिक युग तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता और धर्म के विषय में प्रायः पाश्चात्य विचारधारा को ही अपना लिया गया जिसका निराकरण हमें 'वेदों के यथार्थ स्वरूप' नामक ग्रन्थ में जो गुरुकुल मुद्रणालय में अभी प्रकाशित हुआ है और जिस ५५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य प्रचारार्थ केवल ६।।) रखा गया है करना पड़ा है। 'वैदिक एज्' में ऋग्वेद का निर्माणकाल लगभग १००० ई. पूर्व बताने के अतिरिक्त आर्यों को अनेकेश्वर वादी, मद्यसेवी, गोमांस भक्षक तक कहा गया है जिसे पढ़ कर किसी भी विचारशील व्यक्ति की वेदों और प्राचीन आर्यों में श्रद्धा नहीं रह सकती। गुरुकुल कांगड़ी में इस दिशा में अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य आचार्य रामदेव जी ने 'भारतवर्ष का इतिहास' तीन भागों में लिखकर किया था। उस प्रकार के और ग्रन्थों को अनुसन्धान पूर्वक लिखने और प्रकाशित करने की बड़ी आवश्यकता है।

दुर्व्यसन त्याग आवश्यक

प्राचीन शिक्षाप्रणाली में ब्रह्मचर्य, सदाचार और दुर्व्यसन त्याग पर बड़ा बल दिया जाता था किन्तु विदेशी शासनकाल से जो शिक्षाप्रणाली अब तक हमारे देश में प्रचलित है इस में इन बातों पर कोई बल नहीं जिसका परि-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

णाम यह है कि अनेक छात्र सिनेमा, मांस, मद्य, बीड़ी सिग्रेट सेवनादि व्यसनों के शिकार होकर अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर बैठते हैं। ये व्यसन स्वास्थ्य के लिये बड़े भयङ्कर सिद्ध होते हैं। ८ दिसम्बर १९५७ के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि 'तम्बाकू के प्रयोग से कैन्सर होता है इसकी जांच की जा रही है। पड़ताल के फल स्वरूप जो जानकारी एकत्रित हुई है उसके विश्लेषण से पता लगता है कि गाल का कैन्सर अधिकतर तम्बाकू खाने से होता है। जीभ के पिछले और गले के ऊपरी हिस्से का कैन्सर बीड़ी पीने वा तम्बाकू खाने से होता है और गले के निचले हिस्से का कैन्सर बीड़ी या सिग्रेट् पीने से होता है. . . यूरप और अमेरिका में फेफड़े का कैन्सर अधिकतर सिग्रेट् पीने से होता है। . . . निष्कर्ष यह है कि मुंह, गले और फैफड़े के केंन्सर के मामले बढ़ने का मुख्य कारण बीड़ी और सिग्रेट् पीना और तम्बाकू खाना है।"

यह कितने दुःख की बात है कि विद्यालयों और महाविद्यालयों के अनेक अध्यापक और उपाध्याय भी इन व्यसनों में आसक्त होते हैं जिनकी देखादेखी छात्रों में और अब तो बहुत स्थानों पर छात्राओं में भी सिग्रेट् पीना सभ्यता का अङ्ग समझा जाने लगा है। देहली विश्व-वद्यालय के छात्रों की आन्तरिक अवस्था की सूचक जो संख्याएं कुछ मास पूर्व स्टेट्समन आदि में प्रकाशित हुई थीं उन से यह जान कर हमें अत्यन्त दुःख हुआ था कि लगभग ४० प्रतिशतक विद्यार्थी बीड़ी सिग्रेट् का सेवन करते हैं। यही अवस्था अन्य बड़े-बड़े नगरों में है। और उन के अनुकरण में छोटे नगरों और ग्रामों की भी होती जा रही है। कुछ वर्ष पूर्व भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से (जिसके साथ का० प्रधान और प्रधान रूप में हमारा अनेक वर्ष सम्बन्ध रहा है) इस विषय में प्रबल आन्दोलन चलाया गया था किन्तु अब वह कुछ शिथिल होगया प्रतीत होता है। उसे प्रबल बनाने की आवश्यकता है जिससे हमारे देश के युवक और युवतियां निर्व्यसन पवित्र जीवन विताकर आरोग्य लाभ कर सकें।

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का दुःखप्रद देहावसान—

यह जानकर किसे दुःख न हुआ होगा कि हमारे देश के वयोवृद्ध अनुभवी राष्ट्रियवादी नेता और भारत सरकार के लगभग १० वर्षों से शिक्षा मन्त्री मौ० अबुलकलाम आज़ाद का ६९ वर्ष की आयु में पक्षाघात से २१ फरवरी को ढाई बजे रात्रि देहावसान हो गया। भारत सरकार के वे एक स्तम्भ और प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी के दक्षिण हस्त समझे जाते थे अतः हमारे मान्य प्रधान मन्त्री जी को इतना आघात पहुंचा कि वे रो पड़े ऐसा समाचारपत्रों द्वारा ज्ञात हुआ है। मौलाना साहेब का जन्म १८८९ में मक्का में हुआ था। उनके पिता एक कट्टर मुसलमान थे। मिश्र के सुप्रसिद्ध अलअजहर नामक धार्मिक विश्वविद्यालय में शिक्षा पाकर वे १५, १६ वर्ष की आयु में ही इस्लाम के विषय में अच्छे जानकार समझे जाने लगे थे। सन् १९१२ में उन्होंने कलकत्ता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से अलहलाल नामक उग्र राष्ट्रियता समर्थक उर्दू पत्र निकालना प्रारम्भ किया जिसे ब्रिटिश शासकों ने सन् १९१४ में ज़ब्त करके मौलाना आजाद को नजरबन्द कर दिया। सन् १९२१ में ख़िलाफत और असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण पकड़ कर जब उन्हें प्रेजिडेन्सी मजिस्ट्रेट के सामने लाया गया तो उन्होंने मैजिस्ट्रेट को सम्बोधन करते हुए निर्भयता-पूर्वक कहा कि 'यदि स्वदेश प्रेम अपराध है तो मैं अपराधी हूं। या तो आप मुझे अधिक से अधिक दण्ड दें या फिर स्वयं इस कुर्सी से उठ जाएं जो आप से देशभक्ति की भावना को कुचल देने की मांग करती है।' छोटी आयु से ही वे स्वतन्त्रता प्रेमी थे और 'आज़ाद' के उप नाम से पत्रों में कविता लिखते थे इस लिये वे आज़ाद के नाम से प्रसिद्ध होगये। ७ वर्ष तक निरन्तर वे काँग्रेस के प्रधान रहे। मुस्लिम-लीगी नेता जिन्ना आदि कांग्रेस का पिट्ठू वा 'शोबॉय' आदि कहकर उनका उपहास करते रहे किन्तु वे राष्ट्रियतावाद के मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। उनकी बुद्धि पर हमारे प्रधान मन्त्री जी तथा काँग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों को इतना विश्वास था कि जटिल समस्याओं को सुलझाने का काम प्रायः उनको सौंप दिया जाता था और वे प्रायः सफल भी हो जाते थे। १२ फरवरी को देहली में शिक्षकों की जो हड़ताल होने वाली थी वह उनके हस्ता क्षेप से ही टल गई। शिक्षा मन्त्री के रूप में मौलाना साहेब की स्वाभाविक उर्दूपक्षपातिनी नीति से हमारा तथा अन्य बहुत से संस्कृत हिन्दी प्रेमियों का असन्तोष था किन्तु इस में तो 'भवति योजयितुर्वचनीयता' के नीति वचनानुसार उनको इस पद पर नियुक्त करने वालों की उत्तरदायिता अधिक थी ऐसा हमारा विचार है। कुछ भी हो, मौलाना आज़ाद के निधन से एक उग्र राष्ट्रियतावादी अनुभवी गम्भीर बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ स्वतन्त्रता प्रेमी देशभक्त का हम से वियोग होगया है इसमें सन्देह नहीं। हम उन की सद्गति के लिये भगवान् से प्रार्थना करते और उनके परिवार के लोगों से समवेदना प्रकट करते हुए यह आशा अवश्य करते हैं कि उनके स्थान पर किसी सुयोग्य संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान् भारतीय संस्कृति के प्रेमी शिक्षा वैज्ञानिक की शिक्षा मन्त्री के रूप में नियुक्ति की जाएगी ताकि श्री नरहरिविष्णु गाडगिल के समान किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि 'यदि केन्द्रीय सरकार आरम्भ से ही हिन्दी को लागू करने का प्रयत्न करती तो सन् १९६५ तक की अवधि में हिन्दी लागू हो सकती थी किन्तु सरकार ने ऐसा नहीं किया।"

२३–२–५८ धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु-रंग

मकर संक्रान्ति के बाद सभी का यही विचार था कि शीत के कठोर आक्रमण का भय सर्वथा समाप्त हो गया किन्तु इस प्रकृति की अनुकूलता के विषय में कौन भविष्य वाणी कर सकता है ? मास के मध्य में प्रातः और सायं बर्फीली हवा के झोंकों से सभी कुलवासी परेशान रहे। कभी-कभी आकाश पर मेघों के छा जाने से भी दुर्दिन बने रहे। इन्फ्लुएंजा का प्रवाह भी कुछ दिनों तक चला। लेकिन अब ऋतु में पुनः कुछ परिवर्तन आता दीख रहा है।

आयुर्वेद परिषद्

नवम्बर मास में इस परिषद् का चुनाव सम्पन्न हुआ था, श्री राजेश्वर इसके प्रधान तथा श्री हरिप्रकाश इसके मन्त्री चुने गए। इस परिषद् की ओर से प्रो. चम्पत स्वरूप जी एम एस. सी तथा पं० निरंजनदेव जी अध्यक्ष आयुर्वेद महाविद्यालय के महत्त्वपूर्ण भाषण हुए। अब प्रति सप्ताह इस प्रकार के भाषण कराने का विचार है।

यह परिषद् ऑल इण्डिया ए एम. बी. एस. स्टुडेन्टस् यूनियन (अखिल भारतीय ए. एम. बी. एस. विद्यार्थी परिषद्) की कई वर्षों से सदस्य हैं और प्रति वर्ष अपने बहुमत से चुने दो छात्रों को भेजती है। इस वर्ष भी योगेन्द्र कुमार त्रिपाठी ३ य वर्ष तथा श्री कौशलेन्द्र जी २ य वर्ष चुने गये और इन्होंने ४ से ६ फरवरी तक पीलीभीत में हुए अखिल भारतीय ए. एम. बी. एस. विद्यार्थी परिषद् के केन्द्रीय समिति के अधिवेशन में भाग लिया। श्री कौशलेन्द्र जी इस विद्यार्थी परिषद् के १९५८ के नये सत्र के सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए और श्री त्रिपाठी जी प्रचार मन्त्री बने है।

विजयोपहार

२१ जनवरी १९५८ को रोहतक गवर्नमैण्ट कालेज में सम्पन्न संस्कृत भाषण प्रतियोगिता में यहां के दो विद्यार्थी श्री सुभाषचन्द्र तथा प्रशान्त कुमार ने भाग लिया। विजयोपहार गुरुकुल विश्वविद्यालय को ही प्राप्त हुआ। २ य पुरस्कार श्री सुभाषचन्द्र जी को मिला। २४ जनवरी १९५८ को अखिल भारतीय हकीकतराय स्मारक समिति की ओर से एक संस्कृत भाषण प्रतियोगिता हुई इसमें नरेन्द्र ८ म और धर्मवीर ९ म ने भाग लिया। विजयोपहार तथा डेढ़ तोले सुवर्ण का प्रथम पुरस्कार ब्रह्मचारी नरेन्द्र ने प्राप्त किया। ९ फरवरी १९५८ को पीलोभीत में एक हिन्दी की वादविवाद प्रतियोगिता हुई। इसमें श्री नृपेन्द्र कुमार और प्रशान्त कुमार ने भाग लिया। इन्हें विजयोपहार प्राप्त हुआ साथ ही प्रथम पुरस्कार भी नृपेन्द्र को मिला। इन विजेताओं के स्वागत में पूज्य आचार्य जी कीं अध्यक्षता में सभा हुई। इस सभा में सम्पूर्ण कुलवासियों ने इन विजेताओं का हार्दिक अभिनन्दन किया और साथ ही देश की भाषा सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला। पूज्य प्रो० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार तथा पूज्य आचार्य जी ने संस्कृत की बढ़ रही महत्ता पर प्रकाश डाला।

त्योहार

२६ जनवरी १९५८ को गणतन्त्र समारोह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अत्यन्त धूमधाम से सम्पन्न हुआ। प्रातः ९ बजे ध्वजारोहण का कार्यक्रम पूज्य आचार्य जी के करकमलों से सम्पन्न हुआ। ब्र. कैलाशचन्द्र और उनके एक दल ने जन-गण-मन तथा बन्देमातरम् इन राष्ट्रिय गीतों की मधुर ध्वनि से आकाश को पूरित कर दिया। ब्र० दिलीप ने नारे बुलवाए और अन्त में नमस्कार की विधि के साथ आकाश में बन्दूक छोड़कर हर्ष प्रकट किया गया।

१७ फरवरी को प्रातः ९ बजे शिवरात्रि का शुभ त्योहार सम्पन्न हुआ। सर्व प्रथम यज्ञ हुआ और उसके बाद सभा हुई इसमें पूज्य आचार्य जी तथा छात्रों तथा उपाध्याय महानुभावों के ज्ञान एवं उत्साहवर्धक भाषण हुए।

मान्य अतिथि और उनके भाषण

पिछले मास जो विदेशीय अतिथि गुरुकुल के अवलोकनार्थ आये उनमें से दो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोनों ने ब्रह्मचारियों के लाभार्थ भाषण भी दिये। एक तो ब्रेमन (जर्मनी) के श्री ऐन्ड्रीज़ नौमान एम. एस सी. नामक सज्जन थे जो गत ८, ९ मास से भारत की अधिकतर पैदल यात्रा कर रहे हैं। उनका २१—१—५८ को साधारण महाविद्यालय में विज्ञान परिषद् की ओर से श्री पं० वागीश्वर जो विद्यालंकार अध्यक्ष साधारण महाविद्यालय के सभापतित्व में बड़ा विचारोत्तेजक भाषण हुआ। श्री रामसिंह जी एम. ए. ने उनका प्रारम्भ में परिचय कराया और अन्त मे उनके भाषण का सारांश आर्यभाषा में बताया। इस जर्मन विद्वान् ने कहा कि मैं संस्कृति और सभ्यता में बड़ा अन्तर समझता हूं। भारत एक सुसंस्कृत देश है जब कि अमेरिका सभ्य देश है यद्यपि संस्कृति की दृष्टि वह भारत से उन्नत नहीं। उन्होंने कहा कि भारतीयों को पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुसरण न करना चाहिए। पाश्चात्य लोग भारतीयों की अपेक्षा अधिक सुखी नहीं और न उनमें सन्तोष है। दूसरे सज्जन आस्ट्रेलिया के श्री पीटर नामक २९ वर्ष के अविवाहित युवक थे जो ३ दिन गुरुकुल में ठहरे। वे गान विद्या में वहाँ के स्नातक हैं। उनका भाषण विज्ञान परिषद् की ओर से विज्ञान भवन में ४ फरवरी को हुआ। श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड ने उनका परिचय कराया और अन्त में उनके भाषण का सारांश आर्यभाषा में सुनाया। भारतीय और पाश्चात्य संगीत में मुख्य अन्तर तथा संगीत की मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता पर वक्ता महोदय ने उत्तम प्रकाश डाला।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कुरुक्षेत्र (करनाल) का ४६ वां वार्षिकोत्सव १४, १५, १६ मार्च ५८ तदनुसार १, २, ३ चैत्र २०१४, दिन शुक्र, शनि, रविवार को गुरुकुल भूमि में मनाया जाना निश्चित हुआ है। जो अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं वे नियम, प्रवेश पत्र आदि के लिये आचार्य गुरुकुल कुरुक्षेत्र से पत्र-व्यवहार करें।

प्रियव्रत विद्यालङ्कार
आचार्य गुरुकुल कुरुक्षेत्र।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत वे० वा०	७.००
वेद का राष्ट्रिय गीत	,, ,,	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,, ,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,, ,,	६.००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय, हर एक	२.००
वैदिक-सूक्तियां	श्री रामनाथ वे० अ०	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त ,,	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१.२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२.००
वैदिक-कर्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव वि०मा०	१.५०
वेदों का यथार्थ स्वरूप	,,	६.५०
अग्निहोत्र	श्री देवराज वि० मा०	२.२५

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका १, २ भाग		.८७, .८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१.२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७.००, ७.००
पञ्चतन्त्र (सटीक)	,, ,,	२.००, २.५०
सरल-शब्दरूपावली		.६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्रीरामदेव	६.००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द अ.		६.००, ७.००
ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार, २ भाग		.७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१.३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		.५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४.००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४.००
सम्राट् रघु	,,	१.२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	.५०, .५०, १.००
जवाहरलाल नेहरू	,,	१.२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	२.००
दिल्ली के स्मरणीय २० दिन	,,	.५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१.५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१.००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी)	श्रीरामरक्ष	५.००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२.५०
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१.२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१.७५

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१.२५
गुणात्मक विश्लेषण (बी एस्.सी. के लिए)		१.००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		.७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१.५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्याचस्पति	२.००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१.००
जमींदार	,,	२००
सरला की भाभी १,२ भाग	,,	२.००, ३.००

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। (उ०प्र०)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य ओषधि शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, पुराना बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पाव २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १०२ ★
जनवरी १९५७

व्यवस्थापक : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
सम्पादक समिति : श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री शङ्करदेव विद्यालङ्कार
श्री रामेश बेदी (मन्त्री)

इस अङ्क में

विषय	लेखक	

अगले अङ्क में

भारतीय इतिहास का तीसरा युग	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
वैदिक-धर्म और उपासना	श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएँ

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

रामायण का काल

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

वाल्मीकि रामायण को बने कितने वर्ष हुए यह कहना कठिन है। यदि युगों के हिसाब से गिनें तो वाल्मीकि मुनि का काल आज से १ लाख से अधिक वर्ष का मानना पड़ेगा। इतिहास के वर्तमान अन्वेषकों की अन्वेषणा के अनुसार यदि न्यून से न्यून समय की कल्पना करें तो ८००० वर्ष समय तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। इन गुजरी हुई ८ सौ शताब्दियों में भारत के निवासियों का जिस प्रकार का जीवन रहा है उसे समझना हो तो हमें वाल्मीकि रामायण का गंभीर अध्ययन अवश्य करना चाहिये। जहां यह सर्वसम्मत बात है कि भारतीय विचारों का आदिमूल वेदों से मिलता है, वहीं इस में भी सन्देह नहीं हो सकता कि भारतीय जीवन का आदिमूल वाल्मीकि रामायण में सन्निहित है।

आप गत ८० शताब्दियों के भारतीय जीवन के इतिहास पर दृष्टि डालिए, उस पर आप को वाल्मीकि रामायण की छाप मिलेगी। हम विषय विवेचना की सहूलियत के लिये उन शताब्दियों के जीवन को निम्न-लिखित भागों में बांट लेते हैं।

१. साहित्य
२. धर्म
३. इतिहास
४. ग्राम्य कथा तथा ग्राम्य गीत
५ राष्ट्रीय सन्देश

जीवन के इन पाँचों भागों पर ऐतिहासिक दृष्टि डालें तो हम इस परिणाम पर पहुंचेंगे कि उन पर वाल्मीकि रामायण और राम की अमिट छाप है।

१. साहित्य

भारतीय लौकिक साहित्य का प्रारम्भ वाल्मीकि रामायण से होता है। उस से पूर्व वैदिक और आर्ष साहित्य था, और लौकिक साहित्य का अभाव सा था। वाल्मीकि मुनि के हृदय में कविता की स्फूर्ति किस प्रकार हुई यह सब जानते हैं। मुनि स्नान के लिये नदी की ओर जा रहे थे, मार्ग में एक व्याध ने क्रौंचों के प्रेम मग्न जोड़े में से एक को तीर से मार दिया। घायल क्रौंच के छटपटाने और बचे हुए, कौंच के करुण क्रन्दन से मुनि के हृदय पर जो आघात पहुंचा वह अकस्मात् छन्दोबद्ध श्लोक के रूप में जिह्वा से प्रका-शित हो गया। वह संस्कृत की कविता का आदि श्लोक है। वाल्मीकि मुनि उस से पूर्व नारद मुनि से पुरुषोत्तम राम का वृत्तान्त सुन चुके थे। अपने मुंह से श्लोक के रूप में सरस्वती को प्रवाहित होते देख कर मुनि स्वयं आश्चर्यित और हर्षित हुए और उसी प्रकार के राम के पावन चरित्र के गायन का निश्चय किया। उस निश्चय का परिणाम वाल्मीकि रामायण है। रामायण से प्रतीत होता है कि वाल्मीकि अपने महा-काव्य को कई नामों से निर्दिष्ट करना चाहते थे। रामायण, सीता चरित्र, पुलस्त्य वध, रघुवर चरित्र इन नामों के चिन्ह रामायण में मिलते हैं। वस्तुतः ये सभी नाम उचित होते क्योंकि यह रामायण के कथा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नक के भिन्न-भिन्न अङ्गों को सूचित करने वाले हैं।

रामायण के पश्चात् संस्कृत और उस के पश्चात् प्राकृत साहित्य का जो प्रवाह चला उस का आदि स्त्रोत रामायण ही है। इसी कारण रामायण को उपकाव्य और आ कर ग्रन्थ कहा है। सदियों तक हमारे देश के कवि रामायण के अन्दर ही घूमते रहे। रामायण के लगभग तीन हजार वर्ष पीछे व्यास मुनि ने महाभारत की रचना की। वह भी वाल्मीकि की बनाई हुई पद्धति से बाहर नहीं जा सकी। महाभारत का विषय अलग है, परन्तु उस की साहित्यक रूपरेखा वही हैं जो वाल्मीकि पामायण की थी। हमारा आठ हजार वर्षों का शेष साहित्य बहुत अन्श में रामायण और कुछ अन्श में महाभारत के आसपास ही घूमता रहा है। संस्कृत के प्रायः सभी महाकवियों ने न केवल रामायण की साहित्यिक पद्धति का ही अनुकरण किया है, कथानक ने भी प्रायः उसी से लिया है।

जैसे हमारे देश के भूगोल पर रामकथा छाई हुई है, वैसे ही साहित्य पर भी उस का व्यापी प्रभाव है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि में राम, सीता और लक्ष्मण आदि पात्रों का निर्देश इतना व्यापक है कि हस ने उसे अनुभव करना ही छोड़ दिया है। कवि के लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक हो गया है कि वह भले व्यक्ति की राम से, सती नारी की सीता से और दुष्ट पुरुष की रावण से उपमा देते हैं। ये उपमायें हमारे साहित्य का ही नहीं, केवल प्रतिदिन की बोलचाल का भी अन्श बन गई हैं। साहित्य का विद्यार्थी जब भारतीय लौकिक साहित्य के वर्तमान से आरम्भ कर के पीछे की ओर जाता है, तब वह मूलस्त्रोत पर पहुंचता है, वह वाल्मीकि रामायण है।

२. धर्म

केवल भारत के धार्मिक विचारों का ही नहीं, संसार के धर्मिक विचारों आदि बीज वैदिक ऋचाओं में मिलता है। यह बात अब सर्वसम्मत हो चुकी है। वह विचार क्रम हिमालय की घाटियों से उतर कर पृथ्वी के अनेक भागों में फैल गया। भिन्न-भिन्न स्थानों पर उस विचार धारा के भिन्न-भिन्न रूप हो गये। भारत में ऐतिहासिक दृष्टि से जो उस का व्यावहारिक रूप प्रकट हुआ, उसे हम वाल्मीकि रामायण में पाते हैं। धर्म-ग्रन्थ हमें उपदेश देता है, कि ऐसा करो, ऐसा न करो। वह कहता है कि सत्य बोलो। प्रश्न यह है कि सत्य कैसे बोलें ? असत्य का प्रलोभन होने पर क्या करें ? इस प्रश्न का उत्तर वाल्मीकि रामायण से मिलता है। जैसे राम ने किया वैसा करो, और रावण ने किया वैसा मत करो, यह धर्म का व्यवहारिक रूप है। वह व्यवहारिक रूप जितनी स्पष्टता से राम और सीता के चरित्र में मिलता है उतना किसी दूसरे चरित्र में नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण, व्यवहारिक धर्म की सब से अधिक विषद, विस्तृत और रोचक पुस्तक है। जो मनुष्य वाल्मीकि रामायण को न पढ़े और न समझे, वह भारतवासियों के गत अस्सी शताब्दियों के जीवन को समझ ही नहीं सकता। मैकाले और उस के समकालीन अङ्गरेज़ लेखकों ने भारतवासियों पर यह आरोप लगाया है कि ये स्वभाव से झूठे और धोखेबाज होते हैं, यह बहाना दे कर उन्होंने क्लाइव और वार्न हैस्टिंग्ज जैसे धूर्त, लोभी और जालसाज अङ्गरेजों की सफाई देने का यत्न किया है। ऐसे भूले भटके लेखकों का भ्रम निवारण कर ने के लिये मैक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी थी जिस का नाम था "भारत हमें क्या सिखा सकता है।" उस पुस्तक के पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि मैक्समूलर के हृदय पर भारतवासियों की सत्यप्रियता प्रभाव डालने वाली जो सब से बड़ी वस्तु थी, वह रामायण थी। राम के और सीता के चरित्रों में सत्य ओतप्रोत था। मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ में इस की विशेष चर्चा की है। भारतवासियों के सामने सब प्रकार के आदर्श रखने का रामायण को ही है। राम की मर्यादा, सीता का सतीत्व, लक्ष्मण और भरत का भ्रातृ प्रेम, हनुमान की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सेवा और सुग्रीव की मित्रता यह सब गुण भारतवासियों के लिए आदर्श का काम देते रहे हैं। अस्सी शताब्दियां व्यतीत हो गईं, हमारा राष्ट्र सैकड़ों क्रांतियों में से गुजर चुका, विजेता आये और हार कर चले गये इस बदलते हुए घटनाचक्र में जो एक चीज माला के मनकों में एक सूत्र बन कर रही है, वह धार्मिक आदर्शों की परम्परा है जिस का रामायण में वाल्मीकि मुनि ने गान किया है।

राम राज्य

महात्मा गांधी अपने अभीष्ट राज्य को रामराज्य के नाम से पुकारा करते थे। वह जिस स्वराज्य के के लिये लड़ रहे थे, उन की सम्मति में उस का दूसरा नान रामराज्य था। जो लोग महात्मा जी के अनुयायी होने का दावा करते हैं वे भी प्रायः रामराज्य शब्द का प्रयोग करते हैं। महात्मा जी राम और रामायण के परम भक्त थे। उन्होंने रामायण का बहुत ध्यानपूर्वक परायण किया था। उन के लेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे राम और रामराज्य दोनों के वास्तविक रूप को भली प्रकार समझते थे। मुझे सन्देह है कि उन के अनुयायी शब्द का प्रयोग तो करते हैं परन्तु उस का अभिप्राय नहीं समझते। आज भारत का शासन उन महानुभावों के हाथ में है जो गाँधी जी के विचारों और आदर्शों को स्वीकार करने का दम भरते हैं। वे रामराज्य शब्द का प्रयोग भी कभी-कभी करते हैं। प्रतीत होता है कि उन्होंने रामराज्य के असली रूप को देखने का प्रयत्न नहीं किया। यदि किया होता तो जिस रूप और रंग के विधान का निर्माण हो रहा है, उस में कुछ परिवर्तन अवश्य होता।

यदि हम रामायण के वास्तविक रूप को जानना चाहते हैं तो हमें वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करना चाहिये। महर्षि वाल्मीकि ने उस समय की अयोध्या का जो वर्णन किया है, उस से हम रामराज्य का स्वरूप समझ सकते हैं। मैं यहां वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड से तत्कालीन अयोध्या और उस के निवासियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे देता हूं। उस से पाठक रामराज्य और उस के निवासियों की दशा का चित्र अपने मन में खींच सकेंगे।

अयोध्या

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के पांचवें सर्ग में अयोध्या का निम्नलिखित वर्णन है।

सरयू नदी के तट पर धनधान्य से भरा हुआ कौशल नाम का समृद्ध और प्रसन्न जनपद था। सम्राट् मनु की स्थापित की हुई अयोध्या नाम की नगरी उस की राजधानी थी। उस नगरी का विस्तार बारह योजनों में था। नगरी के मध्य में जो सुन्दर और विशाल राजमार्ग था, उस के दोनों ओर फुलवाड़ी लगी हुई थी और प्रतिदिन उस पर जल का छिड़काव होता था। कारीगरों ने उसे कुशलता से बनाया था, उस के किवाड़ और तोरण बहुत सुन्दर थे, दुकानें पंक्ति में योजनानुसार थी उस की रक्षा का पुष्कल प्रबन्ध था। शत्रुओं से उसे बचाने के लिये सैकड़ों तोपें 'शतघ्नी' उस की चारदीवारी पर लगी हुई थीं। अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले, तलवार से जङ्गली शेरों का शिकार करने वाले शस्त्रास्त्र के चलाने में निपुण योद्धा उस की रक्षा करते थे। नगरी के चारों ओर उद्यान, आम्रवन और शालवन थे। अनेक प्रकार के यत्नों, भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्नों और इक्षुरस आदि मधुर रसों से उस के भण्डार परिपूर्ण थे। नगरवासियों के मनोरंजन के लिये संगीत और नाटक विद्यमान थे। और सुन्दर वस्त्र आभूषणों से युक्त स्त्रियां उस की शोभा को बढ़ाती थीं।

अयोध्या के निवासी

ऐसी सुन्दर नगरी अयोध्या में जो नागरिक निवास करते थे, उन का निम्नलिखित वर्णन वाल्मीकि रामायण में किया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उस नगरी के निवासी अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट थे। वे धर्मात्मा बहुश्रुत, लोभरहित और सत्यवादी थे। अयोध्या में कोई कंगाल नहीं था और न कोई ऐसा गृहस्थी था जिस के पास धन धान्य, गौ और घोड़ा न हो। उस नगरी में कामी, कंजूस अथवा क्रूर पुरुष नहीं थे और न वहां कोई पिशुन अथवा नास्तिक दिखाई देता था। सब पुरुष और स्त्री सदाचारी थे। अयोध्या में ऐसे मनुष्यों का मिलना कठिन था जिस के कानों में कुण्डल न हो, सिर पर मुकुट न हो। गले में माला न हो,और शरीर को तेल चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से सुगन्धित न किया गया हो। सब लोग पुष्टदायक भोजन करते थे, और दान कर के खाते थे। उन में कोई तुच्छवृत्ति का या चोर नहीं था और न कोई कर्तव्यहीन या वर्णशंकर था। सब लोग पढ़े लिखे थे, आस्तिक और रूपवान थे। वह सब प्रकार से प्रसन्न थे, जिस का परिणाम यह था कि उस सारी अयोध्या में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो देशभक्त न हो।

अयोध्या के शासक

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या के दो शासकों का वर्णन आता है, एक राजा दशरथ का दूसरा राम का। राजा दशरथ के बारे में वाल्मीकि मुनि ने लिखा है।

वह राजा महाराष्ट्रविवर्धन अर्थात् महान् राष्ट्र की वृद्धि के लिये यत्नशील था। वह वेदवेत्ता था, दीर्घदर्शी, दूर तक देखने वाला, तेजस्वी और पौर 'अयोध्यापुर के निवासी' तथा जनपद देश के अन्य निवासियों का प्रिय था। वह सत्य के सहारे से धर्म, अर्थ, काम का विधि पूर्वक पालन करता हुआ अयोध्या की इस प्रकार रक्षा करता था, जैसे इन्द्र अमरावती की।

महाराजा राम का वर्णन नारद मुनि के मुंह से वाल्मीकि मुनि ने निम्नलिखित प्रकार से किया है। वाल्मीकि मुनि ने नारदमुनि से पूछा कि मुझे उस व्यक्ति का नाम बताओ जो सब गुणों से युक्त हो, विद्यमान् भी हो, और वीर भी हो, जिस की दया से मनुष्यमात्र संतुष्ट हों और जिस के क्रोध से देव और दानव सब डरते हों। इस प्रश्न के उत्तर में नारद मुनि ने राम का निम्नलिखित वर्णन किया है।

जिन गुणों से युक्त व्यक्ति के सम्बन्ध में तुम ने प्रश्न किया है वे गुण राजा राम में हैं। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ राम विद्यमान है, संयमी है, बुद्धिमान है और वाग्मी है। वह विपुल कन्धों वाला है, महाबाहु है। किंबहुना शरीर के सब दृढ़ अङ्गों से युक्त है। वह धर्म को जानता है, अपने वचन को पूरा करता है और रात दिन प्रजा के हित में लगा रहता है। वह साधु प्रकृति का, मधुरभाषी और प्रिय दर्शन है। वह आर्य है, अपने और अपनी प्रजा के धर्म की रक्षा करना अपना प्रथम कर्तव्य समझता है। वह समुद्र के गम्भीर और हिमालय के समान धैर्य वाला है। वह क्रोध में कालाग्नि के सदृश और क्षमा में पृथ्वी के सदृश है।

लंका विजय के पश्चात् जब महाराज रामचन्द्र अयोध्या का राज्य करने गये, तब उन का मुख्य कार्य प्रजा के कष्टों को दूर करना और प्रजा को प्रसन्न करना ही था। वह स्वयं भी तपस्वी की भाँति रहते थे। उन का द्वार प्रजाजनों के लिये खुला रहता था। राम के राज्यारूढ़ होने पर अन्य देश के राजाओं ने जो मणि, मुक्ता, आदि ऐश्वर्य भेट में भेजा, उसे राम ने प्रसन्न होकर कुछ सुग्रीव को दे दिया और कुछ विभीषण को बांट दिया। शेष जो कपि और राक्षस राम के साथ आये थे, उन्हें मुंह मांगी भेंट दे कर प्रसन्न कर दिया। किसी पिता का पुत्र छोटी उम्र में में मर गया तो वह राम के द्वार पर आ कर रोता था और कहता था हे राजन्, यह बड़ा अनर्थ है कि पिता के सामने पुत्र मर जाय। तुम्हारे राज्य में पाप होता है, तभी तो ऐसा हुआ। रामचन्द्र धनुष-बाण हाथ में ले कर पुष्पक विमान पर बैठ जाते थे और देश भर में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

घूमते थे कि ऐसा पाप कहां हो रहा है जिस के कारण पिता के सामने पुत्र मरा ।

लवण राक्षस ने ऋषियों को कष्ट दिया, ऋषि लोग राम के पास अपनी फरियाद लेकर पहुंचे । राम ने उनकी दुखः भरी कथा सुनी और अपने छोटे भाई शत्रुघ्न को लवण के वध के लिए भेज दिया । यह थी राम की दिन-चर्या वह स्वयं तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करता था परन्तु प्रजा जनों को थोड़ा सा भी कष्ट नहीं होने देता था तभी तो अयोध्या की सारी प्रजा राज-भक्त थी ।

कौशल देश पर अकेला राजा ही राज्य नहीं करता था, उसका मंत्रिमण्डल भी था । मंत्रि-मंडल के सम्बन्ध में महर्षि बाल्मीकि ने लिखा है—

राजा के आठ अमात्य थे । वे सब विद्वान् और चतुर थे । वे वीर यशस्वी, और राज कार्यों में अनुरक्त थे । उनके नाम थे न्धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त । राजा के दो मुख्य ऋत्विक पुरोहित थे, महर्षि वशिष्ट और वामदेव राजा के यह सलाहकार कैसे थे, इस के लिए मैं उन विशेषणों को उद्धृत कर देता हूं, जिनका कवि ने प्रयोग किया है । श्रीमान् महात्मा, शस्त्रज्ञ और दृढ़ विक्रम थे । वे स्मित पूर्वविभाषी मुस्करा कर बात करने वाले थे और क्रोध या लोभ से झूठ नहीं बोलते थे । देश और प्रदेश में उनका मान था । प्रजा की रक्षा करना ही उनका धर्म था, इस प्रकार के मंत्रियों की सहायता से राजा देश में राज्य करता था ।

यह है राम राज्य का एक चित्र, जिसका महात्मा गांधी स्वप्न लिया करते थे । यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी राज्य को केवल इस लिए राम राज्य नहीं कहा जा सकता कि इसके शासक विशेष विधि से निर्वाचित हुये हों । कवल निर्वाचन पद्धति राज्य को अच्छा या बुरा नहीं बनाती । देश की प्रजा सुखी है या दुःखी, वह अच्छी है या बुरी, शासक लोग धर्मात्मा हैं या पापी वह स्वार्थ वृत्ति से सब कार्य करते हैं अथवा परमार्थ की दृष्टि से । यही प्रश्न है, जिन का उत्तर मिलने पर यह कहा जा सकता है कि वह राम राज्य है या नहीं । रामराज्य वह कहलायेगा जिस के शासक तपस्वी और प्रजा सेवक हों तथा जिस के प्रजाजन सदाचारी और सुखी हों । स्वतन्त्र भारत के शासकों और निवासियों को यदि रामराज्य के आदर्शों से कुछ भी प्रेम है तो उन्हें असली राम राज्य का चित्र लक्ष्य के तौर पर अपने सामने रखना चाहिये और भारत में उसी की स्थापना का प्रयत्न करना चाहिये ।

पुस्तकालय सेवा योजना

दूसरी पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक देश के प्रत्येक जिले में एक-एक जिला पुस्तकालय हो जायगा ।

इस समय देश में करीब ३२० जिले हैं, जिन में से अभी लगभग १०० जिलों में जिला पुस्तकालय स्थापित हो चुके हैं या होने वाले हैं ।

जिला पुस्तकालय एक ऐसी पुस्तक वितरण सेवा चलायेंगे, जिस के द्वारा सम्बद्ध क्षेत्रों में गाँवों के पुस्तकालयों को समय-समय पर पुस्तकें पहुंचती रहेंगी ।

योजना के अनुसार बड़े तथा बहुभाषी राज्यों में प्रादेशिक पुस्तकालय खोले जाएंगे । अन्तोगत्वा इन सब के ऊपर एक राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय होगा, जहां से इस सम्पूर्ण कार्य-प्रणाली का नियन्त्रण किया जायगा ।

इस समय देश में लगभग ३२,००० पुस्तकालय हैं, जो विभिन्न समाज शिक्षा के केन्द्रों या अन्य संस्थाओं से सम्बद्ध हैं । इनमें अधिकांश, पुस्तकों के संग्रह मात्र हैं । अलग-अलग बिखरे हुए ये पुस्तकालय ऐसे हैं जिनमें शुरू में कुछ तेजी से काम हुआ और बाद में उनमें शिथिलता आ गई । राज्यों के केन्द्रीय प्रादेशिक तथा जिला पुस्तकालयों की स्थापना हो जाने पर ये अलग-अलग बिखरे हुये छोटे पुस्तकालय एक सहकारी प्रणाली में गूंथ दिये जायेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाज-व्यवस्था के तीन पहलू

श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति

समाज-व्यवस्था के तीन प्रधान पहलू होते हैं। (१) एक उस की आर्थिक व्यवस्था, (२) एक उस की शिक्षा-व्यवस्था और (३) एक उस की राज्य-व्यवस्था। शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य ऐसे मनुष्य तैयार करना होता है जो समाज की आर्थिक-व्यवस्था को और राज्य-व्यवस्था को भली-भांति चला सकें। हम वैदिक समाज-व्यवस्था पर विचार करते हुए उस की आर्थिक व्यवस्था पर विचार कर लिया है और प्रसंग से बीच-बीच में उस की शिक्षा-व्यवस्था पर भी बहुत हल्का सा दृष्टिपात कर लिया है। समाज की आर्थिक-व्यवस्था और शिक्षा-व्यवस्था को भली-भांति चलाना उस की राज्य-व्यवस्था पर निर्भर रहता है। यदि राज्य-व्यवस्था दोषपूर्ण होगी तो आर्थिक और शिक्षा की व्यवस्थाएं भी ठीक न चल सकेंगी। इस लिये प्रसङ्ग से दो शब्द वैदिक राज्य-व्यवस्था के सम्बन्ध में कह देना भी यहां आवश्यक प्रतीत होता है।

वैदिक राज्य-व्यवस्था

वैदिक राज्य-व्यवस्था में वंशानुक्रमिक एकतन्त्र राजा की पद्धति स्वीकार नहीं की जाती। वैदिक राज्य-व्यवस्था प्रजातन्त्र-पद्धति को मानती है। उस में राजा, प्रजा द्वारा चुना हुआ होना चाहिये। वेद में राजा का अर्थ प्रजाओं द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति होता है। वेद के राजनीति सम्बन्धी स्थलों में स्थान-स्थान पर यह वर्णन आता है कि राजा प्रजाओं द्वारा चुना हुआ होना चाहिये। उदाहरण के लिये वेद में कहा है—"हे राजन्! राष्ट्र की सभी दिशाओं में रहने वाली प्रजायें राज्य करने के लिये तुम्हारा आह्वान करें।" "हे राजन्! सब प्रजायें राज्य करने के लिये तुम्हारा चुनाव करें।" "सारी प्रजायें मिल कर हे राजन्! तुम्हारा चुनाव करें।" "सभी प्रजायें। हे राजन्! राज्य करने के लिये तुम्हें पसन्द करें।" "हे अग्नि जैसे तेजस्वी राजन्! राष्ट्र के ये सारे ब्राह्मण लोग तुम्हारा चुनाव कर रहे हैं।" "हे राजन्! राष्ट्र के जो धीवर लोग हैं, जो रथकार लोग हैं, जो लोहे का काम करने वाले कारीगर लोग हैं, जो बुद्धिजीवी लोग हैं, जो रथ और गाड़ियें चलाने वाले लोग हैं और जो गांवों को चलाने वाले किसान और उन के मुखिया लोग हैं, वे सब तुम्हारे चुनाव के लिये अपना मत दे रहे हैं।" वेद में इस प्रकार के और भी अनेक स्थल हैं जहां राजा के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख आता है।

राजा को राज्य-कार्य में सहायता देने के लिये दो राज्य-सभायें होंगी। एक का नाम "सभा" होगा और दूसरी का नाम "समिति" होगा। ये दोनों सभायें राज्य के लिये सब प्रकार के कानून और व्यवस्थाएं बनाया करेंगी। इन राज-सभाओं द्वारा बनाये गये नियमों और व्यवस्थाओं के अनुसार ही राजा राज्य का शासन करेगा। राजा शासन में मनमानी नहीं कर सकता। उसे राज्य-सभाओं को साथ ले कर चलना होगा और उन की सम्मति में काम करना होगा। पथ-भ्रष्ठ होने पर राजा को राज्य से च्युत भी किया जा सकता है। प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि लोग दोनों राज्य-सभाओं के सदस्य होंगे। "सभा" नामक राज-सभा में राष्ट्र के चारों वर्णों के लोग राष्ट्र में अपनी संख्या के अनुपात में सदस्यों को चुन कर भेजेंगे। परन्तु "समिति" नामक राज-सभा में ब्राह्मणों की संख्या अन्य तीनों वर्णों के लोगों से अधिक रहेगी। सभा की अपेक्षा "समिति" का अधिकार बड़ा होगा। "सभा" में स्वीकृत व्यवस्थायें और कानून अन्तिम रूप से स्वीकृत होने के लिये "समिति" में आया करेंगे। "समिति" में स्वीकृत होने पर ही कोई कानून लागू हो सकेगा। राज के चुनाव में भी यह व्यवस्था रहेगी कि प्रजा के लोग पहले चुनाव के लिये खड़े हुए प्रार्थियों में से दो या अधिक सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियों को छांट लिया करेंगे। फिर उन में से राष्ट्र के सर्व साधारण लोग किसी एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को चुनेंगे। और वही व्यक्ति राष्ट्र का राजा या राष्ट्रपति बन सकेगा। राजा के मन्त्री भी ब्राह्मण लोग ही होंगे। और न्यायालयों के न्यायाधीश भी ब्राह्मण लोग ही बनेंगे। यहां यह बात फिर अच्छी तरह स्मरण रख लेनी चाहिये कि वैदिक पद्धति में किसी को जन्म के कारण ब्राह्मण नहीं कहा जाता। वैदिक पद्धति में जिस में ब्राह्मण के गुण, कर्म और स्वभाव हों उसी व्यक्ति को ब्राह्मण कहा जाता है। चाहे उस का जन्म किसी भी घर में क्यों न हुआ हो वैदिक पद्धति में एक शूद्र का—एक चमार और एक मेहतर का—बालक भी योग्यता प्राप्त कर के ब्राह्मण बन सकता है। जो विद्वान् हो, संयमी और तपस्वी हो, त्यागी हो, सत्य-प्रिय हो, न्याय-परायण हो, अपरिग्रही—जिस में निजी धन-सम्पत्ति जोड़ने की भावना न हो, और ऐसा जीवन बिताने का "व्रत" ले कर जिस ने प्रजा के कल्याण में अपनी सारी शक्ति लगाने का "व्रत" ले रखा हो ऐसे व्यक्ति को "ब्राह्मण" कहते हैं। राजा के चुनाव में और "समिति" की सदस्यता में ब्राह्मणों को यह जो विशेषता दी गई है तथा न्यायाधीशों और मन्त्रियों के पद जो ब्राह्मणों को दिये गये हैं उस कारण यह है कि ब्राह्मणों की अपनी निजी धन-सम्पत्ति तो कोई नहीं है और इसी लिये उन में लोभ और स्वार्थ की भावना भी नहीं रहेगी। वे राजा के चुनाव में और राज्य के कानून बनाने में किसी प्रकार के निजी लोभ और स्वार्थ से प्रवृत्त नहीं होंगे। वे निःस्वार्थ हो कर सब दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को ही राजा चुनेंगे और निःस्वार्थ भावना से ही, केवल प्रजा के हित को ध्यान में रख कर, राज्य के कानून बनायेंगे। और फिर निःस्वार्थ भावना से ही प्रजा के हित में प्रेरित हो कर मन्त्री के रूप में अपने अधीनस्थ राज कर्मचारियों से उन कानूनों के अनुसार राष्ट्र की शासन-व्यवस्था चलवायेंगे। न्यायाधीश बन कर वे, किसी निजी स्वार्थ में न पड़ने के कारण, सही-सही न्याय किया करेंगे। राज्य की शासन-व्यवस्था में उपर्युक्त गुणों वाले ब्राह्मणों (बुद्धिजीवी) लोगों को विशेषता देने से राज्य-व्यवस्था आदर्श रूप में चलेगी। उस व्यवस्था में अधर्म नहीं होगा। वह पूर्ण रूप से धर्म पर—सत्य और न्याय पर—आधारित रहेगी। उस में कोई किसी के अधिकारों को नहीं हड़प सकेगा। कोई किसी को सता नहीं सकेगा। कोई किसी पर अत्याचार नहीं कर सकेगा। राष्ट्र का राज्य "रामराज्य" होगा।

राज्य वर्णों और आश्रमों के धर्मों का पालन करायेगा

यह वैदिक राज्य-व्यवस्था राष्ट्र के सब लोगों से उन के वर्णों और आश्रमों के धर्मों और कर्तव्यों का पालन करायेगी। आर्य-साहित्य में राजा को वर्णाश्रम धर्म-गोप्ता कहा जाता है। लोगों से उन के वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का पालन कराना राजा का धर्म है। राज-सभा सब वर्णों की योग्यता का एक न्यूनतम मान-दण्ड निश्चित करेगी। ब्रह्मचर्याश्रम में प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार किसी न किसी वर्ण की योग्यता अपने भीतर पैदा करने का और फिर आगे गृहस्थ जीवन में उस वर्ण के कर्तव्यों का पालन करने का "व्रत" लेगा। १६ वर्ष की आयु में कन्याओं का और २५ वर्ष की आयु में लड़कों का, राज-सभा और विद्यासभा के नियमों के अनुसार परीक्षा ले कर, निश्चय होगा कि कौन किस वर्ण के योग्य है और कौन किस के। फिर गृहस्थ-आश्रम में उन्हें अपने-अपने वर्ण के कार्य करने होंगे। कर्तव्य-च्युत होने पर राजा उन्हें दण्डित करेगा। वर्णों की भांति आश्रमों के कर्तव्यों और नियमों का भी एक न्यूनतम मान निश्चित होगा। उस में त्रुटि होने पर दण्डित होना पड़ेगा। इस प्रकार वर्णों और आश्रमों पर राज्य का अंकुश रहने से वर्णाश्रम-व्यवस्था भली-भांति काम करेगी। और समाज की आर्थिक-व्यवस्था और शिक्षा-व्यवस्था दोनों ही ठीक चलेंगी और इन दोनों के ठीक चलने का प्रभाव पुनः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राज्य-व्यवस्था पर पड़ेगा—वह भी ठीक चलेगी।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्रजातन्त्रीय शासन-पद्धति

वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति, जैसा ऊपर कहा गया है, आध्यात्मिक पद्धति है। उस के दर्शन में व्यक्तियों में स्वतन्त्र आत्मा की सत्ता स्वीकार की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना पूरा विकास करने की स्वतन्त्रता है। वह प्रत्येक विषय में अपने स्वतन्त्र विचार रख सकता है और उन्हें स्वतन्त्रता से प्रकट भी कर सकता है। इसी आध्यात्मिक विचारधारा के परिणाम-स्वरूप वर्णाश्रम-व्यवस्था में प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली को स्वीकार किया जाता है। किसी एक व्यक्ति को अपने वंश या शक्ति के आधार पर राष्ट्र की जनता पर शासन करने का अधिकार नहीं है। राष्ट्र की जनता का बहुमत अपनी स्वतन्त्र सम्मति से जिसे अपना राष्ट्रपति चुने और जिन्हें उस के सहायक चुन कर राज-सभा में भेजे उन्हीं को राष्ट्र का शासन करने का अधिकार होना चाहिये। राज्य-शासन प्रजातन्त्रीय पद्धति से किया जाना चाहिये।

साम्यवाद प्रजातन्त्र का विरोधी है

इस के विपरीत साम्यवादी विचारधारा भौतिकतावादी है। वह व्यक्तियों में स्वतन्त्र आत्माओं की सत्ता स्वीकार नहीं करती। उस के इस दर्शन के परिणाम-स्वरूप साम्यवाद में राष्ट्र की शासन-व्यवस्था में प्रजाओं की स्वतन्त्र सम्मति का कोई मूल्य नहीं है। साम्यवाद में इसी लिये तानाशाही चलती है। वह तानाशाही चाहे एक व्यक्ति की हो और चाहे कुछ व्यक्तियों के समुदाय की, है वह तानाशाही ही। उस में सर्व-साधारण प्रजाओं द्वारा अपनी स्वतन्त्र सम्मति से अपने शासकों के चुनाव का कोई स्थान नहीं है।

साम्यवाद और वर्णाश्रम-व्यवस्था में यह एक और बड़ा भारी भेद है।

पूंजीवादी पद्धति का किसी भी तन्त्र के साथ आवश्यक सम्बन्ध नहीं है

पूंजीवादी पद्धति का प्रजातन्त्र और एकतन्त्र या तानाशाही में से किसी के साथ भी आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। उस पद्धति में राज्य-व्यवस्था प्रजातन्त्रात्मक भी हो सकती है और एकतन्त्रात्मक भी हो सकती है। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था वाले देशों में दोनों ही प्रकार की राज्य-पद्धतियें पाई जाती हैं। परन्तु जहां प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था होती है वहां भी आर्थिक-व्यवस्था पूंजीवादी ढंग की रहने के कारण सर्वसाधारण प्रजा पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो पाती।

वर्णाश्रम-व्यवस्था की श्रेष्ठता

इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक समाज-व्यवस्था साम्यवादी और पूंजीवादी दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ है। जिस दिन वैदिक धर्म के विचारों का प्रचार हो कर संसार के राष्ट्रों में समाज की व्यवस्था वर्णाश्रम-धर्म के आधार पर हो सकेगी उसी दिन संसार के लोगों को सच्ची शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। हम भारतीय आर्य लोगों को अपनी इस प्राचीन समाज-व्यवस्था की पद्धति के गुणों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये और उस के सुन्दर तत्वों का जनता में प्रचार कर के राष्ट्रों की समाज-व्यवस्था उन तत्त्वों के अनुसार ढालने का प्रयत्न करना चाहिये। राष्ट्रों की प्रचलित समाज-व्यवस्थाओं में वर्णाश्रम-व्यवस्था के तत्त्वों का जितना-जितना समावेश होता जायेगा, वे व्यवस्थायें अपने राष्ट्रों की जनता का उतना ही अधिक सुख-कल्याण बढ़ाने वाली बनती जायेंगी।

वर्णाश्रम व्यवस्था का वैज्ञानिक आधार

हमें आज के संसार के आगे वर्णाश्रम-व्यवस्था की पद्धति उपस्थित करने में संकोच अनुभव करने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की आवश्यकता नहीं है। वर्णों की व्यवस्था मनुष्यों के स्वाभाविक रुचि-भेद और योग्यता-भेद पर आश्रित है। जब हमारे आत्माओं का प्रकृति से बने हमारे शरीरों के साथ संयोग हो जाता है तभी हम मनुष्य कहलाते हैं। प्रकृति में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण रहते हैं। हमारे शरीर और मस्तिष्क में भी प्रकृति के ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं। हमारे प्राकृतिक शरीर और मस्तिष्क का हमारे आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव के फलस्वरूप हमारी प्रवृत्तियें और हमारे व्यवहार भी सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के हो जाते हैं। किन्हीं शरीरों और मस्तिष्कों में प्रकृति के सत्वगुण की प्रधानता रहती है, किन्हीं में रजोगुण की और किन्हीं में तमोगुण की और किन्हीं में इन तीनों की समानता रहती है। शरीर और मस्तिष्क की इन विशेताओं के कारण उन में रहने वाले आत्माओं की प्रवृत्तियें और व्यवहार भी सत्त्वगुण-प्रधान, रजोगुण-प्रधान, तमोगुण-प्रधान तथा तीनों की समताओं वाले होने लगते हैं। सत्त्वगुण क [illegible] वाले व्यक्ति 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। रजोगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति 'क्षत्रिय' कहलाते हैं, तीनों गुण की समताओं वाले व्यक्ति 'वैश्य' कहलाते हैं, और तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्ति 'शूद्र' कहलाते हैं। इन तीन गुणों और उन के आधार पर बनने वाली प्रवृत्तियों और व्यवहारों की गीता आदि शास्त्रों में बड़े विस्तार से विवेचना की गई है। उस विवेचना के विस्तार में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है। सभी वर्णों के लोगों में ये तीनों गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। यह तो आवश्यक ही है, क्योंकि हमारे शरीर और मस्तिष्क त्रिगुणात्मिक प्रकृति से बने हैं। केवल किसी एक गुण की प्रधानता के कारण किसी व्यक्ति को उस गुण वाला और उस गुण की प्रधानता पर आश्रित वर्ण वाला कहा जाता है। जब किन्हीं लोगों में रजोगुण और तमोगुण की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है तो वे लोग चोर, लुटेरे, डाकू, हत्यारे आदि दस्यु लोग बन जाते हैं। ये दस्यु लोग वर्ण-मर्यादा में शामिल नहीं किये जाते। वे वर्ण-मर्यादा से बाहर रहते हैं और दण्ड के पात्र होते हैं। अपने आत्मा की प्रबल इच्छा-शक्ति और तज्जन्य तीव्र प्रयत्न से तथा भोजन और रहन-सहन आदि की परिस्थितियों को नियमित कर के अपने शरीर और मस्तिष्क में और उस के द्वारा अपने आत्मा में इन सत्त्व आदि गुणों की मात्रा को घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अपने विशेष प्रयत्न से कोई व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियों को बदल भी सकता है। सात्त्विक प्रवृत्तियों की प्रधानता वाला व्यक्ति 'ब्राह्मण' राजस प्रवृत्तियों की प्रधानता वाला व्यक्ति 'क्षत्रिय', सात्त्विक, राजस तथा तामस प्रवृत्तियों की समानता वाला व्यक्ति 'वैश्य' और तामस प्रवृत्तियों की प्रधानता वाला व्यक्ति 'शूद्र' कहलायेगा। इस प्रकार व्यक्तियों के प्रवृत्ति-भेद और रुचि-भेद पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था सर्वथा वैज्ञानिक है। संसार के सभी मनुष्य ब्राह्मणादि की प्रवृत्तियों में से किसी न किसी एक प्रवृत्ति वाले अवश्य होंगे। —

पंचवर्षीय योजना में पशुपालन

१९५०–५१ के अनुमान के अनुसार गोधन के द्वारा राष्ट्र की आय ६९० करोड़ रुपये थी। यही कारण है कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दिये गये विकास कार्यक्रम में पशुपालन और सुधार को इतना ऊंचा स्थान दिया गया है। जब कि पहली योजना में इस मद पर २२ करोड़ रु० खर्च करने की व्यवस्था थी, दूसरी योजना में पशुपालन और दुग्धशाला आदि के लिए ५६ करोड़ की राशि निर्धारित की गई है।—राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वायुयान-निर्माता श्री सिकॉर्स्की की संक्षिप्त कहानी
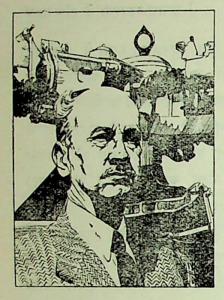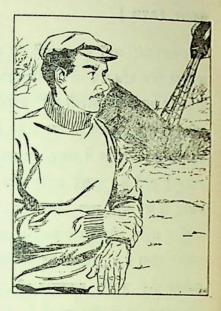
सिकॉर्स्की—ग्राइगर सिकॉर्स्की ने सोचा कि मनुष्य किस तरह उड़ सकता है। सन् १९३९ में सिकॉर्स्की ने हेलीकोप्टर का एक ढांचा सा बनाया तथा संसार में सर्वप्रथम हेलीकोप्टर का निर्माण किया।

निर्माता—सिकॉर्स्की का जन्म सन् १८८९ में कीव (रूस) नगर में हुआ। १२ वर्ष की आयु में इन्होंने एक छोटे से खिलौने को चाबी की सहायता से उड़ते देखा। उस के सात वर्ष बाद इन्होंने वायुयान का कार्य आरम्भ किया।

अनुभव—एक बार उनके वायुयान की एक मोटर बेकार हो गई और उन्हें असफलता मिली। तब एक ही जहाज़ में दो इन्जन रखने का विचार उनके मन में उत्पन्न हुआ।
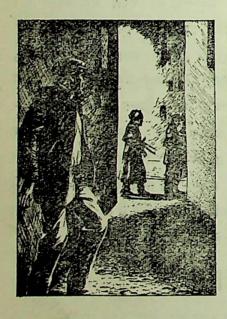
शरणार्थी—२८ वर्ष की उम्र में सिकॉर्स्की एयर क्राफ्ट के नमूने बनाने वालों में प्रसिद्ध हो गया। सन् १९१७ में उन्होंने रूस छोड़ दिया।

शिक्षक—आजीविका चलाने के लिए इन्होंने अङ्कगणित पढ़ाना शुरू किया। किन्तु कई इन्जनों वाले वायु यानों के नमूने बनाने के कार्य को नहीं रोका। १९२३ में 'एयर-इन्जिनियरिंग कॉरपोरेशन' को बनाया।

निर्माण—एक द्वीप के लम्बे मैदान में एक छोटा सा कारखाना खोला। एक वायुयान तैयार करना प्रारम्भ किया जो पूर्णतया धातु का बना था। इस में बहुत कठोर लोहे के प्रयोग के साथ कुछ पुराने पुर्जे भी प्रयोग किए गए थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
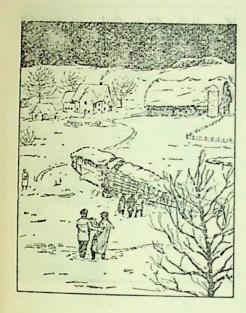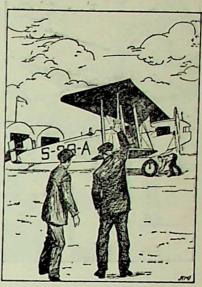
रैक्मनीनौफ—शीत ऋतु में सिकॉर्स्की ने पहले जहाज़ का निर्माण आरम्भ किया। किन्तु यह कार्य असफल होता दिखाई देने लगा। इसी समय निर्माण कला में कुशल रेक्मनीनौफ आ पहुँचा।

धन—रेक्मनीनौफ द्वारा दिया धन शीघ्र ही समाप्त हो गया। सिकॉर्स्की ने बिना वेतन के बीस सप्ताह कार्य किया। उन्होंने एक जहाज़ बनाया, इस में दो पुराने इन्जन थे।

तैयार—मई १९२४ में जहाज़ उड़ने को तैयार था, किन्तु सिकॉर्स्की के पास जहाज़ के ईन्धन के लिए खर्चा न था। इसने एक 'ओटोमोबाइल फिलिंग स्टेशन' से गैसोलीन लेकर इन्जन चालू किया।
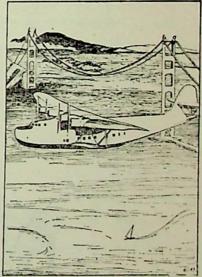
निष्फलता—घिसा-घिसाया जहाज़ फेल हो गया और धीरे-धीरे जमीन पर उतर आया। कुछ मजदूरों ने टूटे हुए इन्जन के हिस्सों को ले कर एक जहाज़ फिर से बनाया।

सफलता—मरम्मत किए हुए दो इन्जनों से जो जहाज़ बनाया था उस में सिकॉर्स्की सफल रहा। इसी प्रकार उसने एक और जहाज़ बनाया। इस प्रकार दो इन्जनों वाले जहाज़ लगातार उड़ते रहे।

क्लीपर्स—अमेरिका की एक कम्पनी ने १० वायुयान मांगे जो समुद्र तल पर भी उतर सकते हों। इन चार इन्जनों वाले जहाजों के निर्माण में सिकॉर्स्की सब से आगे रहा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
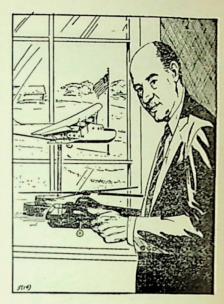
हेलीकोप्टर—सन् १९३९ में सिकॉर्स्की का बनाया हुआ एक छोटा सा यान धरातल के लम्ब अक्ष में सीधा ऊपर की दिशा में उड़ा। काफी ऊँचा उड़ने पर वह उड़ती हुई चिड़िया के समान प्रतीत होता था। यह हेलीकोप्टर था।

नया युग—हवाई उड्डयन के इतिहास में सिकॉर्स्की के हेलीकोप्टर ने एक नया युग प्रारम्भ किया। डाक और यात्रियों को ले जाने के सिवाय वह हवाई सर्वेक्षण, खेती पर औषधि वर्षण आदि के काम में बड़ा सहायक हुआ। पीड़ितों की सहायता में भी इस का बड़ा उपयोग होने लगा है।

अवसर-लाभ—कीमती विचारों के प्रयोग के लिए उचित सुविधा और अवसर देने में अमेरिका ने मुझे प्रेमपूर्ण सहयोग दिया'। सिकॉर्स्की अपने उन दिनों को प्रेम से याद करता है जब २८ वर्ष की आयु में एक वायुयान निर्माता के रूप में उसने कार्य आरंभ किया।

—०—

'डॉक्टर से मिलना है ? तो पंक्ति में लग जाइये।

'परन्तु पंक्ति कहां है ?'

'ज़रा ठहरिये, पंक्ति अभी बने जाती है।'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आधुनिक काल में संस्कृत-साहित्य का निर्माण

श्री शंकरदेव विद्यालङ्कार

"भारत की प्रान्तीय भाषाएं संस्कृत की सन्तान हैं। उन सब का अभिव्यक्ति का प्रकार और शब्द-समूह संस्कृत की ही देन है। संस्कृत काव्यों और दर्शनों के अनेक अर्थपूर्ण और विशेष शब्दों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सकता। वे शब्द अब तक भी हमारी जन-भाषाओं के जीवित अङ्ग हैं। स्वयं संस्कृत में, यद्यपि वह बहुत दिनों से जनता की भाषा के रूप में लुप्त हो चुकी है, एक अद्‌भुत संजीवनी शक्ति विद्यमान है।

—जवाहरलाल नेहरू

(हिन्दुस्तान की कहानी में)

आधुनिक भारत की भाषाओं और साहित्यों पर विचार करते हुए संस्कृत भाषा और संस्कृत वाङ्मय की आधुनिक गतिविधि पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर आजकल पर्याप्त ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। उन में भी संस्कृत-साहित्य विषयक आधुनिक प्रगति की कुछ भी चर्चा नहीं दिखाई देती।

सत्य तो यह है कि अमरभारती—संस्कृत—में अब भी पूर्ववत् संजीवनी शक्ति विद्यमान है। उस की धारा अब भी प्रवाहित हो रही है, भले ही वह धारा क्षीण हो गई हो। अब भी संस्कृत भाषा इस महान् प्रायद्वीप के सहस्रों मनीषियों के विचार विनिमय का माध्यम बनी हुई है। उन के उच्चतर विचारों की अभिव्यक्ति का साधन बनी हुई है। भारत के नवीन और प्राचीन अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा उस का बराबर प्रयोग किया जाता है। उनके धार्मिक अनुष्ठान इसी के द्वारा सम्पन्न होते हैं। विविध सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और मन्तव्यों की चर्चा और व्याख्या भी संस्कृत-भाषा के माध्यम से ही होती है।

सचमुच वह बड़े गौरव और परितोष का विषय है कि आधुनिक युग में, यद्यपि संस्कृत-भाषा की लोकप्रियता बहुत कम हो गई है, तथापि इस में पर्याप्त परिमाण में नवीन साहित्य का निर्माण हुआ है। देश के विभिन्न भागों के संस्कृत-विशारदों ने प्राचीन और आधुनिक—दोनों प्रकार के विषयों पर अच्छी-अच्छी ग्रन्थ-कृतियां उपजाई हैं।

आधुनिक समय में बने हुए संस्कृत-ग्रंथों का पूरा-पूरा लेखा बनाना तो कठिन है। क्योंकि बहुत थोड़ी सी कृतियों को ही लोग जान पाये हैं। अपने सीमित प्रदेशों की कृतियों से तो केवल प्राचीन ढंग के पंडित ही परिचित हैं। बहुत सी रचनाएं तो अमुद्रित ही पड़ी हुई हैं। सौभाग्य से जो रचनाएं मुद्रित हो सकी हैं, उन को उतनी सावधानी से सुरक्षित नहीं किया गया, जितना कि प्राचीन हस्तलिखित कृतियों को सभाला जाता है। इन सब कठिनाइयों को दृष्टि में रख कर आधुनिक युग में—१६ वीं और २० वीं शती में—रचे गये संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय (विशेषतः बंगाल का) यहां प्रस्तुत किया जाता है। सुधी वाचकजन इस विषय में अधिक सूचनाएँ दे सकेंगे तो आनन्द होगा।

वैदिक तथा स्मृति-साहित्य

वैदिक विषयों पर इस युग में संस्कृत-भाषा में बहुत कम लिखा गया है। बंगाल के प्रतिष्ठित पंडित सत्यव्रत सामश्रमी की देन इस दिशा में मूल्यवान् है। उन्होंने स्वसंपादित ऐतरेय ब्राह्मण की प्रस्तावना के रूप में "ऐतरेयालोचन" नामक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखा है। महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालंकार ने "कातंत्र छन्दः प्रक्रिया" नामक पुस्तक वैदिक व्याकरण के विषय में कातंत्र की सिद्धान्त शैली पर लिखी है। १६ वीं शती के विख्यात वैदिक विद्वान् श्री दयानन्द सरस्वती ने भी अपने वेदभाष्य की प्रस्ताविका के रूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" नामक सुन्दर विवेचना पुस्तक मूलतः संस्कृत-भाषा में लिखी है।

धर्मशास्त्रों पर भी इस युग में कई अच्छी रचनाएँ तैयार हुईं। चन्द्रकान्त तर्कालंकार ने अपने "स्मृति-चन्द्रा-लोक" में रघुनन्दन पंडित के विचारों का खण्डन किया है। काशीचन्द्र विद्यारत्न पुरानी प्रणाली के पंडित थे। उन्होंने बीस धर्म-संहिताओं पर नया प्रकाश डालने वाली विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। वे बड़े उदार और प्रगतिशील विचारों के प्रशंसक थे। उन्होंने "उद्धार चन्द्रिका" नामक एक मौलिक पुस्तक लिखी है। इस में उन्होंने समुद्र-यात्रा कर के विदेश जाते वाले लोगों को पुनः स्वजाति में सम्मिलित करने के पक्ष में विचार किया है। इसी प्रकार का एक विशाल ग्रन्थ उत्कल प्रान्त के पंडित महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र ने भी "कलि-आपद्धर्म-सर्वस्व" नाम से लिखा है। जोधपुर के इतिहासज्ञ विद्वान् महामहोपाध्याय विश्वेश्वरनाथ रेऊ द्वारा लिखित मौलिक स्मृति ग्रन्थ "विश्वेश्वर-स्मृति" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उस में आधुनिक विचारों और क्रियाओं को सहमति प्रदान की गई है। श्री० रेऊ के मत में "श्राद्ध" का अभिप्राय पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और समादर रखना ही है। इसी प्रकार आप की मति में गुप्त रूप में चुपके-चुपके से प्रणय करने की अपेक्षा स्त्रियों का पुनर्विवाह करना ही उचित है।

तन्त्र ग्रन्थ और दर्शन

श्री० प्राणकृष्ण विश्वास नामक एक बड़े जमींदार की आज्ञा से सन् १८२१ में श्री रामतोषण विद्यालंकार ने तन्त्रों का एक सार संकलन तैयार किया था। यह ग्रन्थ अभी तक तान्त्रिकों में विशेष मान्य है। यह कई बार छप चुका है। पूर्वीय बंगाल के जमींदार हरगोविंद राय के संरक्षण में एक बड़ा ग्रन्थ "पंचम वेदसार निर्णय" नामक भी संकलित किया गया था। यह अभी तक छपा नहीं है।

दर्शन के क्षेत्र में भी कई कृतियां बनी हैं। इन में अधिकतर प्राचीन ग्रन्थों पर टीकाएं, परिष्कार और व्याख्यान ग्रन्थ अधिक हैं। पंडित पंचानन तर्करत्न ने वेदान्त सूत्रों पर "शक्ति-भाष्य" लिखा है। इस से शाक्त मत के अनुसार सूत्रों पर व्याख्या लिखी गई है। स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने वेदान्त सूत्रों पर द्वैतसिद्धान्त परक भाष्य लिखा है। सांख्य सूत्रों पर भी उन का एक संस्कृत-भाष्य है

काव्य, नाटक आदि

इस काल में काव्य और नाटक भी पर्याप्त लिखे गये हैं। उन लेखकों में रमानाथ तर्करत्न, अजितनाथ न्यायरत्न, पंचानन तर्करत्न, हेमनाथ राय कविभूषण, हरिदास सिद्धान्तवागीश और कालिपद तर्काचार्य आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं। इन में से कुछ एक नाटककारों की कृतियां नाट्यमंच पर सफलता पूर्वक अभिनीत हुई हैं। इन में कृष्णानन्द की लिखी हुई "अन्तर्व्याकरण नाट्य परिशिष्ट" एक विशिष्ट कृति है। इस से व्याकरण और नाटक—दोनों का कार्य सिद्ध होता है। एक अर्थ द्वारा व्याकरण के नियमों का ज्ञान होता है। दूसरे अर्थ से एक नाट्यकथा प्रकट होती है।

व्याकरण और काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में भी कई अच्छे प्रयत्न हुए हैं। तारानाथ तर्कवाचस्पति ने "आशु-बोध व्याकरण" नामक एक स्वाधीन ग्रन्थ पाणिनि के आधार पर रचा है। देवेन्द्रनाथ विद्यारत्न ने "पाणिनीसार" और कान्तिचन्द्र वंद्योपाध्याय ने "काव्यदीपिका" तैयार की। छन्दःशास्त्र के क्षेत्र में सीरामपुर के पंडित चिरंजीव ने "वृत्तरत्नावली" तैयार की। इस में प्रादेशिक भाषाओं के छन्दों का भी समावेश किया गया है।

उत्तरप्रदेश के पंडित अखिलानन्द जी ने "दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य" तथा अन्य काव्यमयी रचनाएं लिखी हैं। नासिक के पंडित मेधाव्रत जी कविरत्न ने भी सुन्दर भाषा में "दयानन्द दिग्विजय दो खण्डों में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लिखा है। इसी प्रकार श्री दिलीपदत्त उपाध्याय ने भी "मुनिचरितामृतम्" नाम से श्री दयानन्द सरस्वती के जीवन पर एक काव्य का प्रणयन किया है। मुंबई की स्वर्गीया कवयित्री पंडिता क्षमाराव ने गद्य और पद्य में अनेक सुन्दर रचनाएं लिखी हैं। जिन में "सत्याग्रह-गीता" में गांधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन का सुन्दर पद्यबद्ध वर्णन पठनीय है।

शब्दकोष

शब्दकोष-निर्माण के लिये पुरानी परम्परागत पद्धति छोड़ दी गई। आधुनिक रीति से अकारादि क्रम से कई अच्छे-अच्छे शब्दकोष तैयार किये गये। इस दिशा में दो प्रयत्न बड़े महत्त्व के हैं। राजा राधाकान्त देव के तत्त्वावधान में "शब्दकल्पद्रुम" (सन् १८२२-१८५८) का निर्माण हुआ। कलकत्ते के महापंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति ने "वाचस्पत्यम्" नाम से एक अतिविशाल शब्दकोष का कई खण्डों में प्रणयन किया। आज तक इन दोनों कोषों का सुधी-समाज में बड़ा आदर है। काशीनाथ पाठक ने "शब्दार्णव" तैयार किया। रघुमणि विद्याभूषण ने भी "शब्द-मुक्ता-महार्णव" नाम से एक अच्छा शब्दकोष बनाया, जिस के आधार पर प्रोफेसर एच० एच० विलसन ने अपनी संस्कृत-इङ्गलिश "डिक्शनरी" बनाई। इन्हीं पंडित रघुमणि ने श्री प्राणकृष्ण विश्वास की सहायता से एक छोटा शब्दकोष "प्राणकृष्ण-शब्दाब्धि" नाम से सन् १८१५ में बनाया था। आधुनिक युग में मुद्रित होने वाला यह पहला शब्दकोष था।

उन्नीसवीं शती के पिछले भाग में महाराष्ट्र में इस दिशा में बड़ा सराहनीय प्रयत्न हुआ। फर्ग्यूसन कालेज, पूना के आचार्य श्री वामन शिवराव आपटे ने बड़े परिश्रम से "संस्कृत-इङ्गलिश-डिक्शनरी" की रचना की। इस शब्दकोष ने सार्वभौम ख्याति प्राप्त की है। यह प्रयत्न बहुत लोकप्रिय भी हुआ। श्री आपटे की शैली पर ही श्री लक्ष्मण रामचन्द्र वैद्य तथा विद्याधर वामन भिड़े (चित्रशाला प्रेस, पूना) आदि महाराष्ट्र विद्वानों ने संस्कृत शब्दों का अङ्गरेजी में स्पष्टीकरण देने वाले शब्दकोष तैयार किये। बंगाल के श्री आनन्दराम बरुआ ने भी इसी प्रकार का शब्दकोष तैयार किया था। ओरियेन्टल कालेज लाहौर के पंडित गणेशदत्त शास्त्री ने भी "पद्मचन्द्र कोश" नाम से एक संस्कृत-हिन्दी-शब्दकोष बनाया। इस में शब्दों की व्युत्पत्तियां भी दी गई हैं। उत्तरीय भारत में इस का अच्छा प्रचार रहा है। उदयपुर-नरेश महाराणा सज्जनसिंह जी के संरक्षण में पंडित सुखानन्दनाथ ने "शब्दार्थ-चिन्तामणि" नामक संस्कृत शब्दकोश सन् १८६४ में बनाया।

आधुनिक शास्त्रों पर कृतियाँ

भारत में अंगरेजों का शासन प्रारम्भ होने पर आधुनिक विद्याओं की पुस्तकें भी संस्कृतज्ञ लोगों के लिये संस्कृत भाषा में बनाई गई। आंग्ल संस्कृतज्ञ जौन म्यूर ने सन् १८३९ में कलकत्ता में इङ्गलैण्ड का वर्णन "नूतनोदन्त" नाम से संस्कृत में तैयार किया। पंडित योगध्यान मिश्र ने सन् १८३९ में ही हटसन की रेखा-गणित की पाठ्य-पुस्तक का संस्कृत अनुवाद "क्षेत्र-तत्त्व-दीपिका" नाम से किया। जौन म्यूर ने "इतिहास-दीपिका" नाम से सन् १८४० में भारत का एक छोटा-सा इतिहास संस्कृत पद्यों में लिखा था। बनारस संस्कृत कालेज के छात्रों के लिये म्यूर महाशय ने मनोविज्ञान पर "व्यवहारालोक" नाम से संस्कृत में कुछ व्याख्यान दिये थे। वे प्रयाग से सन् १८४५ में छपे थे।

श्री विट्ठलशास्त्री ने लार्ड बेकन के प्रसिद्ध ग्रन्थ "ओर्गेनम्" का "बेकनीयसूत्र-व्याख्यान" नाम से संस्कृत में भाषान्तर किया था (सन् १८५२)। संस्कृत कालेज बनारस के प्रिन्सिपल जेम्स राबर्ट बैलेन्टाइन ने सन् १८५५ में "न्याय-मुक्तावली" नाम से विज्ञान-विषयक पुस्तक संस्कृत में लिखी थी। श्री राधानाथ शिकदार ने अनेक वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों का डाक्टर टेलर की सहायता से अंग्रेजी से संस्कृत में अनुवाद किया था। बंगाल के विख्यात आयुर्वेदज्ञ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विद्वान् डॉक्टर गणनाथ सेन ने सन् १९१९ में ऐना-टोमी पर "प्रत्यक्षशारीर" नाम से तथा रोगों के निदान पर "सिद्धान्तनिदान" नाम से दो विशाल ग्रन्थ सुन्दर भाषा में बनाये। सारे भारत में उन के इन दोनों ग्रन्थों की बड़ी कीर्ति है। आयुर्वेद महाविद्यालयों में वे सर्वत्र ही पढ़ाये जाते हैं। पंडित सदानन्द जी वैद्य ने रस शास्त्र पर "रसतरंगिणी" नाम की एक मौलिक पुस्तक बनाई है।

भारत की प्रादेशिक भाषाओं का छानबीन के क्षेत्र में युरोपियन विद्वानों द्वारा किये गये प्रयत्नों से सभी शिक्षित भारतीय परिचित हैं। संस्कृत-भाषा और संस्कृत-वाङ्मय की गहरी गवेषणा के विषय में भी उन के प्रयत्न प्रशंसनीय हैं। परन्तु बहुत कम लोगों को यह ज्ञात होगा कि कतिपय युरोपीय विद्वानों ने देव-वाणी संस्कृत में भी मौलिक रूप में तथा अनुवाद के रूप में उसी चारुता से लेखन-कार्य किया है, जैसा कि एतद्देशीय संस्कृत मनीषी करते हैं। जौन म्यूर और प्रिन्सिपल बैलेन्टाइन की संस्कृत रचनाओं का उल्लेख ऊपर हो चुका है। एक मनोरंजक घटना यहाँ पर लिखने योग्य है। २० सितम्बर १८०४ ई० को कल-कत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के युरोपियन छात्रों और शिक्षकों का एक शिष्ट मण्डल अधिकारियों से मिला था। इस मण्डल का विवरण संस्कृत भाषा में सुरक्षित है। उस में सी० गोवन महाशय "संस्कृत अध्यापन से लाभ" इस विषय पर संस्कृत में एक निबन्ध पढ़ा था। कालेज के बंगला और संस्कृत के शिक्षक श्री कैरी महाशय ने वहां पर संस्कृत में ही एक व्याख्यान दिया था।

विदेशी और देशी कृतियों के अनुवाद

चुनी हुई जर्मन और ग्रीक कविताओं के संस्कृत अनुवाद कैपेलर महाशय द्वारा किये गये थे। ये अनुवाद सन् १९०३ और १९०४ ई० की 'इण्डियन एन्टीक्वैरी" पत्रिका में "सुभाषित मालिका" और यवन शतकम्" नाम से प्रकाशित हुए थे। मद्रास के विद्वान् के० वेंकट रङ्गाचार्य ने आंग्ल कवि ओलिवर गोल्डस्मिथ "डेजर्टेड विलेज" और "ट्रैवेलर" का सस्कृत भाषान्तर किया था। शेक्सपियर के नाटकों की कथाओं का अच्छा प्रवाह-पूर्ण संस्कृत गद्यानुवाद भी मद्रास के एक विद्वान् ने किया है। मराठी के प्रसिद्ध ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी का "गीर्वाण ज्ञानेश्वरी" नाम से भाषान्तर हुआ हैं। तामील भाषा की सुप्रसिद्ध "कम्ब रामायण" का अनुवाद "श्रीराम-चरितम्" नाम से किया गया है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ जी की गीतांजलि के कुछ गीतों का श्लोकबद्ध अनुवाद अमर मोहन ठाकुर ने किया है। इसी प्रकार कवीन्द्र रवीन्द्र-नाथ जी की "कथा ओ काहिनी" का प्रवाहपूर्ण पद्या-नुवाद फटिककाल दास ने किया है। मद्रास के श्री व्यासराय शास्त्री विद्यासागर ने कालिदास के नाटकों की कहानी बढ़िया गद्य में "कालिदास-नाट्य-कथा-मंजरी" नाम से लिखी है। दक्षिण में यह पाठ्य-ग्रन्थ है। इसी प्रकार पंडित महालिंग शास्त्री ने भास के नाटकों की कथाएं सुन्दर गद्य में लिखी हैं। मेकूडोलन के विख्यात ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य का इतिहास के पूर्वार्ध का भाषान्तर मद्रास के एक विद्वान् ने किया है। यह बड़ा स्पृहणीय प्रयत्न है। अनुवाद का नाम है— "वैदिक साहित्य-चरित्रम्।"

—

यद्यपि नार्वे विश्व के उत्तरी छोर पर स्थित है तो भी वहां भारत से सभी परिचित हैं। ओस्लो विश्वविद्यालय में तो पिछले १०० वर्षों से भी अधिक से संस्कृत पढ़ाई जाती है। इस विश्वविद्यालय में एक भारतीय परिषद् है तथा भारतीय भाषा और साहित्य सम्बन्धी एक प्राध्यापक–पद भी है। —प्रो० आलफ सोमरफेल्टकी रेडियो वार्ता से।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत की अद्वितीय राष्ट्रीय सम्पत्ति—जंगली जीवजन्तु

भारत में तरह-तरह के एवं विचित्र पशु-पक्षियों की भरमार है। इन में से कुछ तो अद्वितीय हैं। इस का कारण भारत की जलवायु तथा प्रकृति की विविधता है।

पश्चिम में कच्छ का जङ्गली गधा, गीर सिंह और दक्षिण का काला हिरन मिलता है। ये सब अफ्रीका के जङ्गली प्राणियों के भाईबन्द हैं। पूर्व के जङ्गली पशु-पक्षी मलाया के पशु-पक्षियों से मिलते जुलते हैं। इन में गेंडा, जङ्गली भैंसा और कई प्रकार के पक्षी हैं।

सुदूर उत्तर में कई प्रकार की पहाड़ी भेड़-बकरियां और दूसरे देशों को आने-जाने वाले पक्षियों की नस्लें पायी जाती हैं। दक्षिण में हाथी, सांभर, जङ्गली भैंसा, हिरन और रीछ मिलते हैं। ये पूर्व, पश्चिम और उत्तर में पायी जाने वाली अपनी नस्लों में बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।
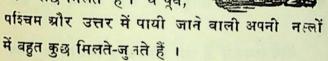
जङ्गली जीव-जन्तु भारत की राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। अतः इन की रक्षा होनी चाहिए। पिछले कुछ वर्षों में कुछ सुन्दर एवं विचित्र पशु-पक्षियों की संख्या बराबर घटते रहने से उन के लुप्त हो जाने का डर पैदा हो गया है और अब तो स्थिति इतनी गम्भीर हो गई है कि कुछ पशु-पक्षियों की रक्षा के लिये कानून का सहारा लेना पड़ता है।

रक्षित पशु

भारत में कानून द्वारा भारतीय शेर और गेंडे को रक्षित घोषित किया गया है। ये अन्यत्र बहुत कम मिलते हैं और इन के लुप्त होने का डर सब से अधिक है। कुछ शताब्दियों पहले उत्तरी भारत में शेरों की भरमार थी, किन्तु आज उन की संख्या घट कर कुल ३०० रह गई है और वह भी सौराष्ट्र के एक छोटे से इलाके में सीमित है। इसी प्रकार पहले गेंडा भी कई स्थानों में पाया जाता था, किन्तु इस समय भारत में कुल २०० गेंडे ही शेष बचे हैं। भारत के कुछ और जीवों को भी रक्षित घोषित करने की जरूरत है, जैसे—श्वेत तेंदुआ, काला तेंदुआ, चीता, जङ्गली गधा, कश्मीरी बारह सिंघा, कस्तूरी मृग, अंकुश-शृङ्ग-मृग और बौना सूअर।

इस प्रकार सारङ्ग, गुलाबी सिर वाला हंस और सफेद पंखों वाला जंगली हंस—इन पक्षियों की रक्षा भी नितांत आवश्यक है।

प्राचीन काल में जंगली प्राणी

प्राचीन काल में भारत में तरह-तरह के और रंग-बिरंगे पशु-पक्षी पाये जाते थे। वैदिक काल में तो जङ्गली प्राणियों की रक्षा करना धर्म समझा जाता था। वैदिक साहित्य में ऐसे बहुत से ऋषि-मुनियों और कवियों का उल्लेख है, जो जङ्गलों में रहते थे और जङ्गली प्राणियों को प्यार करते थे। पशु-पक्षियों और उन के साथ रहने वाले मनुष्यों के पारस्परिक प्रेम की अनेक गाथाएं प्रसिद्ध हैं। ऋषियों के आश्रमों के आसपास पशु-पक्षी बेखटके घूमा करते थे। जङ्गली जीवों की हत्या के लिए दण्ड का विधान था। हाथी को मारने पर कठोर दण्ड दिया जाता था।

बाद के काल में यद्यपि जङ्गली जीवों के प्रति उतना प्रेम नहीं रहा, फिर भी मध्यकालीन नरेशों ने उन की रक्षा के लिए कुछ स्थान सुरक्षित घोषित कर दिये। धीरे-धीरे 'जीवां जीवस्य जीवनम्' इस सिद्धांत का प्रचार होने से मनुष्य जाति पशु-पक्षियों को मारने पर तुल गयी।

इस के अलावा जनसंख्या बढ़ने से खेती के लिए, बिना सोचे-समझे जंगल काटे जाने लगे। परिणाम यह हुआ कि अपना बसेरा छिन जाने पर जंगली पशु जङ्गलों में भीतर घुसते चले गये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आजकल शिकारी के हाथ में आधुनिक ढंग के हथियार आ जाने से उस में जङ्गली जानवरों का सर्वनाश करने की क्षमता आ गयी है। बिना सोचे-समझे चाहे जिस जङ्गली जानवर का शिकार करने की प्रवृत्ति ने जङ्गली जानवरों को आतङ्कित कर दिया है और उन में से बहुतों को 'नर-भक्षी' बना दिया है। यही नहीं, इस से कुछ नस्लों की संख्या घट गयी है, जिस से प्रकृति का सन्तुलन ही बिगड़ गया है।

किसान के परम सहायक

सृष्टि-योजना में प्रत्येक प्राणी का अपना-अपना महत्व है। प्रकृति को सन्तुलित रखने में हर प्रकार के जीव-जन्तुओं और पक्षियों का हाथ होता है। यद्यपि वह स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन है वह बहुत आवश्यक।

प्राकृतिक सन्तुलन

उपरोक्त कथन के स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण लीजिए। यदि किसी क्षेत्र के जङ्गलों में हिरनों की भारी कमी हो जाए तो हो सकता है कि उस का वहां के पशुओं पर बुरा असर पड़े, क्योंकि उस हालत में जङ्गल में रहने वाले चीते और शेर हिरनों के अभाव में गाय, बैलों और भेड़-बकरियों को ही अपना भोजन बनाने लगें।

यह तो सब जानते ही हैं कि फसलों और पौधों के विकास और बढ़वार में पशु-पक्षियों का काफी हाथ होता है। विभिन्न चिड़ियां और कीड़े फसलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़े मकोड़ों को खाते रहते हैं और इस प्रकार फसल को बरबाद होने से बचाते हैं। यदि इन चिड़ियों और कीड़ों को अंधाधुन्ध मारा जायगा तो प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ जाएगा और परिणाम यह होगा कि फसल को काफी हानि पहुंचेगी और उत्पादन घट जायगा।

इस प्रकार सृष्टि के समस्त जीवों का भला इसी में है कि किसी भी जीव को आवश्यक हानि न पहुंचाई जाय। मानव का कल्याण भी इसी में है और प्रकृति के उस अद्भुत संतुलन को बनाये रखने के लिये भी यह आवश्यक है।

किसान के सहयोगी

इस प्रकार हम देखेंगे कि जहां जङ्गली पशु पक्षियों को नष्ट करना मनुष्य के हित में नहीं है वहां उन को बनाये रखने से मनुष्य को अनेक लाभ हैं।

उदाहरण के लिये पाटल सारिक (रोजी पास्टर) और हिमालय सारिक (हिमालयन स्टार्लिंग) को लें। पहले इन का खूब शिकार किया जाता था। बाद में पंजाब में एक नियम बना कर इन के शिकार पर रोक लगा दी गयी। अब ये चिड़ियां फसलों की सुरक्षा में काफी मदद देती हैं। यद्यपि ये चिड़ियां छोटी-छोटी होती हैं लेकिन टिड्डी दल आने पर इन का उपयोग समझ में आता है। ये अपनी तेज़ चोचों से आनन फानन में टिड्डियों का काम तमाम कर देती हैं।

लोग समझते हैं कि जीव-जन्तु किसान के लिए हानिकारक हैं। परन्तु यह गलत है। ये जीव-जन्तु उस के मित्र हैं, सहायक हैं। किसान को उन्हें पहचानना चाहिए और अपने लाभ के हित उन्हें जीवित रहने देना चाहिये।

राष्ट्रीय विरासत के प्रतीक

इस के अलावा, ये जीव-जन्तु हमारे देश की परम्परागत सम्पत्ति हैं। इन को सुरक्षित जङ्गलों, शिकार निषिद्ध क्षेत्रों और राष्ट्रीय उपवनों में बचाये रखना आवश्यक है। केवल चिड़ियाघरों में कुछ जीव-जन्तुओं को सुरक्षित रखने का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि उस रूप में तो हम इन का उपयोग केवल अपने बालकों की ज्ञान वृद्धि के लिए कर पाएंगे।

देश के विशाल पशुदाय में से अधिक नहीं, केवल तीन ही जानवरों को लीजिए—शेर, हाथी और गैंडा। अनन्त काल से ये हमारे वनों की शोभा बने हुए हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन से सम्बन्धित न जाने कितनी दन्त कथाएं और कहानियां हमारे देश में प्रचलित हैं जिन को कह-सुन कर सदियों से हम मनोरंजन करते आये हैं एक साधारण व्यक्ति इन जानवरों के दर्शन मात्र से पुलकित हो उठता है। इन्हें सुरक्षित बनाये रखना हमारा कर्तव्य है।

जानवरों की आदतें, उन की विशेषताएं और उन के रहन-सहन के ढंग का ज्ञान हमारे संस्कृतिक जीवन का एक मूल्यवान अंग है। इस की कदापि उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। किसी जंगली जीव की दिनचर्या और दूसरे जानवरों के प्रति उस के बर्ताव का अध्ययन बहुत रोचक और लाभदायक है। उस से हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है।

अंत में उन जानवरों के बारे में विचार करें जो दिन प्रतिदिन घटते जा रहे हैं। जिस प्रकार दुर्लभ वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है उसी प्रकार इन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्य दुर्लभ वस्तु तो दिनों दिन और भी दुर्लभ होती जाती है लेकिन इन जानवरों के बारे में यह नियम घटना आवश्यक नहीं। यदि मनुष्य इस ओर ध्यान दे तो प्रकृति की इस देन को सुरक्षित रखा जा सकता है।

गीर का सिंह

शिकारियों को अंधा धुंध शिकार करने की छूट देने से बहुत नुकसान हुआ है। अनुमान है कि शिकारी दलों की रक्तलिप्सा के कारण जीव जन्तुओं की १३ जातियां प्रायः समाप्त हो चुकी हैं। यदि समय रहते उपाय न किया गया तो इन जातियों के जीवों का दुनियां से नाम निशान उठ जायगा। यद्यपि इन में से कुछ जानवर भयानक दिखाई देते हैं, फिर भी उन की जाति को जीवित रखने के लिये इन का विनाश बंद होना जरूरी है। इन में से एक जानवर सिंह हैं। प्रायः लोगों की यह धारणा है कि सिंह अफ्रीका का है, कि किन्तु भारत में भी सिंह शुरू से ही पाया जाता है। भारतीय इतिहास और कथाओं में न सिंह का उल्लेख बराबर मिलता है और आज तो हमारे राष्ट्रीय चिन्ह में भी तीन सिंह प्रतिष्ठित हैं।

एक जमाना था जब उत्तरी और पश्चिमी भारत के बहुत से इलाकों में सिंह बहुतायत से पाया जाता था। लेकिन अब वह सिर्फ सौराष्ट्र के गीर जंगल में ही पाया जाता है। अब वह कम होते-होते इन की संख्या सिर्फ ३०० ही रह गई है। ये भी बहुत ही छोटे से क्षत्र में सीमित है जो दिन पर दिन और भी छोटा होता जाता है। अचानक कोई रोग फैलने से या और किसी प्रतिकूल परिस्थिति होने से इन के नष्ट प्राय हो जाने का डर है।

इस लिये भारतीय-वन्य-जीव मंडल किसी दूसरे इलाके की खोज करता रहा है जिस में भारतीय सिंह को रखा जा सके। इस के लिये बनारस के पास एक इलाका चुना गया है जहां प्रयोग के रूप में सिंह रखे जायेंगे।

असम का गैंडा

भारत में जङ्गली जानवरों की तेरह ऐसी जातियां हैं जो नष्ट प्राय हैं, और जिन की रक्षा करना बहुत आवश्यक है। गीर के सिंह के बाद असम के गैंडे की रक्षा की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

१९३३ में डेनमार्ग के प्रसिद्ध प्राकृतिक फोटोकार गैंडे पर अपनी पुस्तक में कि अगले सौ वर्षों में इस जानवर की ठठरी मात्र संग्रहालयों में देखने को मिलेगी। मनुष्य ने खेती के लिये जमीन की खोज में जंगल काटे जिस से वन्य जीवों के निवास स्थान नष्ट हुए। फिर उसने अपने खाने की खोज में और अपना शौक पूरा करने के लिये भी बिना सोचे विचारे बहुत ही निर्दयता से उन को मारा जिस से यह नौबत आ गई थी कि यह जाति ही संसार से मिट जाएगी। पहले यह गैंडे असम के जंगलों में बहुतायत से पाए जाते थे। एक समय असम के लोगों ने इन्हें पालना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी शुरू कर दिया था और इन को वे हलों में जोतते थे। पुराने चित्रों से यह भी पता लगता है कि लड़ाइयों में भी इन का उपयोग किया जाता था। इधर के कुछ वर्षों में असम के जंगली जीवों की रक्षा पर जिन में गेंडा भी है अधिक ध्यान दिया गया है। आज गेंडा असम के राज्य चिन्ह में प्रतिष्ठित है।

सन् १९९० के बाद से ही असम में शिकार निषिद्ध-क्षेत्र कायम करने का आन्दोलन पकड़ता गया है। आज वहां चार ऐसे क्षेत्र हैं जहां शिकार बिलकुल वर्जित है। इस के अलावा दो रक्षित शिकारगाह हैं। इन का मुख्य उद्देश्य गेंडों की रक्षा करना है, यद्यपि उन से अरने, दसदली मृग आदि अन्य जानवरों की भी स्वयमेव रक्षा हो जाती है। असम के कुल मिला कर ४६४ वर्गमील के क्षेत्र में शिकार वर्जित है।

हाथियों की तरह गेंडे भी दीर्घजीवी होते हैं। इन के थूथने जङ्गली सुअरों की तरह, पग-चिह्न हाथी की तरह, पर इस से कुछ छोटे और कान खरगोश की तरह होते हैं, यद्यपि उस से बड़े होते हैं और इन की खाल बहुत मोटी और बख्तरदार किस्म की होती है।

अनुमान है कि काजीरंग रक्षित वन में इन की संख्या २५०–३०० के करीब है।

★

क्या आप जानते हैं?

१

२
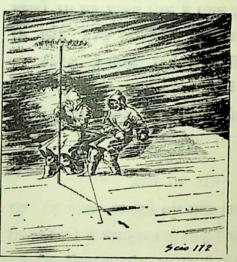
१ रणबांकों के युग में योरोप में युवतियों की गठन को इकहरा बनाने के लिए अव्यर्थ परन्तु तपसाध्य विधि का प्रयोग किया जाता था। उनकी धारणा थी कि सौन्दर्य के लिए दृढ़ आधार होना चाहिये। इसलिए लौह परिधान का प्रयोग किया जाता।

२ अमेरिका के मौन्ट वाशिङ्गटन नाम के पर्वत शिखर पर १९३४ की प्रथम एप्रिल को वैज्ञानिकों ने एक हवाई तूफान के वेग को पाया था। इस तूफान की गति २३१ मील प्रति घंटा थी। इस से पूर्व विश्व में इतनी तीव्र गति वाला तूफान नहीं देखा गया था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि दयानन्द

श्री मनसुखा

ऋषि दयानन्द का जन्म उस काल में हुआ, जब उन की बहुत सख्त आवश्यकता थी और उन का काम तथा देन अति महत्वपूर्ण हो सकती थी। न सिर्फ, उन्होंने सोते भारत को झंझोड़ा : छुआछूत, वहम आदि के चक्कर में फंसे, हिन्दूधर्म को साफ सुथरा 'बुद्धिगम्य' बनाने का प्रयत्न किया; बल्कि साथ ही साथ विदेशी साम्प्रदायिक अन्य धर्मावलम्बियों को भी, ईंट का जवाब पत्थर से दिया। जो ऋषि पर यह आक्षेप करते हैं कि उन की दूसरे धर्मों के प्रति दृष्टि विद्वेष पूर्ण थी, उन की आलोचना आवश्यकता से अधिक कटु और तीव्र थी, वे यह भूल जाते हैं कि उस समय ईसाई और मुसलमान कैसे कैसे जघन्य उपाय हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन कराने के लिए, काम में ला रहे थे। साम, दान, दण्ड, भेद : रिश्वत, लालच, डर, लोभ, बहकाना फुसलाना आदि सब तरह के हथियार जब विपक्षी प्रयोग कर रहा हो तो हालांकि गाली देना अपने आप में बुरा जरूर है; लेकिन गाली देने वाले को गाली से ही जवाब देना कम से कम गुनाह नहीं। बहरहाल जो खुद, बुरा भला कह और कर रहा हो, वह तो कदापि अपने साथ बुराई किये जाने की शिकायत नहीं कर सकता। फिर ऋषि दयानन्द में तो एक बात विशेष थी —उसने अपने ही पूर्वजों के 'सनातन धर्म' को भी कब बख्शा ? जहां कहीं भी उसे असत्य और श्रेयस दिखलाई दिया, उसने उस का जीतोड़ विरोध किया और मजा यह कि हर जगह वह सच्चा ब्रह्मचारी कामयाब भी हुआ। एक तरफ उस ने सनातनियों के अंध-विश्वास को उखाड़ फेंका, तो दूसरी ओर कट्टर विधर्मियों को भी बतला दिया कि वे चुप रहें। अन्यथा, जिन हथियारों से लड़ोगे, उन ही हथियारों से जवाब दिया जायगा, हरा भी दिया जायगा। उस की बात का असर हुआ और उस का ध्येय सफल हुआ। उसने 'वह कुछ' कर के दिखला दिया जो, अंग्रेजी पढ़े लिखे सुधारवादी शायद सदियों में भी न कर पाते। उस ने हिन्दूधर्म का सुधार किया, उसे वैज्ञानिक और बुद्धिगम्य बना दिया और घातक हमलों से बचा लिया। धन्य है, वह।

लेकिन इस के अलावा और इन से भी उच्च, ऋषि दयानन्द की एक और भी बहुत बड़ी देन रही। वह थी उन की वेद-रक्षा और वेद-ज्ञान की वृद्धि तथा सम्वर्धन 'प्रसार-प्रचार' के लिए अनमोल प्रयत्न।

हमारा दुर्भाग्य, हम अपने ही मूल ग्रंथ 'ईश्वरीय ज्ञान', अध्यात्म-विद्या और 'आत्मानन्द' के आदि और अति महत्वपूर्ण स्रोत को भूल गये। निस्सन्देह, भारत से आध्यात्मिकता कभी लुप्त नहीं होने दी। न ही कभी भूतकाल में हुई। परन्तु अपने सब से बड़े खजाने, 'मूल प्रेरणा-स्रोत' प्रकाश-ज्योति में सूर्य के समान प्रचण्ड और अलौकिक ज्ञान भंडार की उपेक्षा; यदि हमारा सब से बड़ा अपराध नहीं तो और क्या था ? ऋषि ने वही हमारी गलती दूर की—वेद-ज्ञान का संग्रह और प्रचार किया : गोया कि हमें फिर से अपने महान् और उच्च, आदि महापूर्वजों से जोड़ दिया। महा दार्शनिक श्री अरविन्द ने बाद में जो वैदिक ज्ञान की आलौकिक आभा दिखलाई, वह ऋषि दयानन्द के प्रणीत, सत्पुरुषार्थ के आधार पर ही सम्भव बन सकी। उन्होंने भी ऋषि के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की है और कांग्रेस तथा गाँधी जी भी आर्यसमाज के ऋणी हैं—क्योंकि जिस सुधार का बीड़ा बाद में गांधी जी ने उठाया, उस का आरम्भ पहले ऋषि दयानन्द ने ही किया था। १९ वीं सदी में धार्मिक क्षेत्र में दो महान सत्पुरुषार्थ यज्ञ रूप सम्पादन किये गये। एक तो थियोसोफिस्ट का सर्व धर्म ज्ञान-संग्रह और तुलनात्मक अध्ययन का स्तुत्य प्रयत्न तथा ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज : सुधारवाद, वेदज्ञान-प्रचार तथा हिन्दूधर्म का उद्धार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान बुद्ध के सन्देशवाहक

डॉ. अ. स. अलतेकर

लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले जब भगवान् बुद्ध ने सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन किया, तब बौद्ध धर्म तत्कालीन तिरसठ सम्प्रदायों में एक था। किन्तु आज वह संसार के बड़े धर्मों में प्रमुख स्थान रखता है। बौद्ध धर्म की इस प्रगति का मुख्य कारण यह था कि बुद्ध तथा बौद्ध धर्म के जो सन्देशवाहक थे वे अपना कार्य श्रद्धा से, कुशलता से और लगन से करते थे तथा अङ्गीकृत कार्य सफल बनाने के लिए उन्होंने एक प्रभावशाली संघ बनाया था।

भगवान् बुद्ध ने स्वयं ४५ साल तक अविरत धर्म प्रचार का कार्य किया और उन के उदात्त चरित्र, कुशल वक्तृत्व, आकर्षक व्यक्तित्व से अनेक विद्वान् और कार्य-कुशल ब्राह्मण भी उन के अनुयायी और सन्देशवाहक बने। उन के सहाय्य से धर्म-प्रसार में पर्याप्त सफलता मिली। इन सन्देशवाहकों में कच्चायन, महाकोटि, आनन्द, महाकस्सप, सारेपुत्त और मोग्गलान प्रमुख थे। इन का चरित्र निर्मल, तपस्या महती, उत्साह दुर्दम्य और कार्यकौशल अनुपम था। सन्देशवाहकों के दूसरे अनेक आवश्यक गुण भी उन में विद्यमान थे। कच्चायन व महाकस्सप का वक्तृत्व इतना प्रभावशाली था कि श्रोता उस से प्रभावित हो कर उन से तुरन्त सहमत होते थे। महाकोटि तर्कपण्डित थे, उन का मुकाबला कोई नहीं कर सकता था। मतांतर कराने की आनन्द की शक्ति इतनी अप्रतिम थी कि कभी-कभी स्वयं बुद्ध भगवान् भी उन का सामना या मुकाबला न कर सकते थे। किन्तु सारिपुत्त और मोग्गलान प्रथितयश धर्म प्रचारक थे। एक बुद्ध का दाहिना तथा दूसरा बायां हाथ माना जाता था। ये सन्देशवाहक आपस में मिल-जुल कर अपना कार्य करते थे। उन में इतना सौहार्द था, नवोदित धर्म पर उन का इतना प्रेम था, उन में आपसी झगड़े प्रायः नहीं होते थे। उन की लगन भी आश्चर्य-जनक थी। कभी-
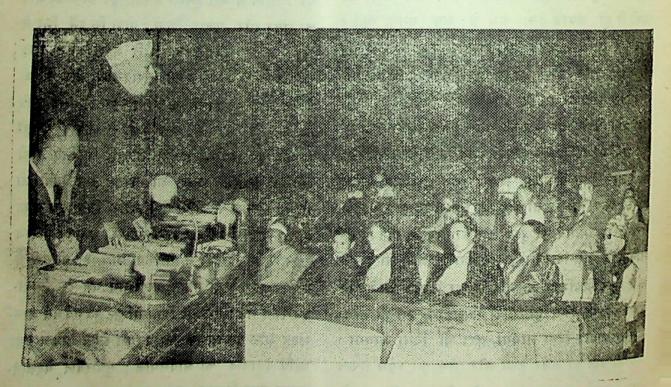
२५०० वीं बुद्ध जयन्ती पर श्री नेहरू बुद्ध के सन्देश को सुना रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कभी एक विशिष्ट व्यक्ति का धर्मान्तर कराने के लिए वे सात-सात साल लगातार प्रयत्न करते रहे। उपर्युक्त कारणों से बुद्ध धर्म का प्रचार बुद्ध के जीवनकाल में विहार तथा उत्तर प्रदेश में तेज़ी से हुआ।

दलाई लामा का देहली में स्वागत।

सारिपुत्त और मोग्गलान

स्थान के अभाव से इन सब संदेशवाहकों की जीवनी व कार्य के बारे में बयान करना अशक्य है। हम केवल इन में से दो के अर्थात् सारिपुत और मोग्गलान के बारे में कुछ कहेंगे। दोनों ही धनी परिवार में पैदा हुए थे। सारिपुत एक बड़े जमींदार के पुत्र थे। मोग्गलान एक धन-सम्पन्न व्यापारी थे। किंतु सम्पूर्ण पृथ्वी के मालिक होने से भी अमृतत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह उन को अवगत था। इसलिए प्रेयस् को छोड़ कर श्रेयस् का मार्ग उन्होंने अपनाया और संसार का त्याग कर के वह संन्यासी बने। प्रथम वह संजय वेलट्ठीपुत्र के शिष्य थे, किन्तु उन के उपदेश से उन का समाधान नहीं हुआ। वह दूसरे गुरू के शोध में थे जब अकस्मात् सारिपुत व बुद्ध की भेंट हुई। उन के उपदेश से वह मुग्ध हो गया और वह तुरन्त मोग्गलान को भी बद्ध के पास लाया। बुद्ध के प्रवचनों से दोनों का समाधान और शंका निरसन हुआ और उस के द्वारा निर्दिष्ट साधना से दोनों थोड़े ही समय में मुक्त हो गए। दोनों ने अपना शेष जीवन धर्म प्रचार के कार्य में बिताने का निश्चय किया और उस में उन को अनुपम सफलता प्राप्त हुई।

क्या हम लाभ नहीं उठा सकते ?

सारिपुत्त अपनी अनुनयपूर्ण वाक्पटुता से सहज ही अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त कर लेते थे और मोग्गलान तत्वज्ञान विषयक गुत्थियां सुलझाने में अत्यंत सफल रहते थे। अपने प्रवचनों में सारिपुत हमेशा संयम, आत्म परीक्षा तथा नैतिक प्रगति पर जोर देते थे। आत्मशुद्धि करो और लगन से ध्येय की ओर बढ़ो, यह उन का उपदेश था। मोग्गलान की शिक्षा यह थी कि गरीबी प्रगति में बाधक नहीं होती। क्या आज भी स्वतन्त्र भारत इन उपदेशों से लाभ नहीं उठा सकता है ? भारत निस्संशय अनेक दूसरे राष्ट्रों से गरीब हैं, किन्तु क्या उत्साह, लगन व सच्चारित्र्य के सहारे हम अपनी कठिनाइयों को दूर कर के अपनी राष्ट्रीय प्रगति नहीं कर सकते ? क्या हम आज कर्तव्य पालन का ठीक ख्याल कर रहे हैं ? क्या हमारे वैयक्तिक व सार्वजनिक जीवन में सच्चाई तथा तत्वनिष्ठा ठीक प्रमाण में दीखती है ? राष्ट्रीय पुनरुत्थान के सत्कार्य से क्या हम आवश्यक लगन लगा रहे हैं।

मौर्य युग में बुद्ध धर्म के अनेक सन्देशवाहक थे, उन में मोग्गलिपुत तिस्स निस्संशय अग्रतर थे। अशोक का धर्म परिवर्तन उन्होंने किया था, व उन के उपदेश के फलस्वरूप अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र व कन्या

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संघमित्रा को भिक्षु व भिक्षुणी बनने की अनुज्ञा दी थी। उन्होंने पटना में तृतीय बौद्ध संगीति बुलाई, जिस के वह स्वयं सभापति चुने गए थे। बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए यह आवश्यक था कि आंतरिक झगड़े उत्पन्न न हों। विवादवत्थु नामक ग्रंथ लिख कर तिस्स ने एक प्रभावशाली आयोजन कार्यान्वित किया। थरे मज्झिम की अध्यक्षता में एक प्रचारक मण्डल हिमालय प्रदेश में भेजा गया, दूसरा थरे मज्झिम की अध्यक्षता में पंजाब कश्मीर व अफगानिस्तान में, तीसरा महाधर्मरक्षित की अध्यक्षता में महाराष्ट्र में, चौथा धर्मरक्षित की अध्यक्षता में कोकण में, पाँचवाँ रक्षिव की अध्यक्षता में उत्तर कर्नाटक में, व छठा महादेव की अध्यक्षता में मैसूर में।

पश्चिम एशिया में ग्रीक राज्यों में अशोक के दूतावास थे, उन के सहकार्य में बौद्ध भिक्षु धर्म प्रचार का कार्य करने लगे। उन के नाम आज ज्ञात नहीं हैं, किन्तु उन को पर्याप्त सफलता मिली होगी, चूंकि जिस एसीन पंथ से ईसाई धर्म उत्क्रांत हुआ उस में और बौद्ध-धर्मीय संन्यास परम्परा में विलक्षण साम्य है। लंका का प्रचारक मण्डल राजपूत भिक्षु महेन्द्र के अध्यक्षता में अपना कार्य करता था। महेन्द्र ने बीसवें वर्ष में भिक्षु-दीक्षा ली थी और पूरे बारह साल साधना में व्यतीत किये थे। पीछे वह तिस्स के आदेशानुसार लंका गये। उस के चारित्र्य, किस्सा व धर्म प्रवचन से लंकावासी इतने प्रभावित हुए कि वह उन का बुद्ध के समान आदर करने लगे। कुछ समय के पश्चात् महेन्द्र ने अपनी बहिन संघमित्रा को वहाँ प्रचार के लिए बुलाया और उसने भिक्षुणी संघ की नींव डाली। लंका में बौद्ध धर्म प्रसार का श्रेय इन दोनों भाई बहन को देना उचित होगा। वर्मा में

ब्रह्मदेश से भगवान् बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा ब्रह्मा के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री माननीय यू नू राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद को भेंट कर रहे हैं। इस समारोह को प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर राधाकृष्णन् तथा श्री अनन्त शयनम् आयंगर देख रहे हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
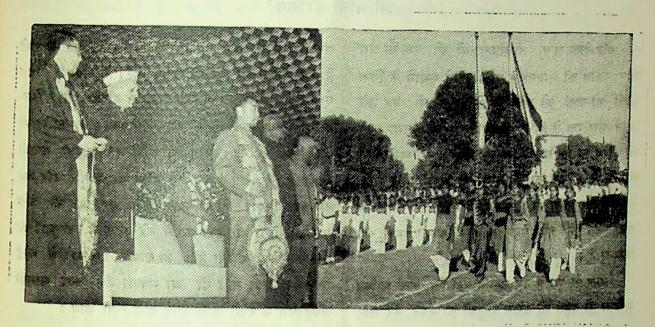
चीन के प्रधान मन्त्री श्री चाऊ एन लाई नई दिल्ली में

सोणुत्तर की अध्यक्षता में प्रचारक मंडल भेजा गया व उस के द्वारा भी पर्याप्त धर्म प्रसार हुआ ।

उदार दृष्टि अशोक

मौर्य युग का सर्वश्रेष्ठ बौद्ध सन्देशवाहक निस्संशय अशोक था । उस की भगवान् बुद्ध पर निस्सीम भक्ति थी और बौद्ध धर्म पर अनुपम श्रद्धा । उसने स्वयं त्रिपिटक वाङ्मय का अभ्यास किया था किन्तु वह कट्टर बौद्ध नहीं था। धर्मों के साक्षेप अध्ययन का संसार में शायद वह सर्वप्रथम पुरस्कर्ता था । उसने हिन्दू, बौद्ध, जैन इत्यादि धर्मानुयायियों को यह उपदेश किया वे दूसरे धर्मों का भी सम्यक् अध्ययन करें और उन से भी लाभ उठाएं । इस तरह का उपदेश करने की उदार दृष्टि सर्व प्रकार शायद अशोक में ही उत्पन्न हुई । स्वयं बौद्ध होते हुए भी अपने अभिलेखों में जिस धर्म का उसने उपदेश दिया है वह धर्म हिन्दू, जैन इत्यादि तत्कालीन धर्मों का सार है। यदि संसार में कभी मानव या विश्व धर्म स्थापित होगा तो वह अशोक के धर्म से मिलता-जुलता ही होगा ।

ईसा की पहली सदी में बौद्ध सन्देशवाहकों की दृष्टि और सुदूर देशों पर गई और वे मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, कोरिया, जापान, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा आदि देशों में अपना प्रचार कार्य करने लगे । इन धर्म सन्देशवाहकों को प्रायः राजसत्ता की सहायता न थी। उन के सामने कठिनाइयां भी अनेक थीं। जलप्रवास में अनेक नौकाएं डूबती थीं । हिमालय, काराकोरान, पामीर इत्यादि पहाड़ों के अनेक मार्ग जगह-जगह इतने सकरे व फिसलने वाले थे कि अनेक धर्मोपदेशक वहां नीचे गिर कर मृत्यु के शिकार बनते थे । डाकुओं द्वारा अनेक मारे जाते थे व बीमारियों से अनेक गतप्राण होते थे । ऐसी अवस्था में अनेक महीनों के प्रवास के बाद २० फीसदी धर्मोपदेशक भी उद्दिष्ट देश में नहीं पहुंच सकते थे। विदेश का वातावरण भी हमेशा अनुकूल नहीं मिलता था । यद्यपि चीन देश में बौद्ध धर्म का प्रवेश ईसा की पहली सदी में हुआ, तथापि किसी भी चीनी व्यक्ति को भिक्षु बनने की इजाजत चौथी सदी तक नहीं मिली ।

—o—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आधुनिक जीवन में संग्रहालयों का स्थान

श्री मौली हेरीसन[1]

यदि देखा जाय, तो संग्रहालयों की उत्पत्ति प्रेम और स्वार्थ की भावना से हुई। पुराने जमाने के जिस यात्री को जहां जो चीज अच्छी लगती थी वह उसे अपने पास रख लेता था। सौभाग्य से वह इतना धनी भी होता था कि अपनी मन-चाही चीज को खरीद भी सकता था। उस का संग्रह उस की इच्छा और रुचि के अनुसार होता था। आज के यूरोप के बहुत से संग्रहालयों में हमें यही व्यक्ति-वैचित्र्य देखने को मिलता है।

आज के युग में यह सम्भव नहीं कि कोई व्यक्ति अकेला ही बहुत सी उत्तम वस्तुओं का संग्रह कर सके, इस लिए आज उन के चलाने का दायित्व संस्थाओं और व्यापक रूप में सारी जनता का है। आज के संग्रहालय जनता के हैं।

संग्रहालयों में तरह तरह की वस्तुएं दिखाई जाती हैं, पर यह काम इतना आसान नहीं जितना साधारण लोग समझते होंगे। हम सब संग्रहाध्यक्ष अपने काम में बड़ी रुचि रखते हैं और इसे बड़े चाव से करते हैं, क्योंकि यदि हमें यह काम हृदय से न रुचे तो हम इसे नहीं कर सकते।

संग्रहालयों के काम में सब से पहली समस्या आती है, प्रदर्शनीय सामग्री के चुनाव की। आज का जीवन ऐसा है कि कोई भी व्यक्ति अनावश्यक और अजीब चीज अपने पास नहीं रखना चाहता। ऐसी चीजों को लोग संग्रहालयों को भेंट कर देना चाहते हैं। इसलिए संग्रहालयों के पास इतनी अधिक चीजें आती रहती हैं जिन्हें वे दिखा नहीं सकते। संग्रहालयों के कर्मचारियों को तो संग्रह करने की बीमारी ही होती है।

सामग्री का चुनाव

अब वह जमाना नहीं कि किसी भी अजीब चीज को संग्रहालय में स्थान दिया जा सके। बहुत से पुराने संग्रहालयों में अब एक तरह की सफाई की जा चुकी है और बहुत सी बेढंगी चीजें हटा दी गयी हैं। अब ऐसा नहीं होता कि भारतीय हाथी-दांत के साथ फिनलैंड के रैनडियर के सींग या मेक्सिको की कशीदे की चीजें रखी हुई हैं। अब सब चीजें एक क्रम से लगायी जाती हैं और यह क्रम बहुत सोच समझ कर और तर्क के बाद नियत किया जाता है। हर तरह की रुचि और जिज्ञासा को पूरा करने की दृष्टि से वस्तुओं का चुनाव किया जाता है। फिर भी इस बारे में कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती कि क्या सामग्री संग्रहालय में रखी जाय और कैसे रखी जाय।

कोई भी संग्रहालय ऐसा नहीं हो सकता जहां विश्वविद्यालयों के अध्यापकों या गवेषकों से लेकर आम स्त्री-पुरुषों के मतलब की हर चीज देखने को मिले। हमें अपने चारों ओर के समाज और वातावरण इत्यादि कई बातों को लेकर प्रदर्शनीय सामग्री का चुनाव करना होता है। आज संग्रहालयों से सम्बद्ध व्यक्ति यह अनुभव करने लगे हैं कि संग्रहालय का संचालन स्वतः कोई उद्देश्य नहीं, बल्कि इस के द्वारा जनता की सेवा करना ही उद्देश्य हो सकता है। जनता की ज्ञानवृद्धि, मनोरंजन, विकास और शिक्षा ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये।

आज की आवश्यकताएं

संग्रहालय की सामग्री को कैसे सजाया जाय, यह भी बड़ा पेचीदा काम है। यह सामग्री कैसे बक्सों में रखी जाय, कैसी रोशनी लगायी जाय, रोशनी जरूरी भी है या नहीं, ऐसी अनेक बातों पर संग्रहालयों के विशेषज्ञों को माथापच्ची करनी पड़ती है। इतना ही नहीं अमुक वस्तु पर किस तरह का लेबिल लगाना ठीक होगा, यह भी काफी सोच-विचार कर तय किया जाता है। संग्रहालय किस समय से किस समय तक खुले और इस में सर्दी गरमी में हवा आदि का [illegible]

१ संग्रहाध्यक्ष, जैफरी संग्रहालय, लन्दन।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रबन्ध हो यह बातें भी कम महत्व नहीं रखतीं। इस प्रकार चीजों के रखने का काम भी सरल नहीं।

युद्ध के बाद एक विचार बराबर प्रबल होता जा रहा है कि संग्रहालय की वस्तुएं किसी एक राष्ट्र या जाति की सम्पत्ति नहीं। इन पर समस्त विश्व का समान अधिकार है। ये वस्तुएं संसार को निकट लाने का बहुत बड़ा साधन हैं। इसलिए संग्रहालय की सामग्री ऐसी होनी चाहिये जिससे समस्त मानव जाति की एकता के भाव को बल मिले।

अन्यर्राष्ट्रीय सहयोग

यूनेस्को ने भिन्न भिन्न देशों के संग्रहालयों में सहयोग पैदा करने के लिए काफी काम किया है। अन्तर्राष्ट्रीय संग्रहालय परिषद की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई है।

सब तरफ नये-नये संग्रहालय खुलते जा रहे हैं। नये-नये विचारों और सूझ-बूझ का परिचय मिल रहा है, फिर भी लोग संग्रहालयों से संतुष्ट नहीं। कुछ लोग समझते हैं कि संग्रहालयों में बहुत अधिक चीजें रहती हैं। कुछ का विचार है कि यहां केवल पुरानी वस्तुओं का ही संग्रह है, क्यों न हमारे आधुनिक जीवन से सम्बद्ध चीजें यहां रखी जांय।

कुछ संग्रहालय अधिकारी आम दर्शक को बिल्कुल बेवकूफ समझते हैं क्योंकि वह यहां की सामग्री पर उतना ध्यान नहीं देता, जितना इन अधिकारियों के विचार में देना चाहिये।

संस्कृति के केन्द्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि संग्रहालयों के बारे में सब अपने अपने ढंग से ही सोचते हैं फिर भी संग्रहालयों का महत्व बढ़ता जा रहा है। संग्रहालयों के अधिकारीगण अब अपने दफ्तरों में बंद नहीं रहते वे हर तरह के लोगों के सम्पर्क में आकर यह जानने को उत्सुक रहते हैं कि संग्रहालयों का, अधिक से अधिक लोग कैसे लाभ उठायें। अब एक संग्रहालय दूसरे संग्रहालय को अपनी अपनी सामग्री भेजता है। इतना ही नहीं स्कूलों तक को संग्रहालय अपनी सामग्री देते हैं। इस व्यापक आदान-प्रदान ने आज के संग्रहालयों को संस्कृति का केन्द्र बना दिया है—जहां से हर व्यक्ति को अपनी परिष्कृत रुचि के अनुकूल कुछ न कुछ अवश्य प्राप्त होता है।

क्या आप जानते हैं ?

★
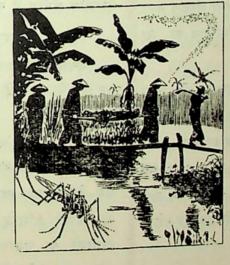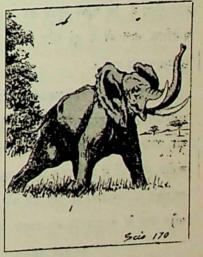
१. मलेरिया संसार की सबसे बड़ी स्वास्थ्य समस्या है। १९५५ में १३५ देशों में मलेरिया से २०करोड़ व्यक्ति रुग्ण हुये जिन में से बीस लाख लोग मर गये।

२. पूरे हाथी का भार लगभग दस हजार पौण्ड होता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय संगीत का विकास

डॉक्टर सुमति मुताल्कर[1]

पिछली सदियों में भारतीय संगीत में भीतरी तथा बाहरी प्रभावों के कारण कई परिवर्तन होते रहे हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में जिन जाति गीतों का वर्णन आता है उन्होंने धीरे-धीरे कहीं व्यापक और विशद रागों का रूप ग्रहण कर लिया। दसवीं सदी के आस-पास ही ये राग काफी मंज चुके थे और सम्पूर्ण देश के संगीत पर उन का प्रभाव पड़ रहा था। कम से कम तेरहवीं सदी के अन्त तक सारे भारत में इसी आधारभूत संगीत प्रणाली का बोलबाला रहा।

प्राचीन भारत में संगीत भगवद्भक्तों की प्रेरणा का स्रोत था और उस के इसी प्रभाव के कारण सर्व-साधारण उस की ओर आकर्षित होते थे। प्रबन्ध संस्कृत में होने के कारण, अपेक्षाकृत बहुत कम लोग उन्हें समझ पाते थे। कालांतर में संगीत रचनाएँ देसी भाषा में की जाने लगीं और उस का प्रभाव यह हुआ कि उस की लोकप्रियता बढ़ी और साधारण जन भी उस में रुचि लेने लगे। उत्तर भारत में प्रबन्ध का स्थान ध्रुपद ने लिया। भाव भट्ट की परिभाषा 'गीर्वाण मध्य देशीय भाषा साहित्य राजितम्' से यह ज्ञात होता है कि पहले ध्रुपद की रचना संस्कृत तथा प्रादेशिक भाषाओं में हुई और इन में साहित्य का भी उचित स्थान रहा।

उत्तर भारत में मुसलमानों का शासन होने तथा मुसलमानों से निरन्तर सम्पर्क रहने से संगीत पर उस का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। अतः, जहां संगीत मन्दिरों में भक्तिरस का सृजन करता रहा वहां शासकों के दरबारों में भी उस की जड़ें जमने लगीं और वहां के वातावरण का प्रभाव भी उस पर पड़ा।

दरबार ध्रुपद

मन्दिर ध्रुपद तो था ही, दरबार ध्रुपद का भी सृजन हुआ। अकबर का शासन-काल ध्रुपद के लिये स्वर्ण-युग कहा जाता है। स्वामी हरिदास तथा तानसेन जैसे अमर संगीतज्ञ ध्रुपद के ही गायक थे। सामान्यतः, शासक लोग संस्कृत से अपरिचित थे। धीरे-धीरे संगीतज्ञ भी संगीत के भक्ति-पक्ष तथा साहित्य-पक्ष से विमुख होते गये। उस का परिणाम यह हुआ कि ध्रुपद की प्रभावशीलता कम होने लगी। विकास एक ही दिशा में हुआ, जिस में शब्दों का कोई महत्व नहीं रहा। इसी प्रक्रिया के परिणाम-स्वरूप ध्रुपद ने खयाल को जन्म दिया।

खयाल

खयाल का शब्दार्थ है कल्पना। इस का रूप ध्रुपद से कहीं सूक्ष्म था। सदारंग और अदारंग ने इतने अधिक खयालों की रचना की कि इस क्षेत्र में उन के नाम अमर हो गये हैं। उन्होंने बहुत से शिष्य भी बनाये और उन्हें खयाल सिखाये। संगीत के क्षेत्र में हिन्दू और मुस्लिम संगीतज्ञों ने जो नयी-नया रचनाएं कीं और उन का जो परस्पर प्रभाव पड़ा उस से भारतीय संगीत में नयी-नयी खूबियां पैदा हुईं।

घरानों का विकास

मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों में और विशेषकर उस के पतन के बाद उन के दरबारी संगीत को देसी रियासतों में स्थान मिला। इन में ग्वालियर, जयपुर, उदयपुर, रामपुर, अलवर, लखनऊ, बड़ौदा और हैदराबाद उल्लेखनीय हैं। राजा मान के ध्रुपद प्रेम के कारण ग्वालियर संगीत के मामले में पहले ही काफी प्रसिद्धि पा चुका था। इन रियासतों के शासकों के उदारतापूर्ण संरक्षकत्व में प्रतिभाशाली और पटु संगीतज्ञों के प्रयत्न से संगीत का विकास जारी रहा। कालांतर में, संगीत के विभिन्न घराने एक-दूसरे से अलग-थलग पड़ते चले गये। हर घराना

---

१ संगीत निर्देशक, अखिल भारतीय रेडियो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

केवल अपनी संगीत शैली को कायम रखने की धुन में अपने से भिन्न शैली से विमुख होता गया। हर घराना अपनी शैली को अत्यंत सुरक्षित और गोपनीया रखने का प्रयत्न करता था।

ठुमरी

लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में ठुमरी व दादरे ने जन्म लिया। ये रचनाएं भाव प्रधान होती हैं। ठुमरी में बहुत लोच होती है और सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति उसमें बड़ी खूबी से होती है। ठुमरी के लिए लखनऊ और बनारस ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। गुलाम नबी उर्फ शोरे मियां ने टप्पे को जन्म दिया।

सिद्धांत और व्यवहार के बीच की खाई

संगीत में इन नये-नये रूपों के आगमन तथा मिश्रण के कारण सिद्धांत और व्यवहार के बीच एक खाई पड़ गयी। आधारभूत सिद्धांत और आधारभूत रूप-रेखा वही होने पर भी अंतर पड़ता चला गया। आज भी, यद्यपि उत्तर और दक्षिण भारत में क्रमशः हिंदुस्तान और कर्नाटक संगीत प्रणालियां प्रचलित हैं, फिर भी उनके आधारभूत सिद्धांत लगभग एक से ही हैं। संगीतात्मक अभिव्यक्ति का आधार और उद्देश्य राग का विकास ही है।

दोनों प्रणालियां बारह स्वरों को स्वीकार करती हैं; सात शुद्ध और पांच विकृत। 'स' और 'प' स्थिर स्वर और राग में कम से कम पांच स्वर अवश्य होने चाहियें रागों के वर्गीकरण का ढंग भी दोनों प्रणालियों में समान ही है।

उत्तर के कुछ रागों के सामान ही दक्षिण के भी कुछ राग हैं। उदाहरण के रूप में, भूपाली, मालकौंस, झिंझोटी, टोडी और बागीश्वरी राग दक्षिण के क्रमशः मोहनम्, हिंडोलम्, जिंजुरती शुभा पंटुवर्डी और नटकुरंजी रागों से मिलते हैं।

हां, दोनों प्रणालियों में गमक, स्वर-संचार आदि का रूप भिन्न-भिन्न है। दक्षिण में लय पर गणित का प्रभाव अधिक है और उसमें शुद्ध अकारम् का अधिक प्रयोग नहीं होता। दक्षिण का संगीत भक्ति क्षेत्र से कभी अलग नहीं हुआ और वहां के सभी महान संगीतकार भक्त और साहित्यकार थे। पुरंदरदास, थयागराज, श्याम शास्त्री, दीक्षितर और स्वामी तिरू-मल माहन संगीतज्ञ और स्वरकार तो थे ही, महान भक्त भी थे।

भारत में ब्रिटिश शासन होने के बाद रियासतों के राजा लोगों का ध्यान दूसरी ओर चला गया। बड़े-बड़े संगीतज्ञों को ग्वालियर, रामपुर, बड़ौदा, औंध आदि राज्यों में स्थान मिला रहा, जहां के राजा लोग संगीत प्रेमी थे। लेकिन धीरे-धीरे शाही संरक्षकत्व कम होता गया और संगीतज्ञों को जनता का सहारा ढूंढना पड़ा. संगीत और संगीतज्ञों के लिए यह अत्यन्त कठिन समय था। ऐसे ही समय में दो महान उद्धारक पंडित पलुस्कर और भातखंडे हुए। पंडित पलुस्कर ने संगीत के प्रति लोगों की भ्रांत धारणाओं को दूर किया और उसके प्रति लोगों में विश्वास पैदा किया।

गांधी जी संगीत के महत्व को पहचानते थे। विभिन्न व्यक्तियों के दिलों को जोड़ने में संगीत कितना सहायक हो सकता है, वह बखूबी जानते थे। उन्होंने आश्रम-जीवन में संगीत को उचित स्थान दिया।

पंडित भातखंडे ने संगीत को वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने के लिए महान साधना की।

पंडित पिलुस्कर ने इस दिशा में निस्वार्थ भाव से बहुत काम किया। शिष्यों की सहायता से उन्होंने अपने संगीत स्कूल अनेक शाखाओं की विभिन्न स्थानों में स्थापित किये।

कुछ समय बाद मध्यम वर्ग के सुसंस्कृत और धनी व्यक्ति आगे आये। फिर तो संगीत गोष्ठियों, समितियों और सम्मेलनों की धूनी मच गई। इससे राजश्रय-हीन संगीतज्ञों को सहारा मिला।

कलान्तर में ग्रामोफोन और रेडियो जैसे साधनों का प्रयोग होने लगा। इस से संगीत के प्रसार और संगीतज्ञों की ख्याति में विशेष सहायता मिली।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धीरे-धीरे संगीतज्ञों की रुची भी इसी ओर बढ़ी। आज जब कि राजाओं का युग समाप्त हो गया, तो मध्य वर्ग के अलावा रेडियो ही एक मात्र ऐसा संगठन है, जिस से संगीतज्ञों को प्रोत्साहन मिलता है।

आज स्वतंत्र भारत में संगीत की प्रतिष्ठा उत्त-रोत्तर बढ़ रही है। अब जनता में अपने देश के संगीत के प्रति चेतना आई है। अब ऐकादमी स्थापित की जा रही है। संगीत के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को सरकार छात्रवृत्तियां दे रही है।

इसके अलावा प्रति वर्ष अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ संगी-तज्ञों को सरकार के द्वारा सम्मानित किया जाता है।

संगीत और जनतंत्र

आज जनतंत्र के युग में जनता की सेवा के लिए कला को भी आगे बढ़ाना होगा। अतः संगीतज्ञों को जनता की रुची का ध्यान रखते हुए, शास्त्रीय संगीत की परम्परा का निर्वाह करना होगा। यह काम आसान नहीं, बल्कि तलवार की धार पर धावना है। आज संगीतज्ञों के सामने, इस के सिवाय चारा ही क्या है?

ज्ञातव्य बातें

- १९५५-५६में भारत को पर्यटकों से लगभग १० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।
- १९५५-५६ में भारतीय रेलों ने ७६ लाख, ८६ हज़ार रुपये की खादी खरीदी। १९५४-५५ में १० लाख, १३ हज़ार रुपये की खादी खरीदी थी।
- भारत सरकार ने फिले रिया की रोकथाम के लिए अब तक १३राज्यों को २४ लाख ५७ हज़ार रुपये का साज-सामान दिया है।
- भारत में १९५५में साई-किल के ५७४८१०० टायर बने। १९५४ में ५२२६००५ टायर बने थे।

भारत का का प्रथम आणविक रिएक्टर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
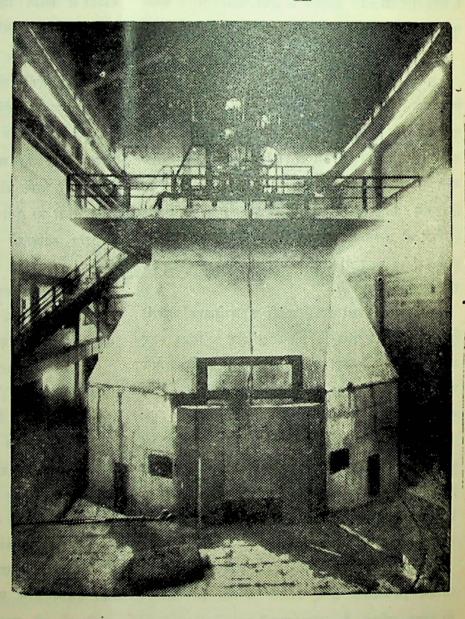
लोकतन्त्र का आधार—वोट

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव लोकतंत्र का आधार है । इसके लिए मतदान की गुप्तता आवश्यक है ।मतदान की गुप्तता का अर्थ है कि किसी को यह न मालूम हो कि निर्वाचक ने किसे वोट दिया । गुप्त मतदान में मतदाता को अपनी इच्छा के अनुसार मत देने में संकोच या भय नहीं होता । वह बिना किसी के डर या दबाव से जिसे चाहे अपना वोट दे सकता है ।

फरवरी २४ से भारत के द्वितीय महानिर्वाचन का आरम्भ हो रहा है । इस चुनाव में बीस लाख से अधिक इस्पात की पेटियों में वोट या मतपत्र डाले जाएगें । इस बार लकड़ी की पेटियों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है, ताकि जनता को यह आशंका न हो सके कि पेटियों में कोई गड़बड़ की जा सकती है । इस लिए मतदान पेटियां इस ढंग से बनायी गई हैं कि उसे कोई चोरी से न खोल सके ।

समूचे देश में २ लाख से भी अधिक मतदान केन्द्र होंगे, जिसमें २९,६०,००० मतदान पेटियों का उपयोग होगा । पिछले चुनाव से इस बार ४,८७,००० पेटियां अधिक हैं । अनुमान है कि इन अतिरिक्त पेटियों की लागत ३५ लाख रु० होगी ।

ये पेटियां छोटी और हल्की हैं और अपने से बन्द हो जाती हैं । इनके ढक्कन पर पर्ची डालने के लिए एक छेद बना है, जिसमें से कागज तो डाला जा सकेगा, परन्तु बाहर नहीं निकल सकता । मतदान समाप्त होने पर ढक्कन बन्द कर के उस पर सील लगा दी जायगी इस सील को तोड़े बिना पर्चियों को इधर-उधर रखना कदापि सम्भव न होगा ।

यदि किसी मतदान केन्द्र से मत-पेटी गायब हुई या उसे किसी तरह का नुकसान पहुंचा तो वहां दुबारा मतदान होगा, इस प्रकार पेटी को तोड़ने की कुचेष्टा बेकार जाएगी ।

प्रत्येक मतदान केन्द्र में जितने उम्मीदवार होंगे, उतनी ही पेटियां रक्खी जाएंगी । प्रत्येक पेटी के भीतर और बहार उम्मीदवार का चुनाव चिन्ह अंकित होगा चिन्ह पर उम्मीदवार का नाम भी लिखा होगा । मतदाता को केवल यही करना है के अपनी पसंद के उम्मीदवार के चिन्ह को पहचान कर उसकी पेटी में पर्ची डाल दें ।

मत-पत्र या पर्ची

नासिक के सिक्योरिटी छापेखाने में लगभग ५७५० लाखपत्र छापे जा रहे हैं । पिछले चुनाव में

मतदान का एक केन्द्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
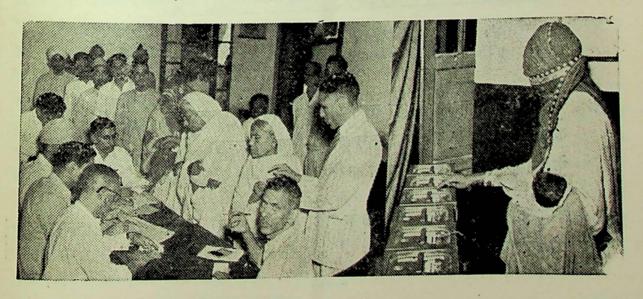
६२०० लाख छपे थे। ये हरे और भूरे दो रंगों के होंगे तथा इन पर पेचिदा डिजाइन तथा क्रम-संख्या अंकित होगी, जिस से फर्जी या जाली पर्चियां बनाना सम्भव न होगा।

राज्यों की विधान सभा तथा लोकसभा का निर्वाचन साथ-साथ होगा और इस काम के लिए प्रत्येक केन्द्र में अलग-अलग दो कक्ष होंगे। भूरे रंग की पेटी में विधान सभा के लिए और हरे रंग वाली पेटी में लोकसभा के लिए मत डाले जाएंगे। निर्वाचक को विधानसभा के लिए भूरे पर्चे दिये जाएंगे और उसे डालकर बाहर आने पर उसे लोकसभा का पर्चा मिलेगा।

चुनाव आयोग ने इस बात की पूरी व्यवस्था की है कि चुनाव में कोई गड़बड़ी न हो। चुनाव अधिकारियों को पेटियों को बन्द करने और उन पर मुहर लगाने के बारे में पूरी-पूरी और स्पष्ट हिदायतें दी गई हैं और वोट डालने के लिए ऐसी कोई भी पेटी इस्तेमाल नहीं की जाएगी, जिसमें कोई भी त्रुटि हो।

क्या आप जानते हैं ?

१

२

१ पश्चिमी अफ्रीका का पोट्टो नामक यह स्तनपोषी जन्तु बड़ा अद्भुत है। इस की पीठ की हड्डी का कुछ भाग बाहर निकला रहता है। शत्रु को मारने के लिए यह इस का उपयोग करता है।

२ वायु की बाधा को कम करने के लिए अनेक पक्षी V आकार में क्रमबद्ध हो कर उड़ते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं।--सम्पादक।

लोकमान्य तिलक चरितम् (संस्कृत में)

लेखक—श्री कृष्ण वामन चितले, आचार्य, शारदाश्रम विद्या मंदिर, दादर, मुंबई—२८।

मूल्य ५) रुपये।

लोकमान्य तिलक महाराज की जन्मशताब्दी के प्रसंग पर महाराष्ट्र के अनेक विद्वानों ने उन की कई अच्छी-अच्छी जीवन कथायें लिखी हैं। विषेश प्रसन्नता की बात तो यह है कि मराठी, अंग्रेजी और हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी चरित्र-ग्रंथ लिखने का स्पृहणीय प्रयत्न किया गया है। अभी तक संस्कृत भाषा में प्रकट हुए तीन जीवन-चरित्र हमें पढ़ने का सुयोग मिला है। इन में आचार्य चितले का चरित्र सबसे अधिक विशाल और उपादेय है। कोई तीन सौ पन्नों की इस पोथी में लोकमान्य के तेजोदीप्त जीवन की सभी घटनायें आ गई हैं। ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसकी भाषा अति सरल. सुबोध और प्रवाहपूर्ण है। इसमें लम्बे समासों की जड़ता नहीं है। वाक्य छोटे छोटे और प्रसाद-गुण युक्त हैं। इस पुस्तक के रस्वादन के लिये आडंबर युक्त और पंडिताऊ संस्कृत के परिज्ञान की आवश्यकता नहीं है। संस्कृत की वाल्मीकि रामायण और महाभारत को अवगत कर लेने वाला बड़ी सरलता से इस तिलक चरित्र का आस्वादन कर आनंद उठा सकता है। इस रोचक पुस्तक का प्रणयन करके आचार्य चितले ने यह सिद्ध कर दिया है कि लोक-सामान्य में संस्कृत जैसी अप्रचलित भाषा में आज भी सुन्दर और सुबोध रचनाएं की जा सकती हैं। स्वच्छ, सरल और प्रसादपूर्ण संस्कृत गद्य में प्रणीत भारत के प्रातर्वन्दनीय नेता तिलक जी की यह जीवन-कथा छात्रों के पाठ्य ग्रन्थ के रूप में निःसन्देह उपयोगी छात्र जहां तिलक महाराज के प्रतापी जीवन कार्यों से शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त करेंगे। वहाँ उनका संस्कृत भाषा का ज्ञान भी समृद्ध और परिष्कृत हो सकेगा। सुन्दर और सरल गद्य लिखने का नमूना भी वे इस ग्रन्थ से सीख सकेंगे। प्रसादपूर्ण सुबोध संस्कृत गद्य में ऐसी रुचिर रचना प्रस्तुत करने के लिये आचार्य चितले जी संस्कृतज्ञों द्वारा धन्यवाद के पात्र हैं। स्वच्छ, शुद्ध, सुन्दर मुद्रण, बढ़िया काग़ज और पुष्ट जिल्द वाली इस पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये कुछ अधिक नहीं है। छात्रों को पुरस्कार रूप में प्रदान करने के लिये भी यह पुस्तक बहुत अच्छी रहेगी।

श्री वेंकटेश्वर समाचार
(हीरक जयन्ती विशेषांक)

संपादक—श्री देवेन्द्र शर्मा शास्त्री, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रस, मुंबई ४।

श्री वेंकटेश्वर-समाचार हिंदी भाषा का सब से पुराना साप्ताहिक-पत्र है। इसने जनता में धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषयों की जानकारी के लिये अपने जीवन काल में प्रशंसनीय कार्य किया है। इसके पुराने संपादकों में हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित और कृतविद्य सेवकों ने भारत देश और हिंदी भारती की गौरव बृद्धि के लिये अभिनंदनीय कार्य किये हैं। वर्तमान संपादक श्री देवेन्द्र जी शर्मा भी बड़ी योग्यता और भावना के साथ इस का संपादन कर रहे हैं।

पत्र का बृहत्-काय "हीरकजयंती अंक" सुन्दर बन पड़ा है। अनेक विद्वानों के उपयोगी और ज्ञानवर्धक लेखों से यह अलंकृत है। सांस्कृतिक लेखों का एक मनोरम गुलदस्ता ही संपादक महोदय ने तैयार कर डाला है। अंक के पिछले भाग में इस पत्र की पुरानी सेवाओं पर अनेक लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकारों के सूचना-पूर्ण लेख संचित हैं। ऐसा सुन्दर और पठनीय विशेषांक प्रस्तुत करने के लिये सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं।

—शंकरदेव।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्या राम सेना बन्दर थी

लेखक--पं० रघुनाथ दत्त बन्धु शास्त्री, प्रकाशक--ठाकुरदत्त शर्मा धमार्थ ट्रस्ट, देहरादून, मूल्य सप्रेम भेंट।

१६ पृष्ठों की इस छोटी सी पुस्तिका में पंडित रघुनाथ दत्त जी बन्धु ने बालमीकिरामायण के अनेक स्पष्ट और प्रबल प्रमाण दे कर यह सिद्ध करने का सफल यत्न किया है कि हनुमान्, अंगद, सुग्रीव आदि वानर जातीय नहीं, मनुष्य थे जो बड़े बड़े महलों में निवास करते, उत्तम वस्त्र तथा यज्ञोपवीत धारण करते, वेद पढ़ते, हवन यज्ञ करते, अपने राजाओं का वैदिक विधिपूर्व राज्याभिषेक करते, उन्हें मुकुटादि पहनाते तथा अन्य प्रकार से सुसभ्य जीवन व्यतीत करते थे उनकी पत्नियां भी उत्तम वस्त्रों तथा आभूषणों से सदा सुसज्जित रहती थीं।

पुस्तिका में दिये गये प्रमाण जितने प्रबल हैं हमें खेद है कि उपसंहार इतना अच्छा और प्रभावजनक नहीं बना क्योंकि लेखक महोदय ने 'शायद वाल्मीकि का अभिप्राय ऐसा न हो। (पृ० १२) यह बात न थी कि इस जाति को वानर कहना वालमीकि को खटका न हो। खटका उन्हें भी और उन्होंने उन्हें 'देवसन्तान' कह कर उस का सांकेतिक समाधान भी कर दिया इत्यादि (पृ० १३) ऐसे शब्दों का प्रयोग कर के अपनी युक्ति प्रमाण सङ्गत स्थापना को सन्देहास्पद और अविश्वसनीय सा बना दिया है। वस्तुतः बाल्मीकि रामायण के असल भाग में वानरजाति को देवसन्तान कह कर समाधान किया गया है यह बात माननीय भी नहीं। वानरवत् कुछ चंचल और अत्यधिक क्रियाशील प्रकृति के कारण इन के लिए वानर शब्द का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है। उपसंहार में इस प्रकार कुछ त्रुटि रहने पर भी (जिसे आशा है अगले संस्करण में दूर कर दिया जाएगा) पुस्तिका बड़े परिश्रम से लिखी गई और उपादेय है।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

--०--

विस्मयपूर्ण सत्य

१

२
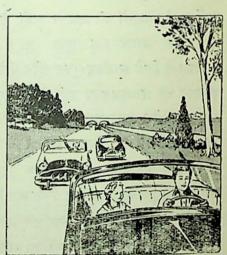
१ हार्प नामक वाद्य यन्त्र को ५००० वर्ष पूर्व लोग बजाया करते थे। आज भी यह एक लोकप्रिय वाद्य यन्त्र है।

२ संयुक्त राज्य अमेरिका में पांच करोड़, सत्तर लाख शौकिया मोटर चालकों में लगभग दो करोड़ महिलायें हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-समाचार

ऋतु-रंग

शिशिर-काल विदाई ले रहा है और वसन्त की अगवानी हो रही है। शहतूत आदि वृक्ष पत्र-विहीन हो गए है। पश्चिम की शुष्क हवाएँ पत्ते उड़ाती फिर रही है। उद्यानों में केवल कुन्द-कलियों की ही सुषमा दृष्टिगोचर हो रही है। खेतों ने सरसों की कमनीय कुसुमावली के रूप में वासंतिक परिधान धारण कर लिये हैं। इक्के-दुक्के पपीहे के बोल सूचित कर रहे हैं कि मौसम में उष्णता आने में देर नहीं है। अभी तक पाठ-कक्षाएँ रवि-किरणों का आश्रय ही पसन्द कर रही हैं। जनवरी मास के वर्षण, हिमपात और शीत के कारण जुकाम और खाँसी का प्रभाव विद्यमान है। कुलवासियों का स्वास्थ्य सामान्यतया ठीक है।

वार्षिक परीक्षाएँ

महाविद्यालय-विभाग की वार्षिक परीक्षाएँ प्रथम मार्च से प्रारम्भ हो कर २० मार्च तक समाप्त हो जायेंगी। विद्याधिकारी की परीक्षाएँ ११ मार्च से प्रारम्भ होंगी। सभी छात्र अध्ययन और पुनरावर्तन में व्यस्त हैं।

गणतन्त्र दिवस

२६ जनवरी का उत्सव उत्साह से मनाया गया। प्रातः समस्त कुलवासी झंडा चौक में एकत्र हुए। वाद्य-घोषों के साथ शिक्षाध्यक्ष श्री पं० सुखदेव जी ने राष्ट्रिय पताका फहराई। आपने २६ जनवरी का महत्व बताते हुए कहा—हमें अपनी मातृभूमि के केवल भौतिक उत्कर्ष से ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। उस के साथ ही हमें अपनी आध्यात्मिक और नैतिक सम्पत्ति को भी बढ़ाना चाहिये। नैतिक मूल्यों के कारण ही विश्व में हमारा सम्मान है। भारत-माता और शहीदों के जयघोषों के साथ समस्त कुलवासियों ने स्वतन्त्रता के शहीदों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मान्य अतिथि

कुल के पुराने सहृदय मित्र और प्रयाग विश्व-विद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्री डाक्टर बाबूराम सक्सेना के संग पूना के सुविदित दक्षिण महाविद्यालय के संशोधन-प्रतिष्ठान के संचालक और तुलनात्मक भाषाशास्त्र के विशेषज्ञ डाक्टर सुमित्र कात्रे, डाक्टर प्रबोध पंडित और प्रो० श्रीराम वासुदेव भागवत आदि महानुभाव २१ जनवरी को अपराह्ण में कुल में पधारे। आप की मंडली में अमेरिका के एक सुविद्य भाषा-तत्वज्ञ भी थे। आप लोगों ने बड़ी दिल-चस्पी के साथ गुरुकुल के सब विभागों का अवलोकन कर के बड़ा परितोष प्रकट किया। ये सभी विद्वान् पूना के उस प्रतिष्ठान में रह कर ऐतिहासिक दृष्टि से एक विशाल संस्कृत-इङ्गलिश-शब्दकोष की रचना में व्यस्त हैं जो कोई बीस जिल्दों में पूरा होगा। ग्रीष्म-काल में आप लोगों ने पुनः कुल में पधारने की आकांक्षा प्रकट की है। श्रद्धानन्द अतिथि-मन्दिर में कुल के अधिकारियों की ओर से इस विद्वन्मंडली का जलपान द्वारा सत्कार किया गया।

वसन्तोत्सव

५ फरवरी को समस्त कुलवासियों ने वसन्त-पंचमी का पर्व बड़े उल्लास से मनाया। सब कुलवासी चंडीघाट वाली नीलधारा के किनारे समवेत हुए। कुलमाता का ध्वजगीत गाने के पश्चात् आमोद-क्रीड़ाएँ प्रारम्भ हुई, जिन में छात्रों और गुरुजनों की कबड्डी बड़ी आनन्दप्रद रही। तत्पश्चात् समस्त कुलवासियों का सहभोज हुआ। अपराह्ण में दो बजे श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में साहित्य-गोष्टी सम्पन्न हुई। गोष्ठी में ब्रह्मचारियों और गुरु-जनों ने कवितापाठ, संगीत और कहानी-पाठ आदि के द्वारा रसिकों का मनोरजन किया। साँझ की छाया घनी होते-होते पुनः सब कुलभूमि में आगए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अभिनंदन

गुरुकुल के विद्यालय विभाग के मुख्याध्यापक श्री महेशचन्द्र जी एम०ए०,एम० एड, पी–एच०डी० ने हिन्दी के दादूपंथी संतकवि सुन्दरदास की कृतियों पर एक खोज व अध्ययनपूर्ण प्रबन्ध लिखा है। इस प्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय ने आपको पी-एच० डी० की उपाधि से सन्मानित किया है। इस गौरवपूर्ण उपलब्धि पर कुलवासियों ने आचार्य श्री प्रियव्रत जी की अध्यक्षता में संवर्धना सभा के रूप में समवेत हो कर, महेशचन्द्र जी का अभिनन्दन करते हुए उनको एक मानपत्र अर्पित किया है। कुल की ओर से आपको सप्रेम बधाई है। मुख्याध्यापकजी ने भी इस उपलक्ष्य में कुल के गुरुजन को एक जलपान गोष्ठी से आप्यायित किया।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र

ऋतु सुहावनी और स्वास्थ्यप्रद है। वार्षिक परीक्षाएँ ११ मार्च से प्रारंभ होंगी। वार्षिक उत्सव ४-५-६-७ एप्रिल को मनाया जायगा। नए छात्र भी उसी समय प्रविष्ट होंगे।

जनवरी मास में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल मुंशी महोदय ने गुरुकुल के नव-निर्मित स्नानागार और नलकूप का उद्घाटन किया। कुल-वासियों ने आपकी सेवा में मानपत्र अर्पित किया। मान्य राज्यपाल जी ने गुरुकुल की प्रवृत्तियों की सराहने करते हुए आर्यसमाज के साथ के अपने पुराने संस्मरण सुनाए और ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद दिया। आपने कुल के उद्यान में एक बकुल वृक्ष का भी रोपण किया।

शोक-वार्ता

शोक का विषय है कि गत दिसम्बर मास में कुल के सुयोग्य स्नातक श्री गुरुदत्त जी सिद्धान्तालंकार मूलतः कोटअदू (जि० मुज़फ्फरगढ़) निवासी का दिल्ली में अवसान हो गया है। आप सन् १९२५ में गुरुकुल से स्नातक बने थे। तब से लेकर अब तक वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक के रूप में वेद प्रचार का कार्य करते रहे। आप स्वभाव से बहुत सरल निस्वार्थ और शांतिप्रिय थे। आप जीवन भर अविवाहित रह कर एकान्त भाव से आर्य-धर्म के प्रचार का पवित्र कार्य करते रहे समस्त कुलवासी आपके निधन पर विशाद अनुभव करते हैं। परम प्रभु आपको शांति प्रदान करें।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ

ब्रह्मचारी ने चीता मारा

इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल की पहाड़ियों पर एक चीते ने बड़ा आतंक मचा रक्खा था। वह किसानों की बकरियाँ और बछड़ियाँ उठा ले जाता था। वह इतना दुःसाहसी हो गया था कि दिन में भी आ धमकता था। आबादी के कई कुत्ते वह चट कर गया था। गुरुकुल के भंडारी श्री भूदेव जी के सुपुत्र ब्रह्मचारी शिवकुमार ने इस चीते को दण्ड देने का निश्चय किया। एक दिन चीता चारपाई से बँधी बछिया तक आ पहुंचा। ब्रह्मचारी शिवकुमार ने डंडों से दूर खदेड़ दिया। एक रात को ब्रह्मचारी शिवकुमार अपने कुत्ते को साँकल में बांध ले जा रहा था, साथ में बंदूक भी तैयार थी। चीता कुत्ते की गंध पा कर उधर आ निकला और झपटने का दाव सोचने लगा। एक मोड़ पर वह स्पष्ट दिखाई दिया। ब्रह्मचारी शिवकुमार ने साहस और धीरज से बंदूक संभाली और निशाना दाग दिया। चीते का काम तमाम हो गया था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

ईशोपनिषद्भाष्य — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)
वेद का राष्ट्रिय गीत — श्री प्रियव्रत ५)
वेदोद्यान के चुने हुए फूल — श्री प्रियव्रत ५)
वरुण की नौका, २ भाग — श्री प्रियव्रत ६)
वैदिक विनय, ३ भाग — श्री अभय २), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना — श्री रामनाथ ।।।=)
वैदिक-सूक्तियां — ,, १।।।)
आत्म-समर्पण — श्री भगवद्दत्त १।।)
वैदिक स्वप्न-विज्ञान — ,, २)
वैदिक अध्यात्म-विद्या — ,, १।)
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत — श्री अभय २)
ब्राह्मण की गौ — श्री अभय ।।।)
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां) — श्री वेदव्रत २)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द — श्री चमूपति २), १।।)
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र — श्री धर्मदेव १।।)
अग्निहोत्र — श्री देवराज २।)

संस्कृत ग्रन्थ

संस्कृत-प्रवेशिका. १, २. भाग ।।।), ।।।=)
साहित्य-सुधा-संग्रह, १, २. ३ बिन्दु १।), १।), १।)
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध ७), ७)
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध २). २।।)
सरल शब्दरूपावली ।।=)

ऐतिहासिक तथा जीवनी

भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग — श्री रामदेव ६)
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग ।।।)
अपने देश की कथा — श्री सत्यकेतु ।।=)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।।)
योगेश्वर कृष्ण — श्री चमूपति ४)
सम्राट् रघु — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १।)
जीवन की झांकियां ३ भाग — ,, ।।) ।।). १)
जवाहरलाल नेहरू — ,, १।)
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र — ,, २)
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन — ,, ।।)

धार्मिक तथा दार्शनिक

सन्ध्या-सुमन — श्री नित्यानन्द १।।)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश. तीन भाग ३।।)
आत्म-मीमांसा — श्री नन्दलाल २)
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा — श्री विश्वनाथ १)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या — श्री प्रियव्रत १।)
सन्ध्या-रहस्य — श्री विश्वनाथ २)
जीवन-संग्राम — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति १)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार (भोजन की जानकारी) — श्री रामरत्न ५)
आसव-अरिष्ट — श्री सत्यदेव २।।)
लहसुन:प्याज़ — श्री रामेश बेदी २।।)
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी) ,, ३)
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण ,, २)
सोंठ, तीसरा ,, ,, १।।)
देहाती इलाज. तीसरा संस्करण ,, १)
मिर्च (काली, सफेद और लाल) ,, १)
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द ,, ५)
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण ,, ३।)
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)., १।)
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग) ,. ।।)
देहात की दवाएं, सचित्र ।।।) बरगद ।।।)
स्तूप निर्माण कला — श्री नारायण राव ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा — श्री देवराज १।।।)

विविध पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग — श्री यज्ञदत्त १)
गुणात्मक विश्लेषण (बी एस्. सी. के लिए) ?)
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार) ।।।)
आर्यभाषा पाठावली — श्री भवानी प्रसाद १।।)
आत्म बलिदान — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति २)
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा , १।।)
जमींदार ,, २)
सरला की भाभी. १, २ भाग ,, २), ३।।)

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरद् ऋतु में स्वास्थ्य लाभ कीजिये

हमारी कुछ अनुभूत प्रसिद्ध औषधियां

च्यवनप्राश

पुष्टि कर रसायन है। दिल, दिमाग व फेफड़ों को शक्ति देकर पुष्ट करता है। मू० २।) पाव

सिद्ध मकरध्वज

शरीर की प्रत्येक कमज़ोरी को दूर कर के शक्ति व स्फूर्ति पैदा करता है। मूल्य ३॥) माशा

बादाम पाक

यह स्वादिष्ट बलवर्धक पाक है। इस से मानसिक व शारीरिक शक्ति बढ़ती है तथा दिमाग तेज़ होता है। मूल्य ५) पाव

चन्द्रप्रभा वटी

नवयुवकों के विशेष रोग तथा बवासीर, पथरी, भगन्दर, खून की कमी में यह गोलियाँ लाभदायक हैं। मूल्य १) तोला

गुरुकुल चाय

दैनिक प्रयोग के लिये सुन्दर पेय है। खाँसी, नज़ला जुकाम तथा थकावट को दूर कर के स्फूर्ति लाती है। मूल्य ।=) छटांक

सुपारी पाक

स्त्री रोगों में लाभदायक है। यह मासिक खराबी को दूर कर के शरीर में चुस्ती लाता है।

मूल्य ३) पाव

बसन्त कुसुमाकर

शरीर की कमज़ोर नसों को बलवान बनाता है और अधिक पेशाब आने को रोकता है।

मूल्य ३) माशा

सत शिलाजीत

कमर दर्द, रीढ़ अथवा जोड़ों के दर्द में शिलाजीत पूर्ण लाभ देती है। बुढ़ापे की कमज़ोरी में विशेष लाभदायक है।

मूल्य १) तोला

बादाम रोगन

पीने और मालिश में प्रयोग होता है। इस से कब्ज, आँतों की खुश्की दूर होती है और दिमागी शक्ति बढ़ती है।

मूल्य १॥) औंस

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : श्री रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल पत्रिका

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
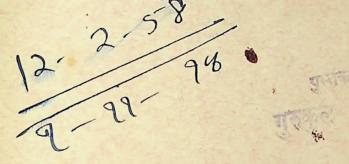
सम्पादक– श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १० माघ २०१४ अङ्क ६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पूर्णाङ्क ११४ ★
जनवरी १९५८

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक **मूल्य एक प्रति**

विदेश में ६) वार्षिक **३७ नये पैसे (छः आने)**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओ३म् प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदतिद्विषः ।।

ऋग्० १०. १८७. १ ।

शब्दार्थ—(क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभाय) अभीष्टों को बरसाने वाले (अग्नये) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिये (वाचम् प्र ईरय) वाणी को प्रकृष्टता से प्रेरित कर (स नः) वह हमें (द्विषः अति पर्षत्) द्वेषों से पार लगा दे ।

आओ गाएं उस का गान ।

जिसकी महिमा देख चकित सा
विश्व खड़ा है कुछ विस्मित सा
सांस रोककर चित्र लिखित सा
अर्ध चेतना अर्धज्ञान में
शिशु सा बन कर के अनजान ।।

जो देता केवल देता है
और न कुछ भी जो लेता है,
सब की नाव सदा खेता है
जिसके शीतल प्रेम-स्पर्श से
द्वेषों का होता अवसान ।।

जो सब का है पाप जलाता
और अभीष्ट सुधा बरसाता,
वाणी में प्रकृष्टता लाता,
महामहिम उस वृषभ अग्नि पर
हो जावें हम सब बलिदान ।।

—श्री सत्यकाम विद्यालंकार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतीय संस्कृति का मध्यकाल

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

(१)

विक्रम काल के पश्चात् भारतवर्ष जिस युग में गुज़रा, इतिहास लेखकों ने उसका नाम मध्य-काल रखा है। वह काल ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक न होता हुआ भी उस काल को भिन्न रूप से निर्दिष्ट करने से लिये पर्याप्त है। इस दृष्टि से उसे मध्यकाल भी कह सकते हैं कि वह विक्रम काल और मुस्लिम काल के मध्य में पड़ता है। सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु ६४७ ई० में हुई और महमूद गज़नवी ने भारत पर अपने लम्बे चौड़े आक्रमण दसवीं शताब्दी के आरम्भ में किये। इन दोनों घटनाओं के बीच में लगभग ३५० वर्षों का अन्तर है। इन ३५० वर्षों को हम मध्ययुग के नाम से पुकार सकते हैं।

(२)

इस काल की सबसे बड़ी घटनायें तीन हैं। इन तीन घटनाओं का भारत के भावी इतिहास पर बहुत भारी असर हुआ। उनसे वस्तुतः भारत के इतिहास का घटनाचक्र ही बदल गया। पहली घटना यह थी कि भारत के अधिकतर क्षत्रिय वंश, राजपूत नाम से पुकारे जाने लगे और अनेक ठोस वंशों के रूप में परिणत हो गये। उसमें पहला परिवर्तन तो यह हुआ कि ये लोग क्षत्रिय के स्थान पर राजपूत कहलाने लगे और दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि गुह, प्रतिहार, परमार आदि अनेक शाखाओं में बंट कर एक दूसरे से बहुत कुछ अलग होने लगे। जाति का नाम अलग हो जाने से उनकी राज-भक्ति भी बहुत कुछ परिमित होने लगी।

उस युग में दूसरा बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि मुसलमान लोग सिन्ध में घुस आये। यद्यपि उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया गया तो भी इतनी विशेष बात रही कि उन्हें शीघ्र ही निकाल कर बाहर भी नहीं किया जा सका।

तीसरी घटना अथवा घटना का प्रभाव इस रूप में हुआ कि किसी विदेशी आक्रान्ता ने भारत के अन्तर्भाग पर आक्रमण करने का यत्न नहीं किया।

तीनों घटनायें एक प्रकार से परस्पर संबद्ध हैं। सिन्ध पर मुसल्मानों के आक्रमण ने देश के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण को बहुत कुछ बदल दिया। इससे पूर्व यवन, हूण, शक, या सीथियन लोगों के जो काफ़ले भारत पर आक्रमण करते थे, उनका मुख्य उद्देश्य लूटमार करना या बहुत अधिक हुआ तो राज्य स्थापित करना होता था। परन्तु मुसलमान प्रारम्भ से ही इस्लाम के प्रचारक बन कर आये। लूटमार तो करते ही थे और राज्य स्थापना का भी यत्न करते थे, परन्तु यह सब कुछ इस्लाम के नाम पर करते थे। उनके आक्रमण का स्पष्ट रूप मज़हबी था, स्वभावतः हमारे देश में उनके धार्मिक आक्रमण की प्रतिक्रिया यह हुई कि क्षत्रिय लोग जो मध्ययुग में राजपूत कहलाने लगे थे, विशेष रूप से धार्मिक आवेश

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से पूर्ण हो गये। विक्रम काल के क्षत्रिय केवल म्लेच्छों को परास्त करने के लिए विजय यात्रा पर निकलते थे और राजपूत लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए तलवार पकड़ते थे। मध्यकाल में क्षत्रियों की मनोवृत्ति का जो रूपान्तर हुआ, उसका कारण यही था।

मध्यकाल में भारत में मुसलमान आये तो सही, परन्तु बहुत आगे तक नहीं बढ़ सके। उसका परिणाम यह हुआ कि देश के अन्य सब भाग अपने परिमित राजाओं द्वारा शासित होते रहे। जैसे देश के बाहर से सिकन्दर या महमूद गजनवी जैसे आक्रान्ता ने आक्रमण नहीं किया, वैसे ही देश के अन्दर भी कोई रघु, समुद्रगुप्त या हर्षवर्धन उत्पन्न नहीं हुआ। प्रायः छोटे-छोटे राज्यों के शासक अपनी २ सीमाओं में निर्भय शासन करते रहे। इसका फल हुआ कि जहां प्रजा प्रायः सन्तुष्ट रही वहां राजवंशों को अपने अलग-अलग दायरे बनाने का लम्बा अवसर मिल गया। यह प्रकृति का नियम है कि जब तक बाहर से कोई दबाब न आये तब तक छोटे २ अणु परस्पर मिलने का प्रयत्न नहीं करते। न बाहर से कोई दबाव पड़ा, न देश में ही कोई बड़ा विजेता उत्पन्न हुआ। फलतः सारा भारतवर्ष छोटे-छोटे राज्यों में लगभग ३०० साल तक विभक्त रहा। हरेक राज्य में शासन करने वाला राजवंश अपनी अलग सत्ता को दृढ़ करता रहा। देश के इतिहास से पृथक् उनका अपना इतिहास बनता रहा, राजपूत वंशों में जो विशेष अलगपन और और वंशभक्तिता उत्पन्न हो गई, उसका यही मुख्य कारण था। शासकों को एक दूसरे से मिलने का कोई निमित्त ही नहीं था। उस युग को जहाँ हम एक ओर विशेष विक्षोभहीन शान्त समय कह सकते हैं वहां साथ ही उसे देश की प्रजा के लिए सुखशान्ति से पूर्ण भी कह सकते हैं।

(३)

ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न बहुत मनोरंजक है कि राजपूत जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई। इस प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से दिया गया है। कर्नल टाड ने यह कल्पना उद्भासित की थी कि राजपूत लोग, शक, सीथियन आदि वंशज थे। इस कल्पना की पुष्टि में उन्होंने राजपूताने की कई पुरानी दंतकथाओं का हवाला दिया था। बहुत समय तक वह कल्पना चलती रही। भारत के अनेक विद्वानों ने भी उसे मान लिया। परन्तु अधिक अन्वेषण से वह कल्पना खण्डित हो गई। विशेष रूप से स्वनामधन्य पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसन्धान ने टाड की कल्पना को सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया है। यह बात अब सर्वथा सिद्ध मानी जाती है कि राजपूत वंश सौरवंशी तथा चन्द्रवंशी क्षत्रियों के ही उत्तराधिकारी हैं।

इस सम्बन्ध में एक और भी भद्दी सी कल्पना की गई है। कहा जाता है कि राजपूत नाम इस लिये पड़ा है कि वे वर्णसंकर से उत्पन्न हुए थे। इसकी पुष्टि में पाराशर स्मृति का यह श्लोक उद्धृत किया जाता है।

"वैश्यादंबष्टकन्यायां राजपुत्रः प्रजायते।"

यह निर्मूल कल्पना भी चिरकाल तक नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

टिक सकी, क्योंकि छानबीन से मालूम हुआ कि पाराशर स्मृति में यह श्लोक नहीं है और राजपूत शब्द का प्रयोग क्षत्रियों के लिये अत्यन्त नवीनकाल में भी होता रहा। अब तो यही बात सर्व सम्मत रूप से मानी जाती है कि पुराने क्षत्रियवंशी ही राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुए। इस नाम परिवर्तन का मुख्य कारण तो यह हुआ कि भाषा बदल गई। संस्कृत भाषा अनेक प्रान्तिक और स्थानीय भागों में विभक्त हो गई। भाषा के बदल जाने से राजपुत्र राजपूत नाम से पुकारे जाने लगे। इसका कारण संभवतः यह भी हुआ कि एक राजा के अनेक लड़कों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने बाहुबल से राज्य स्थापित किए जिससे उनका राजपूत अर्थात् राजपुत्र नाम सिद्ध हुआ। तीन सौ साल के अविच्छिन्न स्वाधीन शासन में उस नाम ने, उसकी परम्पराओं को दृढ़ कर दिया। वस्तुतः राजपूत वंश पुराने क्षत्रियों के उत्तराधिकारी ही थे।

(४)

जब मैं यह कहता हूं कि वह काल बहुत कुछ घटनारहित था तो इसका यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिये कि उस समय भारत भूमि वंध्या रही, और उसमें कोई महान् या वीर पुरुष उत्पन्न नहीं हुए। उस युग को प्रकाशित करने वाले कई उज्ज्वल नाम हैं। भारत के प्रसिद्ध संस्कृत प्रेमी राजा भोज का जन्म इसी युग में हुआ। राजा भोज अपने समय का अत्यन्त प्रबल शासक होने के साथ साथ उद्भट विद्वानों को सहारा देने वाला था। उसका नाम भारतीय साहित्य में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। दूसरा महान् व्यक्ति जिसके नाम से वह काल उज्ज्वल है मेवाड़ का बापा रावल था। यहाँ मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं बापा रावल व उनके वंशों के उज्ज्वल पराक्रम और अटल धर्म भक्ति का संक्षेप से भी वर्णन करूं। बापा रावल से जो वंश आरम्भ हुआ, उसमें हम्मीर और प्रताप जैसे अनुपम वीर उत्पन्न हुए। इसी प्रकार अन्य राजपूत वंशों में भी ऐसे २ पराक्रमी और बाँके योद्धा होते रहे, जिस पर कोई भी देश और कोई भी युग अभिमान कर सकता है।

(५)

हमने देखा कि वह काल सुख शान्ति और समृद्धि की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट काल है। अरब के जो यात्री यहां आते रहे, उन्होंने यहां की सर्वतोमुखी विभूति का वर्णन किया। फिर भी एक बात विचारने योग्य है कि इतिहास के विद्यार्थियों को इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ता है कि ऐसे सुख समृद्धि व वीरों से पूर्ण काल के पश्चात् जब मुसलमान आक्रान्ताओं ने भारत पर आक्रमण करने आरम्भ किये, तब भारत के क्षत्रिय उनका सफल प्रतिरोध क्यों न कर सके। इतने वीर राजवंशों के रहते साधारण मुसलमान निरन्तर भारत पर आक्रमण करते रहे और एक एक करके सभी राज्यों को अपने अधीन करने में समर्थ हो गये। यह एक ऐसी आश्चर्यजनक बात है कि इसके ऐतिहासिक कारण ढूंढना अत्यन्त आवश्यक है।

इस प्रश्न का उत्तर मैं अगले लेख में दूंगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओंकार-माहात्म्यम्

श्री डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री, एम. ए, डी. फ़िल.

ओंकार की महिमा

वेदादि-शास्त्रों में ओंकार का अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया गया है। उस माहात्म्य को अतिशयोक्ति न समझना चाहिये। उसका आधार, निश्चय ही, ऋषि-मुनियों का अपना अनुभव था। उस माहात्म्य को पढ़ कर यही मानना पड़ेगा कि एक सच्चे श्रद्धालु के लिये ओंकार ऐसा चिन्तामणि है जिसके द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है—"एतद्-ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्" (कठोपनिषद् १।२।१६) अर्थात्, ओंकार को जानकर कोई भी जिस पदार्थ को चाहता है उसको पा सकता है।

छान्दोग्य-उपनिषद्, माण्डूक्य उपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद्, भगवद्गीता, मनुस्मृति आदि में अनेकानेक स्थलों में ओंकार का वर्णन है। उससे स्पष्ट है कि ओंकार ब्रह्म-प्राप्ति का अद्वितीय साधन है।

पातञ्जल-योगसूत्रों में कहा है कि परमेश्वर का मुख्य वाचक शब्द ओंकार ही है और ओंकार के जप और अर्थ के चिन्तन से अध्यात्म मार्ग पर चलने वाला सरलता से एकाग्रता तथा अन्तर्-मुखता को प्राप्त कर सकता है और उसके मार्ग में आने वाले विघ्न स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

इस ओंकार का एक आकर्षक, साथ ही वास्तविक वर्णन, माहात्म्य के रूप में, हम नीचे देते हैं। निश्चय ही, जिज्ञासु लोगों को वह अत्यन्त प्रिय लगेगा। साथ ही हम आशा करते हैं कि पाठक इसको कविता के रूप में नहीं, किन्तु आध्यात्मिक भावना के रूप में ही पढ़ेंगे और प्रत्येक विचारधारा को अपने मन में सजीव देखने का यत्न करेंगे।

(१)

(ओंकार का दोला या झूले के संगीत के रूप में वर्णन)

प्रेमकारुण्ययोर्धाम, तत्त्वं विश्वनियामकम्।
यत्, तेन निर्मितामेतां तेनैवान्दोलितां तथा ॥१॥
श्वासप्रश्वासयोर्दोलामारूढो मोदनिर्भरम्।
गायाम्योंकारसंगीतं मधुरं मधुराक्षरम् ॥२॥

अर्थात्, प्रेम और कारुण्य के स्थान तथा सारे विश्व के नियन्ता भगवान् ने श्वास और प्रश्वास की दो डोरियों वाली एक दोला (झूला) मेरे लिये बनाई है और स्वयं ही उस दोला को आन्दोलित कर रहे हैं! उन्हीं के द्वारा मैं उस दोला में बैठा हुआ आनन्द-विभोर होकर मीठे स्वर में मधुराक्षर ओंकार-रूपी संगीत को गा रहा हूं। ठीक उसी तरह, जैसे कोई बालक अपने पिता द्वारा झूले में बिठाया और झुलाया जाकर आनन्द में मग्न होकर गीत गाता है।

(२)

(माता को बुलाने के लिए बच्चे के आह्वान के रूप में वर्णन)

यासौ सर्वजगन्माता सर्वदेवनमस्कृता।
ऋषिभिर्मुनिभिर्गीता सर्वशास्त्रोपवर्णिता ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नानासंतापसंत्रस्तस् तस्या आह्वानमुत्तमम् ।
ओंकारमाश्रये नित्यं भक्तिप्रवणमानसः ।।४।।

अर्थात्, समस्त देवताओं से नमस्कृत, ऋषियों और मुनियों से गाई गई, तथा सब शास्त्रों से वर्णन की हुई जो सारे जगत् की माता है, ओंकार उसके आह्वान का, अपनी ओर आकृष्ट करने का, उत्कृष्ट साधन है। अनेकानेक सन्तापों से त्रस्त होकर मैं भक्ति-प्रवण होता हुआ सर्वदा उसी ओंकार का आश्रय लेता हूं।

अभिप्राय यह है कि डरे हुए बच्चे की तरह मैं भी नाना संतापों से डरा हुआ ओंकार द्वारा ही विश्व की माता को बुलाना चाहता हूं। उनके बुलाने के लिए यही आह्वान है।

(३)

(भगवत्पद की प्राप्ति के लिए सोपान रूप में वर्णन)

योगिनामपि दुर्गम्यं भक्तानामपि दुर्लभम् ।
ज्ञानिनामपि दुश्चिन्त्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।।५।।
कूटस्थं शाश्वतं दिव्यं विष्णोर्यत् परम पदम् ।
ओमित्युद्गीथिनः प्राहुस्तस्य सोपानमद्भुतम्।।६।।

अर्थात् ओ३म् का गान करने वाले आचार्यों का कहना है कि ओंकार ही उस कूटस्थ शाश्वत और दिव्य भगवत्पद की प्राप्ति के लिए एक अद्भुत सीढ़ी है, जो योगियों के लिए भी दुर्गम्य है, भक्तों के लिए भी दुर्लभ है, ज्ञानियों के लिए भी दुश्चिन्त्य है और जहां से जगत की उत्पत्ति होती है और जिसमें प्रलय होता है।

(४)

(आत्मरक्षार्थ कवच के रूप में वर्णन)

आन्तराणामरातीनां विजयव्रतधारिणाम् ।
भवबन्धविनाशार्थं मुनीनां धर्मचारिणाम् ।।७।।
ओंकारं प्रथमं प्राहुराश्रयं तद्विदो बुधाः ।
तमेनं सुदृढं मन्ये " ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ।।७।।

अर्थात्, काम ,क्रोध, मद, मत्सर आदि आभ्यन्तर शत्रुओं को विजय करने का व्रत लेने वाले, और भव-बन्ध अर्थात् सांसारिक जीवन की त्रुटियों और अपूर्णताओं की निवृत्ति के लिए धर्माचरण में रत मुनियों का ओंकार ही एकमात्र उत्कृष्ट सहारा होता है, ओंकार के तत्त्व को जानने वालों का ऐसा मत है। उसी ओंकार को मैं ब्रह्म-रूप में अपना सुदृढ आध्यात्मिक कवच समझता हूं।

"ब्रह्म वर्म ममान्तरम्" यह अथर्ववेद (१।१६।४) का मन्त्र है। उसी की ओंकार-परक व्याख्या यहां की गई है। अभिप्राय यह है कि ईश्वर-भक्त के लिए ओंकार ही एक सुदृढ़ कवच का काम करता है।

(५-६)

(सुगन्धित पुष्प, परम ज्योतिः, अमृत परमौषध तथा ब्रह्मास्त्र के रूप में वर्णन)

ज्ञानविज्ञानवृक्षस्य सुगन्धि कुसुमं शुभम् ।
ज्योतिषामपि यज्ज्योतिरमृतं भोज्यमात्मनः।।६।।
नानासन्तापतप्तानां यच्चाप्यौषधमुत्तमम् ।
पापौघं भस्मसात् कर्तुं ब्रह्मास्त्रं ब्रह्मवादिनाम्।।१०।।

अर्थात् ओंकार ज्ञान-विज्ञान-रूपी वृक्ष का सुन्दर पुष्प है। अर्थात् जैसे किसी फूलने वाले

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पौदे का उत्कृष्ट सौन्दर्यमय सारांश पुष्प-रूप में विकसित होता है, इसी तरह समस्त ज्ञान और विज्ञान का अन्तिम निचोड़ या परम ध्येय या पर्यवसान ओंकार है ।

ओंकार समस्त प्रकाशमय पदार्थों का भी प्रकाश है .

ओंकार ही वास्तव में आत्मा का अमृतमय भोज्य है । अभिप्राय यह है कि मनुष्यमात्र में अपने को पूर्ण की ओर ले जाने की जो भूख है उसकी सदा के लिए तृप्ति ओम् से ही हो सकती है ।

नानाविध सन्तापों से संतप्त प्राणियों के लिए ओंकार ही सर्वोत्तम अचूक औषध है ।

मनुष्य के अन्दर जो पापों की राशि घर किये हुए है उनको आमूल भस्मसात् करने के लिए ओंकार को ही ब्रह्मज्ञानी लोग अत्यन्त शक्ति-शाली ब्रह्मास्त्र समझते हैं ।

(१०)

(सर्व-देवात्मक, सर्वत्र व्यापक मूल-तत्त्व के रूप में वर्णन)

सर्वदेवात्मकं शान्तं तत्त्वमेकरसायनम् ।
अथवा बहुनोक्तेन कोऽर्थः ; एवं विचिन्त्यताम् ॥११॥
त्रिलोक्यामपि यत्किञ्चित् तदादाय समन्ततः ।
तिष्ठन्तं प्रणवं ध्यायन् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१२॥

अर्थात् समस्त देव जिसके अंग हैं ऐसा, सदा एक स्वरूप में रहने वाला (अथवा अद्वितीय रसायन-भूत), शान्त तत्त्व ओंकार ही है ।

अथवा अधिक कहने से क्या लाभ है; यही समझना चाहिए कि तीनों लोकों में जो कुछ भी विद्यमान है उस सबको अपने में लेकर जो स्थित है, उसी ओंकार का ध्यान करता हुआ मनुष्य ब्रह्मभाव को प्राप्त कर सकता है ।

(उपर्युक्त ओंकार-माहात्म्य का वर्णन)

एतदोंकारमाहात्म्यं प्रातः प्रातः पठन्नरः ।
सावधानेन मनसा शान्त एकान्तसंस्थितः ॥१३॥
गुरूपदिष्टमार्गेण प्रव्रजन् ब्रह्मणोऽध्वनि ।
प्रणवस्य जपेनार्थभावनेन च नित्यशः ॥१४॥
उत्तरोत्तरमुत्कृष्टं स्थानं प्राप्य, परं पदम् ।
अक्षय्यममृतं दिव्यं लब्ध्वा तिष्ठत्यनामयम् ।१५।

अर्थात्, उपर्युक्त ओंकार-माहात्म्य का एकान्त में बैठकर प्रत्येक दिन प्रातःकाल शान्त-चित्त और सावधान होकर जो मनुष्य पाठ करता है वह गुरु द्वारा बतलाये हुए मार्ग से ब्रह्मप्राप्ति की ओर चलता हुआ नित्य अर्थविचार के साथ ओंकार के जप से क्रमशः आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ निश्चय ही अन्त में अक्षय्य, अमृत, अनामय (सब पीड़ाओं से रहित) आनन्दमय परमपद को प्राप्त कर लेता है ।

(उपसंहार)

स एष सरलो मार्गः सर्वकण्टकवर्जितः ।
अत एव सदा सद्भिः सम्प्रदायैः समर्हितः ॥१६॥

अर्थात् ओंकार-उपासना का उपरि-निर्दिष्ट मार्ग सीधा-सादा है। इनमें किसी प्रकार के कण्टकों विघ्न-बाधाओं या जटिलताओं का डर नहीं है । इसी लिए समस्त सत् सम्प्रदाय इस मार्ग का आदर करते हैं ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि वैदिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मार्ग की तरह् जैन बौद्ध आदि सम्प्रदाय भी ओंकार के माहात्म्य को मानते हैं।

[१६ फर्वरी को ऋषि बोधोत्सव के उपलक्ष में हम सुयोग्य विद्वान् श्री डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री कृत इस लेख को प्रकाशित कर रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने ओंकार उपासना का महत्त्व अपने ग्रन्थों में सर्वत्र प्रतिपादित किया है।]

—सम्पादक गु० प०।

प्रणव (ओंकार) जप की महिमा

आप नित्य प्रति प्रातः और सायं प्रणव पवित्र (ओ३म्) का जप और आराधना किया करें, यही हम लोगों का आश्रय और आधार है। इसके चिन्तन से चित्त की सारी चंचलता दूर हो जाती है। पाप को धोने के लिए इस से बढ़ कर दूसरा कोई साधन नहीं। महामुनिजन इसी महामन्त्र से मन्मथोन्मथन कर के परमात्मा में निमग्न रहा करते हैं। मनोवृत्तियों को एकाग्र कर प्रणव जप करने में कल्पनातीत परिणाम प्राप्त होता है।

जब तुम चिरकाल पर्यन्त इस भक्ति-योग को करते रहोगे तो समाधि के मधुमय स्वादु-फल को स्वयं ही आस्वादन करने लगोगे। उस समय आप की सब वासनाएं शान्त हो जाएंगी और सब कामनाएं परम तृप्ति को प्राप्त कर लेंगी।

—महर्षि दयानन्द

(श्रीमद्दयानन्द प्रकाश से उद्धृत)।

जप का सामर्थ्य कैसे बढ़ता है

सब वर्णो और आश्रम के लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से जप के सामर्थ्य को बढ़ाकर अपने शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ावें।

—महर्षि दयानन्द-उपदेश मंजरी

निष्काम कर्म से प्रसन्नता——

फल की ओर आंखों का लगा रहना कुछ कम कष्ट है? जिन्हें फल की अभिलाषा नहीं, वे हर समय प्रसन्न रहते हैं। काम करते हैं उनकी चिन्ता दूर हो जाती है। अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के बाद उन्हें परिणाम पर विचार करने को आवश्यकता नहीं।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भूदान-यज्ञ

श्री शमसुद्दीन बी. ए. बी. टी. एम. ई. डी. डोंगरगांव म. प्र.

"अगर समाज रचना में फ़ौरन परिवर्तन नहीं होता तो हम नष्ट हो जावेंगे। आज सामाजिक असन्तोष और आर्थिक विषमता के जाल में हिन्दुस्तान फंस गया है। इनमें से सही सलामत बच निकलने के लिए ही यह भूदान यज्ञ आन्दोलन है" —विनोबा।

उपर्युक्त अनुभूति की प्रेरणा हृदय में अनुभव कर श्रेष्ठ आचार्य विनोबा भावे भूदान-यज्ञ के कार्य में तन मन से संलग्न हो गये। आज इस महायज्ञ की पावन सुवासित धूम्र राशि देश के कोने-कोने में व्याप्त हो रही है। यह भूदान-यज्ञ क्यों, कैसे और कहां प्रारम्भ हुआ इस पर विचार करने के पूर्व इस शब्द की पूर्ण व्याख्या आवश्यक है। 'भू' का अर्थ है 'ज़मीन' जो किसी एक या कुछ लोगों की नहीं वरन् मानव मात्र की है। हम इसी से जीवन ग्रहण करते तथा अन्त में इसी में अपने पार्थिव अस्तित्व को विलीन करते हैं। इसी की धूलि में किलोलें करते हुए हम चलना, फिरना, खेलना कूदना सीखते हैं और इसलिए यह भूमि हम सबकी माता है। 'दान' से तात्पर्य है स्वयम् अपनी इच्छा से देना या समर्पण करना। जिनके पास संग्रह है वही दान करते हैं अतः यह एक प्रकार से संग्रह का प्रायश्चित्त है जिससे अर्थ का समान व न्यायपूर्ण बंटवारा होता है। 'यज्ञ' का मतलब है धार्मिक अनुष्ठान की भावना से प्रेरित होकर सब के द्वारा, सब के लिए त्याग अथवा बलिदान।

प्रत्येक व्यक्ति निरपेक्ष भाव से भूमि का कुछ भाग इस यज्ञ में दान करता है जो भूमि-हीन को दी जाती है। भूमि ईश्वर की है और हम सब उस ईश्वर की सन्तान हैं अतः उस पर हम सबका एक समान अधिकार है। यही भावना "भूदान-यज्ञ" के मूल में है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इसकी आवश्यकता क्यों हुई? यही हमारा विचारणीय विषय है। समानता के इस युग में आज समाज की विषम आर्थिक व्यवस्था एक गम्भीर और जटिल समस्या बन गई है। भारत की वर्तमान परिस्थिति भी इस क्षेत्र में शोचनीय है। एक ओर बढ़ी हुई अमीरी का अट्टहास है और दूसरी ओर बेहद ग़रीबी का अभिशाप! इस अमीरी और ग़रीबी के तनाव ने समाज में बड़ी कठिन और विषम समस्यायें खड़ी कर दी हैं। "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" अथवा "आरत काह न करै कुकर्म" अर्थात् जो भूखा है, दुःखी है, पीड़ित है वह अपना पेट भरने के लिए क्या नहीं करता? घोर से घोर अपराध और अधर्म के बड़े से बड़े कार्य इसी कारण होते हैं। देश में दानवता की वृद्धि और मानवता का ह्रास होता है। आज देश के नेतागण व हमारी सरकार इस समस्या को सुलझाने की चिन्ता में हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के श्रेष्ठतम शिष्य सन्त बिनोवा भावे जी को हैदराबाद कांड से यह प्रेरणा मिली कि देश में एक ओर थोड़े

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से लोग काफी बड़े परिमाण में ज़मीन अपनाये बैठे हैं, और दूसरों की मेहनत से अपना धन एकत्रित करने में जुटे हुए हैं और दूसरी ओर लाखों के पास एक एकड़ जमीन भी नहीं है और वे दूसरों के मुहताज बने अपने हृदय की आह दबाये दिन-रात पसीना बहाकर भी अपनी जीविका निर्वाह के लायक मजदूरी नहीं पा रहे हैं। आखिर उनकी यह 'आह' कब तक दबी रहेगी और वे अमीर रईस कब तक इनका कौर छीन-छीन कर खाते रहेंगे ? ज़माना तेज़ी से बदल रहा है। अगर अमीर गरीबों का ख़्याल न करेंगे तो निश्चय ही एक दिन इनकी 'आह' उन अमीरों को भस्म कर देगी और वह भी कुछ बुरी तरह से खून खराबी और लूटमार से। इस हिंसात्मक क्रान्ति के दुष्परिणामों को दूर दर्शिता की दृष्टि से देखकर संत बिनोवा जी ने भू-दान-यज्ञ का कार्य आरम्भ किया।

"भूदान-यज्ञ" के रूप में अहिंसक क्रान्ति की प्रकाश किरण तेलंगाना में फूटी तथा धीरे धीरे यह दिनमणि के विशाल तेज के समान सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई। तेलंगाना में पीड़ित मानवता की यह परिस्थिति थी कि वहां कभी हिंसक क्रान्ति हो जाना मामूली बात थी। स्वयम् आचार्य विनोवा जी जब हैदराबाद से ३४ मील दूरी पर नलगुन्डा ज़िले के पोचमयल्ली नामक ग्राम में पहुंचे और लोगों ने उन से मुलाकात की तब उन्होंने अपने खुद दर्द की मार्मिक कहानियां उन्हें सुनाई। उन्होंने अपनी कठिनाइयां व आवश्यकतायें सामने रखते हुए कहा कि न उनके पास काम है और न ज़मीन, फिर वे पेट कैसे भरें ? ज़मीन के लिए उनकी तीव्र क्षुधा देखते हुए उन्होंने प्रश्न किया कि उन्हें कितनी ज़मीन चाहिए ? और जबाब मिला ८० एकड़। पास ही गांव वाले मौजूद थे और विनोबा जी ने उन्हें सम्बोधन करके कहा कि सरकार से ज़मीन न मिले या देरी लगे तो क्या गांव वाले कुछ ज़मीन दे सकेंगे ? उपस्थित लोगों में से एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने कहा—मैं अपने स्वर्गीय पिता की ज़मीन में से अपने और अपने पांचों भाइयों की ओर से १०० एकड़ ज़मीन भेंट करने के लिए तैयार हूं। बस यही भूदान की गंगोत्तरी का उद्गम था। मानो स्वयं भगवान् ने ही उस भाई के मुंह से दान दिलवाकर भूदान के पावन यज्ञ का सूत्रपात किया। भूदान की भावना विनोबा जी के मन में बहुत समय पहले से थी पर उन्हें विश्वास नहीं था कि समस्या इतनी आसानी से हल हो सकेगी क्योंकि यह किसो मन्दिर या संस्था के लिए धन पैसे के दान का प्रश्न नहीं था बल्कि निःस्वार्थ भाव से ज़मीन देकर अपना पैतृक हिस्सा या हक देने का प्रश्न था। इतिहास में प्रमाण पाये जाते हैं कि सुई की नोक भर ज़मीन के लिए खून की नदियां बही थीं। किन्तु लोगों से प्रेमपूर्ण याचना के बाद वांछित भूमि मिल जाने पर विनोबा जी का साहस बढ़ा और फिर क्या था भूदान का कार्य अपने पूरे वेग से प्रारम्भ हो गया। लोग स्वयम् आ-आकर ज़मीन देने लगे।

भूदान-यज्ञ से कई बड़े-बड़े उद्देश्य सिद्ध होंगे। सर्व प्रथम तो उससे असाधारण आर्थिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषमता के कारण उत्पन्न होने वाली हिंसक क्रान्ति से बचने का उपाय निकल आयगा क्योंकि यह तो विश्वास है कि यदि कुछ लोग ऐश आराम में डूबे रहें और अधिकांश को दोनों समय पेट भर भोजन तथा तन ढांपने के लिए वस्त्र भी न मिले, एक ओर कुछ लोग ऊंचे-ऊंचे महल अट्टालिकाएं खड़ी करते रहें तथा दूसरी ओर उन्हीं के भाइयों को रहने के लिए झोंपड़ी भी नसीब न हो तो यह विषम स्थिति अधिक समय न रह सकेगी। निश्चय ही क्रान्ति होगी और पूंजी के बाद विध्वंस की नींव पर समाजवाद के नवजीवन की सृष्टि होगी। इस विनाश और हिंसा से बचने का एक ही उपाय है और वह है प्रेम से हृदय परिवर्तन जो भूदान-यज्ञ से सम्भव हो सकेगा। भूदान-यज्ञ से दूसरा उद्देश्य यह सिद्ध होगा कि उससे अधिकांश को अपनी रोज़ी-रोटी कमाने के साधन उपलब्ध हो सकेंगे और देश की बढ़ती हुई बेकारी की समस्या भी हल हो जायगी। काम के अभाव में अन्न-वस्त्र से हीन जो एक दुःखी गरीब वर्ग का निर्माण हो रहा है उससे न केवल समाज और देश का ह्रास होता है वरन् मानवता का भी घोर पतन होता है और पाशविकता की वृद्धि होती है। अतः भूदान-यज्ञ उनके लिए भी एक हल प्रस्तुत करती है। भूदान-यज्ञ ऊंच-नीच व बड़े छोटे के भेद-भाव को दूर करेगा। भूमि उसी को मिल सकती है जो उसे जोत सके और उपज पैदा कर सके। अतः इसमें सबको समान शारीरिक काम करने की शिक्षा मिलेगी और विषमता दूर होगी। इस प्रकार समाज में यदि आर्थिक समानता व एकता का प्रादुर्भाव हो गया तो देश में वैमनस्य और तनाव की कमी होगी और लोगों के सुख-शान्ति की वृद्धि होगी। भूदान-यज्ञ में हाथ बंटा कर अमीर न केवल अपनी जान बचा सकेंगे वरन् दान के द्वारा पुण्य और यश के भागी होंगे।

विनोबा जी का कहना है कि एक भारतीय परिवार में साधारणतः पाँच सदस्य किसी तरह रहते हैं तथा छठा सदस्य दरिद्रता व भूख से पीड़ित रहता है। इस छठवें सदस्य को भी परिवार का एक सदस्य मान विनोबा जी भारत की कुल जोती जाने वाली ३० करोड़ एकड़ ज़मीन का एक छठवां हिस्सा अर्थात् ५ करोड़ एकड़ ज़मीन की मांग कर रहे हैं। अब तक करीब ३०० एकड़ ज़मीन प्रति दिन के औसत के हिसाब से ४० लाख एकड़ से ज्यादा ज़मीन तेलंगाना, मध्यप्रदेश, विन्ध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, विहार, उड़ीसा आदि से प्राप्त हो चुकी है। इस प्रकार भूमिदान का कार्य काफ़ी तीव्रता से चल रहा है। इस कार्य के लिए प्रत्येक प्रदेश में प्रादेशिक समितियां हैं जो संयोजकों की सहायता से भूमि संग्रह व उसके वितरण का कार्य एक दानपत्र भरकर किया जाता है जिसमें दाता अपनी इच्छा से अपनी ज़मीन का हक़ देता है। दानपत्र में विनोबा जी के हस्ताक्षर आवश्यक रहते हैं।

भूमिदान से प्राप्त ज़मीन के वितरण के द्वारा आज देश के कई भूमिहीन व्यक्तियों को लाभ पहुंचा है। यथार्थ में यह भूमिदान यज्ञ देश के लिए अत्यन्त कल्याणकारी और सशक्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कार्यक्रम है। इसमें ज़मीन उसी भूमि-हीन व्यक्ति को दी जाती है जो स्वयं उसे जोत सके और मेहनत कर सके। वह इस पर दूसरों से काम नहीं करवा सकेगा। इससे बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि लोगों में कर्तृत्व-शक्ति की वृद्धि होगी तथा वे स्वावलम्बी बनेंगे। इसी प्रकार ज़मीन जिस गांव की होती है वहीं के ग्रामवासियों की सलाह से योग्य व्यक्ति को ही ज़मीन दी जाती है। इस प्रकार भूदान का असली उद्देश्य सार्थक होता है अर्थात् योग्य और मेहनती व्यक्ति ज़मीन का सदुपयोग करता है। दान में मिली हुई ज़मीन कोई बेच नहीं सकता और न गिरवी रख सकता है अतः जमीन को कायम रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है। उस से भी लोगों में, कार्य शक्ति व परिश्रम को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार भूदान-यज्ञ से कई लाभ हो रहे हैं और भविष्य में होंगे। इसके द्वारा न केवल लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा वरन् उनमें स्वावलम्बन, परिश्रम, सेवा व नैतिकता की वृद्धि होगी। भूदान और उसके वितरण के सम्बन्ध में लोगों ने कुछ शंकाएं उपस्थित कीं। उनका कहना है कि "कानून का आधार इसमें क्यों नहीं लिया जाता। इसमें न तो हिंसा ही होगी और न रास्ता ही गलत होगा वरन् कार्य शीघ्रता से होगा किन्तु स्वयं विनोबा जी ने इसका निराकरण करते हुए कहा कि सुधारक का काम विचार परिवर्तन का होता है जो कानून और सरकार की मर्यादा के परे है। फिर कानून सार्वभौम या सर्वस्पर्शी भी नहीं हो सकता। कानून से जबरदस्ती की जा सकती है किन्तु स्थायी मत-परिवर्तन या विचार क्रान्ति इससे नहीं हो सकती। विनोबा जी कानून की मदद को अस्वीकार नहीं करते किन्तु उनका कहना यही है कि हम प्रारम्भ प्रेरणा से करते हैं और जब वातावरण तैयार हो जाता है तब कानून मदद के लिए आता है। दूसरी शंका यह खड़ी की जाती है विनोबा जी सहकारी खेती के विरुद्ध हैं। किन्तु यह धारणा ग़लत है। विनोबा जी पूर्ण रूप से सहकारी खेती के पक्ष में है किन्तु अभी नहीं। उनका कहना है कि जब तक, लोगों को कुछ ज्ञान न हो जाए, उन्हें खेती का अभ्यास न हो जाए उन पर कोई चीज लादी न जाय। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि भूमिदान के द्वारा जो भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होंगे उन से लाभ नहीं होगा। किन्तु विनोबा जी का कहना है कि इस 'यज्ञ' के द्वारा लोगों में जो विचार क्रान्ति होगी उसकी तुलना में ज़मीन के टुकड़ों में बांटने की समस्या बहुत छोटी है। साथ ही इन छोटे-छोटे टुकड़ों के मालिक मिल कर सहकार्य से कार्य करेंगे और इस समस्या का निराकरण आप ही आप हो जायेगा। भूमि के वितरण के सम्बन्ध में भी लोगों ने कई प्रकार की शंकाएं उठाईं किन्तु विनोबा जी ने उनका बड़ी सरलता और स्पष्टता से निराकरण कर दिया। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि भूदान यज्ञ के रूप में होने वाली अहिंसक क्रान्ति से सर्वोदयी कल्याण कारी समाज का निर्माण होगा।

भूदान-यज्ञ मानवता का प्रतिबिम्ब है यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अमृत के पावस-बिन्दुओं के सदृश भूमि हीनों की क्षुधा और पिपासा का शमन कर उन्हें जीवन दान देगा। आज जनता जनार्दन के उदर में प्रज्वलित अग्नि को, उनकी धधकती हुई ज्वालाओं को 'भूदान' से शान्त करना है। यही भूदान-यज्ञ है। यही आज का युग धर्म है। यही ईश्वर की इच्छा और भारत माता का आह्वान है। यही गांधी जी की सीख और विनोबा जी की माँग है। इसी से भारत में सर्वोदय सिद्ध होगा।

—०—

श्री श्रद्धानन्द बलिदान पर्व पर महामान्य राष्ट्रपति जी का सन्देश

इस शुभ अवसर पर जब कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के अध्यापक गण और छात्र गुरुकुल के संस्थापक स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान पर्व मनाने जा रहे हैं मैं भी स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहूंगा। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अदम्य उत्साह और दृढ़ संकल्प का ही यह परिणाम है कि इस गुरुकुल की स्थापना हुई और इसके फल स्वरूप प्राचीन विचार धारा तथा शिक्षा-प्रणाली को इतना बल मिला। स्वामी जी ने शिक्षा के क्षेत्र में जीवन पर्यन्त अपने सामने एक आदर्श रखा और यदि उस आदर्श को कार्य रूप देने में वे सफल हुए इसका प्रमुख कारण, उनकी निजी प्रतिभा के अतिरिक्त यह था कि वे असाधारण रूप से व्यवहार कुशल थे। मुझे आशा है कि इस समारोह में भाग लेने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन से सत्प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

मैं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की सफलता चाहता हूं और संस्था से सम्बन्धित सभी लोगों को अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं।

—(ह०) राजेन्द्र प्रसाद

श्रद्धाञ्जलि

त्याग तपस्या पुञ्ज तुम,
सन्त सुधी, सुख–कन्द ।
धन्य धर्म के धाम ध्रुव,
स्वामी श्रद्धानन्द ॥

भारतमाता कर रही,
गर्वित गौरव—गान ।
धर्म, देश पर दे गये,
धन्य वीर बलिदान ॥

—श्री हरिशंकर शर्मा, आगरा ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

त्वमेव सर्वं मम देव देव

श्री पं० इन्द्रो विद्यावाचस्पतिः

१

त्वं जन्महेतुर्जडचेतनानाम्,
त्वं प्राणिमात्रम्पयसा बिभर्षि ।
संलोयतेऽन्ते सकलं त्वदङ्के,
मातस्त्वमादिश्च शमश्च तस्य ।।

२

गुरुर्गुरूणां शरणं क्षतानाम्,
यमः खलानां शमदो यतीनाम् ।
त्वमादिदेवोऽसि पिता पितॄणाम्,
जगत्समस्तं जगदीश पासि ।।

३

भयावहो बन्धुरिति प्रसिद्धिः,
धनाभिलाषावशतः प्रवृत्ता ।
त्वमीदृशो बन्धुरसि प्रजानाम्,
सदाप्यते प्रेमरसो हि यस्मात् ।।

४

ददाति गृह्णाति च मित्रभावम्,
सखा स लोके प्रथितः प्रशस्तः ।
ददासि सर्वं लभसे न किंचित्,
त्वदीयसख्यं सकलातिशायि ।।

५

त्वं सर्वविद्योगिजनैश्च वेद्यः,
त्वं ज्ञानरूपस्तमसोऽपहर्ता ।
त्वं चेत् प्रपन्नः सकलं प्रपन्नम्,
आधेहि मे देव हृदि प्रकाशम् ।।

६

त्वयि प्रसन्ने जगदीश जन्तुः,
समस्तसम्भूतिपतित्वमेति ।
मणिप्रकोष्ठे निवसन्निवास्ते,
न किंचिदन्यत्समवाप्तुकामः ।।

७

विहाय सर्वानधिकारमत्तान्,
धनेश्वरान्वा जगतीश्वरान्वा ।
कृपाजलौघे तव देव मुक्ता
मया स्वकीया तरणिः कृशेयम् ।।

८

इमाम्प्रभो प्रापय रम्यपारम्,
जलाशये मज्जय वा गंभीरे ।
तवाभिलाषामवलम्व्य मुक्ता,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

९

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।"

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि दयानन्द और श्री केशवचन्द्रसेन

प्रो० श्री भवानीलाल जी, 'भारतीय' एम० ए० सिद्धान्त वाचस्पति, जोधपुर

उन्नीसवीं शताब्दी में पुनर्जागरण का को महान् सांस्कृतिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति में राष्ट्रीयता का भाव विद्यमान था। राजाराममोहनराय में यह प्रवृत्ति अत्यन्त क्षीण रूप में दिखाई देती है। उन्होंने धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में यद्यपि पश्चिम के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया, परन्तु अन्यान्य बातों में वे यूरोपीय विचार धारा को स्वीकार करने के पक्ष में ही थे। हिन्दू पुनरुत्थान के द्वितीय ज्योतिःस्तम्भ स्वामी दयानन्द में राष्ट्रीयता को यह प्रवृत्ति प्रवृद्ध और प्रज्ज्वल रूप में प्रकट हुई है। श्री कन्हैयालाल मुन्शी लिखते हैं— "भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होने के बाद दयानन्द सरस्वती के साथ राष्ट्रीयता की पहली मंजिल का उदय हुआ। १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह की असफलता में निहित अपमान से परितप्त उन्होंने ही सर्व प्रथम राष्ट्रीयता का विकास किया। वास्तव में उनके प्रयत्नों ने हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार का रूप ग्रहण किया और इसी कार्य में वे नई राष्ट्रीय भावनायें भी सहायक हुईं जो योरप में प्रबल होती जा रही थीं। दयानन्द कीं प्रेरणा से धर्म राष्ट्रीयता से ओत प्रोत हो गया।"

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने सर्व प्रथम यह मत व्यक्त किया कि १८५७ के स्वातन्त्र्य समर के सूत्र संचालन में दयानन्द का प्रमुख हाथ था। उनके इस मत को उन्हीं के सुयोग्य शिष्य श्री पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालङ्कार ने अधिक विशद रूप में व्यक्त किया है। श्री मेहता ने अपने विचार की पुष्टि में जो तर्क उपस्थित किये हैं वे निम्न लिखित हैं।

(१) गंगा किनारे के स्थानों में भ्रमण करनेके पश्चात् स्वामी दयानन्द नर्मदा के उद्गम स्थल तक गये। उस के पश्चात् वे लगभग ३ वर्ष तक कहाँ रहे, इसका कुछ पता नहीं चलता। ये ही १८५७ की उथल पुथल के दिन थे। दयानन्द जैसे तेजस्वी और भावुक राष्ट्रभक्त के लिये इस स्वतन्त्रता संग्राम से पृथक् रहना सर्वथा असम्भव था। अतः अवश्य ही वे गुप्त रूप से इस आन्दोलन का संचालन कर रहे थे।

(२) १८५७ के युद्ध में साधु संन्यासियों ने नीति निर्माण के कार्य में भाग लिया था। स्वातन्त्र्य युद्ध के सेनानियों के संदेशों के आदान प्रदान में भी इन लोगों ने भाग लिया था।

(३) मथुरा में गुरु विरजानन्द जैसे तेजस्वी संन्यासी के चरणों में बैठ कर दयानन्द ने देश सेवा का व्रतधारण किया और उनसे स्वदेश कल्याण के लिये सम्पूर्ण जीवन लगा देने की प्रतिज्ञा की। ऋषि दयानन्द की जीवनी में हम पढ़ते हैं कि कभी-कभी एकान्त में गुरु विरजानन्द और उनके युवक संन्यासी शिष्य दयानन्द में गम्भीर वार्तालाप होता था। उपर्युक्त ऐतिहासिकों का यह अनुमान है कि यह बातचीत देश की अवस्था को सुधारने के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय में होती होगी।

इन इतिहासकारों ने स्वामी दयानन्द के इस रूप के सम्बन्ध में जो सम्पति व्यक्त की है उससे सब विद्वान् समान रूप से तो सहमत नहीं हैं[1] फिर भी इस तथ्य को स्वीकार करने में इतिहास कारों को कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं है कि दयानन्द ने ही भारत के राजनैतिक स्वातन्त्र्य का स्वप्न देखा था और उनकी वाणी में ही सर्व प्रथम लोगों को विद्रोह का स्वर सुनाई पड़ा था। दयानन्द के वचनों और कार्यों से इस तथ्य को भली प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। उनके भाषणों और लेखों, उपदेशों तथा प्रवचनों में भारतीय राष्ट्र के पुरातन गौरव और इसके वर्तमान अभ्युत्थान के स्वर प्रबलता से गूंज रहे हैं। चाहे हम सत्यार्थ प्रकाश के किसी प्रकरण को पढ़ें या आर्याभिविनय की किसी प्रार्थना का मनन करें, गोकरुणानिधि के लेखन की मूल प्रेरणा पर विचार करें या उनके पूना के व्याख्यानों पर दृष्टिपात करें; हमें सर्वत्र ही दयानन्द की उस शुभ और उज्ज्वल राष्ट्र भावना के दर्शन होंगे जिसने अनेक लोगों को देशोद्धार के लिये आत्म बलिदान करने की प्रेरणा दी है।

देशोत्थान का उनका एक निश्चित कार्यक्रम था। इसी को पूरा करने के लिये उन्होंने दिल्ली में स्वदेश के विभिन्न नेताओं को एकत्र किया और उन्हें राष्ट्रोत्थान के लिये एक कार्य क्रम बनाने के लिये प्रेरणा दी। इसी के लिये वे अपने जीवन के अन्तिम भाग में राजस्थान के विभिन्न क्षत्रिय राजाओं से सम्पर्क स्थापित करते रहे। उन्होंने उदयपुर के महाराणा और शाहपुरा के अधीश्वर को मनुस्मृति और शुक्रनीति के राजनीति विषयक अंग पढ़ाये और उन्हें प्रजापालन में ध्यान देने के लिये सावधान किया। जोधपुर के प्रशासक स्व० महाराजा सर प्रतापसिंह को उन्होंने जो प्रेरणा दायक और स्फूर्ति जाग्रत करने वाले पत्र लिखे हैं वे इस बात के परिचायक हैं कि स्वामी जी को इन देश-नरेशों से क्या-क्या आशायें थीं! यद्यपि राजपूत राजाओं की विलासिता और उनके आलस्य एवं प्रमादग्रस्त होने के कारण स्वामी जी की आशायें धूमिल हो गईं थीं, फ़िर भी उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि समस्त देशवासी एक धर्म, एक उपासना पद्धति के उपासक तथा एक भाषा के बोलने वाले हो जांय और उनके आचार व्यवहार तथा रहन-सहन में एकता का समावेश हो जाय तो राजनैतिक स्वाधीनता उनसे अधिक दूर नहीं रहेगी। अभी ऋषि दयानन्द के इस राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अध्ययन किया जाना शेष ही है। प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार पं० सत्यदेव विद्यालंकार ने यद्यपि अपनी पुस्तक "राष्ट्रवादी दयानन्द" के द्वारा महर्षि के इस स्वरूप का यत् किंचित् परिचय हमें दिया है परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और वाङ्मय में निहित सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों की मार्मिक विवेचना की जाय।

---

१. स्वर्गीय हरविलास जी शारदा और पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय आदि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जहां एक ओर स्वामी दयानन्द अतीत आर्यावर्त के गौरवपूर्ण इतिहास की स्मृति दिला कर भारतीय राष्ट्र को उद्बुद्ध और सप्राण करने की चेष्टा कर रहे थे, वहाँ ब्राह्मसमाज के तृतीय नेता श्री केशवचन्द्र अपनी पाश्चात्य शिक्षापद्धति और यूरोपीय विचार धारा के कारण विदेशी संस्कृति के अनुकरण में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते थे। श्री केशव और उनके इन पश्चिमी रंग में रंगे भक्तों को दृष्टि में रखते हुये ही ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के ब्राह्म मत समीक्षा प्रकरण में वे बातें लिखी हैं जो ब्राह्म लोगों की स्वदेशी और स्वधर्म के प्रति उपेक्षा सूचित करती हैं—उदाहरणार्थ वे लिखते हैं—अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उसके बदले भर पेट निंदा करते हो। अपने माता, पिता, पितामहादि का मार्ग छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुकते हो। जिस देश को रोग हुआ है, उसकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं है और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्यावर्तीय लोग तुम को अन्यमतियों (मत वालों के) के सदृश समझते हैं।[1] इस प्रकार के और भी अनेक आक्षेप ऋषि दयानन्द ने ब्राह्म लोगों की अराष्ट्रीय मनोवृत्ति पर किये हैं, जिन्हें देखने के लिये सत्यार्थ प्रकाश का मूल अंश ही देखना चाहिये।

श्री केशवचन्द्र की यह राष्ट्र विरोध भावना किसी से अप्रकट नहीं थी। उनके हिन्दी जीवन लेखक ने केशव को ही लक्ष्य में रख कर ब्राह्म

१. सत्यार्थप्रकाश: एकादश समुल्लास।

लोगों की इस मनोवृत्ति का उल्लेख करते हुये लिखा है—"बहुत से ब्राह्मसमाजियों पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे धार्मिक शिक्षा के लिये पाश्चात्य लोगों का मुंह ताकते हैं। अनन्त शिक्षाओं के भण्डार वेदों को छोड़ कर बाइबल में पिता, पुत्र और पवित्रात्मा के सिद्धान्त को तलाश करते फिरना हमारी समझ में अनुचित है और हास्योत्पादक है। यज्ञोपवीत का तो विरोध करना और बपतिस्मा की विधि को प्रचलित करना क्या किसी भारतीय को शोभा दे सकता है? भगवान् कृष्ण का कभी अपने व्याख्यान में नाम तक न लेना और 'प्रभु ईसा मेरे प्राण बचैया' गाते रहना, क्या इसे कोई राष्ट्रीय भारतवासी पसन्द करेगा।[1]

कभी-कभी तो अपनी सनक में केशव बाबू ऐसी ऐसी बातें कह बैठते थे, जो नितान्त हास्यास्पद होने के साथ-साथ हमारी राष्ट्रीय चेतन को आघात पहुंचाने वाली भी होती थीं। उदाहरण के लिये उन्होंने परमात्मा के नाम से एक आज्ञा प्रसारित की जिसमें यह कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार परमात्मा की सरकार है और महारानी विक्टोरिया परमात्मा की पुत्री। शासकवर्ग के प्रति ऐसे उद्‌गार प्रकट करना केशव बाबू की दासतापूर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है।

श्री केशवचन्द्र सेन को ईसाई आदर्शों के स्वीकार करने में कभी ग्लानि नहीं हुई। ऐसे प्रतीत होता है कि अपने आपको सार्वजनीन

१. केशवचन्द्र सेन: एक भारतीय आत्मा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बनाने की धुन में वे इतने निमग्न रहते थे कि उन्हें इन राष्ट्रविरोधी बातों का तनिक भी ध्यान नहीं रहता था। उनके हिन्दी जीवन चरित लेखक ने एक और उदाहरण दिया है। श्री केशव ने संसार की कुछ आदर्श नारियों के नाम पर कुछ आदर्श व्रतों का निर्माण किया था। यथा पातिव्रत के लिये सावित्री व्रत, विद्या के लिये मैत्रेयी व्रत आदि। इन्हीं के अनुकरण में उन्होंने नाइटिंगेल व्रत और विक्टोरिया व्रत भी बनाये। सेवावृत्ति के सूचक नाइटिंगेल व्रत की बात तो कुछ समझ में आ सकती है परन्तु पता नहीं ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया के नाम पर व्रत निर्माण करना उनकी राजभक्ति के अतिरिक्त और क्या सूचित करता है ? पाठक देख सकते हैं कि किस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उनकी नस, नाड़ी रक्त और मज्जा तक में प्रविष्ट हो गया था और उससे वे किसी भी प्रकार अपने आपको पृथक् नहीं रख सकते थे।

यूरोपवासी भी इस बात को जानते थे कि केशव बाबू भारत में उनके ही विचारों और आदर्शों को पुष्पित और पल्लवित करने में लगे हुये हैं, इसलिये जब वे इंगलैण्ड गये तो वहां उनका स्वागत 'पश्चिम के आध्यात्मिक मित्र'[1] कह कर किया गया। केशव की मृत्यु पर 'इण्डियन एम्पायर' ने उन्हें भारत में अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई सभ्यता की सर्वोत्तम उपज बताया और 'हिन्दू पेट्रियट' ने पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति की सर्वोच्च देन कहा। परन्तु रोमा रौला जैसा मनीषी इस अन्तिम श्रद्धाञ्जलि में निहित व्यंग को समझ गया, अतः उसने लिखा, From the Indian point of view, such praise was its own Condemnation"[1] अर्थात् भारतीय दृष्टिकोण से ऐसी प्रशंसा वस्तुतः निन्दा ही है।

श्री केशव में राष्ट्रीय भावों की न्यूनता थी, इसका पता तो इस बात से भी चलता है कि इन्हें संस्कृत, हिन्दी यहां तक कि अपनी मातृभाषा बंगला से भी कोई विशेष प्रेम नहीं था। उस समय ब्राह्मसमाज की वेदी से बंगला भाषा में उपदेश होता था। उन्होंने अपने अन्तरंग भक्त प्रतापचन्द्र मजूमदार से स्पष्ट कह दिया कि ब्राह्मवेदी मेरे अनुकूल नहीं है। वे अधिकतर अंग्रेजी में ही भाषण देते थे। विचित्र बात तो यह है कि श्री केशवचन्द्र ने ही स्वामी दयानन्द के कलकत्ता आने पर उन्हें संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक भाषा हिन्दी के प्रयोग करने का परामर्श दिया था, परन्तु वे स्वयं उसका अनुकरण करने में अपने आपको अक्षम पाते थे। जो कुछ हो। अब केशव के अनुयायियों की ब्राह्मसमाज एक अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की जमात रह गई थी जिसमें पाश्चात्य शिक्षा में निष्णात व्यक्ति प्रातः सम्मिलित होते थे और अपने आपको साधारण हिन्दू वर्ग से पृथक् मानते हुये प्रचलित कुरीतियों और कुसंस्कारों की आलोचना में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते थे। यही कारण था कि ब्राह्मसमाज का आन्दोलन अधिक लोक

1. Spiriltal friend of the west.

1. Life of Rama Krishna Pazam hansa.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रिय नहीं हो सका। इन सुधार आन्दोलनों के पश्चात् भारत में जिस राष्ट्रीयता का विकास हुआ, उससे मेल न खाने के कारण यह नवजात पौधा असमय में ही काल कवलित हो गया। भारत के वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने ब्राह्म समाज और आर्यसमाज की भाषा सम्बन्धी नीति पर विचार करते हुए लिखा है— 'ब्राह्मसमाज अधिकाधिक अंग्रेजी भाषा द्वारा ही अपना काम चलाता गया और गत ३०-४० वर्षों के अन्दर उसके साहित्य भाव, धर्म तथा विचारों पर पाश्चात्य विशेष कर अंग्रेजी भाव, धर्म तथा विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इसका फल यह हुआ कि जनता में इसका प्रचार नहीं हो सका और केवल अंग्रेजी शिक्षित चंद आदमियों तक ही इस धर्म की छाया पहुंच सकी। . . इससे उल्टा आर्यसमाज का आन्दोलन धार्मिक और सामाजिक विचारों में उथल पुथल करने वाला था, पर आर्यसमाज ने अपना प्रचार हिन्दी द्वारा किया और आज इन दोनों के अनुयायियों की संख्या देखने से ही प्रमाणित हो जाता है कि देशी भाषा द्वारा कितनी सफलता मिल सकती है।"[1]

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति किये गये स्वामी दयानन्द के उपकारों का वर्णन करने के लिये हम यहां प्रस्तुत नहीं हैं क्योंकि हिन्दी के लगभग सभी प्रमुख इतिहास लेखकों और विद्वान् साहित्यकारों ने हिन्दी के प्रति उनके ऋण को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने तो अपनी पुस्तक में इस विषय का अत्यन्त विस्तृत और मौलिक विश्लेषण किया है। हम तो इस लेख को समाप्त करने के साथ-साथ यही निवेदन करना चाहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने ही राष्ट्रीय भाव धारा का प्रवर्तन किया था। उसने ही 'भारत भारतीयों के लिये' (India for Indians) का नारा लगाया था और इस प्रकार देश वासियों को अपने विगत गौरव पूर्ण अतीत को ध्यान में रखते हुये एक उज्ज्वल यौर स्वाधीन भविष्य का निर्माण करने के लिये प्रेरित किया था।

१. साहित्य शिक्षा और संस्कृति पृ० १७

—०—

घृणा पाप से करो पापी से नहीं

ऋषि दुःखी पर दया का आदेश देते हैं। दुःख के कारण जो काम क्रोध आदि दुर्गुण हैं उन से जिस कदर घृणा की जाय उचित है। परन्तु जो मनुष्य हमारा भाई इन बुराइयों में फंस कर दुःखी हो रहा है उस से घृणा करना मनुष्यत्व से गिरना है।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी।

★

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महर्षि महिमा

(कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी अजमेर)

वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ।।

(१)

असत् शम्भु की पूजा जिसने विसारी
बना सच्चे शंकर का जो था पुजारी ।
धरा धाम सुखसाज पर लात मारी
बना लोकहित पूर्ण जो ब्रह्मचारी ।
दशा जिसने भारत की बिगड़ी सुधारी
किये एक जिसने शिखासूत्रधारी ।
धरमवीर से वरव्रती क्रान्तिकारी
बनाये थे जिसने बहुत नर व नारी ।

किया जिसने फिर जागृति का सवेरा
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ।।

(२)

नया पन्थ जिसने न कोई चलाया
पुरातन जो वेदों का सन्देश लाया ।
अविद्या का जिसने विकट दुर्ग ढाया
अनार्यों को फिर आर्य जिसने बनाया ।
प्रथम जिसने नारी जगत् को जगाया
अनाथ और विधवा को धीरज बंधाया ।
छुआछूत का भूत जिसने भगाया
गऊ रक्षा का प्रश्न जिसने उठाया ।

कृपा हस्त जिसने दलित जन पे फेरा
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ।।

(३)

चलाने को फिर वेद शिक्षा प्रणाली
यहां नींव गुरुकुल की जिसने थी डाली ।
पुनः आर्य जाति सुसांचे में ढाली
बहा जिस ने दी गङ्गा सत् ज्ञान वाली ।
बना जो कि भारत के उपबन का माली
हृदय रक्त से सींची हर डाली डाली ।
की हरियाली चहुंदिशि विपद जिसने टाली
नई जान डाली शिथिलता निकाली ।

उखाड़ा था भ्रमभूत का जिसने डेरा
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ।।

(४)

परम लक्ष्य था जिस का जग की भलाई
बराबर थी जिस को प्रशंसा बुराई ।
क्षमाशीलता खूब जिसने दिखाई
दिया जिसने विष, जान उसकी बचाई ।
न थे पास मठ, धाम चेली न चेला
न सोना न चांदी, न पैसा न धेला ।
'प्रकाशार्य' संकट विकट जिसने झेला
करोड़ों के आगे डटा जो अकेला ।

गया कांप जिस से पाखंडी लुटेरा
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ।।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि जीवन की झांकियां
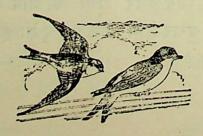
सहनशीलता के आदर्श ऋषि दयानन्द

(श्री बाबू राम जी गुप्त लुधियाना)

१. फ़रुर्खाबाद में स्वामी जी वायुसेवन के लिये जा रहे थे। मार्ग में एक व्यक्ति ने गालियों की झड़ी लगा दी। आप सुन कर हंसते रहे। वापिस आए तो वह व्यक्ति ऋषिकुटिया पर पहुंचा कि अब सामने बैठ कर सुनाऊंगा। महाराज ने "आओ बैठो" मीठे शब्दों से सत्कार किया। वर्ताव देख कर वह भक्त बन गया। ऋषि चरणों को आसुओं से धोते हुये बोला—"महाराज मुझे क्षमा करो। मैंने बड़ा अपराध किया है।" ऋषि ने कहा "शान्त हो जाओ तुम्हारे शब्द वायु में लीन हो गये हैं, उन से हमारी कोई हानि नहीं हुई है।"

२. आप पंजाब के एक नगर में व्याख्यान देकर आ रहे थे। रास्ते में एक व्यक्ति ने भंगी के रखे हुये सड़क पर पड़े मल के टोकरे को स्वामी ज़ी पर फैंक दिया। ऋषि कमल की तरह खिले गजगति से चलते हुए डेरे पर पहुंचे। जाते ही असमय स्नान करना पड़ा—दूसरे दिन व्याख्यान तक में इस सम्बन्ध में कोई शिकायती शब्द न था। कुछ ऋषि भक्तों के चर्चा करने पर ऋषि ने कहा "उस ने अज्ञानवश क्रोधावेश में ऐसा किया है। वह नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है।"

३. फ़रुर्खाबाद में ऋषि ने अपने ऊपर जूता फैंक कर भागने वाले को पकड़ने के लिये पीछा करने वालों को रोकते हुये कहा "उस ने अज्ञानवश ऐसा किया है। निर्बल पर दया करने में ही बलवान् की शोभा है।"

४. दो युवक जब ऋषि कुटिया पर पहुंचे तब स्वामी जी एक ब्राह्मण को मनुस्मृति पढा रहे थे। दोनों को सादर बिठा कर पढ़ाने में व्यस्त रहे। युवक बैठे-बैठे धैर्य छोड़ बुड़बुड़ाने लगे "देखो कैसे अहंकारी हैं हम से बात ही नहीं करते। अपने पढ़ाने में ही लगे हुए हैं" पाठ समाप्ति पर श्री स्वामी जी ने कहा "क्या किसी को अहंकारी कहना स्वयं अहंकार करना नहीं? कर्त्तव्य पालन के पश्चात् ही अन्य कार्य करना हमारी सभ्यता है, समझे।"

५. एक स्थान पर स्वामी जी की कुटिया के पास कुछ साधु भी रहते थे—एक दिन साधुओं ने कुटिया में आग लगा दी। कुटिया धायं-धायं कर जलने लगी। स्वामी जी शान्त भाव से छप्पर उठा कर बाहिर निकल आये। किसी से कुछ नहीं कहा।

६. रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। सोरों में गंगा किनारे सो रहे थे, कुछ पास रहने बाले साधुओं ने गंगा में डुबाने की सोची। पास पड़े एक अन्य साधु को गंगा में डाल दिया। उस के चिल्लाने पर ऋषि की आँख खुली तो उस डूबते को बचाने में सहायता दे कर बचाया।

"धन्य" "आर्य"

—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऋषि-अर्चन

तन मन जीवन ब्रह्मचर्य की, वज्र साधना का प्रमाण है ।
तेज पुंज सुन्दर मुख मण्डल, पाता इन से धर्म त्राण है ।।
गौर वर्ण उन्नत ललाट पर, अनुपम आभा झलक रही है ।
उर तल की उदात्त भावना, दीप्त दृगों से छलक रही है ।।
अतुल शान्त, निवृत्ति परायण, परम भक्त करुणा निधान के ।
उत्कट देश-भक्त युगत्राता, दयानन्द हैं धनी ज्ञान के ।।
कर्मवीर, निर्भीक सिंह सम, किंचित् भूखे नहीं मान के ।
शिश्नोदरता के कट्टर रिपु, मूर्तरूप हैं स्वाभिमान के ।।
लेश अंध विश्वास न इन में, खोज पूर्ण इनके विचार हैं ।
परम मित्र या घोर शत्रु हो, सब के लिए सदा उदार हैं ।।
गुरुडम और पोप लीला पर ये करते भीषण प्रहार हैं ।
मनसा वाचा और कर्मणा, करते वेदों का प्रचार हैं ।।
बाल ब्रह्मचारी विषयों का, कूट कूट कर दमन किया है ।
जीवन रण में षट् रिपुओं का गर्ज-गर्ज कर हनन किया है ।।
अतुल हेम कुत्सित वैभव पर, थूक दिया फिर वमन किया है ।
आर्य शिरोमणि दयानन्द ने मन का सच्चा शमन किया है ।।
राजा रङ्क दुःखिया जन के, नेता नाटक के अभिनेता ।
राजनीति के कुशल खिलाड़ी, योद्धा समर विजेता ।।
सब ही उनकी शान्त वृत्ति से,आज प्रभावित शत प्रतिशत हैं ।
लज्जा से इन के चरणों पर होते नर नारी अभिनत हैं ।।
जिस ऋषिवर ने भ्रांत मनुजता, को प्रकाशमय मार्ग दिखाया ।
हर पत्थर पर अमिट पूर्णतः जिसके कार्यों का कलाप है ।।
उस ऋषिवर के दिव्य गुणों पर, मुग्ध न होना महापाप है ।
सज्जनता ही आर्य धर्म है, सज्जनता है धर्म सनातन ।।
सज्जनता है धर्म पुरातन, उगा न सकें हृदय में यदि हम ।
सज्जनता का सुमधुर अंकुर, तो निःसार हमारा अर्चन ।।
निष्फल है जीवन क्षण-भंगुर, क्रांतिदूत जन-मन अधिनायक ।
महाराज ऋषिराज ! नमस्ते, उग्र नमस्ते, भीष्म नमस्ते ।।
आर्यराज ऋषिराज नमस्ते, देश भक्त सच्चे संन्यासी ।

(शेष अगले पृष्ठ पर देखिये)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महापुरुष वचनामृत

ईश्वरोपासना विषयक महर्षि दयानन्द के कुछ वचन

(१)

जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सब सत्य ही हैं, जो केवल चेतन मात्र वस्तु है तथा जो अद्वितोय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुणों वाला है और जिस का स्वभाव अविनाशी ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पाप पुण्यों के फल ठीक-ठीक पहुंचाना है उसे ईश्वर कहते हैं।

—आर्योद्देश्य रत्नमाला

(२)

हे मनुष्यो ! जिस प्रभु के विना न विद्या और न सुख ही प्राप्त हो सकता है। जो प्रभु विद्वानों का सङ्ग, योगाभ्यास और धर्माचरण के द्वारा प्राप्त होता है। उसी जगदीश्वर की सदा उपासना किया करो।

ऋ० भा० ७।११।१

(३)

सब लोगों को चाहिये कि सत्-चित्-आनन्द स्वरूप,नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करने वाले परमात्मा की ही सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष को जो मनुष्य देह रूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसको भक्ति और कृपा से सर्वदा सब मनुष्यों को प्राप्त होते हैं।

पञ्चमहायज्ञ विधि

(४)

हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव वाला; कृपा सागर, ठीक २ न्याय का करने वाला, जन्म मरण आदि क्लेश रहित, निराकार, सब के घट-घट का जानने हारा, सब का धर्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पालन पोषण करने हारा, सकल ऐश्वर्य युक्त जगत् का निर्माता, शुद्ध स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है। उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतन स्वरूप है उसी को हम धारण करें जिससे कि वह परमेश्वर जो हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप है, हमको दुष्टाचार, अधर्म युक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार

(पिछले पृष्ठ का शेष)

महापुरुष ऋषिराज ! नमस्ते, वीर-शिरोमणि उग्र नमस्ते ।।
देवराज ऋषिराज ! नमस्ते ।

—ब्रह्मानन्द "बन्धु"

[श्री ब्रह्मानन्द जी 'सनातन धर्माभिमानी' सज्जन हैं तो भी ऋषि दयानन्द के प्रति उन की भक्ति भावना अद्भुत है। पाठक इस कविता से उसका रसास्वादन करें] —सम्पादक गु० प०

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और सत्यमार्ग में चलावे । उस प्रभु को छोड़ कर हम और किसी का ध्यान न करें क्यों कि न कोई उस के तुल्य और न अधिक है । वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देने हारा है । सत्यार्थ प्रकाश समु० ३

(५)

मनुष्य लोग जो सब का उत्पन्न करने वाला पिता के तुल्य रक्षक, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सर्वत्र अधिव्याप्त जगदीश्वर है, उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करें । यजु० भा० ३७।१४ ।

(६)

हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सारे संसार में व्याप्त होकर सब को धारण करके, रक्षा करता हुआ अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, जिस की कृपा से विज्ञान, दीर्घायु तथा विजय प्राप्त हो रहा है, तुम उसका ही निरन्तर भजन करो । ऋ० भा० ४।५८।११ ।

(७)

ईश्वर सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यासी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि-कर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।

आर्यसमाज का नियम सं० २ ।

(८)

न्यून से न्यून एक घण्टा तक परमेश्वर का ध्यान अवश्य करे । जैसे योगी लोग समाधिस्थ होकर परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासना भी किया करे ।

सत्यार्थ प्रकाश ३ मनु० ।

(९)

जब जब मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब तब अपने अनुकूल एकान्त स्थान में बैठ कर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर (एकाग्र) करें, तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द,सर्वव्यापक और न्यायकारी परमात्मा में भली प्रकार लगा कर, सम्यक् चिन्ता कर के उसी में अपने आत्मा को नियुक्त अर्थात् लीन कर दें ।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना प्रकरण ।

(१०)

जैसे यज्ञ करने वाले ऋषि लोग यज्ञाग्नि को अपने सन्मुख स्थापित कर के और उस में आहुति देकर जगत् का उपकार करते हैं । उसी प्रकार अपने आत्मा के सन्मुख परमात्मा को देख कर उस परमात्म अग्नि में अपने मन आदि इन्द्रियों का हवन कर के जो प्रभु का साक्षात् कर लेते हैं वे ही परमात्म-भक्त प्रभु के उपदेश से जगत् का उपकार कर सकते हैं ।

—

तप की आवश्यकता

जिस तप के प्रभाव से योगिजन अमृतधाम की ओर चलते हैं,उसके प्रभाव को जिसने नहीं समझा और उसके नियमों के पालन करने में अपना बल नहीं लगाया,वह संसार के भंवर चक्कर से कैसे निकल सकता है । —स्वामी श्रद्धानन्द जी ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाजवाद

ब्र० विश्वराजम् "विशारद" विद्यारत्न, गुरुकुल कांगड़ी

यदि संसार में होने वाले युद्धों की ओर दृष्टिपात किया जाए तो पता चलेगा कि आज युद्ध इस कारण नहीं होते कि आक्रान्ता राष्ट्रों को कोई साम्राज्य-लिप्सा हो, अपितु आज युद्धों का मूल कारण यह है कि एक राष्ट्र जिस विचार-धारा का पक्षपाती है, दूसरा राष्ट्र उसको नहीं मानता। वह किसी अन्य प्रकार से अपनी समस्याओं के बारे में सोचता है। यदि एक ओर रूस चाहता है कि सर्वत्र साम्यवाद का प्रसार हो, कोई ऊंच नीच का भेद न हो, सब समान हों, तो दूसरी ओर अमेरिका की यह इच्छा है कि राष्ट्रों में वर्ग बने रहें। पूंजीपति भी हों और मज़दूर भी हों। ज़मीनदार भी हों और किसान भी हों। इन्हीं दो मुख्य विचार धाराओं का आज संसार में स्पष्टतः संघर्ष देखा जा सकता है। साम्यवाद या समाजवाद की विचार धारा का आज इतना ज़ोर है कि हमारे अपने देश में भी इसके कुछ-कुछ लक्षण दीख पड़ते हैं। इस विचार धारा को अब उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। विचार अब यह करना है कि पश्चिम से आई इस विचार धारा का भारतीय परम्परा और प्रकृति के साथ कुछ साम्य भी हो सकता है अथवा नहीं ?

आज भारत वर्ग-संघर्ष को परिस्थितियों में से गुज़र रहा है। पूंजीपतियों और मिल मालिकों का बोलबालाहै। जहां एक ओर पूंजीपतियों की संगमरमर की अट्टालिकाओं कीदुग्ध-धवल-उत्तुंग मीनारें आसमान से बातें कर रही हैं, वहां दूसरी ओर किसान मज़दूरों को जेठ वैशाख की झुलसानी लू से बचने के लिये फूस की एक झोंपड़ी तक नसीब नहीं है। हेमन्त शिशिर की तुषार से बचने के लिये खपरैल की छप्पर तक नहीं। आज जहां एक ओर रेशम और ऊन के कीमती परिधानों की पेटियां भरी पड़ी हैं वहां दूसरी तरफ हड्डी-मात्र ढांचे को ढांपने के लिए चीथड़ा तक नहीं, लाखों ललनाओं के पास लाज बचाने के लिए चीवर तक नहीं। एक ओर वे लोग हैं जो अन्न के पहाड़ की चोटी पर बैठकर सोच रहे हैं कि इसे ब्लैक में किस भाव पर बेचें कि इतना ही ऊंचा रुपयों का पहाड़ खड़ा हो जाए, तो दूसरी ओर पीठ से चिपके हुए करोड़ों पेट हैं जो भूख से तड़प तड़प भर कराल काल के ग्रास हो जाते हैं।

बहुधा लोग आक्षेप करते हैं कि समाजवाद पश्चिम से आया है और भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है। अतः यह भारत के काम की चीज़ नहीं है परन्तु उनका यह आक्षेप उसी प्रकार है जैसे कि कोई कहे कि क्यों कि यह पुस्तक मेरी बनाई हुई नहीं है, अतः मैं इसे नहीं पढ़ूंगा। इसमें सन्देह नहीं कि समाजवाद कुछ अंश तक पश्चिम से आया है, पर इतने से ही तो वह त्याज्य नहीं हो सकता। यदि यूरोप और अमेरिका के रहने वाले यह कहें कि चूंकि वेदान्त और योग शास्त्र का प्रवर्तन भारत में हुआ, इस लिए ये विद्यायें गर्हित हैं, तो प्राच्य संस्कृति के उपासक क्या उत्तर देंगे ? क्या पाश्चात्य होने के कारण लोग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऐलोपैथी का अभ्यास करने वाले डाक्टरों से चिकित्सा नहीं कराते या उनके शल्य-शास्त्र से लाभ नहीं उठाते ? सिद्धान्त के सम्बन्ध में उत्पत्ति स्थान का प्रश्न उठाना ही मूर्खता है। केवल गुण-दोष पर विचार करना चाहिए।

यह तथ्य है कि पश्चिम से जो भाव या धारायें इस देश में फैली हैं और फैल रही हैं उनमें समाजवाद ही ऐसा वाद है जिसने हमारे विचार जगत् में विप्लव की सृष्टि कर दी है। इस विप्लव का आभास आज हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, क्या समाजनीति, क्या राष्ट्रनीति और क्या धर्मनीति सभी में स्पष्ट रूप से परिलसित हो रहा है। समाजवाद अच्छा है या बुरा ? इस मार्ग द्वारा हमारा कल्याण साधित होगा या नहीं। इस प्रश्न को लेकर चाहे कितने ही बाल की खाल उतारने वाले विवाद हों किन्तु इसका प्रचार होना अनिवार्य सा है। इस समाजवाद का आश्रय लेकर ही आज संसार के लाखों करोड़ों मनुष्य यह सोचने लगे हैं कि समाजवाद द्वारा ही हमारे जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान होगा। हमारी अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति होगी। युग युग से लदा हुआ अत्याचारों का जुआ हमारे कन्धों पर से उतरेगा और निकट भविष्य में हमारे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में एक बार फिर सुख और समृद्धि की प्रतिष्ठा होगी और हम निश्चिन्त होकर अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ करेंगे। समाजवाद ऐसी चीज़ नहीं जिसे कि नीति एवं धर्म के विरुद्ध अथवा कोरे आदर्श वादियों का स्वप्न बताकर अपना स्वार्थ पूरा किया गया हो। मज़हब के नाम पर दम्भ और अनाचार सामाजिक उत्पीड़न, दरिद्रता, कृषकों पर ज़ुल्म, सड़कों और घरों में स्त्रियों और बच्चों के सामने अश्लील गालियां, झूठी गवाही इनमें से कौनसी बात आध्यात्मिकता की द्योतक है ? कितने मनुष्य-सब को जाने दीजिए कितने पंडित संन्यासी या मुल्ला फ़कीर समाधिस्थ होकर बैठते हैं ? कितने ब्राह्मण वेदोक्त विधि से जीविका निर्वाह करते हैं ? फिर आपकी और हमारी आध्यात्मिकता आखिर कहां छिपी पड़ी है ? हम दूसरे देश वालों से इस समय किस बात में भिन्न हैं ? किसी समय सरस्वती के तट पर सामगान होता था और श्री शङ्कराचार्य जी ने शारीरक भाष्य लिखा था। इतने से ही हम आज अध्यात्ममूर्ति कहलाने के अधिकारी हो गये ? क्या मौके-बेमौके, ईश्वर का नाम लेते रहना ही आध्यात्मिकता है ? ये गम्भीर प्रश्न हैं। यदि हम इन पर विचार करेंगे तो प्रतीत हो जाएगा कि हमारी वर्तमान संस्कृति में ऐसा कोई तथ्य नहीं है जो हम को पृथिवी के और मनुष्यों से भिन्न बना दे और समाजवाद को हमारे लिए अग्राह्य बना दे।

पर इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हम अपनी संस्कृति को भुला दें। यदि हमारी संस्कृति के बारे में यह कहा जाता है कि वह धर्म-प्रधान है और धर्म से तात्पर्य वैदिक, मनुप्रोक्त धृति क्षमादि लक्षणात्मक वस्तु से है, वहां तक किसी का कोई विरोध नहीं है। परन्तु यदि धर्म से मतलब वैष्णव, शैव, शाक्त, इस्लाम ईसाई आदि सम्प्रदायों से है तो समाजवाद वैसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म को मानने से इन्कार करता है। केवल समाजवाद ही नहीं, यदि हमें भी वैसा धर्म स्वीकार करने को कहा जाय हम भी उसे कदापि स्वीकार नहीं करें।

इस सब विवेचना से स्पष्ट है कि समाजवाद कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कि हमारी प्रकृति और परम्परा के प्रतिकूल होने से हमारे लिए अग्राह्य हो। अपितु इसके समुचित प्रयोग में हमारी वर्तमान समस्याओं का उचित हल है। इसके द्वारा हम उस दिन की कल्पना कर सकते हैं जब कि कोई भूखा-नंगा नहीं होगा। पूंजीपति और जमीनदारों के जुल्म नहीं होंगे, लोग सुखी और समृद्ध होंगे। वह दिन कब आयेगा यह हम नहीं कह सकते। पर द्वन्द्व न्याय के अनुसार अब तक की प्रगति की जो कुछ आलोचना की जा सकती है, उससे ऐसी आशा और दृढ़ आशा की जाती है कि संसार के अन्य राष्ट्रों की भांति भारत के भी भाग्य जागेंगे।

वह काल बहुत दूर नहीं रह गया है, जब देश में सच्चे समाजवाद की प्रतिष्ठा की जाएगी। समाजवादी राज्य में रोटी का सवाल हल हो जाने पर मानव के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का आज से कहीं अधिक अवसर मिलेगा। अदालतों का काम हल्का हो जायेगा। अर्थ-व्यवस्था का ढांचा बदल जायेगा। बच्चे, बूढ़े और औरतें बेकारी के कारण भीख मांगते दृष्टिगोचर न होंगे। गरीब किसान और अदना चपरासी मिल मालिकों को "हुजूर" और "अन्नदाता" कहकर नाक रगड़ता न फिरेगा। सब जगह "वसुधैव-कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त माना जायेगा।

समाजवाद का डमरू बज चुका है, समाजवाद का ज्वालामुखी फूट पड़ा है जिसकी चिनगारी क्षण भर में तुच्छ स्वार्थ पूर्ण पूंजीवाद और ऐसे पूँजीवाद के अनुयायियों को नष्ट कर डालेगी। क्षितिज के उस पार समाजवाद की धुंधली आभा दिखाई पड़ने लगी है। वह दिन दूर नहीं जब कि समाजवाद का बिगुल बजने लगेगा। जर्जर मजदूरों की हड्डियों पर स्थापित गगनस्पर्शी प्रासाद भूलुण्ठित हो जावेंगे। सारे देश में केवल स्वार्थ प्रधान पूँजीवाद की चिता धू धू करके जल उठेगी। दीन दरिद्रों की भीषण आहें महानाश की ज्वाला बनकर आकाश में व्याप्त हो जावेंगी। दीन, दुःखी और शोषित मजदूर तुमुल निनाद कर उठेंगें और कहेंगे कि-

अपनी रोटी अपना राज
समाजवाद ज़िन्दाबाद

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ तत्सत्

छप गई ! छप गई !! छप गई !!!

प्रसिद्ध लेखक

श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की

आत्म-कथा

अर्थात्

आप-बीती जग-बीती

२०×३० / ८ आकार की लगभग ६५० पृष्ठ की छप गई ।

इसमें पिछले ७० वर्ष के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक आन्दोलनों का इतिहास आ गया है, जिन जिन आन्दोलनों और संस्थाओं के साथ शास्त्री जी का सम्पर्क हुआ है । गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, आर्यजगत्, हिन्दीजगत्, पत्रकारजगत्, राजनैतिक जगत् आदि आदि का मनोरंजक वर्णन है । इसमें लङ्का, कश्मीर, गढ़वाल तथा भारत के अन्य प्रदेशों की यात्राओं के भी बोधप्रद वर्णन हैं । भारतीय नेताओं का भी परिचय दिया गया है । जेल यात्राएं भी रोचक ढंग से लिखी गई हैं । सारांश, शास्त्री जी ने इसमें अपने जीवन के अनुभव रोचक, उद्बोधक ढंग से लिखे हैं और पाश्चात्य और पौरस्त्य के समन्वय का सोपपत्तिक ऊहापोह किया है। इस ढंग की पुस्तकें कम देखने को मिलती हैं । पुस्तक सब प्रकार के विचार रखने वालों के काम की है । इसमें शास्त्री जी के संकट और संघर्षमय जीवन के कण कण सजीव होकर बोल रहे हैं ।

मिलने का पता— (लेखक)

नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ)

महाविद्यालय, पो० ज्वालापुर

(हरिद्वार) ।

ध्यान रहे--

मूल्य डाक व्यय सहित लागत मात्र छह ६) रुपये । { छह रुपये मनीआॅर्डर से भेजिए, बी० पी० नहीं जाएगी । }

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियाँ आनी चाहियें)

साम वेद संहिताया उत्तरार्चिकस्य साम-संस्कारभाष्यं पण्डितराज परमहंस परिव्राजक स्वा० भगवदाचार्य प्रणीतम्—भाषानुवाद सहितम् प्रकाशक—श्री रामानन्द साहित्य मन्दिर अट्टा अलवर (राजस्थान) पृष्ठ ८०६ मूल्य ८)

पण्डितराज स्वामी भगवदाचार्य जी एक वेदों के धुरन्धर विद्वान् हैं जिन का सामवेद के पूर्वाचिक का उपासना प्रतिपादक भाष्य सन् १९४९ में प्रकाशित हुआ और विद्वानों के उपयोगार्थ बिनामूल्य वितीर्ण किया गया था। आप ने इस भाष्य को भूमिका में ठीक लिखा है कि "जिसे आर्य धर्म अथवा हिन्दू धर्म कहते हैं उसका मूल वेद है। मैंने देखा कि वेदों के उपलब्ध भाष्य मुख्यतया सायणाचार्य और मही-धराचार्य के भाष्य, यद्यपि अवश्य ही वे पाण्डि त्यपूर्ण हैं, तथापि वेदों के माहात्म्य की रक्षा करने में असमर्थ हैं। ऋग्, यजुः और साम के सभी मन्त्रों को कर्मकाण्ड में विनियुक्त कर देना बुद्धिमत्ता और भविष्यद् वेत्तृत्व से दूर की बात है।.. वेद में से ऐसे सिद्धान्तों का स्वरूप बाहर आना चाहिये जो सदा ही देश और काल से अबाधित रहें। ज्ञान और चारित्र्य संगठन के साधन सार्वभौम होने चाहियें। मैंने मेरे ज्ञान-चक्षु से सामवेद में सार्वभौम तत्त्वों का दर्शन किया। मानवता के जीवनसूत्रों का मुझे उस में दर्शन हुआ। मैं ने अपनी दृष्टि, अपने दर्शन को साक्षी बनाकर इस भाष्य का निर्माण किया। यह भाष्य किसी भी साम्प्रदायिक भावना से परे है। आग्रह और पूर्वग्रह से विमुक्त मैंने इसे रखा है, इसी लिये इस भाष्य का नाम सामसंस्कार भाष्य रखा है।" इत्यादि संस्कृत भाष्य के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है कि 'अर्थ-माध्यात्मिकं वक्तुं, सामवेदस्य कृत्स्नशः। साम संस्कारभाष्यं तु, रचयामि सदर्थकम्॥ अर्थात् सम्पूर्ण सामवेद का आध्यात्मिक अर्थ प्रतिपादन करने के लिये मैं इस सामसंस्कार भाष्य का निर्माण करता हूं। सामवेद में भक्ति उपासना का विषय प्रधान है। स्वामी भगवदाचार्य जी के भाष्य में शब्दों के यौगिक अर्थ मान कर साम के मन्त्रों की हृदयंगम भक्ति परक सरस और सरल व्याख्या की गई है यह देख कर हमें अत्य-धिक प्रसन्नता हुई। सोम का परमात्मा अथवा कहीं प्रकरणानुसार शान्त उपासक वा भक्ति रस अर्थ लिया गया है ऐसे ही द्रोण, देव आदि पदों के निरुक्त तथा प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर 'द्रवन्ति गच्छन्ति परमात्मानं प्रति मनसा वाचाकर्मणा च ये ते द्रोणाः (सामम० १२५६ व्याख्या) अर्थात् परमात्मा की ओर मन वचन कर्म से जाने वाले भक्त,विद्वान् इस प्रकार के अर्थ किये गये हैं। अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण पूषा इत्यादि को एक ही परमेश्वर के भिन्नगुणों का सूचक माना गया है। इस प्रकार यौगिक अर्थ दे कर भक्ति उपासना की अत्यन्त आनन्द जनक व्याख्या संस्कृत में की गई है जिस का छायानुवाद हिन्दी भाषा में सर्व साधारण के लाभार्थ दिया गया है। सत्य सदाचार संयम आदि की महिमा का सर्वत्र प्रतिपादन करते हुए

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वामी भगवदाचार्य जी ने ठीक ही लिखा है कि जो सत्य सदाचार सम्पन्न जीव है उसी पर परमेश्वर की कृपा उतरती है और आनन्द भी उसी को प्राप्त होता है (पृष्ठ १६६) परमात्मा कभी अपने नाम लेने से प्रसन्न नहीं होता है किन्तु सत्य भाषण से और सत्याचार से ही प्रसन्न होता है (पृष्ठ १५०) ईश्वर का भक्त कभी भी असत्य नहीं बोलता। जो असत्य बोलता है वह ईश्वर भक्त ही नहीं। ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र, तुलसीधारण, रुद्राक्षधारण करने से ही जो अपने को कृतार्थ और महात्मा मानता है वह तो केवल अज्ञानी है। ईश्वर-ईश्वर या राम राम कहने से न तो कभी कोई पवित्र बना है और न बन सकता है। सदाचार मुख्य वस्तु है। सदाचार हीन पुरुष को कभी कोई बचा नहीं सकता। अतः अजर, अमर अनादि, परमदेव की जो उपासना करता है उस का कल्याण होता है। सच्चा उपासक धर्म धन का रक्षक बनता है और परमात्मा का सखा बन जाता है। (पृष्ठ १५१) इत्यादि। इस प्रकार सम्पूर्णतया यह भाष्य अत्युत्तम आध्यात्मिक सरल व्याख्या के कारण अत्यन्त उपादेय है किन्तु 'वेद परमेश्वर के ज्ञान ग्रन्थ हैं। वह प्रकाश स्वरूप हैं क्यों कि निर्भ्रान्त हैं। वह अयासः—सर्वत्र गमन शील हैं अर्थात् सर्व वर्ण और सर्व आश्रम के लिये प्राप्य हैं अतएव सर्व वर्णाश्रमियों के अज्ञान को दूर करते हैं। वेद द्वारा परमेश्वर सब को ज्ञानी और सदाचारी बनाता है। साम (म० ८६२ की व्याख्या पृष्ठ १६८) ऐसा मानते और लिखते हुए भी जो कहीं-कहीं ऋषियों को मन्त्र-कर्ता मान कर अर्थ किया गया है। (पृष्ठ ५९, १८१, १९५) तथा कहीं-कहीं पौराणिक-संस्कार वश पृष्ठ १७५ आदि में अवतार वाद का कुछ समर्थन किया गया है यद्यपि उस का मान्य भाष्यकार ने आग्रह नहीं किया और पृ० २२३ पर मान्य विद्वान् भाष्यकार ने स्पष्ट ही लिखा है कि 'भवत जन परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं यही परमेश्वर का जाना और उत्पन्न होनाहै। वस्तुतः तो परमात्मा न कहीं जाता और न उत्पन्न होता है।' वहां हम उस से सहमत नहीं तथापि ऐसे स्थल बहुत कम हैं। सम्पूर्णतया यह भाष्य अत्यधिक प्रतिभापूर्ण विद्वत्ता और आध्यात्मिक अर्थों का निदर्शक होने के कारण अत्यन्त अभिनन्दनीय है अतः मान्य सुयोग्य भाष्यकार पण्डितराज स्वामी भगवदाचार्य जी का हम इसके लिये हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। पण्डितराज मान्य स्वामी जी से भी हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे वेदों की ईश्वरीयज्ञानता और नित्यता तथा 'परन्तु श्रुति सामान्यम् (मीमांसा) मनोवैभरद्वाज ऋषिः (शतः ८।१।१६) प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः (१।८।१।१६) वाग्वैविश्वामित्र ऋषिः (कौ. १०।५) इत्यादि को ध्यान में रखते हुए अनित्य इतिहास वा अवतारवादादि सूचक कुछ थोड़े से स्थलों का अगले सस्करण में स्वयं संशोधन करके अपने इस भाष्य को सभी विचारशील आस्तिकों के लिये पूर्णतया उपादेय और प्रामाणिक बना दें। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

[समीक्षार्थ प्राप्त अन्य पुस्तकों की समालोचना अगले अङ्कों में की जायेगी।]—सम्पादक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

शिवरात्रि (ऋषिबोधोत्सव) का सन्देश—

यह अङ्क पाठकों के पास शिवरात्रि (जो इस वर्ष फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी तदनुसार १६ फ़र्वरी रविवार को पड़ेगी) से कई दिन पूर्व पहुंचेगा जिसे समस्त आर्य ऋषिबोधोत्सव के नाम से पुकारते हैं। बालक मूल जी वा दयाराम को सन् १८३८ की शिव रात्री में पिता के आदेशानुसार शिव की पूजा करते हुए चूहों को नैवेद्य खाते तथा शिवलिङ्ग को भ्रष्ट करते हुए देख कर मूर्ति पूजा की असारता का बोध हुआ तथा सच्चे शिव के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई इसीलिये आर्य नर-नारी इस पर्व को ऋषि बोधोत्सव के रूप में मनाते हैं। इस पर्व का मुख्य सन्देश वस्तुतः शान्ति के मूल भगवान् (शिव) की सच्ची पूजा करना तथा मूर्तिपूजादि अवैदिक, साम्प्रदायिकतावर्धक हानिकारक प्रथाओं का त्याग करना और कराना है। महर्षि दयानन्द का इस विषय पर कितना बलथा यह सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अतिरिक्त उन के वेद भाष्य से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥ ऋ. १।७।९ इसके भावार्थ में महर्षि लिखते हैं कि 'यः सर्वाधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी व्यापकः सर्वैश्वर्यप्रदोऽद्वितीयोऽसहायो जगदीश्वरः सर्व जगतो रचको धारक आकर्षण कर्तास्ति स एव सर्वैर्मनुष्यैरिष्टत्वेन सेवनीयोऽस्ति। यः कश्चित् तं विहायान्यमीश्वर भावेनेष्टं मन्यते स भाग्यहीनः सदा दुःखमेव प्राप्नोति॥ अर्थात् जो उस सब के अधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी अनुपम, सर्व व्यापक जगदीश्वर को छोड़ कर किसी अन्य को ईश्वर भाव से इष्ट मानता है वह भाग्यहीन सदा दुःख को ही प्राप्त करता है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः॥ 'ऋ० १. ७. १० इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि ने लिखा है कि—

'ईश्वरोऽस्मिन् मन्त्रे सर्वजनहितायोपदिशति हे मनुष्याः! युष्माभिर्नैव कदाचिन्मां विहायान्य उपास्यदेवो मन्तव्यः एवं सति यः कश्चिदीश्वरत्वेऽनेकत्वमाश्रयति स मूढ एव मन्तव्यः॥

अर्थात् इस मन्त्र में ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिये उपदेश दिया है कि तुम्हें मुझे छोड़ कर किसी को उपास्यदेव नहीं मानना चाहिए। ऐसी अवस्था में जो ईश्वर में अनेकता का आश्रय लेता है उसे मूर्ख ही समझना चाहिये।

इसी प्रकार हिरण्य पाणि मूतये सवितार मुपह्वये। स चेत्ता देवता पदम्॥ ऋ. १.२२.५ के भावार्थ में महर्षि ने लिखा है कि 'मनुष्यों को ज्ञानमय सर्व व्यापक पूज्यतम परमेश्वर की ही नित्य उपासना करनी चाहिए। उसके स्थान में अन्य कोई पदार्थ उपासना के योग्य नहीं ऐसा मानना चाहिये इत्यादि। अन्य भी सैंकड़ों उद्धरणों को दिया जा सकता है किन्तु विस्तार भय से अभी इतने ही पर्याप्त हैं। महर्षि के इस संदेश के दो अंश हैं (१) एक तो मूर्ति पूजा तथा ईश्वर के स्थान में बहुदेवता वाद का परित्याग (२) सर्व व्यापक सर्वज्ञ आनन्दस्वरूप भगवान् की सच्ची पूजा अथवा उपासना। हम समस्त आर्य नर-नारियों का ध्यान इन दोनों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अंशों की ओर समान रूप से आकृष्ट करना चाहते हैं। यह पर्याप्त नहीं है कि हम मूर्ति-पूजादि अवैदिक हानिकारक प्रथाओं का स्वयं परित्याग कर, अपने परिवारों तथा अन्यों से करवाएं—यद्यपि यह भी आवश्यक है किन्तु उस के साथ सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् की सच्ची उपासना का अभ्यास कर के शान्ति और आनन्द लाभ करना और करवाना भी हमारा कर्तव्य है। खेद है कि इस दूसरे विधानात्मक कर्तव्य की ओर अनेक आर्य नर-नारियों का अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं है। बहुत से आर्य ५,७ मि. बैठकर सन्ध्या के मन्त्रों का उच्चारण कर लेना ही पर्याप्त समझते हैं। इसका उन के जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता। सच्ची उपासना मनुष्य के जीवन को उन्नत करती है तथा उसे शान्ति और आनन्द प्राप्त कराती है। यदि आर्य महर्षि दयानन्द के इसी अङ्क में अन्यत्र उद्धृत वचनानुसार इस ओर पर्याप्त ध्यान दें तो उन में सच्ची आध्यात्मिकता जागृत होगी। तभी वे राग द्वेषादि रहित हो कर समाज, राष्ट्र तथा विश्व में शान्ति का प्रसार करने में समर्थ होंगे। सत्सङ्ग सन्ध्या और स्वाध्याय यज्ञादि द्वारा हमें अपने जीवनों को निर्मल बनाते हुए महर्षि के इस एकेश्वरोपासना के ऐक्यवर्धक वेदोक्त दिव्य सन्देश को दूर-दूर तक फैलाना चाहिये। यह दुःख की बात है कि मूर्तिपूजादि जन्य अज्ञान हमारे देश में बहुत अधिक फैला हुआ है और उस से आर्थिक दृष्टि से भी बड़ी भारी हानि हो रही है उदाहरणार्थ १२-६-५७ के वीरअर्जुन आदि पत्रों में बाराबांकी (उ. प्र.) का दस जून का एक समाचार 'भगवान् का विवाह' इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ था कि "मूर्तिस्थापना करने से पहले यहां देवी लक्ष्मी और विष्णुभगवान् का विवाह किया गया। इस विवाह पर २५ हज़ार रुपये खर्च हुए।" भारत जैसे निर्धन देश में २५ हज़ार रुपये की राशि कोई छोटी राशि नहीं है। इस का शिक्षाप्रसारादि कार्यों में कितना अच्छा उपयोग हो सकता था किन्तु अज्ञान के कारण उपहासजनक कार्य में उसको पलों में नष्ट कर दिया गया। ऐसे मिथ्याविश्वासों को प्रेमपूर्वक प्रचार द्वारा दूर करना भी धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रत्येक दृष्टि से आवश्यक है।

जैन साधु नगराज जी का वैदिक ईश्वरवाद विषयक अज्ञान—

२६ दिसम्बर सन् १९५७ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान नई देहली के अङ्क में जैन मुनि नगराज जी का 'भारतीय संस्कृति में ऋषिमुनियों का योग' इस शीर्षक का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिस में वेदों के विषय में अनेक अशुद्ध बातें उन्होंने लिखी हैं जिन सब की समालोचना के लिये अधिक स्थान की आवश्यकता है। यहां उपर्युक्त टिप्पणी से सम्बद्ध एक विषय का उल्लेख ही अभी पर्याप्त है। वे उस लेख में लिखते हैं कि 'आदि वेद काल में ईश्वर की उपासना का विषय नहीं बना था। इन्द्र, वरुण आदि देवों से इष्ट की याचना लोगों की उपासना थी। इस के बाद स्वर्ग की कामना उपासकों के हृदय में जागी और उसके बाद मोक्ष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राप्ति व ईश्वर साक्षात् का भाव पैदा हुआ ।" इत्यादि । जैसे कि पाठकों को ऊपर की टिप्पणी में उद्धृत वेद मन्त्रों तथा 'य एक इत् तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणि:"एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः इत्यादि हज़ारों मन्त्रों से ज्ञात हो सकता है वेदों में विशुद्ध रूप से एक ही परमेश्वर की उपासना का विधान है और 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकंसद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमंमातरिश्वानमाहुः । ऋ० १।१६४।४६ इत्यादि मन्त्रों के अनुसार एक ही परमेश्वर के अनेक भिन्न-भिन्न गुणों को सूचित करने वाले ये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि उस के नाम हैं । मुनि जी का वेदों के इस मूल तत्त्व को भी न समझना उनके वेद विषयक अज्ञान अथवा पक्षपात को ही सूचित करता है अन्य कुछ नहीं। ऐसी ही उनके ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानने और वेदों का निर्माण काल एक हज़ार ई० पूर्व से ५००० ई० पूर्व तक बतलाने की अनेक अशुद्ध धारणाएं हैं । हम ने अपनी 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' नामक बड़े आकार के ५३० पृष्ठों की गुरुकुल मुद्रणालय से अभी प्रकाशित पुस्तक में जिस का मूल्य प्रचारार्थ केवल ६।।) रखा गया है इस प्रकार की भ्रान्तियों का युक्ति प्रमाण सहित विस्तृत निराकरण किया है । आशा है उत्साही आर्य स्वयम् उस पुस्तक तथा आचार्य प्रियव्रत जी कृत 'मेरा धर्म' को पढ़ने के अतिरिक्त आज-कल के शिक्षित वर्ग मे भी उस का प्रचार करेंगे जिस से ऐसी भ्रान्तियों का निवारण हो और लोग वेदों के यथार्थ विशुद्ध एकेश्वरोपासना तथा विश्वबन्धुत्व प्रतिपादक स्वरूप को समझ कर अपने जीवनों को उन्नत बनाएं ।

मान्य प्रधान मन्त्री जी की यज्ञ विषयक अशुद्ध धारणा—

यह खेद की बात है कि हमारे मान्य प्रधान मन्त्री श्री पण्डित जवाहरलाल जी की शिक्षा दीक्षा बाल्यकाल से ही इङ्गलैण्ड में हुई और उस के पश्चात् भी राजनैतिक कार्य की व्यग्रतादि वश तथा संस्कृत का अच्छा ज्ञान न होने और धर्म में विशेष रुचि न होने से आर्य धर्म विषयक उनका ज्ञान अत्यन्त सीमित रहा । पाश्चात्य विचार सरणी का भी उन पर बहुत प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप आर्य धर्म में उन की आस्था नहीं जम सकी । इस का एक स्पष्ट उदाहरण पिछले दिनों उन का एक सार्वजनिक भाषण है जिस में उन्होंने कहा बताते हैं (यदि समाचार पत्रों का विवरण ठीक है) कि यज्ञों में अन्न घी आदि नष्ट करना मूर्खता है । यदि यह सत्य है तो हम उन के इस विचार को सर्वथा अशुद्ध समझते हैं । यज्ञ में जो घी आदि पदार्थ डाले जाते हैं वे जल वायु को शुद्ध करते और इस प्रकार राग निवारण तथा आरोग्य के प्रसार में सहायक होते हैं । बरेली के डाक्टर फुन्दनलाल जी एम. डी. जैसे सुयोग्य अनुभवी चिकित्सक ने परीक्षण कर के उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा ८००) का पुरस्कार प्राप्त अपनी 'यज्ञ चिकित्सा' नामक पुस्तक में बताया है कि यज्ञ के द्वारा क्षयरोग जैसे भयङ्कर रोगों को भी दूर किया जा सकता है । कपूर जावित्री जायफल आदि सुगन्धित और रोग कृमि नाशक पदार्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यज्ञ में इसी कारण डाले जाते हैं। अतः यज्ञों को मूर्खता पूर्ण कहना सर्वथा अनुचित है। मान्य प्रधान मन्त्री जी जैसे उत्तर दायित्वपूर्ण व्यक्ति को इस प्रकार की बातें सोचे समझे और तद्विषयक साहित्य का अनुशीलन किये विना कह देना शोभा नहीं देता।

छात्रों में विनय और अनुशासनहीनता की निन्दनीय पराकाष्ठा—

धार्मिक शिक्षा और ब्रह्मचर्य मय वातावरण के अभाव में छात्रों में जो विनय और अनुशासनहीनता की वृद्धि हो रही है उस का एक अत्यन्त निन्दनीय उदाहरण ८ जनवरी को बरेली कालेज के छात्रों का अपने प्रिन्सिपल श्री शर्मा को उनके कार्यालय के कमरे में बन्द करके ताला लगा देने का है। कहा जाता है कि लगभग १ मास पूर्व बरेली कालेज के प्रिन्सिपल महोदय ने दो छात्रों को एक छात्रा को तंग करने के आरोप में निलम्बित कर दिया था जिस के परिणाम स्वरूप छात्र हिंसा पर उतर आए और बाद में उन्होंने हड़ताल कर दी। कालेज खुलने पर छात्रों का एक शिष्टमण्डल प्रिन्सिपल महोदय से मिला और जब उन्होंने उन की मांगों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने प्रिन्सिपल महोदय के कमरे में बाहर से ताला लगा दिया। जब प्रिन्सिपल शर्मा ने भी तबतक भूख हड़ताल कर के कमरे के अन्दर प्राण त्याग तक करने की घोषणा की जब तक छात्र उन से क्षमा न मांगें तब अन्य अधिकारियों के बहुत समझाने-बुझाने पर छात्रों ने कमरे का ताला खोला। यह घटना छात्रों में विनय और अनुशासन हीनता की जिस पराकाष्ठा को सूचित करती है उस की जितनी निन्दा की जाय उतनी ही थोड़ी है उचित धार्मिक शिक्षा द्वारा छात्रों में सदाचार विनय और अनुशासन की वृद्धि करना उनके सब हितैषियों का कर्तव्य है।

राष्ट्रिय महासभा में शिक्षा सुधार विषयक प्रस्ताव—

राष्ट्रियमहासभा के ६३ वें अधिवेशन में जो १५ जनवरी से २० जनवरी तक प्राग्ज्योतिषपुर गोहाटी (आसाम) में हुआ राष्ट्रिय महासभा के प्रधान मन्त्री श्रीमन्नारायण ने शिक्षा विषयक एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए श्रीमन्नारायण ने कहा कि शिक्षा की वर्तमान पद्धति में ऐसा परिवर्तन किया जाए कि छात्रों में राष्ट्रियता की भावना उत्पन्न हो सके। आप ने चिन्ता प्रकट की कि स्वतन्त्रता के दश वर्ष बाद भी वही शिक्षा प्रणाली प्रचलित है जो भारतीय संस्कृति से विमुख है।" इत्यादि

हमारी सम्मति में शिक्षा प्रणाली में छोटे मोटे परिवर्तनों से काम नहीं चल सकता। इस में मौलिक आमूल चूल परिवर्तनों की आवश्यकता है। शिक्षा न केवल ऐसी होनी चाहिये जो छात्र छात्राओं में सच्ची देशभक्ति और देश सेवा की भावना को भरे बल्कि जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता आदि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें। इस पर हम विस्तार से फिर प्रकाश डालेंगे।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

मास के प्रारम्भ में अत्यन्त शीत था। दो तीन दिन तक लगातार वर्षा के कारण दिन अत्यन्त दुर्दिन था किन्तु अन्त के दिनों में जलवायु साधारणतया ठीक रहा। कुलवासी आनन्दित तथा प्रसन्न रहे।

श्री श्रद्धानन्द बलिदान पर्व

२१ दिसम्बर से प्रारम्भ कर २६ दिसम्बर तक यहां के छात्रों ने अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के बलिदान पर्व पर खूब उत्साह एव उमंग के साथ नानाविध आयोजन किए। दिन में अखिल भारतीय श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंण्ट तथा रात्रि में नानाविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सम्पूर्ण पंचपुरी जनता का खूब मनोरञ्जन हुआ।

टूर्नामैण्ट में अनेक उत्तमोत्तम दलों तथा अनेक देश प्रसिद्ध खिलाड़ियों ने भाग लिया। फाइनल में एअर फोर्स अम्बाला और अम्बाला क्लब अम्बाला अपने उत्तम खेल से अनिर्णीत रहे। पारितोषिक वितरण ए. डी. एम. दुबे जी के करकमलों द्वारा २६ दिसम्बर १९५७ सायं साढ़े चार बजे ठीक फाइनल के बाद सम्पन्न हुआ। कप छह २ मास के लिए दोनों दलों को दिया गया। सर्व श्रेष्ठ खिलाड़ी का स्वर्ण पदक श्री नम्बियार को दिया गया। सर्वतोभद्र श्री डोगरा को और बैक श्री विष्णुसिंह, फौरवर्ड श्री महेन्द्रसिंह श्री वीरोत्तम श्री सैन्डो आदि अनेक खिलाड़ियो को व्यक्तिगत पुरस्कार दिए गए। ब्र० गोपाल चतुर्दश मन्त्री टूर्नामैण्ट के कठोर परिश्रम से उक्त आयोजन अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

सांस्कृतिक कार्यक्रम २५ दिसम्बर रात्रि से प्रारम्भ हुए। इस दिन विद्यालय विभाग के अष्टम श्रेणी के छात्रों ने संस्कृत अभिनय अत्यन्त सुन्दर किया। ब्र० नरेन्द्र की अभिनय कला की अत्यन्त प्रशंसा हुई। इसी दिन आंग्लभाषा का नाटक भी सम्पन्न हुआ। २६ दिसम्बर को हिन्दी के छाया चित्र में श्री जगन्नाथ ने बहुत प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्त किए। नाटक, छाया-चित्र, संगीत तथा प्रहसनादि हुए। यह आयोजन मनोरञ्जन और शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त सफल था। नाटक में प्रथम राजबल, २ य सूर्यप्रकाश तथा ३य नारायण और योगेन्द्रकुमार ने संगीत में, धर्मव्रत, प्रहसन में योगेन्द्रकुमार त्रिपाठी तथा इन सभी कार्यक्रमों में उत्तम भाग लेने वालों में श्री रामजीदास ने इनाम प्राप्त किया। २७ दिसम्बर को अखिल भारतीय राजहंस चल विजयोपहार वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन मान्य कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति सदस्य राज्यसभा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। ट्रॉफी गुरुनानक कॉलेज के छात्रों ने प्राप्त की। व्यक्ति गत पुरस्कार में श्री राजकुमार सिंहल डी. ए. वी कालेज देहरादून प्रथम थे। २ य और ३ य गुरुनानक कालेज के श्री हरिचन्द्र तथा श्री सतीनाथ थे। दो सान्त्वना पुरस्कार थे। एक श्री चन्द्रकान्त गुरुकुल कांगड़ी और २ य श्री वेदव्यास गुरुकुल कांगड़ी को मिला। ये उपर्युक्त सभी आयोजन वाग्वर्धिनी सभा द्वारा सम्पन्न हुए। २८ दिसम्बर को विद्यालय विभाग के छात्रों ने अभिनय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तुत किया गया। उनके प्रहसन सबने बहुत अधिक पसन्द किए। अभिनय में प्रथम श्री सुधीर ६ म २ य श्री धर्मवोर ६ म और ३ य श्री प्रहलाद ६ म थे। प्रहसन श्री सुरेश ६म श्री सोमचन्द ६म और श्री चन्द्रदेव ने बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किए।

इस प्रकार इस वर्ष यह पर्व अत्यन्त सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ।

भाषण

इस मास दो भाषण मुख्य रूप से हुए। प्रथम श्री रामेश बेदी ने अपनी गत ग्रीष्म ऋतु की हिमालय यात्रा में लिए कलापूर्ण चित्र प्रोजैक्टर की सहायता से दिखलाए। उन्होंने बताया कि हिमालय के रंग बिरंगे फूल, भोले-भाले निवासी, शुभ्रधवल हिम शृंग, चहचहाते चमकीले परों वाले पंछी, मुलायम फरों वाले जानवर,तरु-लता,नदी नाले और घाटियां ये सब हमें सदा एक नया ही पाठ सिखाते हैं। उन्होंने अपना भाषण अत्यन्त रोचक तथा सजीव ढग से प्रस्तुत किया। परिणाम स्वरूप अनेक श्रोताओं के मन में नागाधिराज में भ्रमण करने का उत्साह जागृत हुआ।

दूसरा भाषण श्री शीतलप्रसाद जी पी. एच. डी. प्रिन्सिपल डी. ए. वी. कालेज मुज़फ़्फ़रनगर ने वेद मन्दिर में अणुशक्ति विषय पर प्रोजेक्टर की सहायता से ही दिया। यह भाषण भी अत्यन्त शिक्षाप्रद था। इन दोनों उपयोगी भाषणों के लिए हम समस्त गुरुकुल पुरी की ओर से उन महानुभावों के आभारी हैं।

हिन्दी सत्याग्रहियों का सन्मान

गुरुकुल कांगड़ी के छ ब्रह्मचारियों ब्र० नवलकिशोर, ब्रह्मचारी सुभाषचन्द्र ब्र० श्यामनाथ, ब्र० वेदप्रकाश, ब्र० हेमसिंह और ब्र० प्रेमनाथ ने गुरुकुल सेअवकाश ले कर हिन्दी रक्षा आन्दोलन में भाग लिया ब्र० हेमसिंह ने अम्बाला और फिरोजपुर में कारागास छ मास तक सहा तथा शेष ब्रह्मचारियों ने जिला जेल जालान्धर चार मास तक जब ये ब्र० सत्याग्रह से वापिस लौटेतो३।१।५८ को सामूहिक रूप से वेदमन्दिर में आयोजन सभा में ब्र० तथा उपाध्यायों द्वारा इसका भव्य स्वागत किया गया और पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत जो वेद वाचस्पति आदि ने ब्र० को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् ब्र० सुभाषचन्द्र, ब्र० नवल किशोर और ब्र० हेमसिंह ने जेल यात्रा के सम्बन्ध में भाषण दिये और अपने अनुभव सुनाये।

—प्रशान्त कुमार

२१—१—५८।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद्भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
मेरा धर्म	श्री प्रियव्रत	५)००
वेद का राष्ट्रिय गीत	श्री प्रियव्रत	४)०
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	श्री प्रियव्रत	५)००
वरुण की नौका, २ भाग	श्री प्रियव्रत	६)००
वैदिक विनय, ३ भाग	श्री अभय	२), २), २)
वैदिक वीर-गर्जना	श्री रामनाथ	)=७
वैदिक-सूक्तियां	,,	१)७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१)५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२)००
वैदिक अध्यात्म-विद्या	,,	१)२५
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२)००
ब्राह्मण की गौ	श्री अभय	)७५
वेदगीताञ्जलि (वैदिक गीतियां)	श्री वेदव्रत	२)००
सोम-सरोवर, सजिल्द,	श्री चमूपति	२)००
वैदिक-कर्त्तव्य-शास्त्र	श्री धर्मदेव	१)२
अग्निहोत्र	श्री देवराज	२)२५

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक		मूल्य
संस्कृत-प्रवेशिका, १, २ भाग		)७५,)८७
साहित्य-सुधा-संग्रह, ३ बिन्दु	प्रत्येक	१)२५
पाणिनीयाष्टकम् पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध		७)००, ७)००
पञ्चतन्त्र (सटीक) पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध		२)००, २)५०
सरल-शब्दरूपावली		)६२

ऐतिहासिक तथा जीवनी

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतवर्ष का इतिहास ३ भाग	श्री रामदेव	६)००
बृहत्तर भारत (सचित्र) सजिल्द		७)००
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, २ भाग		)७५
अपने देश की कथा	श्री सत्यकेतु	१)३७
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव		)५०
योगेश्वर कृष्ण	श्री चमूपति	४)००
मेरे पिता	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४)००
सम्राट् रघु	,,	१)२५
जीवन की झांकियां ३ भाग	,,	)५०,)५०, १)००
जवाहरलाल नेहरू	,,	१)२५
ऋषि दयानन्द का जीवन-चरित्र	,,	२)००
दिल्ली के वे स्मरणीय २० दिन	,,	)५०

धार्मिक तथा दार्शनिक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
सन्ध्या-सुमन	श्री नित्यानन्द	१)५०
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, तीन भाग		३)५०
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२)००
वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा	श्री विश्वनाथ	१)००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१)२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२)००
जीवन-संग्राम	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१)००

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आहार (भोजन की जानकारी)	श्री रामरक्ष	५)००
आसव-अरिष्ट	श्री सत्यदेव	२)५०
लहसुन:प्याज	श्री रामेश बेदी	२)५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३)००
तुलसी, दूसरा परिवर्द्धित संस्करण	,,	२)००
सोंठ, तीसरा ,,	,,	१)००
देहाती इलाज, तीसरा संस्करण	,,	१)००
मिर्च (काली, सफेद और लाल)	,,	१)००
सांपों की दुनियां, (सचित्र) सजिल्द	,,	५)००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३)२५
नीम:बकायन (अनेक रोगों में उपयोग)	,,	१)२५
पेठा : कद्दू (गुण व विस्तृत उपयोग)	,,	)५०
देहात की दवाएं, सचित्र)७५	बरगद	)७५
स्तूप निर्माण कला	श्री नारायण राव	३)००
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग		१)२५
जल चिकित्सा	श्री देवराज	१)७५

विविध पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
विज्ञान प्रवेशिका, २ भाग	श्री यज्ञदत्त	१)००
गुणात्मक विश्लेषण (बी.एस्.सी. के लिए)		१)००
भाषा-प्रवेशिका (वर्धायोजनानुसार)		)७५
आर्यभाषा पाठावली	श्री भवानी प्रसाद	१)५०
आत्म बलिदान	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)००
स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा	,,	१)५०
जमींदार	,,	२)००
सरला की भाभी, १, २ भाग	,,	२)०० ३)५०

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शक्तिवर्धक रसायन !

च्यवनप्राश आयुर्वेद का प्रसिद्ध रसायन है। यह दिव्य ओषधि शीत ऋतु में विशेष फलदायक है। यह खांसी, दमा, नज़ला, पुराना बिगड़ा जुकाम, फेफड़ों की कमज़ोरी, हृदय की दुर्बलता आदि रोगों में लाभ पहुंचाता है।

मूल्य एक पात्र २)२५, एक पौंड ४)१०, एक सेर ७)७५

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA